गुरु कहान - दृष्टि महान

(भाग - १)

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के
द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक प्रवचन

प्रकाशक :
श्री कुन्दकुन्द-कहान मोक्षार्थी परिवार
सोनगढ़, जिला-भावनगर (गुज.)

ॐ

सर्वज्ञ वीतरागाय नमः।

गुरु कहान : दृष्टि महान

(भाग - १)

आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक प्रवचन

卐

: संकलन :

जीतुभाई नागरदास मोदी

प्रशम जीतुभाई मोदी

(संपादक : आत्मजागृति)

卐

: हिन्दी अनुवाद :

पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन

बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)

卐

: प्रकाशक :

श्री कुन्दकुन्द-कहान मोक्षार्थी परिवार

सोनगढ़, जिला-भावनगर (गुज.)

मोबा. 09722833143

भरतक्षेत्र के महासमर्थ आचार्य भगवान श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव

✻ श्री सद्‌गुरुदेव-स्तुति ✻

(हरिगीत)

संसारसागर तारवा जिनवाणी छे नौका भली,
ज्ञानी सुकानी मळ्या विना ए नाव पण तारे नहीं;
आ काळमां शुद्धात्मज्ञानी सुकानी बहु बहु दोह्यलो,
मुज पुण्यराशि फळ्यो अहो! गुरु क्हान तुं नाविक मळ्यो.

(अनुष्टुप)

अहो! भक्त चिदात्माना, सीमंधर-वीर-कुंदना!
बाह्यांतर विभवो तारा, तारे नाव मुमुक्षुनां.

(शिखरिणी)

सदा दृष्टि तारी विमळ निज चैतन्य नीरखे,
अने ज्ञप्तिमांही दरव-गुण-पर्याय विलसे;
निजालंबीभावे परिणति स्वरूपे जई भळे,
निमित्तो वहेवारो चिदघन विषे कांई न मळे.

(शार्दूलविक्रीडित)

हैयुं 'सत सत, ज्ञान ज्ञान' धबके ने वज्रवाणी छूटे,
जे वज्रे सुमुमुक्षु सत्त्व झळके; परद्रव्य नातो तूटे;
—रागद्वेष रुचे न, जंप न वळे भावेंद्रिमां–अंशमां,
टंकोत्कीर्ण अकंप ज्ञान महिमा हृदये रहे सर्वदा.

(वसंततिलका)

नित्ये सुधाझरण चंद्र! तने नमुं हुं,
करुणा अकारण समुद्र! तने नमुं हुं;
हे ज्ञानपोषक सुमेघ! तने नमुं हुं,
आ दासना जीवनशिल्पी! तने नमुं हुं.

(स्रग्धरा)

ऊंडी ऊंडी, ऊंडेथी सुखनिधि सतना वायु नित्ये वहंती,
वाणी चिन्मूर्ति! तारी उर-अनुभवना सूक्ष्म भावे भरेली;
भावो ऊंडा विचारी, अभिनव महिमा चित्तमां लावी लावी,
खोयेलुं रत्न पामुं,—मनरथ मननो; पूरजो शक्तिशाळी!

—रचयिता : हिंमतलाल जेठालाल शाह

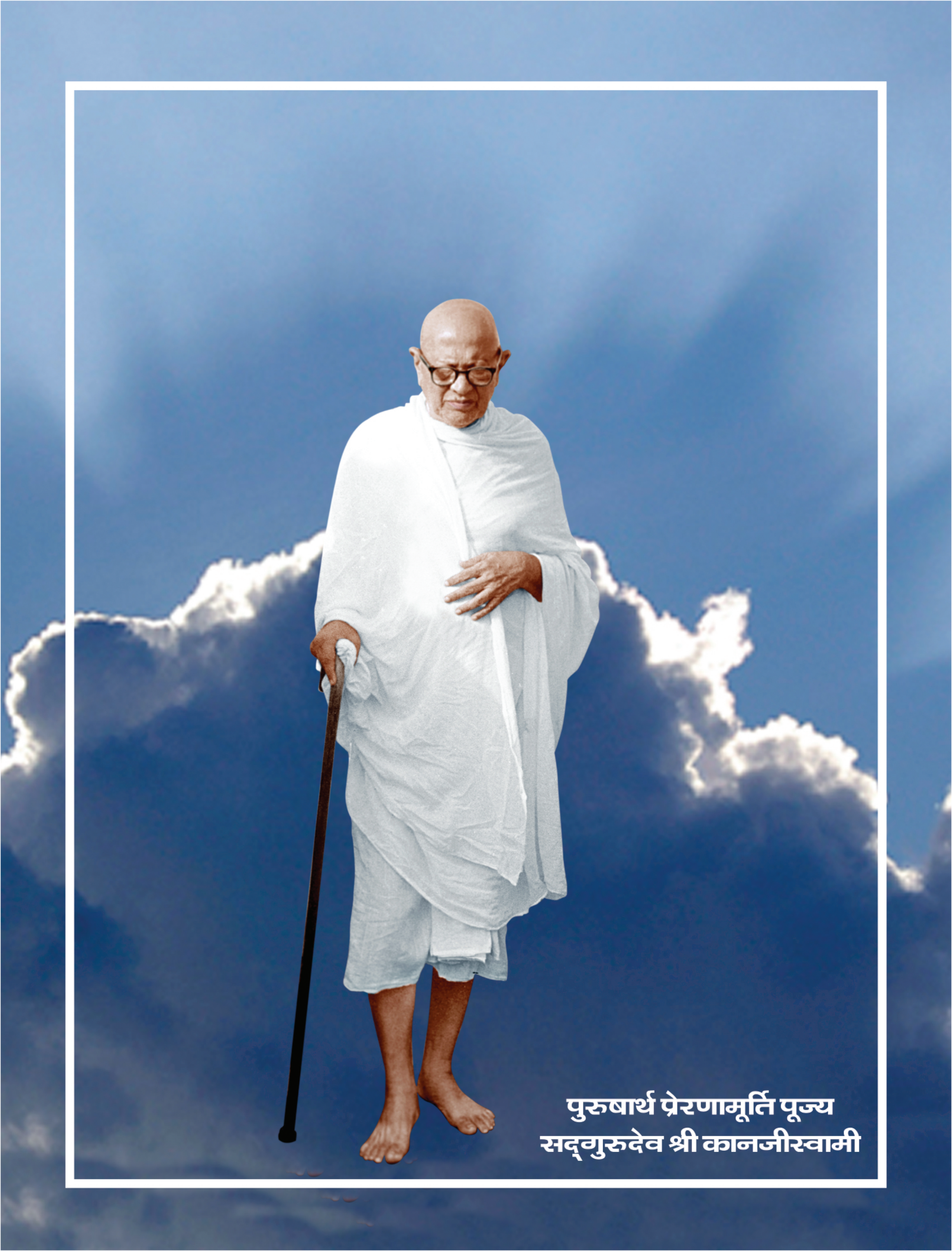

पुरुषार्थ प्रेरणामूर्ति पूज्य
सद्गुरुदेव श्री कानजीस्वामी

प्रथम आवृत्ति : प्रति 1000
(विक्रम संवत् 2071, वीर संवत् 2541, ईस्वी सन् 2014)

परम उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के 125 वें जन्मजयन्ती वर्ष के पावन अवसर पर सद्धर्म प्रेमी आत्मार्थीजनों को स्वाध्याय हेतु सप्रेम भेंट।

प्राप्ति स्थान :

1. **श्री कुन्दकुन्द-कहान पारमार्थिक ट्रस्ट**
302, कृष्णकुंज, प्लॉट नं. 30, वी. एल. महेता मार्ग, विलेपार्ले (वेस्ट),
मुम्बई-400056, फोन (022) 26130820 Email - vitragva@vsnl.com
2. **श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट (मंगलायतन)**
अलीगढ़-आगरा मार्ग, सासनी-204216 (उ.प्र.) फोन : 09997996346, 2410010/11
3. **पूज्य श्री कानजीस्वामी स्मारक ट्रस्ट,**
कहान नगर, लाम रोड, देवलाली-422401, फोन : (0253) 2491044
4. **श्री परमागम प्रकाशन समिति**
श्री परमागम श्रावक ट्रस्ट, सिद्धक्षेत्र, सोनागिरजी, दतिया (म.प्र.)
5. **चिन्तन जीतुभाई मोदी,** क्रमबद्ध निवास, 45 कहान नगर सोसाइटी, सोनगढ़ - 364250 (सौराष्ट्र)
मोबा : 09662524460
6. **पण्डित देवेन्द्रकुमार जैन**
द्वारा मुकेश आयरन स्टोर, गुरु कहान मार्केट, बिजौलियाँ, जिला-भीलवाड़ा (राज.)
मोबा : 09461768086
7. **श्री प्रदीप मानोरिया,** मिल रोड, अशोकनगर, (म.प्र.), मोबा : 09425132060
8. **श्री दिगम्बर जैन कुन्दकुन्द परमागम ट्रस्ट,**
पंच बालयति जिनालय, एरोड्रम रोड, साधनानगर, इन्दौर (म.प्र.)
9. **श्री अश्विनभाई ए. शाह,**
बी-21, रुस्तमजी आदर्श हेरीटेज ऑफ मार्वे रोड,
आदर्श काम्पलेक्स विहार, मलाड (वेस्ट) मुम्बई-64 , मोबा : 09820124378

टाईप-सेटिंग : **विवेक कम्प्यूटर्स,** अलीगढ़

मुद्रक : **देशना कम्प्यूटर्स,** जयपुर

अर्पण

जो वर्तमान युग में क्रमबद्धपर्याय का शंखनाद करनेवाले के रूप में जैन जगत् में प्रसिद्ध हैं; जो जैन जगत् में समयसार के प्रखर प्रचारक के रूप में मशहूर हैं; जो द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जनहार हैं; जिन्होंने शास्त्रों के शब्दों में छिपे हुए आचार्यों के गूढ़ भावों को खोलने की अद्‌भुत शक्ति द्वारा भव्य जीवों पर वचनातीत परम उपकार किया है; जिनकी शीतल छत्रछाया में जीवन व्यतीत करने का परम सौभाग्य हमारे पिताश्री को प्राप्त हुआ था, उन असीम करुणासागर, पुरुषार्थप्रेरणामूर्ति धर्मपिता पूज्य गुरुदेवश्री को, उनके ही द्रव्यदृष्टि प्रधान आध्यात्मिक प्रवचनों के अमूल्य खजाने में से चुने हुए 25 प्रवचनों के संकलनरूप यह '**गुरु कहान : दृष्टि महान**' भाग-1 अर्पण करते हुए हम जीवन की धन्यता अनुभव कर रहे हैं।

– संकलनकार

प्रकाशकीय

तीर्थंकरदेव का जन्म जगत के कल्याण के लिये होता है, इसी प्रकार अनन्त-अनन्त उपकारी पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का जन्म, इस निकृष्ट काल में यहाँ जन्मे हुए और भविष्य में भी यहाँ जन्म लेनेवाले अल्प संसारी जीवों को भाग्यशाली बनाने के लिये तथा उन्हें संसार-समुद्र से पार उतारने के लिये हुआ था। अन्तिम सैंकड़ों वर्षों का जैन इतिहास कहता है कि भव्य जीवों के तारणहार ऐसे महान सन्त यदि कोई हुए हों तो उनमें कृपासिन्धु पूज्य गुरुदेवश्री ही प्रधान पुरुष हैं। उन्होंने इस भौतिक युग को अध्यात्मयुग में परिवर्तित करके पंचम काल के अन्त तक टिका रहे - ऐसा अध्यात्मयुग सृजित किया है।

ऐसे अध्यात्मयुगसृष्टा, अध्यात्म क्रान्तिवीर पूज्य गुरुदेवश्री की 45-45 वर्ष प्रवाहित अध्यात्म गंगा का अमृतपान करनेवाले महान भाग्यशाली भव्य मुमुक्षुओं को तो उनके द्वारा प्ररूपित तत्त्वज्ञान के अभ्यास द्वारा आज भी पूज्य गुरुदेवश्री साक्षात्‌रूप से अनुभव में आ रहे हैं, परन्तु उनके दर्शन-श्रवण और सत्संग का जिन्हें साक्षात् लाभ प्राप्त नहीं हुआ, ऐसे भव्य जीवों को, इन महापुरुष ने जो द्रव्यदृष्टि प्रधान दिव्यदेशना का प्रपात बहाया, उसका साक्षात्‌वत् लाभ मिले, वह इस **गुरु कहान : दृष्टि महान** के प्रकाशन का हेतु है।

यह जीव अनन्त बार नौवें ग्रैवेयक तक जा आया, अनन्त बार नग्न दिगम्बर द्रव्यलिंग धारण किया, अनन्त बार समवसरण में जा आया, तथापि कोरा रह गया, उसका मुख्य कारण यदि कोई हो तो वह एक ही है कि द्रव्यदृष्टि प्रधान देशना को इस जीव ने कभी ग्रहण नहीं किया—ऐसा पूज्य गुरुदेवश्री करुणा से बारम्बार कहते थे और इसीलिए उस द्रव्यदृष्टि प्रधान देशना का उन्होंने जीवनपर्यन्त प्रपात बहाया है। पूज्य बहिनश्री भी कहती थीं कि 'मानो कोई बड़े आचार्य उपदेश देते हों, वैसे दृष्टि के विषय का अपूर्व स्पष्टीकरण होता था' ....'दृष्टि का विषय आवे, तब उछल जाते थे।' यद्यपि उनकी सर्वांगी उपदेश गंगा में न्यूनाधिक योग्यतावाले सर्व जीवों को आत्म-लाभ हो, ऐसा निश्चय-व्यवहार का सम्पूर्ण उपदेश बोध बहा है। मुमुक्षु की पात्रता कैसी हो, अशुभ से बचने को शुभ में जुड़ान कैसा हो, इत्यादि उपदेश देने पर भी कहीं किसी को मुख्यता न हो जाये तथा उसमें जोर दिये बिना उस व्यवहारमार्ग प्रकाशन के साथ मुख्यरूप से तो द्रव्यदृष्टि मार्ग प्रकाशक निश्चय की ही मूसलाधार वर्षा की है। जिससे भद्र जीव अनादि के संस्कारवश मन्दकषाय आदि व्यवहारमार्ग में न अटककर, निश्चयमोक्षमार्ग को यथार्थ समझकर उसका ही ग्रहण करके यह भव सफल करने के लिये स्वानुभूति का सत्पुरुषार्थ अपनायें।

पूज्य गुरुदेवश्री ने अध्यात्मयुग का सृजन किया ही है परन्तु बहुत स्पष्ट कहें तो वस्तुतः वे

द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जक हैं क्योंकि जिस द्रव्यदृष्टि प्रधान निश्चय के बोध से जीव निश्चयाभास के डर से भयभीत होते थे, उसके बदले आपश्री के प्रताप से भव्यजीव दिन-रात उस निश्चय का घोलन, चिन्तन श्रवण करने में ही जीवन की धन्यता अनुभव करते हैं।

द्रव्यदृष्टि प्रधान अध्यात्मयुग के सर्जक पूज्य गुरुदेवश्री की उपदेश अमृत वाणी को श्री दिगम्बर जैन स्वाध्यायमन्दिर ट्रस्ट के तत्कालीन प्रमुख श्री नवनीतभाई झवेरी की दीर्घदृष्टि से टेप में संगृहित करके चिरकालपर्यन्त सुरक्षित बनायी तथा लगभग 9000 घण्टे की इस गुरुवाणी को स्वर्गीय श्री शान्तिलाल रतिलाल शाह परिवार ने अद्यतन टेक्नोलॉजी द्वारा मात्र 16 डीवीडी में तथा तीन वीडी (Blueray Disk) में (जनवरी 2010 तक में) प्रसिद्ध करके मुमुक्षु जगत पर परम उपकार किया है, जिस कारण भावी के भव्य जीव भी आत्महित के मार्ग में सरलरूप से प्रयाण कर सकेंगे। ऐसे होने पर भी, पंचम काल के प्रभाववश कितने ही तत्त्व के अभ्यासियों द्वारा द्रव्यदृष्टि प्रधान तत्त्वज्ञान के पुरुषार्थ में भय प्रकाशन करते देखकर पूज्य गुरुदेवश्री के 9000 टेप प्रवचनों में से द्रव्यदृष्टि प्रधान विशेष पुरुषार्थ प्रेरणादायक प्रवचन चुन-चुनकर **गुरु कहान : दृष्टि महान** रूप से सीडी प्रवचन मुमुक्षु समाज को उपलब्ध कराने की हमें भावना जागृत होने से हमने भाग 1 से 8 तक प्रसिद्ध किया, जिसका श्रवणपान करते हुए गुरु-भक्तों का ध्यान गया कि सीडी प्रवचन का श्रवण करते समय हाथ में अक्षरश: गुरुवाणी की पुस्तक हो तो प्रवचन का भाव विशेषरूप से समझना सरल बने। इसलिए गुरु भक्तों की भावना को साकार करने का निर्णय किया और हिन्दी भाषी समाज भी इन प्रवचनों का लाभ ले इस भावना से एक मुमुक्षु परिवार द्वारा इस प्रकल्प की पहली पुस्तक प्रकाशित हो रही है। मुमुक्षु परिवार की अनिच्छा के कारण उनका नाम प्रसिद्ध नहीं किया जा रहा है।

इस पुस्तक प्रकाशन के दो मुख्य प्रयोजन हैं - (1) जिन्हें करुणासागर गुरुदेवश्री के प्रत्यक्ष दर्शन-श्रवण का लाभ नहीं मिला, ऐसे भव्य जीवों को गुरुदेवश्री के द्रव्यदृष्टि प्रधान अन्त:करण समझने का सौभाग्य प्राप्त हो तथा (2) पंचम काल के प्रभाव में आकर प्रमाण के लोभ में अटककर द्रव्यदृष्टि के मार्ग में नि:शंकरूप से प्रयाण करने में हिचकिचाहट न हो, इस प्रकार पूज्य गुरुदेवश्री की भव्य जीवों को संसार-समुद्र से उभर लेने की करुणा सफलता को प्राप्त हो।

अन्त में, पूज्य गुरुदेवश्री 91 वर्ष की उम्र में भी जिस द्रव्यदृष्टि की प्ररूपणा करते हुए अन्दर से उछल पड़ते थे उस द्रव्यदृष्टि प्रधान उपदेश को **गुरु कहान : दृष्टि महान** के माध्यम से शीघ्र ग्रहण करके भावी अनन्त काल गुरु के सान्निध्य को प्राप्त करे - ऐसी भावना के साथ....

संकलनकार / अनुवादक

अनुक्रमणिका

क्रम	शास्त्र	गाथा	तारीख	प्रव. नं.	पृष्ठ नं.
१	श्री नियमसार	११०	३-२-८०	१२३	१ - ११
२	श्री प्रवचनसार	१६	१८-१-७९	१२	१२ - २५
३	श्री समयसार	१८१-८३	२-७-६७	२६४	२६ - ४०
४	श्री बोधपाहुड	१०-१३	३-८-७०	५२	४१ - ५४
५	श्री समयसार	१९	२०-१०-६६	८१	५५ - ६९
६	श्री परमात्मप्रकाश	४९-५२	१२-७-७६	३२	७० - ८२
७	श्री परमात्मप्रकाश	६८	२४-७-७६	४६	८३ - ९३
८	श्री नियमसार श्लोक	७१	२६-८-८०	५१	९४ - १०३
९	श्री नियमसार	५०	१-९-८०	५४	१०४ - ११३
१०	श्री नियमसार	४१	९-९-६६	१७४	११४ - १२९
११	श्री नियमसार	४१	११-९-६६	१७५	१३० - १४६
१२	श्री वचनामृत	१०५	१४-७-७८	१७५	१४७ - १५९
१३	श्री प्रवचनसार	११४	१०-७-७९	१२५	१६० - १७०
१४	श्री प्रवचनसार	११४	११-७-७९	१२६	१७१ - १८०
१५	श्री कलशटीका	१९२	२४-१-७८	२१३	१८१ - १९०
१६	श्री समयसार श्लोक	२७१	२५-६-६८	५७५	१९१ - २०५
१७	श्री समयसार	७५	१-८-६८	५८५	२०६ - २१९
१८	श्री समयसार	२९४	६-१२-७९	३६१	२२० - २३०
१९	श्री समयसार	३२०	८-२-८०	३८८	२३१ - २४१
२०	श्री समयसार	१०९-१२	२-३-७९	२०९	२४२ - २५५
२१	श्री समयसार	१७-१८	६-९-७८	७९	२५६ - २६५
२२	श्री समयसार	६	३०-६-७८	२१	२६६ - २७७

क्रम	शास्त्र	गाथा	तारीख	प्रव. नं.	पृष्ठ नं.
२३	श्री समयसार	६	१-७-७८	२२	२७८ - २९०
२४	श्री समयसार	१३	२७-९-६६	६०	२९१ - ३०६
२५	श्री समयसार	७२	२६-९-६६	१४०	३०७ - ३२२
२६	श्री परमात्मप्रकाश	६८-६९	२८-७-७६	४७	३२५ - ३३५
२७	श्री कलशटीका	६१-६२	२७-८-७७	७८	३३६ - ३५०
२८	श्री प्रवचनसार	३७	१०-२-७९	३५	३५१ - ३६४
२९	श्री समयसार	७५	४-१-७९	१६०	३६५ - ३७७
३०	श्री समयसार	६१-६२	१३-११-७८	१३५	३७८ - ३९०
३१	श्री परमात्मप्रकाश	५१-५२	१३-७-७६	३३	३९१ - ४०२
३२	श्री परमात्मप्रकाश	६७-६८	२५-७-७६	४४	४०३ - ४१४
३३	श्री परमात्मप्रकाश	८८-८९	२०-८-७६	६७	४१५ - ४२६
३४	श्री समयसार	३२०जे	१७-८-७०	९	४२७ - ४३९
३५	श्री प्रवचनसार	३८	११-२-७९	३६	४४० - ४५२
३६	श्री कलशटीका	२५८	२१-१२-६५	२६७	४५३ - ४६७
३७	श्री प्रवचनसार	३८-३९	१२-२-७९	३७	४६८ - ४७९

प्रवचन शुरू करनेसे पहले पूज्य गुरुदेवश्री द्वारा किया जानेवाला

मांगलिक

।। णमो लोए सव्व अरिहंताणम् ।।

।। णमो लोए सव्व सिद्धाणम् ।।

।। णमो लोए सव्व आयरियाणम् ।।

।। णमो लोए सव्व उवज्झायाणम् ।।

।। णमो लोए सव्व त्रिकाळवर्ती साहूणम् ।।

ओंकारं बिन्दुसंयुक्तं नित्यं ध्यायन्ति योगिनः।
कामदं मोक्षदं चैव ॐकाराय नमो नमः।।

नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चित्स्वभावायभावाय सर्वभावान्तरच्छिदे।।

मङ्गलं भगवान् वीरो मङ्गलं गौतमो गणी।
मङ्गलं कुन्दकुन्दार्यो जैनधर्मोऽस्तु मङ्गलम्।।

त्रिकाळ दिव्यध्वनि दातार....

❁

ॐ

श्री परमात्मने नमः

गुरु कहान : दृष्टि महान

अध्यात्म युगपुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के द्रव्यदृष्टिप्रधान आध्यात्मिक प्रवचन

(भाग १)

१

श्री नियमसार, गाथा ११० प्रवचन नं. १२३
दिनांक ०३-०२-१९८०

नियमसार, ११० गाथा। यहाँ तक आया है। **नित्यनिगोद के जीवों को भी....** क्या कहते हैं? यह आत्मा का जो पंचम परमभाव वस्तुरूप से-सत्तारूप से-अस्तित्वरूप से जो सत् है, वह **नित्यनिगोद के जीवों को भी शुद्धनिश्चयनय से वह परमभाव 'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है...** अर्थात् उनका परिणाम न परिणम सके—शुद्धस्वभाव को न परिणम सके—ऐसा उसे नहीं है। अभव्य जीव को वस्तु है, परन्तु उसे आश्रय नहीं; इसलिए वह उसके योग्य नहीं। ऐसे यहाँ निगोद के जीव को योग्य नहीं, ऐसा नहीं—ऐसा कहते हैं। निगोद के जीव में भी... आहाहा! यह लहसुन और प्याज का एक राई जितना टुकड़ा लो तो (उसमें) असंख्य तो शरीर है और एक-एक जीव को तैजस, कार्मण शरीर है। ऐसे एक अंगुल के असंख्य भाग में अनन्त आत्मायें (रहते हैं), परन्तु उस आत्मा का जो सत्व-दल है, वह तो नित्य निगोद के जीव को भी शुद्ध ही है। आहाहा!

नित्यनिगोद के जीवों को भी... ऐसा। प्रगट हुआ है, उसे तो ठीक परन्तु **नित्यनिगोद के जीवों को भी शुद्धनिश्चयनय से वह परमभाव 'अभव्यत्व-पारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है...** शुद्ध है। आहाहा! यह आनन्द और परमात्मस्वरूप से शुद्ध ही है और उस परमात्मस्वरूप

से परिणमन सकता है, ऐसा है। नित्य निगोद के जीव में भी ऐसी शक्ति है। वह अभव्य परिणम नहीं सकता, वैसा यह नहीं है—ऐसा कहते हैं। आहाहा!

वस्तु है न? अन्तर में चैतन्य सत् का सत्त्व, ऐसा तत्त्व जो है, वह तो ज्ञायकपने का अनन्त गुण का पूर्ण रूप है। वह स्वयं स्वत:पने स्वयं अन्तर में स्वभावरूप से परिणम सकने को नित्य निगोद के जीव में भी ताकत है। आहाहा! भले इस समय न कर सके, परन्तु उसमें ताकत है। नित्य निगोद का जीव (वहाँ से) निकलकर भी मनुष्य होकर परम पारिणामिकस्वभाव का अनुभव करके अन्तर्मुहूर्त में मुक्ति को पाये। आहाहा!

'अभव्यत्वपारिणामिक' ऐसे नाम सहित नहीं है... आहाहा! इससे ऐसा कहा, अभव्य जीव का तो जीव शुद्धरूप वस्तु है, परन्तु वह परिणमने के योग्य नहीं है; पूर्ण जैसा स्वरूप है, वैसा होने के योग्य वह नहीं है, ऐसा नित्य निगोद में नहीं है। आहाहा! भले नित्य निगोद में (से) अभी तक त्रस हुआ नहीं, परन्तु उस जीव में ऐसी ताकत है कि परिणम सके-ऐसी ताकत है। वस्तु तो है, परन्तु वह शुद्ध परिणम सके-ऐसी योग्यतावाले निगोद के-नित्य निगोद के जीव भी हैं। आहाहा! है?

शुद्धरूप से ही है। आहाहा! जिसका सत्त्व चैतन्य, वह शुद्ध ही है। भले नित्य निगोद में हो, त्रसपना पाया भी न हो, परन्तु उसकी वस्तु तो शुद्ध पवित्र आनन्दकन्द और परिणमने के योग्य है। आहाहा! वहाँ से निकलकर अन्तर्मुहूर्त में मनुष्य हो, निगोद से (निकल कर) भले एकाध भव करे; फिर मनुष्य हो। वह आठ वर्ष में शुद्धस्वरूप का परिणमन करके मुक्ति भी पाये। आहाहा! ऐसी उसमें ताकत है। नित्य निगोद, जिसमें त्रसपना अभी पाया नहीं-ऐसे जीवों में भी ऐसी ताकत है कि वह मनुष्य,... एकाधभव बीच में करे और मनुष्य होवे तो आठ वर्ष में... आहाहा! निगोद का अनादि-सान्त भाव करके और सिद्ध का सादि-अनन्त भाव प्रगट कर सकता है। आहाहा!

वहाँ भाषा काम नहीं करे, वहाँ भाव को सामर्थ्य की बलिहारी है। यह बात अन्दर बैठनी (चाहिए)। आहाहा! ज्ञान में यह बात आये बिना बैठती नहीं। यहाँ तो निगोद के जीव की ताकत ऐसी है, इतनी बात करते हैं, परन्तु यह (बात) बैठे किसे? जिसे यह चैतन्यमूर्ति भगवान परमेश्वरस्वरूप से बिराजमान है, उसकी अन्दर की दृष्टि हुई, सत् के सत्त्व का अनुभव किया, अनुभव में आया कि यह तो पूर्ण आनन्द का घन है, उस जीव को परिणमने की जैसे ताकत है; वैसे निगोद के जीव को भी उस प्रकार से परिणमने की तकत है। आहाहा!

जैसे... (कहकर) दृष्टान्त देते हैं। ये पंचम काल के मुनि, पंचम काल के जीव को सम्बोधन करते हैं। आहाहा! इतनी बड़ी बात पंचम काल में की जा सके या नहीं? की जा सके

क्या, कर सकता है। पंचम काल का जीव भी निगोद से निकलकर अन्तर्मुहूर्त में आठ वर्ष में अन्तर्मुहूर्त में आत्मज्ञान पाकर सर्वज्ञ हो सकता है। भरोसा चाहिए न! विश्वास से जहाज चलते हैं न?

विश्वास, रुचि-दृष्टि परिणमन में इसे बैठना चाहिए कि यह तो प्रभु पूरा शुद्ध सत्व है, पूर्ण आनन्द है। उसमें अशुद्धता तो नहीं, परन्तु अपूर्णता नहीं! अशुद्धता तो नहीं, परन्तु अपूर्णता भी नहीं! ऐसे निगोद के-नित्य निगोद के जीव हैं। आहाहा! तो फिर तू वहाँ से निकलकर यहाँ आया है न! ऐसा कहते हैं। आहा...! तू यहाँ तक आया। मोक्षमार्गप्रकाशक में तो ऐसा कहा है कि 'सब अवसर आ गया है।' आया है न? मनुष्यपना पाया, जैनवाणी पंचम परमभाव की तुझे कान में पड़ी और क्रमबद्ध (अर्थात्) द्रव्य का पर्यायस्वभाव क्रमबद्ध है, उसका निर्णय होने का-ज्ञायकभाव की ओर का आश्रय होने की योग्यता तुझमें है। यह पंचम काल इसे कहीं रोकता नहीं है। आहाहा!

जिस प्रकार मेरु के अधोभाग में स्थित सुवर्णराशि को भी... मेरुपर्वत के नीचे अकेला सोना भरा हुआ है। आहाहा! लाख योजन का मेरुपर्वत है, उसके नीचे अनादि से अकेला सोना भरा है। मेरुपर्वत का जो अन्दर निचला भाग (है वह) अकेला सोने से भरा है। अनादि से, हों! आहा! उस मेरुपर्वत के अधोभाग में रही हुई सुवर्णराशि (अर्थात्) शुद्ध सुवर्ण के ढेर को **भी सुवर्णपना है,...** उसे भी **सुवर्णपना है, उसी प्रकार अभव्यों को भी परमस्वभावपना है;...** अभव्य को परमस्वभावपना तो है। **वह वस्तुनिष्ठ है,...** उस वस्तु में रही हुई ही उसकी योग्यता है। मेरुपर्वत का सोना बाहर लाकर व्यापार में काम आवे या उपयोग में काम आवे—ऐसा नहीं है। नीचे सोने का ढेर पड़ा है। मेरुपर्वत लाख योजन का ऊँचा है, उसके प्रमाण उसकी चौड़ाई कितनी? वहाँ तो नीचे अकेला सोना भरा है। आहाहा!

श्रोता को ऐसा कहते हैं कि तू परिणम सकता है। अभव्य जीव जैसा तू नहीं है। आहाहा! वे तो ऐसे कोई अल्प जीव ही होते हैं। तू यहाँ आया, यहाँ सुनता है, सुनने आया। यह कोई एकेन्द्रिय को नहीं कहते। हैं? आहाहा! भले अप्रतिबुद्ध हो, परन्तु है तो भगवान! और भगवान होने के-परिणमन के योग्य ही है! भगवानपना परिणमन के योग्य ही है! आहाहा! (अभव्य को भी) भगवानपना है, परन्तु भगवानपना परिणमने के योग्य नहीं। अन्तर डालकर बात करते हैं।

मैं तुझे सुनाता हूँ, वह तुझे मैं ऐसा कहता हूँ कि नित्य निगोद के जीव भी अभव्य जैसे नहीं हैं। आहाहा! तो प्रभु! तू तो यहाँ आया, यहाँ तक आया, सुना, वीतरागस्वरूप की बात तुझे कान में पड़ी—वाणी तुझे कान में पड़ी तो कहते हैं कि तेरा आत्मा शुद्धरूप परिणमने के योग्य

है! आहाहा! परमात्मा होने के योग्य है! आहा! परमात्मपना है, ऐसा परमात्मपना प्रतीति में आवे-ऐसा तू है। आहाहा!

श्रोता : मंगल आशीर्वाद दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात ही की है, अन्य बात ही नहीं। ये पंचम काल के साधु हैं और पंचम काल के रोता को सुनाते हैं। आहा! तू निरुत्साहित न हो। अभव्य जैसे परिणम नहीं सकता, वैसे तू नहीं परिणम सकता-ऐसा है नहीं। तू यहाँ तक आया, वह सुन! आहाहा! ऐसा कहते हैं। मुनिराज ऐसा कहते हैं। भगवान को अनुसरणकर मुनिराज कहते हैं, भगवान की वाणी भी ऐसा कहती हैं। उसे अनुसरण कर वे स्वयं कहते हैं। अनुसरकर परिणमे हैं, अनुसरकर तू परिणमेगा-ऐसा तू है। आहाहा! पंचम काल और ऐसा हल्का / कम पुण्य और हलकी जगह अवतार हो गया.... (ऐसा लेना) नहीं। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ प्रभु, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द अतीन्द्रिय आनन्दरूप से परिणम सके—ऐसा तू है। (समयसार की) ३८ वीं गाथा में तो यह कहा है न? (अप्रतिबुद्ध जीव को) गुरु ने बारम्बार कहा, वहाँ तो ऐसा लिखा है कि 'निरन्तर समझाने पर।' निरनतर समझाने को तो गुरु कहाँ निवृत थे? (इसका अर्थ) निरन्तर घोलन करने पर। दर्शन-ज्ञान-चारित्र को (प्राप्त हुआ) और वह भी प्राप्त हुआ कैसा?-न गिरे ऐसा। अप्रतिबुद्ध था, वह भी प्रतिबुद्ध पाया और (मोह का अंकुर अब उत्पन्न होनेवाला) है ही नहीं। आहाहा! (यह) पंचम काल के प्राणी की पुकार है। कहनेवाले की तो है, परन्तु श्रोता है, जिसने सुना है, उसकी यह पुकार है। आहाहा! समझ में आया? कहनेवाले तो कहते हैं, परन्तु तू वैसा हो सके ऐसा है। काल की राह और बाट देखनी नहीं है। आहाहा! ऐसा तुझे भगवान पूर्णाननद का नाथ कान में पड़ा प्रभु! वह परमात्मा होने के योग्य ही है। अभव्य के जैसा तू नहीं है। आहाहा! इतना अधिक कह दिया-अभव्य जैसा तू नहीं है। वे नित्य निगोद के जीव भी अभव्य जैसे नहीं हैं। आहाहा!

'तारी नजर के आलसे रे नयणे न निरख्या हरि...' हरि—ऐसा जो अज्ञान और राग-द्वेष हरनेवाला प्रभु। तेरी नजर के आलस से निधान रह गया। निधान पड़ा ही है और वह परिणमने के योग्य तू है। आहाहा! गजब बात करते हैं! दिगम्बर सन्तों की बात! श्रीमद् कहते हैं—'दिगम्बर के तीव्र वचनों के कारण रहस्य कुछ समझा जा सकता है। श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण रस शिथिल होता गया।' उनके रस की ऐसी पुकार है—दिगम्बर सन्तों की पुकार है। आहाहा! तू परिणमने के योग्य है—ऐसा कहते हैं। आहाहा! प्रभु! तुम सर्वा नहीं न? हम अभव्य हैं या नहीं—यह तुम्हें खबर नहीं (और) तुम एकदम ऐसी पुकार करते हो? आहाहा! योग्य हो! परिणमने के योग्य हो! परिणम सकते हो! आहाहा! है?

अभव्य जीव परमस्वभाव का आश्रय करने के लिये अयोग्य अयोग्य हैं। सुदृष्टियों को... आहाहा! जिसने दृश्टि में गुलांट खायी है, पर्यायदृष्टि छूटी और क्रमबद्ध में निर्णय करने पर ज्ञायक का निर्णय का अनुभव हुआ है। क्रमबद्ध का निर्णय करन इस ज्ञायकभाव का अनुभव हुआ है। आहाहा! ऐसे **सुदृष्टियों को—अति आसन्नभव्य जीवों को...** लाईन करके सुदृष्टि की व्याख्या की है। सुदृष्टि अर्थात् अति आसन्न भव्य जीव। उसे अल्पकाल में मुक्ति है। आहाहा! मोक्ष तो उसे अब (निकट में ही) दिखता है—ऐसा कहते हैं। उसे मोक्ष तो दिखता है, अल्प काल में मोक्ष होगा -ऐसी पुकार है।

श्रीमद् ने कहा है न? वे तो गृहस्थाश्रम में थे, लाखों का व्यापार था। अन्तर्दृष्टि में से आया है। 'अशेष कर्मनो भोग छे, भोगवओ अवशेष रे।' अभी एक राग बाकी लगता है। 'पण तेथी देह एक धारिने जाशुं स्वरूप स्वदेश।' हम एकाध देह धारण करके हमारे देश में चले जायेंगे। राग के परदेश में अब हम नहीं रहेंगे। आहाहा! राग के परदेश में (अब नहीं रहेंगे) यह वाणी आयी न? बहिन में (बहिनश्री चम्पाबेन के वचनामृत में) भी आया और यह (आया)। 'जाशुं स्वरूप स्वदेश' इसका अर्थ आया कि पुण्य-पाप है वह परदेश है, विभाव है, स्वभाव नहीं; इसका-आत्मा का वह परिवार नहीं। आहाहा! आत्मा का परिवार तो आनन्द, शान्ति, स्वच्छता और प्रभुता और पूर्णता, वह प्रभु की सामग्री अथवा परिवार है। एकाध देह धारण करके उस स्वदेश में (जाकर) हम पूर्ण होनेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? सर्वज्ञ को मिले नहीं। कुन्दकुन्दाचार्य को सर्वज्ञ को मिले हैं।

इस आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव है। सर्वज्ञस्वरूप ही आत्मा है। जिसे आत्मज्ञ कहा, आत्मा का सर्वज्ञस्वभाव है, वह आत्मज्ञ है। सर्व को जानना, वह तो अपेक्षित बात हुई। आहाहा! आत्मा की पर्याय में पूर्णरूप से जानना, वह आत्मज्ञपना वही सर्वज्ञपना है-ऐसा अल्पकाल में सर्वज्ञपना होगा, वह हमारा स्वदेश है, उसमें हम जायेंगे; परदेश में से हटकर जायेंगे, हमारा वह वतन है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ, वह हमारा वतन है, वह हमारा स्वदेश है। वह हमें रहने का स्थान है। आहाहा! 'जाशुं स्वरूप स्वदेश।'

मुनिराज ऐसा कहते हैं, तू अल्प काल में मुक्त होगा, (स्वदेश में) जायेगा - ऐसा तू है। आहाहा! अभव्य (जीवराशि) जैसा नहीं—ऐसा कहा न? निगोद के जीव को भी, ऐसा कहा परन्तु सुनानेवाले को तो पंचेन्द्रियपना है। आहाहा! सुननेवाले को तो पंचेन्द्रियपना है। आहाहा! हीनता का आश्रय न कर, हीन रहूँगा—ऐसा न मान; पूर्ण हो जाऊँगा—ऐसा मान। आहाहा! (तू) पूर्ण है और पूर्ण (होने के योग्य है); अभव्य पूर्ण है, परन्तु पूर्ण हो सकने के योग्य नहीं है परन्तु तुझे कहते हैं कि तू पूर्ण है और पूर्ण हो सकने के योग्य है। आहाहा! ऐसी बात है।

मुनि के हृदयों में यह पुकार है। स्वयं प्राप्त हुए हैं, इसलिए कहते हैं—तू प्राप्त करेगा ही और तू प्राप्त करने के योग्य ही है! आहाहा! अभव्य जीव की तरह नहीं! नित्य निगोद के जीव भी अभव्य जीव की तरह नहीं, प्रभु! तब फिर तू तो यहाँ पंचेन्द्रियरूप से जैनवाणी सुनने के लिये आया। आहाहा! (अब) अल्प काल में परिणमित होगा। यह जैसी जितनी प्रभुता पड़ी है जो सत्व में प्रभुता है, वैसी ही पर्याय में सत्व प्रभुता प्रगट हो जायेगी—ऐसा लायक तू है। आहाहा! विश्वास कहाँ से लाना? कहते हैं। इसका विश्वास (आना चाहिए)। विश्वास से जहाज चलते हैं, वैसे चैतन्य के ऐसे विश्वास से उसकी परिणति पूर्ण हो जाती है। आहाहा!

भाषा देखी? नित्य निगोद के जीव भी अभव्य की तरह नहीं हैं। यह प्रभु क्या कहते हैं? आहा! नित्यनिगोद के जीव ऐसे नहीं हैं। आहाहा! तो प्रभु! तू तो मनुष्य हुआ और यह परमात्मा की वाणी सुनने के लिये आया, सुनता है, परिणमित होने के योग्य ही है। सन्देह न कर। आहाहा!

श्रोता : आज का (आपका) सम्बोधन बहुत मीठा लगता है!

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसी बात मुनि स्वयं कहते हैं। नित्य निगोद के जीव में भी अभव्य तो पड़े हैं परन्तु फिर भी अभव्य के योग्य वह परिणमन नहीं है, ऐसा तो हम इनकार करते हैं। आहाहा! उसमें भी ऐसे जीव हैं कि केवलज्ञानरूप से परिणम जायेंगे। भले वहाँ से निकलकर (परिणमेंगे)। और तू तो निकलकर बाहर आया है, आहाहा! और कान में परमात्मा की वाणी पड़ती है। यह तीन लोक के नाथ की वाणी है। आहा! आहाहा!

यह अन्तर क्या किया कि नित्यनिगोद के जीव भी परिणम सकते हैं। अभव्य जीव ऐसे नहीं हैं। गजब बात की है! प्रभु! तुम तो छद्मस्थ मनुष्य हो! पंचम काल-फाल के हम मुनि नहीं। आहाहा! हम तो जो हैं वह हैं। हैं वह हैं, त्रिकाल हैं, वही हम हैं। आहाहा! और तू भी वह हो सकेगा। विश्वास ला, सन्देह छोड़, निःसन्देह कर! हम तुझसे कहते हैं कि तू परिणमित हो सकेगा, फिर तुझे निःसन्देह क्यों नहीं होता!! आहाहा! लालचन्दभाई! आहाहा! क्या सन्तों की वाणी! यह दिगम्बर (के) तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है। आहाहा! फाट... फाट... प्याला अन्दर है। दिगम्बर सन्तों की वाणी, तीर्थंकर की जिनवाणी दिव्यध्वनि है, वह वाणी है। आहाहा!

प्रभु! तू पामररूप से मानता हो तो छोड़ देना। हम भव्य होंगे या नहीं? अरे रे! प्रभु! यह क्या करता है तू? एक ज्ञानमति आर्यिका है न? बहुत प्रसिद्ध है। पच्चीस लाख का जम्बूद्वीप (बनाया है) बहुत प्रसिद्ध हो गयी है। वह ऐसा कहती है कि हम भव्य हैं या अभव्य? काललब्धि पकी है या नहीं पकी, वह तो सर्वज्ञ जाने। अर र र..! यह समाचार पत्र में आया है। ज्ञानमति है न? बहुत बोलनेवाली है, लोग बहुत इकट्ठे होते हैं। वस्तु की प्रतीति का ठिकाना नहीं

होता। आहा! ऐसा वहाँ तक लिखा है कि हम भव्य हैं या अभव्य? काललब्धि पकी है या नहीं पकी, वह तो सर्वज्ञ जाने। अरररर!

यहाँ कहते हैं कि तुझे (काललब्धि और भव्यता) पकी है—ऐसा हम कहते हैं! आहाहा! और दुनिया फिर प्रशंसा करे, चारों अनुयोगों के जानकारी के बोल बोले 'स्याद्वाद अवलोकन' पुस्तक का नाम दिया है। 'स्याद्वाद सूर्य से अलोकित' चार अनयोग का ज्ञान है। ऐसा कहे और ऐसा फिर लिखे कि हम भव्य हैं या अभव्य? यह भगवान जाने। अरे प्रभु! क्या करता है तू यह? आहाहा!

यहाँ मुनिराज तो पुकारते हैं कि नित्य निगोद के जीव भी अभव्य जैसे नहीं हैं, हम ऐसा कहते हैं। आहाहा! अभव्य जीव प्राप्त नहीं कर सकता, वैसे नहीं हैं। नित्य निगोद में ऐसे जीव हैं। ऐसा कहा न इसमें? भाई! आहाहा! गजब काम किया है! आहाहा! रहने दे, आड़ की आड़ छोड़ दे। आड़ रहने दे। पूर्ण प्रभु है, प्रभु! आहाहा! भले कोई रागादि हो परन्तु वह तुझे अवरोधक नहीं है, वह तो ज्ञान के ज्ञेयरूप से विषय हैं। आहाहा!

सर्वविशुद्धज्ञान (अधिकार में) नहीं आता? दीपक, घट-पट को प्रकाशित करता है-ऐसा नहीं; दीपक, दीपक के प्रकाश को-द्विरूपता को प्रकाशित करता है। दीपक, दीपक को प्रकाशित करता है और दीपक घट-पट का ज्ञान (प्रकाश) जो है, उसे (प्रकाशित करता है), ज्ञान अर्थात् प्रकाश, उसे प्रकाशित करता है। इसी प्रकार आत्मा पर को प्रकाशित नहीं करता। उसकी स्व को और पर को जानने का जो प्रकाश अपना है, उस द्विरूपता को प्रकाशित करता है, पर को नहीं। आहाहा! वाणी तो देखो! दीपक घट-पट को प्रकाशित नहीं करता, दीपक की प्रकाश की द्विरूपता को प्रकाशित करता है। दीपक, दीपक को प्रकाशित करता है और उसका जो स्वरूप है, उसे दीपक प्रकाशित करता है, इसे (घट-पट को नहीं)।

इसी प्रकार भगवान आत्मा, पर को जानने में पर को प्रकाशित करता है-ऐसा नहीं है। स्व और पर को प्रकाशित करती द्विरूपता को प्रकाशित करता है। ज्ञान की द्विरूपता को प्रकाशित करता है, पर को नहीं, लोकालोक को नहीं। आहाहा! है न पीछे। आहाहा! प्याला फाट अन्दर से, कहते हैं। भगवान भरा है। उस भगवान भरे हुए को देख! भरा हुआ है, पूर्ण है और पूर्ण हो सकने योग्य है—ऐसा तुझे कहते हैं। सन्देह न कर! आहाहा! वह यही पुकार करते हैं। बैठना तो इसे स्वयं को है न? मुनिराज तो बैठाते हैं, मुनिराज तो कहते हैं। नित्य निगोद में भी, अभव्य जैसे परिणम नहीं सकते, वैसी बात है नहीं। आहाहा! वह तो कोई अल्प (जीव) है। ढेर तो यह पड़े हैं बड़े, जीव के-आत्मा के। परिणमित होने के योग्य हैं, उनके ढेर पड़े हैं। आहाहा! नहीं परिणमने के योग्य ऐसे जीव तो कोई अल्प और अल्प अनन्तवें भाग हैं, उनकी बात रहने दे, उस बात को भूल जा, वे हैं नहीं, तू वह है नहीं, आहाहा! टीका करके गजब किया है! गजब टीका है!!

श्रोता : टीका की भी टीका कैसी है!

पूज्य गुरुदेवश्री : गजब टीका है। **सुदृष्टियों को-अतिआसन्न भव्य जीवों को...** तैयारी है मुक्ति की, तैयारी है मुक्ति की। आहाहा! जिसमें अजंपा जाप नहीं परन्तु जंपा जाप हो गया है। मुक्ति का जाप हो गया है। आहाहा! ऐसे आसन्न भव्य जीव को... आसन्न अर्थात् नजदीक, मुक्ति जिसको नजदीक है, जिसके संसार का अन्त आ गया है। आहाहा! उस बात को लक्ष्य में ले! संसार का अन्त आ गया है, अन्त आया है और मुक्ति की निकटता है—ऐसे **अतिआसन्न भव्य जीवों को यह परमभाव...** यह परमभाव-त्रिकाली परमस्वभाव सत्व **सदा निरंजनपने के कारण...** आहाहा! सदा निरंजनपने के कारण। अंजन-फंजन-मेल उसे है ही नहीं। वह तो निरंजन है। आहाहा!

(यह परम) आलोचना का अधिकार है। आज ऐसी आलोचना कर, ऐसे अन्दर आलोचना कर (ऐसा) कहते हैं। आहाहा! वह है, ऐसा इस प्रकार से आलोचना और देखने के योग्य ही तू है। सन्देह रहने दे। 'भगवान ने हमें अभव्य देखा होगा तो?' अरे! सुन न! भगवान की प्रतीति हुई उसके भव भगवान ने देखे ही नहीं। यह (संवत्) १९७२ के साल में कहा था। प्रश्न उठा था, बड़ा प्रश्न उठा था। भगवान ने देखे उतने भव होंगे। इसलिए अपन क्या करें? भगवान एक समय का ज्ञान तीन काल-तीन लोक को जानें ऐसी एक ही पर्याय। अनन्त दूसरी पर्याय अलग रही। एक समय की एक पर्याय, एक गुण की एक पर्याय। आहाहा! लोकालोक को जानें अपने पूर्ण द्रव्य, गुण को जानें ऐसी पर्याय की सत्ता का स्वीकार जिसे है उसे भगवान ने देखा इसका सच्चा निर्णय है, उसे इस सत्ता का स्वीकार हुआ, उसे सर्वज्ञ सत्ता मेरी है, उसका स्वीकार हुआ उसे भव नहीं हो सकते, भगवान ने उसके भव नहीं देखे। (संवत्) १९७२ में कहा था। भगवान ने भव नहीं देखे। जिसे भगवान जँचे, भगवान इस जगत में है, एक समय की स्थिति की सत्तावाले और एक समय तीन काल-तीन लोक को जानें ऐसा सत्व इस जगत में है। आहाहा! उसका जिसे स्वीकार है, भगवान ने उसके भव नहीं देखे और एकाध-दो भव हों तो ज्ञेयरूप से हैं, छूटकर ही रहेगा, भगवान ने देखा है ऐसा करके (बात नहीं कर)। वैसे तो ऐसा भी कहा न? 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसि वीरा' परन्तु किसे? जिसे भगवान की प्रतीति हुई है उसे। जो जो वीतराग ने देखी... 'जो जो देखी वीतराग ने सो सो होसि वीरा' परन्तु वीतराग जगत में हैं, उन्होंने देखा (यह) प्रश्न बाद में। वीतराग का अस्तित्व जगत में है। एक समय का, वीतराग का अस्तित्व! आहाहा! पूर्ण वीतरागता जगत में है, एक समय की पर्याय पूर्ण है ऐसी सत्ता का जिसे स्वीकार है उसे भगवान ने भव देखे नहीं, भगवान को उसका भगवान होना दिखा है, वह तो अल्प काल में भगवान होनेवाला ही है। आहाहा! ऐसी बात है, आहाहा!

आसन्न भव्य जीव को... आहाहा! आसन्न, अतिआसन्न भव्य... भव्य आसन्न और अतिआसन्न। आहाहा! **अतिआसन्न भव्य जीवों को यह परमभाव सदा निरंजनपने के कारण...** आहाहा! यह परमभाव निरंजन है, जिसमें अंजन की गन्ध, राग की गन्ध नहीं, उदय को स्पर्शती नहीं ऐसा जो परम स्वभावभाव परमात्मा पड़ा है, आहाहा! वह परमात्मा होने के योग्य है, परमात्मा होने के योग्य नहीं - यह बात यहाँ सुनने जैसी नहीं है। आहाहा! ऐसा कहते हैं। इससे श्रीमद् ने कहा न! दिगम्बर के तीव्र वचन, उनके तीव्र वचन... सन्तों के तीव्र वचनों के कारण रहस्य समझा जा सकता है कि ये क्या कहना चाहते हैं अन्दर। ऐसा शब्द है न? श्वेताम्बर की शिथिलता के कारण, विपरीतता के कारण (रस) शिथिल होता गया। यह तो तीव्र वचन का पुकार है।

अतिआसन्न भव्य जीवों को यह परमभाव सदा निरंजनपने के कारण... सदा निरंजनपने, निरंजनपने के कारण **अर्थात् सदा निरंजनपने प्रतिभासित होने के कारण...** निरंजनपना है परन्तु 'है' ऐसा भासित हुए बिना 'है' ऐसा कहाँ से आया? ज्ञान में ज्ञेय भासित हुए बिना 'यह है' यह कहाँ से आया? आहाहा! गजब टीका करते हैं!

पद्मप्रभमलधारिदेव मुनि हैं, आचार्य नहीं हैं। मुनि तो तीर्थंकर होनेवाले हैं-ऐसा आया है। ऐसी ध्वनि लगती है। तीर्थंकर होनेवाले हैं, तीर्थंकर होकर मोक्ष जायेंगे। आहाहा! एक बार यह बताया था। नहीं? सर्वज्ञ की बात आयी, वहाँ सर्वज्ञपना नहीं रखा, तीर्थंकरपना रखा, यह बताया था भाई को। हिम्मतभाई! जहाँ सर्वज्ञ की व्याख्या आयी है, वहाँ सर्वज्ञपना न रखकर तीर्थंकर को रखा है। तीर्थंकर ऐसे सर्व भाववाले हैं, उनकी ध्वनि में, मस्तिष्क में ऐसा आता था कि ये तीर्थंकर होनेवाले हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वह है न कहीं?

देखो, २१२ कलश। देखो, यह आया। देखा? दृष्टि की बात करते हैं-**जो शुद्धदृष्टिवन्त (सम्यग्दृष्टि) जीव ऐसा समझता है कि परम मुनि को तप में, नियम में, संयम में और सत्चारित्र में सदा आत्मा ऊर्ध्व रहता है (अर्थात् प्रत्येक कार्य में निरन्तर शुद्धात्मद्रव्य ही मुख्य रहता है) तो (ऐसा सिद्ध हुआ कि) राग के नाश के कारण अभिराम ऐसे उस भवभयहर...** सर्वज्ञ नहीं लिया परन्तु **भवभयहर भावि तीर्थाधिनाथ...** है? नहीं तो यहाँ सर्वज्ञ लेना चाहिए। भावि सर्वज्ञ (नहीं कहा) परन्तु तीर्थाधिनाथ सर्वज्ञ लिया है। यह स्वयं की अन्दर की ध्वनि है। है? चन्दुभाई! **अभिराम ऐसे उस भवभयहर...** यहाँ सर्वज्ञ शब्द चाहिए। आहाहा! **भावि तीर्थाधिनाथ को यह साक्षात् सहज-समता अवश्य है।** सर्वज्ञ शब्द प्रयोग न करके भावि तीर्थंकरनाथ शब्द प्रयोग किया है। यह स्वयं की अन्तर की ध्वनि है। आहाहा! दिगम्बर मुनियों की तो बलिहारी है! आहाहा! साक्षात् तीर्थंकर का काम करते हैं। उनकी वाणी और उनके भाव, तीर्थंकर की उपस्थिति बताते हैं। आहाहा!

(यहाँ) कहते हैं कि अतिआसन्न भव्य (जीव) **निरंजनपने के कारण (अर्थात् सदा निरंजनरूप से प्रतिभासित होने के कारण)...** वह भले निरंजन है परन्तु है—ऐसा प्रतिभास (आये) बिना निरंजन है, ऐसा कहाँ से आया? क्या कहा यह? भगवान आत्मा निरंजन है, शुद्ध चैतन्यमूर्ति, परन्तु वह भासित हुए बिना, ज्ञान में वह भासित हुए बिना 'यह परम निरंजन है'—ऐसा कहाँ से आया? भासित हुआ, तब लगा कि यह परम निरंजन है। आहाहा! उसमें भी परम निरंजन नाथ भासित हुआ है। है इतना, ऐसा नहीं। वह परम स्वभाव निरंजन है, ऐसा नहीं; वह है—ऐसा भासित हुआ है, इसलिए है। भासित हुए बिना 'है'—ऐसा इसे कहाँ से आवे? आहाहा! समझ में आया?

(सदा निरंजनरूप से प्रतिभासित होने के कारण)... प्रतिभासित हुआ अर्थात् ज्ञान की पर्याय में भासित होने के कारण। आहाहा! **सफल हुआ है...** कि निरंजन है परन्तु प्रतिभासित हुआ है तो वह सफल हुआ है। प्रतिभासित हो नहीं, वहाँ है वह सफल कहाँ हुआ? क्या कहा? भगवान सदा निरंजन है परन्तु भासित हुए बिना-ज्ञान में भासित हुए बिना प्रतिभास (हुए बिना) सदा निरंजन है, वह जाने कौन? जाना किसने? वह प्रतिभासित हुआ है, उसने जाना है, वह कहता है कि आहा! उसे सदा निरंजन जो भाव प्रतिभासित हुआ है; इसलिए वह निरंजन भाव सफल हुआ है। निरंजन भाव है तो सही, परन्तु आसन्न भव्य जीव को सफल हुआ है। आहाहा! पर्याय में-दृष्टि में भासित हुआ है। इससे वह है, वह भासित हुआ है; इसलिए उसे वह सफल हुआ है। है, वैसा भान हो गया है; है, वैसी प्रतीति और ज्ञान में ज्ञेय आ गया है। पूरा परमात्मा ज्ञान की पर्याय में ख्याल में आया है। ***पर्याय में द्रव्य आता नहीं, परन्तु प्रतिभास है।*** है न? प्रतिभासित हुआ है। पर्याय में पूरा निरंजन निराकार भगवान प्रतिभासित हुआ है; इसलिए वह **सफल हुआ है...** निरंजन सदा है परन्तु प्रतिभासित हुआ, इसलिए सफल हुआ है। प्रतिभासित हुए बिना 'वह है' (ऐसा कहे) तो क्या? आहाहा! यह ऐसी बात है। आहा!

सदा निरंजनपने के कारण सफल हुआ है। सफल हुआ है, इसलिए उसने अर्थ निकाला 'सदा निरंजनपना है' ऐसा भासित हुआ है, इसलिए सफल हुआ है। समझ में आया? आहाहा! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञस्वभावी प्रभु निरंजन निराकार होने पर भी प्रतिभासित हुआ, तब उसे होना है—ऐसा जँचा; इसलिए उसे सफल हुआ है। प्रतिभासित हुआ है; इसलिए उसे सफल हुआ है। प्रतिभासित नहीं होता, उसे सफल कहाँ से होगा? आहाहा! जिसके ज्ञान में, पूर्ण स्वरूप है—ऐसा भास हुआ और भान हुआ है, उसे वह सदा निरंजनपना सफल है, उसका फल उसे आया कि सफल है। जिसे वह मानने में आया नहीं, अनुभव में आया नहीं, दृष्टि में आया नहीं, ज्ञेयरूप से ज्ञान में ज्ञात हुआ नहीं, उसे तो सफल नहीं। आहाहा! परन्तु जितना वह ज्ञेय है, उतना ज्ञान

में आया है; इसलिए वह सदा निरंजनपना सफल हो गया है। आहाहा! गजब बात की है न!

जिससे, इस परम पंचमभाव द्वारा अति-आसन्नभव्य जीव को निश्चय-परम-आलोचना के भेदरूप से उत्पन्न होनेवाला 'आलुंछन' नाम सिद्ध होता है,... प्रतिभासित हुआ है, इसलिए आलुंछन सिद्ध होता है। आहाहा! ज्ञान में त्रिकाली निरंजन सदा प्रतिभासित हुआ अर्थात् ज्ञान में भासित हुआ है, पर्याय में प्रतिभासित हुआ; है, ऐसा भासित हुआ, प्रतिभास हुआ है; इसलिए वह उसका सफलपना हुआ है। सफलपना हुआ है, इसलिए **परम-आलोचना के भेदरूप से उत्पन्न होनेवाला 'आलुंछन' नाम सिद्ध होता है,...** यह सफलपना हुआ, यही आलुंछन है, यह आलुंछन है। आहाहा! **कारण कि वह परमभाव समस्त कर्मरूपी विषम-विषवृक्ष के विशाल मूल को उखाड़ देने में समर्थ है।** अर्थात् उसमें है नहीं। **परमभाव समस्त कर्मरूपी विषम-विषवृक्ष के विशाल मूल को उखाड़ देने में समर्थ है।** अर्थात् कि उसमें है ही नहीं। सफल हुआ है और उसमें वे हैं ही नहीं; इसलिए उखाड़ डाला है—ऐसा व्यवहारनय से कहने में आता है। विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२ श्री प्रवचनसार, गाथा १६ प्रवचन नं. १२
दिनांक १८-०१-१९७९

(प्रवचनसार - १६ वीं गाथा चलती है)। अन्तिम शब्द देखते हैं। छह कारक हो गये हैं अन्तिम थोड़ा रह गया है। यहाँ पहले क्या कहा? ***जो यह आत्मा है, वह तो नित्यानन्द प्रभु ध्रुव है। उसकी पर्याय में-परिणति में जो क्रिया होती है, उस क्रिया के षटकारक का यह वर्णन है। वस्तु त्रिकाली आनन्द और ज्ञायक नित्यानन्द प्रभु है, उसमें षट्कारक हैं, वे शक्तिरूप हैं, स्वभावरूप हैं, सत् के सत्वरूप हैं और यह जो मोक्ष के मार्ग की परिणति (है), उस परिणति की क्रिया में षट्कारक हैं। कहने में ऐसा आता है कि आत्मा कर्ता होकर परिणति को करता है। किन्तु वास्तव में तो, जो निर्मल परिणति है, वही स्वयं अपनी पर्याय की कर्ता होती है। आहाहा!*** और अन्य रीति से कहें (तो) '**भूयत्थमस्सिदो खलु**' (समयसार ११ वीं गाथा)।-त्रिकाल के आश्रय से (निर्मल परिणति होती है)। वह पर्याय (स्वयं) कर्ता होकर स्व का लक्ष्य करती है।

'**भूयत्थमस्सिदो खलु**' है (अर्थात् कि) त्रिकाल सच्चिदानन्द प्रभु पूर्णानन्द का और पूर्ण ज्ञान का पिण्ड जो भगवान (आत्मा) है वह तो ध्रुव है, किन्तु उसका लक्ष्य करनेवाली पर्याय है। वह पर्याय जिस (द्रव्य का) लक्ष्य करती है वह, द्रव्य के कारण नहीं (किन्तु) वह स्वयं कर्ता होकर लक्ष्य करती है। अत: पर्याय में जो षट्कारक हैं (उनके कारण लक्ष्य करती है)। उस शुद्ध परिणति की कर्ता परिणति है। आहाहा! यह मार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! उसे व्यवहाररत्नत्रय का कारण (ऐसे) राग के कर्तापने के सम्बन्ध की (जरूरत) है नहीं। आहाहा! (अर्थात्) दया, दान, व्रतादि व्यवहाररत्नत्रय के परिणाम-शुभराग होते हैं तो उनके कारण शुद्ध परिणति होती है - ऐसा स्वरूप नहीं।

आहाहा! भगवान आत्मा पूर्णानन्द का (नाथ), वीतरागमूर्ति प्रभु, उसकी जो परिणति-शुद्ध वीतराग परिणति (वह) होती (तो है) उसके (द्रव्य के) आश्रय से। किन्तु वह आश्रय करनेवाली पर्याय स्वयं स्वतंत्र कर्ता होकर लक्ष-आश्रय करती है। आहाहा! शशीभाई! ऐसा सूक्ष्म है और उस शुद्ध परिणति में (षट्कारक हैं)। क्रिया का, भाई! कहा था न? पंचास्तिकाय की ६२ वीं गाथा में आता है। पुद्गल परिणाम की क्रिया-परिणाम ऐसा शब्द आता है और जीव के लिये (समयसार की) ७३ वीं गाथा में 'शुद्ध' के (बोल में वह) आता है। जो पर्याय के

षट्कारक हैं, उनसे वह (ध्रुव) भिन्न है। अत: उसे (ध्रुव को) शुद्ध कहते हैं। आहाहा! क्या आश्चर्यकारी वस्तु! तत्त्व तो तत्त्व... बहुत गम्भीर है, भगवान! आहाहा! उस निर्मल पर्याय में षट्कारक की परिणति जो यहाँ कहेंगे, उस परिणति से पार ध्रुव (स्वरूप), उससे भिन्न है। आहाहा! तब उसे शुद्ध कहा है न! आहाहा! सूक्ष्म बात है प्रभु! आहाहा!

वह स्वयं अनन्त शक्तिवान पर्याय का तत्त्व है। स्वभाव तो है ही। किन्तु परिणति में भी अनन्त शक्तिवान है, वह कर्ता होकर शुद्ध परिणति को—धर्म को उत्पन्न करता है। (अर्थात्) धर्म की परिणति को, धर्म की परिणति कर्ता होकर उत्पन्न करती है। वह धर्म की परिणति, उस परिणति को प्राप्त करती है-वह उसका कार्य है। आहाहा! वह धर्म की परिणति साधन होने से उस पर्याय का वह साधन है। धर्म की परिणति (प्रगट) करके स्वयं रखती है, वह स्वयं का सम्प्रदान-दान है। आहाहा! धर्म की परिणति (जो हुई), वह परिणति से हुई है-वह परिणति से ही परिणति हुई है-वह उसका अपादान है। सूक्ष्म बात है भाई! और वह धर्म की परिणति, परिणति के आधार से हुई है; इसलिए उसका आधार परिणति है। आहाहा! समझ में आया? भाषा तो सादी है प्रभु! किन्तु मार्ग तो बहुत सूक्ष्म (है)।

आहाहा! त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ ने जिस तत्त्व को देखा। आहाहा! और उसकी (जो) पर्याय को देखा। आहाहा! ऐसा ही भगवान (आत्मा) ज्ञान करनेवाला है। आहाहा! वह शुद्ध षट्कारक की परिणति स्वयं से होती है। उसे परकारक की अपेक्षा नहीं। राग की मन्दता हो तो यह धर्म की परिणति होती है (-ऐसा नहीं)। कर्म कोई मार्ग देता है तो यह धर्म की परिणति होती है - ऐसी कोई अपेक्षा नहीं। आहाहा! वहाँ तक आ गया है। उत्पत्ति का हम फिर से थोड़ा अधिक लेते हैं।

(यहाँ कहते हैं कि) **शुद्ध अनन्तशक्तियुक्त ज्ञानरूप से परिणमित होने के स्वभाव का स्वयं ही आधार होने से अधिकरणता को आत्मसात् करता हुआ-(इस प्रकार) स्वयमेव छह कारकरूप होने से...** लो, है (अन्दर)? यहाँ तक आ गया है। भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु! सच्चिदानन्द ध्रुव प्रभु है। वह उसकी परिणति में षट्कारकरूप स्वयं परिणमित होता है। है? **छह कारकरूप होने से..** वह स्वयंभू है। आहाहा! कठिन कार्य बहुत। **अथवा उत्पत्ति-अपेक्षा से...** जो शुद्ध धर्म की (या) सर्वज्ञ आदि की पर्याय उत्पन्न होती है, वह **द्रव्य-भावभेद से भिन्न घातिकर्मों को दूर करके...** वह भी निमित्त का कथन है। घाति(कर्म को) स्वयं (जीव) दूर करता है वह (निमित्त का कथन है)। (क्योंकि) वह घाति (कर्म का) दूर होने का पर्याय उसके काल में वहाँ होती है। मात्र यह (जीव) निमित्त है, अत: (ऐसा) कहने में आया (है)। अन्य रीति से कहे तो, जो भावघाती हैं, उन्हें दूर करके (-ऐसा जो कहा है) वह भी व्यवहार है। वह आता है न भाई? (समयसार की) ३४वीं गाथा में आता है, (आत्मा) राग का नाश

करनेवाला है, वह भी नाममात्र है। आहाहा! गज़ब बातें, प्रभु! कथन अनेक प्रकार के होते हैं, किन्तु उनमें से सार तत्त्व क्या है, उसका ज्ञान करना चाहिये।

यहाँ पर कहते हैं कि प्रभु आत्मा आनन्द का कन्द प्रभु (है)। अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति आत्मा है। वह अपनी पर्याय में अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय प्रगट करता है, उस अतीन्द्रिय आनन्द की पर्याय के षट्कारक से परिणति उत्पन्न होती है। आहाहा! ***(पंचास्तिकाय की) ६२ वीं गाथा में ऐसा कहा है कि दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध आदि जो विकार परिणाम पर्याय में होते हैं, उन परिणाम का—पर्याय का षट्कारक परिणमन पर्याय में है। विकार के षट्कारक परिणमन में निमित्त की अपेक्षा नहीं (और) द्रव्य-गुण की (भी) अपेक्षा नहीं। ऐसा वह षट्कारक से परिणमित विकार, पर के हेतु से रहित है। अहेतु सत् है। आहाहा! भाई! मार्ग सूक्ष्म है, बापू! धर्म कोई सामान्य बात नहीं भाई! आहाहा!***

जब आत्मा विकारी परिणति के मिथ्यात्व और राग-द्वेष की परिणति में भी षट्कारकरूप परिणति की क्रिया स्वयं (करता है तो फिर निर्मल परिणति की क्या बात) ? उस परिणति में षट्(कारक की) क्रिया है। ध्रुव में नहीं है। और उस परिणति की क्रिया को पर की अपेक्षा नहीं। विकार की क्रिया में भी उस क्रिया के कारक हैं। आहाहा! उसे किसी निमित्त के (सद्भाव) (या) निमित्त के अभाव की अपेक्षा नहीं। निरपेक्ष हैं।

यहाँ पर तो, भगवानआत्मा! आहाहा! शुद्ध आनन्द का कन्द प्रभु! अतीन्द्रिय ज्ञान का सागर! ऐसे उसके स्वभाव की परिणति स्वयं के लक्ष्य से जब होती है, तब वह परिणति स्वयं कर्ता होकर लक्ष्य करती है। और (स्वयं) कर्ता होकर वह परिणति उत्पन्न होती है। वह कर्ता होकर (जो परिणति) उत्पन्न हुई, वह कार्य उसका (है)। (अर्थात्) परिणति का कार्य परिणति (है)। परिणति का साधन परिणति, परिणति करके (स्वयं ने) रखी—परिणति के लिये परिणति हुई है अर्थात् कि सम्प्रदान, परिणति से परिणति हुई है—द्रव्य से नहीं, निमित्त से (भी) नहीं। परिणति के आधार से परिणति हुई है।—ऐसे षट्कारक को भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने सिद्ध किया है। आहाहा! यहाँ तक आया (था)।

(अब कहते हैं कि) **अथवा उत्पत्ति-अपेक्षा से...** (अर्थात्) आत्मा में षट्कारक की परिणति से सर्वज्ञता उत्पन्न होती है। सर्वज्ञ पर्याय भी षट्कारक की परिणति से उत्पन्न होती है। आहाहा! 'स्वयंभू' (अर्थात्) भगवान आत्मा वस्तु(रूप) से स्वयंभू है किन्तु उसकी परिणति में भी स्वयंभू रीत से पर्याय को स्वयं उत्पन्न करता है। आहाहा! वह **उत्पत्ति-अपेक्षा से द्रव्य-भावभेद से भिन्न घातिकर्मों को...** (एक) जड़कर्म है और एक भावघाती(कर्म है)। अर्थात् हीन और विपरीत दशा (है)। उसे **दूर करके...** आहाहा! वह भी उपचार का कथन है। भावघाति की

पर्याय अर्थात हीन और विपरीत (दशा को) दूर करके सर्वज्ञपर्याय उत्पन्न होती है। ऐसा सूक्ष्म है। आहाहा!

इस समय तो यह देश की सेवा करो और यह करो, पर की मदद करो, दूसरे को आहार दो, पानी दो, मदद करो (-ऐसा उपदेश दिया जाता है)। क्या है यह? आहाहा! भाई! वह तेरे स्वभाव में नहीं। कहो, समझ में आया? आहाहा! एक दूसरे के साथ सहयोग करो और एक दूसरे को साथ में रखो, अरे प्रभु! क्या करता है तू यह? आहाहा! तेरी और उनकी (पर की) परिणति भी स्वयं से स्वतन्त्र होती (है)। और तू कहता है कि मैं इसको सुखी कर दूँ और धर्म की प्राप्ति करा दूँ? आहाहा! अब भगवान! रहने दे। ये विद्यालय बनाये, शिविर चलाये... अरे...! प्रभु! क्या है? भाई! आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई! सामनेवाले की जो ज्ञान की या उसकी समझने की परिणति होती है, उस परिणति का कर्ता-कर्म तो उसकी परिणति है। उसे दूसरा समझाता है; इसलिए वहाँ ज्ञान की पर्याय हुई है - ऐसा नहीं। उसकी समझाने की परिणति से—ज्ञान की परिणति के—षट्कारक को निमित्त (वक्ता) की अपेक्षा नहीं। आहाहा! वैसे तो स्वयं के द्रव्य-गुण की भी उसे अपेक्षा नहीं। आहाहा! यह कैसी बात है? शशीभाई! आहाहा!

उपदेशक ऐसा मानता है कि मैं उपदेश देता हूँ और इससे दुनिया धर्म प्राप्त करेगी और समझेगी... प्रभु! तुम यह क्या कर रहे हो? कठिन बात है प्रभु! आठवें अधिकार में तो कहा है, मोक्षमार्गप्रकाशक में नहीं कहा कि भगवान ने उपकार किया है? (ऐसा तो) मोक्षमार्गप्रकाशक में आता है। वह निमित्त की बातें हैं, बापू! आहाहा! किस पर कौन उपकार करे? आहाहा! जो पर की ज्ञान और समकित की पर्याय उत्पन्न होती है, वह भी उसके षट्कारक के कारण उत्पन्न होती है। उसे दूसरा कराये या दूसरे से वह हो, ऐसी अपेक्षा नहीं। प्रभु! अरे भाई! ऐसा मार्ग (है)। आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि **उत्पत्ति-अपेक्षा से द्रव्य-भावभेद से...** नीचे (मूल शास्त्र में उसका अर्थ) है। 'द्रव्य-भावभेद से भिन्न घातिकर्म=द्रव्य और भाव के भेद से घातिकर्म दो प्रकार के हैं, द्रव्यघातिकर्म और भावघातिकर्म।' आहाहा! इस षट्कारक के अपादान में आया न? कि पूर्व पर्याय का नाश होने पर भी ध्रुव के अवलम्बन से स्वयं-परिणति रही है। पूर्व की पर्याय का अभाव होने पर भी द्रव्य के अवलम्बन से स्वयं के कर्ता-कर्म के कारण परिणति रही है-वहाँ उत्पाद है। आहाहा! देवीलालजी! भाई थोड़ा सूक्ष्म है, हों!

यह तो प्रवचनसार है न? (अर्थात्) तीन लोक के नाथ सर्वज्ञदेव की (जो) दिव्यध्वनि है, उसका सार है प्रभु! आहाहा! भगवान तो रह गये बाहर—महाविदेह में, आहाहा! उनको कुन्दकुन्दाचार्य ने स्वयं की परिणति से सुना। आहाहा! वे यहाँ आकर सन्देश देते हैं-भगवान त्रिलोकनाथ परमात्मा ऐसा फरमाते हैं। वह प्रवचनसार है यह। प्र अर्थात् विशेषरूप से वचन - दिव्यध्वनि का सार है। आहाहा!

(कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि) ऐसा भगवान वहाँ कहते थे और हमें भी ऐसा स्वीकार हुआ है और हम कहते हैं कि आहाहा!

आत्मा जब सर्वज्ञ होता है, (तब) उस सर्वज्ञ की पर्याय की उत्पत्ति से द्रव्यघाति कर्म का नाश होता है, वह उस पर्याय का पलटने का काल है, इसलिए (नाश होता है)। आहाहा! और अशुद्धता का भी तब अभाव होने का काल है, इसलिए अभाव होता है। आहाहा! ऐसी अशुद्धता के अभाव की (अपेक्षा का) भी अभाव करके... किन्तु यहाँ तो (अशुद्धता को) दूर करके ऐसा कहा है न? किन्तु उसका अर्थ वह (कि) भगवान आत्मा सर्वज्ञस्वभावी प्रभु (है)। सर्वज्ञस्वभाव के लक्ष्य से (स्वयं से) कर्ता-कर्मरूप से उत्पन्न होने पर उन भावघाति की पर्याय हीन और विपरीत (दशा की)-व्यय होती है और उस परमाणु की घातिकर्म की पर्याय भी उस काल में अकर्मरूप होनेवाली थी (तो) उस(रूप से) होती है। उसने (जीव ने) (जड़)घाति और भावघाति (कर्म का) नाश किया - ऐसा व्यवहार से कहने में आता (है)। आहाहा! कथन शैली में वस्तु को लेना (वह) गजब बात है! कहो, पण्डितजी! ये हमारे पण्डितजी तो बड़े प्रोफेसर हैं। संस्कृत, व्याकरण... ऐसी बात है। आहाहा!

श्रोता : व्यय और उत्पाद पर्याय का अभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका स्वभाव है। स्वयं का स्वयं से होता है - ऐसा सिद्ध करना है न? ओहोहो! यहाँ (अज्ञानी) तो दुनिया का ऐसा कर दे और दुनिया का वैसा कर दे, (ऐसा बोलता है, इसलिए) सभा में ऐसे लोग इकट्ठा होते हैं और लोग खुश होते हैं। एक-दूसरे को मदद करना। इन दिनों में लोग (ऐसा) सूत्र बहुत लगाते हैं। चौदह राजुलोक का चित्र रखकर नीचे लिखते हैं—'परस्पर उपगहो जीवानाम्'—परस्पर उपकार करते हैं। सर्वार्थसिद्धि वचनिका में लिखा है कि उस शब्द का अर्थ ऐसा है कि यहाँ (उपादान में कार्य) होता है, तब एक निमित्त है, उसका ज्ञान कराया है। आहाहा! ऐसा है! वह इन दिनों में बहुत चला है। चौदह राजुलोक का पुतला रखते हैं, अत: लोगों को अच्छा लगता है। आहाहा! हमारा दूसरे लोग उपकार करें तो हमें लाभ होता है (और) हम दूसरों पर उपकार करे तो उसे लाभ होता है (ऐसा मानते हैं)। आहाहा! श्रीपालजी! आहाहा!

यहाँ तो प्रभु ऐसा कहते हैं कि वस्तु का स्वरूप ऐसा है नहीं। आहाहा! उस द्रव्यघातिकर्म के परमाणु का उस समय पर कर्म(रूप) पर्याय छूटकर अकर्मरूप होने का-(कर्मरूप पर्याय का) व्यय होकर अकर्म की पर्यायरूप उत्पन्न होने का-काल है और अशुद्धता का भी उस समय में व्यय (होने का) ही काल (है)। आहाहा! तब उत्पत्ति की अपेक्षा से द्रव्यघाति और भावघाति कर्मों का नाश किया और **स्वयमेव आविर्भूत होने से** आहाहा! (अर्थात्) सर्वज्ञपर्याय स्वयं कर्ता-

कर्म-करण (रूप) होकर अन्दर से उत्पन्न हुई। वह सर्वज्ञ की पर्याय, पर्याय की कर्ता; पर्याय कर्म; पर्याय साधन; पर्याय अपादान; पर्याय सम्प्रदान और पर्याय आधार (है)। आहाहा! ऐसी बात स्वीकारनी (कठिन पड़ती है)।

मुमुक्षु : उसे ज्ञेय की भी अपेक्षा नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञेय की यहाँ बात ही कहाँ है ? वह ज्ञान स्वयं स्वयं से हुआ है (और) वह ज्ञेय को जानता है—ऐसा भी नहीं (क्योंकि) वह तो ज्ञान की पर्याय का स्वयं का स्वपरप्रकाशक स्वभाव है; अतः वह स्वयं के कर्ता-कर्मरूप से उत्पन्न हुई है। आहाहा! लोकालोक है; इसलिए यहाँ सर्वज्ञ की पर्याय उत्पन्न हुई (है) - ऐसा नहीं। आहाहा! और पूर्व की मतिज्ञान आदि की (जो) चार अपूर्ण पर्याय थी, उनका व्यय हुआ (अतः वह) उत्पन्न हुई, ऐसा भी नहीं। स्वयं ही उसका व्यय करके उत्पन्न हुई है। आहाहा! (अपूर्ण पर्याय का) व्यय होने पर भी अपादान के आधार से वह ध्रुव है। (अर्थात्) उस ध्रुव का अपादान वहाँ रहा है। आहाहा! ऐसा **स्वयंभू कहलाता है।**

(वह) स्वयमेव प्रगट होने पर भी... आहाहा! (अज्ञानी) तो कहता है कि वज्रवृषभ - नाराचसंहनन हो तो केवलज्ञान होता है, मनुष्य भव हो तो (केवलज्ञान) होता है। एक पण्डित आया था न कुचामन से ? नहीं आया था पहले ? वह ऐसा कहता था। यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु! तू ऐसा रहने दे भाई! आहाहा! तुम्हारा सर्वज्ञपना जिस (काल में) प्रगट होगा, उस काल में वह पर्याय स्वयं कर्ता-कर्म और साधन(रूप) होकर (-परिणमित होकर प्रगट) होगी। वह कोई निमित्त के साधन के कारण, मनुष्यता के साधन के कारण सर्वज्ञपर्याय हुई (ऐसा नहीं), मनुष्यभव में ही सर्वज्ञपर्याय होती है, अतः (मनुष्य का) भव है इसलिए हुई है (ऐसा नहीं)। वज्रवृषभनाराचसंहनन होता है, वहाँ पर ही सर्वज्ञता होती है, अतः वज्रवृषभनाराचसंहनन के कारण केवलज्ञान हुआ है - ऐसा नहीं। अरे रे...! ऐसी बातें! आहाहा!

यहाँ यह कहा गया है कि है (अन्दर) ? यह कहा, इसलिए ऐसा कहा कि **निश्चय से पर के साथ आत्मा का कारकता का सम्बन्ध नहीं।** आहाहा! उस क्रिया के कारक जिस परिणति में उत्पन्न हुए हैं... उस क्रिया की परिणति के कारक हैं न ? ऐसे आत्मा को क्रिया के कारकता का सम्बन्ध अन्य के साथ नहीं। आहाहा! **कि जिससे शुद्धात्मस्वभाव की प्राप्ति के लिये...** पूर्णानन्द के नाथ को पूर्णानन्द की पर्यायरूप प्राप्ति के लिये **सामग्री (बाह्य साधन) ढूँढ़ने की व्यग्रता...** (अर्थात्) मनुष्यता हो, गुरु हो, सामने केवली हो, वज्रवृषभनाराचसंहनन हो—ऐसी बाह्य सामग्री **ढूँढ़ने की व्यग्रता से जीव (व्यर्थ ही) परतन्त्र होते हैं।** आहाहा!

(कोई ऐसा माने कि) राग बहुत मन्द करूँ तो मुझे सर्वज्ञता होगी। आहाहा! अत्यन्त

कषाय (की मन्दता करूँ)—देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति, उनकी पूजा, उन पंच परमेष्ठी का स्मरण करूँ—तो मुझे सर्वज्ञता होगी। कहते हैं कि वे बाहर की सामग्री को एकत्र मत कर, बापू! आहाहा! कहिये, समझ में आया? ऐसी बात है भाई! जगत से बहुत न्यारी (है)। आहाहा!

(कहते हैं कि) ऐसे **बाह्य साधन ढूँढ़ने की...** (अर्थात्) निमित्त अनुकूल मिले तो मुझे सर्वज्ञता होगी, देव-गुरु मिले तो सर्वज्ञता होगी, बहुत शास्त्र अभ्यास करूँ, जिससे ज्ञान होने पर मुझे सर्वज्ञता होगी-आहाहा! ऐसी बाह्य सामग्री ढूँढ़ने की व्यग्रता-आकुलता से जीव व्यर्थ ही परतन्त्र होते हैं। उन्हें बाह्य सामग्री की कोई आवश्यकता नहीं। ऐसी भारी कठिन बातें, भाई!

मुमुक्षु : परन्तु अब हमें क्या करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह अन्दर में आत्मा तरफ की परिणति करना। वह परिणति षट्कारकरूप परिणमित होती है। इसलिए (उस) परिणति से वह कार्य होता है। आहाहा! निश्चय से (तो) सर्वज्ञपर्याय भी पूर्व की छह कारक की परिणति से भी नहीं होती। (अर्थात्) पूर्व की पर्याय में मोक्षमार्ग की षट्कारक की परिणति है; इसलिए उसके बाद की (पर्याय में) सर्वज्ञ(ता) होती है, ऐसा भी नहीं। (किन्तु) उस समय पर सर्वज्ञ(ता) की पर्याय का उत्पत्ति का वह काल है, उस षट्कारक की परिणति से वह उत्पन्न होती है। चिमनभाई! ऐसा मार्ग है बापू! अरे! भाग्यवान को ही ऐसी बात मिलती है बापू! क्या कहे? अरे रे...! भगवान का विरह हुआ...

मुमुक्षु : आपकी कृपा से तो होता है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : किसी की कृपा काम नहीं आती भाई! आहाहा! भगवान वहाँ-महाविदेह में रह गये और ऐसी बातें यहाँ रह गयी। आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं कि तेरी सर्वज्ञ की पर्याय की प्राप्ति के लिये मेरी अपेक्षा की तुझे आवश्यकता नहीं। आहाहा! मेरी तो (आवश्यकता) नहीं किन्तु तेरी पूर्व की जो मोक्षमार्ग की पर्याय है, उसकी भी केवलज्ञान होने में अपेक्षा नहीं। आहाहा! रसिकभाई! ऐसा है। भगवान! तेरा स्वरूप स्वतन्त्र है प्रभु! आहाहा!

श्रोता : रसिकभाई को सोनगढ़ आने की आवश्यकता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आता है न? यह तो कहा था न कि निमित्त से नहीं ओता। केशवलालभाई वढ़वाण रहते हैं न? उनसे किसी ने पूछा कि तुम निमित्त से (कार्य होता है ऐसा) मानते नहीं तो वहाँ (सोनगढ़) जाते हो किसलिए? (तो इन्होंने कहा) निमित्त से होता नहीं – ऐसा दृढ़ करने के लिये जाते हैं। कैसा स्वतन्त्रता का ढिंढ़ोरा!!! आहाहा!

भावार्थ : '**कर्ता**', '**कर्म**'-कार्य, '**करण**'-साधन, '**सम्प्रदान**'-रखना (अर्थात्) जिसके लिये किया जाता है वह, '**अपादान**' – जिसमें से किया जाता है, 'और **अधिकरण**'- जिसके

आधार से (किया जाता है वह)। ***'नामक छह कारक हैं।' किन्तु ये छह कारक पर्याय के हैं। द्रव्य के नहीं। (क्योंकि) द्रव्य के (कारक) तो ध्रुव(रूप से) रहे हैं। ये परिणमन के षट्कारक हैं। अर्थात् जो परिणति का कर्ता है, वह कर्ता भी वह परिणति है। द्रव्य को उसका कर्ता कहना, वह तो निमित्त का कथन है।*** समझ में आया? और अन्य जगह भी आता है न? (कि) विकार के परिणाम में जीव निमित्त है वैसे निर्मल परिणति में भी भगवान निमित्त है। निर्मल परिणाम के उपादान के कारक स्वतन्त्र है। जिस प्रकार विकारी परिणाम में भी (पर)द्रव्य मात्र निमित्त है अर्थात् पर(द्रव्य) से (होते) नहीं। वैसे निर्मल परिणति को-सम्यग्दर्शन की पर्याय को (भी) प्रभु! आहाहा! स्व(द्रव्य) के निमित्त (की) अपेक्षा नहीं। द्रव्य निमित्त कहलाता है। (किन्तु) उपादान नहीं। आहाहा! वह ध्रुव उपादान है।

मुमुक्षु : निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध तो पर्याय में होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय को ही सम्बन्ध होता है न! अन्य किसे सम्बन्ध होता है? द्रव्य को कोई सम्बन्ध है ही नहीं। द्रव्य तो है सो है-वैसा का वैसा ध्रुव (है)। किन्तु निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध में भी, उस निमित्त के कारण नैमित्तिक(पर्याय) हुई है - ऐसा नहीं। आहाहा! सर्वज्ञता है, तो लोकालोक है तो सर्वज्ञता होती है - ऐसा नहीं है। आहाहा!

वह बड़ी चर्चा ८३ की साल में दामनगर में हुई थी। वीरजीभाई कहे कि लोकालोक के कारण ज्ञान नहीं; दामोदरसेठ कहे कि लोकालोक के कारण ज्ञान है।-वह प्रश्न हुआ। वे लोग ऊपर बैठे थे, मैं नीचे था। वह (प्रश्न) लेकर नीचे आये कि इसमें क्या है? मैंने कहा कि, लोकालोक के कारण ज्ञान की पर्याय है - ऐसा बिलकुल नहीं। ज्ञान की पर्याय, पर्याय के कारण स्वतन्त्र उत्पन्न हुई है। आहाहा! (किन्तु वह) लोकालोक को जानती है न? लोकालोक को जानती है - ऐसा कहना वह असद्भूत व्यवहार है। (वास्तव में तो) स्वयं से पर्याय स्वयं को जानती है। वह परिणति को जानना भाई! अपने आ गया न? कि ज्ञान की जो परिणति है, वह स्वयं के द्रव्य-गुण को और पर के द्रव्य-गुण-पर्याय को स्वयं जानती है। किन्तु परद्रव्य-गुण (पर्याय) है, अत: परिणति पर को जानती है - ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग सुनना कठिन पड़ता है। अरे...! मार्ग तो कोई मार्ग है! आहाहा! (किन्तु) लोग कहाँ-कहाँ मानकर बैठे हैं? आहाहा!

ये क्रिया के कारक हैं। वह पहले एक बार बात हुई थी कि ये द्रव्य-गुण के कारक नहीं। ये परिणति के कारक हैं। द्रव्य-गुण के तो ध्रुवकारक हैं। (वे तो) ध्रुवरूप पड़े हैं। उनका परिणमना या बदलना नहीं होता। समझ में आया? आहाहा! अरे प्रभु! लोगों को यह कठिन लगता है और ऐसा लगता है कि यह तो निश्चयाभास जैसा है। अरे...! व्यवहार को तो उड़ा ही देते हैं। व्यवहार को तो रखते हैं, किन्तु उसका अर्थ यह है (कि) व्यवहार से होता है - ऐसा

नहीं। निमित्त को निमित्तरूप से स्वीकारते हैं। निमित्त की षट्कारक परिणति निमित्त में है। इसकी (उपादान की) षट्कारक परिणति स्वयं में है। दोनों वस्तु हैं। आहाहा!

उन छह कारक की क्रिया अर्थात् परिणति-अवस्था। उनके छह कारक के (कर्ता, कर्म आदि) नाम हैं। अब उसका स्पष्टीकरण-आहाहा! **जो स्वतन्त्रतया-स्वाधीनता से करता है वह कर्ता है;...** (अर्थात्) पर्याय स्वयं स्वाधीनता से (करती है)। (अर्थात्) स्वाधीनता से वह पर्याय की कर्ता पर्याय (है)। उसे द्रव्य का भी आश्रय नहीं अर्थात् अवलम्बन नहीं। आहाहा! (पर्याय) अवलम्बन लेती है किन्तु वह अवलम्बन स्वयं कर्ता होकर करती है। द्रव्य है, इसलिए उसे अवलम्बन करना पड़ता है (-ऐसा नहीं)। आहाहा! वीतराग... वीतराग मार्ग बापू! आहाहा! जैन में जन्म लिया है, उसे भी खबर नहीं तो अन्य के पास तो यह बात है ही कहाँ? यह कहीं पर है ही कहाँ? आहाहा!

जो स्वतन्त्रतया-स्वाधीनता से करता है, वह कर्ता है। स्व+आधीन (अर्थात्) पर्याय (जो) होती है, (वह) स्वाधीनता से होती है। अत: निर्मलपर्याय कर्ता (है)। **कर्ता जिसे प्राप्त करता है, वह कर्म है;...** स्वतन्त्र(तया) करता है, वह कर्ता (है) और कर्ता का इष्ट है, वह कर्म (है)। जड़ को भले ही इष्ट-अनिष्टपना नहीं, (तथापि) उसकी परिणति का (जो) कार्य है, वह परिणति का कर्म है। परमाणु की पर्याय में भी (षट्कारक हैं)। आहाहा!

यह अँगुली इस प्रकार हिलती है, वह उसकी पर्याय है। वह पर्याय के षट्कारक के कारण होता है; आत्मा के कारण नहीं (और) उसके परमाणु के द्रव्य-गुण के कारण भी नहीं। आहाहा! वह हिलनेवाली पर्याय स्वयं कर्ता और वह पर्याय (उसका) स्वयं का कार्य (है)। (इस प्रकार) एक समय में षट्कारक की परिणति जड़ में और चैतन्य में उत्पन्न होती हैं। आहाहा! इसलिए प्रवचनसारजी की १०१ गाथा में कहा न? (कि) उत्पाद को व्यय की अपेक्षा नहीं; उत्पाद को ध्रुव की अपेक्षा नहीं। आहाहा!

यहाँ कहा कि उत्पत्ति (अपेक्षा से) द्रव्यकर्म का और भावकर्म का नाश करके (केवलज्ञान) उत्पन्न होता है। वह तो नाश होता है, इसलिए (उपचार) करके (कहा है)। ***आहाहा! जिस समय पर जो पर्याय उत्पन्न होती है, उस उत्पाद को उसके ध्रुव की अपेक्षा नहीं, उसे व्यय की अपेक्षा नहीं। जो व्यय होता है, उसे उत्पाद की (या) ध्रुव की अपेक्षा नहीं और ध्रुव का (जो) अस्तित्व (है) उसे उत्पाद-व्यय की अपेक्षा नहीं। वह तो स्वयं के कारण स्वत: रहता है। आहाहा!*** ऐसी बातें कठिन पड़ती हैं। शशीभाई! क्या करें? बापू! मार्ग तो यह है, भाई! लोगों ने अन्य-अन्य समझकर बिगाड़ दिया, इसलिए सत्य कोई अन्यथा हो जाये? आहाहा! यह तो सत् है।

पर्याय भी सत् है। वह षट्कारक से परिणमित होती है; वह पर के हेतुरहित परिणमित होती है। वह अहेतुक सत् है। आहाहा! सामान्य मनुष्य को-अनजान मनुष्य को तो ऐसा लगे कि, ये क्या कहते हैं ? कुछ समझ में आये नहीं, अत: यह किस देश की भाषा-बात है (-ऐसा लगता है।) आहाहा! बापू! तेरे घर की बात है भाई! बात है तेरे घर की है। (तथापि) बात, बात में है (और) परिणाम-परिणति, पर्याय में है। आहाहा!

(कहते हैं कि) **कर्ता जिसे प्राप्त करता है वह कर्म** - प्राप्य। अर्थात् उस समय वही पर्याय है, उसे कर्ता प्राप्त करता है। आहाहा! पर्याय हों! पर्याय, पर्याय को प्राप्त करती है। आहाहा! **साधकतम अर्थात् उत्कृष्ट साधन को करण कहते हैं...** वह पर्याय ही स्वयं साधन है। आहाहा! एक समय की पर्याय में षट्भाग (षट्कारक) ? अरे...! एक समय की पर्याय में तो अनन्त अविभागप्रतिच्छेद हैं। आहाहा!

श्रोता : उनमें फिर अनन्त सप्तभंगी।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त अनन्त है, बापू! आहाहा! तीन काल-तीन लोक, अनन्त केवली को जाने—ऐसी एक सर्वज्ञ की एक समय की पर्याय में कितनी ताकत हुई ? आहाहा! उस पर्याय की कर्ता पर्याय, पर्याय का कार्य पर्याय, उस पर्याय का साधन पर्याय (है)। लोकालोक के कारण वह (सर्वज्ञता है) ऐसा नहीं। वज्रवृषभनाराचसंहनन के कारण (केवलज्ञान) हुआ है - ऐसा नहीं; मनुष्यता के कारण सर्वज्ञता हुई है - ऐसा नहीं। आहाहा! यह तो अरिहन्त की दशा क्या है, उसकी बात है। आहाहा!

(कहते हैं कि) **साधकतम (अर्थात्) उत्कृष्ट साधन को करण कहते हैं** 'तम' है न 'तम'! अर्थात् (उत्कृष्ट कहा है)। धर्म की निर्मल परिणति उत्पन्न होने में वह पर्याय स्वयं उत्कृष्ट साधन है। आहाहा! भगवान की भक्ति की, बहुत स्तुति की और वज्रवृषभनाराचसंहनन मिला, इसलिए वह परिणति हुई है - ऐसा नहीं। ऐसा उपदेश किस घर का है ? बापू! तेरे घर की बात ऐसी है भाई! द्रव्य से तो तू त्रिकाल रहा है, उसे किसी उत्पाद-व्यय की अपेक्षा नहीं। किन्तु (तेरे) उत्पाद-व्यय को ध्रुव की अपेक्षा नहीं। आहाहा! वह (बात) तो आगे १०१ (गाथा में) आयेगी।

(यहाँ कहते हैं कि) **'उत्कृष्ट साधन को करण कहते हैं'** सम्यग्दर्शन की पर्याय में भी साधन स्वयं-स्वयं की पर्याय है। वहाँ द्रव्य-गुण भी साधन नहीं। आहाहा! वैसे केवलज्ञान की पर्याय में भी उत्कृष्ट साधन पर्याय है, द्रव्य-गुण भी नहीं। (क्योंकि) द्रव्य-गुण तो ध्रुव हैं, पर्याय से भिन्न हैं। भिन्न की अपेक्षा भिन्न को नहीं। पर्याय, द्रव्य से और गुण से भिन्न है न ? आहाहा! ऐसा है भाई! आहाहा! कुछ नहीं समझ में आये (तो) रात्रि में पूछना। यह तो बहुत अलौकिक बातें हैं भाई!

मुमुक्षु : रात्रि में पूछे जब तो आपको हमारी पोल का पता चल जाये!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह थोड़ी सूक्ष्म बात है न बापू! भगवान! तेरी बात सूक्ष्म बहुत प्रभु! न समझ में आता हो और समझने के लिये पूछने में कोई (छोटापन नहीं है)। अरे रे! ऐसा सुनने का जिसे योग भी नहीं, उसकी क्या दशा? आहाहा!

अब (कहते हैं कि) **कर्म जिसे दिया जाता है...** वह पर्याय हुई, (वह) जिसके लिये हुई थी (अर्थात्) वह जिसे देने के लिये हुई थी (अर्थात्) पर्याय, पर्याय को दी जाती है (वह सम्प्रदान है)। आहाहा! **अथवा जिसके लिये किया जाता है, वह सम्प्रदान है;...** है न स्पष्टीकरण? **कर्म जिसे दिया जाता है** (अर्थात्) पर्याय, पर्याय को दी जाती है। **अथवा जिसके लिये किया जाता है** (अर्थात्) पर्याय के लिये पर्याय करने में आती है। आहाहा! ये कोई सोनगढ़ के सूत्र नहीं। (कोई) कहता है कि सोनगढ़ के अर्थ ऐसे हैं! किन्तु यह कहाँ (सोनगढ़ का है?) अरे... भगवान! आहाहा! सत्य मार्ग सुनने में नहीं आये तो वह कब विचार करे? कब रुचि करे और कब परिणमन करे? आहाहा! वस्तु दुर्लभ हो गयी! तथापि स्वरूप है, वह सुलभ है। आहाहा! (क्योंकि) है उसकी परिणति प्रगट करना है न? आहाहा!

सम्प्रदान में दो बात हुई। (१) 'कार्य (कर्म) जिसे दिया जाता है।' अर्थात् पर्याय जिसे दी जाती है-पर्याय, पर्याय को दी जाती (है)। (२) 'अथवा जिसके लिये किया जाता है'— पर्याय के लिये पर्याय करने में आती (है)। आहाहा! समझ में आया? इसका नाम सम्प्रदान है। सम्प्रदान के दो अर्थ किये। (१) जिसे दिया जाता है-पर्याय, पर्याय को दी जाती (है)। इसलिए पर्याय सम्प्रदान (है)। (२) जिसके लिये किया जाता है-पर्याय के लिये पर्याय करने में आती है। आहाहा! (अत: वह पर्याय) सम्प्रदान है।

(अब कहते हैं कि) **जिसमें से कर्म किया जाता है,...** जिसमें से कार्य किया जाता है, **वह ध्रुव वस्तु अपादान है,...** पर्याय का आश्रय निमित्त से ध्रुव है। **ध्रुव वस्तु, वह अपादान है।** पर्याय का आश्रय निमित्त से ध्रुव है। देखा? ध्रुव से (पर्याय) होती है (-ऐसा कहा)। उत्पाद-पर्याय होती है तो पर्याय से। किन्तु (वह) व्यय होकर होती है। ध्रुव के कारण होती है - ऐसा कहना भी व्यवहार है। आहाहा! **ध्रुव वस्तु अपादान है।** यहाँ ध्रुव को अपादान कहा है। है तो क्रिया के-परिणति के षट्कारक। किन्तु परिणति बदलने पर (भी) ध्रुव का आश्रय है, बदलने पर भी-व्यय होने पर भी उसका (ध्रुव का) आश्रय है; इसलिए ध्रुव से हुई - ऐसा कहने में आता है। आहाहा!

मुमुक्षु : जो समय नियत है, उस समय पर पर्याय हुई है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय निश्चित ही है। किन्तु बदलकर हुई (है)। (तो) बदलकर

हुई, तब रही किस प्रकार ? कि ध्रुव है, इसलिए रही है। (निश्चय से) रही है तो स्वयं के कारण। (पर्याय) चली गई और (वह) रही किस प्रकार ? एक (पर्याय) चली जाती है और दूसरी रहती है, वह किस प्रकार ? कि ध्रुव वस्तु के लक्ष्य से वह रहती है-ऐसा कहते हैं। यहाँ लक्ष्य आत्मा का है, इसलिए आत्मा की बात है, किन्तु जड़ में भी, ऐसा है। परिणति (जब) बदलती है, वहाँ ध्रुवत्व है। इसलिए उत्पत्ति तो वहाँ अपादान के कारण रहती है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म भाई! ऐसा तो पूर्वजों ने भी कभी सुना नहीं था।

हमारे पिताजी सुबह में दातून करते थे और जयनारायण बोलते थे। जैन थे किन्तु कुछ खबर नहीं थी न! वे भी बोलते थे 'पारसनाथ परचो पूरे (कमी को पूरा करे),' क्या बोलते थे और ? 'शान्तिनाथ शाता करे' बाद में कोई दो-तीन बोलते थे सही! छोटी उम्र में सुनते थे। सीधे आदमी थे बेचारे! अरे रे... ! हमारे गांडाभाई थे, फावाभाई के पिता, वे कोई सत्यनारायण की कथा बैठाते थे। स्थानकवासी जैन सत्यनारायण की कथा बैठाये। वह खबर है हमको। तब पालेज में थे, आहाहा! सत्यनारायण तो यह स्वयं भगवान (आत्मा) है। उसकी कथा की परिणति है, वह सत्यनारायण की कथा है। (यह) वाणी नहीं।

सत् चिदानन्द प्रभु (आत्मा की) परिणति (होना), वह सत्य नारायण की कथा है। अब इसकी तो खबर नहीं और जो सुनने के लिये आये हो, उन्हें ऐसा कहे कि, प्रसाद लिये बिना जायेगा, उसे नुकसान होगा! वह सत्यनारायण की कथा में आता है-अमुक प्रसाद लिये बिना गया; इसलिए उसका जहाज डूब गया! सब गप्पे मारी है! वे बेचारे सीधे लोग, उन्हें कोई खबर नहीं! आहाहा! उसका अर्थ यह कि कथा सुननेवाले आखिर तक बैठे रहे, इसलिए यह झूठी शर्त लगा दी कि प्रसाद लिये बिना जाये तो नुकसान हो जाये! देखो! अमुक के जहाज को नुकसान हुआ-ऐसा आता है। सत्यनारायण की कथा में आता है। आता है न! पता है। सुनी है न! आहाहा!

यहाँ सच्चिदानन्द प्रभु आत्मा सत्नारायण (है)। जो नर से नारायण हो सके, ऐसी उसमें ताकत है। आहाहा! नर अर्थात् मनुष्यगति का उदय। आहाहा! उसका अभाव करके नारायण अर्थात् सर्वज्ञपर्याय उत्पन्न करे, ऐसी शक्तिवान (वह) स्वतः तत्त्व है। आहाहा! कहो, समझ में आया ? ऐसी बात (है)। एक घण्टे में कितनी बातें (आयें)! आहाहा!

(अब कहते हैं कि) **जिसमें अर्थात् जिसके आधार से कर्म किया जाता है, वह अधिकरण है।** कर्म अर्थात् कार्य। ***पर्याय में पर्याय का कार्य पर्याय के आधार से होता है; द्रव्य के आधार से नहीं, गुण के आधार से नहीं, (और) निमित्त के आधार से नहीं। आहाहा!***

यह छह कारक व्यवहार और निश्चय के भेद से दो प्रकार के हैं। अब छह प्रकार के कारक व्यवहार से-झूठ से भी है और निश्चय से-सत्य से भी है (ऐसा कहते हैं)। **जहाँ पर के**

निमित्त से कार्य की सिद्धि कहलाती है, वहाँ व्यवहार कारक हैं... घड़ा कुम्हार ने किया—ऐसा कहने में आता है, वह व्यवहार है-वह झूठ है। आहाहा! **और जहाँ अपने ही उपादान के कारण से कार्य की सिद्धि कही जाती है, वहाँ निश्चय कारक हैं।** आहाहा! ऐसा स्पष्ट कथन (है)। किन्तु कौन सुनता है ? (लोग) बाहर के क्रियाकाण्ड में रुक गये हैं और हो गया... वस्तु वस्तुरूप से रह गई (और) जिन्दगी चली (जाती है)। आहाहा!

अब व्यवहार के कारक बताते हैं। **व्यवहार कारकों का दृष्टान्त इस प्रकार है - कुम्हार कर्ता है; घड़ा कर्म है;...** वे व्यवहार के झूठे कारक हैं, असत्य कारक हैं। आहाहा! **कुम्हार कर्ता है; घड़ा कर्म है; दण्ड, चक्र, चीवर इत्यादि करण हैं;...** वे झूठे साधन कहने में आते हैं। आहाहा! **कुम्हार जल भरनेवाले के लिये घड़ा बनाता है, इसलिए जल भरनेवाला सम्प्रदान है;...** वह झूठ सम्प्रदान है। (क्योंकि) पर के लिये (करता है-ऐसा) कहा न ? (इसलिए) **टोकरी में से मिट्टी लेकर घड़ा बनाता है, इसलिए टोकरी अपादान है,...**- आहाहा! वह झूठ है। 'पृथ्वी के आधार पर घड़ा बनाता है'—पृथ्वी नीचे है तो घड़ा बनता है। **इसलिए पृथ्वी अधिकरण है।** - (वह भी झूठ है)।

यहाँ सभी कारक भिन्न-भिन्न हैं। (अर्थात्) भिन्न चीज़ कर्ता, भिन्न कार्य, आधार भिन्न, अपादान भिन्न। **अन्य कर्ता है; अन्य कर्म है;...** (अर्थात्) कुम्हार कर्ता है (और) घड़ा कर्म है। **अन्य करण है;...** साधन भिन्न है। **अन्य सम्प्रदानः** (है)। अन्य के लिये (वह करता है)। **अन्य अपादान** (है)। किसी अन्य से होना। **अन्य अधिकरण है।** किसी अन्य के आधार से (करता है)। **परमार्थतः कोई द्रव्य किसी का कर्ता-हर्ता नहीं हो सकता,...** आहाहा! पर की पर्याय को अन्य द्रव्य कर सकता नहीं। सामनेवाले को (श्रोता को) जो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है, उसमें शब्द और वाणी-उपदेश के कारण वहाँ (ज्ञान) होता है - ऐसा नहीं। आहाहा! किन्तु पहले ऐसा ज्ञान नहीं था और बाद में (ज्ञान) हुआ तो इन शब्द से हुआ या नहीं ? (तो कहते हैं) वह ज्ञान जो हुआ, उस पर्याय का कर्ता पर्याय है। शब्द से वह नवीन ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं। आहाहा! बहुत गूढ़ बात भाई! नवरंगभाई! ठीक-बराबर समय में यहाँ हो। है न, लड़का है या नहीं ? ठीक! (बाहर के) अभ्यास से ये सब अन्य प्रकार हैं। आहाहा! ऐसा है।

(अब कहते हैं कि) **कोई द्रव्य किसी का कर्ता-हर्ता नहीं हो सकता।** (अन्य की) पर्याय का, हों! (अन्य) द्रव्य का ऐसा नहीं। कोई द्रव्य की पर्याय, किसी द्रव्य की पर्याय की कर्ता-हर्ता है नहीं। (तब) द्रव्य को तो क्या करे ? द्रव्य तो है। किसी द्रव्य की पर्याय किसी द्रव्य की (पर्याय का) कर्ता-हर्ता हो सकती नहीं। घड़े को कुम्हार बना सकता नहीं। रोटी को स्त्री

पका सकती नहीं। आहाहा! बढ़ई लकड़ी के बर्तन बना सकता नहीं। आहाहा! स्त्री घड़े में पानी भर सकती नहीं। घड़े को स्त्री उठा सकती नहीं।

मुमुक्षु : पूरा व्यवहार झूठ है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! सभी व्यवहार गप-झूठ हैं। आहाहा!

(यहाँ कहते हैं कि) परमार्थतः किसी द्रव्य की पर्याय किसी द्रव्य की (पर्याय की) कर्ता-हर्ता हो सकती नहीं। करना-होना तो पर्याय में है या नहीं ? **इसलिए यह छह व्यवहार कारक असत्य हैं।** झूठ हैं। झूठ हैं (अर्थात्) झूठ भाषा से कहने में आते हैं। आहाहा! इसके पिता ने इस लड़के को पढ़ाकर बड़ा किया, (ऐसा कहना) वह झूठ है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! शिक्षक ने उसे पढ़ाया, (वह) झूठ है। रोटी बनाते समय (स्त्री) आटे को गूंथती है, वह बात झूठ है - ऐसा कहते हैं। बिना आटा गूंथे कोई रोटी नहीं बनती। (आटे को) ठीकरूप से गूंथने पर रोटी होती है न ? तो कहते हैं कि आटे की पर्याय को स्त्री गूंथ सकती नहीं। आहाहा! बढ़ई बाँस को उठाकर बाँस को छील सकता नहीं, उठा (भी) सकता नहीं। आहाहा! ऐसा है।

(कहते हैं कि), (यह व्यवहार छह) कारक झूठे हैं। **'वे मात्र उपचरितअसद्भूत - व्यवहारनय से कहे जाते हैं।'** देखा ? आहाहा! वह तो उपचार कहिये या व्यवहार कहिये-(एक ही है)। आरोपित असद्भूतव्यवहार है। (अर्थात्) झूठ व्यवहार है। **निश्चय से किसी द्रव्य का अन्य द्रव्य के साथ कारणता का सम्बन्ध है ही नहीं।**

विशेष कहेंगे। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

३ श्री समयसार, गाथा १८१ से १८३ प्रवचन नं. २६४
दिनांक ०२-०७-१९६७

यह समयसार, 'संवर अधिकार' (चलता है, इसकी) पहली गाथा-१८१-१८२-१८३ है। इसकी टीका। चार लाईन हुई है। थोड़ी फिर से लेते हैं, देखो! अर्थात् यह शुरुआत से (लेते हैं)। ये सब नये हैं न! नटुभाई और ये।

यह 'संवर अधिकार' है। संवर अर्थात् आत्मा में शुद्ध आनन्द की, ज्ञान की दशा का होना, इसका नाम संवर है। संवर अर्थात् धर्म। धर्म अर्थात् आत्मा में पुण्य-पाप के राग से भिन्न और अपने स्वभाव के आश्रय से शुद्ध आनन्द और ज्ञान की दशा का होना, उसे यहाँ संवर और धर्म कहते हैं। यह संवर की व्याख्या है।

मुमुक्षु : अपने शरीर सहित लेना न अपने को?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर कहाँ था? शरीर कैसा, राग कैसा? यहाँ तो राग भी इसमें (-आत्मा में) नहीं है। शरीर इसका नहीं, परन्तु पुण्य-पाप के, दया, दान के और जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव भी आत्मा में नहीं है; उस भाव का आधार आत्मा नहीं है। उस भाव के कारण से आत्मा को बन्ध हो, ऐसा है नहीं। कहो, समझ में आया?

वास्तव में एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है... पहला शब्द है। तुम्हारी हिन्दी में है। टीका की पहली लाईन। **वास्तव में एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है...** एक आत्मा का दूसरा आत्मा, आत्मा का नहीं है; एक आत्मा का दूसरा परमाणु नहीं है; एक परमाणु का आत्मा नहीं है; एक परमाणु का दूसरा परमाणु नहीं है। कहो, समझ में आया? **वास्तव में एक वस्तु...** 'वस्तु' शब्द क्यों लिया है? कि उसमें स्वरूप-प्रतिष्ठा लेंगे। उसमें स्वभाव है। उसमें ज्ञान-आनन्द है। यहाँ आत्मा की बात है। प्रत्येक वस्तु (ऐसी है) परन्तु (यहाँ) आत्मा की (बात लेते हैं)। उसमें ज्ञान, आनन्द, शान्ति, प्रभुता आदि जो गुण हैं, वे आत्मा में बसे हैं और वह आत्मा का स्वरूप है। इसलिए प्रत्येक वस्तु दूसरी वस्तु की नहीं। एक बात।

(अर्थात् एक वस्तु दूसरी वस्तु के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखती) क्योंकि... क्षेत्र भिन्न बताते हैं। पहले वस्तु कहीं, अब **दोनों के प्रदेश भिन्न है...** दोनों का क्षेत्र भिन्न है। वस्तु भिन्न है

तो उसका क्षेत्र भिन्न है। आहा... ! क्या कहते हैं ? कि यह आत्मा स्वयं वस्तु है, वह दूसरी चीज़ की नहीं और दूसरी चीज़ इसकी नहीं। - एक बात। और ये राग-द्वेष, वे आत्मा के नहीं। दया-दान, काम-क्रोध, पुण्य-पाप के भाव, वे आत्मा के नहीं और उन पुण्य-पाप के भाव का जो क्षेत्र है, वह क्षेत्र इस आत्मा का नहीं।

मुमुक्षु : वस्तु की बात चलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्तु के साथ क्षेत्र और क्षेत्र के साथ भाव और भाव के साथ काल, ऐसे चार की (बात) चलती है। आहा! सूक्ष्म बात है, भाई! यह अधिकार (ऐसा है)। समझ में आया ?

भगवान आत्मा वस्तु है। वह वस्तु अर्थात् यह शरीर, कर्म-यह नहीं; पुण्य-पाप के विकल्प, वे स्वयं वस्तु नहीं, वह आत्मा नहीं। समझ में आया ? तो कहते हैं कि **एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं...** पहले 'नहीं' से (-नास्ति से) कहेंगे, फिर अस्ति कहेंगे। आधार-आधेय सम्बन्ध में सम्बन्ध बाद में कहेंगे। ऐसे दोनों के प्रदेश—दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध का जो राग उठता है, उस राग का क्षेत्र, अंश, प्रदेश, भाग अलग है और भगवान आत्मा के प्रदेश शुद्ध चैतन्य, (वे) राग के प्रदेश से भिन्न है। फिर से लेते हैं। ऐ... सुमनभाई!

यह वस्तु है न ? भगवान आत्मा। कहते हैं कि जो अग्नि है न अग्नि, उसमें धुआँ उठता है न धुआँ ? उस धुएँ का भाग, प्रदेश, क्षेत्र अलग है और अग्नि का क्षेत्र अलग है। वैसे चैतन्य ज्ञायकमूर्ति भगवान का क्षेत्र अत्यन्त पवित्र है और पुण्य व पाप के विकल्प उठते हैं, उनका क्षेत्र मलिन है; वह आत्मा के प्रदेश से भिन्न क्षेत्र है। सूक्ष्म बात है, भाई! वह अपवित्र क्षेत्र अलग और यह (-आत्मा का) पवित्र क्षेत्र अलग। शशीभाई!

वस्तु है न वस्तु। भगवान आत्मा वस्तु है न ? वस्तु है तो उसके अपने ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि भाव बसे हुए वस्तु है। वह वस्तु अन्य की नहीं है। अन्य की नहीं अर्थात् कि शुभ-अशुभ विकल्प—दया, दान, व्रत, भक्ति का विकल्प—राग है, उसकी यह चीज़ नहीं; तथा राग इसकी चीज़ नहीं—राग, आत्मा की चीज़ नहीं; आत्मा, राग की चीज़ नहीं। पवैयाजी! सूक्ष्म बात है। आहाहा! समझ में आया ?

इसी तरह दोनों का क्षेत्र एक नहीं। विकल्प का धुआँ उठता है, उस क्षेत्र का अंश ही यहाँ तो आत्मा के प्रदेश से भिन्न गिनने में आया है। आहाहा! प्रवीणभाई! यह वस्तु की स्थिति का वर्णन किया है और ऐसी वस्तु सर्वज्ञ के सिवाय कहीं होती नहीं और वस्तु का ऐसा स्वभाव है—ऐसा वर्णन करना है। इसलिए क्षेत्र शामिल लेकर, वस्तु को तो लिया; परन्तु क्षेत्र-भाग पाड़ा, क्योंकि आत्मा असंख्य प्रदेशी क्षेत्र है। वह असंख्य प्रदेशी क्षेत्र जो निर्मल-शुद्ध है, वह आत्मा का क्षेत्र है और जितने पुण्य-पाप के विकल्प उठते हैं, वह मलिन क्षेत्र है; वह आत्मा का क्षेत्र

नहीं, वह विकार का क्षेत्र है, आस्रवतत्त्व का क्षेत्र है। वह आस्रवतत्त्व के अंश का भाग है; भगवान आत्मा का वह भाग नहीं है। आहाहा! जयन्तीभाई!

भगवान आत्मा... ! यहाँ तो उसकी वर्तमान दशा का बाद में वर्णन करेंगे। उस वर्तमान दशा के आधार से आत्मा है, क्योंकि उससे ज्ञात होता है। समझ में आया ? भगवान आत्मा, यह राग और पुण्य का विकल्प-जिसे व्यवहार कहते हैं, उस व्यवहार के दया, दान, व्यवहार देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प, शास्त्र के ज्ञान का भाग—ये तीनों आत्मा से भिन्न हैं और आत्मा के क्षेत्र से भी ये भिन्न हैं, यह आत्मा का स्वरूप नहीं है। समझ में आया ?

भगवान चैतन्यबिम्ब चैतन्य का पुंज पवित्र धाम है। इस पवित्रधाम वस्तु का क्षेत्र भी पवित्र वस्तु, इसका क्षेत्र ही यह है। पुण्य-पाप का क्षेत्र, उसके अंश, प्रदेश, भाग, अंश, मलिनता का जो अंश है, वह सब क्षेत्र ही भिन्न है। आहा! कहो, समझ में आया ? यह तो अपने वहाँ वाँचन हो गया है। ऐ..ई! अहमदाबाद में अनेक हजारों लोगों में (वाँचन हो गया है) और वहाँ हिम्मतनगर में वाँचन हो गया है। मार्ग यह है। सुनो, पहले निर्णय करो। समझ में आया ?

उन्हें सत्ता की एकता नहीं होने के कारण, दोनों की सत्ता अर्थात् अस्तित्व की एकपने की प्राप्ति नहीं होने के कारण, एक चीज़ को दूसरी चीज़ अर्थात् पुण्य-पाप, विकल्प आदि। इन पुण्य-पाप का क्षेत्र वस्तु, वह और आत्मा की सत्ता और क्षेत्र, दोनों के एक अस्तित्व की प्राप्ति नहीं है। हिम्मतभाई! सूक्ष्म है, सूक्ष्म यह। ठीक, आज आये हो। रविवार को तो भावनगरवालें आवें न! रामजीभाई कहते हैं-कुछ नया निकलेगा॥ कहा था न सबेरे ? ऐ... जयन्तीभाई! सहज (निकलता है)। आहाहा!

अरे... ! भाई! तू कौन है ? कहाँ है ? कैसे हैं ? तू कौन है ?-आत्मा (है)। कहाँ है ?-असंख्य प्रदेश में। कैसे है ?-अनन्त गुण-स्वरूप हूँ। समझ में आया ? परन्तु उस अनन्त गुणस्वरूप से अपने क्षेत्र से वस्तु है, उसका पता कैसे लगे ?—वह बाद में कहेंगे। यह वर्तमान है, उसका काल। समझ में आया ?

यह वस्तु है अर्थात् बसे हुए गुण भी ऐसे त्रिकाल शामिल ले लिये हैं। वस्तु एक, उसका क्षेत्र-अपना क्षेत्र अलग और पुण्य-पाप के विकल्प का क्षेत्र अलग; क्योंकि ऐसे अन्तर्मुख जाते हैं, तब वह मलिन क्षेत्र का भाग इसमें मिलता भी नहीं और इसमें दिखता भी नहीं। क्या कहा ? पुण्य-पाप का जो विकल्प है, उसके क्षेत्र का अंश-वह भाव और इसका अंश, इस क्षेत्र का जो अंश है, वह अन्तर में मिलता नहीं और अन्तर में दिखता नहीं। समझ में आया ? सूक्ष्म पड़े, किन्तु है तो सादा, इसमें कहीं बहुत ऐसा नहीं है, परन्तु इसे अनादि से अपनी जाति के घर को कैसे

देखना-इसे इसकी कला का पता नहीं। वकील! यह बाहर के वकालात के ऐसे थोथा मारते रहते हैं उल्टे-सीधे और ऐसे और वैसे। जिसे जो हो वह। आहाहा!

कहते हैं, प्रभु! तू सुन न भाई! तेरी सत्ता में तुझे नजर करनेयोग्य है या तेरा अस्तित्व न हो, वहाँ नजर करनेयोग्य है? तेरा अस्तित्व तेरी वस्तु में है। वस्तु अर्थात् भाव आया। वस्तु जैसे कायम है, उसमें उसके भाव-शक्तियाँ कायम है और उसका क्षेत्र भी शुद्ध कायम है। पुण्य-पाप की वृत्ति उठती है, उसका क्षेत्र अलग, वह वस्तु अलग, वह क्षेत्र अलग और उसका भाव अलग। समझ में आया? यह वहाँ वाँचते नहीं होंगे। ऐसा वाँचते होंगे? वहाँ कभी वाँचा होगा? वाँचा होवे तो यह कहाँ समझ में आये ऐसा है वहाँ? तेल की बातें समझ में आती है। ऐसा करना और ऐसा नहीं करना। कहो, समझ में आया इसमें? आहा!

(यह भाई) कहते हैं-कमाने का काल, वहाँ कमा लेने दो। यह दलाल है न दलाल। वह एक बार कहता था, हों! वीरजीभाई से कहता था। वढ़वाण आये थे न? बहुत लोग (थे)। (संवत्) १९९० के वर्ष में। (संवत्) १९९० के वर्ष में तीन-तीन हजार लोग वढ़वाण में, हों! तब नाम बहुत प्रसिद्ध था न! तीन-तीन हजार लोग! अर्जिकायें (साध्वी) २७ या ३१ थीं। बड़ा समवसरण भरे। भाई पहले आये थे। कहे अभी कमा लेना। कहा-कौन कहता है? वीरजीभाई से पहले कहा होगा किसी ने। दामोदरभाई को। समझ में आया? दामोदरभाई को कहा। ये दामोदरभाई वढ़वाण में कहते थे। वढ़वाण आये थे। (संवत्) १९९० के वर्ष की बात है लगभग। इस अनुसार वीरजीभाई कहते थे (कि) कमा सकते हैं। कहा, अभी कमा लें और बुढ़ापे में काम आवे, इसका अर्थ क्या? इसका अर्थ क्या?

श्रोता : इसके बिना खाना कैसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु खाता कौन है? तुम्हारा थोड़ा पक्ष करते हैं, लो! देखो न! सवेरे ही एक पृष्ठ-फेर था तो पृष्ठ फेर दिया। पता है? पता है? दूसरा पृष्ठ था और चलता था दूसरा, इसलिए इसने देख लिया कि यह पृष्ठ-फेर है; फेरकर डाल दिया। कहो, समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं, भाई! भगवान आत्मा, वह वस्तु है और उसका क्षेत्र, वह अत्यन्त शुद्ध है, निर्मल क्षेत्र है, वह पवित्र धाम है। **और इस प्रकार जबकि एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है...** शब्द तो इतना ही है न? '**तदसत्त्वे च**' ऐसा है न? बस इतना। '**तदसत्त्वे च**' '**तदसत्त्वे**' में सब आ गया, देखो! पर का असत्त्व है। आत्मा में पर का असत्त्व है और पर में अपना असत्त्व है। हो गया-आ गया सब। **इस प्रकार...** यह तो फिर शब्द को समझावे तब कहे न? **तदसत्त्वे च तेन सहाधाराधेयसम्बन्धोऽपि नास्त्येव।** भगवान आत्मा के क्षेत्र में पुण्य-पाप के भाव का क्षेत्र अत्यन्त भिन्न है। वह वस्तु अलग, भाव अलग। भगवान आत्मा अनन्त शुद्ध गुण और उसका पवित्र क्षेत्र,

वह उसका है; इसलिए उस क्षेत्र में, उस वस्तु में पुण्य-पाप और परवस्तु का असत्त्व है। परवस्तु का अस्तित्व न होने के कारण तथा पुण्य-पाप के भाव में और शरीर आदि के सत्त्व में इस आत्मा का यह सत्त्व नहीं होने के कारण। समझ में आया? आहाहा!

इस प्रकार एक वस्तु की दूसरी वस्तु नहीं है, तब एक के साथ... इस कारण। **एक के साथ दूसरे को आधार आधेय सम्बन्ध भी है ही नहीं।** अभी है ही नहीं, यह बात करते हैं। हों! **एक के साथ दूसरे को...** अर्थात् भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप क्षेत्र में बिराजमान पवित्र धाम है और पुण्य-पाप के विकल्प परक्षेत्र, परभाव, परस्वरूप हैं। ऐसा जब एक दूसरे में असत्व अर्थात् नहीं है, तब एक दूसरे को **आधार-आधेय सम्बन्ध भी है ही नहीं।** राग, दया, दान का विकल्प उठे, उसे आधार आत्मा का नहीं और आत्मा अपनी निर्मल पर्याय द्वारा अन्तर की दृष्टि करे, उसमें उस राग का आधार नहीं। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है। यह तो संवर अधिकार है न! कहो, पोपटभाई! जयन्तीभाई कहते थे, यह हिंसा की बात हमने पूरी जिन्दगी में नहीं सुनी थी। जयन्तीभाई! सबेरे ऐसे ही बात थी न सब? सबेरे अच्छी थी, हों!

कहते हैं, भगवान! तू तुझे तेरा आधार और आधेय। आधार, निर्मल पर्याय द्वारा आत्मा जाना जा सकता है; इसलिए निर्मल पर्याय का आधार है और उसके आधार से समझ में आया—ऐसा द्रव्य, उसे आधेय है। समझ में आया? प्राप्त हुआ वह द्रव्य निर्मल पर्याय के कारण; नहीं तो अप्राप्त था। वह निर्मल पर्याय राग से भिन्न पड़कर स्वभाव के आश्रय से जहाँ पर्याय गई, तब उस पर्याय के आधार से आत्मा है। यह आत्मा शुद्ध है-ऐसा भान हुआ, इसलिए इसे निर्मल सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र जो पुण्य-पाप के विकल्प से भिन्न है—ऐसी अपनी दर्शनशुद्धि आदि पर्याय के आधार से आत्मा ज्ञात हुआ; इसलिए वह पर्याय आधार है; वस्तु त्रिकाली, वह आधेय है परन्तु उसे यह पुण्य-पाप का विकल्प आधार है, व्यवहार था तो यह निश्चयपर्याय हुई-ऐसा है नहीं। समझ में आया?

पहले दया, दान, राग की मन्दता थी तो फिर पहला वह। पहला-फहला इसमें है ही नहीं। वस्तु ही उसमें नहीं, फिर पहली कहाँ से लाया तू? पवैयाजी! बहुत सूक्ष्म बात है। आहाहा! वीतरागमार्ग सर्वज्ञ से सिद्ध हुआ तत्त्व अनुभव में आवे ऐसा पदार्थ है। समझ में आया? इसके ध्यान में भासित हो, ऐसा भाव। कहते हैं कि भाई! तेरा स्वरूप... समझ में आया? उस स्वरूप को एक-दूसरे के साथ **आधार-आधेय सम्बन्ध भी...** भी नहीं अर्थात् ऐसा तो नहीं, असत्व है, इसलिए आधार-आधेय सम्बन्ध भी नहीं। जब एक वस्तु में दूसरी वस्तु नहीं, एक वस्तु के क्षेत्र में दूसरा क्षेत्र नहीं और इसलिए एक वस्तु में दूसरे के असत्व के कारण... इस कारण एक-दूसरे को आधार-आधेय सम्बन्ध भी नहीं है। समझ में आया?

भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य ज्ञायकस्वरूप, वह वस्तु है। उसका शुद्ध क्षेत्र, वह उसका क्षेत्र है। अब कहते हैं कि जब ऐसे क्षेत्र में और ऐसे भाववाले द्रव्य में दूसरी वस्तु की-पुण्य-पाप के सत्व का असत्व है। पुण्य-पाप व्यवहार जिसे कहते हैं, जिसे लोग व्यवहार कहते हैं, ऐसे व्यवहार का सत्व व्यवहार के सत्व में है। उसका सत्व इसमें (-आत्मा में) नहीं है। वह असत्व होने के कारण इन दो के बीच में आधार-आधेय सम्बन्ध पर के साथ नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

विशेष, विशेष (कहते हैं) कि पहले ऐसे राग उत्पन्न हो कि मैं आत्मा हूँ, ऐसा हूँ, ऐसा हूँ, वस्तु हूँ-ऐसा जो विकल्प उठे, उसके आधार से, उससे भिन्न पड़कर आत्मा ज्ञात हो—ऐसा वह नहीं है। समझ में आया? और वह विकल्प उठे, वह आत्मा की निर्मल दशा अर्थात् द्रव्य-गुण के आधार से प्रगट हो, ऐसा नहीं है। बहुत सूक्ष्म परन्तु.... आहा! 'भेदविज्ञान भयो जिनके घट, शीतल चित्त भयो जिम चन्दन।' आहाहा! कहो, समझ में आता है या नहीं? नहीं समझ में आता?

श्रोता : अभी नहीं समझ में आता।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, पहले कहा वह। भेदविज्ञान फिर बाद में। भेदविज्ञान का तो अर्थ नहीं किया, वह तो अर्थ नहीं किया। यह भेदविज्ञान की बात चलती है।

यह आत्मा वस्तु है न वस्तु, अस्ति है न? सत्ता है न? अस्तित्ववाला तत्त्व है न? तो अस्तिवाला तत्त्व है, उस तत्त्व के भाव रहित वह तत्त्व नहीं होता। वस्तु है, उसके भावरहित भाववान, भावरहित नहीं होता। तो यह तत्त्व है, उसका भाव ज्ञान, दर्शन आदि भाव, वही पूरी वस्तु हो गयी। वही वस्तु है। वह वस्तु जैसी है, उसका क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई जो है, वह सब पवित्र चौड़ाई है। जितना पुण्य-पाप का भाग, उसके भाग में उठता है, वह पवित्रता का क्षेत्र नहीं है, वह अपवित्र क्षेत्र है, वह अपना स्वक्षेत्र ही नहीं। चिमनभाई! आहाहा! क्योंकि अन्तरस्वरूप में जितने में वह है, वहाँ ऐसे झुकने पर, ऐसे (अन्तर्मुख) झुकने पर उतने क्षेत्र में; इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ कि इतने में ही वह आत्मा है। ऐसे सर्वत्र व्यापक कहते हों, वैसा आत्मा नहीं है और जितने क्षेत्र में है, उतने में ही समस्त ज्ञान-दर्शन आदि भाव भरे हुए हैं। इसलिए उस पवित्र क्षेत्र को ऐसे झुकाते, उसकी पवित्रता का पर्याय अन्तर ढलते, उसमें अपवित्र स्थान जो पुण्य-पाप का क्षेत्र, उसमें नहीं आता। इसलिए क्षेत्र भिन्न है, उसका भाव भिन्न और वह वस्तु भिन्न। यह तो न्याय से बात है, परन्तु अब कभी जगत् को अभ्यास नहीं होता और यह विपरीत अभ्यास किया, सब किया हो तो। कहो, समझ में आया?

कहते हैं, इस कारण एक दूसरी वस्तु की एक दूसरी नहीं होने से-असत् होने से **एक के साथ दूसरे को...** भगवान आत्मा पवित्र क्षेत्र, पवित्र भाववाला तत्त्व है। उसे अपवित्र पुण्य-पाप

भाव और उनका क्षेत्र, उनका द्रव्य, वह वस्तु। वह द्रव्य कहलाये इस न्याय से, उसे और इन दोनों को असत्व होने के कारण, एक-दूसरे में ये नहीं होने के कारण एक दूसरे के साथ **आधार-आधेय सम्बन्ध भी है ही नहीं।** आहाहा!

आधार राग और आत्मा उसके कारण ज्ञात हो, वह वस्तु इसमें नहीं; इसलिए आधार-आधेय कहाँ से आया? ऐसा कहते हैं। समझ में आया? व्यवहार कहते हैं न व्यवहार? पहले व्यवहार हो तो निश्चय ज्ञात हो-यह झूठी है। कहते हैं, यह वस्तु ही झूठी है। तुझे वस्तु की खबर ही नहीं। समझ में आया? यह सब कहा था, हों! अहमदाबाद में, वहाँ दस हजार लोग (थे) उसमें कोई आड़ा-टेढ़ा नहीं (आता।) आवे तो आवे, यही आवे। बेचारे सब सुनते थे, सब सुनते थे। बात तो न्याय से कहते हैं परन्तु लोगों को अभ्यास नहीं होता। सुनने का दूसरा मिला हो और इस अन्दर सूक्ष्म कला का ज्ञान अन्तर क्या है, उसका प्रयास नहीं, उस प्रकार की दरकार नहीं और बाहर से जो पढ़ा, उसमें मानकर बैठ गया। वस्तु दूसरी है। समझ में आया?

एक-दूसरे के साथ **आधार-आधेय सम्बन्ध भी है ही नहीं, इसलिए...** इस इतने कारण के कारण... 'नहीं' (नास्ति) कहा। अब अस्ति कहेंगे। **इसलिए (प्रत्येक वस्तु का)...** प्रत्येक अर्थात् भगवान आत्मा यह वस्तु और पुण्य-पाप के विकल्प उठें, वह वस्तु। शरीर, कर्म आदि आठ कर्म आदि वस्तु। एक ओर आत्मा और एक ओर ये वस्तुएँ। **(प्रत्येक वस्तु का) अपने स्वरूप में प्रतिष्ठारूप ही...** भाषा देखो! अर्थात् आत्मा को **अपने स्वरूप में प्रतिष्ठारूप (दृढ़तापूर्वक रहनेरूप) ही आधार-आधेय सम्बन्ध है।** पहले निषेध किया था, अब हकार किया। राग और विकल्प के साथ एक वस्तु नहीं, एक क्षेत्र नहीं और इसलिए उन्हें दो के साथ आधार-आधेय सम्बन्ध नहीं। पुण्य-पाप की वृत्ति, भाव उठें, हों! भाव, वह भाव और आत्मभाव दो वस्तु एक नहीं हैं, दो क्षेत्र एक नहीं है, और इसलिए दोनों को-एक-दूसरे को आधार-आधेयसम्बन्ध नहीं है। सम्बन्ध नहीं, तब अब सम्बन्ध क्या है?

(प्रत्येक वस्तु का) अपने स्वरूप में प्रतिष्ठारूप... अपना-आत्मा का स्वरूप क्या है? ज्ञान, दर्शन और आनन्द, यह उसका स्वरूप है। समझ में आया? राग, दया, दान, व्रत, विकल्प उसका स्वरूप नहीं है। आहाहा! इसलिए **अपने स्वरूप में प्रतिष्ठा...** अर्थात् रहनेरूप, प्रतिष्ठा अर्थात् जैसा है, वैसी उसे प्रतिष्ठा मिले अर्थात् रहता है; इस प्रकार **आधारआधेय सम्बन्ध है।** आत्मा को अपने स्वभाव में, अपनी ही दशा में आधार-आधेय सम्बन्ध है। पर की दशा के साथ आधार-आधेय सम्बन्ध कुछ है नहीं; विकार के भाव के साथ कहीं आत्मा को आधार-आधेय सम्बन्ध नहीं है।

देखो! जहाँ-जहाँ आत्मा है अद्धर-यहाँ या ऊपर, वहाँ स्वयं अपने निर्मल पर्याय के आधार

से प्राप्त हो, ऐसा ही आत्मा है। वह शरीर के आधार से है या राग के आधार से समझ में आता है- ऐसी वह चीज़ है नहीं। समझ में आया ? सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान (हुए) अर्थात् उसे तो मुक्ति की भनकार आयी! अब केवलज्ञान लेने की तैयारियाँ! आहा! वह वस्तु है। 'मुक्त एव' आता है न ? 'सिद्धसमान मुक्त एव' आता है न ? एक कलश में नहीं आता ? सिद्धसमान है। आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा... देखो! यहाँ सर्वज्ञ ने देखा इतना ऐसा कहना है, इसलिए प्रदेश और आधार-आधेय सम्बन्ध और भिन्न दो वस्तु, अनेक वस्तु को ऐसा सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? एक ही आत्मा हो तो उसे भिन्न करने का नहीं रहता। एक ही आत्मा हो तो उसका क्षेत्र अलग और इसका क्षेत्र (अलग) हो नहीं सकता, अलग करना हो नहीं सकता। इसी तरह एक ही वस्तु हो तो एक दूसरे के भाव, एक-दूसरे के भिन्न हैं, वे नहीं हो सकते। समझ में आया ? वेदान्त कहता है, उससे एकदम विरुद्ध बात है।

श्रोता : समन्वय कब हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : समन्वय अंश भी कहीं हो, ऐसा नहीं है। कहो! समन्वय करना। कहता था न अभी ? समाचार पत्र में (आया है) जैन का समन्वय करो, सब धर्म का समन्वय करो। बापू! 'है' इस अपेक्षा से समन्वय है। यह भी है और वह भी है, सत्य है और मिथ्या भी है। 'है', इस अपेक्षा से समन्वय। समन्वय करो, ज़हर और अमृत के साथ समन्वय करो। समन्वय इतना कि जहर जह़ररूप है, अमृत अमृतरूप है। 'है' इस अपेक्षा समन्वय, परन्तु दोनों एक सरीखे हैं— ऐसा समन्वय नहीं हो सकता।

यहाँ तो पुण्य का विकल्प और आत्मा दोनों एक हैं-ऐसा नहीं है। अब दूसरी कहाँ रही- धूल। पंच महाव्रत के परिणाम / वृत्ति उठे कि इसे दु:ख न हो, इस विकल्प को और आत्मा के स्वभाव को कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! भाई! यह चैतन्यपिण्ड है न! वस्तु है न! वस्तु है न! जैसे यह परमाणु-पॉइन्ट है तो इस परमाणु में इसकी शक्तियों का सत्व पड़ा है। शक्तियों का सत्व परमाणु में-एक पॉइन्ट में है तो यह तो असंख्य प्रदेशी महान पदार्थ है तो इस असंख्य प्रदेश में अन्दर व्यापक अनन्त महान गुण पड़े हैं। समझ में आया ?

कहते हैं कि अपने स्वरूप में प्रतिष्ठारूप ही आधार-आधेय सम्बन्ध है। अपने ही आधार से उसका सब सर्वस्व है। **इसलिए...** यह सिद्ध करके आत्मा में इसे न्याय से उतारते हैं। आधार और आधेय आत्मा में क्या, यह बात उतारते हैं। समझ में आया ? **इसलिए ज्ञान जो कि जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है वह...** ज्ञान जो कि जाननक्रियारूप पर्याय। वर्तमान जानने की पर्याय। जो राग नहीं, पुण्य नहीं; जानने की पर्याय, वर्तमान जाननक्रिया। जानने की- श्रद्धा की जो वर्तमान पर्याय। वह पर से भिन्न पड़ने पर जो जाननक्रिया, उसके आधार से आत्मा

है, क्योंकि उसके आधार से आत्मा ख्याल में आया है। था वहाँ था तो था, परन्तु ज्ञान की वर्तमान पर्याय ऐसे झुकी, तब जाननक्रिया के आधार से आत्मा जानने में आया। उसका अस्तित्व, अस्तिपना, शुद्ध ध्रुवरूप है तो है, परन्तु जानन शुद्धपर्याय हुई, पर से भिन्न पड़कर, उस पर्याय के आधार से ज्ञात हुआ; इसलिए जाननक्रिया आधार है और आत्मा का कायमी स्वभाव, वह आधेय है। समझ में आया? यह तो कहा न? परद्रव्य से भिन्न पड़ा हुआ शुद्ध सेवा करे, तब शुद्ध कहलाता है - ऐसी शैली ली है। शुद्ध तो है परन्तु शुद्ध (की) सेवा किये बिना, इस शुद्ध का भान हुए बिना यह शुद्ध है-कहाँ से आया?

इस प्रकार जब अन्तर में पुण्य-पाप की वस्तु भिन्न, उसका क्षेत्र भिन्न, उसका आधार भिन्न-ऐसा जहाँ पर से भिन्न पड़ा, तब आत्मा की जो जाननक्रिया है, जानने की क्रिया, श्रद्धा की क्रिया जो पहले पर्याय थी, उससे रूपान्तरदशा (हुई), उस दशा के आधार से आत्मा ज्ञात हुआ। वह जाननस्वरूप है, ज्ञानमूर्ति है, आनन्द है, पूर्ण शुद्ध है-ऐसी वर्तमान दशा में राग और पुण्य अन्य वस्तु से भिन्न पड़कर भेदज्ञान हुआ, तब उस ज्ञान की पर्याय द्वारा आत्मा ज्ञात हुआ। इसलिए वह ज्ञानपर्याय आधार है और वस्तु त्रिकाल है, वह आधेय है। कहो, समझ में आया?

अन्यत्र तो ऐसा कहते हैं कि भाई! ज्ञान की पर्याय आत्मा के आधार से रही हुई है। वह अलग, यह अलग। यहाँ तो यह ज्ञात हुआ न? ज्ञात हुआ, तब यह है; इसलिए इसके आधार से यह है—ऐसा निर्णय हुआ, तब इसे जाननक्रिया आधार हुई। स्वभावसन्मुख (होकर) अन्तरवस्तु, अन्तरवस्तु, अन्तर्मुख की पर्याय जाननक्रिया की (दशा) अन्तर्मुख झुकी, तब यह आत्मा है (—ऐसा ज्ञात हुआ)। बहिर्मुख का भाव, क्षेत्र, वस्तु और आधार सब ही पर में गया। आहाहा! समझ में आया? ध्यान रखे तो समझ में आये ऐसा है, हों! भाषा ऐसी कोई बहुत शास्त्र की नहीं आती। यह तो समझ में आये ऐसी भाषा आती है। लोगों को कुछ दरकार नहीं होती और ऐसा का ऐसा अद्धर से चला जाता है और फिर कहते हैं कि यह सूक्ष्म पड़ता है, सूक्ष्म, सूक्ष्म तो प्रभु तू सूक्ष्म ही है। इस राग से ज्ञात न हो—ऐसा सूक्ष्म है, ले! जिसे व्यवहाररत्नत्रय कहते हैं, ऐसा शुभ उपयोग से तू ज्ञात न हो, ऐसा सूक्ष्म है और शुभउपयोग तेरी चीज़ में नहीं है, उसका क्षेत्र तेरा नहीं है, उसका स्वरूप उसके आधार से है। इसका स्वरूप इसके आधार से है, तेरे आधार से नहीं। आहाहा! क्या बात भी बात है! आहाहा!

दिगम्बर सन्तों ने अपनी बात को रखने की शैली गागर में सागर भर दिया है। दिगम्बर मुनि अर्थात् वस्तु के आवानाथोव! धर्म के स्तम्भ! आहाहा! किस प्रकार बात को रखी है! यह तो उनका क्षयोपशम कैसा! समझ में आया? अनुभव हो और हो किन्तु यह तो इस बात को रखने की विधि ही कोई अलग प्रकार की है। दुनिया से पार... महामुनि सन्त, अमृतचन्द्राचार्य,

कुन्दकुन्दाचार्य। आहाहा! महासन्त केवलज्ञान के कन्द और केवलज्ञान लेने की तैयारीवाले! समझ में आया? और वस्तु का घर कहने की रीति की कला भी कोई अलग प्रकार की है। समझ में आया? यह बात अन्यत्र नहीं हो सकती। आहाहा! दिगम्बर सन्तों के मार्ग में जो मार्ग है, ऐसा यह मार्ग अन्यत्र कहीं नहीं है।

कहते हैं, शैली कैसी है? कि ऐसा आधार-आधेय सम्बन्ध है, हों! पर के साथ कुछ नहीं। अपने स्वरूप के साथ ही उसे प्रतिष्ठा-शोभा है। उसके स्वरूप की शोभा ही अपने आधार-आधेय सम्बन्ध के साथ है। **इसलिए ज्ञान जो कि जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है वह, जाननक्रिया का ज्ञान से अभिन्नत्व होने से...** जानने की वर्तमान क्रिया और त्रिकाली ज्ञान अर्थात् आत्मा, उनका एकपना होने के कारण **ज्ञान में ही है...** कौन? **जाननक्रिया का ज्ञान से अभिन्नत्व होने से वह जाननक्रिया ज्ञान में ही है...** भिन्न है नहीं।

ऐसी जाननक्रिया पर से, राग से, विकल्प से भिन्न पड़कर वस्तु की वर्तमान क्रिया ज्ञान की करके, उस ज्ञान के आधार से यह (ज्ञात हुआ), वह जाननक्रिया इसके आधार से हुई। जाननक्रिया के आधार से यह हुआ और जाननक्रिया उस ज्ञान में ही है। वह ज्ञान में ही है, वह राग में है नहीं, पर में है नहीं। बहुत सूक्ष्म। समझ में आया? यह तो ऐसे भाव से भरपूर श्लोक हैं। पूरे ४१५ श्लोक (गाथायें) हैं। अन्दर अकेले भाव ही भरे हैं, परन्तु उस भाव को समझने के लिये इसे ज्ञान की उग्र कला खिलनी चाहिए।

इस प्रकार इसके ख्याल में पहले ऊपर-ऊपर से भी भास होना चाहिए न कि यह ऐसा कहना चाहते हैं और यह इस प्रकार से है। इस प्रकार भास हुए बिना अन्दर में प्रयोग किस प्रकार करेगा? बराबर विश्वास में आवे (कि) यह ऐसा है और यह ऐसा नहीं-ऐसे आये बिना इसका अन्तर्मुख का प्रयोग-अन्तर में जाने का प्रयत्न / वीर्य किस प्रकार करेगा यह? समझ में आया?

श्रोता : दरकार नहीं अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : दरकार (अर्थात्) यह बाहर की दरकार। बाहर का उत्साह... कुछ ऐसा मान, सम्मान, आबरू-कीर्ति हो.. हा... हा... हा...! मार डाला जगत को! धर्म के बहाने शास्त्र की जानकारी (की हो) पुस्तकें पढ़ीं हो, उसका अभिमान (करे)। मार डाला मिथ्यात्व ने! आहाहा! मानधाता को गिरा डाला है। हमें पुस्तक आती है, हमें पुस्तक पढ़ना आता है, इस पुस्तक में यह है-ऐसा हमें ख्याल है, ऐसा करके उसमें-मिथ्यात्व में मर गया। यह मिथ्यात्व है। ऐ.. हिम्मतभाई! (यहाँ) कहते हैं कि यह भाव ही पर है। समझ में आया? और पर में मुझे कुछ अधिक हुआ हूँ—ऐसा माना है, वही मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! यह वस्तु ही पर है (ऐसा) यहाँ तो कहते हैं। आहा! पढ़ा-पढ़ा भूल जा और यह ज्ञान की क्रिया अन्दर में झुका, उसे वस्तु कहते

हैं। 'दास'! समझ में आया? 'अब मेरी व्यवहार की श्रद्धा दृढ़ है' इसके लिये बहुत जोर करे। व्यवहार की श्रद्धा दृढ़ है, उसका जोर करे। यह जोर करे वह खोटा है, सुन न अब! राग की मन्दता के हम व्रत करते हैं और ब्रह्मचारी हैं-इसका अभिमान (करे) इस नाम को कहलवाने का अभिमान करे। यह नाम आवे तो इसे चैन हो, नहीं तो चैन नहीं आवे। आहा! मार डाला परन्तु आस्रव ने तो... बढ़े मानधाता को (मार डाला) यह तो साधारण है परन्तु नौ पूर्व के पढ़े हुए, ग्यारह अंग के पढ़े हुए को पछाड़ा है ! विकारी ज्ञान, विकारीभाव, बन्धन के कारण को अपने लाभ के कारण में मानकर अन्दर उसका उत्साह वर्ते, (वह) मिथ्यात्व है। समझ में आया? क्या कहा?

श्रोता : कोई सुनेगा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कहते हैं कि कोई वाँचेगा नहीं, पढ़ेगा नहीं (परन्तु) वाँचना-पढ़ना आये बिना रहेगा नहीं, जायेगा कहाँ? परन्तु वह वस्तु नहीं है। आहाहा! कहते हैं कि जिसके आधार से आत्मा नहीं है। वह तो स्वतन्त्र जहाँ यह राग और ज्ञान का भाग भूलकर अन्तर में भेद पाड़कर ज्ञान की पर्याय द्वारा यह ज्ञात हुआ, बस! उस पर्याय का आधार, उस पर्याय के आधार से ज्ञात हुआ। वह ज्ञानगुण त्रिकाल और यह पर्याय दोनों एक अभेद हैं। समझ में आया? आहा!

ज्ञान जो कि जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है... इसकी अपनी ही शोभा में रहा है और राग के कारण कहीं जरा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? भगवान आत्मा, जिसका स्वभाव एकदम अकेला ज्ञान है। करना ऐसा विकल्प जहाँ उस स्वरूप में नहीं। मैं जाननक्रिया द्वारा आत्मा को जानूँ—ऐसा जो विकल्प है, वह भी इसकी जाननक्रिया में नहीं और उसके आधार से जाननक्रिया होती है—ऐसा नहीं और उसके आधार से आत्मा ज्ञात होता है-ऐसा नहीं। वह तो भिन्न पड़ी हुई स्वतन्त्र, निरपेक्ष-व्यवहार से निरपेक्ष, व्यवहार से निरपेक्ष, व्यवहार की अपेक्षा रखे बिना जो सम्यग्ज्ञान की क्रिया, उसके आधार से आत्मा ज्ञात हुआ। इसीलिए जाननक्रिया और ज्ञान दो अभिन्न हैं। रागादि सब पर परवस्तु है। कहो, भाई! बहुत सूक्ष्म।

श्रोता : पर से निरपेक्ष है?

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, निरपेक्ष है, पर से निरपेक्ष है, राग से निरपेक्ष है। आत्मा, आत्मा में है, पर में नहीं तो पर से निरपेक्ष ही है। लोग कहते हैं न? कि व्यवहार से सापेक्ष; नहीं तो एक निरपेक्ष हो जाता है। अब सुन तो सही! निरपेक्ष किये बिना व्यवहार का ज्ञान भी-यह राग है—ऐसा ज्ञान भी व्यवहार का सच्चा नहीं हो सकता। समझ में आया? ऐसा इसका स्वभाव है, कहते हैं। यह जाननक्रिया द्वारा ज्ञात हो—ऐसा इसका स्वभाव है। वस्तु इस प्रकार की है। अब इसे दूसरे प्रकार से मानने जाये (तो) वस्तु ही इसकी दृष्टि में सच्ची नहीं रहती। समझ में आया? अभी

बड़ा विवाद यह है न! व्यवहार चाहिए, व्यवहार चाहिए, व्यवहार की बातें करते नहीं। अब सुन न! व्यवहार तो नुकसान करता है, उसकी बात तुझे पहले करनी है ? क्या करना है ? आहा! और उसका इसे उत्साह होता है। आहा! समझ में आया ? व्यवहार का जानपना, व्यवहार के आचरण, व्यवहार की श्रद्धा, (ऐसा) कहे सिर कटे तो भी हम ऐसा मानते नहीं। भगवान का समवसरण ऐसा ही हो। क्या है परन्तु ? सुन न! यह श्रद्धा का विकल्प है, वह भी स्वरूप में नहीं है। ऐसी श्रद्धा करे तो आत्मा का अनुभव हो – ऐसा नहीं है। ऐई! समझ में आया ? गजब बात, भाई!

भगवान आत्मा! **ज्ञान ज्योति जाननक्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है वह, जाननक्रिया का...** (वर्तमान दशा का) **ज्ञान से...** (वस्तु से) **अभिन्नता होने से वह जाननक्रिया ज्ञान में ही है...** अपने में ही है, पर में है नहीं। समझ में आया ? धीमे से, धीरे से समझने जैसी बात है। यह कोई बड़ी पढ़ाई पढ़ जाये और बड़ी बातें करे और भाषण करे, ये लोग प्रसन्न हो जायें (कि) आहाहा! गजब वक्ता, भाई! (इसकी बात नहीं है)। उसमें लिखा नहीं है ? बनारसीदास ने, लिखा है। व्याख्या कोई अलग है, वचनकला अलग है, बोलना अलग है, भगवान अलग है। ऐसा आता है, एक श्लोक में आता है, हों! तन्त्र, मन्त्र, जन्त्र, अमुक, अमुक, वचनकला और यह व्याख्याता और उपदेश... सब अलग चीज़ें हैं, यह उपदेश की कला आत्मा की नहीं है-ऐसा कहते हैं। उपदेश आत्मा का नहीं है। आत्मा है तो उपदेश की वाणी निकलती है-ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं और उपदेश (का विकल्प उठता है), वह आत्मा है तो यह विकल्प उठता है – ऐसा नहीं है। ऐसी है यह बात! आत्मा का अमृत प्याला है। ये सब रागादि तो मुर्दे हैं, यह वाणी आदि मुर्दा है। मुर्दा, चैतन्यज्योति में कहाँ से आया ? आहाहा! समझ में आया ? पोपटभाई! ऐसा सुनने का बनियों को मिलना मुश्किल। तुम तो फिर लुहाणा। यह हमारे शशीभाई मोढ थे। आहा!

श्रोता : अमृत वाणी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो अमृत के प्याले का... वह पाताल कुआँ कहते हैं न ? पाताल कुआँ।

इस प्रकार पर की अपेक्षा जहाँ छूट गयी और अन्तर में निरपेक्षरूप से जहाँ ज्ञान की क्रिया (परिणमित हुई कि) यह आत्मा है, बस! वह ज्ञान की क्रिया और ज्ञान, दोनों एक वस्तु है। उस ज्ञान की क्रिया के आधार से यह वस्तु ज्ञात होती है। इसे राग, पुण्य, विकल्प और पहले शास्त्र का ज्ञान इतना जाना था, उसके आधार से ज्ञात हो—ऐसा यह आत्मा नहीं है। आहाहा!

परलक्ष्यी ज्ञान से आत्मा स्वलक्ष्य हो सके—ऐसी ज्ञान की पर्याय नहीं है। ये सब निमित्त की बातें हैं। निमित्त का ज्ञान कराने को सब बातें हैं। ऐसी बात जरा कठिन है। समझ में आया ? ऐ... दास! टीका भी गजब! गजब बात है न! पाठ में ही है न ? '**उवओगे उवओगो**' उपयोग में

उपयोग है। जाननक्रिया में आत्मा है—ऐसा पहले शब्द में कहा। जाननक्रिया में आत्मा है। राग और विकल्प तथा व्यवहार में आत्मा नहीं है। पहला शब्द है न? भाई!

उपयोग में उपयोग, को उपयोग नहिं क्रोधादि में।
है क्रोध क्रोधविषै हि निश्चय, क्रोध नहिं उपयोग में॥१८१॥

इसकी व्याख्या चलती है। इस कलश की-इस श्लोक (गाथा) की व्याख्या चलती है। समझ में आया? आहाहा! इस **जाननक्रिया का ज्ञान से अभिन्नत्व होने से...** वस्तु से एकमेक होने से **ज्ञान में ही है।** यह ज्ञान की क्रिया ज्ञान में ही है। इतनी बात आत्मा की की है।

अब यहाँ तो 'क्रोध' शब्द प्रयोग किया है। स्वरूप की जाननक्रिया के आधार से ज्ञात हुआ, इसलिये जाननक्रिया और आत्मा एक है। उससे जो कोई विरुद्धभाव (होते हैं), उन्हें आत्मा के स्वभाव से विरुद्धभाव की रुचि है, उसे क्रोध है—ऐसा कहने में आता है। कहो, अरुचिभाव आता है न? भगवान आत्मा जाननक्रिया से ज्ञात हो, इसके अतिरिक्त जो कुछ पर्याय में परसम्बन्धी का ज्ञान, श्रद्धा, राग की मन्दता (होती है), उन सबके प्रति जिसे प्रेम है, उसे स्वभाव के प्रति द्वेष है, उसे स्वभाव के प्रति विरोध-मिथ्यात्वभाव है। समझ में आया?

श्रोता : आप नया-नया कहते हो तो कैसे समझ में आय?

पूज्य गुरुदेवश्री : समझ में आया?-यह तो अपना विश्राम का वाक्य है। विश्राम का वाक्य - समझ में आया? - ऐसा कहकर थोड़ा पहले कहा गया हो और बीच में कुछ कहना हो और दूसरे को विचार का अवकाश रहे तथा यहाँ निकलने का अवकाश रहे। एक दूसरे को होता है न वाक्य?.... ऐसे यह 'समझ में आया?' एक विश्राम का वाक्य है। बोलने में... होता है न? राजमलजी! एक दूसरा बोले और फिर कुछ ऐसा कहे, वहाँ जो ऐसा हो सब कोई स्वतन्त्र। समझ में आया? ऐसा कि मेरे भाई को ऐसा है, छोटे भाई को कुछ दूसरा है। ऐसी भाषा है एक प्रकार की। तुम्हारे ऐसा होगा, सब स्वतन्त्र होगा ऐसा।

यहाँ तो कहते हैं, ओहोहो! गजब बात करते हैं न! एक ओर भगवान और एक ओर क्रोध! दो ही बात है। राग की अस्थिरता की-फस्थिरता की (बात भी नहीं की है)। यह स्वभाव का प्रेम नहीं, जाननक्रिया के आधार से यह होता है-ऐसा जहाँ भान नहीं, उसे उससे विरुद्ध जितना राग का भाग (उठता है), उसका प्रेम (रहता है), पर को जानने का प्रेम, पर की श्रद्धा का प्रेम अन्दर वृत्ति में (रहता है), उस सबको यहाँ क्रोध कहा जाता है। क्रोध कहने से स्वभाव से विरुद्ध भाव का प्रेम है, उसे स्वभाव के प्रति द्वेष है, उसे मिथ्यात्व है। समझ में आया? आहाहा!

क्रोधादिक जो कि क्रोधादि क्रियारूप अपने स्वरूप में प्रतिष्ठित है। स्वभाव से-जाननक्रिया

से विपरीत भाव, ऐसा जो क्रोध, उस क्रोध की क्रियारूप भाव, वह क्रिया उस क्रोधादि में ही है, वह क्रोध, क्रोध में ही है; विकार, विकार में ही है; व्यवहार, व्यवहार में ही है; पर, पर में ही है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

भगवान आत्मा स्व जाननक्रिया में वह आत्मा है और पर, पर में है। बस! यहाँ दो ही बात है। जाननक्रिया के आधार से चैतन्य ज्ञात होता है; इसलिये जाननक्रिया आधार, वह आधेय। उससे विरुद्ध कोई भी विकल्प उठा कि जानपना हो या पर की श्रद्धा हो, (वह सब विरुद्धभाव है)। (ऐसा सुनकर लोग) शोर मचाते हैं। देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा मिथ्यात्व? देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, वह मिथ्यात्व नहीं। वह राग का अस्तित्व है, वह मेरा है और उसके आधार से मुझे (लाभ) होता है-ऐसा भाव, वह मिथ्यात्व है।

श्रोता : देव-गुरु की श्रद्धा, वह राग ही कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : राग नहीं तो वह क्या है? परद्रव्य की ओर झुकी वृत्ति है, वह राग है। आहाहा! अब परमार्थ से परसत्तावलम्बी ज्ञान भी मोक्ष का कारण नहीं है। वहाँ फिर राग कहाँ (मोक्ष का कारण रहा)? आहाहा! क्या हो? जीव इस प्रकार भूला है न, वह कैसे भूला इसका उसे पता नहीं और भूल किस प्रकार की हो, कहाँ हो, इसका भी उसे पता नहीं होता। समझ में आया? आहाहा!

श्रोता : अभी भूल में हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूल का भी पता नहीं कि मैं कहाँ भूलता हूँ? यह दोष है। इसमें भूल का कितना दोष है, इसका (पता नहीं)। समझ में आया? आहा! यहाँ तो एक चोट और दो (टुकड़े)। वे कहते हैं न? एक तलवार और दो भाग।

वस्तु भगवान आत्मा जानन परिणति के आधार से परिणामी भगवान ज्ञात होता है, यह वस्तुस्वरूप है। इससे जितना विरुद्ध भाव है, वह स्व अपेक्षा के अतिरिक्त का विरुद्ध भाव है, उसका इसे अस्तित्व का प्रेम है, वह मुझे लाभदायक है, उसमें मैं हूँ, उसके कारण मुझे शोभा है-ऐसी जो दृष्टि है, उसे यहाँ क्रोध कहा जाता है, वस्तु की अरुचि कहने में आता है। उसे वस्तु का स्वरूप रुचता नहीं। समझ में आया? ऐ न्यालचन्दभाई! यह बातें तो कहीं (सुनी नहीं)। अब इसमें कहाँ रह गया? इसमें बाह्यत्याग कहाँ गया? बाह्यत्याग हो तो कुछ अनेकान्त हो, नहीं तो अनेकान्त नहीं होता। वह तो कहीं रह गया। त्याग की कोई कीमत होगी या नहीं? बाह्यत्याग की? ऐ..ई... दीपचन्दजी! एक राग की मन्दता करके एक दया, दान, व्रत पाले, पूजा करे, निवृत्ति ले और दूध और यह पचास वर्ष तक खाये नहीं, गन्ने का रस पिये नहीं, त्याग, आम के रस का

त्याग, पूरणपोली का त्याग, खांड-शक्कर का त्याग! अब इतना हो, उसमें कुछ तो धर्म का अंश होगा या नहीं?

श्रोता : एक नया पैसा भी नहीं!

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह त्याग किया है—ऐसी मान्यता है, वह मिथ्यात्व है-ऐसा यहाँ कहते हैं।

भगवान जाननक्रिया स्वभाव से प्रगटे, उसकी जहाँ अपेक्षा नहीं और दूसरी कुछ भी अपेक्षा रखता है, उसे कहते हैं कि यहाँ तो स्वभाव के प्रति उसे अरुचि है, द्वेष है, क्रोध है, स्वभाव से उसकी अधिकता इसे लगती है; इसलिए इसे मान है; स्वभाव जैसा है, उस प्रकार से प्रगट करने की शैली को नहीं जानता; इसलिए इससे प्रगट होगा—ऐसी माया-कपट करता है और यह राग और परसन्मुख के जानपने के लोभ की इच्छा है, वह अनन्तानुबन्धी लोभ है। आहाहा! गजब बात है! वीतरागमार्ग... समय थोड़ा रहा।

वस्तुस्वभाव है, उससे दूसरी कोई भी अपेक्षावाला राग, पर अपेक्षावाला ज्ञान और श्रद्धा, व्रत और त्याग आदि के राग की मन्दता हो, उसमें कुछ भी प्रेम (रहे) और (उसमें) अस्तित्व - मैं हूँ (ऐसा माने) और उससे लाभ है, (ऐसा माने) उसे क्रोध कहते हैं, स्वभाव के प्रति अरुचि कहते हैं। उसे स्वभाव का मान न आकर, अपने उस भाव का मान आया तो स्वभाव से अधिक हो गया, वह मानी है, वह स्वभाव का भाव ऐसा है कि पर की अपेक्षा बिना निरपेक्षरूप से प्रगट हो; ऐसा न जानकर, इससे होगा (ऐसा माना तो) उसने माया-आड़मारी, आड़मारी। माया-आड़मारी है, वह कपट है। और यह बाहर का जानपना तथा राग की मन्दता का भाव (आने पर) यह ठीक है और इससे होगा (ऐसा माना) उसे अनन्तानुबन्धी का लोभ है। यह ऐसा कहते हैं। कनुभाई! बहुत समझने जैसी बात है, हों! वहाँ कहीं मिले ऐसा नहीं। वेतन भले दस हजार का मिले। लोग कहते थे, अपने को कहाँ पता है। तुम्हारे पिता को भी पता नहीं होगा, कितना वेतन यह कोई पूछता नहीं। बातें करे कोई, इसलिए अपन सुनते हैं, अपने को कहाँ पता था। दस हजार का वेतन होकर वहाँ गये हैं-ऐसा कोई बात करता था। दस हजार का (होवे या) लाख का हो, उसमें आत्मा को क्या आया?

दोनों वस्तुयें अत्यन्त भिन्न हैं इस पर अपेक्षित भाव का प्रेम और स्व-अपेक्षित पर से निरपेक्ष की क्रिया दोनों अत्यन्त भिन्न हैं। एक के आधार से दूसरा नहीं है और दूसरे के आधार से यह नहीं है, ऐसा भेदज्ञान करने के लिये यह बात की है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

४ श्री अष्टपाहुड़-बोधपाहुड़, गाथा १० से १३ प्रवचन नं. ५२
दिनांक ०३-०८-१९७०

यह अष्टपाहुड़-बोधपाहुड़ की व्याख्या है। जिनप्रतिमा का कथन है। सच्ची जिनप्रतिमा किसे कहना? जैनमार्ग में वीतरागदेव ने जिनप्रतिमा इसे कहा है।

श्रोता : किस नय से?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस सच्चे नय से। यह प्रतिमा है, वह तो व्यवहार है। मन्दिर आदि प्रतिमा व्यवहार है अर्थात् ऐसा निश्चय हो, वहाँ विकल्प उठे, तब लक्ष्य वहाँ जाए, इतना। समझ में आया?

जिनप्रतिमा का निरूपण :

सपरा जंगमदेहा दंसणणाणेण सुद्धचरणाणं।
णिग्गंथवीयराया जिणमग्गे एरिसा पडिमा॥१०॥

आचार्य स्वयं (कहते हैं) कि जिनमार्ग में इसे प्रतिमा कहते हैं। वीतरागी आत्मा की पर्याय, राग और पुण्य के विकल्प से भिन्न जैसा चैतन्य का स्वरूप, राग से भिन्न है, वैसा भान और उसमें संयम की स्थिरता, वीतरागता—ऐसे आत्मा को जिनप्रतिमा कहा जाता है। शोभालालजी! यह क्रिया, जिनप्रतिमा और देरासर और मन्दिर और भक्ति-पूजा करे और माने कि हमें धर्म हो गया। वह तो मानसिक कल्पना आवे, तब यह बात है। आत्मिक में यह बात नहीं। समझ में आया? स्वरूपचन्दभाई! तत्त्वार्थसार में यह है कि मानसिक विकल्प उठता है, वहाँ तक इसे स्थापना निक्षेप के प्रति लक्ष्य जाता है, शुभभाव हो, इसलिए (लक्ष्य जाता है)। आत्मिक भावना में इसका अवकाश नहीं है। समझ में आया?

भगवान आत्मा **जिनका चारित्र, दर्शन-ज्ञान से शुद्ध-निर्मल है, उनकी स्वपरा...** जिसे अन्तर में दर्शन-सम्यक् अनुभव है और जिसे स्व का स्वसंवेदनज्ञान है और स्व में लीनता है... समझ में आया? ऐसे जो संयमी मुनि और धर्मात्मा, उन्हें यहाँ जिनप्रतिमा कहा है। जिनमार्ग में उन्हें जिनप्रतिमा कहा है। पहला फिर कहाँ गया? जिनमार्ग-बाहर होगा? वास्तव में वह जिनमार्ग ही नहीं है। वह तो व्यवहारमार्ग है, रागमार्ग है। व्यवहार जिनमार्ग है, निश्चय जिनमार्ग नहीं। समझ में आया? वस्तु जरा ऐसी है।

अपनी और पर की चलती हुई देह है, वह जिनमार्ग में 'जंगल प्रतिमा' है,... यहाँ तो गुरु और शिष्य दोनों को जिनप्रतिमा कहा। शिष्य भी ऐसा होता है कि जो विकल्परहित श्रद्धा-ज्ञान और संयमवाला है—ऐसा शिष्य और स्वयं गुरु, दोनों की देह-जंगल देह को जिनप्रतिमा कहते हैं। समझ में आया?

पहले प्रतिमा मानते नहीं थे, और वापस ऐसा निकला। आहाहा! वास्तव में तो यह व्यवहार विकल्प है, वह परद्रव्य है, वह वस्तु ही परद्रव्य है। स्वद्रव्य के आश्रय से दृष्टि-ज्ञान और स्थिरता (हुए), वह स्वद्रव्य है और वह जैनमार्ग है। पण्डितजी! आहा! ऐसा मार्ग है।

कल रात्रि में एक बात कही थी कि परद्रव्य का कर्ता आत्मा क्यों नहीं?-जिसकी सत्ता भिन्न है, वह भिन्न सत्ता पर का कर नहीं सकती। समझ में आया? चैतन्य और जड़ आदि भिन्न सत्तावान पदार्थ हैं न? यह चैतन्य और दूसरा चैतन्य भिन्न सत्तावान पदार्थ, भिन्न सत्ता का करे-ऐसा नहीं होता - एक बात। समझ में आया? दूसरी बात—आस्रवतत्त्व है और स्वभावतत्त्व है, वे भिन्न तत्त्व हैं। दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम-राग उठता है, वह परतत्त्व है; स्वभाव, वह चैतन्यतत्त्व है। स्वभाव चैतन्यतत्त्व और विभाव आस्रव परतत्त्व अर्थात् परसत्ता है; इसलिए स्वभाव की दृष्टि की अपेक्षा से आस्रव परसत्ता (है); इसलिए आस्रव का कर्ता स्वभावदृष्टिवन्त नहीं है। समझ में आया? आहाहा!

जैसे परद्रव्य, परसत्ता है, वह स्थूल परसत्ता है। इससे एक सत्ता दूसरी सत्ता का कुछ करे-ऐसा नहीं। वैसे भगवान आत्मा शुद्धस्वभाव सत्तावान पदार्थ है और आस्रव है, वह भिन्न सत्तावाली चीज़ है; इससे दो पदार्थ के बीच में स्वभावदृष्टिवन्त, परसत्तावाले आस्रव-दया, दान, व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प का कर्ता वह नहीं है। समझ में आया? सूक्ष्म बातें, भाई! तीसरी बात आगे लें तो ***द्रव्य और पर्याय दो सत्ता भिन्न है। जैसे परसत्ता भिन्न है, आस्रव सत्ता भिन्न है; इसलिए कर्ता नहीं; वैसे एक द्रव्य त्रिकाली (और) एक समय की निर्मल वीतरागी पर्याय -दो सत्ता भिन्न है; इसलिए द्रव्य, पर्याय का कर्ता नहीं, वीतरागी पर्याय का भी आत्मा कर्ता नहीं! आहाहा!*** स्वरूपचन्दभाई! ऐसा स्वरूप है।

भिन्न सत्ता के तीन प्रकार किये। रात्रि को कहा था। समझ में आया? आहाहा! ऐसी वस्तु है। इसे यह श्रद्धा और ज्ञान में न ले और बाहर का झगड़ा.. झगड़ा.. झगड़ा.. (खड़ा करता है)। यह मूर्ति होती है। वह हो, उसके घर में। वह तो परद्रव्य है। यह उसकी ओर का विकल्प उठा, वह भी परद्रव्य है; स्वद्रव्य नहीं। इससे उस परद्रव्य का कर्ता, स्वद्रव्य की श्रद्धावाला नहीं है; और आगे जाने पर द्रव्य और पर्याय दो भिन्न सत्ता सिद्ध करनी है। दोनों भिन्न सत्ता है।

श्रोता : तो सात द्रव्य हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं भले जो हो वह। परन्तु ***द्रव्य और पर्याय दो सत्ता भिन्न है। सामान्य सत्ता और विशेष सत्ता पर्याय-ये दोनों भिन्न हैं। इस अपेक्षा से भिन्न हैं; इसलिए भिन्न द्रव्य, पर्याय का कर्ता है नहीं। मोक्षमार्ग की पर्याय का कर्ता द्रव्य नहीं।*** ऐई ! यह गाथा आयेगी। अपने ३२० वीं चलेगी। लोग इकट्ठे होंगे, तब (लेंगे)। समझ में आया ? हिन्दी, हिन्दी। ये हिन्दी लोग आयेंगे न ! ३२० (गाथा की) जयसेनाचार्यदेव की टीका है। बहुत सूक्ष्म विषय है, वह चलेगा। अधिक लोग आवे और जरा सुने। पन्द्रह सौ पन्न छपाये हैं। ३२० वीं जयसेनाचार्यदेव की टीका। ***सूक्ष्म जो आत्मा, मोक्ष का मार्ग और मोक्ष की पर्याय से भी भिन्न है।*** मोक्ष की पर्याय का कर्ता आत्मा नहीं है, ध्रुव नहीं है। ***अरे! अरे! क्योंकि कर्ता हो तो दो एक हो जाते हैं। जैसे एक सत्तावाला द्रव्य दूसरी सत्तावाले का कुछ करे तो दोनों एक हो जाते हैं।*** ऐ... हिम्मतभाई ! रात्रि को थोड़ी बात की थी। इन बहिनों को भी ख्याल आवे न !

भगवान आत्मा की स्वभाव की सत्ता और विभाव की (सत्ता)-दो सत्ता ही भिन्न है, दो होनेरूप से भिन्न है; इसलिए भिन्न होनेरूप से वह स्वभाव उस विभाव को कैसे करे ? स्वभाव की पर्याय उस विभाव को कैसे करे ? क्या कहा, समझ में आया ? स्वभाव और द्रव्य एक ओर रखो, स्वाभाविक पर्याय जो है... जरा सूक्ष्म पड़े परन्तु सुनना। समझ में आया ? जो आत्मा वस्तु स्वभाव द्रव्य, गुण और पर्याय, यह निर्मल स्वभाव, वह आत्मा-वस्तु। अब, पुण्य और पाप के विकल्प, जो विकार दोषरूप भाव है, उसकी सत्ता ही भिन्न है। समझ में आया ? ऐई ! सूक्ष्म तो आवे। चिमनभाई ! भाई ! मार्ग ते यह वीतराग का है। वीतराग का अर्थात् वीतरागभाव का।

भगवान आत्मा, आस्रवसत्ता के अस्तित्व के उदयभाव से तो भिन्न वस्तु है। उदयभाव तो आस्रवतत्त्व—भावबन्धतत्त्व है और स्वभाव ज्ञायकभाव है, वह निर्मल अबन्धतत्त्व है। आहा ! वह अबन्धतत्त्व (और) भावबन्धतत्त्व दोनों भिन्न हैं; इसलिए इसका (विकार का) वह कर्ता नहीं; और यदि कर्ता हो तो दोनों एक हो जाते हैं।

अब तीसरी बात। जो वीतरागी पर्याय हुई, वह आस्रव की कर्ता नहीं, परन्तु वीतरागी पर्याय और वीतरागी द्रव्य त्रिकाल, वह द्रव्य-वीतरागी द्रव्य है। दोनों की सत्ता भिन्न सिद्ध करने से एक सत्ता—द्रव्य सत्ता, (वह) पर्याय की कर्ता नहीं। यदि एक पर्याय कर्ता हो जाए तो द्रव्य और पर्याय दोनों एक हो जाते हैं।

श्रोता : एक-दूसरे का आलिंगन करते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : आलिंगन करते ही नहीं-स्पर्श ही नहीं करते-ऐसा कहते हैं। आहाहा !

स्वभाव की पर्याय, विभाव / दोष की पर्याय को स्पर्श ही नहीं करती। आहाहा! समझ में आया? पोपटभाई! रात्रि को कहा था। तुम देरी से आये थे? भाई जरा देरी से आये थे। यह बात पहले हो गयी थी। समझ में आया? वस्तु स्वयं जो है... लड़कों को पूछना था, पर का करे उसका (क्या) कारण? क्रियावतीशक्ति उसमें है इसलिए (-ऐसा जवाब दिया)। लड़के शाम को आये न! सबने सीखा है न! अगुरुलघु की पर्याय पर में जाये नहीं इसलिए। यह भी कहा। इसका मूल सिद्धान्त तो यह है कि जिसका अस्तित्व भिन्न हो, उसे दूसरा अस्तित्व कहीं छूता नहीं। छूता नहीं, इसलिए करता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इसलिए तीन सत्ता भिन्न हुई। एक पूरी दूसरी चीज़ भिन्न और द्रव्य भिन्न; इसलिए पर का कर्ता नहीं। एक स्वाभाविक वस्तु और उसकी निर्मल पर्याय, उससे आस्रव पर्याय अत्यन्त भिन्न है, परद्रव्य है। उदयभाव, परद्रव्य है; इसलिए स्वद्रव्य की निर्मल पर्याय भी परद्रव्य को करती नहीं, आस्रव को करती ही नहीं। समझ में आया? यह बात है।

व्यवहार को 'जाना हुआ प्रयोजनवान है'—ऐसा जो कहा है, अर्थात् उसकी ज्ञान की पर्याय अल्प है, उसे वह जानता है। उसमें दोष सम्बन्धी का ज्ञान, दोष के कारण नहीं, दोष है, इसलिए नहीं। दोष परद्रव्य है। इसके ज्ञान की पर्याय में स्व और पर को जानने का अपनी पर्याय का अस्तित्व एक है, दो अस्तित्व नहीं। पर का जानना और स्व का जानना—ऐसे दो भाग नहीं है। दो हैं, वे एकरूप हैं। समझ में आया?

ऐसे अस्तित्व की पर्याय में आस्रव की पर्याय जानने में आवे-ऐसा जो कहा था, बारह (गाथा समयसार) में, परन्तु उससे विशेष तो ऐसा आया कि ज्ञात हुआ ऐसा। वह ज्ञेय, ज्ञान की पर्याय में ज्ञात हो जाता है, जानना-ऐसा नहीं। ज्ञानचन्दजी! (बात) जरा सूक्ष्म पड़ेगी, हों! परन्तु अब सुनो तो सही! ऐसी बात है। अभी एक ने विरोध किया है कि तुमने 'जाना हुआ' - ऐसा कैसे लिखा इसमें? तब (कहा), 'ज्ञात होता है' यह तो भाई! हमारे अधिक पसन्द है।

श्रोता : हमारे कबूल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : कबूल क्या, यह तो ऐसा ही है। यह तो भाई! पण्डित जयचन्दजी ने 'जाना हुआ प्रयोजनवान'—१२वीं गाथा कहा है, इसलिए उसका अर्थ ऐसा होता है। वह तो जाना हुआ कहो, ज्ञात होता कहो या ज्ञात हो जाता है-ऐसा (कहो) ज्ञात हो जाता है (अर्थात्) स्वसन्मुख की दृष्टि है, वहाँ उसकी पर्याय में 'यह है'-ऐसा जानना भी नहीं पड़ता। जानना पड़े कहाँ? यह तो उसे (पर को) जानता है? जैसे केवलज्ञान में लोकालोक को जानते हैं? जानना पड़ता है? ***वह ज्ञान की पर्याय ही अपनी ऐसी है कि परसम्बन्धी का अपना ज्ञान, स्व सम्बन्धी***

का अपना (ज्ञान) उसे-एकरूप को स्वयं जानता है। समझ में आया ? गजब काम, भाई! पर्याय को जानना, वह भी अभी व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया ?

वह पर्याय-वीतरागी पर्याय और द्रव्य, दो की सत्ता एक नहीं है। एक सामान्य सत्तारूप धर्म है और एक विशेष सत्तारूप धर्म है। दोनों एक सत्तारूप नहीं; दो की सत्ता भिन्न है। भिन्न सत्ता है, इसलिए द्रव्य, पर्याय का कर्ता नहीं। मोक्षमार्ग की पर्याय का भी द्रव्य कर्ता नहीं। मोक्ष की पर्याय का द्रव्य कर्ता नहीं। आहाहा! गजब काम, भाई! समझ में आया ? ऐई! नेमीदासभाई! यह सब समझने जैसा है।

यहाँ कहते हैं (कि) मुनि (को) अन्दर आत्मा का दर्शन, आत्मा का स्व-आश्रय (वर्तता है), पराश्रय जितना भाव है, उसे तो परद्रव्य गिनकर यहाँ जैनमार्ग में गिना नहीं है। निश्चयमार्ग में-परमसत्यमार्ग में व्यवहार को गिनने में आया ही नहीं है। समझ में आया ? इसलिए आचार्य क्या कहते हैं ? **जिणमग्गे एरिसा पडिमा**—जिनमार्ग में ऐसी प्रतिमा कही है। तीर्थंकरों ने, अनन्त केवलियों ने जिनमार्ग में स्वरूप की दृष्टि, स्वरूप का ज्ञान-स्वरूप का ज्ञान और स्वरूप में संयमवाली रमणता को जिनमार्ग में जिनप्रतिमा तीर्थंकरों ने कही है। वह अन्य दूसरा मार्ग कहाँ (गया ?) जिनमार्ग में नहीं होता ? दूसरा मार्ग, वह जिनमार्ग निश्चय नहीं; वह व्यवहार है। ***इस ज्ञान में, ज्ञान की पर्याय अपने को जानते हुए, वह है—उसका जानना भी साथ में स्वयं के कारण उत्पन्न हो जाता है, उसे वह जानता है। समझ में आया ?***

केवलज्ञानी अपनी पर्याय को जानते हैं। लोकालोक का जानना, वह असद्भूत-व्यवहारनय का कथन है। ऐई! भाई! ऐसे यह सम्यग्दृष्टि सद्भूत व्यवहारनय से अपनी पर्याय को जानता है, यह बराबर है, परन्तु दोष का जानता है, यह असद्भूत व्यवहारनय है। समझ में आया ? मार्ग कोई ऐसी चीज़ है। समझ में आया ? श्रीमद् ने कहा है न कि 'नहीं दे उपदेश को, प्रथम ले उपदेश, सबसे न्यारा आगम है वह ज्ञानी का देश।' ऐई!

श्रोता : जानना तो पड़े न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : जानने के लिये तो यह बात कही। यह बोधपाहुड़ है न ? ऐसी प्रतिमा को जान-ऐसा यहाँ पाठ है। बोध का अर्थ ऐसा है। ऐसी प्रतिमा को जान-ऐसा यहाँ कहते हैं। वह प्रतिमा ? वह तो बीच में होती है। उसका ज्ञान भी अपना ज्ञान है। समझ में आया ? ऐसी बात है।

कहते हैं (कि) दर्शन, ज्ञान, शुद्ध निर्मल चारित्र **उनकी स्वपरा...** स्वपरा। स्व अर्थात् अपनी और पर अर्थात् शिष्य की। दोनों की वीतरागभावरूप प्रतिमा है, उसे जिनप्रतिमा जिनमार्ग में कही है। कहो, तब यह सब यह देरासर और मन्दिर और यह क्या है ? सब व्यवहार है, अवस्तु है। स्ववस्तु की अपेक्षा से अवस्तु है। समझ में आया ?

जैसे स्वद्रव्य की अपेक्षा से भगवान परमात्मा स्वयं अवस्तु है; वैसे द्रव्य के स्वभाव की अपेक्षा से आस्रव अवस्तु है; वैसे द्रव्य की अपेक्षा से पर्याय अवस्तु है। ऐई! आहाहा! पर्याय की अपेक्षा से पर्याय वस्तु है।

श्रोता : दो नय आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा है, भाई! समझ में आया? भगवान आत्मा... यहाँ तो मात्र सत्ता की भिन्नता, वह भिन्न को करे नहीं। ऐसा जो अन्दर वीतराग प्रतिमा-भाव, उसे जैनमार्ग में जिनप्रतिमा कही है। यहाँ तो जिनमार्ग में (जिनप्रतिमा) उसे कही है। अन्य व्यवहार जैनमार्ग में नहीं। वह तो बाहर की बात है, वह तो व्यवहार की बात है, वह जैनमार्ग नहीं! गजब भाई! उपचारिक विकल्प है। होता है, जानो (कि) उपचार है। आया है न?

कलश-टीका में आया है। 'पर्याय का कर्ता (द्रव्य है, वह) उपचार है।' ऐसा आया है। खबर है? शुरुआत में (आता है) पर्याय का कर्ता जीव (है, वह) उपचार है। उसका अर्थ यह। उन्होंने लिखा है। है न? पहले में है। पर का कर्ता तो कहाँ रहा परन्तु पर्याय का कर्ता उपचार से है। उपचार कहो या व्यवहार कहो या अभूतार्थ कहो। अरे... अरे... गजब बात! इस मार्ग में यह अगम्य प्याला है, बापू! समझ में आया?

श्रोता : अगम्य प्याला है परन्तु गम्य तो कराओ।

पूज्य गुरुदेवश्री : गम्य करने के लिये तो यह बात चलती है। अगम्य को जिसने गम्य किया, आहा! देखो न! इस बोध की पहली व्याख्या यह है कि ऐसा है... ऐसा है... ऐसा है... उसे तू जिनप्रतिमा जान। जिनप्रतिमा तो जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान और चारित्र सहित है, वह जिनप्रतिमा है परन्तु यह सुननेवाले को कहते हैं कि ऐसा हो, उसे तू जिनप्रतिमा जान। समझ में आया? मार्ग ऐसा सूक्ष्म है। 'अगम्य प्याला पिवो मतवाला, तिन्हीं अध्यात्म वासा, आनंदघन चेतन वैह खेले, देखे लोक तमाशा!' कहते हैं (कि) यह इसे निर्णय करना पड़ेगा। जिसे धर्म करना हो, उसे इस प्रकार की वस्तु है—ऐसा उसे ज्ञान में निर्णय करना पड़ेगा।

अपनी और पर की चलती हुई देह है, वह जिनमार्ग में 'जंगम प्रतिमा' है;... देखो, अपना आत्मा और साथ में देह; शिष्य का आत्मा और देह-ऐसे दो, चलती-चलती यह जंगम प्रतिमा है। जिनमार्ग में इसे प्रतिमा कहा है। **अथवा स्वपरा अर्थात् आत्मा से 'पर' यानि भिन्न है ऐसी देह है।** देखो! देह को कहा। देह में निर्ग्रन्थदशा है न! एक वस्त्र का ताना नहीं, धागा नहीं; अत्यन्त नग्नमुनि, जैसा माता ने (जन्म दिया) वैसी देह।

जिसका निर्ग्रन्थ स्वरूप है, कुछ भी परिग्रह का लेश भी नहीं है ऐसी दिगम्बर मुद्रा है।

आहाहा! उसे भी व्यवहार से प्रतिमा कहने में आता है, देह को, हों! पहली निश्चय (प्रतिमा कही)। **जिसका वीतराग स्वरूप है, किसी वस्तु से राग-द्वेष-मोह नहीं है,...** विकल्प ही जहाँ वस्तु में नहीं, निर्विकल्प चीज़ ही है। द्रव्य-गुण पूरे और पर्याय भी जिनकी निर्विकल्प है—ऐसी प्रतिमा को जिनप्रतिमा, जैनशासन में सच्ची जिनप्रतिमा उसे कही है। कहो, समझ में आया? फिर व्यवहार है, उसे बतलायेंगे, परन्तु तू वहाँ अकेला मान बैठे कि इसके कारण धर्म होता है और इसके कारण मोक्ष होता है, भगवान की प्रतिमा पूजने से और देने से संवर-निर्जरा होते हैं-उसमें एक भी अंश में माल नहीं है। शोभालालजी! विवाद ही यह उठा। उनको धर्म मनाया, तब उन्होंने (प्रतिमा) उड़ा दी।

श्रोता : दोनों खोटे हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों मिथ्या हैं। (संवत्) १९८२ में कहा था, तब सम्प्रदाय में थे, परन्तु प्रतिष्ठा बहुत थी, इसलिए हमारे ऊपर कोई शंका नहीं करता। हमारे ऊपर भरोसा बहुत था न! इसलिए (मानते थे कि) कुछ कहते होंगे। १९८२ में सम्प्रदाय में कहा था, हों! नौ वर्ष पहले कहा, देखो! दो मित्र थे। एक ने सौ रुपये दूसरे को दिये। सौ रुपये समझे न? एक मित्र ने अपने मित्र को सौ रुपये दिये। दोनों मित्र (थे), पश्चात् वे दोनों मर गये। जिसके पिता ने दिये थे उसने देखा कि मेरे पिता ने इसके पिता को सौ रुपये दिये थे। (उसने) दो मिंडा (शून्य) चढ़ाये। मिंडा समझे? शून्य। सौ के ऊपर दो शून्य चढ़ाई (इसलिए) दस हजार (हो गये।) उसने कहा कि भाई मेरे पिता ने तुम्हारे पिता को दस हजार रुपये दिये हैं, इसलिए लाओ। तुम अभी पैसेवाले हुए हो। पहले ने देखा कि सौ रुपये तो दिये (लगते हैं) परन्तु यदि स्वीकार करूँगा तो दस हजार माँगेगा। (इसलिए कहा)-सौ रुपये भी नहीं (दिये) पहले ने दो शून्य चढ़ाये, इसने निकाल डाले।

इसी प्रकार मन्दिरमार्गी श्वेताम्बरों ने किया कि भगवान के सिर पर मुद्रा और यह और यह चढ़ाकर दो शून्य चढ़ाये। स्थानकवासी ने देखा कि शास्त्र में मूर्ति तो है परन्तु यदि स्वीकार करेंगे तो फिर यह अधिक माँगते हैं - ये दस हजार। (इसलिए उन्होंने कहा) मूर्ति ही नहीं है। एक ने निकाल दी (निषेध कर दिया) और एक ने चढ़ा दिया। शोभालालजी!

उस भूमिका के योग्य ऐसा शुभभाव होता है। उस शुभ के असंख्य प्रकार हैं, उस प्रकार का शुभभाव हो, तब इसका लक्ष्य वहाँ जाता है। दया के प्रकार का शुभलक्ष्य हो तो पर को न मारूँ—ऐसा विकल्प होता है। वह असंख्य प्रकार के सहज शुभभाव होते हैं। समझ में आया? उनका यह कर्ता नहीं है। आहाहा!

ज्ञानी शुभभाव का कर्ता नहीं है। जैसे केवलज्ञानी लोकालोक के कर्ता नहीं परन्तु लोकालोक है अवश्य; इसी प्रकार समकिती शुभभाव का कर्ता नहीं परन्तु शुभभाव है अवश्य।

जैसे लोकालोक है, वैसे शुभ है। इतना बस! पररूप से है। आहाहा! समझ में आया? सम्यग्दृष्टि तो व्यवहार से मुक्त है। व्यवहार उसकी पर्याय में नहीं है। गजब बात है न! व्यवहार परद्रव्य में गिन दिया है। समझ में आया?

यहाँ कहते हैं कि स्व-पर शिष्य ऐसी इसकी प्रतिमा है। **जिसका वीतरागस्वरूप है...** उसे प्रतिमा कही है। **जिनके दर्शन ज्ञान से निर्मल चारित्र पाया जाता है, इस प्रकार मुनियों की गुरु-शिष्य अपेक्षा अपनी तथा पर की चलती हुई...** स्पष्टीकरण किया। ऊपर जो स्व-पर कहा था न? **निर्ग्रन्थ वीतरागमुद्रा स्वरूप है, वह जिनमार्ग में 'प्रतिमा' है,...** वीतरागमार्ग में तो सच्ची-सत्य प्रतिमा यह कही है। फिर उपचरितरूप से निक्षेप में डालते हैं। वह कहते हैं, देखो! **अन्य कल्पित है...** अन्य में दूसरे कल्पित मार्ग कहकर प्रतिमा स्थापित की है, वह तो कल्पित है। **और धातु-पाषाण आदि से बनाये हुए दिगम्बर मुद्रास्वरूप को 'प्रतिमा' कहते हैं...** देखो! धातु-पाषाण जो परद्रव्य है, उनकी आकृति को मूर्ति कहते हैं, वह व्यवहार है।

वह भी बाह्य आकृति तो वैसी ही हो वह व्यवहार में मान्य है। अर्थात् क्या कहा? कि जैसी दिगम्बर मुद्रा है, वैसी हो तो व्यवहार मान्य है। उसे कोई वस्त्र को लगा दे और टीका-टपला कर दे... यह क्या कहते हैं? बाजूबंध और गहने और (आंगी लगा दे) वह तो व्यवहार भी नहीं है। व्यवहार भी नहीं है। समझ में आया? देखो! है इसमें? **धातु-पाषाण आदि से बनाये हुए दिगम्बर मुद्रा स्वरूप को 'प्रतिमा' कहते हैं जो व्यवहार है।** लोकालोक है, केवलज्ञान जानता है अपनी पर्याय को... पर को जानता है—ऐसा कहना वह असद्भूतव्यवहारनय है। इसी प्रकार ज्ञानी को राग है—ऐसा कहना वह असद्भूतव्यवहारनय है। ज्ञानी को राग है ही नहीं। ज्ञानी को तो स्व और पर का ज्ञान स्वस्वरूप में अपने कारण से उत्पन्न हुआ है, वह है।

कहते हैं कि **धातु-पाषाण आदि से बनाये हुए दिगम्बर मुद्रा स्वरूप को 'प्रतिमा' कहते हैं, जो व्यवहार है। वह भी बाह्य आकृति तो वैसी ही हो वह व्यवहार में मान्य है।** समझ में आया? भगवान ऐसे प्रभु की अचिन्त्य वीतराग मुद्रा। स्वयं वीतराग थे न! ऐसा वीतरागपना जहाँ भासित हो... समझ में आया? जरा सा ढीला-ढाला किया या कोई करे तो वह वीतरागता मुद्रित मुद्रा नहीं रही। समझ में आया? इस प्रतिमा को ढीला करो, ऐसा यहाँ कहा, यह प्रतिमा वीतराग मुद्रित प्रतिमा नहीं रही। समझ में आया? ये वीतराग प्रतिमा है; इसलिए यहाँ शुभभाव होते हैं-ऐसा नहीं है। उस काल में जब शुभभाव होते हैं, तब इसका लक्ष्य वहाँ जाता है, इतनी बात है, इतनी मर्यादा है। उसे देखकर शुभभाव होता है—ऐसा नहीं है, वह तो परवस्तु है। पर को देखकर शुभ या अशुभ हो-ऐसा है नहीं। समझ में आया?

कहते हैं **धातु-पाषाण आदि से बनाये हुए दिगम्बर मुद्रा स्वरूप को 'प्रतिमा' कहते हैं जो**

व्यवहार है। वह भी बाह्य आकृति तो वैसी ही हो वह व्यवहार में मान्य है। आकृति अर्थात् बाह्यस्वभाव। समझ में आया? ऐसा जिसका स्वभाव। मुद्रा ऐसी 'जिनप्रतिमा जिनसारखी, वन्दै बनारसी....' बनारसीदास ने (कहा है) 'रंचमात्र दूषण लगे तो वह वन्दन योग्य नाहीं'। उसे टीका-टपला करे और उसे केसर लगावे (ऐसा तो) व्यवहार से भी नहीं हो सकता। ऐसी बात है भाई! यह तो सत्य की बात है। यह कहीं कोई पक्ष की बात नहीं है।

बाह्य आकृति तो वैसी ही हो... आकृति अर्थात् जैसा उसका स्वभाव, वैसा ऐसे दिखाव। अत्यन्त (वीतराग) मुद्रा! शुभभाव में वहाँ लक्ष्य जाये, बस इतना! वह भी समकिती तो शुभभाव से भी मुक्त है। समझ में आया? क्योंकि वह तो आस्रवतत्त्व है। आस्रव से तो भिन्न तत्त्व है और भिन्न है, वह आस्रवतत्त्व का भी कर्ता नहीं तो प्रतिमा और मन्दिर को करे, वह तो इसके शुभविकल्प में भी नहीं है। गजब बातें, भाई! समझ में आया? हीराभाई! बहुत दूर बैठे।

आगे फिर कहते हैं... देखो! यह जिनप्रतिमा। आहा! यहाँ पाठ में तो (ऐसा लिया है) **जिणमग्गे एरिसा पडिमा** वीतरागमार्ग में तो अन्दर वीतरागी प्रतिमा को जिनप्रतिमा कहा है। अन्य तो व्यवहार है, व्यवहार का ज्ञान कराते हैं। ज्ञान स्वयं से हो जाता है। समझ में आया? बहुत सूक्ष्म बात है!

जं चरदि सुद्धचरणं, जाणइ पिच्छेइ सुद्धसम्मत्तं।
सा होई वंदणीया णिग्गंथा संजदा पडिमा॥११॥

जो शुद्ध आचरण का आचरण करते हैं... शुद्ध आचरण। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, वह शुद्ध आचरण है। वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी स्थिरता (हुई), उसे शुद्ध आचरण कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? **जो शुद्ध आचरण का आचरण करते हैं तथा सम्यग्ज्ञान से यथार्थ वस्तु को जानते हैं...** आचरण करते हैं और जैसा है वैसा जानते हैं। **और सम्यग्दर्शन से अपने स्वरूप को देखते हैं...** लो! देखे अर्थात् माने। शुद्ध चैतन्यवस्तु निर्मल, निर्विकल्प वीतराग है, ऐसी दृष्टि से वस्तु को देखे-श्रद्धा करे। **इस प्रकार शुद्धसम्यक्त्व जिनके पाया जाता है... 'सुद्धसम्मत्तं'** है न? **'जं चरदि सुद्धचरणं, जाणइ पिच्छेइ'** और तदुपरान्त **'सुद्धसम्मत्तं'** ऐसा। यह अलग लिया है। **इसप्रकार शुद्धसम्यक्त्व जिनके पाया जाता है—ऐसी निर्ग्रन्थ संयमस्वरूप प्रतिमा है, वह वंदन करने योग्य है।**

शुद्धसम्यक्त्व जिनके पाया जाता है... शुद्धसम्यक्त्व का अर्थ ही पूरा तत्त्व, द्रव्य की दृष्टि, द्रव्य का ज्ञान और द्रव्य में संयम-यह सम्यक्। ऐसा **शुद्धसम्यक्त्व जिनके पाया जाता है...** आहाहा! समझ में आया? **जैसी निर्ग्रन्थ संयमस्वरूप प्रतिमा है...** निर्ग्रन्थ संयमस्वरूप प्रतिमा है। जैसे भगवान को ग्रन्थ नहीं, वैसे बाह्य प्रतिमा को ग्रन्थ-वस्त्र का ताना या कुछ होता नहीं तो उसे

व्यवहार से माना है, वह है। समझ में आया? ऐसी प्रतिमा वन्दन योग्य है। यह (अन्य) प्रतिमा वंदन योग्य नहीं है। ऐसा आया, इस हिसाब से तो। निश्चय से, हों! ऐई! नहीं तो दो भेद कैसे पड़ जायें? यह प्रतिमा आयी। आहाहा!

तब वे बहुत से स्थानकवासी कहते हैं न? ३१ वीं गाथा आती है कि भगवान की व्यवहार स्तुति वह स्तुति ही नहीं है। निश्चयस्तुति अपनी है। देखो! इसमें कहाँ प्रतिमा आयी? ऐसा कहते हैं। सब कहते हैं, देखो! इसमें आत्मा की स्तुति को भक्ति कहा है। भगवान की स्तुति भक्ति (की) ना की है परन्तु वह तो निश्चय की बात है। ऐसा बीच में होता है, बीच में विघ्नरूप एक दशा (आती है)। ***राग है वह विघ्नरूप है, कषाय है, अग्नि है, भट्टी है। हाय... हाय...!*** आया न यह? छहढाला में आया न? 'यह राग आग दाह दहै सदा।' अन्दर जलता है। अन्तिम बोल है। राग चाहे तो शुभ हो या अशुभ हो, अग्नि है, कषाय है। भगवान के प्रति उपयोग है न? उपयोग भगवान के प्रति है, इसलिए ही वह राग है और कषाय है, इसलिए वह अग्नि है। आहाहा! गजब बातें! ऐई!

ऐसी निर्ग्रन्थ संयमरूप प्रतिमा है, वह वन्दन करनेयोग्य है... आहाहा! ऐ वजुभाई! बहुत ऐसा करेंगे तो फिर यह कोई भगवान की प्रतिमा को मानेंगे नहीं। यह तो शुभराग आवे, उस काल में तब इसका लक्ष्य होता है, यह इतनी भूमिका है, बस इतना। समझ में आया? (शुभराग में) बहुत जोर देने जाये तो दृष्टि में से हट जायेगा। समझ में आया? दृष्टि का विषय नहीं। ***पर्याय, वह (भी जहाँ) दृष्टि का विषय नहीं तो फिर प्रतिमा और भगवान का मन्दिर, (वह) दृष्टि का विषय कहाँ से आया? निर्मल वीतरागी पर्याय भी दृष्टि का विषय नहीं है। समझ में आया?*** आहाहा! बात तो ऐसी है कि वस्तु के घर की यह बात है। समझ में आया?

वह वन्दन करनेयोग्य है... ऐसा कहा न पाठ में? **सा होई वंदणीया** ऐसा है न पाठ? वह वन्दनीय है। तब उसमें से यह निकलता है कि यह जिनप्रतिमा मन्दिर वह वन्दनीय नहीं। निश्चय से वन्दनीय है ही नहीं। व्यवहार का अर्थ अभूतार्थनय से-उपचार से कहने में आवे। ऐसी बात है। ऐई! आहाहा!

जाननेवाला, देखनेवाला, शुद्धसम्यक्त्व, शुद्धचारित्रस्वरूप... जाननेवाला, देखनेवाला, शुद्धसमकित, शुद्धचारित्रस्वरूप। शुद्ध चैतन्य, शुद्ध निश्चय सम्यग्दर्शन और निश्चयस्वरूप में स्थिरता शुद्धचारित्र हो, **निर्ग्रन्थ संयमरहित, इस प्रकार मुनि का स्वरूप है, वही 'प्रतिमा' है,...** वह प्रतिमा है-वीतरागभाव।

श्रोता : अट्ठाईस मूलगुण प्रतिमा...

पूज्य गुरुदेवश्री : अट्ठाईस मूलगुण प्रतिमा है—ऐसा यहाँ नहीं कहा। उनका व्यवहार है,

वह जिनप्रतिमा है-ऐसा नहीं कहा। उनका व्यवहार, हों! अन्य व्यवहार बाहर गया। विकल्प है, वह जिनप्रतिमा है-ऐसा यहाँ नहीं कहा।

श्रोता : जिन अर्थात् क्या?

पूज्य गुरुदेवश्री : जिन अर्थात् वीतराग। वीतरागमार्ग में वीतराग में से शुरु होता है। समझ में आया?

निर्ग्रन्थ संयमरहित, इस प्रकार मुनि का स्वरूप है, वही 'प्रतिमा' है,... वही 'प्रतिमा' है,... ऐसा है न? **'सा होई वंदणीया णिग्गंथा' 'सा होई'** ऐसा है न अन्दर? पाठ में है न? **'सा होइ वंदणीया'** इसका अर्थ किया है। यही होती है, ऐसा। **वही वंदन करने योग्य है; अन्य कल्पित वंदन करने योग्य नहीं है...** समझ में आया? वास्तव में वीतराग की प्रतिमा और मन्दिर भी निश्चय से वन्दन योग्य नहीं है। पण्डितजी! ऐसी बात है। सवेरे शाम भक्ति करे, (इसलिए) हो गया धर्म, जाओ! अपना स्वरूप क्या है (उसकी खबर नहीं)। भक्ति तो उसे कहते हैं- वीतरागी दृष्टि, वीतरागी ज्ञान और वीतरागी चारित्र, वह भक्ति है। आहा! फिर उस समय व्यवहार आता है। व्यवहारनय है न? आता है। उसमें इसे व्यवहार का उत्साह वर्ते (कि) हाँ, आवे न! आवे न! (ऐसा होता हो तो) इसका अर्थ कि व्यवहार का उत्साह वर्तता है, वह तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? ऐई! उदासभाव से बीच में आता है, आता है, बात ऐसी है।

और वैसे ही रूपसदृश धातुपाषाण की प्रतिमा हो, वह व्यवहार से वंदनेयोग्य है। देखो! व्यवहार से शुभभाव है; इसलिए व्यवहार से वन्दन कहने में आता है। व्यवहार ही पूरा हेय है। आहाहा! हेय को वन्दनयोग्य कहना, वह व्यवहार से कहने में आता है। व्यवहार से पूज्य है- ऐसा भी कहते हैं। व्यवहारनय से-अभूतार्थनय से व्यवहार पूज्य है। आहाहा! पद्मनन्दिपंचविंशतिका में है। ये लोग सब यह डालते हैं। तेरे स्व के जागे बिना और स्व के आश्रय बिना उस व्यवहार को व्यवहार (कहने में नहीं आता)। जाननेवाला जगे नहीं तो उसे व्यवहार भी कहने में नहीं आता। आहाहा! क्या हो?

अन्दर भगवान महाप्रभु चैतन्यमूर्ति है। वीतराग का कन्द है। अनन्त सिद्ध भगवान अन्दर पेट में स्थित हैं। आत्मा में अनन्त सिद्ध स्थित हैं। ऐसी सिद्ध की दृष्टि, सिद्ध का ज्ञान और सिद्ध का चारित्र (हो), उसे यहाँ वास्तव में जिनमार्ग में चैतन्यप्रतिमा, जिनप्रतिमा और उसे वन्दनयोग्य निश्चय से कहने में आता है। समझ में आया?

वैसे ही रूपसदृश धातुपाषाण की प्रतिमा हो, वह व्यवहार से वंदनेयोग्य है। देखो, उसमें वन्दनयोग्य का इनकार किया था न? (यहाँ कहते हैं) वह व्यवहार से वन्दनयोग्य है, परन्तु उसमें उत्साह आ जाये (कि) इतना आता है न! परन्तु जो राग है, वह खेद का कारण है, दुःख

का कारण है, उसका उत्साह है, उसे द्रव्यस्वभाव का अनादर है। समझ में आया?

आगे फिर कहते हैं: —

दंसण अणंत णाणं अणंतवीरिय अणंतसुक्खा य।
सासयसुक्ख अदेहा मुक्का कम्मट्ठबंधेहिं ॥१२॥
निरुवममचलमखोहा णिम्मिविया जंगमेण रूवेण।
सिद्धट्ठाणम्मि ठिया वोसरपडिया धुवा सिद्धा ॥१३॥

अब यहाँ सिद्ध की प्रतिमा को कहते हैं। यह सिद्ध प्रतिमा स्थापित करे, वह सिद्ध नहीं, हों! सिद्ध भगवान, वह चैतन्य प्रतिमा, सिद्ध भगवान वह चैतन्य प्रतिमा है। श्रीमद् में आता है, श्रीमद् में आता है न? चैतन्य प्रतिमा हो, चैतन्य प्रतिमा हो। श्रीमद् राजचन्द्र (ग्रन्थ में) पीछे आता है। जिन चैतन्य प्रतिमा हो। समझ में आया?

जो अनन्तदर्शन, अनन्तज्ञान, अनन्तवीर्य और अनन्तसुख सहित हैं;... ऐसे सिद्ध भगवान **शाश्वत् अविनाशी सुखस्वरूप हैं;...** लो! अधिक लिया, पहले में अनन्त सुख आ गया था परन्तु कैसा सुख है? वह शाश्वत् सुख है। अतीन्द्रिय आनन्द का सुख, स्व का सुख। अपने में सुख है, यह मान्यता छोड़कर कहीं भी शुभविकल्प है, उसमें सुख है (-ऐसा माने तो) दृष्टि मिथ्यात्व है। व्यवहारनय का जो विकल्प आवे, उसमें वह सुख है अथवा ठीक है अर्थात् वह है तो मुझे लाभ होगा, वह है तो ज्ञान होता है-ऐसा भी नहीं है। व्यवहार आता है, इसलिए इसका यहाँ ज्ञान होता है-ऐसा नहीं है। उसके आश्रय से यहाँ ज्ञान हुआ है, वह तो पराधीन ज्ञानपर्याय हुई। वह ज्ञानपर्याय ऐसी पराधीन है नहीं। ऐई! ऐसा मार्ग है।

वह अपना ज्ञानगुण स्व को-द्रव्य-गुण को जाने और राग को जानने सम्बन्धी का जो ज्ञान (हुआ), वह अपने सम्बन्धी का, अपने कारण से उत्पन्न हुआ (ज्ञान) है। राग के कारण वह ज्ञान उत्पन्न हुआ है-ऐसा नहीं है। लोकालोक के कारण से केवलज्ञान हुआ है-ऐसा नहीं है। आहाहा! ऐई! यह कहते हैं, देखो! सुख और अधिक डाला है, शाश्वत् सुख ऐसा कहा। शाश्वत् सुख हुआ, अन्दर से आत्मा प्रस्फुटित हुआ! अन्दर से आनन्द का घन, आनन्द की मूर्ति में से प्रगट हुआ सुख, उसे सुख कहते हैं। बाकी धूल में भी कहीं (सुख) नहीं है, पुण्य में भी सुख नहीं है, व्यवहाररत्नत्रय में सुख नहीं है। दोष में सुख नहीं है, पैसे में सुख नहीं है। समझ में आया? ***जब तक आत्मा में सुख है—ऐसा भास न हो और पर में सुख है—ऐसा भास रहे, तब तक उसने आत्मा का अनादर किया है। समझ में आया?***

शाश्वत् अविनाशी सुखस्वरूप हैं; अदेह हैं-कर्म नोकर्मरूप पुद्गलमयी देह जिनके नहीं

है;... जिन्हें कर्म और नोकर्म दोनों नहीं हैं। नोकर्म अर्थात् शरीरादि भावकर्म आदि तीनों नहीं हैं। समझ में आया? **पुद्गलमयी देह जिनके नहीं है; अष्टकर्म के बंधन से रहित हैं;...** ऐसी चैतन्य देह-अनन्त ज्ञान-दर्शन-आनन्द की प्रगट हुई अनन्त चैतन्य देह, वह जिनप्रतिमा है। आहाहा! निचली श्रेणी में अट्ठाईस मूलगुण आवे उसे प्रतिमा-जिनप्रतिमा नहीं कहा। दोष है, उसे जिनप्रतिमा कहे? पण्डितजी! दोषरहित जो वीतरागी दर्शन-ज्ञान दशा प्रगट हुई है, उसे जिनप्रतिमा कही है। वीतराग प्रतिमा चाहिए न? उसमें राग आवे, वह जिनप्रतिमा कहाँ है। आहाहा! समझ में आया? यह तो धीरे-धीरे पचाने जैसा है, भाई! ऐसी बातें हैं, भगवान!

श्रोता : दुकान की सम्हाल कब करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्हाल कब की थी? ऐई! दुकान की सम्हाल कब करता था यह? विकल्प आवे, बस! यह सब सेठ रहे, करोड़ों रुपये इकट्ठे करते हैं। कानपुर में लाखों रुपये सवेरे आवे, इकट्ठे करे। इकट्ठे कर सकते हैं? ले सकते हैं? ऐ... सेठ! सबेरे ये शोभालालजी आये। इन्हें एक महीने में इतने-दस लाख, बीस लाख कर देना पड़ेगा। बीड़ी में जितना अपने लिया, (वह देना पड़ेगा)। प्रतिदिन आवे, प्रतिदिन आवे। पच्चीस हजार, पचास हजार। यहाँ कहते हैं, लेना किसका और देना किसका? पैसा ले कौन और छोड़े कौन? आहाहा! ऐसी बात है।

यहाँ तो उसमें जो अशुभ विकल्प आया, वह भी वस्तु में नहीं है। यह शुभ आया -इसे दान में देने का शुभभाव आया, लो न! वह विकल्प आत्मा में नहीं है। उसे जिनप्रतिमा नहीं कहते। आहाहा! समझ में आया? कहो, हिम्मतभाई! यह तुम्हारे मन्दिर तो हो गया अब। लोग कहते हैं, बहुत लोग कहते हैं कि भावनगर में लोगों का उत्साह बहुत है।

श्रोता : प्रतिकूल संयोग होने पर भी...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिकूल संयोग कुछ नहीं। लाईनसर सब काम चलते हैं। वहाँ जला उसके घर में। यहाँ तो शोभायात्रा की जगह शोभायात्रा और.... वह तो सब होना हो, वह होता है। उसमें क्या है? आहाहा! कहा नहीं?

श्रीकृष्ण और बलदेव जैसे योद्धा समकिती और ऐसे द्वारिका जले-सुलगे। उसमें रानियाँ सुलगें, जिनमन्दिर सुलगे, द्वारिका में जिनमन्दिर थे न? जिनमन्दिर। द्वारिका सुलगी न! जिनप्रतिमा, जिनमन्दिर, रानियाँ, राजकुमार, राजकुमार की स्त्रियाँ, हाथी, घोड़ा सुलगते हैं। जलहल... जलहल... जलहल... उसका काल हो, वह न हो तब कहाँ होगा? अन्यत्र होगा? देखकर खड़े रहे। बस! भाई! अब कहाँ जायेंगे? अरे! जिनके आदेश से हजारों राजा खड़े हों, खम्भा अन्नदाता! समझ में आया? जिन्हें कदाचित् किसी समय कफ निकले, वह तो निरोगी शरीर हो,

परन्तु बर्तन न हो तो राजा ऐसे हाथ करे, कहाँ गये परन्तु ये सब पुण्य ? माँ-बाप सुलगते हैं। अब सुलगेंगे... अरे रे! हमारे बैठे माँ-बाप (सुलगेंगे) ! निकालो रे निकालो! बाहर निकालने जाते हैं, वहाँ हुकम हुआ, नहीं निकलेंगे। तुम्हारे दो का कहा था न! द्वीपायन बहुत क्रोध में आ गया था न! फिर इन्होंने (श्रीकृष्ण-बलदेव ने) माफी माँगी (तो) तुम दो बचोगे, 'तुम्हारे अतिरिक्त कोई नहीं बचेगा'-ऐसा कहा। आहाहा!

श्रोता : द्वीपायन मुनि कोई सम्यग्दृष्टि नहीं होंगे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मिथ्यादृष्टि थे।

यहाँ तो कहना है कि कैसे योद्धा खड़े (रहे)। रत्न के कंगूरे-स्वर्ण के गढ़, वे घास की तरह सुलगने लगे। बापू! उसकी पर्याय का काल हो, वैसा होता है। परन्तु उदास हैं, जगत से उदास हैं! वह यह विकल्प आवे, उससे भी तू उदास है। ऐसे स्वरूप को भगवान ने यहाँ जिनस्वरूप और जिनप्रतिमा कही है। आहाहा! **अष्टकर्म के बंधन से रहित हैं; उपमा रहित हैं।** विशेष कहेंगे...

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

५

श्री समयसार, गाथा १९ प्रवचन नं. ८१

दिनांक २०-१०-१९६६

जीव अधिकार, १९ वीं गाथा। टीका चलती है। देखो! दृष्टान्त आया न पहला? दृष्टान्त। घड़ा है न घड़ा। घड़े के स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि भाव में-उसके भाव में और उसके आकार में **पुद्गल के स्कन्धों में....** उन पुद्गल स्कंधों में। समझ में आया? **आकार परिणत हुए पुद्गल के स्कन्धों में 'यह घट है'....** यह घड़ा है। बराबर है न? घड़ा समझते हो न? घड़ा। यह घड़ा है। **'यह घट है'....** यह घड़ा है। **'यह घट है' घड़े में 'यह स्पर्श, रस, गंध, वर्ण आदि भाव तथा चौड़े, गहरे, उदराकार आदिरूप.....** घड़े में पुद्गल स्कंध है और पुद्गल स्कंध में घड़ा है। **इस प्रकार वस्तु के अभेद से अनुभूति होती है,...** यह तो बराबर है, कहते हैं। यह ज्ञान होता है, वह तो बराबर है।

इसी प्रकार.... इस दृष्टान्त से **कर्म-मोह आदि अन्तरंग परिणाम....** आत्मा में विकारी पुण्य-पाप के भाव, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम-क्रोध और कर्म जड़ आदि। **तथा नोकर्म-शरीरादि बाह्य वस्तुएँ-सब पुद्गल के परिणाम हैं....** ये पुण्य-पाप के भाव भी पुद्गल के परिणाम हैं; आत्मा के नहीं। आत्मा चैतन्य ज्योत के तो चैतन्य प्रकाश के स्वभावरूप ही परिणाम होते हैं। विकार परिणाम, कर्म और नोकर्म-शरीर आदि ये परिणाम कैसे हैं? कि **पुद्गल के परिणाम हैं और आत्मा का तिरस्कार करनेवाले हैं...** आत्मा का अभाव मनानेवाले हैं। उन्हें मानने से (अर्थात्) 'इसमें हूँ' मानने से आत्मा का अभाव होता है। (ये भाव) आत्मा का तिरस्कार करनेवाले हैं। आहा...! शुभ-अशुभभाव, यह शुभ और शुभ में मैं हूँ; ये पुद्गल शुभपरिणाम मेरे हैं—ऐसा मानने से आत्मा का तिरस्कार होता है। आहा...! समझ में आया?

भगवान आत्मा चैतन्य देव दिव्यशक्ति (स्वरूप है)। पहले आ गया है। देव.. देव.. देव.. स्वयं देव है। चैतन्य आनन्द आदि लक्ष्मी सम्पन्न भगवान आत्मा है। उसे ये पुण्य परिणाम में, पाप के भाव में, कर्म-शरीर आदि क्रियाएँ होती हों, उनमें मैं हूँ, उनमें मैं हूँ, अर्थात् मैं (और) वे एक हैं—ऐसा माननेवाला ये पुद्गल आदि, रागादि परिणाम आत्मा का तिरस्कार करनेवाले हैं, नुकसान पहुँचानेवाले हैं। उन्हें अपना मानने से आत्मा को नुकसान है। समझ में आया?

वह चैतन्य का स्वरूप नहीं है। ये रागादि भाव, ज्ञायक चैतन्य ज्योति का-चैतन्य का

स्वरूप नहीं है, तथापि उनमें स्वयं है—(ऐसा मानता है)। **उनमें 'यह मैं हूँ'...** ऐसा है न ? आत्मा का तिरस्कार करनेवाले अर्थात् रागादि में अस्तित्व स्वीकारने से, रागादि में अपना (अस्तित्व मानने से), उनमें अस्ति मानने से आत्मा का तिरस्कार होता है। बराबर है ? अब बराबर है।

श्रोता :.....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आगे उन्हें माने तो आत्मा उनसे पर है, उसका तो इसे भान भी नहीं होता। आहाहा! समझ में आया ? ये पुद्गल के परिणाम (अर्थात्) एक चैतन्यराम आनन्दकन्द के अतिरिक्त पुण्य-पाप, शरीर-कर्म सब पुद्गलपरिणाम हैं। बस! एक बात है-एक ओर राम और एक ओर गाँव! गाँव अर्थात् समूह! विकारीभाव, कर्म, शरीर—इनमें मैं, इनमें मैं, यह मैं, इनमें मैं, उस वस्तु में 'मैं पना' मानने से अपना चैतन्यस्वरूप है, उसका अनादर होता है। समझ में आया ? अपना जो 'मैं पना' है, उसका भाव नहीं रहता। समझ में आया ?

उनमें 'यह मैं हूँ'.... देखो, भाषा! पुण्य-पाप के भाव में (अर्थात्) उनमें 'यह मैं हूँ'—ऐसा माना; इसलिए दृष्टि तो वहाँ रही। रागादि भाव पुण्य, दया, दान, व्रत आदि शुभभाव में 'मैं हूँ'—इसका अर्थ ही (यह) कि उनमें मैं अर्थात् स्वयं तो उनमें ही है, स्वयं उनसे अलग नहीं। समझ में आया ? **उनमें 'यह मैं हूँ'....** देखा ? **उनमें 'यह मैं हूँ'....** यह मैं हूँ। पुण्य के परिणाम, पाप के भाव, देह की दशा, कर्म का उदय आदि दशा—यह मैं हूँ—ऐसा मानने से अपना अस्तित्व जो भिन्न है, उसका अनादर (होता है)। वे तिरस्कार करनेवाले (परिणाम) हैं। समझ में आया ? यह एक बोल हुआ।

इस प्रकार और आत्मा में.... अब ऐसा लिया। उनमें मैं हूँ-ऐसा कहा (और) आत्मा में वे हैं—ऐसा मानता है। पारस्परिक है न! **आत्मा में 'यह कर्म-मोह आदि अन्तरंग....** परिणाम। आत्मा में रागादि परिणाम है, आत्मा में रागादि परिणाम हैं। पहले, रागादि परिणाम में आत्मा है - ऐसा कहा था। अब, इस आत्मा में रागादि परिणाम हैं (-ऐसा कहते हैं)। आत्मा में कर्म, शरीर है; आत्मा में शरीर और कर्म है। मुझमें कर्म है, मुझमें शरीर है, मुझमें राग है, मुझमें पुण्यभाव, दया, दान, वृत्ति मुझमें (अर्थात्) आत्मा में है। **आदि बहिरंग, आत्म-तिरस्कारी....** वे आत्मा का तिरस्कार करनेवाले हैं।

श्रोता : पुण्य तिरस्कार करता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य तिरस्कार करता है।

श्रोता : पुण्य से तो भगवान मिलते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुण्य से भगवान कहाँ मिले ? 'पुण्य फला अरहन्ता'-ऐसा कहते हैं,

समाचार पत्र में आता है। पुण्य से तो अरिहन्तपद मिलता है। अरे... ! यह कहाँ बात है ? वहाँ तो पुण्यफल तो सामग्री और संयोग की बात है। समवसरण और वह पुण्य-यह तो बाहर का संयोग दे। ***पुण्यभाव, आत्मा के स्वभाव का तिरस्कार करनेवाला है।*** कहो, वैद्यराजजी ! कितना ढीला करना है ? रामजीभाई कहते हैं, भाई ! थोड़ा ढीला करो।

यहाँ तो ऐसा कहते हैं (कि) यह शुभभाव हो, परन्तु इसमें मैं हूँ और यह मुझमें है (-ऐसा मानने से) तो आत्मा का अनादर होता है। वास्तविक अस्तित्व तत्त्व जो है, उसका निषेध हो जाता है। आहाहा ! समझ में आया ? यह थोड़ा-थोड़ा ध्यान रखे तो गुजराती समझ में आये। अब यहाँ तो फिर कहाँ तक... ? समझ में आया ?

श्रोता : पुण्य बहुत लाभ देनेवाला है ! यही बात सुनी है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो भगवान परमेश्वर और सन्त, मुनि तथा ज्ञानी, जैसा है वैसा कहते हैं। आहाहा ! भगवान जहाँ तू है, वहाँ पुण्य के, पाप के परिणाम, कर्म, शरीर नहीं है और जहाँ तू नहीं—ऐसे पुण्य-पाप और कर्म में आत्मा नहीं। आहाहा ! समझे ? यहाँ तो अस्ति सिद्ध करना है न यहाँ तो ? जीव-अजीव अस्तित्व सिद्ध करना है। वहाँ कर्म, कर्ता-कर्म सिद्ध करना है। जिस स्थान में जो सिद्ध करना हो, वह हो न ?

भगवान आत्मा अपना चैतन्यमूर्ति अनादि-अनन्त ध्रुव चैतन्यस्वभाव है। उसे पर से भिन्न अपने स्वरूप को न मानकर अनादि से अज्ञानी इन पुण्य के परिणाम, पाप के भाव और शरीर की क्रिया में रुक गया, अटक गया। अर्थात् 'यह मैं हूँ, यह मैं हूँ, यह मैं हूँ और ये सब मुझमें है'—(ऐसा मानता है)। इसलिए 'मुझमें है'-उन्हें यह भिन्न कैसे करे ? समझ में आया ? ये सब पुण्य-पाप के कृत्रिम क्षणिक विकारी भाव हैं। दया, दान, भक्ति षट्कर्म आदि के परिणाम विकारी हैं। आहा ! निर्विकारी चैतन्यधातु में ये नहीं, तथापि 'ये मुझमें हैं'-(ऐसा मानने से) उसमें तेरे चैतन्यस्वरूप का-पूर्ण स्वरूप का अनादर हो जाता है, तिरस्कार होता है, तिरस्कार होता है। भगवान आत्मा का (तिरस्कार होता है)। उन तिरस्कार करनेवालों का आदर करने से इसका तिरस्कार होता है, अनादर हो जाता है। समझ में आया ?

भगवान ! तेरी दृष्टि के फेर से तिरस्कार और अतिरस्कार की बात है। भगवान चैतन्यस्वरूप अनादि-अनन्त स्वयंसिद्ध अकृत्रिम-अकृत ऐसा आत्मा का स्वरूप शुद्ध है। है-सत्; उस सत् को सत् स्वभावरूप से भिन्न न मानकर राग और पुण्य मैं और वे मुझमें हैं—ऐसे दो में एकपना मानने से अपने भिन्नपने का नाश होता है। भिन्नपने का दृष्टि में नाश (होता है)। दृष्टि में नाश होता है। वस्तु तो वस्तु रहती है, परन्तु मैं हूँ नहीं, यह वह मैं और ये मुझमें (-ऐसा मानता है) ? आहाहा ! समझ में आया ?

पुद्‌गल-परिणाम हैं.... आत्म-तिरस्कारी पुद्‌गल-परिणाम हैं.... अर्थात् कि आत्मा में पुद्‌गलपरिणाम हैं, आत्मा में ये पुद्‌गलपरिणाम हैं। पहले (ऐसा) था—इन पुद्‌गलपरिणाम में आत्मा है। यह (कहते हैं) आत्मा में पुद्‌गलपरिणाम हैं। **इस प्रकार वस्तु के अभेद से....** इन दोनों को एक मानने से, ऐसा। **इस प्रकार वस्तु के अभेद से...** समझ में आया? शरीर की क्रिया मैं करता हूँ—इसका अर्थ कि उसमें मैं हूँ, उसमें मैं हूँ और वह शरीर मुझमें है। शरीर मुझमें है अर्थात् मैं भिन्न चैतन्य नहीं। ऐसा माननेवाला। **इस प्रकार वस्तु के** एकपने से **अभेद से जब तक अनुभूति है,...** ऐसी दो को एकपने की मान्यता का अनुभव है। **तब तक आत्मा अप्रतिबुद्ध है....** तब तक आत्मा स्वसंवेदनज्ञान के भानरहित है। आहा...! बराबर है?

शिष्य का प्रश्न था कि महाराज! ऐसा अज्ञानपना, अप्रतिबुद्धपना कितने काल रहेगा?- ऐसा पूछा था न? पहले ऊपर प्रश्न किया था न? कितने काल रहेगा? कोई मनुष्य कहे कि हमारे यह दरिद्रपना कितने काल रहेगा?-ऐसा पूछे हैं या नहीं? समझे न?

हमारे अन्दर बहुत व्यक्तिगत पत्र आते हैं। एक व्यक्ति का ऐसा पत्र आया कि अब यह हमारा दरिद्रपना कितना रहेगा? किसी ज्योतिष में देखो। ज्योतिष में देखो नहीं परन्तु अपने ज्ञान में देखो। इस प्रकार पत्र आया। कहो, अब हम देखने जायें वहाँ! ऐसा पत्र आया, पत्र कि यह दरिद्रपना हमारे कितने काल रहेगा? कहीं शान्ति नहीं आती। एक में से एक, दूसरे में से तीसरा और कुछ न कुछ व्यवधान खड़ा होता है। लड़को को कमाने छोड़ते हैं, पैसे देते हैं, पाँच-दस हजार, बीस हजार पैसे दूसरे बेचारे दें परन्तु कहीं मेल खाता नहीं तो यह कहाँ तक ऐसा रहेगा? कुछ ज्ञान में भासित होता है? ऐ... जयन्तीभाई! ऐसा पूछते हैं। आहाहा! कितने ही व्यक्तिगत पत्र आते हैं। पैसा बहुत है न! उन्हें ऐसा है कि महाराज पुण्यशाली हैं और उन्हें माननेवाले पुण्यशाली। पैसा तो करोड़ों रुपये पड़े हैं।

श्रोता : दुःख मिटाना हो तो आवे ही न!

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु क्या दुःख? इस जन्म-मरण का दुःख है कि यह दुःख है? तेरे आत्मा के आनन्द को भूलकर तू दुःख मानता है। विकार में तू मानता है, वह दुःख है; दुःख संयोग का है नहीं। प्रतिकूल संयोग और अनुकूल संयोग सुख-दुःख है ही नहीं। आहाहा! अब जो इसमें प्रतिकूल मान्यता की है (कि) मुझमें आनन्द नहीं, परन्तु इस राग में और इसमें आनन्द है, यह दुःख की मान्यता, यह मिथ्यात्व की मान्यता इसने खड़ी की है। इसने खड़ी की है। उसे टालना-इसे टालना है या दूसरा कोई टाल देगा? समझ में आया?

श्रोता : महाराज! उसका उत्तर क्या देते हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ उत्तर कहाँ देते हैं? एक पत्र-वत्र लिखते नहीं। मुफ्त में बेचारे के

पत्र जाते हैं। पाँच-पाँच पैसा (है) ? क्या बैठता है ? मुफ्त में जाता है। वह कौन लिखे ? यहाँ हमें कहाँ फुरसत है ? ऐसे पत्र लिखने की फुरसत नहीं, कहने की भी फुरसत नहीं। उसका पत्र व्यर्थ जाता है।

यहाँ तो कहते हैं कि भाई ! तुझे दु:ख है, (वह) किसका है ? जो तुझे दु:ख होता है, वह किसका है ? किसका समझे ? किस प्रकार का है ? तेरा आत्मा आनन्दस्वरूप है, उसे पुण्य-पापवाला मानना, पुण्य-पाप के विकारवाला मानना, उसे भिन्न न मानना, वह तुझे दु:ख है। अब वह दु:ख खड़ा किसने किया है ? उत्पत्ति इसने की है।

पुण्य-पाप मैं... पुण्य-पाप मैं... पुण्य-पाप मैं... शरीर मैं, इसकी रक्षा करूँ, इसकी रक्षा करूँ... धूल में भी नहीं होती, सुन न ! शरीर की रखा करूँ, कर्म की रक्षा करूँ, अच्छे कर्म बाँधू, अच्छे कर्म बाँधू। तुझे अभी बाँधना है न ? छूटना नहीं है न ? मूढ़ है। अच्छे कर्म बाँधू और शरीर को अच्छा रखूँ और पुण्य-पाप ठीक है—ऐसा मानना, उसमें आत्मा है—ऐसा इसने माना है। यही मिथ्यादृष्टि का महान अनन्त दु:ख है। कहो, इस दु:ख को टालने की कला तो (यह है कि) 'उनमें मैं नहीं और मुझमें मैं हूँ'—ऐसा भेदज्ञान करना, वह दु:ख टालने की कला है। आहा ! वह न करे और (कहे कि) कोई दूसरा उपाय बताओ परन्तु दूसरा किसका होगा ? कहो, समझ में आया इसमें ?

श्रोता : रोटियाँ न मिलती हो और दु:ख हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री : दु:खी किसके कारण है ? रोटियाँ नहीं मिलती, इसलिए दु:खी है ? कहो ! इसने माना है कि मेरा यह शरीर, इसे अनुकूल अनाज आदि नहीं-ऐसी इसकी मान्यता इसे दु:खरूप है। आहा ! समकिती ज्ञानी... यह तो अभी और महँगा हो गया, नहीं तो पाँच रुपये, दस रुपये महीने में मिले और दूसरे को लाखों मिले, पाँच-दस की रोटी और सब्जी खाये (परन्तु अन्दर में) आनन्द है। हम दु:खी हैं ही नहीं, ऐसा माने। हम दु:खी हैं ही नहीं, दुनिया के पास दुनिया रही।

श्रोता : जहाँ समता आ गयी...

पूज्य गुरुदेवश्री : समता अर्थात् यह समता। तुम कहते हो, वैसी समता नहीं। यहाँ तो पुण्य-पाप का राग मेरा नहीं और मुझमें पुण्य-पाप हैं ही नहीं। मैं तो आनन्दस्वरूप ज्ञायकमूर्ति हूँ - ऐसा भेदज्ञान हुआ। दो स्त्रियाँ हों, पाँच रुपये मिलते हों, रोटी और छाछ खाये (तो भी) आनन्द है। क्यों है ? भाई ! आनन्द है। हम दु:खी नहीं, तुम दु:खी हो। पैसेवाले, स्त्री-पुत्र पचास, सौ-सौ, पाँच सौ-पाँच सौ लोग ऐसे खम्मा... खम्मा (करते हों), सोने की गाड़ियाँ (हों), तू दु:खी है। समझ में आया ? (कोई इसे कहे) भाई ! तुम्हें कुछ मदद करें ? (तो ऐसा कहे) हम सुखी हैं, हम सुखी हैं। तू माँगता है कि यह चाहिए... यह चाहिए... यह चाहिए। आत्मा चाहिए,

इसकी तुझे खबर नहीं है। तू महादुःखी है। सम्यग्दृष्टि (जीव) पैसेवन्त को, तृष्णावन्त को- आत्मा के भानरहित को दुःखी देखता है, वह दुःखी देखता है। लोग कहते हैं, सुखी है। धूल में भी नहीं। सुन न अब। तेरी सोने की मोटर-फोटर वह तो धूल बाहर में रह गयी, वहाँ सुखी कहाँ से आया? सम्यग्दृष्टि अपने में आनन्द मानता है, वह राग में आनन्द नहीं मानता, पुण्य के परिणाम में नहीं मानता, शरीर में नहीं मानता, संयोग में नहीं मानता। इस दृष्टि से दूसरे को देखता है, दूसरे को भी इस दृष्टि से देखता है। यह पैसावाला करोड़, दो करोड़ (वाला) सुखी? -कि नहीं, नहीं। कौन कहता है सुखी है? बेचारा महादुःखी है।

श्रोता : पैसा है, इसलिए (दुःखी है) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पैसा है, इसलिए नहीं। पैसा मेरा और उनका मुझे रक्षण करना, इससे हम सुखी-ऐसी मान्यता से उसे दुःख है। आहाहा! ऐ... सेठी! तुम्हारा बड़ा बँगला देखकर उसे ऐसा न हो जाये, आहाहा! वाह...! बड़ा बँगला, पाँच-पाँच करोड़ रुपये, और ऐसा और वैसा... बेचारा दुःखी-दुःखी है।

मुमुक्षु : बँगला है, इसलिए दुःखी है।

उत्तर : बँगला है, इसलिए नहीं। वह मेरा और मैं उसका (-ऐसा मानता है, इसलिए दुःखी है)। मेरी चीज़ भिन्न है, उसका भान नहीं, इसलिए यह दुःखी है। क्योंकि आनन्दमूर्ति आत्मा की इसे खबर नहीं है। इसलिए पर में झपट्टे मारता है कि यहाँ से सुख (मिलेगा), यहाँ से सुख (मिलेगा)। महामूढ़ दुःखी है। वजुभाई! ऐसे कैसे होगा? करोड़ रुपये के बंगले और ऐसे चारों ओर संगमरमर (हो)। क्या कहलाता है? संगमरमर। ऐसी कारीगरी कर-करके ऐसे लटके-लटकाये हों-गोल-गोल चक्कर न! समझे न? ऐसे पूरे बँगले की (शोभा की हो)। आहा! एक करोड़, दो करोड़, साढ़े तीन करोड़ का बँगला। एक जगह नहीं था? कहीं था। मैसूर! मैसूर का तो साढ़े तीन करोड़ का था। वह देखने गये थे। परन्तु एक नया मकान हुआ है। कैसा वह... ? बैंगलोर, बैंगलोर... बैंगलोर में नहीं? अपने जहाँ उतरे थे वहाँ साथ में बाहर था। वह बड़ा करोड़ का, दो करोड़ का, तीन करोड़ का हुआ है। सरकार का है। ऐसे संगमरमर के गोल चक्कर कर-करके ऐसे-ऐसे लटकाये हैं। धूल में भी सुख नहीं है। वह कुर्सी में बैठा, महादुःखी है बेचारा।

श्रोता : कुर्सी है, इसलिए दुःखी है?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह कुर्सी है, इसलिए नहीं। वह कहता है कि मैं यहाँ इसमें बैठा हूँ, मैं बंगले में बैठा हूँ, मैं कुर्सी में बैठा हूँ, इसकी क्रिया करने में बैठा (हूँ-ऐसा मानता है), वह मूढ़ है, वह दुःखी है। चैतन्यस्वरूप है, उसमें बैठना चाहिए। समझ में आया? आहाहा! ऊपर पंखा चलता हों! वह आता है न? ऐसा झूलता पंखा (होता है), बाहर से डोरी खींचते हैं।

श्रोता : अब तो बिजली का हुआ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अब बिजली का हुआ होगा।

श्रोता : ऐसे बटन दबावे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो हमने उस दिन देखा न! बड़ोदरा में तीन हजार का मासिक वेतन था। बडोदरा (संवत्) १९६३ के साल (तब) बिजली नहीं थी। (संवत्) १९६३ में हमारे अफीम का केस चला था। डेढ़ महीने केस चला था। उसका महीने का तीन हजार का वेतन था। १९६३ के साल में। एक यूरोपियन बाहर जंगल में रहता था। वहाँ हमारा केस चलता था। खोटा-झूठा केस था। (वह) बैठे फिर बड़ा ऐसा कपड़े का होता है, डोरी डालकर लकड़ी में से बाहर निकाले। बाहर से दूसरा खींचता हो। फिर तो अपने कहाँ कोर्ट देखी है? १९६३ में देखी थी।

एक कोर्ट अभी और देखी थी। कहाँ थी? बड़ोदरा में नहीं? बड़ोदरा में एक कोर्ट है। जिस कोर्ट में हमारा केस चला था, उस कोर्ट में हमारा व्याख्यान हुआ था। कहा - यहाँ कोर्ट में हम आते थे। तब (किसी ने कहा) हाँ; ऊपर केस चलता है, नीचे व्याख्यान चलते हैं। आहाहा! (संवत्) १९६३ की बात है, हों! संवत् १९६३। धूल में भी सुख नहीं। वहाँ कोर्ट में बैठा बेचारा आकुलता... आकुलता... आकुलता... (भोगता है)। यह किया... यह किया... यह किया... दो हजार का वेतन मिलता है... फिर यह करूँगा, फिर यह करूँगा... उसकी इर्द-गिर्द कितनी होती हैं? दुःखी... दुःखी... दुःखी... आत्मा आनन्दमूर्ति की मान्यता बिना, उसकी नजर पड़े बिना, राग से भेदज्ञान किये बिना सब प्राणी दुःखी हैं। लो! कहो!

बाहर में सुविधा का पार नहीं होता। यहाँ तो कहते हैं कि यह संयोग, वह मैं और संयोग मुझमें हैं, (यह भाव आत्मा का) तिरस्कार करनेवाले हैं। वे जीव दुःखी हैं। समझ में आया? **इस प्रकार वस्तु के अभेद से....** देखो, यहाँ भाषा है न? जिसे पुण्य-पाप के भाव, शरीर, कर्म में एकपने की बुद्धि है और वे मुझमें हैं—ऐसी एकपने की बुद्धि है; मैं उनमें, वे मुझमें (-ऐसी) एकपने की बुद्धि, वह **अनुभूति है, तब तक आत्मा अप्रतिबुद्ध है...** अर्थात् दुःखी है। वहाँ तक दुःखी है, वहाँ तक स्वसंवेदन ज्ञान का अभाव है, वहाँ तक वह मूर्ख है। ग्यारह अंग पढ़ा हो, नौ पूर्व पढ़ा हो, पाँच हजार-दस हजार... दस हजार तो कम हो जाते हैं, क्योंकि दस हजार का तो इसे वेतन है। समझे न? लाख-लाख महीने का वेतन होता है। लो न! ऐ...! सुमनभाई को दस हजार का वेतन है। रामजीभाई के पुत्र को। दस हजार (मिलते हैं), ऐसी लोग बातें करते हैं। हम कहाँ देखने गये थे? इन्हें भी पता नहीं, उसके पिता को। अमेरिका में दस हजार का वेतन है परन्तु क्या है? धूल है। दस हजार हो या लाख हो परन्तु जब तक पर के कारण मुझे सुविधा है और पर के कारण न हो तो मुझे असुविधा है—ऐसा माननेवाले जब तक हैं, तब तक वे दुःखी

हैं। आहाहा! समझ में आया? रागादि भाव हो तो ठीक, ये संयोग हो तो ठीक, उनके कारण मुझे सुविधा रहे-सुविधा रहे, बाहर के साधन हों तो सुविधा रहे...

श्रोता : भगवान के पास जाया जाये।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पुण्य अच्छा हो तो भगवान के पास जाये। वह दुःखी है।

श्रोता : सम्यक्त्व प्राप्त करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यक्त्व धूल में भी प्राप्त नहीं करे। सम्यक्त्व तो इस सुविधा के संयोग और संयोग की ओर के लक्ष्यवाले राग से भिन्न आत्मा को देखे, तब सुखी और समकिती होता है। आहाहा! समझ में आया? वहाँ भगवान के पास तेरा सम्यक्त्व नहीं है।

इस प्रकार वस्तु के अभेद.... अर्थात् एकपने से। राग के परिणाम को एक (पने माने), आत्मा और राग को एकपने माने, आत्मा और शरीर को एकपने माने, आत्मा और कर्म को एकपने माने, वहाँ तक वह अभेदबुद्धि अर्थात् दो में एकपने की मान्यता है, तब तक मिथ्यादृष्टि है और तब तक वह दुःखी है। समझ में आया?

श्रोता : दुःखी अर्थात्....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह क्या है? इस अप्रतिबुद्ध का अर्थ क्या है? भानरहित है, मूर्ख।

श्रोता : भले मूर्ख हो परन्तु सुखी तो होता है न!

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा में आनन्द है—ऐसा भान नहीं और यहाँ आनन्द है—ऐसा माने वह मूर्ख है-ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? पहले इतनी बात की।

शिष्य ने पूछा था कि प्रभु! यह अप्रतिबुद्ध कब तक रहता है? कि जहाँ तक राग से लेकर पर किसी भी रजकण या पदार्थ-सोना या रूपा / चाँदी ढेर आदि चीज़ हो, उसमें मैं हूँ (-ऐसा माने तब तक अप्रतिबुद्ध रहता है)। यह भगवान का समवसरण होता है न? उसमें मैं हूँ अर्थात् उससे लाभ होता है, उससे मुझे लाभ है, इसका अर्थ हुआ कि उसमें मैं हूँ और वह मुझमें है। यही बात कहते हैं। उपदेश और विकल्प दोनों आत्मा से भिन्न हैं। वह उपदेश और विकल्प अपना माने, तब तक मिथ्यादृष्टि-अभेदबुद्धि मिथ्यादृष्टि दुःखी है। कहो!

श्रोता : उपदेश....

पूज्य गुरुदेवश्री : उपदेश कहा परन्तु उपदेश तो परपदार्थ है। उपदेश और सुनने का जो विकल्प / शुभभाव आया, उसमें मैं हूँ या उसके कारण मुझे लाभ है-यह मान्यता अभेदपने की मिथ्यादृष्टि की है। आहाहा! उसे संयोग से हटकर भेदज्ञान करने का अवसर नहीं। आहाहा!

कठिन बात, भाई! ऐ..! देवानुप्रिया! समवसरण में लाभ होगा-इसका अर्थ हुआ कि मैं आत्मा कहाँ हूँ? वह मुझमें है।

श्रोता : परिवार में मैंपना माने, उसकी अपेक्षा तो अच्छा है।

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में, दोनों एक प्रकार के हैं। ऐसा कि परिवार में अपनापना मानता है, उसकी अपेक्षा भगवान को अपना माने (वह तो अच्छा न)! परन्तु सब परसन्मुख का राग एक ही है। संयोग की ओर के लक्ष्य से आकुलता उत्पन्न हुए बिना नहीं रहती। स्वभाव के आश्रय से अनाकुलता उत्पन्न होती है, वहाँ आकुलता उत्पन्न नहीं होती। एक ही बात, एक ही बात।

श्रोता : कहा कि... तो होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो निमित्त से कहा, परन्तु पर से भेद करे, तब प्रतिबुद्ध होता है। अब आता है, देखो! अब आता है। अभी तो अप्रतिबुद्ध की व्याख्या चलती है। समझे न? पाठ तो इतना है। अब प्रतिबुद्ध की व्याख्या। पाठ का अर्थ हो गया परन्तु उसमें से एक आचार्य की शैली है न! अब प्रतिबुद्ध की व्याख्या करते हैं। **और जब कभी,...** अर्थात् अपने आत्मा के समभाव के काल में **जैसे रूपी दर्पण की स्व-पर के आकार का प्रतिभास करनेवाली स्वच्छता ही है....** क्या कहते हैं? दर्पण है न? रूपी दर्पण। दर्पण कहते हैं न? अरीसा। वह स्व-पर के आकार का प्रतिभास (करनेवाला है)। दर्पण अपने आकार के स्वरूप को बताता है, पर को बताता है। अग्नि सामने हो तो अग्नि की ज्वाला और उसका यहाँ स्वरूप बताता है, परन्तु वह अग्नि यहाँ नहीं आयी, दर्पण में अग्नि नहीं, दर्पण में ज्वाला नहीं।

रूपी दर्पण की स्व-पर के आकार का प्रतिभास करनेवाली... देखो भाषा! रूपी दर्पण की स्व-पर के स्वरूप का प्रतिभास करनेवाली स्वच्छता ही है। दर्पण की तो स्वच्छता ही है। **और उष्णता तथा ज्वाला...** दो ली है, भाई! अर्थपर्याय और आकृति की पर्याय। अग्नि है, उसकी उष्णता उसकी अर्थपर्याय है और ज्वाला आकार है, व्यंजनपर्याय है। घड़े में दो लिये थे न? घड़े में दो लिये थे। उसके वर्ण, गन्ध, रस, स्पर्श, भाव और उसकी चौड़ाई का घेराव आदि आकार। यहाँ तो द्रव्य व्यंजनपर्याय और अर्थपर्याय स्वतन्त्र स्वयं से होती है-ऐसा सिद्ध करते हैं। वह अग्नि की उष्णता, वह उसका स्वभाव है। वह अर्थपर्याय है और उसका आकार-ज्वाला (होती है), वह द्रव्य की व्यंजनपर्याय है। वह उष्णता और ज्वाला अग्नि की है, वह दर्पण में आयी नहीं। दर्पण में तो दर्पण की स्वच्छता है। आहा!

दर्पण में ऐसा दिखता है न? दर्पण में। वह दर्पण की अवस्था है। अग्नि, उष्णता, आकार-बाकार वहाँ आया ही नहीं। वह तो दर्पण का आकार है। दर्पण का आकार है, वहाँ ऐसी ज्वाला, आकार दिखता है न? वह दर्पण का आकार है। अन्दर उस प्रकार के स्कन्ध का आकार

है और वह ऐसी ज्वाला लाल-लाल दिखती है, वह भी दर्पण की स्वच्छता की पर्याय है। उसकी (अग्नि की) पर्याय यहाँ नहीं आती। समझ में आया?

रूपी दर्पण की स्व-पर के आकार का प्रतिभास करनेवाली... दर्पण का स्वभाव तो स्व-पर के स्वरूप का प्रतिभास बताता है। ऐसी स्वच्छता ही उसकी है। प्रतिभास करनेवाली स्वच्छता ही दर्पण की है। **उष्णता तथा ज्वाला अग्नि की है,...** वहाँ, हों! यहाँ (दर्पण में दिखायी देती) है, वह नहीं। वहाँ है, वह उसमें है; यहाँ है, वह तो दर्पण की अवस्था है।

इसी प्रकार अरूपी आत्मा की तो... देखो! पहला रूपी का दृष्टान्त (दिया)। दृष्टान्त तो रूपी का दिया न? अरूपी का किस प्रकार दे? भगवान आत्मा अरूपी है, वस्तु है, पिण्ड है, चैतन्यघन है, विज्ञानपिण्ड है। ऐसे **आत्मा की तो अपने को और पर को जाननेवाली ज्ञातृता ही है...** आत्मा का तो स्व और राग तथा पर का जाननापना (होता है) वही अपना ज्ञातृत्व है, वह आत्मा का है। राग, शरीर क्रिया आदि सम्बन्धी जो अपने में ज्ञान होता है, वह पर सम्बन्धी अपना ज्ञान है, और अपने सम्बन्धी अपना ज्ञान है, वह स्व-पर सम्बन्धी अपना ज्ञान, वह ज्ञातृता ही आत्मा की है। राग और शरीर की अवस्था, वह तो पर में गयी, वह कहीं आत्मा में नहीं है। समझ में आया?

अरूपी आत्मा की तो अपने को और पर को जाननेवाली.... अपने को और पर को जाननेवाली। **ज्ञातृता...** (दृष्टान्त में) था न? प्रतिभास करनेवाली स्वच्छता ही। इसी प्रकार जाननेवाली ज्ञातृता ही है। भगवान आत्मा का तो स्व को-पर को जाननेवाली दशा स्वरूप ही आत्मा है। राग, शरीर, कर्म, आत्मा के नहीं हैं, वे तो परवस्तु हैं। समझ में आया? **कर्म तथा नोकर्म पुद्गल के हैं।** और कर्म तथा रागादि सब पुद्गल के हैं, शुभ-अशुभभाव, कर्म, शरीर, वाणी पुद्गल के हैं। ऐसा... ऐसा... (दृष्टान्त में) था न? **इस प्रकार वस्तु के अभेद से....** था। **इस प्रकार स्वतः अथवा परोपदेश से...** इस प्रकार अपने से जाने अथवा पर के उपदेश में भी यह आया था कि तू ज्ञातृत्व है। ऐसा निमित्त (के पास से सुना हो), फिर भी स्वयं से जाने। समझ में आया?

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त के सामने देखकर जानता होगा?

स्वतः अथवा परोपदेश से... वहाँ उपदेश का निमित्तपना साक्षात् होता है। वहाँ से छूटकर ऐसे भेदज्ञान किया, वह तो पर के उपदेश से (हुआ); इस प्रकार निमित्त से कथन है। पहले देर लगी हो और फिर किया हो तो वह स्वयं से किया—ऐसा कहने में आता है। समझ में आया? जातिस्मरण से हो इत्यादि-इत्यादि बहुत दृष्टान्त दिये हैं। अध्यात्म तरंगिणी (में) बहुत दृष्टान्त

दिये हैं। समझ में आया? अपने से (हुआ उसके) दृष्टान्त दिये हैं। वे सब होते हैं न? देवदर्शन-आते हैं न सब? आवे तो सही न! '...' निमित्त। वहाँ एक निमित्तपना वह; और दूसरा जातिस्मरण, देवागमदर्शन, विद्युतभ्रम अभ्रम, शरीर आदि विघटन आता है न? जैसे बिजली गिरी, और तारा खिरा। हनुमानजी को... तारा खिरा तो... उठ गये। वह तो स्वयं को बाहर का निमित्त क्या है, (वह बताना है)। अपने से स्वयंसिद्ध प्राप्त हुआ, तब उसकी बात है। वह स्वयं में डाला है। समझे न? अनित्य आदि अनुप्रेक्षा चिन्तवन, आत्मस्वरूप प्राप्ति। लो! ***'णमो स्वयं बुद्धाणं इति आगमवचनात् अथवा अन्यत् गुरु-उपदेश आदि।'*** गुरु के उपदेश से, लो! 'आत्मस्वरूपं भिन्नम्' परन्तु राग से भिन्न आत्मा को जाना तो इसने स्वयं ने। समझ में आया? जातिस्मरण से हो, देवदर्शन से (हो) परन्तु ऐसा जाना क्या? कि पर और राग से पर / भिन्न चैतन्यस्वरूप (मैं हूँ)—ऐसा भेदज्ञान हुआ, तब कहते हैं।

स्वतः अथवा परोपदेश से जिसका मूल भेदविज्ञान है... देखो! जिसका मूल तो भेदविज्ञान है, पर से भिन्नपने का भान है।

ऐसी अनुभूति उत्पन्न होगी... लो! इस राग से भिन्न, शरीर से भिन्न पुण्य-परिणाम से भिन्न, ऐसा आत्मा का ज्ञान होगा, तब वह प्रतिबुद्ध होगा। **अनुभूति उत्पन्न होगी तब ही (आत्मा) प्रतिबुद्ध होगा।** कहो, वैद्यराजजी! आहाहा! जब तक पूजा-भक्ति, स्तुति को गोखा करे, तब तक कहीं प्रतिबुद्ध होता नहीं है—ऐसा कहते हैं।

अन्दर से राग के विकल्प से और देह की क्रिया से भिन्न पड़कर भेदज्ञान जिसका मूल है, उससे अनुभूति उत्पन्न होगी, तब वह आत्मा स्वसंवेदन ज्ञानी-प्रतिबुद्ध होगा। आहाहा! वापस है तो स्वसंवेदन न! वहाँ कहाँ पर का वेदन करना है? प्रतिबुद्ध होगा, इसका अर्थ स्वसंवेदन करेगा। अपना स्वभाव राग से-विकल्प से भिन्न करे, तब स्वसंवेदन कहलाता है, तब वह प्रतिबुद्ध हुआ कहलाता है, तब वह ज्ञानी हुआ कहलाता है। आहाहा! समझ में आया? शास्त्र के सब पठन के विकल्प से भेद करके और अपना ज्ञान करेगा, तब ज्ञानी होगा—ऐसा कहते हैं।

श्रोता : अधिक स्पष्टीकरण करो।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्पष्टीकरण किया न! स्वसंवेदन। जब भी किसी काल में राग को, पुण्य को, शरीर को, वाणी को, पर को भिन्न करके अपना स्वसंवेदन ज्ञान करेगा तब वह प्रतिबुद्ध होगा। उसका उपाय यह एक ही है - ऐसा कहते हैं। भेदज्ञान करेगा, तब प्रतिबुद्ध होगा, अभेद करेगा, तब तक अप्रतिबुद्ध रहेगा। लो! यह संक्षिप्त शब्द।

श्रोता : दोनों बातें डाली हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : दोनों डाली न इन्होंने स्वयं। पाठ में एक बात है - अप्रतिबुद्ध।

टीकाकार ने (बात) डाली, विस्तार करने के लिये डालते हैं न सब! पाठ में इतना है—तब तक अप्रतिबुद्ध रहेगा। ऐसा नहीं कहा कि इसे कर्म का जोर रहेगा, अमुक पकेगा-अमुक पकेगा, काल पकेगा, तब होगा—ऐसा भी यहाँ नहीं कहा। यह स्वयं भेदज्ञान करेगा तब इसका काल पक गया ऐसा कहते हैं। आहाहा!

श्रोता : काललब्धि हो....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह है। उस समय भेदज्ञान किया, काललब्धि है। पर्याय में भान हुआ कि है। एक समय में पाँचों कारण साथ होते हैं। समझे न? एक कारण हो और दूसरा कारण न हो तो वह कारण कहलाता ही नहीं। ऐसा कहते हैं न? उपादान में तो योग्यता होती है परन्तु निमित्त ठीक न हो तो काम नहीं होता। और उपादान में हो, निमित्त ठीक हो और प्रतिबद्धकारण हो तो नहीं होता – परन्तु ऐसा होता ही नहीं, यह तो शास्त्र में ऐसे व्यवहार के कथन हैं। ***बाकी उपादान का कार्य हो, तब निमित्त, निमित्तरूप से होता ही है और प्रतिबद्ध कारण का अभाव होता ही है।***

श्रोता : कार्य हो तब प्रतिबद्ध कारण होता है!

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! अपनी ओर से देखना नहीं और पर से देखकर बातें करना। **स्वतः अथवा परोपदेश से जिसका मूल भेदविज्ञान है...** जिसका मूल तो भेदविज्ञान है। भले पर से (कहा) परन्तु मूल तो भेदविज्ञान है। **ऐसी अनुभूति उत्पन्न होगी तब...** वह सम्यग्ज्ञानी होगा। यहाँ तक अप्रतिबुद्ध रहेगा। प्रतिबुद्ध तब होगा (ऐसी) दोनों बातें ली हैं। समझ में आया? श्लोक की टीका का अर्थ हुआ। श्लोक की टीका का अर्थ (हुआ) श्लोक का अर्थ तो पहले आधे में आ गया। अभेदबुद्धि में (आ गया)।

भावार्थ : जैसे स्पर्शादि में... स्पर्श, रस, गन्ध, रंग आदि **पुद्गल का और पुद्गल में स्पर्शादि का अनुभव होता है अर्थात् दोनों एकरूप अनुभव में आते हैं,...** लो! दोनों एकरूप अनुभव में आते हैं, यह तो बराबर कहते हैं। स्पर्श आदि में पुद्गल और पुद्गलों में स्पर्श, ऐसा। समझ में आया? गुण में गुणी और गुणी में गुण। लो! दूसरी भाषा से कहें तो (ऐसा है)। **उसी प्रकार जब तक आत्मा को, कर्म-नोकर्म में आत्मा की...** आत्मा को कर्म-नोकर्म.. पुण्य-पाप के भाव कर्म और शरीर में आत्मा की भ्रान्ति होती है। आत्मा की भ्रान्ति होती है। **दोनों एकरूप भासित होते हैं, तब तक तो वह अप्रतिबुद्ध (अज्ञानी) है..** एक बोल लिया। क्या कहा?

जब तक स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण, गुण में गुणी घड़ा और घड़े में गुण (माने), वह बराबर है। इसी प्रकार जब तक आत्मा को पुण्य-पाप के भाव में, शरीर में आत्मा की भ्रान्ति होती है, दोनों एकरूप भासित होते हैं, वहाँ तक वह अज्ञानी-प्रतिबुद्धरहित-अप्रतिबुद्ध है **और आत्मा में**

कर्म-नोकर्म की भ्रान्ति होती है.... इस प्रकार दूसरा लिया। समझ में आया? आत्मा को कर्म और नोकर्म में आत्मा की और आत्मा में कर्म-नोकर्म की (भ्रान्ति होती है)।

आत्मा में राग, कर्म और शरीर है, आत्मा में है—ऐसी भ्रान्ति होती है। ऐसा है नहीं, कहते हैं। समझ में आया? **दोनों एकरूप भासित होते हैं, तब तक तो वह अप्रतिबुद्ध है....** लो! बहुत स्पष्ट है। बराबर है? वैद्यराजजी! जब तक मुझे राग से लाभ है, पुण्य से मुझे लाभ है (-ऐसा मानता है, उसने) पुण्य में आत्मा हैं—ऐसा माना और पुण्य मुझमें है-ऐसा माना। तब तक-तब तक अज्ञानी है, मिथ्यादृष्टि है, दुःखी है, धर्म रहित है। समझ में आया?

और जब वह यह जानता है कि.... लो! **और जब वह यह जानता है कि....** वापस वह का वह जाने। वापस ऐसा नहीं कि दूसरा कुछ हो तो जाने। वह स्वयं उल्टा जानता है, वह सुलटा जाने तब... लो! **और जब वह यह जानता है कि आत्मा तो ज्ञाता है...** जानने-देखनेवाला वह आत्मा। रागादि ज्ञान में ज्ञात होने पर भी मैं उनरूप नहीं होता। ज्ञान में शरीर आदि ज्ञात होने पर भी ज्ञान उनरूप नहीं होता। शुभभाव आदि हों वे ज्ञान में ज्ञात होने पर भी ज्ञान शुभभावरूप नहीं होता। समझ में आया?

आत्मा तो ज्ञाता है और कर्म-नोकर्म पुद्‌गल के ही हैं.... रागादिभाव, शरीर, कर्म-ये सब पुद्‌गल के हैं, चैतन्य के नहीं। चैतन्य तो अकेला ज्ञात्व चैतन्यज्योतिस्वरूप ही आत्मा है। इसके अतिरिक्त रागादि हैं, वे सब चैतन्य के प्रकाश से, प्रकाश में भिन्नरूप से ज्ञात हों—ऐसी चीज़ है; एकपने ज्ञात हों—ऐसी वह चीज़ नहीं है। समझ में आया?

कर्म-नोकर्म पुद्‌गल के ही हैं, तभी वह प्रतिबुद्ध होता है। तब वह ज्ञानी होता है, तब वह सम्यग्दृष्टि होता है; इसके बिना सम्यग्दृष्टि नहीं होता। कहो, अब पुण्य परिणाम करते-करते सम्यग्दृष्टि होता है या पुण्य-परिणाम का भेद जानकर आत्मा का ज्ञान करे, तब सम्यग्दृष्टि होता है? समझ में आया? जो इसमें नहीं और जिसमें आत्मा नहीं, उसे करने से आत्मा को सम्यक्त्व होता है? जिसमें राग नहीं, और राग में आत्मा नहीं तो उस राग द्वारा आत्मा को सम्यग्दर्शन प्रतिबुद्धपना होता है?

श्रोता : नहीं होता।

पूज्य गुरुदेवश्री : बस! पूरी हो गयी बात। राग की मन्दता, वह सम्यग्दर्शन का कारण है-ऐसा नहीं है।

श्रोता : दलील तो बहुत आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दलील तो आवे। लोगों की दलील, व्यवहार के लेख इतने अधिक आते हैं, उनका फल संसार है। समझ में आया?

कर्म-नोकर्म पुद्गल के ही हैं.... पुद्गल के ही हैं.... मैं तो ज्ञानस्वरूप चैतन्यज्योति हूँ। आत्मा का तो ज्ञानस्वरूप ही है। वह चैतन्य त्रिकाली चैतन्यज्योति ही है। पुण्य-पाप के भावरूप कभी चैतन्य हुआ ही नहीं और पुण्य-पाप चैतन्यरूप हुए नहीं। चैतन्य, पुण्य-पापरूप हुआ नहीं; पुण्य-पाप, चैतन्यरूप हुए नहीं। आहाहा!

जैसे दर्पण में.... यह दृष्टान्त अब सुलटा डालते हैं। **अग्नि की ज्वाला दिखाई देती है...** अग्नि की ज्वाला दिखायी दे। **वहाँ यह ज्ञात होता है कि 'ज्वाला तो अग्नि में ही है,....** ज्वाला कहीं दर्पण में नहीं है।

श्रोता : .....बिगड़ी है....

पूज्य गुरुदेवश्री : बिगड़ी नहीं। वह दर्पण की स्वच्छता ही है। बिगड़े क्या? धूल! वह दर्पण की स्वच्छता ज्ञात होती है। बिगड़ा हुआ क्या धूल है? सफेद हो तो स्वच्छता है और ऐसा हो तो अस्वच्छता है-ऐसा है ही नहीं। ज्ञान में राग ज्ञात होता है, इसलिए मेल है और वीतरागता ज्ञात होती है, इसलिए अमेल है - ऐसा है?

श्रोता : ज्ञान में क्या आवे?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञान तो राग को भी जाने और वीतराग को भी जाने। समझ में आया? इसमें ऐसा सूक्ष्म है। वैद्यराजजी! आहा! कभी सुना नहीं, विचार नहीं किया, मनन नहीं किया तो कहाँ से घड़ बैठे? आहाहा!

यह 'ज्वाला' शब्द रखा है। आकार है न? इसलिए ज्वाला रखी। परन्तु उष्णता तो है। वह आकार ऐसा दिखता है न? ऐसे-ऐसे (होता है), वह आकार तो स्वच्छता दर्पण की है, उस ज्वाला का आकार तो वहाँ है। **'ज्वाला तो अग्नि में ही है, वह दर्पण में प्रविष्ट नहीं है,...'** दर्पण में प्रविष्ट नहीं है। वह अग्नि की ज्वाला ऐसे-ऐसे जो दर्पण में दिखाई देती है, वह अग्नि की ज्वाला वहाँ प्रविष्ट नहीं है। वहाँ हाथ लगाकर देखो। ज्वाला ऐसे-ऐसे दिखती है न!

श्रोता : आत्मा तो स्वच्छ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो स्वच्छ है। वह तो दर्पण की स्वच्छता दिखती है। वहाँ कहीं उष्णता है? हाथ लगाओ, हाथ। वहाँ तो ठण्डी अवस्था है। उष्णता तो वहाँ है-ज्वाला तो वहाँ है। आहा! अफीम.. अफीम... समझे? अफीम का गठ्ठा पड़ा हो। इतना दस सेर अफीम। वहाँ अन्दर अफीम दिखाई देती है? अफीम में तो कड़वाहट है, वहाँ तो दर्पण की अवस्था है।

श्रोता : तो अफीम के दो गठ्ठे हो जायें।

पूज्य गुरुदेवश्री : तो कीमत दो आवें। दस सेर अफीम यहाँ और दस सेर यहाँ दर्पण में,

दोनों बेचो। अफीम, समझे न? पड़े हों (वह) दर्पण में दिखे, लो! अरे! सोने के पच्चीस-पचास गहने पड़े हों। दर्पण में दिखाई देते हैं, लो! दोनों बेचो, दोनों बेचो। वह तो दर्पण की अवस्था है, क्या बेचे? धूल। वहाँ सोना कहाँ है? सोना तो यहाँ है। इसी प्रकार ज्वाला अग्नि में है, दर्पण में नहीं।

'दर्पण में दिखाई दे रही है, वह दर्पण की स्वच्छता ही है;...' कहो, वह मलिन नहीं है। ऐई.. देवानुप्रिया! इस ज्वाला में ऐसा दिखाई दे, वह मैला नहीं है; वह तो दर्पण स्वच्छता है। अग्नि-बग्नि कहाँ प्रविष्ट है अन्दर? आहाहा! कुछ खबर नहीं होती और ऐसे के ऐसे... चलो धर्म करो... धर्म करो... धर्म करो... एक तो धर्म करनेवाले भी बेचारे ऐसे निवृत्त नहीं होते, परन्तु करनेवाले हों तो वे यह करो, पुण्य करो और यह करो...।

इसी प्रकार 'कर्म-नोकर्म अपने आत्मा में प्रविष्ट नहीं हैं;...' भगवान चैतन्यसूर्य में रागादि अन्धकार प्रविष्ट नहीं है। कर्म, शरीरादि प्रविष्ट नहीं है। **आत्मा की ज्ञान-स्वच्छता ऐसी ही है...** लो! आत्मा की ज्ञान की निर्मलता ऐसी है **कि जिसमें ज्ञेय का प्रतिबिम्ब दिखाई दे;...** जैसा राग हो, वैसा ज्ञात हो, शरीर हो वैसा ज्ञात हो, कर्म हो वैसा ज्ञात हो, ज्ञात हो।

श्रोता : प्रतिबिम्ब...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रतिबिम्ब अर्थात्? यहाँ कहाँ प्रतिबिम्ब घुस गया था?

आत्मा की ज्ञान-स्वच्छता ऐसी ही है कि जिसमें ज्ञेय का प्रतिबिम्ब दिखाई दे;... है ज्ञेय का प्रतिबिम्ब अर्थात् ज्ञानाकार परिणाम अपना-अपने में हैं। उस ज्ञेय सम्बन्धी ज्ञानाकार परिणाम अपना अपने में है। ज्ञेय सम्बन्धी ज्ञानाकार परिणाम अपना अपने में है। वह ज्ञेय के कारण ज्ञान आकार हुआ है-ऐसा भी नहीं है। आहाहा! गजब बात, भाई! यह सब उपादान निमित्त का विवाद...।

इसी प्रकार कर्म-नोकर्म ज्ञेय हैं... देखो! **इसलिए वे प्रतिभासित होते हैं...** ज्ञान में ज्ञात होते हैं। समझे? दर्पण रखा हो न? ऐसा बड़ा दर्पण (रखा हो)। यह नागरवेल के पानवाले बहुत रखते हैं। सड़क के ऊपर जो जाये, उसमें सब दिखता है। बड़ा दर्पण होता है न? नागरवेल के पान की दुकानवाले बहुत रखते हैं। सब दिखता है। अन्दर है वह? वह चीज़ अन्दर है? वह तो रास्ते पर चली जाती है, वह तो बाहर की चीज़ है। यहाँ तो दर्पण की अवस्था है। इसी प्रकार चैतन्य दर्पण पड़ा है। इस जगत के भ्रम में पड़ा हुआ, जैसे (दर्पण) नागरवेल की दुकान में पड़ा हो, वैसे इस जगत में पड़ा है। ये सब चीज़ -रागादि, शरीरादि आवे-जावे, आवे-जावे, उसे जाननेवाला यह तो है। समझ में आया?

ऐसा भेदज्ञानरूप अनुभव आत्मा को या तो स्वयमेव हो अथवा उपदेश से हो, तभी वह प्रतिबुद्ध होता है। तब तक वह अज्ञानी रहता है। (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

६

श्री परमात्मप्रकाश, प्रथम अधिकार, गाथा ४९ से ५२ प्रवचन नं. ३२
दिव्यध्वनि दिन, सोमवार, दिनांक १२-०७-१९७६

(आज) भगवान की दिव्यध्वनि का दिन है। श्रावण कृष्ण १ (आज) श्रावण कृष्ण १ है। भगवान को केवलज्ञान तो वैशाख शुक्ल १० को हुआ था (परन्तु) वाणी नहीं निकली। छियासठ दिन (बाद वाणी खिरी)। आज (६६ दिन) पूरे होते हैं। इन्द्रों को विचार हुआ कि यह कैसे हुआ ? छियासठ दिन तक वाणी निकलती नहीं और तीर्थंकर की वाणी तो केवलज्ञान हो, तब निकलनी चाहिए। इसके पश्चात् गौतम जो कुश्रुत के वेदान्त के पारगामी थे, उनके पास गया और (उन्हें) लाया और यहाँ वाणी-दिव्यध्वनि खिरी ! विपुलाचलपर्वत पर श्रावण कृष्ण एकम, सूर्य के उदयकाल में योग की पहली घड़ी, पाँच वर्ष का जो योग था, उसका भी पहला काल था। उस समय भगवान ने भावश्रुत की प्ररूपणा की। यह क्या कहा, समझ में आया ? केवलज्ञान की नहीं, वाणी निकली वह भावश्रुत(पने निकली)। समझनेवाले को, गणधर को भावश्रुत हुआ न ? गणधरदेव भावश्रतुरूप से परिणमित हुए, तब भगवान की वाणी भावश्रुतपने निकली। आहा ! उसमें भावश्रुत में केवलज्ञान आदि सब आवे, परन्तु प्ररूपणा की भावश्रुत की। समझ में आया ?

वह वाणी गौतम ने सुनी। वे तो गणधरपद को प्राप्त हुए। वह भी यह दिन है। उन्होंने अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग और चौदहपूर्व की रचना की, वह भी यह दिन है। यहाँ तो भावश्रुत में अर्थ करते तीर्थंकर और द्रव्य-भावश्रुत की रचना करनेवाले भावश्रुतपने परिणमित गणधर। द्रव्यश्रुत की रचना (हुई)। भगवान की वाणी में अर्थ आया, गणधर ने सूत्र की रचना की। समझ में आया ? इन गणधर ने बारह अंग और चौदह पूर्व (की उसका) यह दिवस है। आहाहा ! गणधरपद को प्राप्त हुए, चौदह पूर्व की रचना हुई, भगवान की वाणी निकली, वह सब दिवस आज है। योग का दिवस है। सूर्योदय के काल में यह वाणी निकली-ऐसा भी दिवस है। आहाहा !

उस वाणी में ऐसा आया - नवपदार्थ सहित छह द्रव्यों का और वीतरागी भाव का ज्ञान आया। उन्होंने उनकी वाणी में वीतरागभाव का वर्णन किया। भावश्रुत में भी वह आया। जिससे आत्मा वीतरागी सम्यग्दर्शन प्राप्त करे, वीतरागी स्वसंवेदनज्ञान प्राप्त करे, वीतरागी चारित्र प्राप्त करे और उसकी पूर्ण की प्राप्ति करे, वह उपदेश वीतराग की वाणी में आया ? समझ में आया ?

पहले में आ गया है। भगवान के पास राजा आदि गये, वह पहले आगम के प्रश्न किये, परन्तु पश्चात् शुद्धात्मा का प्रश्न पश्चात् किया। आता है? आहाहा! समझ में आया? अपने पहले आ गया है। पाण्डवों ने नेमीनाथ भगवान से प्रश्न किये। रामचन्द्रजी ने कुलभूषण-देशभूषण केवली से किये। महावीर भगवान से गौतम ने प्रश्न किये। गौतम को जीव-अजीव का संदेह था। लो, ठीक! उसके वेद में पारंगत और जीव-अजीव की बात में संदेह! अरे! भगवान के दर्शन किये, वहाँ मिथ्यात्वादि सब उड़ गये; पश्चात् वाणी निकली है। पात्र थे न! आहाहा! ऐसे मानस्तंभ देखते हैं। पात्र है न! अन्दर मान गल जाता है और अन्दर से एकदम साधुपदपना आता है। आहाहा! वाणी खिरती है तो भावश्रुतज्ञान की बात, भावश्रुत से परिणमित हुए सुनते हैं। आहाहा!

उस वाणी को कहा है न? 'चिदानन्द भूपाल की राजधानी।' वीतराग की वाणी। 'नमो देवी वागेश्वरी जिनवाणी।' नहीं आता? 'नमो देवी वागेश्वरी...' वागेश्वरी अर्थात् वाक् (अर्थात्) वचन में ईश्वरी। वागेश्वरी (का अर्थ) ऐसा नहीं (कि) बाघ के सिर (पर) सरस्वती (-ऐसा नहीं)। वागेश्वरी (अर्थात्) वाक् में ईश्वर-ऐसी जो वीतराग की वाणी भावश्रुतज्ञान से आयी। आहाहा! पात्र जीव प्राप्त कर गये। लो! उन्होंने शास्त्रों की रचना की, उसमें से ये समयसार (आदि) सब चले आते हैं। वह भगवान की वाणी है, उसमें से ये चले आते हैं। समझ में आया? 'धवल' के पहले भाग में बहुत लेख है; तिथि, वार और बहुत लम्बा (लेख है)।

शास्त्र का विच्छेद होगा-ऐसा विचारकर धरसेनाचार्य को... गिरनार में गुफा है न? (वहाँ) संदेह हुआ (कि) अरे! शास्त्र-विच्छेद होगा। भावमुनि / भावलिंगी-आत्मध्यानी! उन्हें ऐसा लगा कि अरे! शास्त्र, यह परम्परा से नहीं रहे तो? (ऐसा) भय हुआ। लो! उसमें लेख लिखा है। वहाँ मुनि ने पढ़ा। पहले दो मुनि भेजे। पुष्पदन्त, भूतबली। (ये) नाम बाद में पड़े हैं। दोनों को भेजा। आहाहा! यहाँ धरसेनाचार्यदेव को स्वप्न आता है। मुनि को रात्रि के पिछले भाग में निद्रा होती है न? 'पिछली रयनि।' उसमें स्वप्न आता है कि दो बैल हैं, सफेद बैल, विनयवन्त, शीलवन्त, आकर नमस्कार करते हैं। स्वप्न में आया, तब ऐसा (हुआ कि) ठीक! यह स्वप्न पूरा हुआ। जयवन्त श्रुतदेवता! आहा! जयवन्तो श्रुतदेवता!! जो धारणा है, इससे विनयवन्त आते हैं। आहाहा!

वैसे तो दो बैल (स्वप्न में आये थे)। विनयवन्त सन्त आते हैं, उसका यह स्वप्न आया। मुनि आते हैं, वन्दन करते हैं। तीन दिन तक ऐसा का ऐसा चलता है। वीतरागी मुनि हैं न! तीन दिन तक धरसेनाचार्य कुछ नहीं देते। तीसरे दिन कहते हैं—प्रभु! हम इसके लिये आये हैं। आहाहा! वे तो वीतरागी हैं। उन्हें विकल्प आया, तब आया; न आवे तो कुछ नहीं। आहाहा!

आहा! ये सन्त की परिपाटी में परिपक्व, तीन दिन में (कहा) महाराज! इसके लिये हम आये हैं। 'अच्छा, कल्याण हो!' भावमुनि, भावमुनि को कहते हैं। आहाहा! आहाहा! 'अच्छा, कल्याण हो!' ओहो! वह काल कैसा होगा!! भावलिंगी (मुनि) वीतरागी, तीन कषाय (चौकड़ी) के अभाव में परिणमित, वीतराग के आनन्द की दशा में आनन्द का झूला झूलनेवाले! आहाहा! दोनों मुनि आनन्द के झूले में झूलते हुए! आहाहा! तीन दिन तक तो लेख (पत्र) लिखा तो भी बुलाते नहीं। महाराज! हम आये हैं। आहाहा! क्या उनकी वीतरागता! 'अच्छा! कल्याण हो!' फिर शुरु करते हैं। उसमें से यह षट्खण्डागम की रचना हुई।

यहाँ अपने 'परमात्मप्रकाश' (चलता है)। यह भी सन्तों की वाणी है। परम्परा से जो आगम की -परमागम की रचना थी, उसकी यह वाणी है। ४९ गाथा हुई है। पहले 'धवल' में इसकी महिमा बहुत की है। यह तिथि और यह और यह। द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव। द्रव्य-कहनेवाले भगवान; क्षेत्र-विपुलाचल पर्वत; काल-श्रावण कृष्ण एकम्, सूर्य उगने के काल में; भाव-भावश्रुत कहा। आहाहा! कहो, नवरंगभाई! वह यह परम्परा दिगम्बर के आचार्यों का कथन है। वे सर्वज्ञ के-परमेश्वर के पथानुगामी हैं। उनकी यह वाणी है। यह परमात्मप्रकाश, समयसार (आदि)। जगत को कठिन पड़ता है, कठिन पड़ता है। श्वेताम्बर तो बाद में निकले हैं। यह वाणी तो परम्परा से-ठेठ सर्वज्ञ से आयी हुई वाणी है। वह (यहाँ) उत्कीर्ण है।

४९ (गाथा में) यह आया **इसलिए कर्मों से भिन्न...** ४९ (गाथा की) चौथी लाईन। **ज्ञान-दर्शनमयी सब तरह उपादेयरूप (आराधने योग्य) परमात्मा को तुम...** लो! यह बात आयी। भगवान आत्मा ज्ञान-दर्शनमयी है। उसमें विकार भी नहीं है। उसे संयोगी चीज़ में संयोग में हो, परन्तु स्वयं संयोगी चीज़ में नहीं है। यह तो ऊपर आ गया न? जीव, अजीव में नहीं और अजीव में (जीव नहीं), यह ऊपर आ गया। संयोगी चीज़ में स्वयं नहीं; अपनी चीज़ में संयोगी चीज़ नहीं-ऐसा जो भगवान ज्ञान-दर्शनमयी आत्मा, दृष्टा-ज्ञातास्वभावमय आत्मा का ध्यान कर, कहते हैं। आहाहा! उसे तेरी पर्याय का विषय (बना)। पर्याय के विषय में उसे विषय बना। आहाहा! समझ में आया? यह कहा न? देखो न?

सब तरह उपादेयरूप (आराधने योग्य)... आहाहा! **परमात्मा को तुम देह, रागादि परिणतिरूप बहिरात्मपने को छोड़कर...** आहाहा! शरीर और राग। (राग) अन्दर और बाह्य शरीर की ओर की परिणति को छोड़कर **शुद्धात्मपरिणति...** देहरहित तो शुद्धात्मा हुआ, रागरहित तो शुद्धपरिणति हुई। आहाहा! **शुद्धात्मपरिणति की भावनारूप अंतरात्मा में स्थिर होकर...** उसे अन्तर में स्थिर होकर ध्यान कर-ऐसा कहते हैं। तब तुझे उपादेयपना ज्ञात होगा-ऐसा कहते हैं। आहाहा! दर्शन-ज्ञानमयी आत्मा सर्व प्रकार से उपादेय है, आराधनेयोग्य है-ऐसा तुझे ज्ञात होगा।

देह और राग की परिणति छोड़कर, देहरहित भगवान शुद्धात्मद्रव्य और रागरहित की यहाँ शुद्धपरिणति (हो)—ऐसी शुद्धपरिणति द्वारा तुझे आत्मा ज्ञात होगा, तब तुझे उपयोगरूप से गिनने में आयेगा। आहाहा! थोड़े में भी बहुत (भरा है)। 'थोड़ा लिखा बहुत करके जानना' (-ऐसा) नहीं कहते? आहाहा! वीतराग वाणी में यह आया।

जहाँ तू जैसा है, वहाँ तू नजर कर-ऐसा कहते हैं। समझ में आया? तू जहाँ है, वहाँ दर्शन-ज्ञानमयी प्रभु है। आहाहा! इसकी नजर वहाँ डाल, तब तुझे, आत्मा उपादेयपने किया-ऐसा कहा जाएगा। समझ में आया? आहाहा! अब ५० गाथा।

ऐसे तीन प्रकार आत्मा के... (अर्थात्) बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा—ये तीन प्रकार का वर्णन चला। **पहले महाधिकार के पाँचवें स्थल में जैसा निर्मल ज्ञानमयी प्रगटरूप शुद्धात्मा...** जैसा निर्मल ज्ञानमयी जैसा शुद्धात्मा **प्रगटरूप शुद्धात्मा...** आहाहा! **सिद्धलोक में बिराजमान है, वैसा ही शुद्धनिश्चयनयकर शक्तिरूप से देह में तिष्ठ रहा है,...** आहा! देखा? शुद्धनिश्चयनयकर **जैसा निर्मल ज्ञानमयी प्रगटरूप शुद्धात्मा...** पर्याय में, ऐसा। सिद्ध में बिराजता है। आहाहा! **सिद्धलोक में बिराजमान है,...** यहाँ प्रगटरूप कहा है न? पर्याय में प्रगट हो गया है। **वैसा ही शुद्धनिश्चयनयकर...** शक्तिरूप से, सामर्थ्यरूप से, स्वभावरूप से। आहाहा! ऐसा भगवान **देह में तिष्ठ रहा है,...** जैसा सिद्ध सिद्धालय में हैं, ऐसा ही देह देवालय में भगवान यहाँ बिराजता है। समझ में आया?

श्रोता : कब?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी। यहाँ कहा न! आहाहा!

शुद्धनिश्चयनयकर... अर्थात् शुद्ध परमार्थ वस्तु की दृष्टि से देखे तो, ऐसा। शक्तिरूप से देह में भगवान बिराजता है। **ऐसे कथन की मुख्यता से चौबीस दोह-सूत्र कहे गये। इससे आगे छह दोहा-सूत्रों में आत्मा व्यवहारनयकर अपनी देह के प्रमाण है, यह कह सकते हैं...** ५० (गाथा) है न? संस्कृत है न? **अतः उर्ध्व... उर्ध्व** अर्थात् अब। पाठ में है न?

कि वि भणंति जिउ सव्वगउ जिउ जडु के वि भणंति।
कि वि भणंति जिउ देह-समु सुण्णु वि के वि भणंति॥५०॥

कोई नैयायिक, वेदान्ती और मीमांसक-दर्शनवाले जीव को सर्वव्यापक कहते हैं,... यह सिद्ध करेंगे। किस अपेक्षा से सर्व व्यापक है? क्षेत्र से नहीं; लोकालोक को जानने की अपेक्षा से सर्वव्यापक कहने में आता है। वे एकान्त कहते हैं कि क्षेत्र में सर्वव्यापक है (परन्तु) ऐसा नहीं है। आहा!

कोई सांख्य-दर्शनवाले जीव को जड़ कहते हैं,... यह कहेंगे। इन्द्रियज्ञान का अभाव हो गया, इस अपेक्षा से जड़ (कहा)। पूरा अतीन्द्रियज्ञान प्रगट हो गया, इन्द्रियज्ञान से जानने का रहा नहीं, इस अपेक्षा से जड़ कहेंगे। आहाहा! समझ में आया? वे लोग तो, जानपने से रहित रहता है, उसे आत्मा कहते हैं। जहाँ तक जानना रहे, वहाँ तक आत्मा नहीं -ऐसा कहते हैं। जानने का नाश हो जाए, तब आत्मा (कहलाता है)-ऐसा कहते हैं। जबकि यहाँ कहते हैं कि इन्द्रिय (ज्ञान का) नाश होता है, इस अपेक्षा से जड़ कहने में आता है। समझ में आया?

वे लोग कहते हैं कि पूर्ण हो, तब उसका ज्ञान नहीं रहता। ज्ञान रहे तो अन्दर वह अपूर्णता है। जानना रहे, जानना रहे (ऐसा कहते हैं) सुन तो सही! जानना रहता है, वहाँ तक वह चैतन्य नहीं—ऐसा (वे) कहते हैं। यह जानना छूट जाये तब चैतन्य कहलाता है, यहाँ कहते हैं कि एक अपेक्षा से तेरी बात सत्य है। इन्द्रिय का ज्ञान छूट गया, इस अपेक्षा से उसे जड़ कहा जाता है। मूल ज्ञान छूट नहीं गया है। आहाहा! समझ में आया? वे लोग कहते हैं कि ज्ञान-जानना नाश हो, तब उसकी मुक्ति होती है। यहाँ तो (कहते हैं कि) इन्द्रियज्ञान का नाश हो, तब उसकी मुक्ति होती है। समझ में आया? यह तो सर्वज्ञ से (सिद्ध) हुई वाणी है। आहाहा!

कोई बौद्ध-दर्शनवाले जीव को शून्य भी कहते हैं,... लो! शून्य... शून्य। शून्य भी है, पर से शून्य है। प्रवचनसार में शून्य-अशून्य (नय) आता है। पर से शून्य है, अपने से अशून्य है। आहाहा! समझ में आया?

कोई जिनधर्मी जीव को व्यवहारनयकर देहप्रमाण कहते हैं,... व्यवहार से देहप्रमाण अलग है। निश्चय से लोकप्रमाण है, इतना असंख्य प्रदेशी चौड़ा है न! उसकी शक्ति इतनी है। लोकप्रमाण असंख्यप्रदेशी है न! इस अपेक्षा से। इस प्रकार व्यवहार से देह प्रमाण है, निश्चय से जो असंख्यप्रदेश हैं, वे लोकप्रमाण हैं। यहीं के यहीं, हों। समझ में आया? लो!

वह आत्मा कैसा है? और कैसा नहीं है? ऐसे चार प्रश्न शिष्य ने किये,... यह चार प्रश्न। **ऐसा तात्पर्य है।** गाथा का तात्पर्य हुआ न? ऐसा कहते हैं। शिष्य ने चार प्रश्न किये, वह यहाँ तात्पर्य है, इतना। अब ५१ (गाथा में) उत्तर (कहते हैं)।

अप्पा जोइय सव्व-गउ अप्पा जडु वि वियाणि।
अप्पा देह-पमाणु मुणि अप्पा सुण्णु वियाणि॥५१॥

आगे नय-विभागकर आत्मा सर्वगत है, सब रूप है,.... '**सब रूप**' अर्थात् ये जो चार बोल कहे न? वे **सब रूप है, एकान्तवादकर अन्यवादी मानते हैं, सो ठीक नहीं है, इस प्रकार चारों प्रश्नों को स्वीकार करके समाधान करते हैं-(हे योगीन्) हे प्रभाकरभट्ट,...** शिष्य को कहते हैं न? आहा!

श्रोता : प्रभाकरभट्ट मुनि थे ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये प्रभाकर मुनि हैं।

आत्मा सर्वगत... भी है। **आगे कहे जानेवाले नय के भेद से आत्मा सर्वगत भी है, आत्मा जड़ भी है...** अपेक्षा से (बात) है न! **ऐसा जानो, आत्मा देह के बराबर भी मानो और आत्मा को शून्य भी जानो।** किस अपेक्षा से ? इसमें है, इस अपेक्षा से बात करे। पर से शून्य है, इन्द्रियज्ञान से जड़ है, अभाव है। सर्व व्यापक है-ज्ञान की अपेक्षा से सर्व व्यापक भी है। क्षेत्र से (सर्व व्यापक) नहीं। आहा!

नय विभाग से मानने में कोई दोष नहीं है, ऐसा तात्पर्य है। अब इसका स्पष्टीकरण

अप्पा कम्म-विवज्जियउ केवल-णाणेँ जेण।
लोयालोउ वि मुणइ जिय सव्वगु वुच्चइ तेण॥५२॥

आहाहा! **कर्मरहित आत्मा के केवलज्ञान से लोक और अलोक दोनों को जानता है,...** लोक-अलोक दोनों को जानता है न! वेदान्त ऐसा कहता है कि पर को जाने तो पर में प्रवेश करे तो जाने। प्रवेश किये बिना किस प्रकार जाने ? इस लकड़ी को जानना हो तो लकड़ी में ज्ञान प्रवेश करे तो लकड़ी ज्ञात हो, (ज्ञान) बाहर रहे और लकड़ी ज्ञात हो ? (संवत्) १९८४ में प्रश्न हुआ था। राणपुर में एक क्षत्रिय था, व्याख्यान में आता था। (उसने कहा) महाराज! तुम यह परमाणु कहते हो (इसे) जाने। परमाणु में प्रवेश किये बिना ज्ञान किस प्रकार जानेगा ? सर्व व्यापक हो गया, तो चीज़ भिन्न नहीं रही। (उससे) कहा - ऐसा नहीं है। अग्नि में प्रवेश किये बिना अग्नि को नहीं जानता ? उसमें प्रवेश करे तब तो अग्निमय हो जाये, अग्नि को जानने से ज्ञान अग्नि में प्रवेश करके जानता है ?

यह गर्म है—ऐसा ज्ञान उसमें प्रवेश किये बिना, अपने में रहकर उष्ण को जानता है। इसलिए ज्ञान पर में प्रवेश करे तो ही उसे जाने - ऐसा नहीं है। यह तो (संवत्) १९५४ में भी प्रश्न किया था। यह गाँधी का वेदान्ती नहीं, मसरूवाला ? नरम व्यक्ति था। १९५५ में आया था, तब गाँधीजी थे न ? उनकी पुस्तक पढ़ी, उसमें था कि सामने घड़ी का ज्ञान होता है, यदि वह ज्ञानरूप न हो तो ज्ञान किस प्रकार हो ? पुस्तक है न ? 'जीवन संशोधन' है, पढ़ी थी। राजकोट में तब १९५५ (में पढ़ी थी) 'जीवन संशोधन' में ऐसा लिखा था कि सामने चीज़ है, उसका यहाँ ज्ञान होता है तो वह ज्ञान हो तो ज्ञान होता है। वह (वस्तु) ज्ञान है-ऐसा कहते हैं। उसका ज्ञान कब होता है ? कि वह ज्ञानमय हो तो ज्ञान होता है! ऐसा नहीं है।

जड़ और चैतन्य का ज्ञान जड़ और चैतन्य में प्रवेश किये बिना होता है। आहा! अरे! यह

ज्ञान की पर्याय जो द्रव्य को जानती है, स्वयं को, हों! वह द्रव्य को स्पर्श किये बिना पर्याय, द्रव्य को जानती है। पर की बात तो एक ओर रही परन्तु वस्तु जो है... १४४ में कहा था, मुम्बई। प्रतिभास। तुम वहाँ थे ? नहीं थे। ***एक समय की पर्याय में प्रतिभास (होता है) पूरे द्रव्य का भास होता है। द्रव्य में पर्याय नहीं आती। पर्याय में द्रव्य नहीं आता। आहाहा! परन्तु द्रव्य की जितनी सामर्थ्य है, वह सब पर्याय के ज्ञान में आ जाती है। समझ में आया ? ऐसी बात है।***

पर की तो बात क्या करना! परन्तु स्वद्रव्य में ज्ञानपर्याय प्रवेश नहीं करती, तथापि वह पर्याय उसे पूर्ण जानती है! आहाहा! पर्याय में पर्याय का ज्ञान है, पर्याय में छह द्रव्य का ज्ञान है, पर्याय में स्वद्रव्य का ज्ञान है। छह द्रव्य का ज्ञान है! जिसका स्वभाव है उसे पर की अपेक्षा क्या है ? आहाहा! उसे कहाँ अपेक्षा है।

विभाव को भी पर की अपेक्षा नहीं। विभाव भी अपनी एक समय की पर्याय षट्कारक से परिणमती है। उसे निमित्त कारक की अपेक्षा नहीं, उसे द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं। ठीक है ? यह तो पंचास्तिकाय की ६२ गाथा। वहाँ (दिगम्बर के एक विद्वान के साथ) चर्चा हुई थी। ***विकार एक समय में षट्कारकरूप से (परिणमता है) पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म, पर्याय करण, पर्याय सम्प्रदान, पर्याय अपादान, पर्याय अधिकरण। समय एक, विकारभाव और षट्कारक। क्योंकि द्रव्य-गुण में षट्कारक हैं। पर्याय में षट्कारक का परिणमन स्वयं से आया है। आहाहा!***

यहाँ तो सर्व व्यापक किस अपेक्षा से कहा ? देखा! **यह आत्मा कर्मरहित हुआ केवलज्ञान से जिस कारण लोक और अलोक को... 'मनुते' जानता है...** जानता है। जिसकी पर्याय का स्वभाव जानना है, उसे जानने की मर्यादा नहीं होती। वह तो लोकालोक से अनन्तगुना होता तो भी वह पर्याय जानती। वह तो पहले आ गया है। नहीं ? मण्डप पर बेल, मण्डप है वहाँ तक बेल चलती है, परन्तु उसमें बेल को आगे जाने की शक्ति नहीं है-ऐसा नहीं है। आहाहा! इसी प्रकार ज्ञान की पर्याय लोकालोक को जानती है। वह तो पर्याय, वह लोकालोक है; इसलिए जानती है-ऐसा भी नहीं है। आहाहा! एक समय की पर्याय की ताकत इतनी है कि अपना अस्तित्व ही इतना बड़ा है। समझ में आया ? लोकालोक है, इसलिए पर्याय जानती है-ऐसा भी नहीं है। उसका अस्तित्व है, इसलिए पर्याय के अस्तित्व में ऐसा जानना आया-ऐसा भी नहीं है। ऐसी बातें हैं। वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई! लोग बेचारे बाहर में क्रियाकाण्ड की उलझन में पड़े हैं और वस्तु रह गयी है। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान बिना सब व्यर्थ है।

ऐसी पर्याय की ताकत, ऐसा जो द्रव्य-गुण-पर्याय का ज्ञान... आहा! वह ज्ञान पर से सिमट गया, हट गया। निमित्त से, राग से, एक (समय की) पर्याय में से हटकर (अन्दर ध्रुव में)

गया, तब पर्याय का ज्ञान और द्रव्य का ज्ञान साथ में हुआ। समझ में आया? आहाहा! पर्याय में पर्याय थी, तब तक पर्याय का ज्ञान भी सच्चा नहीं था। यह वीतराग का मार्ग सूक्ष्म, बापू! सम्यग्दर्शन ऐसी चीज़ है। अनन्त काल में इसने एक सैकेण्ड भी किया नहीं और वह हुआ तो इसके जन्म-मरण कभी रहते नहीं। आहा!

अर्थात्? आत्मा द्रव्य और गुण से ज्ञानदर्शनमय और अनन्तगुणमय है। उसका एक समय में ज्ञान होता है। कब? कि स्वसन्मुख हो तब। उसने द्रव्य-गुण का आश्रय लिया-ऐसा कहने में आता है। (द्रव्य-गुण) आश्रय देते हैं, (पर्याय) आश्रय लेती नहीं। नवरंगभाई! ऐसा मार्ग। जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ तेरी पर्याय का ऐसा सामर्थ्य बतलाते हैं।

श्रोता : (समयसार की) ग्यारहवीं गाथा में भूतार्थ का आश्रय तो आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : भूतार्थ का आश्रय (करे तो) सम्यग्दृष्टि होता है, परन्तु इसका अर्थ यह कि स्वसन्मुख हुआ, उसने आश्रय लिया-ऐसा कहने में आता है। अरे! ऐसी बात है। भाषा ऐसी आती है। **भूदत्थमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो** त्रिकाल भगवान पूर्णानन्द का नाथ प्रभु का आश्रय करे तो सम्यग्दर्शन हो। यह तीर्थंकरकेवली परमात्मा का आश्रय करे, तो भी समकित नहीं होता। इस पर्याय का आश्रय करे तो भी समकित नहीं होता। ऐसी बातें, बापू! यह पर्याय ऐसे झुकी, इसलिए आश्रय किया-ऐसा कहा जाता है। आहाहा! यह कहने की क्या अपेक्षा है-यह जानना चाहिए न?

श्रोता : पर्याय तन्मय रहकर जानती है या अतन्मय रहकर?

पूज्य गुरुदेवश्री : अतन्मय रहकर जानती है। तन्मय होकर जानती है (ऐसा जो कहा वह तो) इस ओर झुकी है इतना। इस ओर झुकी है। इस अपेक्षा से वह (तन्मय) कहलाती है। राग में तन्मय थी तो ऐसे तन्मय (थी)। राग में झुकी थी, वह ऐसे (स्वरूप की ओर) झुकी इसलिए तन्मय कहलाती है। बाकी पर्याय, पर्याय में रहकर द्रव्य को जानती है। द्रव्य और पर्याय तीन काल-तीन लोक में एक नहीं होते।

श्रोता : अखण्ड एक सत् लें तो

पूज्य गुरुदेवश्री : अखण्ड एक सत् लें तो भी पर्याय, पर्याय में और द्रव्य, द्रव्य में है।

श्रोता : पर्याय और द्रव्य में प्रदेशभेद हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रदेशभेद है।

श्रोता : सर्वथा है?

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा है। पर्याय और द्रव्य में प्रदेशभेद सर्वथा है।

श्रोता : एक अखण्ड सत् है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह अखण्ड सत् बाद में। यह तो पर्याय का विषय अखण्ड सत् है। ऐसी बात है। यह तो जिनेश्वर केवली तीन लोक के नाथ जिनेश्वर भगवान साक्षात् विराजते हैं। आज दिव्यध्वनि का दिन है। तुमने कल कहा था, कोई (सूक्ष्म बात) आवे। वह आवे तो आवे। आहाहा!

भगवान ऐसा कहते हैं कि पर्याय को सर्वव्यापक कहना अर्थात् लोकालोक को जानती है, इस अपेक्षा से व्यापक कहना। परन्तु पर्याय उस लोकालोक के क्षेत्र में पसर जाती है (-ऐसा नहीं है)। वेदान्त कहते हैं, ऐसा नहीं है। समझ में आया? ***आहाहा! पर्याय की मर्यादा, यद्यपि द्रव्य का क्षेत्र है, वह ही उसका क्षेत्र है, परन्तु उस क्षेत्र का अंश है, वह भिन्न है। जितने में पर्याय है, वह क्षेत्र भिन्न है; जितने में ध्रुव है, वह क्षेत्र भिन्न है। दो धर्म ही हैं, दो वस्तु है-धर्म और धर्मी दो वस्तु है।***

यह तो आप्तमीमांसा में कहा है-***धर्म और धर्मी दो निरपेक्ष वस्तु है। धर्मी है, इसलिए पर्याय है-धर्म है—ऐसा नहीं है और धर्म है, इसलिए धर्मी है-ऐसा नहीं है।*** यह तो केवलज्ञानी परमात्मा का मार्ग है, बापू! लोगों ने सुना नहीं। बाहर की मजदूरी (किया करते हैं)। यह यात्रा की, भक्ति की, व्रत पालन किये, अपवास किये और हो गया धर्म। धूल भी धर्म नहीं। आहाहा!

श्रोता : धूल भी धर्म नहीं अर्थात?

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल भी नहीं (अर्थात्) अच्छा पुण्य भी नहीं, ऐसा। समकिती को जो पुण्य बँधता है, वैसा पुण्य भी इसे नहीं। आहाहा! यह कहीं आया था, किसमें आया था? कहीं आया था, पाठ में आया था, हों! कृषि-खेती करने पर अनाज पकता है, तब घास भी पकती है। भक्ति में आया था। कल आया था? सौ कलथी अनाज पके, (तब) सौ गाड़ी भूसा होता है परन्तु भूसा भूसे से, अनाज अनाज से। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि जीव को जो पुण्य होता है, वह दूसरे प्रकार का होता है। वह तीर्थंकर गोत्र बाँधता है, सर्वार्थसिद्धि में जाता है-इत्यादि-इत्यादि। आहाहा! तथापि वह पुण्य है, वह पुण्य है; धर्म नहीं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं ज्ञान की पर्याय... आत्मा को सर्व व्यापक कहना। किस अपेक्षा से?- कि उस पर्याय में कर्म के आवरण का अभाव होकर, वह पर्याय तीन काल-तीन लोक को जानती है। ऐसी बात की है। लोकालोक को जानती है। समझ में आया न? इससे उसे सर्वव्यापक कहने में आता है। वास्तव में तो वह पर्याय, पर्याय में रहकर द्रव्य को जानती है और लोकालोक को जानती है, इससे उस पर्याय को सर्व व्यापक कहने में आता है। क्षेत्र से पर में जाती है और यह पर्याय क्षेत्र से ध्रुव में जाती है-ऐसा नहीं है। चन्दुभाई! ऐसा है, बापू! आहाहा!

श्रोता : कहलाये सर्वव्यापक परन्तु निश्चय से द्रव्य में व्यापक है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय में, पर्याय व्यापक है। दो वाचक शब्द है न ? तो दो के वाच्य भिन्न होंगे या नहीं ? नहीं तो दो भिन्न कैसे पड़े ? ऐसी बात है, जरा सूक्ष्म बात है।

श्रोता : अपेक्षा से कहलाता है या (ऐसा है) ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; इस अपेक्षा से ऐसा ही है।

श्रोता : सर्वथा ऐसा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : सर्वथा ऐसा है।

श्रोता : एकान्त है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ये दोनों एकान्त है। पर्याय, पर्याय में है; पर्याय, द्रव्य में नहीं। परन्तु फिर जब पर से भिन्न करना हो, तब कहा जाता है कि पर्याय के बिना द्रव्य नहीं होता। **पर्याय विजुत्तं दव्वं** पंचास्तिकाय में आता है। वह तो पर से भिन्न करने की अपेक्षा से (कहा है)। पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता। वह तो पर से-उससे भिन्न (है और) वह पर्याय अपने द्रव्य की है ऐसा (कहना है)। दोनों में जब भेद करना हो, वे दो वस्तु हैं न ? एक वस्तु नहीं।

प्रमाण के द्रव्यरूप से द्रव्य-पर्याय शामिल गिने। परन्तु प्रमाण जो द्रव्य-पर्याय को जानता है, उस अनुसार, तद्नुसार अर्थात् उस प्रमाणज्ञान में निश्चय से द्रव्य, द्रव्य में है, उसका ज्ञान तो उसमें रखा है, उपरान्त पर्याय का (ज्ञान) मिलाया, इसलिए प्रमाण हुआ।

श्रोता : नयज्ञान का विरोध करके प्रमाण नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, निश्चय को उड़ाकर प्रमाण हुआ है-ऐसा नहीं है। तब तो उस प्रमाण में दो नहीं रहते। ऐसा है भाई जरा!

प्रमाण है और वह स्वयं ही व्यवहार है। दो इकट्ठे हुए, इसलिए व्यवहार हो गया। निश्चय और व्यवहार, दो इकट्ठे हुए न ? द्रव्य और पर्याय, इसलिए वह प्रमाण (कहा)। वह प्रमाण स्वयं सद्भूत व्यवहारनय का विषय है, निश्चय का नहीं। इसीलिए तो कहा कि ***निश्चय है वह पूज्य है, या प्रमाण पूज्य है ? क्योंकि प्रमाण में दो साथ आते हैं-द्रव्य और पर्याय। और निश्चय में अकेला द्रव्य आता है। तो कहते हैं निश्चय पूज्य है। प्रमाण में पर्याय का निषेध नहीं आता, इसलिए वह पूज्य नहीं है।*** रतिभाई! सूक्ष्म है। आहाहा!

श्रोता : ....है, तथापि अपूज्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ। निश्चय की अपेक्षा से नहीं। ***जिसमें पर्याय का निषेध नहीं आता, वह पूज्य नहीं है। परमार्थ की अपेक्षा से बात है।***

भगवान आत्मा अखण्डानन्द प्रभु निश्चयनय का विषय है, वह निश्चयनय पूज्य है। वैसे तो व्यवहार भी पूज्य है, कहा है। नहीं? पद्मनन्दि में। है न, सब पता है। वह तो व्यवहार से व्यवहार पूज्य है, निश्चय से वह पूज्य नहीं है। ऐसी बातें हैं। आहाहा! जिनवरदेव का मार्ग बहुत सूक्ष्म है, भाई! समझ में आया? भगवान की दिव्यध्वनि का दिन है। इसने कहा था। यहाँ कुछ तैयार है? आने का हो वह आता है। आहाहा! ओहोहो! ऐसा वीतराग का मार्ग। त्रिलोकनाथ तीर्थंकरदेव ने दिव्यध्वनि द्वारा फरमाया है। यह उस दिव्यध्वनि का दिन है। लो, देखो! भावार्थ है न!

यह आत्मा व्यवहारनय से केवलज्ञानकर लोक-अलोक को जानता है,... देखो! स्पष्टीकरण आयेगा। **और शरीर में रहने पर भी...** केवलज्ञानी परमात्मा शरीर में होने पर भी **निश्चयनय से अपने स्वरूप को जानता है,...** निश्चयनय से तो अपने स्वरूप को जानते हैं, व्यवहार से पर का जानते हैं।

श्रोता : निश्चयनय से पर्याय, पर्याय को ही जानती है, व्यवहारनय से परद्रव्य को जानती है?

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार ऐसा नहीं। निश्चय से तो पर्याय, द्रव्य को जानती है, वह निश्चय कहलाता है, ऐसा है। नियमसार में स्व-पर प्रकाशक के दो बोल लिये हैं। एक तो स्व का ज्ञान और पर का ज्ञान - पर का ज्ञान - उसे निश्चयव्यवहार कहना। ज्ञान, ज्ञान को जानता है और ज्ञान के अतिरिक्त अपने गुण को जानता है... उसे स्व-पर प्रकाशक कहना। (वीतराग की) बातें, बापू! यह अलौकिक मार्ग लोगों ने-बेचारों ने सुना नहीं। आहाहा! इस तत्त्व की गहराई क्या है, इसे पहुँचा नहीं। पहुँचे तो, इसका कल्याण हुए बिना नहीं रहे। जन्म-मरण का अन्त आ जाये। आहाहा!

श्रोता : ......

पूज्य गुरुदेवश्री : यह नहीं, यह नहीं। गुण और पर्याय सबको जानता है। गुण को भी जानता है न! आहाहा! समझ में आया? अकेली पर्याय की बात नहीं है। ज्ञान की पर्याय ज्ञान को जाने, ज्ञान की पर्याय ज्ञानगुण को जाने, ज्ञान की पर्याय दूसरे गुणों को जाने और ज्ञान की पर्याय गुण की पर्याय को जाने। यह तो बहुत आगे गया। ऐसा मार्ग है, बापू!

जैसे स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य, अद्रव्य है; वैसे पर्याय की अपेक्षा से द्रव्य भी अद्रव्य है। वह पर्याय में आया नहीं, (इसलिए) पर है। आहाहा! कितनी सामर्थ्यता, वह यहाँ वर्णन करते हैं। एक समय की पर्याय वस्तु है—ऐसा कहा है। एक समय की जो पर्याय है, वही वस्तु एक है, बस! बाकी सब वस्तु उसकी अपेक्षा से अवस्तु है। एक पर्याय छह द्रव्य को जाने, एक

पर्याय छह को जाने और एक को जाने। इसीलिए एक पर्याय में सब पूरा आ गया। आहाहा!

श्रोता : महत्ता...

पूज्य गुरुदेवश्री : महत्ता करनेवाली पर्याय है न? तो पर्याय की ही महत्ता है। द्रव्य की महत्ता जाननेवाला कौन? द्रव्य जाने? ऐसी बात है। त्रिकाली भगवान की महत्ता जाननेवाला कौन? आहाहा! पर्याय ऐसा जानती (है कि) **'मैं ध्रुव हूँ'** ऐसा जानती है। मैं ध्रुव हूँ, वहाँ लक्ष्य है न! पर्याय ऐसा जाने कि 'मैं ध्रुव हूँ' आहाहा!

(समयसार गाथा) ३२० में आता है। ऐसा कहा—धर्मी, अखण्ड त्रिकाली निरावरण परमात्मा का ध्यान करता है, खण्ड-खण्ड का नहीं। पर्याय खण्ड-खण्ड है। आहा! समझ में आया? थोड़ा सूक्ष्म आ गया, भाई! आहाहा!

श्रोता : जमा...

पूज्य गुरुदेवश्री : जमा? एक बार तुम्हें याद किया था। नवरंगभाई, भाई ऐसा कहते हैं कि जमा। आहाहा!

निश्चयनय से अपने स्वरूप को जानता है, इस कारण ज्ञान की अपेक्षा तो व्यवहारनय से सर्वगत है, प्रदेशों की अपेक्षा नहीं है। प्रदेश अपने में हैं। ज्ञान पर के क्षेत्र में व्यापता है-ऐसा नहीं है। अपने क्षेत्र में व्यापता है-ऐसा कहना है। वह द्रव्य और पर्याय - अभी यह भेद नहीं है। यह तो जानने की पर्याय सर्व को-परक्षेत्र को व्यापकर जानती है-ऐसा नहीं है। अपना क्षेत्र है, वहाँ रहकर वह जानती है।

श्रोता :....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पर्याय का जितना क्षेत्र है, वह पर्याय का क्षेत्र है। वह तो पर से भिन्न करना हो तब... अपने को भिन्न करना, दो भेद हैं न? दो चीज़ भिन्न है।

प्रमाण का विषय द्रव्य और पर्याय है। निश्चय का विषय अकेला द्रव्य है। विषय करनेवाली पर्याय है। आहाहा! कार्य तो पर्याय में आता है न! कारण द्रव्य त्रिकाली है। वह कारण द्रव्य है, उसमें कहाँ कार्य आता है? यह तो प्रश्न हुआ था। 'त्रिभुवन वारिया' है न? ऐसा कि तुम कारणपरमात्मा कहो... सुनो! कारणपरमात्मा है, उसका स्वीकार हो, उसे कारणपरमात्मा या नहीं स्वीकारे और कारणपरमात्मा?

श्रोता : स्वीकार की क्या आवश्यकता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु है, उसे जाने बिना 'यह है'-ऐसा निर्णय तो हुआ नहीं, तो उसे कहाँ है? कारणपरमात्मा है किसे? वह है अनादि का, ऐसा नहीं। जिसने पर्याय में कारणपरमात्मा

का आश्रय लेकर निर्णय किया, उसे कारणपरमात्मा है। जिसे पर्याय में उसका निर्णय हुआ, उसे कारणपरमात्मा है और उस कारणपरमात्मा का जिसे निर्णय हुआ, उसे कार्य-सम्यग्दर्शन-आये बिना रहता ही नहीं। समझ में आया ? गिरधरभाई ! ऐसी-ऐसी बातें हैं। आहा ! वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, बापू ! और इसका फल भी कैसा ! अनन्त-अनन्त आनन्द सादि-अनन्त (काल) प्रगट हो। उसके उपाय भी अलौकिक होंगे या नहीं ? इसमें वाद-विवाद को स्थान नहीं है। आहा !

देखो ! **प्रदेशों की अपेक्षा नहीं है।** प्रदेश की अपेक्षा अर्थात् परप्रदेश में ज्ञान जाता नहीं, ऐसा। अपने प्रदेश में रहकर पर को जानता है, इस अपेक्षा से सर्वगत जानने की अपेक्षा से कहने में आता है, परन्तु क्षेत्र में जाता है, इसलिए सर्व व्यापक है-ऐसा नहीं है।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

७

श्री परमात्मप्रकाश, प्रथम अधिकार, गाथा ६८ प्रवचन नं. ४६
दिनांक २४-०७-१९७६

अनुभूति—जो शुद्ध आत्मा है, उसे अनुसरकर अनुभूति होना। निर्विकल्प परिणति को शुद्धात्मानुभूति कहते हैं। अपना आत्मा त्रिकाल शुद्ध है, उसकी अनुभूति-उसका अनुभव होना। उसके अभाव में-अनुभूति के अभाव में **शुभ-अशुभ उपयोगों से परिणमन करके...** क्योंकि शुद्ध आत्मा वस्तु की ओर की शुद्धात्मानुभूति का अभाव है तो शुभाशुभभाव का भाव है। **शुभ-अशुभ उपयोगों से परिणमन करके जीवन, मरण, शुभ, अशुभ कर्मबंध को करता है,...** जन्मना और मरना, वह शुभाशुभ उपयोग के कारण से कर्मबन्ध होता है, उससे वह जीवन-मरण होता है।

और शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर.... यहाँ बात यह कहनी है कि पर्याय में अनुभूति के अभाव के कारण, पर्याय में शुभ-अशुभभाव करके जो कर्मबन्धन हुआ, उससे जन्म-मरण करता है। **और शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर...** भगवान शुद्ध आत्मा को निर्विकल्प अनुभूति द्वारा अनुभव करके अथवा **शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर...** शुद्धात्मानुभूति के अभाव में शुभाशुभभाव प्रगट है। **शुद्धात्मानुभूति के प्रगट होने पर...** आहाहा! चैतन्य वस्तु जो अबद्धस्वरूप है, परमार्थ से स्वयं अबद्धस्वरूप है, परन्तु उसकी पर्याय में जब शुद्धात्मानुभूति होती है, उससे **शुद्धोपयोग से परिणत होकर मोक्ष को करता है,...** पर्याय में शुद्धात्मानुभूति की परिणति से पर्याय में मोक्ष करता है। समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात है।

ऐसा होने पर भी, शुद्धात्मानुभूति के अभाव में शुभाशुभभाव करके पर्याय में जन्म-मरण होता है और शुद्धात्मानुभूति को प्रगट करने से-भगवान पूर्णानन्दस्वरूप की ओर की निर्विकल्प वीतरागी परिणति प्रगट करके मोक्ष करता है। ये दोनों बातें पर्याय में होती हैं। समझ में आया? आहाहा!

तो भी शुद्ध पारिणामिक परमभाव ग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनयकर... त्रिकाल परमस्वभावभाव जो बन्ध में नहीं और मुक्ति में नहीं। वह तो त्रिकाली मोक्षस्वरूप ही है। शक्तिरूप मोक्षस्वरूप ही आत्मा है। आहा! उसमें-पर्याय में बन्ध और मुक्ति (है, वह) त्रिकाली मुक्तस्वभाव में नहीं है।

यहाँ तो ऐसा भी कहा है कि शुभ-उपयोग से तो शुभबन्ध होता है और उससे जन्म-मरण होते हैं। भले स्वर्गादि मिले; और शुद्धोपयोग से ही मुक्ति होती है। व्यवहार से परम्परा मुक्ति कहने में आती है, वह तो उपचार से कथन है। समझ में आया? भगवान आत्मा पूर्ण शुद्धस्वरूप है। उसकी अनुभूतिस्वरूप शुद्धोपयोग है। आहाहा! (उस) शुद्धोपयोग से मुक्ति होती है—ऐसा कहा है न? परन्तु यह पर्याय की बात की है। वस्तु जो त्रिकाल परम स्वभावभाव है, **शुद्धद्रव्यार्थिकनयकर...** शुद्धद्रव्य जिस नय का प्रयोजन है, उस नय से देखने पर **न बन्ध का कर्ता है और न मोक्ष का कर्ता है।** ***यह वस्तु जो है, वह रागभावरूपी बन्ध का कर्ता भी नहीं और अनुभूति और निर्विकल्प शुद्धोपयोग की कर्ता भी नहीं और मोक्ष की भी कर्ता नहीं।*** आहाहा!

यहाँ कहते हैं, देखो! **ऐसा कथन सुनकर शिष्य ने प्रश्न किया, कि हे प्रभो, शुद्धद्रव्यार्थिकस्वरूप शुद्धनिश्चयनयकर मोक्ष का भी कर्ता नहीं है,...** आत्मा शुद्ध द्रव्यस्वरूप से मोक्ष का कर्ता नहीं **तो ऐसा समझना चाहिए, कि शुद्धनयकर मोक्ष ही नहीं है, जब मोक्ष नहीं, तब मोक्ष के लिये यत्न करना वृथा है।** शुद्धनय से मुक्ति नहीं तो मोक्ष का प्रयत्न करना भी रहा नहीं-ऐसा शिष्य का प्रश्न है। गाथा बहुत अलौकिक है। (समयसार की) ३२० गाथा की जयसेनाचार्य की टीका में यह गाथा ली है।

उसका उत्तर कहते हैं- क्या कहते हैं? भगवन्त! आप कहते हो कि शुद्धनय से, द्रव्यार्थिकनय से तो आत्मा, मोक्ष को भी नहीं करता; बन्ध नहीं करता-यह बात एक ओर रखो, परन्तु मोक्ष को भी नहीं करता तो मोक्ष का प्रयत्न करना वृथा हो गया। आत्मा, मोक्ष करता नहीं तो मोक्ष का प्रयत्न करना वृथा हुआ। समझ में आया?

उसका उत्तर—**मोक्ष है, वह बन्धपूर्वक है,...** पर्याय में जो मोक्ष है... वस्तुस्वरूप जो मोक्ष (स्वरूप) है, वह तो त्रिकाल है। अबन्धस्वरूप कहो, मोक्षस्वरूप कहो। कायम मोक्षस्वरूप, हों! असली त्रिकाली। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात, भाई!

ऐसा उत्तमस्वरूप जो बन्ध-मोक्ष की पर्यायरहित है, उसे दृष्टि में लेना, वह कितना पुरुषार्थ है! इस निर्विकल्प शुद्धपरिणति द्वारा, जिसमें पर्याय का बन्ध-मोक्ष नहीं, उसकी शुद्ध निर्विकल्प परिणति द्वारा दृष्टि में आता है। समझ में आया? पोपटभाई! ऐसी बातें हैं। हम भी करते थे न, बापू! हम सब भी दुकान पर करते थे। 'पालेज', सामायिक करते, परन्तु वह पर्यूषण में, हों! आठ दिन पर्यूषण आवे, तब शाम को प्रतिक्रमण, आठ दिन में चार उपवास (करते) तब, हों! संवत् १९६४-६५ के साल। दीक्षा तो संवत् १९७० में (ली थी)। उस समय आठ दिन में चार उपवास करते, चौविहार, हों! चौविहार अर्थात् पानी भी नहीं (लेना)। दुकान में धन्धे पर बैठना पड़े।

श्रोता : उस दिन का पुण्य अभी काम आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह भ्रमणा थी। आहा! ऐसा मानते थे कि धर्म करते हैं। आहाहा! वह तो साधारण शुभभाव था। मिथ्यात्वसहित, गृहीत मिथ्यात्व (था)। स्थानकवासी की श्रद्धा थी न! वह तो गृहीत मिथ्यात्व था। हम तो (संवत्) १९६४ के साल से शास्त्र पढ़ते थे। १९६५ के साल से तो रात्रि के आहार-पानी का त्याग है। १९६५ के साल से रात्रि में आहार-पानी नहीं लेते। दुकान पर भी नहीं लेते थे। यह सब गृहीत मिथ्यात्व की भूमिका में ऐसा शुभभाव था। आहा...!

यह चीज़ तो... आहाहा! कहते हैं कि जिसकी पर्याय में बन्ध-मोक्ष है, उस द्रव्य में बन्ध-मोक्ष नहीं। आहाहा! अथवा द्रव्य जो त्रिकाली वस्तु है, वह बन्ध-मोक्ष की करता नहीं। आहाहा! तो फिर शिष्य का प्रश्न है कि मोक्ष का करता नहीं और शुद्धनय से तो मोक्ष होता नहीं तो फिर शुद्धनय से मोक्ष का प्रयत्न करना वृथा हो गया। शिष्य का यह प्रश्न है। उत्तर (ऐसा है)।

मोक्ष है, वह बन्धपूर्वक है,... पर्याय में राग का बन्ध हो तो उसका अभाव करके बन्धपूर्वक मोक्ष होता है। पर्याय में बन्धभाव है तो उस बन्ध का अभाव करके मोक्ष होता है। **और बन्ध है, वह शुद्धनिश्चयनयकर होता ही नहीं,...** आहाहा! त्रिकाली वस्तु को निश्चय से तो बन्ध है ही नहीं। बन्ध क्या? वह तो पर्याय में बन्ध है। समझ में आया? आहाहा!

बाहर की चीज़ों का आकर्षण है, तब तक तो अज्ञानभाव है। वह वस्तु में नहीं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि बन्ध है, वह मोक्षपूर्वक होता है, परन्तु वह तो पर्याय में बन्ध है तो मोक्षपूर्वक होता है। वस्तु में निश्चय से तो बन्ध नहीं। वस्तु में बन्ध कैसा? द्रव्य में बन्ध हो, तब तो उसका अभाव हो जाए। समझ में आया? पर्याय में बन्ध होता है तो पर्याय में विकारदशा उत्पन्न होती है। वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! वस्तु जो है, वह यदि निश्चय से बन्धरूप हो तो उसका अर्थ क्या हुआ? कि वस्तु ही बन्ध में आ गयी, तो वस्तु ही (रहती) नहीं-परन्तु ऐसा नहीं है। निश्चय से वस्तु में बन्ध है ही नहीं। आहाहा! सूक्ष्म बात है। पोपटभाई!

श्रोता : ध्यान रखे तो समझ में आये।

पूज्य गुरुदेवश्री : ध्यान रखे तो समझ में आये-बात सत्य है। आहाहा! अरे! इस कब समय मिले? भाई! आहाहा! जन्म-मरण करके देखो न यह! आहाहा! हड़के कुत्ते से मनुष्य मर जाता है। उसे बहुत दुःख होता है, बहुत दुःख। उस समय उसे इतना दुःख होता है कि कहीं चैन नहीं पड़ती। आहाहा! पागल कुत्ता काटता है न? यह (अज्ञानी) पागल है, कहते हैं। राग की एकताबुद्धि (धरनेवाला) पागल है।

भगवान आत्मा निश्चय में बन्धपूर्वक हो, तब तो वस्तु का ही अभाव हो जाये, वस्तु में

तो बन्ध है नहीं। आहा! है? **बन्ध है, वह शुद्धनिश्चयनयकर होता ही नहीं, इस कारण बन्ध के अभावरूप मोक्ष है, वह भी शुद्धनिश्चयनयकर नहीं है।** पर्याय में जो बन्ध का अभाव होता है, वह तो द्रव्य में है नहीं। द्रव्य में बन्ध नहीं तो बन्ध का अभाव करके मोक्ष (करना), वह वस्तु में नहीं। आहाहा! यह तो क्या वस्तु?

ज्ञायकभाव, स्वभावभाव...! प्रवचनसार २०० गाथा में लिया है न? चाहे जिस प्रकार से रागादि हुए, वस्तु तो ज्ञायकभावरूप रही है। आहाहा! प्रवचनसार २०० गाथा में है। प्रवचनसार की २०० गाथा में है कि (वस्तु) तो ज्ञायकरूप ही रही है। उसमें बन्ध भी नहीं, मोक्ष भी नहीं। वस्तु में क्या? ऐसी वस्तु की दृष्टि करना-ऐसा कहा, उसमें कितना पुरुषार्थ है? समझ में आया?

जो वस्तु में बन्ध-मोक्ष नहीं, (उसमें) पर्यायदृष्टि उड़ा दी। त्रिकाली भगवान आत्मा अस्तिपदार्थ है न! अस्ति-सत्तारूप भाव है और वह ज्ञायकभावरूप सत्ता भाव त्रिकाल है। उसमें बन्ध और मोक्ष कहाँ आया? वह तो पर्याय में बन्ध और मोक्ष है। आहा! कैसी बात की है! पर्यायबुद्धि उड़ाने को, द्रव्यबुद्धि कराने को (कहते हैं कि) द्रव्य में बन्ध-मोक्ष नहीं है। आहाहा! भाई! यह तो धीर का काम है, बापू! आहाहा! जिस वस्तु में बन्ध और मोक्ष नहीं, पर्याय का बन्ध-मोक्ष द्रव्य में नहीं। समझ में आया? वह द्रव्यदृष्टि करना, वह कहीं शुभ उपयोग से दृष्टि होती है? आहाहा!

श्रोता : होती तो नहीं है, रुकती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह पर्याय रुकती है। द्रव्य में कुछ नहीं। आहा!

यहाँ तो स्पष्टीकरण यह आता है कि जिसमें बन्ध-मोक्ष नहीं, ऐसी चीज़, उस चीज़ को पकड़ना, वह क्या शुभराग पकड़ सकता है? समझ में आया? वह तो शुद्ध उपयोग से ही पकड़ में आती है। आहा! शुद्ध उपयोग है पर्याय, परन्तु उसका ध्येय पूरा द्रव्य है। आहाहा! जन्म-मरणरहित होने का यह उपाय है। आहा! शरीर युवा हो, रूपवान हो, पैसा पाँच-पचास लाख हो, कुटुम्ब, स्त्री-पुत्र ठीक हो तो मानो हमें ठीक है। अरे! प्रभु! कहाँ है? बापू! प्रभु! तू कहाँ रुक गया? आहा!

श्रोता : व्यवहार की अपेक्षा से ठीक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार की अपेक्षा भी अठीक है। मोक्षमार्ग, वह व्यवहार है, उसकी अपेक्षा से तो वे अठीक हैं। आहा! मोक्षमार्ग और मोक्ष की पर्याय, व्यवहार है। आहाहा! डॉक्टर ने अवधि दी है, अढ़तालीस घण्टे ध्यान रखना। आहाहा! अब उस स्थिति में अढ़तालीस घण्टे किस प्रकार निकालना? लोगों को ऐसा हो गया, हाय... हाय...! क्या होगा? क्योंकि वह तो

अढ़तालीस घण्टे में देह तो छूट जायेगी। अढ़तालीस घण्टे में क्या होगा? आहा! यह राग की एकता की पीड़ा है।

श्रोता : शरीर की पीड़ा नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : शरीर की पीड़ा नहीं। शरीर को तो स्पर्श भी नहीं करता। आहा! शरीर मेरा, यह भी कहाँ खबर है? आहा! अनादि का पागल है। इसे मिथ्यात्व का हड़किया कुत्ते ने काटा है। आहाहा! इसे परपदार्थ की अनुकूलता में उत्साह (आता है), यह सब हड़किया कुत्ता है, पागल कुत्ता है। इसे छह लड़के हैं, दो करोड़ रुपये, बड़ी आमदनी है, छहों बड़े लोहे जैसे हैं। आहा! किसके पुत्र? बापू! अरे!

जहाँ निर्मल परिणति भी द्रव्य की नहीं.. आहाहा!

श्रोता : वह तो पर्याय में है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, पर्याय में है, भगवान! बापू! तू कौन है? आहाहा! तू कौन है? तुम कौन हो? आहा! इसके बाद ६९ (गाथा में) कहेंगे। हे आतमराम! टीका में है, हों! हे आत्मन्! हे जीव! ६९ में है, भाई! पहली लाईन है न? उस ओर की पहली, ऐसे तीसरी लाईन है। हे आत्मन्! हे जीव! अर्थ किया है, हे आत्मराम! आहाहा! 'निज पद रमे सो राम कहिये।' आनन्द का नाथ आनन्द में रमे, उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! आनन्द का नाथ आत्मा में रमे तो आत्माराम कहते हैं। राग में रमे, वह हराम आत्मा है। आहाहा! वह पर्याय में है। हराम और राम की सब क्रीड़ा पर्याय में है। आहाहा!

आचार्य द्रव्यदृष्टि कराने के लिये द्रव्य का स्वरूप वर्णन करके वहाँ दृष्टि लगाने को पर्याय को द्रव्य नहीं करता—ऐसा कहते हैं। करता नहीं, वहाँ नजर डाल न! आहाहा! समझ में आया? द्रव्य, पर्याय को करता नहीं। ओहोहो! यह तो अभी परद्रव्य को करना (-ऐसा मानता है)। मूल बात तो यह है कि निमित्त का करना है, वह स्थापित करना है। निमित्तकर्ता है न? निमित्तकर्ता। इस बात को स्थापित करके इसे कहना है कि पर का कर्ता न माने, उसकी बात मिथ्या है। इस प्रकार, मूल तो ऐसा कहना है, हों! अरे! भगवान!

पर की क्रिया जिस काल में होती है, उस समय अज्ञानी के योग और राग का वह कर्ता होता है। कम्पन और इच्छा का राग। अतः वह इच्छा और कम्पन (निमित्त कहलाते हैं)। पर की पर्याय तो उस काल में उसके कारण हुई है। उसमें यह योग और विकल्प का कर्ता अज्ञानी आत्मा है। वह उसका निमित्तकर्ता कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? ज्ञानी तो निमित्तकर्ता भी नहीं है। आहा! निमित्त है, इतना कहने में आता है। और धर्मी तो, निज स्वभाव

की दृष्टि है, इस कारण अपने सम्यग्ज्ञान में परचीज़ निमित्त पड़ी। ऐसे निमित्त हुआ। अज्ञानी ऐसे निमित्तकर्ता हुआ। आहाहा!

हम निमित्त तो हैं या नहीं ? ऐसा हमारे एक कहते थे। है न, डेवरभाई ? यह डेवरभाई नहीं ? यहाँ बड़े प्रधान थे न ? दिल्ली में बड़े प्रधान थे। हम जिस दिन पहली बार दिल्ली गये, उस दिन बड़े प्रधान थे। व्याख्यान में आते थे। लोगों को ऐसा लगता कि ऐसे बड़े प्रधान (सुनने आते हैं) ? वहाँ तो हमारे बहुत बार आते हैं। रामजीभाई उनके गुरु थे, रामजीभाई के शिष्य थे। फिर बड़ी पदवी हो गयी। आहा! हम निमित्त तो हैं न ? ऐसा वे कहते थे। निमित्त होना, इसका अर्थ क्या ? जिस समय जिस द्रव्य की पर्याय होती है, उस समय निमित्त होता है, तो निमित्त होना उसमें कहाँ आया ? तब तो निमित्त कहलाता है। आहाहा! निमित्त हो तो वहाँ होता है, इसका अर्थ क्या ? इसका अर्थ क्या ? समझ में आया ? आहाहा!

यहाँ कहते हैं **जो शुद्धनिश्चयनय से बन्ध होता, तो हमेशा बँधा ही रहता,...** आहाहा! **कभी बन्ध का अभाव न होता। इसके बारे में दृष्टान्त कहते हैं-कोई एक पुरुष सांकल से बँध रहा है, और कोई एक पुरुष बन्ध रहित हैं, उनमें से जो पहले बँधा था, उसको तो 'मुक्त' (छूटा) ऐसा कहना, ठीक मालूम पड़ता है...** बँधा था वह छूटा-ऐसा कहना वह ठीक है। **और दूसरा जो बँधा ही नहीं, उसको जो 'आप छूट गये' ऐसा कहा जाय, तो वह क्रोध करे,...** अरे! क्या कहते हो ? हम बँधे थे कि छूटा-ऐसा कहते हो ? हम जेल में गये थे तो छूटा ऐसा कहते हो ? आहा! इसका अर्थ कि हमने कोई गुनाह किया था ? गुनाह किया था, जेल में गये थे, तो अब छूटे इतना सब निश्चित हो जाता है। हम तो कभी बँधे ही नहीं। कभी गुनाह करके जेल में कभी गये ही नहीं। हमें छूटे ऐसा तुम क्या कहते हो ? आहा! टीकाकार ने भाषा में कोप (शब्द) लिया है, हों! **तदा कोपं करोति** ऐसा शब्द है। संस्कृत टीका में है। है ?

ऐसा कहा कहा जाय, तो वह क्रोध करे, कि मैं कब बँधा था, सो यह मुझे 'छूटा' कहता है,... क्या मैं पहले जेल में गया था तो तुम छूटा कहते हो ? **बँधा होवे, वह छूटे, इसलिये बँधे को तो मोक्ष कहना ठीक है,...** समझ में आया ? राग से बँधा है, वह पर्याय में मुक्त हुआ—ऐसा कहना वह ठीक है। पर्याय में राग से बँधा है तो राग से छूटा-ऐसे पर्यायवाले को कहना, वह तो ठीक है। **और बँधा ही न हो, उसे छूटे कैसे कह सकते हैं ?** आहाहा!

उसी प्रकार यह जीव शुद्धनिश्चयनयकर बँधा हुआ नहीं है,... आहाहा! वस्तु-भगवान पूर्णानन्द वस्तु अस्ति, तत्त्व महासत्ता, वह चीज़ तो कभी बँधती ही नहीं। आहाहा! वह चीज़ बँधे तो इसका क्या अर्थ हुआ ? कि राग में बँधे तो अरागी पर्याय रुक गयी। ऐसे जीव बँधे तो जीवतत्त्व का ही अभाव हो जाये। समझ में आया ? क्या कहा ? राग से बँधा हो, तब तो अरागी

पर्याय रुक गयी। समझ में आया? अरागी रही नहीं; इसी प्रकार यदि वस्तु बँध जाये तो वस्तु रहती नहीं। आहाहा! समझ में आया? मार्ग ऐसा सूक्ष्म है भगवान!

लोगों ने स्थूल करके वापस ऐसा कर दिया है कि व्यवहार परम्परा मोक्ष का मार्ग है न! अरे! भगवान किसने कहा? यह तो जिसे निश्चय अनुभव हुआ है, सम्यग्दर्शन हुआ है, ज्ञान, चारित्र, शान्ति (प्रगट हुए हैं), उसके व्यवहार को परम्परा का आरोप देकर मुक्ति का कारण कहा है परन्तु जिसे अभी निश्चय ही नहीं, अन्तर आत्मा आनन्दस्वरूप राग से भिन्न है—ऐसा अनुभव नही, दृष्टि नहीं, आश्रय नहीं, उसे तो अकेले व्यवहार का आश्रय है। वह व्यवहार परम्परा मुक्ति का कारण है? समझ में आया? ऐसा व्यवहार तो अनन्त बार किया। अनन्त बार व्यवहार किया। नौवें ग्रैवेयक गया तो वहाँ के अनन्त पुद्‌गल परावर्तन शास्त्र में लिखे हैं। नौवें ग्रैवेयक में अनन्त पुद्‌गल परावर्तन किये। आहाहा! समझ में आया?

एक पुद्‌गल परावर्तन के भाग में अनन्त-अनन्त भव होते हैं। एक पुद्‌गल परावर्तन के अनन्तवें भाग में अनन्त भव होते हैं। ऐसे अनन्त पुद्‌गल परावर्तन नौवें ग्रैवेयक के किये। अनन्त-अनन्त काल है। आहाहा! इसके शुभभाव की दशा तो बहुत ऊँची थी। इस कारण स्वर्ग में गया। मिथ्यादृष्टि की भूमिका में अन्तिम हद का शुभभाव (हुआ), उससे तो कोई लाभ हुआ नहीं। मिथ्यात्व रहा (तो) जन्म-मरण रहे। आहाहा! सम्यक् अनुभव के बिना जो व्यवहार है, वह (व्यवहार ही नहीं) अज्ञानी को तो व्यवहार ही कहाँ है? निश्चय हुआ हो, उसे राग बाकी रहा, उसे व्यवहार कहा परन्तु जिसे निश्चय ही नहीं हुआ, उसे व्यवहार कहाँ से आया? वह तो पूरा आत्मा ही उसरूप हो गया है। आत्मा उसरूप हुआ नहीं—ऐसा अनुभव हुआ है, उसके राग को परम्परा मुक्ति के कारण का आरोप किया जाता है। देवीलालजी! इसी बात है, भाई!

भगवान परमात्मा जिनेश्वर तो ऐसा कहते हैं। वह इसमें कहा न? **जिणवरु एउँ भणेइ** आहाहा! जीव जन्म-मरण और बन्ध-मोक्ष करता नहीं—ऐसा जिनवर कहते हैं। उसे जीव कहते हैं। आहाहा! उसे जीव कहकर जिनवर कहते हैं। आहाहा! यह शब्द है न? ६८ (गाथा) **ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ। जिउ**—उस जीव को जीव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! जो बन्ध-मोक्ष करे नहीं, जन्म-मरण करे नहीं, उस जीव को जिनेश्वरदेव ने जीव कहा है। आहाहा! है?

जिउ परमत्थैं जोइया जिणवरु एउँ भणेइ। आहाहा! तीन लोक के नाथ, इच्छा बिना वाणी में ऐसा आया, हे योगी! इस जीव को जिनवर, जीव कहते हैं। पर्याय में बन्ध-मोक्ष करे वह जीव नहीं, वह तो व्यवहार पर्याय हुई, निश्चय जीव नहीं। आहाहा! समझ में आया? गजब बात है। बन्ध-मोक्ष करे नहीं, उपजे-मरे नहीं, वह जीव, वह परमार्थ से, हे योगी! उसे हम जीव कहते

हैं। और **जिणवरु एउँ भणेइ।** तीन लोक के नाथ अनन्त तीर्थंकर ऐसा कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ओहोहो! उसे हम जीव कहते हैं कि जो बन्ध-मोक्ष और जन्म-मरण करे नहीं। पर्याय में बन्ध-मोक्ष होता है, वह तो व्यवहार आत्मा हो गया; परमार्थ आत्मा नहीं रहा। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

निश्चयमोक्षमार्ग भी पर्याय है तो वह भी व्यवहार हो गया। त्रिकाल द्रव्य में बन्ध-मोक्ष नहीं—ऐसे जीव को जीव कहते हैं, तो जब मोक्ष की पर्याय हुई तो वह व्यवहार आत्मा हो गया। आहाहा! समझ में आया? प्रभु का कथन ऐसा है, भाई! आहाहा! वीतराग **जिणवरु एउँ भणेइ।** आहाहा! सन्त भी कहते हैं न! यह दिगम्बर सन्तों की ध्वनि तो देखो! जिनवर ऐसा कहते हैं। अनन्त जिनवर, एक जिनवर नहीं लिये। अनन्त जिनवर ऐसा कहते हैं कि जो जीव जन्म-मरण और बन्ध-मोक्ष न करे, उसे हमें जीव कहते हैं। आहाहा! उसे हम परमार्थ से आत्मा कहते हैं। आहाहा!

पर्यायबुद्धि छुड़ाने और द्रव्य की ओर झुकाव करने के लिये यह बात कहते हैं। आहाहा! निश्चयमोक्षमार्ग है, उसका आश्रय करनेयोग्य नहीं है। निश्चयबन्धमार्ग राग है, वह तो आश्रय करने योग्य नहीं परन्तु पर्याय में मोक्षमार्ग होता है, वह आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! निश्चयमोक्षमार्ग में आश्रय करनेयोग्य त्रिकाली जीव है, जो बन्ध-मोक्ष से रहित है, वह। निश्चयमोक्षमार्ग में निश्चयमोक्षमार्ग का भी आश्रय नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा मार्ग है, हीराभाई! आहाहा!

अनन्त जिनवर अर्थात्? वीतरागी प्रधान परमात्मा। जिन तो चौथे-पाँचवें (गुणस्थानवर्ती को भी) कहते हैं। ये तो जिनवर-ऐसा शब्द है। जिनवर वीतराग परमात्मा पूर्णानन्द का नाथ, वे ऐसे जीव को जीव कहते हैं कि जो बन्ध-मोक्ष नहीं करता। आहाहा! जो पर्याय को नहीं करता, उसे जिनवर जीव कहते हैं। अरे! भगवान! यह बात कहाँ है? बापू! देवीलालजी! यह तीन लोक के नाथ के घर की बातें हैं। भाई! अरे रे!

पाँचवाँ काल तो (भी) जीव तो है वह है। चौथे काल में दूसरा जीव और पाँचवें काल में (दूसरा जीव) ऐसा है कहीं? पाँचवें काल में भी भगवान इसे जीव कहते हैं। आहाहा! अनन्त जिनवर इसे जीव कहते हैं कि जो बन्ध-मोक्ष की पर्याय को, जन्म-मरण को करे नहीं, उसे जीव कहते हैं। आहाहा! कहो, समझ में आया? लो, इस पर्याय को जीव नहीं कहें? मोक्षमार्ग की पर्याय को जीव नहीं कहें? मोक्ष को जीव नहीं कहें? वह व्यवहार जीव है। पर्यायवाला जीव अर्थात् पर्याय, अर्थात् व्यवहार; द्रव्य अर्थात् निश्चय। यह सिद्धान्त है। आहाहा!

भगवान! तेरी बलिहारी है, नाथ! तू कोरा रहकर पर्याय में नहीं आता। आहाहा! ऐसे

जीव को परमात्मा कहते हैं कि हम आत्मा कहते हैं। हे आतमराम! वहाँ नजर कर! जो द्रव्य, बन्ध और मोक्ष को करता नहीं, जो जीव, मोक्ष के परिणाम को करता नहीं-ऐसा जिनवर कहते हैं—ऐसे जीव को हम जीव कहते हैं। कहते हैं कि वहाँ नजर कर! अमरचन्दभाई! आहाहा! गजब बातें हैं, बापू! दुनिया को ऐसा लगता है कि ऐसा क्या!

श्रोता : मीठा लगता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा मीठा है, बापू!

श्रोता : जीव और मोक्ष के बीच कोई सम्बन्ध है या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय, पर्याय में है; द्रव्य, द्रव्य में है। द्रव्य में पर्याय का अभाव है—ऐसा सम्बन्ध है। समझ में आया? पर्यायधर्म का द्रव्यधर्म में अभाव है। द्रव्यधर्म में पर्यायधर्म का अभाव है। आहाहा!

श्रोता : ऐसा तो लिखा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लिखा है। आहाहा! क्या प्रभु की शैली!

जिनवर उसे जीव कहते हैं। आहाहा! ऐसा सन्त आढ़तिया होकर जिनवर का माल प्रसिद्ध करते हैं। आढ़तिया कहते हैं न? आढ़तिया होते हैं न? माल बताते हैं। सन्त, दिगम्बर सन्त आढ़तिया होकर जिनवर ऐसा माल कहते हैं-ऐसा कहते हैं। तुझे रुचता है? आहाहा! आहाहा! तू त्रिकाल भगवानस्वरूप है, सदृश वस्तु है, सामान्य है, उसमें विशेष का तो अभाव है—ऐसा कहते हैं। जो सामान्य चीज़ है, वह विशेष को नहीं करती। आहाहा! गजब बात है!

श्रोता : करती नहीं अर्थात् छूती भी नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य, पर्याय को स्पर्श नहीं करता। यह अधिकार बहुत आया। समयसार ४९ गाथा। व्यक्त-अव्यक्त को जानने पर भी व्यक्त को आत्मा स्पर्श नहीं करता। व्यक्त अर्थात् पर्याय, अव्यक्त अर्थात् द्रव्य। यह द्रव्य और पर्याय का एक समय में साथ में ज्ञान होने पर भी अव्यक्त, व्यक्त को स्पर्श नहीं करता। द्रव्य, मोक्ष की पर्याय को स्पर्श नहीं करता। आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं, हों! आहाहा! और पर्याय, द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। १९ में अलिंगग्रहण में आया है। बीस बोल में १९ वाँ बोल। पर्याय, द्रव्य का स्पर्श नहीं करती। अर्थावबोधरूप विशेष पर्याय का आलिंगन किये बिना द्रव्य शुद्ध है। आहाहा! पर्याय का आलिंगन किये बिना द्रव्य को शुद्ध कहते हैं। आहाहा! देखो न, कितना मेल है!

४७ (नय) में शुद्धनय। निर्मल पर्याय सहित जो द्रव्य को देखो तो उसे अशुद्धनय कहते हैं। व्यवहार हुआ न? आहाहा! क्या कहते हैं? भगवान कहते हैं ऐसा सुनो, भाई! आहाहा! क्या

कहा ? कि मोक्ष की पर्याय जो है, केवलज्ञान की जो पर्याय है, वह द्रव्य को स्पर्श नहीं करती। आहाहा! प्रभु! पूर्ण हो गयी न ? परन्तु है पर्याय न!

मुमुक्षु : दोनों के बीच अत्यन्त अभाव है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभाव है। चार प्रकार के अभाव, वह नहीं। प्राग्भाव, प्रध्वंसाभाव, अन्योन्याभाव, वह नहीं। यह तो अध्यात्म का (अभाव)। राग में और आत्मा में अत्यन्त अभाव है, वह दूसरी चीज़ है। इन चार अभाव से दूसरी चीज़ है, अध्यात्म का (अभाव है)। राग में और आत्मा में अत्यन्त अभाव है। समयसार में आता है। आहाहा! इन चार अभाववाली चीज़ नहीं, यह तो अध्यात्म की चीज़ है। वैसे द्रव्य में पर्याय नहीं, उसका अभाव है। यह अध्यात्म का अभाव है। गिरधरभाई! यह सब वापस आये, (ये) कल सबेरे नहीं थे। आहाहा! भगवान! थोड़ा परन्तु सत्य यह है। समझ में आया ? आहाहा!

जिनवर अनन्त तीर्थंकर दिव्यध्वनि में ऐसा कहते हैं कि हम उसे जीव कहते हैं कि जो मोक्ष की पर्याय तो करे नहीं, उसे हम जीव कहते हैं। आहाहा! परमार्थ जीवद्रव्य आत्मवस्तु मूलवस्तु। आहाहा! निश्चय जीव, निश्चय आत्मा। जिसे नियमसार में ३८ गाथा में कहा है न ? यह त्रिकाली भगवान है, वह निश्चय आत्मा है। आहाहा! देखो न, शैली तो देखो! दिगम्बर सन्तों की शैली तो देखो! ओहोहो! चारों ओर से सत्य खड़ा होता है। वहाँ ऐसा कहा। समझे ? आहाहा! क्या कहा अन्तिम ? ३८ (गाथा), निश्चय आत्मा उसे कहते हैं। ओहो! जो परमपारिणामिकभाव स्वभाव यहाँ कहा न ? **पारिणामिक परमभाव ग्राहक** उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! उसे यहाँ जीव कहते हैं। आहाहा!

भगवान! तुझे एक बार राग को भूलना पड़ेगा। दुनिया को भूलना पड़ेगा, पूरी दुनिया को ही भूलना पड़ेगा। अरे! तुझे पर्याय को भूलना पड़ेगा। आहाहा! समझ में आया ? पर्याय तब काम करेगी कि जब पर्याय को भूल जायेगा तब। आहाहा! पर्याय तो ऐसा जानती है कि मैं त्रिकाल निरावरण हूँ। यह ३२० (गाथा में) आया है न ? लो, यही आया। मोक्ष का मार्ग क्षयोपशम ज्ञानस्वरूप है, ऐसा कहते हैं, तो भी ध्याता पुरुष मोक्ष के मार्ग को ध्याता नहीं। आहाहा! तो भी ध्याता पुरुष ऐसा भाता है कि जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय... जो सकल निरावरण त्रिकाल अखण्ड वस्तु, (जिसमें) पर्याय का भेद नहीं। एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय। यह क्या कहते हैं ? आहाहा!

ज्ञान की पर्याय में जिसका प्रत्यक्ष प्रतिभास होता है। ज्ञान की पर्याय में जिसका प्रत्यक्ष प्रतिभास होता है। वह चीज़ आती नहीं परन्तु प्रतिभास होता है। आहाहा! समझ में आया ? अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ। पर्याय ऐसा जानती

है कि मैं यह हूँ। आहाहा! भगवान ऐसा कहते हैं कि जीव यह है। पर्याय ऐसा कहती है कि मैं यह हूँ। आहाहा! देखो तो! समझ में आया?

श्रोता : पर्याय स्वयं अपने को भूल गयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय कहती है कि यह मैं हूँ, मैं इसका ध्यान करती हूँ। आहाहा! यह मैं हूँ – ऐसा कहा न? देखो, ध्याता पुरुष ऐसी भावना करता है कि जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, जो यहाँ जीव कहा वह; वह प्रत्यक्ष प्रतिभासमय एकरूप है। अखण्ड है, एकरूप है। आहा! जिसमें पर्याय का भेद नहीं—ऐसा प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ परन्तु ऐसा भाता नहीं कि खण्ड ज्ञानरूप हूँ। मोक्षमार्ग की पर्याय का ध्यान नहीं करता, ऐसा कहते हैं। मैं मोक्षमार्ग की (पर्याय) हूँ—ऐसा नहीं; मैं तो यह हूँ। ऐसी बातें हैं, भगवान! क्या करे? आहा!

महापरमात्मा प्रभु तू है, भाई! आहाहा! क्या बात की है! उसे हम जीव कहते हैं। तीन लोक के नाथ जिनवरदेव ऐसा कहते हैं कि उसे हम जीव कहते हैं कि जो मोक्षमार्ग और मोक्ष की पर्याय नहीं करता, उसे हम जीव कहते हैं। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ यह कहा, पर्याय ऐसा जानती है कि जो यहाँ जीव कहा, वह मैं हूँ। समझ में आया? यहाँ जिनवर ने जो कहा कि यह जीव, वह मोक्ष की पर्याय और मोक्षमार्ग की पर्याय को नहीं करता, उसे हम जीव कहते हैं। ध्याता उस जीव को ध्याता है। आहाहा! कहो, हीराभाई! ऐसी बातें हैं। किसी समय ऐसी (बात) निकलती है। आहा! थोड़ी तो मुम्बई में चली थी। ३२० गाथा। आज अधिक-अधिक आता है। यहाँ जीव कहा न? वीतराग ने इसे जीव कहा, पर्याय भी उस जीव को ध्याती है कि यह मैं हूँ। पर्याय ऐसा कहती है कि यह जीव मैं हूँ। आहा! अर्थात् मैं ही यह हूँ, ऐसा। आहाहा! ऐसा हुआ न? हिम्मतभाई! यह कहते हैं कि यह मैं हूँ। वीतराग कहते हैं कि यह जीव कहलाता है जो जीव मोक्ष की पर्याय को भी करता नहीं, उसे हम जीव कहते हैं।

धर्मी की पर्याय ऐसा जानती है... आहाहा! त्रिकाली अखण्ड एकरूप चीज़ है, वह मैं हूँ। जिनवर ने ऐसा कहा कि यह जीव है तो पर्याय कहती है कि मैं यह जीव हूँ। आहाहा! भगवान ने जिसे जीव कहा, उस जीव को जो पर्याय (जीव) मानती है, आहाहा! उसने आत्मा को माना। समझ में आया? लो, समय हो गया, हों!

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

८ श्री नियमसार, गाथा ४७-४८, श्लोक-७१ प्रवचन नं. ५१ दिनांक २६-०८-१९८०

नियमसार, गाथा ४७ थोड़ा चला है, फिर से थोड़ा लेते हैं। **जो कोई अति-आसन्न-भव्यजीव हुए,...** मोक्ष पाने के योग्य अति भव्यजीव हुए। **वे पहले संसारावस्था में संसार-क्लेश से थके चित्तवाले होते हुए...** संसार के किसी भी विकल्प से थकान लगी हो, दु:ख लगा हो, उससे थके हुए, **परमागम के अभ्यास द्वारा...** आहाहा! गुरु के प्रसाद से **परमगुरु के प्रसाद से...** इतना, यह तो निमित्त है। कथनशैली तो दूसरी कैसी आवे? बाकी किसी निमित्त से पर में कुछ होता नहीं। क्रमबद्ध होता है, वह तीन काल में बदलता नहीं। क्रमबद्ध रखकर सब बात है।

प्रत्येक द्रव्य की पर्याय क्रमसर-क्रमबद्ध जिस समय में जो होती है, उस समय में होनेवाली होती है। उसमें यह कहते हैं कि गुरु के **प्रसाद से प्राप्त किए हुए...** अपनी पर्याय उस समय में प्राप्त होने की थी, उसमें गुरु निमित्त हुए, परमागम का अभ्यास उसमें निमित्त हुआ। **सिद्धक्षेत्र को प्राप्त करके अव्याबाध (बाधारहित) सकल-विमल (सर्वथा निर्मल) केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुख-केवलवीर्ययुक्त सिद्धात्मा हो गये कि जो सिद्धात्मा कार्यसमसाररूप हैं,...** आहाहा! कार्य प्रगट हुआ। सिद्ध की पर्याय पूर्ण प्रगट होने के योग्य थी, वह प्रगट हुई।

सबेरे आया था कि आत्मा महा समुद्र, गुण का समुद्र है, गुण का भण्डार है। अनादि-अनन्त सत्ता का धारक है परन्तु सिद्ध की पर्याय से अधिक पर्याय अब करने की रही नहीं। अन्तिम में अन्तिम सिद्ध पर्याय हो गयी। आत्मा में अन्दर चाहे जितना सामर्थ्य हो... आहाहा! उसमें अनन्त-अनन्त सामर्थ्य है, तथापि उसकी पर्याय में सिद्ध पर्याय जितनी मर्यादा रहती है। सिद्ध पर्याय से आगे नहीं जाती। आहाहा! ऐसी मर्यादा है। द्रव्य की मर्यादा ही इतनी है। उसमें जितने गुण हैं, उतने गुण, पर्याय में पूर्ण सिद्धस्वभाव में (प्रगट) हो जाते हैं। उसमें फिर पर्याय में वृद्धि हो (या) सिद्धभगवान बहुत काल रहे, करोड़ वर्ष-अरब वर्ष रहे, इसलिए पर्याय में गुण बढ़ते हैं-ऐसा नहीं है। आहाहा! वस्तु का स्वभाव ऐसा ही है।

वे **कार्यशुद्ध हैं।** भगवान कार्यशुद्ध हैं। कायम अपेक्षा से शुद्ध हैं। **जैसे वे सिद्धात्मा हैं वैसे ही शुद्धनिश्चयनय से...** भगवान **भववाले (संसारी) जीव हैं।** आहाहा! पर्याय का लक्ष्य छोड़ दे। पूर्णानन्द का नाथ आनन्दकन्द की दृष्टि से संसारी जीव भी सिद्ध समान हैं। आहाहा! सिद्ध

में और संसारी प्राणी में निश्चयनय की शक्ति के सामर्थ्य के कारण अन्तर नहीं है। आहाहा! ऐसी प्रतीति हो जाये, तब तो स्वसन्मुख हो जाये। आहाहा! सिद्ध की पर्याय जैसी संसारी पर्याय है, वैसी ही है। 'सिद्धसमान सदा पद मेरो' आहाहा! भाषा काम करे नहीं। चाहे जितनी विद्वत्ता हो, वह इसमें काम नहीं करती। अन्तर में पर्याय में द्रव्यस्वभाव सन्मुख झुकना (हो) तो वह संसारी पर्याय भी सिद्ध समान ही है। आहाहा! पर्याय, पर्याय,! हों! आहा! ऐसे तो शक्तिरूप से लेना है। प्रगट कहाँ है ?

उस कारण वे संसारी जीव जन्म-जरा-मरण से रहित और सम्यक्त्वादि आठ गुणों की... गुण शब्द से पर्याय (लेना)। समकित आदि पर्याय, वह पर्याय है। उसकी **पुष्टि से तुष्ट हैं...** आहाहा! संसारी जीव भी, सिद्ध के आठ गुण हैं—ऐसे गुण से पुष्ट हैं, पुष्ट हैं। आहाहा! उनका स्वभाव ऐसा ही है। भले प्रगट में दिखाई न दे परन्तु वस्तुरूप से तो सिद्धसमान शक्ति और पूरा स्वभाव है। जैसे सिद्ध के आठ गुण व्यवहार से हैं, निश्चय से अनन्त गुण हैं; वैसे आत्मा में अनन्त गुण शक्तिरूप से हैं, उन्हें व्यक्तिरूप से करने की सामर्थ्य है; इस कारण से सिद्धसमान वह संसारी है। आहाहा!

हम क्या करें ? हम पंचम काल में जन्में हैं, गरीब घर में आये हैं, आजीविका और रोटियाँ नहीं कि हम धर्म करें, इस बात को यहाँ अवकाश नहीं है। इस बात को यहाँ अवकाश नहीं है, प्रभु! चाहे जिस समय में, जहाँ देखे उस क्षेत्र में और काल में तू सिद्ध समान प्रभु ही है। आहाहा! यह बात कैसे बैठे ? जिसे अनन्त पर्याय प्रगट हुई है—ऐसा ही तू है। अभी संसार में ऐसा ही है। आहाहा! विश्वास, प्रतीति, भरोसा (ला)। ओहो! यह जो काम करते हैं, वह पहला अपूर्व काम है। आहाहा! पूर्णानन्द का नाथ सिद्धसमान अभी ही है। आहाहा!

कहा न ? वे **आठ गुणों की पुष्टि से तुष्ट हैं...** तुष्ट हैं **(सम्यक्त्व, अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तवीर्य, सूक्ष्मत्व, अवगाहन, अगुरुलघु तथा अव्याबाध, इन आठ गुणों की समृद्धि से आनन्दमय है)।** ऐसा जीव आनन्दमय है। आहाहा! कहाँ संसारी, कहाँ सिद्ध! वह तो पर्याय-अवस्था में पर्याय तो एक समय की है। एक समय की पर्याय में क्या है! पूर्णानन्द का नाथ अतीन्द्रिय आनन्द से भरपूर प्रभु के स्वाद के समक्ष दुनिया की किसी चीज़ का स्वाद-महिमा ले जाये, ऐसा है नहीं। आहाहा! उसके स्वाद के समक्ष दुनिया की कोई भी चीज़ विस्मयरूप से, अधिकरूप से, महिमारूप से हो जाये, ऐसी बात है नहीं। आहाहा!

मुनि को पता नहीं होगा-यह सब काम करते हैं और ये सब जीव तो संसारी हैं ? बापू! ये संसारी और सिद्ध तो पर्याय की अपेक्षा से बात है। द्रव्य अपेक्षा से तो अन्दर शुद्ध चिदानन्द है। आगे कलश में कहेंगे। आहाहा!

(अब ४७वीं गाथा की टीका पूर्ण करते हुए टीकाकार मुनिराज श्लोक कहते हैं)—

प्रागेव शुद्धता येषां सुधियां कुधियामपि।
नयेन केनचितेषां भिदां कामपि वेद्‌म्यहम्॥७१॥

अरे रे! **जिन सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही शुद्धता है,...** आहाहा! कुबुद्धि को-मिथ्यादृष्टि को और सम्यग्दृष्टि को... आहाहा! प्रथम ही भगवान शुद्ध पड़ा ही है। मिथ्यादृष्टि तो... एक समय की पर्याय (वस्तु में नहीं, वस्तु के) ऊपर है, वस्तु तो सिद्धसमान पूरी परमात्मदशा है। यह बात बैठना... आहाहा!

जिन सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही... जिन कुबुद्धियों को प्रथम से ही, मिथ्यादृष्टि को पहले से ही! आहाहा! संसार का अभाव करे, फिर सिद्ध होगा, यह बात यहाँ नहीं लेना। यहाँ तो कुबुद्धियों को प्रथम से ही (लेते हैं)। आहाहा! भगवानस्वरूप सिद्धसमान अन्दर प्रथम से ही है। **उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** आहा! ऐसा करके जरा व्यवहारनय की तुच्छता बतायी है। व्यवहारनय की कुछ गिनती ही नहीं। मैं किस नय से कहूँ? ऐसा कहते हैं। आहाहा! अरे! प्रभु! तू (तुझमें) और सिद्ध में किस नय से मैं अन्तर करूँ? अरे! किस नय से? तो व्यवहारनय से तो कहो। व्यवहारनय कुछ गिनती में नहीं। आहाहा! आहाहा!

(अज्ञानी) व्यवहार-व्यवहार करते हैं, यहाँ तो आचार्य कहते हैं **जिन सुबुद्धिओं को तथा कुबुद्धिओं को पहले से ही शुद्धता है, उनमें कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** उसमें किस नय से भेद जानूँ कि यह संसारी और यह सिद्ध? आहाहा! गजब बात है। मुनियों की वाणी, सन्तों की-दिगम्बर सन्तों की वाणी के पास सारा जगत पानी भरे! ऐसी वाणी की गम्भीरता है। कितनी गम्भीर बात की है! मैं किस नय से भेद करूँ? व्यवहारनय की तो मानो गिनती ही नहीं - ऐसा कहते हैं। ऐसा कहा है। आहाहा!

प्रभु! तू परमात्मा है न! सिद्ध और परमात्मा दोनों में मैं किस नय से भेद कहूँ? आहाहा! व्यवहारनय से कहना, उसे तो उड़ा दिया, मस्करी की है। आहाहा! यह अन्दर आता है कि व्यवहारनय की मसकरी की है। नियमसार में पहली बारह गाथा के पीछे आता है। हास्य किया है, हास्य। अरे! प्रभु! तू पूर्णानन्द का नाथ है न! तेरी सत्ता पूर्ण अनादि से है। उसमें कुछ फेरफार हुआ ही नहीं। तेरी नजर नहीं जाती है। नजर जाने से तू और सिद्ध दोनों एक ही है। आहाहा! नजर के पुरुषार्थ में पूरा भगवान दिखता है।

यहाँ तो मुनिराज (कहते हैं कि) किस नय से (अन्तर) जानूँ? **(उनमें कुछ भी भेद...)** आहाहा! गजब बात है प्रभु! भाषा भले थोड़ी है।

श्रोता : कर्म सापेक्ष नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : कर्म सापेक्ष यहाँ नहीं। सेठाई के समक्ष रंकाई नहीं। आहाहा! सेठ अर्थात् श्रेष्ठ। आहाहा! एक नय से च्युत है-ऐसा आया है। वह नय शुद्धनय को ही गिनने में आया है। व्यवहारनय को तो मसकरी करके उड़ा दिया है। ***जिसे व्यवहार गले पड़ा है, उसे यह सिद्धसमान चैतन्य की बात बैठना कठिन है, प्रभु!*** यहाँ तो इतने शब्दों में तो बहुत भरा है। आहाहा! क्या कहा?

जिन सुबुद्धिओं को... सम्यग्दृष्टि को, **कुबुद्धिओं को...** मिथ्यादृष्टि को। **पहले से ही शुद्धता है,...** आहाहा! यह तो ठीक परन्तु **उनमें...** दोनों में। **उनमें कुछ भी भेद... कुछ भी भेद, मैं किस नय से जानूँ?** किस नय से जानूँ - ऐसा कहते हैं। कथन तो ठीक, कथन कौन करे? आहाहा! गम्भीर है, भगवान! इतने शब्दों में गम्भीरता है। आहाहा! कहाँ प्रभु सिद्ध और कहाँ प्रभु तू आत्मा! जो आत्मा में चीज़ नहीं, उसकी यहाँ गिनती गिनी नहीं और किस नय से मैं दोनों को अलग मानूँ? आहाहा! व्यवहार से अलग मानना, उसे ही उड़ा दिया। आहाहा! उसे भी गिनती में नहीं लिया। नहीं तो ऐसा क्यों कहा? एक नय से ऐसा है, दूसरे नय से अन्तर है (-ऐसा कहते)।

यहाँ तो कहते हैं **उनमें...** (अर्थात्) सम्यग्दृष्टि में और मिथ्यादृष्टि में प्रथम से ही सिद्धसमान भगवान अन्दर है। **कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** आहाहा! गजब बात है। अन्दर कितना भरा है! गम्भीरता (बहुत)। कहते हैं, चाहे तो संसारी निगोद के जीव हों, आहा! चाहे तो सिद्ध हों, दोनों में कुछ भी भेद किस नय से जानूँ? व्यवहारनय तो मानो कुछ है ही नहीं-ऐसा कहते हैं। व्यवहार तो कुछ है ही नहीं, गिनती नहीं। व्यवहार अभूतार्थ कहकर, गौण करके उड़ा दिया है। आहाहा!

भगवान आत्मा पूर्णानन्द का नाथ जहाँ दृष्टि में आया, अब कहते हैं कि मैं मुझमें और दूसरे आत्मा में (किस नय से भेद जानूँ)? ख्याल में आने के बाद की बात है, हों! मिथ्यात्व के काल में मैं किस नय से कहूँ, यह नहीं। आहाहा! यहाँ तो (अज्ञानी) दया, पालो, व्रत करो, भक्ति करो, तप करो, ऐसी प्ररूपणा (करता है) और बनियों को धन्धे के कारण फुरसत नहीं मिलती। पूरे दिन पाप। सुनने (जाये), घण्टे भर सुने, सिर पर जो कहे जय नारायण! हो गया। क्या कहते हैं? उसमें क्या अन्तर है? (यह कुछ समझते नहीं)। आहाहा! इतने शब्द में... लालचन्दभाई! गजब बात है। क्या कहें? जैसा अन्तर में भासित होता है, उतनी भाषा नहीं आती। आहाहा! आहाहा!

कुबुद्धि और सुबुद्धि में प्रथम से ही भगवान शुद्ध विराजता है, उन्हें कुछ भी, आहाहा! **उनमें कुछ भी...** कुछ भी... आहाहा! **भेद मैं किस नय से जानूँ?** आहाहा! गजब किया है! अपने आनन्द के विकास के समक्ष सभी जीव आनन्दमय है - ऐसा देखते हैं। अपने आनन्द और

ज्ञानमय प्रभु के समक्ष सभी आत्मा भगवान तुल्य भासित होते हैं। मैं किस नय से भेद मानूँ? कहते हैं। आहाहा! ताराचन्दजी! कहाँ गये हमारे दूसरे ताराचन्दजी? आहाहा! समझ में आया? आहाहा! भगवान की गम्भीरता बहुत है। आहा!

श्रोता : आपमें ही ऐसे भाव खोलने की सामर्थ्य है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सबमें सामर्थ्य है न, नाथ! प्रभु! तू भगवान है न, नाथ! तुझे अल्प कहकर बुलाना कलंक है। आहाहा! यहाँ तो यह कहा न? मैं किस नय से अल्प मानूँ? आहाहा! प्रभु! यहाँ तो पूर्णानन्द का नाथ एक समय में जैसी सत्ता है, जैसी सत्ता सिद्ध की है, वैसी सत्ता तेरी है, ऐसा जहाँ भान हुआ (तो) मैं किस नय से भेद जानूँ? किस नय से जानूँ? आहाहा! प्रभु! व्यवहारनय से जानूँ, ऐसा इतना तो थोड़ा रखो! पण्डितजी! सब नय उड़ा दिये। व्यवहारनय तो रखो। यह व्यवहारनय तो आ गया क्योंकि कुबुद्धि और सुबुद्धि इतना भेद तो कर दिया। आहाहा!

अब दोनों का जो आत्मा है, दोनों भगवान आत्मा हैं। मैं किस नय से (भेद जानूँ)। आहाहा! गजब बात है। दिगम्बर सन्तों के शब्द कोई गजब करते हैं। आहाहा! ये दो-चार शब्द हों परन्तु अन्दर ठेठ उतार देते हैं। प्रभु! तुझे कहीं रुचता नहीं। यहाँ अन्दर रुचे—ऐसी चीज़ तो तेरे पास पड़ी है न, प्रभु! और जिसे रुचता नहीं तो भी मैं अन्तर की शुद्धता में किस नय से भेद जानूँ। आहाहा! गजब है न? आहाहा! ऐसी बात सुनना मुश्किल पड़ता है। व्यवहार है, व्यवहार है (-ऐसा पुकारे।) आस्रव अधिकार में आता है, नय से च्युत। ऐसा नहीं कहा कि निश्चयनय से च्युत, क्योंकि उसे ही नय गिनने में आया है। मूल गाथा में टीका में है। नय से च्युत होता है तो वहाँ ऐसा नहीं कहा कि व्यवहारनय से च्युत होता है। आहाहा! च्युत होता है, यह बात ही नहीं, कहते हैं। आहाहा!

अन्तर का नाथ अप्रतिहत भाव से पड़ा है। अनादि सत्ता के सामर्थ्य से बिराजमान अपने चैतन्यधाम में भगवान बिराजता है। कुबुद्धि और सुबुद्धि में मैं किस नय से भेद कहूँ? कहूँ, ऐसा भी नहीं कहा। कहूँ भी कहा नहीं? किस नय से भेद जानूँ? आहाहा! गजब बात है, प्रभु! अन्तर चैतन्यभगवान पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति (स्वरूप है)। आहा! उसे त्रिकाल कोई दखल नहीं होती। सातवें नरक में अनन्त बार रहा, निगोद में अनन्त बार गया। परन्तु उस चीज़ में कोई फेरफार नहीं होता। मैं किस नय से भेद जानूँ? आहाहा!

निगोद के जीव और सिद्ध जीव... आहाहा! मैं कुछ भी भेद, दोनों में कुछ भी भेद... आहाहा! गजब बात है। उड़ गयी... बात ही उड़ा दी। मोक्ष आत्मा ही है, बस! आत्मा... आत्मा... आत्मा... आत्मा... भगवान सब आत्मा। आहाहा! कहो, सेठ! ऐसी बात है। आहाहा! इसकी गम्भीरता अन्दर कही नहीं जा सकती है। क्या कहना चाहते हैं - वह भाव ख्याल में आता

है। आहाहा! व्यवहारनय को तो उड़ा दिया, मानो कि है ही नहीं। आहाहा! और (अज्ञानी) पूरे दिन व्यवहारनय... व्यवहारनय (करता है)। ऐसा करो और वैसा करो, ऐसा करो... प्रभु! परन्तु ज्ञानस्वरूपी भगवान जानने का काम करे या करने का काम करे? आहाहा! भगवान को कर्ता(पना) सौंपना, वह चक्रवर्ती से कचरा निकालने का बतलाने जैसा है। वासिन्दु को क्या कहते हैं? कचरा। आहाहा!

प्रभु तेरी महिमा का पार नहीं। इस शब्द में तो तुझे प्रभु साक्षात् खड़ा रखा है। आहाहा! किस नय से मैं तुझे हीन कहूँ? आहाहा! प्रभु! किस नय से मैं **कुछ भी...** भाषा पढ़ी। **उनमें कुछ भी...** आहाहा! **भेद मैं किस नय से जानूँ?** प्रभु! व्यवहारनय कहाँ गया? नाथ! आहाहा! व्यवहार से इतना अन्तर है, वह कहाँ गया? गया उसके घर में। अन्तर घर में कुछ है नहीं। आहाहा! ऐसी बात है, प्रभु! कितने ही श्लोक तो इतने गम्भीर हैं कि गम्भीरता भासित होती है, उतनी भाषा नहीं आती, भाषा नहीं हो सकती। आहाहा!

इस शब्द में इतनी गम्भीरता भरी है। अकेला शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध... शुद्ध.. पूरी दुनिया, निगोद में से कभी नहीं निकले ऐसे जीव को भी मैं किस नय से भेद जानूँ? आहाहा! अन्तर की महिमा की बात है, प्रभु! आहाहा! यह शक्तिवान है परन्तु मानो प्रगट ही है - ऐसा कहते हैं। शक्तिवान है। आहाहा! जिसे प्रगट दृष्टि में आया, उसे शक्तिवान प्रगट है; वैसे ही सब भगवान कुबुद्धि को भी प्रगट हैं। मैं किस नय से उसे हीन, न्यून शक्तिवाला और सिद्ध में किस नय से अन्तर जानूँ? गजब बात है! ताराचन्दजी! गजब बात है! आहाहा! साधारण बात नहीं, प्रभु! यह कोई कथा नहीं है। आहाहा!

यह तो तीन लोक के नाथ वीतरागदेव के पेट में से (अन्तर अभिप्राय में से) निकली हुई वाणी है। आहाहा! दिव्यध्वनि, दिव्यध्वनि ऐसा कहती है। आहाहा! प्रभु! तुझमें अशुद्धता कुबुद्धि में किस नय से अन्तर जानूँ। आहाहा! मुनिराज कहते हैं, वह भगवान कहते हैं। भगवान से बिलकुल हीन-अधिक नहीं कहते। आहाहा! समझ में आया? मुनिराज कहते हैं, इसलिए फेरफार (है ऐसा नहीं है)। तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि में ऐसा आया था कि शुद्ध और अशुद्ध जो पर्याय है, ऐसा जो जीव है, उन दोनों में कुछ भी भेद किस प्रकार से, किस प्रकार से बचाव करूँ? किस प्रकार से बचाव करके (अन्तर) जानूँ। आहाहा! गजब है।

(उनमें कुछ भी भेद अर्थात् अन्तर नहीं है।) अन्दर में कोई भेद नहीं है। आहाहा! यह दृष्टि जिसे बैठ गयी, उसे अल्पकाल में सिद्ध परमात्मा होने की तैयारी हो गयी। परमात्मा (अर्थात्) भव का अन्त। भव का अनादि-सान्त अन्त और मोक्ष सादि-अनन्त। वह भी ऐसा कहा... सन्तों ने गजब बात (की है कि) पूर्ण पर्याय सिद्ध हुई, द्रव्य तो अलौकिक अन्तर महा चमत्कारिक अनन्त गुण से भरा है न! तो सिद्ध की पर्याय से विशेष शुद्धता निकलेगी या नहीं?

वहाँ बस कर, पर्याय के लिये वहाँ बस कर। आहाहा! द्रव्य के लिये कुछ कहना नहीं है, आहाहा! पर्याय के लिये वहाँ बस कर, प्रभु! पूर्ण सिद्ध होने के पश्चात् भी निर्मलता की थोड़ी वृद्धि होगी, यह बात रहने दे, प्रभु! पर्याय में यह बात बस हो गयी। आहाहा! परन्तु द्रव्य की जो बात हम करते हैं, प्रभु! आहाहा! इतना सामर्थ्य और इतनी शक्ति है, तो सिद्ध पद (प्रगट होने के पश्चात्) भी शुद्धि बढ़ जाये - ऐसा है या नहीं? प्रभु! ऐसा नहीं है। वह पर्याय है। पर्याय पूर्ण हो गयी, पश्चात् बात पूरी हो गयी।

यहाँ तो वस्तु में कुछ भी अन्तर नहीं गिनते तो पर्याय में भी अन्तर नहीं गिनते। आहाहा! व्यवहारनय तो मानो कुछ है ही नहीं। कथनमात्र है। यह तो भाई! कलश-टीका में आता है न? कथनमात्र, व्यवहारनय कथनमात्र-ऐसा आता है। कलश-टीका में है। आहाहा! अब, यह व्यवहारनय सामने हो गया है। यहाँ कहते हैं कि वह व्यवहारनय है या नहीं-हम नहीं जानते। प्रभु! तू आनन्द है न! तुझमें अनन्त भगवत्स्वरूप है न! तू साक्षात् भगवान है! साक्षात् सिद्ध हुए और तू साक्षात्, उनमें किस प्रकार भेद करूँ? किस नय से मैं कुछ भी भेद कहूँ? आहाहा! गजब बात है।

साक्षात् परमात्मा सिद्ध हुए और तेरा आत्मा, (इन दो में) मैं किस नय से कुछ भी भेद, कुछ भी भेद, कुछ भी भेद, (जानूँ)? गजब बात! आहाहा! दिगम्बर सन्त, केवली के पथानुगामी हैं। वे अल्प काल में केवल (ज्ञान) लेनेवाले हैं। एकाधभव (बाकी है), यह पंचम काल है, इसलिए केवलज्ञान नहीं हुआ, बाकी तो स्वर्ग में जाकर, मनुष्य होकर केवल (ज्ञान) लेनेवाले हैं। आहाहा! इतनी गम्भीरता अन्दर भासती है। वह गम्भीरता शब्दों में नहीं कह सकते। प्रभु! तू इतना बड़ा है, तेरी महिमा में हीनपन की भाषा तो नहीं होती परन्तु हीनता किस प्रकार जानूँ - ऐसा कहते हैं। आहाहा!

सभी भगवान हैं। तुझमें और सिद्ध में, प्रभु! कुछ भेद, कुछ भी भेद (किस प्रकार जानूँ)? गजब शब्द हैं। आहाहा! उन दोनों में कुछ भी भेद, कुछ भी जुदाई, कुछ भी भिन्नता किस नय से जानूँ? मैं किस नय से जानूँ? आहाहा! गजब किया है! व्यवहार पक्षवालों को कठिन लगता है। आहाहा! ऐसी बात! इतने शब्द में बहुत भरा है, पण्डितजी! बहुत भरा है। आहाहा! अकेला परमात्मा तैरता है। भगवान... भगवान... भगवान... भगवान... दृष्टि में ध्रुव तैरता है। तो यह कहते हैं कि जगत के प्राणी को मैं किस नय से हीन कहूँ? किस नय से संसारी कहूँ? आहाहा! गजब बात है प्रभु! भाषा थोड़ी, भाव का पार नहीं होता। आहाहा! इस भाषा की गम्भीरता...! आहाहा! इतने में २२ मिनिट हो गये। आहाहा! अरे! एक सैकेण्ड के अन्दर, एक सैकेण्ड भी नहीं, एक समय में अन्तर पड़ता है तो यह अन्तर पड़ता है, वह मैं किस प्रकार अन्तर मानूँ? आहाहा! एक समय में समयान्तर हो जाता है। आहाहा!

श्रीमद् ने लिखा है कि समकित समयान्तर में हो जाता है। एक समय के अन्तर में (हो

जाता है)। पहले समय में मिथ्यात्व, दूसरे समय में समकित। आहाहा! अरे! अनन्त काल से मिथ्यात्व का सेवन (चलता है और तुम कहो) एक समय में (बदल जाये)? परन्तु प्रभु! उसमें कहाँ मिथ्यात्व था? अन्दर में मिथ्यात्व था ही कहाँ? आहाहा! जो अन्दर में है, वह अन्दर से निकला। अन्दर जो माल भरा था, वह निकला। इसी प्रकार सब भगवान माल से भरपूर हैं। आहाहा! गजब बात है। डालचन्दजी! इन सब सेठियाओं को यह सब बात समझने की है। आहाहा! गजब बात है। फिर ऐसा करके कितने ही सोनगढ़ का उड़ा दें, लो! यह सब है, भाई! है अवश्य, भाई! बापू! व्यवहारनय का विषय है, व्यवहारनय है, (उसका) विषय है परन्तु उसकी कोई गिनती नहीं। अन्तर निश्चय के समक्ष उसकी गिनती क्या? आहाहा! कलश टीकाकार ने तो ऐसा कह दिया है कि व्यवहारनय तो कथनमात्र है। ऐसा पाठ है। यहाँ है या नहीं? कलश-टीका पाँचवें कलश में है। **जितना कथन।** व्यवहारनय का अर्थ किया, जितना कथन। वह तो कथन है। वस्तु में कुछ अन्तर नहीं, प्रभु! तू बाहर के इस शरीर, इसकी चेष्टायें, इसकी उम्र, इसके रंग-रूप को न देख... आहाहा! और तुझमें हीनता है, वह न देख। हम कहते हैं कि किस नय से तुझमें हीनता कहें? आहाहा! गजब बात है। किस नय से मैं तुझमें हीनता कहूँ? शरीरवाला तो है ही नहीं, रंग वाला तो है ही नहीं, परद्रव्य को तो कभी छूता नहीं परन्तु किस नय से तेरी हीन दशा कहूँ। सिद्ध-अपेक्षा अल्पदशा किस नय से कहूँ? आहाहा! गजब है। **जितना कथन।** व्यवहारनय का अर्थ किया है। व्यवहारनय अर्थात् जितना कथन। आहा! वह तो कथनमात्र है। आहाहा! कठिन लगे ऐसा है परन्तु प्रभु! तेरे घर की बात है न! आहा!

श्रोता : जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में प्रीतिभोज करा रहे हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो मुनिराज बात करते हैं। प्रीतिभोज! सवेरे तो जीमन हुआ। आहाहा! अपना कुछ भी आग्रह यदि रहे तो अपनी चीज़ जानने में नहीं आती तो पर की चीज़ भी मेरे जैसी है, ऐसा जानने में नहीं आता, प्रभु! ऐसा कहते हैं।

यह तो कहते हैं, मैं... ऐसा कहा न? आहाहा! कुछ भी भेद-सिद्ध और संसारी में कुछ भी भेद... आहाहा! **कुछ भी भेद मैं किस नय से जानूँ?** कहूँ-ऐसा नहीं आया। मैं किस नय से जानूँ (-ऐसा आया है)। आहा! एकान्त लगे ऐसा है, प्रभु! अकेला माहात्म्य ही वर्णन किया है। अकेली चीज़ का (माहात्म्य)। ४८ गाथा; ४७ हुई न?

असरीरा अविणासा अणिंदिया णिम्मला विसुद्धप्पा।
जह लोयग्गे सिद्धा तह जीवा संसिदी णेया॥४८॥

विन देह अविनाशी, अतीन्द्रिय, शुद्ध निर्मल सिद्ध ज्यों।
लोकाग्र में जैसे विराजे, जीव है भवलीन त्यों॥४८॥

भव में लीन हैं, वे भी ऐसे हैं – ऐसा कहते हैं। भाषा ली है 'भवलीन' (ऐसी भाषा ली है)। उसमें (कलश में) कुबुद्धि लिये थे। आहाहा! इस प्रकार से बात की। कुबुद्धिरूप से जरा सा ख्याल किया। यहाँ संसारी कहा, परन्तु कहते हैं कि भवलीन (और सिद्ध में) किस प्रकार से अन्तर कहूँ? अन्तर तो चैतन्य भगवान, अन्तर (में) तो पूर्ण सम्पदा का धनी बिराजमान है। ऐसा वैभव तो बाहर दुनिया में कहीं है ही नहीं। ऐसा वैभव तुझमें है। आहाहा!

यह, कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में अन्तर न होने का कथन है। आहाहा! कार्यसमयसार (अर्थात्) सिद्ध। कारणसमयसार (अर्थात्) आत्मद्रव्य। आहाहा! एक शब्द ऐसा आता है, बहिन में (बहिनश्री के वचनामृत में) आता है कि अन्तर्मुहूर्त में बारह अंग पारायण कर ले, ऐसी आत्मा की ताकत है। बारह अंग का पर्यटन अन्तर्मुहूर्त में कर दे! गजब बात है! एक समय में जाने, वह भिन्न वस्तु, परन्तु वह असंख्य समय में बारह अंग की बात पर्यटन कर ले। बहिन में है। गोम्मटसार शास्त्र में भी है। यह बात जानने में आयी, उसके अनन्तवें भाग कथन में आयी। आहाहा! उसके अनन्तवें भाग तो सुनने में आयी। आहाहा! उससे अनन्तवें भाग रचना हुई। पंचाध्यायी में तो ऐसा कहते हैं कि बारह अंग में तो स्थूल बात है। पंचाध्यायी में ऐसा पाठ है। बारह अंग, बारह अंग से विशेष श्रुतज्ञान क्या होगा? आहाहा! बारह अंग में स्थूल बात आयी है। आहाहा! तीन लोक के नाथ की सूक्ष्म बातें उसमें रह गयी है। आहाहा! वह तो अनुभवगम्य है। चैतन्य की चमत्कारिक चीज़ चमत्कार देखे उसे पता पड़े। बाकी वाणी द्वारा उसका वर्णन नहीं हो सकता। आहाहा!

वह कहते हैं। **यह, कार्यसमयसार तथा कारणसमयसार में अन्तर न होने का कथन है। जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं,...** आहाहा! शरीर को प्रपंच कहा। शरीर के प्रपंच। शरीर की अनेक पर्याय होती है, वह आत्मा के आधीन नहीं है। आहाहा! उस **शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं।**

निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं,... आहाहा! गति का त्याग और सिद्धस्वरूप का ग्रहण भी जिसमें नहीं... आहाहा! पर के त्याग-ग्रहण तो उसमें है ही नहीं। पैसा, परमाणु, स्त्री, कुटुम्ब-परिवार, मकान, पैसे का तो आत्मा को ग्रहण भी नहीं और आत्मा को त्याग भी नहीं। त्याग-ग्रहण रहित आत्मा भगवान है। आहाहा! यह सैंतालीस शक्ति में आता है। ओहोहो! समयसार, गजब बात है! एक-एक श्लोक और एक-एक कलश (गजब है)!

श्रोता : नियमसार स्वयं के लिये बनाया, इसलिए सूक्ष्म में सूक्ष्म बात आयी।

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वयं के लिये बनाया है। आहाहा!

निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण... मनुष्य का शरीर ग्रहण और त्याग आत्मा में है ही नहीं। आहाहा! मनुष्य का शरीर, नारकी का शरीर, देव का शरीर, तिर्यंच का शरीर ग्रहण करना और छोड़ना, यह आत्मा में तीन काल में है ही नहीं। आहाहा! परद्रव्य का त्याग-ग्रहण आत्मा में है ही नहीं। आत्मा में ऐसा गुण है कि पर के ग्रहण-त्यागरहित ही वह स्वभाव त्रिकाल बिराजता है। आहाहा!

जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धपरमेष्ठी भगवन्त निश्चय से पाँच शरीर के प्रपंच के अभाव के कारण 'अशरीरी' हैं, निश्चय से नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण 'अविनाशी' हैं,... आहाहा! नारकी आदि गति की पर्याय जो उदयभाव। यह मनुष्य (शरीर), वह मनुष्यगति नहीं। यह मनुष्य, वह मनुष्यगति नहीं। यह मनुष्य तो जड़ है। यह तो पारिणामिकभाव से है और मनुष्यगति उदयभाव से है। आहाहा! यह उदयभाव तो आत्मा की पर्याय में है। शरीर तो पारिणामिक भाव से त्रिकाल द्रव्य-गुण-पर्याय (स्वरूप है)। द्रव्य-गुण और पर्याय त्रिकाल पारिणामिकभाव से है। आहाहा!

भगवान आत्मा... आहाहा! कहते हैं **नर-नारकादि पर्यायों के त्याग-ग्रहण के अभाव के कारण...** आहाहा! मनुष्यभव ग्रहण किया और मनुष्यभव छोड़ा, प्रभु! (यह) आत्मा में नहीं। आहाहा! व्यवहारनय की तो मसकरी की है। पहली बारह गाथा में मसकरी की है। पहले आया न? भाई! बारह गाथा में। आहाहा! इसमें है। बारह गाथा है न?

परमतत्त्व में स्थित सहजदर्शनादिरूप कारणशुद्धस्वरूप को युगपत् जानने में समर्थ ऐसी सहजज्ञानज्योति द्वारा जिसमें से समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं — ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं,... आहाहा! इन्द्रिय को स्पर्शा ही नहीं, जड़ इन्द्रिय को स्पर्शा ही नहीं। भावेन्द्रिय पर्याय में है, उसे यहाँ गिनने में नहीं आया। (समयसार) ३१ गाथा में कहा। **जो इंदिये जिणित्ता** भावेन्द्रिय, द्रव्येन्द्रिय और भगवान—सब इन्द्रिय में जाते हैं। भगवान की वाणी और भगवान, पूरा लोक इन्द्रिय में जाता है। इस लोक की ओर का लक्ष्य छोड़कर अपने अतीन्द्रिय (स्वरूप में) जहाँ आता है, **णाणसहावाधियं मुणदि आदं** अपने ज्ञानस्वभाव से जो अधिक है — ऐसा जो **मुणदि** अर्थात् जानता है। **तं जिदिंदियं साहू** उसे सर्वज्ञ, जितेन्द्रिय कहते हैं। आहाहा! इस इन्द्रिय को जीता और बाहर का भोग नहीं लिया, ऐसा नहीं। आहाहा! द्रव्य इन्द्रिय, भावेन्द्रिय और इन्द्रिय के विषय - तीन से भिन्न ज्ञानस्वभाव का जिसने अनुभव किया, वह इन्द्रिय से पार है। आहाहा! यहाँ भी यह कहा। **सहज ज्ञानज्योति द्वारा समस्त संशय दूर कर दिये गये हैं — ऐसे स्वरूपवाले होने के कारण 'अतीन्द्रिय' हैं।**

विशेष कहेंगे.. (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

९ श्री नियमसार, गाथा-५०, श्लोक-७३ प्रवचन नं. ५४
दिनांक ०१-०९-१९८०

नियमसार ७३ वाँ श्लोक है।

(स्वागता)

शुद्धनिश्चयनयेन विमुक्तौ
संसृतावपि च नास्ति विशेषः।
एवमेव खलु तत्त्वविचारे
शुद्धतत्त्वरसिकाः प्रवदन्ति॥७३॥

श्लोकार्थ : **— शुद्धनिश्चयनय से...** परमार्थदृष्टि से, वस्तुस्वभाव की त्रिकाल सनातन स्वभाव की दृष्टि से। **मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;...** आहा! सनातन सत्य वस्तु, जिसमें एक समय की पर्याय भी गौण है; त्रिकाली वस्तु, अखण्ड आनन्द पूर्ण वस्तु, अनादि-अनन्त शुद्ध सत्तारूप एक चीज़, वह और संसार अवस्था, दोनों में कोई अन्तर नहीं है। उसकी मुक्त अवस्था, उस (वस्तु की) मुक्त दशा, वह वस्तु इस सनातन सत्य तत्त्व की मुक्तदशा और इसकी संसारदशा, दोनों पर्यायनय का विषय, व्यवहारनय का विषय दोनों समान हैं, दोनों में कोई अन्तर नहीं है। आहाहा! कहाँ निगोद की दशा, कहाँ सिद्ध की दशा! शुद्धनिश्चयनय से अन्तर की दृष्टि से देखें, वस्तुस्वभाव सहजात्मस्वरूप सहज आत्मस्वरूप त्रिकाल-इस दृष्टि से देखें तो **मुक्ति में तथा संसार में अन्तर नहीं है;...** आहाहा!

ऐसा ही वास्तव में,... किसी को ऐसा लगे कि यह क्या ?-कि **ऐसा ही वास्तव में, तत्त्व विचारने पर...** वास्तविक ज्ञायकतत्त्व को विचारने पर, ज्ञायकस्वभाव त्रिकाली शाश्वत् चीज़ को विचारने पर। आहा! **(परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा निरूपण करने पर)..** निरूपण तो कथनशैली है परन्तु वस्तु के स्वभाव से देखें तो **शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।** शुद्धतत्त्व के रसिक, आहाहा! द्रव्यस्वभाव के रसिक! ज्ञायक-स्वभावभाव, वह त्रिकाल स्वभावभाव, उसके रसिक पुरुष मुक्ति और संसार में कोई अन्तर नहीं कहते। आहाहा! लो! यह गुजराती आया। आहाहा!

वस्तुस्वरूप त्रिकाली देखने पर, सत्सनातन सत्य एकरूप ध्रुव की दृष्टि से देखने पर,

मुक्त-सिद्ध अवस्था और संसार अवस्था दोनों में कोई अन्तर नहीं है। आहा!

श्रोता : अवस्थादृष्टि से या द्रव्यदृष्टि से ? किस दृष्टि से ?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यदृष्टि से। द्रव्यदृष्टि कहो या निश्चयनय विषय कहो। शुद्धनिश्चयनय कहो या द्रव्यदृष्टि कहो। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभाव की दृष्टि से देखने पर, संसार और मुक्ति दोनों पर्याय में कोई अन्तर नहीं है, दोनों व्यवहारनय का विषय है। है अवश्य, परन्तु व्यवहारनय का विषय है। निश्चय विषय में एकरूप प्रभु सनातन सत्य अनिर्मित, अनाश-विनाश नहीं होने से त्रिकाल एकरूप रहनेवाला तत्त्व, उसकी दृष्टि से देखने पर मुक्ति और संसार दोनों पर्याय है, इसलिये उस पर्याय में कोई अन्तर दिखाई नहीं देता। आहाहा! अब यह बात किस प्रकार बैठे ? कहाँ निगोद का जीव, आहा! कहाँ उस निगोद के जीव में अनन्त-अनन्त जीव बाहर निकलने के नहीं। आहा! परन्तु पर्यायदृष्टि से देखें तो वह निगोद की पर्याय और सिद्ध की पर्याय दोनों व्यवहारनय है। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायक की दृष्टि से देखने पर उस मुक्ति और संसार दोनों में कोई अन्तर नहीं है। दोनों पर्यायनय का, व्यवहारनय का विषय है। है अवश्य, आहाहा! ऐसी बात! यहाँ तो अब एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, त्रीइन्द्रिय करना... इच्छामि पडिक्कमणा आता है न ?

वस्तुरूप की दृष्टि से देखने पर वस्तु में पर्याय है ही नहीं। फिर संसार पर्याय हो, निगोद की अनन्त.. अनन्त पर्याय। आहाहा! जो निगोद के असंख्य शरीर, उसके एक शरीर में अनन्तवें भाग मुक्ति पाये और अनन्त-अनन्त गुने रह गये परन्तु वह सब पर्याय का अन्तर है, वस्तु तो भगवान सनातन (सत्य प्रभु है)। आहाहा! व्यवहार में अन्तर है, वह निश्चयदृष्टि में अन्तर नहीं है। समझ में आया ? आहा! ऐसी दृष्टि हुए बिना पूर्ण सत्य का स्वीकार नहीं हो सकता। एक समय की पर्यायदृष्टि, चाहे तो मुक्ति है, वह पर्याय है, पर्यायदृष्टि तो एक समय है और यह त्रिकाली चीज़ है, इस त्रिकाल चीज़ की अपेक्षा से एक समय की मुक्तपर्याय या एक समय की संसारपर्याय दोनों एक समय है। दोनों व्यवहारनय है। क्योंकि एक के बाद एक है। वस्तु तो सनातन अनादि-अनन्त एकरूप है। इस दृष्टि से देखने पर।

यही वास्तव में। पाठ में है न **'एवमेव' ऐसा ही वास्तव में, तत्त्व विचारने पर...** तत्त्ववस्तु भगवान पूर्णानन्द का विचार करने पर, परमार्थ वस्तुस्वरूप का विचार अथवा उसका ज्ञान करने पर। निरूपण अर्थात् कथन है। **शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष कहते हैं।** आहाहा! शुद्धतत्त्व के रसिक। आहाहा! जिसमें पर्याय का रसिकपना भी नहीं। राग का रसिकपना तो नहीं, निमित्त का तो रसिकपना नहीं, संयोगी चीज़ भगवान संयोग से है, उसकी बात भी यहाँ तो (नहीं) आहाहा! परमार्थ से बन्ध और मोक्ष दो नहीं, बन्ध और मोक्ष ही जिसमें नहीं, आहाहा! बन्ध और मोक्ष तो पर्याय है। अब ५० गाथा।

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सगदव्वमुवादेयं अंतरतच्चं हवे अप्पा॥५०॥
पर-द्रव्य हैं परभाव हैं पूर्वोक्त सारे भाव ही।
अतएव हैं ये त्याज्य, अन्तस्तत्त्व हैं आदेय ही॥५०॥

आहाहा! पचासवीं गाथा जरा कठिन है, सख्त है। यहाँ तो क्षायिकभाव भी व्यवहारनय के विषय में ले लिया है। पंचम पारिणामिकभाव जो ज्ञायकभाव, उसकी अपेक्षा से उदयभाव और क्षायिकभाव दोनों व्यवहारनय का विषय है। यहाँ निश्चय में वह आता नहीं। आहा! ऐसा सूक्ष्म! लोग पूरे दिन रुपये में उलझे होते हैं। आहाहा!

एक प्रकार से कहें तो एक ही प्रभु एक ओर आत्मा तथा एक ओर विकल्प और पर्याय-यह सब लोक में, पर में जाता है। आहाहा! एकरूप स्वरूप भगवान आत्मा की दृष्टि में तो उसकी पर्याय में भी (संसार और मुक्ति) दोनों में अन्तर नहीं तो राग-प्रशस्त राग और अप्रशस्त राग में अन्तर है-ऐसा कुछ है नहीं। आहाहा!

***टीका :* — यह, हेय-उपादेय...** छोड़नेयोग्य और आदरनेयोग्य। **अथवा त्याग-ग्रहण के स्वरूप का कथन है।** आहाहा! **जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं,...** ये चार भाव, नारकादि उदयभाव, मतिज्ञान आदि क्षयोपशमभाव, केवलज्ञान आदि क्षायिकभाव, समकित और क्षयोपशम आदि। आहा! वे **जो कोई विभावगुणपर्यायें...** वे सब विभावगुणपर्यायें हैं। आहाहा! त्रिकाली सहज सनातन सत्य, जिसमें कोई घाल-मेल नहीं, जिसमें कोई उपजना और विनशना कुछ नहीं। आहाहा! ऐसी स्थिति में जो कोई विभावगुणपर्यायें हैं। आहाहा! चार ज्ञान के... अरे! चार भाव—उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव। **वे पहले (४९वीं गाथा में) व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं,...** जानने के लिये उपादान कहने में आयी थी क्योंकि वे हैं। हैं, वे जाननेयोग्य हैं; आदरनेयोग्य नहीं। आहाहा! वे ४९ गाथा में उपादेयरूप से कहने में आयी थी।

किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से... आहाहा! अन्तर्दृष्टि के बल से, ध्रुवस्वरूप भगवान आत्मा शाश्वत् टंकोत्कीर्ण ऐसा जो भगवान त्रिकाली एकरूप स्वभाव, उसकी दृष्टि से **व्यवहारनय के कथन द्वारा उपादेयरूप से कही गयी थीं, किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं।** आहाहा! वे चारों ही भाव हेय हैं। यहाँ तो अभी शुभराग को हेय मानना कठिन पड़ जाता है। दया, दान, व्रत, महाव्रत, भगवान की भक्ति, पूजा, नामस्मरण, गुणस्मरण इस राग को हेय मानना कठिन पड़ जाता है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, इससे पूर्व जो चार भाव कहे थे... आहा! उदय, उपशम, क्षयोपशम ये भेद भी कहे थे न? आहाहा! वे सब **शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं।** अकेले ज्ञायकभाव के

अवलम्बन में चारों भाव का अवलम्बन है नहीं। इसलिए इस अपेक्षा से वे हेय है। चारों ही भाव का आश्रय करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! शुभराग दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा (का) भाव होता है, होता है, परन्तु आदरणीय नहीं। जब वे भाव आदरणीय नहीं। आहाहा! तो इससे उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक तो निर्मल है, वे तो मलिन हैं। निर्मल को जब हेय कहा, फिर मलिन तो हेय कहीं रह गया। आहाहा!

निर्मल ज्ञायक केवलज्ञानपर्याय, अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए, वह पर्याय भी त्रिकाल निश्चयनय की दृष्टि से हेय है। आहाहा! यहाँ तो अभी व्यवहार, दया, दान, व्रत, भक्ति को हेय मानना इसे कठिन पड़ता है और हेय माने उसे मिथ्यात्वी मानता है। आहाहा! यहाँ तो त्रिकाली सनातन वस्तु, एकरूप रहनेवाले चैतन्यस्वभाव की दृष्टि से देखें तो वे शुद्ध और अशुद्ध दोनों भाव हेय हैं, छोड़नेयोग्य हैं, त्यागनेयोग्य हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी शुभराग त्यागनेयोग्य है (ऐसा कहें), वहाँ इसे कठिन पड़ता है। आहा! चन्दुभाई कहाँ गये? आये नहीं? ठीक नहीं होगा। आहाहा!

यह ५० वीं गाथा बहुत ऊँची है। अर्ध सैंकड़ा। आहाहा! पचास। भगवान आत्मा एक ही समय में परिपूर्ण प्रभु पड़ा है। परिपूर्ण आनन्द, परिपूर्ण ज्ञान, परिपूर्ण सत्ता, परिपूर्ण श्रद्धा, परिपूर्ण शान्ति, उपशमरस आदि परिपूर्ण से भरा पड़ा है। उस त्रिकाली स्वभाव की दृष्टि से देखें तो बन्ध और मोक्ष की दोनों पर्यायें हेय हैं। आहाहा! केवलज्ञान और केवलदर्शन भी हेय है। आहाहा! क्योंकि साधक को वे हैं नहीं और हैं नहीं, उसका लक्ष्य करने जायेगा तो राग होगा। यह कठिन विषय है, भाई! आहाहा!

बड़ा विवाद, झगड़ा यह होता है न? निमित्त से होता है, निमित्त से होता है। निमित्त से होता है; नहीं होता—ऐसा माने, वह मिथ्यादृष्टि एकान्ती है-ऐसा कहते हैं। अरे, जगत्! आहाहा! यहाँ तो कहते हैं कि निमित्त तो एक ओर रहा, मोक्ष और बन्ध वे निमित्त से हैं—ऐसा तो है ही नहीं। आत्मा में बन्ध और मोक्ष वे निमित्त से हैं —ऐसा तो है नहीं। अपनी योग्यता से बन्ध और मोक्ष है। आहाहा! उन्हें भी यहाँ त्रिकाल की दृष्टि से अन्तर्मुख दृष्टि करने में वे मददगार नहीं हैं, उनका आश्रय लेने योग्य नहीं हैं। इसलिए चारों भाव हेय हैं। आहाहा! गजब बात है।

यह वापस ऐसी बात करते हैं कि ये सोनगढ़वाले ही यह कहते हैं। परन्तु यह कहाँ सोनगढ़ का है? यह नियमसार सोनगढ़ का सूत्र है? कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं कि मैंने तो मेरे लिये बनाया है। दूसरे शास्त्रों की तो प्ररूपणा की है परन्तु यह तो मैंने मेरे लिये बनाया है। आहाहा! वे कुन्दकुन्दाचार्य ऐसा कहते हैं... पंचम काल के प्राणी, पंचम काल के साधु, पंचम काल के श्रोताओं को ऐसा कहते हैं... आहाहा! गजब है। आठ वर्ष की बालिका हो या करोड़ पूर्व की आयुष्यवाला आदमी हो। आहा! तैंतीस सागर की स्थितिवाला देव हो या अन्तर्मुहूर्त की

स्थितिवाला निगोद का जीव हो... आहाहा! सब पर्याय है। इस त्रिकाली ज्ञायकभाव की अपेक्षा से वे सब हेय हैं, छोड़नेयोग्य हैं, लक्ष्य करनेयोग्य नहीं, आश्रय करनेयोग्य नहीं, सन्मुख होनेयोग्य नहीं। आहाहा! शरण करनेयोग्य नहीं, उन्हें उत्तम माननेयोग्य नहीं। आहाहा! ऐसी बात है।

शुद्धनिश्चयनय के बल से... चारों ही भाव। आहाहा! ज्ञानी को उदयभाव होता है, राग होता है। जब तक वीतराग न हो, तब तक राग और दु:ख होता है, परन्तु वह हेय है। आहाहा! राग, शुभराग... आहा! वह भी हेय है, त्यागने योग्य है। अरे! पंचम काल के प्राणी अल्प पुण्य लेकर आये। भगवान महाविदेह में बिराजते हैं। कहाँ जन्म छोड़कर यहाँ जन्म (में) आये। आहाहा! उसे परमात्मा की वाणी ऐसा कहती है... आहाहा! प्रभु! तू अन्दर में एकरूप वस्तु है, तेरी वर्तमान पर्याय-अवस्था त्रिकाली पर जाये, इस अपेक्षा से वही एक आदरणीय है। जो पर्याय उस पर जाये, उसके (पर्याय) प्रति लक्ष्य करने जैसा नहीं - ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहा समझ में आया? जो पर्याय-अवस्था अन्तर में त्रिकाली ज्ञायकभाव पर जाये, वह पर्याय भी हेय है। आहाहा! (जो) पर्याय, स्वद्रव्य का आश्रय करे, वह पर्याय भी हेय है, उस पर्याय का विषय जो त्रिकाल है, आहाहा! अखण्डानन्द प्रभु सनातन वज्र, ज्ञान वज्र, ज्ञान का हीरा ऐसा चैतन्य प्रभु भगवान की दृष्टि में, उसकी दृष्टि भी हेय है। आहाहा! गजब बात है! कहो, यह सब तब कहाँ था? यह सब किया था, वर्षी तप किया था न? तब यह बात कहाँ थी? कान में पड़ी थी? सुनी थी? आहाहा!

श्रोता : पूरे भारत में कहाँ थी?

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत कठिन बात, बापू! कठिन अर्थात् अपूर्व। आहाहा!

पूर्णानन्द का नाथ एक स्वरूप से बिराजमान है, उसे अनेकपने का आरोप नहीं देना। आहाहा! त्रिकाली भगवान तो सादि-अनन्त और अनादि-सान्त; संसार अनादि-सान्त, मोक्ष, सादि-अनन्त... आहाहा! उस त्रिकाली सनातन में इन दो का अभाव है; इसलिए त्रिकाली सनातन की अपेक्षा से दोनों हेय हैं। आहाहा! इसका विस्तार तो यह है। संक्षिप्त तो बहुत संक्षिप्त कर दिया। आहाहा! संसार अनादि-सान्त (अशुद्ध) पर्यायरूप से; मोक्ष सादि-अनन्त शुद्ध (पर्यायरूप से), परन्तु वे सब पर्याय हैं। उसकी अवधि एक समय की है। भले रहे सादि-अनन्त, परन्तु उसकी अवधि एक समय की है। बन्ध और मोक्ष एक समय की (अवधिवाली पर्याय है)। बन्ध की अवस्था एक समय है, उसका अभाव करके दूसरे समय जो पर्याय हो, वह एक समय की अवधिवाली है। आहाहा! क्या कहा?

भगवान आत्मा में राग का बन्ध जो अनादि अज्ञान, वह एक समय की पर्याय है। एक 'क' बोले, उसमें असंख्य समय जाते हैं। उसमें एक समय की स्थिति है और रूपान्तर हो (अर्थात् कि) बन्ध का अभाव होकर मोक्ष हो, उसकी भी एक समय की स्थिति है। आहाहा!

तो वह भले सादि-अनन्त रहे और संसार भले अनादि-सान्त हो गया परन्तु दोनों वस्तु की चीज़ में नहीं है। आहाहा! ऐसा कहाँ मुम्बई में सुनने मिले? धूल-पूरे दिन धूल और पैसा और... आहाहा! मुम्बई में क्या, देश में भी मुश्किल है न, बापू! कितना विरोध करते हैं! निमित्त से होता है, निमित्त से (होता है - ऐसा) न माने, वह एकान्त मिथ्यादृष्टि है, ऐसा कहते हैं। आहाहा! बापू!

प्रत्येक द्रव्य, पर्यायरहित कोई द्रव्य होता है किसी काल में? तीन काल में पर्यायरहित द्रव्य होता है? तब अब उस पर्याय को दूसरा करे, यह कहाँ से आया? आहाहा! यहाँ तो उस पर्याय को भी उड़ा देते हैं। पर से पर्याय हुई नहीं, अपने से हुई है, राग में अटकने की बन्ध पर्याय और मोक्ष-केवलज्ञान होने की मोक्ष पर्याय, वह एक समय में अन्तर पड़ जाता है। एक समय में बन्ध और दूसरे समय में मोक्ष। आहाहा! परन्तु वे दोनों (एक) समय की स्थितिवाले हैं। आहाहा! त्रिकाल की स्थिति की अपेक्षा से उन्हें हेय और छोड़नेयोग्य (कहा) है। आहाहा!

किन्तु शुद्धनिश्चयनय के बल से वे हेय हैं। किस कारण से? अब कारण देते हैं। **हेय हैं। किस कारण से? क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! गजब गाथा है!! केवलज्ञान, वह परस्वभाव; त्रिकाल स्वभाव नहीं। आहाहा! राग, दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम तो विकार परस्वभाव है ही। आहाहा! देवीलालजी! ऐसी बात है, कठिन बात है। आचार्य महाराज कहते हैं, मैंने तो मेरे लिये बनाया है। तू सुन और तुझे बैठे तो बिठा, अनादर करना नहीं। सत्य ऐसा महँगा-ऐसे अनादर करना नहीं, बापू!

भाई! तेरा नाथ भगवान इतना है कि जिसकी कीमत के समक्ष एक समय की पर्याय की कीमत है नहीं। आहाहा! त्रिकाली ध्रुव की कीमत के समक्ष इस केवलज्ञान की एक समय की पर्याय की भी कीमत नहीं। आहाहा! यहाँ विवाद उठे (कि) गुरु की भक्ति आदरने (योग्य) नहीं? भक्ति करने योग्य नहीं? भगवान! सुन न, बापू! भक्ति का भाव आवे, होता है परन्तु वह त्यागने योग्य है, वह आश्रय करने योग्य नहीं। आहाहा! भाव-शुभभाव होता है। आहा! परन्तु वह दु:खरूप है और उसका अभाव होकर आनन्दरूपदशा होती है। द्रव्यस्वभाव का जो आनन्द है; शुभभाव.. आहा! चाहे तो तीर्थंकरगोत्र बाँधने का शुभभाव (हो) परन्तु वह दु:खरूप है, प्रभु! क्योंकि प्रभु आनन्दस्वरूप है।

भगवान आत्मा तो अनादि-अनन्त, अनादि-अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द की मूर्ति है। एक समय भी दु:ख और आकुलता जिसमें नहीं। आहाहा! और संसार की आकुलता, अरे! समयान्तर होकर निराकुलता प्रगट हो परन्तु वह भी पर्याय है। आहाहा! त्रिकाली निराकुल आनन्द के समक्ष नयी प्रगट हुई अनाकुलता पर्याय, वह भी हेय है। **किस कारण से ? क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** आहाहा! गजब बात है। फिर लोग तो सोनगढ़ के नाम से कहते हैं कि व्यवहार उड़ाते हैं, व्यवहार

से लाभ होता है—ऐसा नहीं कहते, अकेली निश्चय की बात ही करते हैं। उसे जँचा हो, ऐसा कहे। जो जँचा हो, वह आत्मा (अर्थात् कि) जो अभिप्राय जँचा हो, वह तो आत्मा वैसा हो गया होता है, पर्याय में आत्मा ही ऐसा हुआ हो। अब करना क्या उसे ? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जैसा राग की एकता का भाव, परभाव, परस्वभाव है, वैसा मुक्ति का स्वभाव परस्वभाव है। आहाहा! गजब बात है प्रभु! कान में पड़ना मुश्किल पड़े। आहाहा! मात्र समयान्तर है। वस्तु तो सनातन त्रिकाल है, उसमें उपजना या विनशना है ही नहीं। अब उत्पाद-व्यय जो है, उत्पाद हुआ मोक्ष का, व्यय हुआ बन्ध का, वह भी समय की स्थिति है। आहाहा! भले दूसरे समय मोक्ष रहे परन्तु अवधि तो एक समय की ही है। आहाहा! त्रिकाली मुक्तस्वरूप भगवान आत्मा, उसे मुक्तस्वरूप कहना वह भी मानो कहीं किसी की बन्ध की अपेक्षा थी, इसलिए छूटा और मुक्त है - ऐसा भी नहीं। वह तो त्रिकाली मुक्तस्वरूप ही है। आहाहा! कठिन लगे, अनजाने व्यक्ति को पहले-पहले सुनता हो उसे तो ऐसा लगे कि यह जैनधर्म है ? यह जैनधर्म ऐसा होगा ? ऐसा अन्य धर्म निकाला कहाँ से ? कहो, सेठ! आहाहा!

है, पर्याय है, बन्ध है, मोक्ष है परन्तु एक समय की अवधिवाले, दोनों एक समय की अवधिवाले। आहाहा! केवलज्ञान भी एक समय रहकर दूसरे समय दूसरा हो जाता है और भगवान जो अन्दर है, वह तो एकरूप त्रिकाल अनादि और एकरूप रहता है। आहाहा! सनातन टंकोत्कीर्ण वस्तु, आहाहा! जैसे टाँकी से उकेर कर कोई एकाकार वस्तु निकाली हो, वैसा एकाकार त्रिकाली चिदानन्दस्वरूप भगवान, उसे आदि और अन्त नहीं, उत्पन्न और व्यय नहीं, उत्पाद और व्यय का जिसमें अभाव है। आहाहा!

इस प्रकार तीनों को सत् कहना। ***उत्पादव्ययध्रुवयुक्तं सत्-तीनों सत् हैं। आहाहा!*** तत्त्वार्थसूत्र में (सूत्र है)। ***उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीनों सत् हैं परन्तु उत्पाद-व्यय एक-एक समय का सत् है। उत्पाद और व्यय एक समय का सत् है और प्रभु है, वह अनादि का सत् है। आहाहा!*** अरे रे! यह कैसे जँचे ? इस दुनिया की धमाल... आहाहा! पूरे दिन स्त्री-पुत्र और धन्धा-व्यापार, और उसमें यह बात। आहाहा!

प्रभु कहते हैं, तुझमें मुक्ति भी नहीं है। आहाहा! उसकी दृष्टि कर। आहाहा! क्योंकि मुक्ति की अवस्था भी एक समय की है, दूसरे समय दूसरी पर्याय होती है, तीसरे समय तीसरी पर्याय होती है। वह उत्पाद का एक ही समय है, व्यय का भी एक ही समय है। आहाहा! भले सत् हो... आहाहा! त्रिकाली सनातन सत् अकेला ज्ञायकभाव, जिसमें हीनाधिकपना नहीं, जिसमें उत्पाद-व्यय नहीं, जिसमें न्यूनाधिकता ये दो नहीं। आहाहा! जिसमें एकरूपता त्रिकाल है। आहाहा! ५० वीं गाथा में गजब किया है।

श्रोता : आपने गजब किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभु ! तू कौन है ? आहाहा ! प्रभु ! तुझे कहाँ दृष्टि देनी है ? जो सनातन रहे, वहाँ देनी है या बदले, उसमें दृष्टि देनी है ? आहाहा ! बदले वह तो पलटा/व्यय हो जायेगा और वह भी वह व्यय होगा पारिणामिक में, ध्रुव में। आहाहा ! वहाँ दृष्टि को छोड़ दे, आहाहा ! उत्पाद-व्यय की दृष्टि को छोड़ दे। आहाहा ! है तीनों सत्। यहाँ एक सत् ऊपर दृष्टि (रख)। ध्रुव पर दृष्टि करनेवाला उत्पाद-व्यय है। दृष्टि करनेवाला जिसे हेय मानता है, वह (वह स्वयं) है। आहाहा !

जो हेय कहता है, वह हेय कौन कहता है ? यह पर्याय मानती है या कोई अध्धर से मानता है ? आहाहा ! पर्यायरहित द्रव्य तो कभी तीन काल में होता नहीं। पर्यायरहित द्रव्य हो तो वह तो गधे के सींग जैसा हुआ। जैसे गधे को सींग नहीं होते, उसी प्रकार इस पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता। आहाहा !

यहाँ कहते हैं पर्याय भले हो ! आहाहा ! तीनों काल में किसी समय में पर्यायरहित द्रव्य नहीं होता, तथापि उस एक समय की पर्याय की कीमत नहीं है। भले वह एक समय में पर्याय में रूपान्तर हो जाये। कहाँ बन्ध का भाव और कहाँ मोक्ष का भाव ! आहाहा ! एक समय में रूपान्तर ! जो तीन काल-तीन लोक को जाने और बन्ध की पर्याय राग को तो यह जानने योग्य है, यह भी पता नहीं। वह रूपान्तर होकर केवलज्ञान प्रगट होता है। आहाहा ! वह भी यहाँ त्रिकाल एकरूप रहनेवाला प्रभु, उसके आश्रय में वह भी हेय है। कठिन लगे, बापू ! क्या हो ? बहुत से तो ऐसा कहते हैं कि यह सोनगढ़वालों ने घर का निकाला है, घर का धर्म निकाला है। आहाहा ! नया निकाला है। हम चलते हैं, परम्परा चलती है, हमारी परम्परा चलती है, यह करना, ऐसा करना, ऐसा करना, उससे यह तो सब दूसरा प्रकार ही निकाला। अरे प्रभु ! तेरे स्वरूप में ही यह है, प्रभु ! प्ररूपणा में तो है ही, कथनशैली में तो है ही, शास्त्र में तो है ही परन्तु तुझमें है। आहाहा !

जितना यह कहा जाता है... आहाहा ! एक समय में वह त्रिकाली वर्तमान है, ऐसा त्रिकाली ! भले भविष्य में रहे, सनातन एकरूप (रहता है) आहाहा ! उसे जाननेवाली पर्याय है, जाननेवाली ध्रुव नहीं, वह पर्याय जाननेवाली है। आहाहा ! अरे ! मोक्ष की पर्याय भी जो केवलज्ञान, जो द्रव्य को जाननेवाली है, जो तीन काल को जाननेवाली है... आहाहा ! वह पर्याय जिसने द्रव्य का आश्रय किया है और पर्याय प्रगट हुई है, वह भी हेय है। आहाहा ! गजब बात है, प्रभु ! ऐसी बात कहीं मिलना मुश्किल पड़े ऐसा है। आहाहा ! कठिन बात है, सुनना कठिन पड़े ऐसी है। लोग तो कुछ के कुछ रास्ते चढ़ गये हैं। आहाहा ! यह सोनगढ़ को तो तिरस्कार.. तिरस्कार... तिरस्कार.. (करते हैं)। यह तो एकान्त मिथ्यात्वी हैं, एकान्त मिथ्यात्वी हैं (-ऐसा कहते हैं)। आहाहा ! अरे प्रभु ! तेरी यह मान्यता भी एक समय की है, प्रभु ! यह तेरी विपरीत

मान्यता भी एक समय की है। यह एक समय की पलटने में देरी नहीं लगेगी। आहाहा! त्रिकाली का नाथ अन्दर बिराजता है, प्रभु! उसका आश्रय लेने पर एक समय की मिथ्यात्व पर्याय नहीं रह सकेगी। आहाहा! ५० (गाथा में) गजब बात है।

५० वीं गाथा में तीन बोल लेंगे। एक तो हेय कहा **क्योंकि वे परस्वभाव हैं...** दो बात। एक तो हेय कहा, मोक्ष और बन्धपर्याय दोनों हेय कही। कारण? हेय का कारण—वह परस्वभाव है, वह त्रिकाली स्वभाव नहीं। आहाहा!

वह सनातन सत्य है, जिसे कुछ पलटना नहीं, उपजना नहीं, बदलना नहीं – ऐसा वह सत्य है। आहाहा! उस सत्य की अपेक्षा से केवलज्ञान आदि परस्वभाव है। हेय तो कहा परन्तु हेय का कारण कौन? कारण क्या? कि परस्वभाव है। आहाहा!

अरे! प्रभु! केवलज्ञान परस्वभाव!! गजब बात, भाई! अभी तो विकार को परस्वभाव मानने में विवाद (उठता है)। विकार परस्वभाव? तो विकार तो स्वभाव हो जायेगा, पर का स्वभाव। वह तो पर के निमित्त से विकार होता है। वह विकार पर के निमित्त से न हो तो स्वभाव हो जायेगा। यहाँ कहते हैं कि पर के निमित्त बिना हो, वह उसका विभावस्वभाव अपना है। आहा! वह बन्ध अपना है। आहाहा! बन्ध की पर्याय (की) अवधि एक समय की है, प्रभु! आहाहा! भले समयान्तर होते-होते अनन्त काल गया परन्तु मुद्दत तो एक समय की ही है। अनादि है परन्तु अवधि उसकी एक समय की है और जब गुलाँट खाता है-द्रव्य की दृष्टि करता है, तब मुक्ति भी एक समय की है। इसलिये वह मुक्ति की पर्याय-जो पर्याय द्रव्य का आश्रय करती है, वह पर्याय भी हेय है, परस्वभाव है। आहाहा! परस्वभाव, स्व -स्वभाव का आश्रय करता है। हेय है, वह स्व का आश्रय करता है। आहाहा! ऐसी बात है। कठिन लगे प्रभु! क्या हो?

यहाँ तो (कलश में) कहा है न कि **शुद्धतत्त्वरसिकाः प्रवदन्ति।** शुद्धतत्त्व के रसिक तो ऐसा ही कहते हैं। ऊपर आ गया न? शुद्धतत्त्व के रसिक पुरुष तो ऐसा ही कहते हैं। आहाहा! अनादि काल से प्रभु! राग-द्वेष और अज्ञान में (रहा) परन्तु उनकी अवधि तो एक समय की है। वह समय-समय करते अनन्त काल गया और रूपान्तर होने पर भी प्रभु एक ही समय है। मोक्ष भी एक ही समय रहता है, द्रव्य त्रिकाल रहता है। आहाहा! मोक्ष की पर्याय एक समय (रहती है)। दूसरे समय दूसरी, वह नहीं, वह नहीं, वैसी। वह नहीं, वैसी। वैसी अवश्य परन्तु वह नहीं। आहाहा! ऐसी चीज़ है। सेठिया गये? है? ठीक! ये सुनने जैसा है, सेठिया! आहाहा! आहाहा!

दो कारण कहे। एक स्वद्रव्य के आश्रय की अपेक्षा से सभी चार भाव हेय हैं। हेय हैं उनका कारण (क्या)? कि उसका कारण (वे) परस्वभाव हैं। आहाहा! दूसरी बात-और परस्वभाव हैं, इसलिये... आहाहा! गजब बात है। और **वे परस्वभाव हैं और इसीलिए परद्रव्य हैं।**

आहाहा! गजब बात है। सुनना कठिन पड़े, प्रभु! तेरा स्वरूप ऐसा है, भाई!

अनादि अनन्त सनातन चैतन्य का हीरा अनन्त गुण के रत्न से भरपूर सनातन नित्य ध्रुव है। उसकी दृष्टि की अपेक्षा से चार भाव भी हेय हैं क्योंकि परस्वभाव हैं। आहाहा! केवलज्ञान परस्वभाव है। त्रिकाली स्वस्वभाव है, उसकी अपेक्षा से, उत्पन्न हुआ भाव-यह तो उत्पन्न हुआ भाव है और द्रव्य है, वह तो सनातन सत्य है। आहाहा! ऐसी बात है। हीराभाई! आहाहा!

५० वीं गाथा, कुन्दकुन्दाचार्य स्वयं ने स्वयं लिखा है न **पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।** यह तो अर्थकार-टीकाकार कहते हैं (परन्तु) स्वयं कहते हैं कि मैंने मेरे लिये बनाया है, प्रभु! मेरी दृष्टि द्रव्य पर पड़ी है, इससे मैं ऐसा कहता हूँ कि बन्ध और मोक्षपर्याय, वह हेय है और उसका कारण ऐसा कहता हूँ कि वे परस्वभाव हैं और इसलिए ही वे परद्रव्य हैं। आहाहा! पर के साथ सम्बन्ध नहीं। अपनी ही पर्याय की बात है। बन्ध और मोक्ष की पर्याय अपनी पर्याय की बात है परन्तु वह परद्रव्य है। आहाहा! क्यों? जैसे परद्रव्य में से नयी निर्मल आनन्द की पर्याय नहीं आती, वैसे पर्याय-मोक्ष की पर्याय हो तो भी उसमें से नयी आनन्द की पर्याय नयी पर्याय में से नहीं आती। आहाहा! गजब बात है। भाग्यवान को कान में पड़े ऐसा है। आहाहा!

राग तो दु:खदायक है, वह तो संसार है, वह तो एक समय की अवस्था पलट सकती है परन्तु पलटकर मोक्ष हो, उस समय की अवस्था भी एक समय की ही है। क्यों? कि त्रिकाली की अपेक्षा से एक समय है; इसलिए त्रिकाली की अपेक्षा से हेय है; इसलिए त्रिकाली के स्वभाव की अपेक्षा से परस्वभाव है। **और इसीलिए...** हेय के कारण परस्वभाव है, इसीलिए वह परद्रव्य है। आहाहा!

अपनी केवलज्ञानपर्याय, सिद्धपर्याय, अनन्त चतुष्टय बाह्य प्रगट हुए; शक्ति में जो अनन्त ज्ञान, दर्शन, आनन्द और वीर्य था, वह पर्याय में अनन्त चतुष्टय प्रगट हुए, तथापि कहते हैं कि वह तो परद्रव्य है। आहाहा! क्योंकि उसमें से नयी पर्याय नहीं आती। जैसे परद्रव्य में से नयी आनन्द की पर्याय नहीं आती, वैसे इस पर्याय में से नयी आनन्द की पर्याय नहीं आती। आनन्द की पर्याय आती है भगवान त्रिकाल त्रिलोक के नाथ में से आती है। आहाहा! जिसमें से अनन्त आनन्द की पर्याय आवे, उसे हम स्वद्रव्य कहते हैं। आहाहा! और जिस पर्याय में से नयी आनन्द की पर्याय न आवे, उसे हम स्वद्रव्य की अपेक्षा से परद्रव्य कहते हैं। गजब बात है। आहा! **इसीलिए परद्रव्य हैं।** आहा! इसमें विशेष आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१०

श्री नियमसार, गाथा ४१ प्रवचन नं. १७४
दिनांक ०९-०९-१९६६

यह नियमसार, मोक्षमार्ग का अधिकार चलता है। उसमें यह 'शुद्धभाव अधिकार' है। ऊपर नाम है न? इस ओर नियमसार (लिखा है), इस ओर 'शुद्धभाव (अधिकार' लिखा है)। इसका अर्थ क्या है?—कि आत्मा एक समय में पूर्ण ध्रुव ज्ञायकभाव को यहाँ शुद्धभाव कहने में आया है। एक समय की पर्याय रहित को। समझ में आया? एकसमय की पर्याय, राग-द्वेष—उसरहित का अकेला ध्रुव चैतन्य प्रभु ज्ञायकभाव को शुद्धभाव कहने में आया है। इस शुद्धनय में चार विभाव स्वभाव का अभाव है, यह गाथा है? समझ में आया? पहले कहा न?

कर्मों के क्षय से जो भाव हो, वह क्षायिकभाव है... पहली लाईन। उसका अर्थ नीचे (फुटनोट में) है। 'कर्मों के क्षय से=कर्मों के क्षय में, कर्मों के क्षय के सद्भाव में (व्यवहार से कर्मों के क्षय की अपेक्षा जीव के जिस भाव में आती है, वह क्षायिकभाव है)।' अपने पुरुषार्थ से जब क्षायिकभाव पर्याय अपने स्वभाव के आश्रय से प्रगट करता है तो कर्म का क्षय उस समय हो जाता है। समझ में आया? ऐसा **क्षायिकभाव** आत्मद्रव्य में—वस्तु में... ***क्षायिकभाव शब्द से केवलज्ञान, क्षायिकभाव शब्द से केवलदर्शन, क्षायिक समकित और दान, लाभ, भोगादि जो नौ क्षायिकभाव हैं—क्षायिक चारित्र, यह नौ प्रकार की जो क्षायिक पर्याय जो दशा है, वह द्रव्य में नहीं है।*** समझ में आया?

श्रोता : द्रव्य में नहीं है तो कहाँ है?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय, पर्याय में है; सामान्य द्रव्य में नहीं। पहले तो उपोद्घात करते हैं, हों! पहले एक प्रश्न था कि अभी तक हम यहाँ रहे तो क्रमबद्ध की बात आयी नहीं। सवेरे आयी नहीं, दोपहर को आयी नहीं। किसी भाई का प्रश्न था। 'जयपुरवाले' का था। उपादान-निमित्त और क्रमबद्ध की बात आयी ही नहीं।

यहाँ अपने थोड़ा लेते हैं, देखो! कि भगवान आत्मा एक समय में शुद्ध चैतन्यधातु पूर्णानन्द परमपारिणामिक स्वभावभावरूप आत्मा को यहाँ शुद्धभाव कहने में आता है। उसके आश्रय से क्षायिकभाव केवलज्ञान की दशा उत्पन्न होती है, परन्तु क्षायिकभाव आदि चार भाव, शुद्धभाव में नहीं है। उसका स्पष्टीकरण अन्तिम आया है, देखो! **चार भाव आवरण संयुक्त होने**

से मुक्ति का कारण नहीं है... पीछे है, ८५ पृष्ठ पर है। यह तो थोड़ा लेकर, थोड़ा क्रमबद्ध का लेना है। क्या कहा?

सूक्ष्म गहरी बात है। ऊपर से कोई पता लग जाए—ऐसी चीज़ नहीं है। भगवान आत्मा एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में ऐसे शुद्ध चैतन्य के रस से भरपूर पड़ा है।

कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं,
अपने रससौं भर्‌यौ आपनी टेक हौं॥

बनारसीदास में आता है न? यह कलश अमृतचन्द्राचार्य का है। **कहे विचच्छन....** विचक्षण अर्थात् ज्ञानी।

कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं,
अपने रससौं भर्‌यौ आपनी टेक हौं॥

अपने स्वभाव में अनन्त आनन्द आदि पूर्ण स्वभाव भरा है—ऐसा अनादि से ही मुझमें है। समझ में आया? **कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं, अपने रस...** रस अर्थात् स्वभाव; रस अर्थात् शक्ति; रस अर्थात् सत्व; रस अर्थात् भाव। मेरे निज स्वभाव में अनादि से मैं एकरूप भरा हूँ। द्रव्यस्वभाव।

मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है,
कहै विचच्छन पुरुष सदा मैं एक हौं,
अपने रससौं भर्‌यौ आपनी टेक हौं॥
मोहकर्म मम नांहि नांहि भ्रमकूप है,
सुद्ध चेतना सिंधु हमारौ रूप है। ३३। (जीवद्वार)

यह बनारसीदास की कड़ी है। बनारसीदासजी! तुम्हारे नाम की कड़ी है। बनारसीदास हुए न! समयसार नाटक (बनाया है)। समझ में आया? अनादि आनन्दकन्द प्रभु ध्रुवस्वरूप में यह चार भाव—उदय, उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक जो पर्यायभाव है—अवस्थाभाव है। वह अवस्थाभाव, स्वभाव में नहीं है। वह चार भाव बन्ध का कारण है—ऐसा यहाँ तो कहते हैं। आहाहा! चार भाव मुक्ति का कारण नहीं है। क्यों? कि चार भाव, वह पर्याय है। मुक्ति का कारण वह नहीं; मुक्ति का कारण त्रिकालभाव है। समझ में आया? त्रिकाल ध्रुवस्वरूप कारणपरमात्मा त्रिकाल सत् चिदानन्द प्रभु में से केवलज्ञानादि कार्य उत्पन्न होता है। मुक्ति का कारण तो भगवान ध्रुवस्वरूप ही कारण है; पर्याय कारण नहीं है।

अब, जब केवलज्ञान हुआ तो भी केवलज्ञान की एकसमय की पर्याय क्षायिकभाव है। अन्दर में—ध्रुवभाव में वह नहीं। सामान्य में वह विशेष नहीं। समझ में आया? और वह विशेष

जो केवलज्ञान है, वह एकसमय में तीन काल-तीन लोक को जानता है। कहो, बराबर है? एकसमय में तीन काल-तीन लोक एक समय के ज्ञान में प्रगट ज्ञान को देखने से उसमें तीन काल-तीन लोक जानने में आते हैं। भगवान का जैसा ज्ञान हुआ, ऐसे त्रिकाल द्रव्य-गुण-पर्याय जैसे हैं, उस तीन काल में जहाँ-जहाँ जैसी पर्याय होती है, वह पर्याय, केवलज्ञान में पहले से झलक गयी है। शोभागचन्दजी!

होगी तब दिखे, वह केवलज्ञान कहलाये? यह तो प्रश्न करते हैं। वह तो इसका स्वरूप ही ऐसा है, भाई! ऐ...ई! देवानुप्रिया! क्या कहा इन्होंने? होगी तब (जाने), वह केवलज्ञान कहलाये? पर्याय होगी, तब केवलज्ञान जानेगा।

श्रोता : निमित्त है न...

पूज्य गुरुदेवश्री : निमित्त कहाँ...? एक समय में भगवान तीन काल-तीन लोक की पर्याय एक समय में देखते हैं। जहाँ-जहाँ जो पर्याय जिस समय में जिस क्षेत्र में और जिस निमित्त के प्रसंग में... प्रसंग में, हों! उससे नहीं, ऐसा भगवान के ज्ञान में (ज्ञात होता है।)

जो-जो देखी वीतराग ने सो-सो होसी वीरा रे... भैया भगवतीदास (कृत) ब्रह्मविलास की यह कड़ी है।

जो-जो देखी वीतराग ने सो-सो होसी वीरा रे....
अनहोनी कबहूँ न होसी काहे होत अधीरा रे॥

श्रोता : यह तो आश्वासन के लिये....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! आश्वासन (के लिये) नहीं। लोग कहते हैं कि यह आश्वासन के लिये है। भगवान एक समय में तीन काल-तीन लोक जानते हैं—ऐसे जगत के द्रव्य की पर्याय एक समय में जो क्रम है, दूसरे समय, तीसरे समय जो (पर्याय) होनेवाली है, वही होती है, उसे सिद्ध करने के लिये 'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार' में अमृतचन्द्राचार्य महाराज, कुन्दकुन्दाचार्य सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार की शुरुआत में कहते हैं, अमृतचन्द्राचार्य उस पर उपोद्घात (टीका) करते हैं। **अथात्मनोऽकर्तृत्वं दृष्टान्त-पुरस्सरमाख्याति**-ऐसे शब्द हैं। आत्मा का अकर्तृत्व **दृष्टान्तपुरस्सरमाख्याति**-भगवान आत्मा अकर्ता है, वह हम दृष्टान्त से कहते हैं। उसमें क्रमबद्ध आया है, इस अधिकार में क्रमबद्ध लिया है।

श्रोता :....

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय क्रम (सर) है, गुण अक्रम है। एक सेकेण्ड के असंख्य भाग में आत्मा में गुण अक्रम एक साथ तिरछा रहते हैं और पर्याय ऊर्ध्व रहती है। समझ में आया?

श्रोता : भगवान दोनों को जानते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : भगवान दोनों को एक समय में जानते हैं। समझ में आया?

श्वेताम्बर है न? उसमें एक देवचन्दजी हुए हैं, उन्होंने शीतलनाथ भगवान की स्तुति की है, उस शीतलनाथ भगवान की स्तुति में भी उन्होंने यह श्लोक लिया है। 'द्रव्य, क्षेत्र और काल भाव गुण राजनीति ये चार जे, त्रास बिना जड़-चैतन्य प्रभु नी कोई न लोपे कारजी' कार अर्थात् आज्ञा। 'द्रव्य क्षेत्र और काल भाव गुण...' प्रत्येक पदार्थ में द्रव्य, उसका क्षेत्र, उसकी अवस्था, उसका भाव, काल अर्थात् अवस्था (होती है)। द्रव्य, क्षेत्र, और काल भाव गुण राजनीति ये चार जे... सर्व द्रव्यों की यह राजनीति है।

'त्रास बिना जड़-चैतन्य प्रभु नी कोई न लोपे कारजी' जड़ और चैतन्य को त्रास नहीं है कि यह भगवान में देखा इसलिए हुआ, ऐसा नहीं परन्तु अपनी पर्याय में जो क्रमसर होनेवाली है वह 'त्रास बिना जड़-चैतन्य प्रभु नी कोई न लोपे कारजी' भगवान की आज्ञा के बाहर कोई पर्याय नहीं परिणमती। समझ में आया? क्या हुआ? जिस समय जहाँ जिस द्रव्य की जो पर्याय होनेवाली है, वह वहाँ होगी। आगे-पीछे तीन काल-तीन लोक में किसी द्रव्य की नहीं होती। समझ में आया? अपने क्रम से होती है और गुण अक्रम से होते हैं। क्रमसर पर्याय होती है। पर की अपेक्षा से अक्रम कहने में आती है। अक्रम का अर्थ आगे-पीछे नहीं! निजद्रव्य की अपेक्षा से स्वयं को द्रव्य कहने में आता है तो दूसरे द्रव्यों की अपेक्षा से इस द्रव्य को अद्रव्य कहने में आता है। सुना है? आहाहा! अपना आत्मा द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव से है। द्रव्य अर्थात् गुण-पर्याय का पिण्ड; क्षेत्र अर्थात् चौड़ाई; काल अर्थात् अवस्था; भाव अर्थात् शक्ति - गुण। निज द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है, पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से नहीं। इस अपेक्षा से भगवान ऐसा कहते हैं कि अपनी वस्तु निज द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है और पर की वस्तु पर के द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव से है; तो पर की अपेक्षा से अपना अद्रव्य-अक्षेत्र-अकाल-अभाव है। अपनी अपेक्षा से पर अद्रव्य-अक्षेत्र-अकाल-अभाव है। उसकी अपेक्षा से द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव है। अपनी अपेक्षा से सभी द्रव्य अद्रव्य-अक्षेत्र-अकाल और अभाव है। यह बात ही कौन जाने कैसी? क्या कहा?

देखो यह अंगुली है। यह अंगुली से अंगुली से वस्तु है परन्तु इस (दूसरी) अंगुली की अपेक्षा से यह (पहली) अंगुली अवस्तु है और इस (पहली) अंगुली अपनी अपेक्षा से वस्तु है परन्तु (दूसरी अंगुली की) अपेक्षा से अवस्तु है और यह (दूसरी) अंगुली (पहली) अंगुली की अपेक्षा से अवस्तु है। समझ में आया? सप्तभंगी के दो बोल हैं। यह पहले स्पष्ट है।

इसी प्रकार प्रत्येक द्रव्य की पर्याय स्वयं से क्रमसर है, पर की अपेक्षा से कहो तो अक्रम अर्थात् वह क्रमसर नहीं, परन्तु आगे-पीछे होती है—ऐसा उसका अर्थ नहीं है। निश्चित त्रिकाल है।

श्रोता : विकारी पर्याय है....

पूज्य गुरुदेवश्री : विकारी (पर्याय) वह द्रव्य में जिस समय में होनेवाली है, वह त्रिकाल निश्चित है। तीनों काल निश्चित है। कहो, समझ में आया? जहाँ-जहाँ विकार परन्तु जिस समय होनेवाला है (वही होता है)। यहाँ तो (संवत्) १९७१ के साल से हमारे तो यह बात चलती है। ५१ वर्ष हुए। इसकी बात श्लोक में चलती है। विकार... होता है, कर्म से होता है। धूल में भी नहीं होता, सुन तो सही! ऐ... धन्नालालजी! ७१ समझे? क्या कहते हैं? ७ और १ (संवत्) १९७० में (सम्प्रदाय में) दीक्षित हुए। सम्प्रदाय के सामने १९७१ से बात चलती है।

आत्मा की अपनी पर्याय में विकार होने का काल है तो विकार होता है, पर से विकार नहीं होता। समझ में आया? इसमें उपादान आ गया। जयपुरवाले भाई का प्रश्न था। उपादान अपनी पर्याय से कार्य होता है। समझ में आया? पर से नहीं होता परन्तु निमित्त है तो व्यवहार से बोलने में आता है कि उससे हुआ, है नहीं। अपने उपादान से सब हुआ।

'उपादान बल जहाँ-तहाँ नहीं निमित्त को दाव,
एक चक्र सों रथ चले, रवि को यही स्वभाव;
उपादान निर्वचन है, है निमित्त उपदेश
वसे जू जैसे देश में करे सुं वैसे वेश'

उपादान अर्थात् प्रत्येक पदार्थ की अपने स्वकाल में पर्याय होती है। निमित्त का-पर का काल, निमित्त की पर्याय भी उसका स्वकाल है। समझ में आया? उसकी पर्याय उसका स्वकाल है, उससे होती नहीं अपनी पर्याय से होती है और परकाल से नहीं होती। समझ में आया? बस! हो गया। उपादान-निमित्त और क्रमबद्ध दोनों बात इसमें आ गयी। अर्थ यहाँ से खड़ा हुआ है। सब बात उपादान-निमित्त में से खड़ी हुई है।

अपनी पर्याय अपने काल में द्रव्य-क्षेत्र-काल-भाव, अपनी काल की शक्ति से स्व से उत्पन्न होती है; पर से उत्पन्न नहीं होती। समझ में आया? यही उपादान में क्रमबद्ध आ गया।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, यह बात अभी कहनी है न, अभी इसमें बाकी है। अभी यह साबित होता है, फिर (आयेगा)। समझ में आया? ताराचन्दजी! यह कुछ कहता था, हमारे यहाँ तो बहुत चलता है, परन्तु यह बात तो इन बीस दिन में आयी ही नहीं। भाई! सुनो! दोपहर थोड़ी कहेंगे। कोई जयपुरवाले भाई थे। कोई था। समझ में आया?

भगवान आत्मा... यहाँ तो तीन प्रकार के ईश्वर हैं। (१) जड़ेश्वर, (२) विभाव ईश्वर, (३) स्वभाव ईश्वर। बस! इस जगत में तीन हैं। रजकण आदि अजीवतत्त्व हैं वे जड़ेश्वर हैं। अपनी पर्याय स्वतन्त्ररूप से करने में वे स्वतन्त्र हैं। विभाव ईश्वर - जो विभाव का स्वामी होकर

विभाव को करता है, वह विभाव ईश्वर है और चैतन्यस्वभाव का स्वामी होकर स्वभाव को करता है, वह स्वभाव ईश्वर है। ऐसे अनन्त ईश्वर जगत में हैं। जड़ेश्वर भी अनन्त; विभाव ईश्वर भी अनन्त; स्वभाव ईश्वर भी अनन्त। बराबर है ? जड़ेश्वर, जड़-अजीव अनन्त हैं न ? परमाणु अनन्त हैं। विभाव ईश्वर - संसारी जीव। निगोद से लेकर अनन्त (जीव)। विभाव का स्वामी होकर विभाव को करता है, वह विभाव ईश्वर है, वह अनन्त है। स्वभाव का ईश्वर स्वभाव का स्वामी होकर स्वभाव की पर्याय करता है। समझ में आया ?

तब अब ऐसा अर्थ हुआ कि केवलज्ञान से सिद्ध नहीं करना, वस्तु की व्यवस्था से सिद्ध करना है। वस्तु ही अपनी पर्याय से कार्यरहित पदार्थ कभी होता नहीं। कार्यरहित पदार्थ रहता नहीं तो कार्य का नाम पर्याय है। प्रत्येक पदार्थ की वर्तमान पर्याय, वह उसका कार्य है। तो उस कार्य का करनेवाला वह द्रव्य है; उस कार्य का करनेवाला परद्रव्य नहीं। समझ में आया ? उपादान सिद्ध हो गया। उपादान सिद्ध हो गया कि प्रत्येक पदार्थ अपने कार्य से काम करता है, पर से नहीं।

अब जब ऐसा कहो कि भले पर से नहीं होता परन्तु क्रमबद्ध उसमें किस प्रकार आया ? कि जिस समय में होनेवाली है, वही होती है। दूसरे समय में होनेवाली (वही होती है)। इसका अर्थ किया न कि ***जिस-जिस समय में जो सत् का अंश है, उसी समय का अंश उत्पन्न होनेवाला है। दूसरे समय में वही सत् (का अंश होगा)। पूर्व की पर्याय से नहीं, द्रव्य-गुण से भी नहीं। वास्तव में तो ऐसी सूक्ष्म बात है। वह पर्याय का अंश जिस समय में, जिस काल में जिस द्रव्य का होनेवाला है, वह परद्रव्य से होता नहीं, अपनी पूर्व पर्याय से होता नहीं, अपने द्रव्य-गुण से भी होता नहीं।*** ऐ... पाटनीजी ! जरा सूक्ष्म बात तो आयी है, भाई ! क्रमबद्ध डालने गये वहाँ (सूक्ष्म बात आयी)।

अब जब ऐसा कहो कि जहाँ-जहाँ पर्याय होनेवाली होती है तो उसमें धर्म करने का पुरुषार्थ कहाँ रहा ? लो, बाबूभाई कहते हैं, बराबर है। माणेकलालभाई ! भाई ! भगवान ने ऐसा कहा, जैसे सर्वज्ञ परमेश्वर एक समय में तीन काल-तीन लोक को जैसा है वैसा जानते हैं, उसी प्रकार सम्यग्ज्ञानी-धर्मी, जहाँ पर्याय में-पर में जिस समय होनेवाली है, उसकी कर्तृत्व बुद्धि छूट जाती है। मैं पर का कर्ता हूँ, यह बुद्धि छूट जाती है। क्योंकि पर में और मुझमें (पर्याय) होती है। पर में पर्याय होती है तो उसका... उसमें भी आता है न ? भाई ने कहीं डाला है न ? क्या आता है ? कितना पद आता है ?

देखो ! भाई ने-सेठिया ने लिखा है। ये दीपचन्दजी सेठिया सरदारशहर के हैं न, उन्होंने गायन बनाया है। संस्कारी जीव-अच्छा जीव है। समझ में आया ? अभी थोड़ी बात की थी न ? दोपहर को कोई बैठा था। ३५-३७ वर्ष पहले उनके मामा के पास साठ लाख रोकड़ थे। वे उन्हें देते थे। ३५-३७ वर्ष पहले के साठ लाख अर्थात् ? पण्डितजी ! अभी तुम्हारे तीन आने का एक

रुपया हो गया है। तीन करोड़ रुपया। नहीं, नहीं। क्या करेंगे ? मामा ! इस पैसे का क्या करूँगा ? मेरे पास दो-तीन लाख है, उसकी भी मुझे रुचि नहीं। तुम्हारे साठ लाख को क्या करूँगा ? साठ लाख का इन्कार कर दिया। मामा की आँख में आँसू आ गया। मामा! देनेवाले तो मिलते हैं, इन्कार करनेवाले नहीं मिलते। समझ में आया? उन्होंने यह भजन बनाया है।

द्रव्य बना है, भाव बना है, होना भी साथ बना है,

द्रव्य बना है। है न? गुण बना है। होना पर्याय की बात है। होना भी साथ बना है।

बने बनाये जड़-चैतन्य में क्या करने जावे जी ?
ज्ञानेश्वर अन्य क्या करने जावे जी ?

हे ज्ञान के ईश्वर! हे प्रभु! तू ज्ञानेश्वर-ज्ञान का स्वामी तू ज्ञातादृष्टा है, भगवान!

अन्य क्या करने जाये जी ? ज्ञानेश्वर क्या करने जावे जी ? समझ में आया ? बहुत सूक्ष्म-सूक्ष्म बात बहुत ली है। तात्त्विक विषय का गायन बनाया है। समझ में आया? दूसरा एक क्रमबद्ध में कुछ डाला है, उसमें भी लिखा है।

द्रव्य अनादि तो बना बनाया है, निज निज कर्ता आवे जी...
जाने जग को तो मालिक निज को है, वह निश्चय सुख पावे जी....

स्वयं को जाने और पर को जाने कि होता है। पर का करना-फरना कुछ है नहीं और अपनी पर्याय में राग आया तो राग का भी कर्ता नहीं। क्योंकि जब आत्मा की पर्याय होनेवाली हुई तो धर्मी की दृष्टि-समकिती की दृष्टि ज्ञायकभाव पर जाती है। मैं तो जानने -देखनेवाला त्रिकाल चैतन्यमूर्ति ज्ञानेश्वर हूँ। मैं ज्ञानेश्वर हूँ, पर की पर्याय का स्वामी नहीं, यह राग होता है, उसका भी मैं स्वामी नहीं। समझ में आया ? ....नाराणजी ! ये समझना पड़ेगा, हों ! बाहर में-गप्पा में कुछ नहीं मिलेगा। आहाहा ! समझ में आया ? वह क्रमबद्ध का कहाँ है ? उसमें बहुत है 'कौन किसे पलटावे ?' यह भी है।

होना है वैसे ही होय छे जी, कौन किसे पलटाय ?
मर्यादा स्व-पर अंतस लावो जी, मर्यादा स्व-पर अंतस लावो।

तेरी मर्यादा तेरे पर्याय-गुण में रहती है, पर की पर्याय में उसकी पर्याय की मर्यादा रहती है। किसी की पर्याय उल्लंघ कर दूसरे में नहीं जाती। अपनी पर्याय अपने से होती है, पर की पर्याय पर से होती है और स्वकाल में होती है। समझ में आया ?

विश्वमर्यादा अटल है, नहि कोई पलटनहार
ज्ञाता बन बन सुखी थया, आपा समझनहार।

समझ में आया ?

होना है सो होय सो, कुछ नहि चले जी, कुछ नहि चले जी,
यह निश्चय दृढ़ जान, परिहार पर शरणं।

पर का शरण छोड़ दे, भगवान! तेरा जो होना होगा, वह होगा; पर का जो होना होगा, वह होगा। ज्ञायक की दृष्टि कर ले।

स्वयं नियमसार जग होता है, करने किसको जावे जी ?
जबरन पर का कर्ता बनकर जीवमद छावे जी ?

जीव तो मद में फिरता है-ऐसा कहते हैं। क्रमसर तो फिर कहीं है। क्रमसर कहीं है अवश्य। तेरहवें पद में है।

चेतन क्यों पर अपनाता है, आनंदघन तुं खुद ज्ञाता है,
ज्ञाता क्यों कर्ता बनता है ? खुद क्रमबद्ध सहज पलटता है।
ज्ञाता क्यों कर्ता बनता है ? खुद क्रमबद्ध सहज पलटता है,
यह विश्व नियम से चलता है, इसमें नहि धक्का चलता है।

किसी की पर्याय धक्के से चली जाये और धक्के से हो जाये-ऐसा है नहीं। जिस समय में पर्याय होनेवाली है, भगवान! तू किसे धक्का मारकर पलटाना चाहता है ? तेरी पर्याय का ज्ञाता और दूसरे की पर्याय का भी ज्ञाता, ऐसा तेरा स्वभाव भूलकर भगवान ज्ञानेश्वर क्या करने जाता है ? समझ में आया ? अनादि का नियम है।

वस्तु की मालिक वस्तु है, जो मालिक है वही कर्ता है,
फिर मालिक के मालिक बनकर क्यों नीति न्याय गंवाते है ?
जो है सो स्वयं परिणमता है, वह नहीं किसी से टलता है,
यह माने बिन कल्याण नहीं, कोई कैसे ही कुछ करता हो।

जिस समय में जो पर्याय होनेवाली है (वह होती है)। देखो! आया।

सत् शक्ति है स्वयं महान, जड़-चैतन्य दोनों भगवान।

दोनों पदार्थ महिमावन्त भगवान हैं। भगवान अर्थात् ज्ञान नहीं परन्तु सब महिमावन्त पदार्थ हैं।

सत् शक्ति है स्वयं महान, जड़-चैतन्य दोनों भगवान,
क्रमबद्ध करते हैं अपना काम, दायें-बायें पैर समान।

दृष्टान्त आया, क्या कहा ? दायाँ-बायाँ पैर चलता है या नहीं ? दायाँ-बायाँ। तो पहले दायाँ फिर बायाँ, फिर दायाँ, फिर बायाँ। कोई कुदक्का मारकर एक साथ चले तो वह चलना नहीं

कहलाता। क्रम का अर्थ यह पैर है। पण्डितजी! क्रम का अर्थ पैर है। यह भक्तामर में भी आता है। क्रम का अर्थ पैर है। जैसे, दायाँ-बायाँ पैर चलता है, वैसे एक के बाद एक, दाहिने के बाद बायाँ, बायें के बाद दायाँ (चलता है)। वैसे द्रव्य में एक के बाद एक पहली पर्याय, पहली और बाद की बाद में (होती है)। आगे-पीछे पर्याय कभी द्रव्य में नहीं होती। समझ में आया? स्वकाल।

अपने स्वकाल से पर्याय होती है। भगवान ने देखा है, वह एक ओर रखो। भगवान ने देखा है, वह तो सर्वज्ञ का सहारा लेकर कहना है। बाकी स्वकाल में पर्याय होती है और पर काल से नहीं, पर से नहीं और आगे-पीछे नहीं। ऐसा जब निर्णय करने जाते हैं, तब पर्याय की दृष्टि छूटकर ज्ञायक की बुद्धि हो जाती है। मैं ज्ञायक हूँ, जानने-देखनेवाला हूँ—ऐसी दृष्टि हुई तो कर्ता हो गया। किसका? स्वभाव का। और अकर्ता हो गया-पर का और विभाव का। इसमें पुरुषार्थ आया। समझ में आया? पाटनीजी! आहाहा! यह नयी बात नहीं, तीन काल-अनादि की यह बात है। समझ में आया? अनादि काल से सन्त कहते आये हैं, केवली कहते आये हैं, सम्यग्दृष्टि कहते आये हैं। समझ में आया? सुनी नहीं, इसलिए नयी है - ऐसा कौन कहता है? समझ में आया?

भगवान आत्मा और अनन्त पदार्थ अपनी पर्याय के स्वकाल से परिणमन होता है। आगे-पीछे पूर्व के कारण नहीं होता। बस! इसका क्रमबद्ध निश्चय हो गया और केवलज्ञानी ने भी ऐसा देखा है, ऐसी आज्ञा उल्लंघकर द्रव्य की पर्याय कभी होती है-ऐसा (नहीं है)। शास्त्र का ऐसा नियम है कि लोकालोक है, वह केवलज्ञान में निमित्त है। कोई कहता है कि ज्ञान में निमित्त है? परन्तु ज्ञान लोकालोक को निमित्त नहीं - ऐसा कोई कहता है। झूठ है। प्रवचनसार में पहले अधिकार में-ज्ञान अधिकार में भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने लिया है कि लोकालोक की एक समय की पर्याय केवलज्ञान में निमित्त है। केवलज्ञान की पर्याय लोकालोक को एक समय में निमित्त है। समझ में आया? प्रवचनसार में पहले अधिकार में है।

एक समय में लोकालोक की पर्याय जो है वह एक समय में ख्याल में आ गयी। कोई कहे कि प्रगट पर्याय नहीं न? वहाँ तो प्रगट पर्याय एक है, भूत-भविष्य की नहीं। समझ में आया? द्रव्य में भूत-भविष्य की प्रगट पर्याय नहीं है। प्रगट तो एक है, तो अप्रगट कहाँ से देखी? सुनो! भगवान का केवलज्ञान उपादान से स्वयं से हुआ है, उसमें लोकालोक के द्रव्य-गुण-पर्याय एकसमय में निमित्त होते हैं या भूत की अभी निमित्त नहीं और भविष्य की निमित्त नहीं? एकसमय में में सब द्रव्य-गुण-पर्याय निमित्त होते हैं। थोड़ी सूक्ष्म बात है।

एक समय में उपादान केवलज्ञान पर्याय और एक समय में पूरा लोकालोक निमित्त होता है। एक समय में होता है। तो एक समय में कब होता है? कि उसकी पर्याय पूरे द्रव्य-गुण एक समय में निमित्त होते हैं। भविष्य की पर्याय होगी, तब निमित्त है-ऐसा नहीं है। माणेकलालभाई! समझ में आया? उपादान की एक समय की पर्याय है, उसमें लोकालोक निमित्त है परन्तु

लोकालोक एक साथ है, उसमें केवलज्ञान निमित्त है। तो कहते हैं कि एक समय में यह निमित्त और एक समय में (लोकालोक) निमित्त। एक समय में सब निमित्त है, तो एक समय में भविष्य की पर्याय है नहीं, भूत की नहीं। एक समय में पूरा द्रव्य किस प्रकार निमित्त हो गया? पूरा द्रव्य निमित्त हो गया। उसमें एक समय की पर्याय विशेष है, द्रव्य-गुण सामान्य है, उनका निमित्तपना पूरा इसमें है। केवलज्ञान की पर्याय उपादान से हुई है, लोकालोक निमित्त कहने में आता है। भविष्य में निमित्त होगा और भूत में निमित्त है-ऐसा नहीं। थोड़ी और सूक्ष्म बात आ गयी। समझ में आया? हम तो बहुत वर्ष पहले से प्रवचनसार में से कहते हैं।

एक समय में पर्याय और सामने द्रव्य-गुण ऐसे पूरे हैं। पूरा ज्ञान और पूरा निमित्त - पूरा लोकालोक। एक समय में जब पर्याय क्रमसर है तो पर्याय के काल में पर्याय है, उसका ज्ञान है और द्रव्य-गुण में सब शक्ति, भविष्य की पर्याय भरी है, वह सब एक समय में निमित्त होती है। समझ में आया? धन्नालालजी! भारी गड़बड़ अभी (चलती है)। ज्ञेय प्रमाणं, ज्ञेय लोकालोक प्रमाणं। यहाँ तो कहते हैं कि पूरा ज्ञेय एक समय में निमित्त होता है। ***भविष्य में होगा, तब भविष्य में निमित्त होगा - ऐसा नहीं है। एक समय में निमित्त कब होता है? देवीलालजी! क्रमबद्ध जो पर्याय जब होनेवाली विशेष है, वह सामान्य गुण में पड़ी है। उसी समय में होगी, ऐसा एक समय में पूर्ण देखा है। आगे-पीछे नहीं और फेरफार नहीं। आहाहा! भगवान! परन्तु ऐसा निर्णय करनेवाले की पर की कर्ता (बुद्धि) उड़ जाती है और अपनी पर्याय में ऐसा राग करूँ, वह भी उड़ जाता है। यह तो ठीक, परन्तु स्वभाव की पर्याय करूँ-ऐसा विकल्प भी उड़ जाता है। आहाहा! समझ में आया? क्या कहा?***

श्रोता : जो होना होगा, वह होगा? हमें क्या पुरुषार्थ करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : होना होगा वह होगा, ऐसा निर्णय किसने किया? किसने निर्णय किया? होना होगा वह होगा, यह निर्णय किसने किया? पर्याय में। किसके लक्ष्य से किया? द्रव्य के लक्ष्य से। भाई! क्या कहते हैं? समझ में आया? विषय बहुत सूक्ष्म है। कोई भाई कहता था कि बीस दिन में तो (यह विषय) आया नहीं। सवेरे आया नहीं, दोपहर को आया नहीं, व्याख्यान में आया नहीं, कक्षा में आया नहीं। क्रमबद्ध और उपादान-निमित्त की बात (आयी नहीं)। समझ में आया?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु द्रव्य में क्या होना है? द्रव्य में तो है ही। द्रव्य में क्या होना है? द्रव्य-गुण तो है ही; होना तो पर्याय में है। समझ में आया होना, पलटना, बदलना तो पर्याय में है; द्रव्य-गुण तो हैं वे हैं। समझ में आया?

श्रोता : पर्याय भी द्रव्य में होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य में से होती है परन्तु पर्याय होनेवाली है, वह द्रव्य से होती है परन्तु उस काल में होती है। जो उसका काल है, उस काल में ही होती है। द्रव्य-गुण तो त्रिकाल है परन्तु जो पर्याय होती है, वह स्वकाल में-अपने काल में होती है। ऐसा निर्णय करनेवाले की पर ऊपर से दृष्टि उठकर, वर्तमान राग के कर्तापने की दृष्टि उठकर, स्वभाव की पर्याय का विकल्प मैं करूँ-ऐसे विकल्प से उठकर, स्वभाव पर दृष्टि जाती है। आहाहा! समझ में आया? तब वह क्रमबद्ध का निर्णय, तात्पर्य लाया, तब उसका फल अकर्ता और ज्ञातादृष्टा है। समझ में आया? केसरीचन्दजी! कितने ही व्यापारी तो सब ऊपर-ऊपर से (हाँ करते हैं)। ऊपर-ऊपर से समझे? कुछ होगा। ऐसा नहीं (चलता)।

श्रोता : महाराज जो कहे वह सच्चा कहते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : सच्चा, परन्तु इसे बैठे बिना सच्चा कहाँ से आया? समझ में आया? इसे बैठे बिना (सच्चा कहाँ से आया)? यह आनन्दघनजी कहते हैं।

मनडुं दुराराध्य तें वश आन्युं, ते आगमथी मति आनुं। समझ में आया?

पण प्रभु मारुं मनडुं ठेकाने लावुं तो साचुं करीने जानुं।

तुमने मन को स्थिर किया और परमात्मा हुए, यह आगम से मैंने तो जाना।

मनडुं दुराराध्य तें वश आन्युं, ते आगमथी मति आनुं।
आनंदघन प्रभु मारुं आनुं तो साचुं करीने रे जानुं, प्रभुजी।
कुंथुजिन मनडुं किम ही न बाजे।
जेम जेम जतन करीने राखुं तेम तेम अणगुं भागे ओ प्रभुजी,
मनडुं किम ही न बाजे।

महाराज! आपने मन वश किया लगता है-ऐसा आगम से जानता हूँ परन्तु मेरा मन स्थिर हो, तब जानूँ कि आपने मन वश किया लगता है। मेरा निर्णय किये बिना तुम्हारा निर्णय मैंने क्या किया? समझ में आया? इसी प्रकार पर की क्रमबद्धपर्याय होती है और मुझमें होती है—ऐसा निर्णय किये बिना कहाँ से होगा? समझ में आया?

भगवान अमृतचन्द्राचार्यदेव ने कहा कि **अथात्मनोऽकर्तृत्वं दृष्टान्तपुरस्सरमा-ख्याति**- आत्मा का अकर्तापना हम दृष्टान्त से सिद्ध करते हैं। उसमें यह क्रमबद्ध आ गया है। क्रमवर्ती तो पहले सिद्ध कर दिया है। वस्तु, क्रमवर्ती है, गुण अक्रमवर्ती है और पर्याय क्रमवर्ती है। यह तो गुण और पर्याय का कथन करने में आया परन्तु **अकर्तृत्वं आख्याति** जब ज्ञातादृष्टा हुआ, तब पर को और राग को तथा स्वभाव की पर्याय को करूँ—ऐसी बुद्धि ज्ञातादृष्टा को नहीं रहती। समझ

में आया ? यही आत्मसन्मुख का पुरुषार्थ है, इसका नाम क्रमबद्ध का तात्पर्य, प्रयत्न और फल है। आहाहा! बाहर से कूदे और बाहर में शरीर में (कुछ करे) तो पुरुषार्थ कहलाये (ऐसा मानता है)।

श्रोता : घर छोड़कर बाहर जाये....

पूज्य गुरुदेवश्री : किसने घर छोड़ा है। बाहर पड़े हैं, वे अन्दर में कहाँ घुस गये हैं ? आत्मा में घरबार, स्त्री-कुटुम्ब घुस गये हैं ? एक द्रव्य में दूसरा द्रव्य प्रवेश करता है ? एक पर्याय में दूसरे द्रव्य की पर्याय प्रवेश नहीं करती तो द्रव्य-गुण तो कहाँ से प्रवेश करे ? समझ में आया ? और एक गुण की पर्याय दूसरे द्रव्य की पर्याय में प्रवेश किये बिना इसके कार्य में परिवर्तन किस प्रकार कर सकती है ?

समयसार कर्ताकर्म अधिकार की १०३ गाथा है न ? **दव्वे सो अण्णम्हि दु ण संकमदि दव्वे।** द्रव्य जब अपनी पर्याय से पर में संक्रमण नहीं करता, पर में नहीं जाता तो पर का कार्य किस प्रकार कर सकता है ? किसे परिणमन करावे ? गुलाबचन्दजी ! आहाहा ! अरे ! भगवान ! तूने द्रव्य-गुण-पर्याय का निश्चय नहीं किया और निश्चय करे तो सम्यग्दर्शन हुए बिना नहीं रहे। आहाहा ! भगवान ने कहा है न ?

जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्स लयं॥८०॥ **(प्रवचनसार)**

भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव ज्ञान अधिकार की ८० गाथा में कहते हैं। देखो ! ८० आया, विशिष्टता तो देखो वहाँ ! प्रवचनसार की ८० गाथा। '**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्त-पज्जयत्तेहिं**' अरिहन्त के द्रव्य-गुण और पर्याय केवलज्ञान जो जाने और केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक को देखता है-ऐसा जाने '**सो जाणदि अप्पाणं**' ऐसा भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ८० गाथा प्रवचनसार में कहते हैं।

'**जो जाणदि अरहंतं दव्वत्तगुणत्तपज्जयत्तेहिं**' पर्याय से, केवलज्ञान की पर्याय, क्षायिकपर्याय तीन काल तीन लोक एक समय में देखती है। '**सो जाणदि अप्पाणं**' तो उसकी दृष्टि आत्मा पर जाती है कि अहो ! मेरी पर्याय में ऐसी पूर्ण पर्याय नहीं। भगवान की पर्याय में पूर्ण त्रिकाल जानते हैं, मेरी पर्याय में पूर्णता नहीं तो उन्हें पूर्णता कहाँ से आयी ? निज द्रव्यस्वभाव पर दृष्टि पड़ने से अपने में पूर्ण आत्मा भरा पड़ा है, केवलज्ञान की ऐसी अनन्त पर्यायें द्रव्य में पड़ी हैं। समझ में आया ? इस प्रकार अपने द्रव्यस्वभाव की दृष्टि करने से (मोह का क्षय होता है)।

'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं'-ऐसा है न ? 'तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं' है या नहीं ? तो तत्त्वार्थश्रद्धान में मोक्ष आया या नहीं ? जीव-अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा और मोक्ष— तो सात तत्त्व में मोक्ष की श्रद्धा आ गयी या नहीं ? तो मोक्ष क्या है ? केवलज्ञानस्वरूप। केवलज्ञान

की एक समय की पर्याय तीन काल-तीन लोक को बराबर जानती है। ऐसा जहाँ केवलज्ञान का निर्णय हुआ तो केवलज्ञान का, मोक्षतत्त्व का निर्णय किस प्रकार होता है? पर्याय के लक्ष्य से होता है? पर्याय की प्रतीति-पर की पर्याय की प्रतीति अपनी पर्याय में पर्याय के लक्ष्य से होती है? पर्याय तो अल्पज्ञ है और सर्वज्ञ मोक्षतत्त्व का निर्णय करना है। तो मोक्षतत्त्व की पर्याय का निर्णय पर्याय में स्वयं में होता है परन्तु पर्याय के आश्रय से नहीं होता। अमरचन्दभाई! आहाहा! अरे भगवान! यह तुम्हारा अन्तिम है न? हरख जमण (प्रीतिभोज) कहलाता है न? सवेरे किसी भाई ने प्रश्न किया कि हमारे को यह कुछ आया नहीं, भाई! किसने कहा था? तुम्हारे में से किसी ने कहा था। बराबर है, यथार्थ प्रश्न का काल था, हों! इतना स्पष्टीकरण आया नहीं था। बराबर है।

बात जरा विचारने की है, मनन करने की है। जब केवलज्ञान मोक्षतत्त्व है तो भगवान ने दो जगह कहा है कि सात तत्त्व की श्रद्धा करने से मोक्ष की श्रद्धा आ गयी। मोक्ष में केवलज्ञान आ गया। केवलज्ञान एक समय की पर्याय त्रिकाल (को) जानती है-ऐसा आ गया। दूसरी बात-अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, वह आत्मा को जाने, यह दूसरी बात। तो अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय में भी केवलज्ञान आ गया। जब उस केवलज्ञान का निर्णय करते हैं **जाणदि अप्पाणं** अन्दर में आत्मा पर दृष्टि पड़ती है, जिसमें द्रव्य में अनन्त केवलज्ञान पर्याय पड़ी है। ऐसे द्रव्य का आश्रय करने से मोक्षपर्याय की श्रद्धा, केवलज्ञानपर्याय की श्रद्धा होती है, तब ज्ञातादृष्टा होकर पर का अकर्ता होता है, इसका नाम पुरुषार्थ है, इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान है। समझ में आया? समझ में आया या नहीं? भाई! भाई ने प्रश्न बहुत अच्छा किया था। विषय तो अच्छा (और) जरा सूक्ष्म है। ऐ... सेठी! तुम्हारे जैसा आया। तुम्हारा बड़ा भाई है न! वह भी वंशमोर बारम्बार कहते हैं। बारम्बार समझाओ, तुम्हारा भाई ऐसा कहता है।

देखो! तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं है या नहीं? तो तत्त्वार्थ कितने? जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, संवर, निर्जरा, और मोक्ष; तो मोक्ष में केवलज्ञान तत्त्व आया या नहीं? मोक्ष का लक्षण केवलज्ञान है या मोक्ष का लक्षण मतिज्ञान है? पण्डितजी! यह हमारे पण्डितजी बैठे हैं। मोक्ष केवलज्ञानी होता है या मोक्ष मतिज्ञान में होता है? मोक्षतत्त्व अर्थात् केवलज्ञान तत्त्व। केवलज्ञान की एक समय की पर्याय का निर्णय करते हैं, सात तत्त्व में, हों! सात तत्त्व में, तो मोक्ष की पर्याय की श्रद्धा, पर्याय की श्रद्धा, पर्याय के आश्रय से नहीं होती। पर्याय की श्रद्धा, पर्याय के आश्रय से नहीं होती; पर्याय की श्रद्धा, द्रव्य के आश्रय से होती है, क्योंकि पर्याय एक समय की है और केवलज्ञान यहाँ नहीं है और केवलज्ञान का निर्णय करने जाता है-सर्वज्ञपर्याय, सर्वज्ञपर्याय सर्वज्ञस्वभाव का निर्णय करने जाता है तो एक समय की पर्याय में स्वयं को सर्वज्ञपना नहीं है। सर्वज्ञस्वभाव अन्दर में है। भगवान आत्मा में सर्वज्ञस्वभाव भरा है तो उसका आश्रय लेने से

सम्यग्दर्शन की पर्याय में केवलज्ञान की श्रद्धा आ जाती है। आहाहा! भारी सूक्ष्म! कहो, गोदिकाजी! समझ में आया या नहीं? उस व्यापार की अपेक्षा यह दूसरा व्यापार है। पन्ना, माणिक में धूल में भी कुछ नहीं है।

तत्त्वार्थश्रद्धानं सम्यग्दर्शनं हुआ, इसमें मोक्षतत्त्व आ गया, केवलज्ञान आ गया। केवलज्ञान की श्रद्धा करना (कहा) तो वर्तमान में केवलज्ञान तो स्वयं को है नहीं, केवलज्ञान की श्रद्धा किस प्रकार करना? अल्पज्ञान में अल्पज्ञान के आश्रय से केवलज्ञान की श्रद्धा किस प्रकार करे? केवलज्ञान की श्रद्धा जहाँ करने जाता है तो अपनी पर्याय में द्रव्य का आश्रय लेता है, तब केवलज्ञान की श्रद्धा होती है। आहाहा! इसमें पुरुषार्थ आ गया। भगवान! यह आ गया। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा सर्वज्ञस्वभाव। आत्मा न? आत्मा क्या? 'ज्ञ' स्वभाव दूसरी भाषा लें—आत्मा (अर्थात्) ज्ञ स्वभाव। आत्मा तो स्वभाववान हुआ, स्वभाववान। तो स्वभाव क्या? ज्ञ... ज्ञ स्वभाव, वह आत्मा, ज्ञ स्वभाव, वह आत्मा। ज्ञ अर्थात्? जानना। ज्ञ स्वभाव में अल्पज्ञता नहीं आयी, विपरीतता नहीं आयी। ज्ञ स्वभाव, वह आत्मा। इसका अर्थ कि सर्वज्ञ स्वभाव, वह आत्मा। समझ में आया? भाई! ये तो न्याय से मार्ग समझना पड़ेगा, इसमें कोई गड़बड़ करे, ऐसा यह मार्ग नहीं है। '....' सर्वार्थसिद्धि में कहा है। सर्वज्ञ का मार्ग न्याय से प्रतीत होता है। समझ में आया?

एक समय में केवलज्ञान की-सर्वज्ञ की प्रतीति करने जाता है तो केवलज्ञान की पर्याय अपने में है नहीं। अल्पज्ञान में केवलज्ञान की श्रद्धा करनी है। है केवलज्ञान, जगत में केवलज्ञान है। एक गुण की पूरी पर्याय की सत्ता जगत में है। उस सत्ता का स्वीकार अपनी पर्याय में पर्याय के आश्रय से नहीं होता, क्योंकि पर्याय में सर्वज्ञपना नहीं है। द्रव्य में सर्वज्ञपना है तो उसके आश्रय से पर्याय में सर्वज्ञ की श्रद्धा होती है। यह पुरुषार्थ आ गया, सम्यग्दर्शन हुआ। बराबर है? सेठी! ये सब वृद्ध हो गये। अब फिर युवाओं पर सब काम है न? युवाओं का काम है कि अब बराबर धर्म का न्याय पकड़कर रखना। ऐ... सेठी! आहाहा!

भगवान! वस्तु ऐसी चीज़ है न! तत्त्वार्थश्रद्धान करने जाये, मोक्ष की श्रद्धा करनी हो तो भी द्रव्य का आश्रय लेना पड़े। अरिहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय की श्रद्धा करे या अरिहन्त की पर्याय केवलज्ञान (स्वरूप है)। ८० गाथा। केवलज्ञान है तो केवलज्ञान की श्रद्धा करने के लिये भी द्रव्य का आश्रय लेना पड़ता है। सब बात किसी भी प्रकार से लो तो भगवान का आश्रय-आत्मा का आश्रय लिये बिना सम्यग्दर्शन नहीं होता। बस!

क्रमबद्ध में भी यह आया। जिस समय में जहाँ होता है, वैसा निर्णय किसमें होता है? किसमें से होता है? जिसमें होता है, उसमें होता है। परन्तु किसमें से होता है? द्रव्य में से। तो

द्रव्य का निर्णय करने जाता है तो मैं ज्ञायकभाव हूँ, शुद्धचिदानन्द हूँ—ऐसा निर्णय हुआ, उसका नाम पुरुषार्थ आया। गुलाबचन्दजी ! समझ में आया ? इस विषय की चर्चा करने की आवश्यकता है, हों ! बहुत गड़बड़ है। अभी तो सर्वज्ञ की श्रद्धा में ही विवाद है।

एक समय का ज्ञान तीन काल-तीन लोक न देखे, नियत है, ऐसा न देखे, अनियत ही देखे। अनियत का अर्थ क्या ? अनिश्चित का अर्थ क्या ? केवलज्ञान में कुछ अनिश्चित होता ही नहीं। वस्तु अनिश्चित होती ही नहीं। समझ में आया ? वस्तु की व्यवस्थित व्यवस्था को अवस्था कहते हैं। सामान्य द्रव्य और गुण, उसकी अवस्था विशेष। व्यवस्थित विशेष अवस्था की व्यवस्था होती है, उसे अवस्था कहते हैं। सामान्य में से व्यवस्थित विशेष अवस्था जिस समय में होनेवाली है, वही होती है, वह वस्तु सिद्ध करते हैं। समझ में आया ? सम्यक् एकान्त ही है। समझ में आया ? सामान्य में से विशेष (अवस्था) होती है। त्रिकाल सामान्य है, उसमें विशेष होता है या नहीं ? त्रिकाल वस्तु सामान्य है न ? पर्याय विशेष है।

श्रोता : आपने पहले कहा कि सामान्य में विशेष का अभाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो विशेष का अन्दर द्रव्य में अभाव है परन्तु पर्याय परिणमति है तो सामान्य के आश्रय से परिणमति है न ? एक समय की पर्याय उसमें है-ऐसा नहीं। पूरा द्रव्य अनन्त गुण का पिण्ड है। सूक्ष्म बात है।

सामान्य भाव और विशेष भाव (ऐसे) दो धर्म हैं। वस्तु के दो धर्म-एक विशेष पर्याय धर्म, एक सामान्य गुणरूप धर्म। सामान्य में विशेष हो तो सामान्य एकरूप नहीं रहता। विशेष में सामान्य आ जाये तो सामान्य नहीं रहता। विशेष में आ गया। यह तो 'आप्त मीमांसा' में कहा है। दो धर्म को सिद्ध करना है तो किसी की अपेक्षा नहीं है। विशेष, विशेष से है; सामान्य, सामान्य से है। फिर सामान्य किसका ? कि इस विशेष का। विशेष किसमें से उत्पन्न हुआ ? कि सामान्य में से। परन्तु हैं तो (धर्म)। विशेष, विशेष से है; सामान्य, (सामान्य से है)। दोनों निरपेक्ष हैं। आहाहा ! आप्तमीमांसा न्याय में यह लिया है। सब सिद्धान्त सर्वज्ञ के सिद्धान्त सन्तों ने कहे हैं। चारों ओर से एक ही बात सिद्ध होती है।

भगवान आत्मा विशेष वस्तुरूप परिणमता है, वह सामान्य का अंश है परन्तु वह पर्यायरूप अंश है। सामान्य अंश त्रिकाल ध्रुवरूप अंश है। समझ में आया ? सामान्य एकरूप है, उसमें चारभाव का अभाव है। सामान्य विशेष कहाँ घुस जाता है ? विशेष में सामान्य आता नहीं और सामान्य में विशेष आता नहीं। दो धर्म किस प्रकार सिद्ध होंगे ? बहुत सूक्ष्म बात, भाई ! ऐ... पण्डितजी ! यह तो चलता है, परन्तु वह रखकर यह लिया।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : समझना पड़ेगा यदि इसे हित करना हो तो। ऐसे का ऐसे मूढ़रूप से समझे बिना चले तो नहीं चलेगा। इसे सम्यग्दर्शन नहीं होगा। समझ में आया? मर जाये, यह तो सम्यग्दर्शन बिना चौरासी में गोते खाता है। मिथ्यात्व का नाश किये बिना त्याग करे, व्रत पाले, मर जायेगा, निगोद में जायेगा। आचार्य तो कहते हैं कि वस्त्र का एक धागा रखकर भी मुनिपना माने (उसे) नव तत्त्व की श्रद्धा में भूल है, निगोद में जायेगा। आता है या नहीं? भाई!

कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं कि वस्त्र का एक धागा रखकर, हम साधु हैं, मुनि हैं, तीन कषाय के अभावरूप मुनिपना है-ऐसा माने तो मिथ्यादृष्टि मूढ़ निगोद में जायेगा क्योंकि तत्त्वदृष्टि में अन्तर पड़ गया है। समझ में आया? तत्त्व में अन्तर पड़ गया। जिसकी छठे गुणस्थान की अकषाय परिणति इतनी हो कि जिसमें वस्त्र आदि लेने का विकल्प होता ही नहीं। उसे आस्रवतत्त्व का पता नहीं, संवर-निर्जरा का पता नहीं, संयोगतत्त्व कितना है, उसका पता नहीं, द्रव्य का पता नहीं-इस प्रकार नवतत्त्व की भूल होने से निगोद में जायेगा - ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

श्रोता : वस्त्र न रखे तो....

पूज्य गुरुदेवश्री : वस्त्र कौन रखता है? वस्त्र कहाँ है? मुनि रख नहीं सकते। मुनि तो अन्तर तीन कषाय का अभाव होकर स्वभाव के आश्रय से शुद्धपरिणति हो गयी है और उस शुद्धपरिणति के काल में विकल्प / आस्रव रहता है। कितना? आहार-पानी लेने का, बोलने का इतना। वस्त्र-पात्र लेने का विकल्प रहे और मुनिपना हो जाये—ऐसा तीन काल में नहीं है। समझ में आया? इस एक भूल में नवतत्त्व की भूल है। ऐसा नहीं कि लो, एक वस्त्र रखकर मुनिपना माने, (उसका) इतना दण्ड?

श्रोता : परपदार्थ से नुकसान होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : परपदार्थ नुकसान करता है - ऐसा किसने कहा? परन्तु उस समय में वस्त्र-पात्र लेने का राग है तो राग का इतना आस्रव है, वहाँ इतने संवर-निर्जरा, छठे गुणस्थान के योग्य संवर-निर्जरा नहीं होते। समझ में आया? फिर कहाँ का कहाँ चला गया?

ऐसी वस्तु की स्थिति है, उसमें कुछ भी गड़बड़ करे तो द्रव्य की, गुण की, संवर की, आस्रव की, अजीव की अत्यन्त विपरीत दृष्टि हो जाती है। समझ में आया? इसीलिए कहते हैं कि चार भाव केवलज्ञान तीन काल-तीन लोक को देखता है, वह पर्याय आश्रय करनेयोग्य नहीं है। केवली हैं, उन्हें तो कहाँ आश्रय (लेने का) है। यहाँ चार भाव से मुक्ति होती नहीं-ऐसा कहते हैं। अकेला ज्ञायकभाव / स्वभाव के आश्रय से मुक्ति होती है, उसमें क्रमबद्ध का तात्पर्य आ गया। पर्याय की दृष्टि ध्रुव पर ले तो क्रमबद्ध का तात्पर्य आ जाता है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

११

श्री नियमसार, गाथा-४१ प्रवचन नं. १७५
दिनांक ११-०९-१९६६

यह नियमसार शास्त्र चलता है। इसमें शुद्धभाव का अधिकार है। शुद्धभाव अर्थात् क्या ? है न इसमें ? जो आत्मा का त्रिकाली ध्रुव शुद्ध स्वभाव है, उसे यहाँ शुद्धभाव कहने में आता है। यह शुद्धभाव ध्रुव, वह मोक्ष का कारण है। अथवा यह शुद्ध ध्रुवस्वभाव, वही सम्यग्दर्शन का कारण, सम्यग्ज्ञान का कारण, सम्यक्चारित्र का कारण, केवलज्ञान का कारण यह है। यह गाथा ४१ में है, देखो!

चार विभावस्वभावों के स्वरूपकथन द्वारा पंचम भाव के स्वरूप का यह कथन है। यह तो इसमें बड़ी लड़ाई (करते हैं)। अपने पण्डितजी ने नीचे अर्थ किया है। कर्मों के क्षय से-कर्मों के क्षय में, कर्मों के क्षय के सद्भाव में। (व्यवहार से कर्मों के क्षय की अपेक्षा जीव के जिस भाव में आती है, वह क्षायिकभाव है।) क्षायिकभाव तो आत्मा अपनी पर्याय में प्रगट करता है। कब ? इन पण्डितजी को आने देना, रास्ता करना, रास्ता करना बराबर।

कर्मों के क्षय से जो भाव हो, वह क्षायिकभाव है। यहाँ सिद्ध क्या करना है ? कि आत्मा जो त्रिकाल शुद्ध ध्रुवस्वरूप है, वह मुक्ति का कारण है। आत्मा में क्षायिकभाव होता है, वह भी मुक्ति का कारण नहीं—ऐसा सिद्ध करना है; क्योंकि आत्मा में जो क्षायिकभाव होता है, वह पर्याय है, तो पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती; इस कारण से भी अब इसकी व्याख्या करते हुए निमित्त की अपेक्षा से व्याख्या की है। कर्म के निमित्त के अभाव की अपेक्षा आवे, उस भाव को क्षायिकभाव कहने में आता है, परन्तु वह क्षायिकभाव है एक समय की दशा। इससे यहाँ कहेंगे कि क्षायिकभाव आवरण संयुक्त है-ऐसा कहेंगे। बाद (आगे) के पन्न में कहेंगे—आवरण संयुक्त है अर्थात् इसमें कर्म के अभाव के निमित्त की अपेक्षा आती है, अथवा क्षायिकभाव हुआ हो, क्षायिक समकित आदि (हुए हों) तो उनके आश्रय से लक्ष्य करने जाए तो विकल्प उत्पन्न होता है। क्षायिक समकित हुआ हो, वह क्षायिक समकित होता है, द्रव्यस्वरूप के आश्रय से, परन्तु हुआ हो, उसका लक्ष्य और आश्रय करने जाए, वहाँ विकल्प-राग होता है; इसलिए उसे-क्षायिकभाव को-आवरणवाला कहने में आता है। गजब बात, भाई! समझ में आया ?

कर्मों के क्षयोपशम से जो भाव हो, वह क्षायोपशमिकभाव है। अपने पुरुषार्थ से क्षयोपशम

दशा प्रगट हो, तब उसमें कर्म के क्षयोपशम की सद्भाव की अस्ति न हो इतनी अपेक्षा से कर्म के क्षयोपशम से क्षयोपशम हुआ-ऐसा कहने में आता है। यह क्षयोपशमभाव भी मुक्ति का कारण नहीं है। ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। समझ में आया?

कर्मों के उदय से जो भाव हो, वह औदयिकभाव है। कर्म के निमित्त जिसमें पड़े और विकार आत्मा के तत्त्व में होता है-दया, दान, व्रत, भक्ति आदि ये परिणाम भी मुक्ति का कारण नहीं है। **कर्मों के उपशम से जो भाव हो, वह औपशमिकभाव है।** वह भी मुक्ति का कारण नहीं है। **सकल कर्मोपाधि से विमुक्त, ऐसा परिणाम से जो भाव हो...** परिणाम अर्थात् त्रिकाली स्वरूप, ऐसा। परिणाम अर्थात् पर्याय नहीं। स्वतः स्वभाव से भाव हो। यहाँ सिद्ध यह करना है। उपशम समकित और उपशम चारित्र आत्मा में आत्मा के अंतर अवलम्बन से शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा के अवलम्बन से प्रगट हुई-उपशम समकितदशा, उपशम चारित्रदशा, वह मुक्ति का कारण नहीं है।

श्रोता : बारहवें में तो मुक्ति का कारण है -ऐसा आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, यह तो व्यवहार से कहा है; निश्चय से है ही नहीं। धन्नालालजी! गजब बात, भाई! पूरा परमात्मा स्वयं निजस्वरूप से है न! वही केवलज्ञान का कारण, मोक्ष का कारण। मोक्ष का मार्ग, मोक्ष का कारण कहा है, वह भी व्यवहार में से कहा है। क्योंकि वह मोक्षमार्ग की पर्याय है, वह द्रव्य से उत्पन्न हुई है परन्तु फिर उसका व्यय होकर मोक्ष होता है। व्यय होकर अर्थात् अभाव होकर होता है, उस अभाव में से यह भाव आता नहीं। यह भाव द्रव्य में से आता है, द्रव्य के आश्रय से भाव आता है।

अरे! अभी व्यवहार समकित के झगड़े (करते हैं)। अरे! गजब बात भाई! पंचाध्यायी (में) कहते हैं कि व्यवहार और निश्चय—ऐसे समकित के दो भेद पाड़ते हैं? सराग और वीतराग दो भेद पाड़ते हैं? और चौथे-पाँचवें (गुणस्थान में) सराग समकिती को ज्ञानचेतना नहीं है - ऐसा तू कहता है। अरे! जब वीतराग समकित होता है, तब उसे ज्ञान चेतना होती है। तेरे शास्त्र का पठन का सब क्लेश तूने किया - ऐसा कहा। पण्डितजी! देखा न उसमें? समझ में आया? सब शास्त्र पढ़े, तूने व्यर्थ क्लेश किया है।

श्रोता : इस शास्त्र का अर्थ कैसे करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : तुझे भान ही नहीं। सम्यग्दर्शन अर्थात् आत्मा के आनन्द की ज्ञानचेतना प्रगट हो साथ में, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। स्वसंवेदन प्रत्यक्ष अनुभव, प्रत्यक्ष आनन्द का सद्भाव प्रत्यक्ष-ऐसे भावसहित सम्यग्दर्शन प्रगट हो, उसे सम्यग्दर्शन कहते हैं। वह निश्चय सम्यग्दर्शन एक ही प्रकार है, व्यवहार और निश्चय के भेद नहीं। यह बाद में लिया है कि भाई! स्थितिकृत भेद है। पण्डितजी सबेरे बोले थे न? स्थितिकृत दो भेद हैं परन्तु अनुभाग कृत भेद

है नहीं, अनुभाग-रस में भेद नहीं। तीनों ही-सम्यक् उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक भगवान आत्मा के अवलम्बन से हुए हैं। उनकी स्थिति भले थोड़ी हो, किसी की किसी को विशेष हो। उपशम की अन्तर्मुहूर्त की, क्षायिक की सादि-अनन्त की, क्षयोपशम की छियासठ सागरोपम की, परन्तु वर्तमान उसके अनुभव और ध्येय में अन्तर नहीं है। पंचाध्यायी में तो बहुत स्पष्ट किया है। एक को भी मानना नहीं, सबको खोटा... सबेरे धवल में आया नहीं? एकत्व समकित का एक ही प्रकार है, दो प्रकार नहीं। देवीलालजी! कौन जाने क्या करे और सब हाँ करते हैं वापस।

परन्तु यह सत्य, यह वस्तु चिदानन्द प्रभु पूर्ण आनन्द का नाथ, जिसमें से प्रगट हुई दशा में अनन्त गुण का अंश साथ लेकर प्रगट होता है, अकेली प्रतीति मात्र नहीं। उसमें स्पष्टीकरण किया है, भाई! कितने ही पंचाध्यायी में ऐसा कहते हैं कि चौथे गुणस्थान में प्रतीति मात्र होती है। नहीं, स्वसंवेदन प्रत्यक्ष सहित होता है। बहुत स्पष्टीकरण किया है। पंचाध्यायी में तो यह बात तर्क से, लॉजिक से सिद्ध की है। लोगों को वस्तु की खबर नहीं और ये शास्त्र अपनी दृष्टि से कल्पना से पढ़ते हैं।

श्रोता : धवल के विपरीत अर्थ करते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : धवल के उल्टे अर्थ (करते हैं)। शास्त्र के उल्टे अर्थ (करते हैं)। यह पंचाध्यायीकार राजमलजी खोटे, टोडरमलजी खोटे मोक्षमार्ग दो माना इसलिए ठीक, भाई! डाला है। आहाहा!

श्रोता : राजमलजी तो महा....

पूज्य गुरुदेवश्री : अरे! कितनी उनकी टीका... कलश-टीका तो देखो! कितनी वस्तु है और इससे भाई ने कहा बनारसीदास (ने कहा) 'पाण्डे राजमल जिनधर्मी समयसार नाटक का मर्मी' ऐसी बात है, वस्तुस्थिति ऐसी है अन्दर। अमरचन्दभाई! आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि वह भाव उपशम और क्षायिक, उपशम चारित्र आत्मा की निर्मल पर्याय है परन्तु वह निर्मल पर्याय मुक्ति का कारण नहीं है; मुक्ति का कारण तो ध्रुव शुद्धभाव, द्रव्यस्वभाव त्रिकाल, वह मुक्ति का कारण है। आहाहा! समझ में आया? वस्तु है, ऐसा सिद्ध करते हैं। पर्याय में-अवस्था में उपशम समकित होता है, उपशम चारित्र पर्याय है परन्तु वह मुक्ति का कारण नहीं है; मुक्ति का कारण तो ध्रुवस्वभाव त्रिकाल है। समझ में आया?

पश्चात् क्षायिकभाव के नौ भेद। क्षायिक समकित। क्षायिक समकित आत्मा की पर्याय में द्रव्य के अवलम्बन से होता है, हों! बाहर से बात की है कि भाई! वहाँ श्रुतकेवली और तीर्थंकर के समीप में होता है परन्तु वह तो समीप में होता है परन्तु होता है अपने समीप से। वह क्षायिक समकित की पर्याय भले आत्मा में हो परन्तु वह मुक्ति का कारण नहीं है। क्षायिक

समकित मुक्ति का कारण नहीं है; मुक्ति का कारण तो द्रव्य-वस्तु है। ध्रुवस्वभाव में एकाग्र होने से केवलज्ञान प्राप्त करते हैं। क्षायिक समकित में एकाग्र होने से क्षायिक समकित में केवलज्ञान पर्याय पड़ी है ? उसमें पर्याय की ना की है। क्षायिक समकित की पर्याय मोक्ष का कारण नहीं है। यह थोड़ा अधूरा बाकी है न ? थोड़ा बहुत ले लेते हैं। और फिर यह विवाद उठाया न सब ?

यह तो भाई ! वह गाथा आती है न ? ज्ञान अधिकार में जयसेनाचार्य की (टीका) कि शुद्ध द्रव्यार्थिकनय को, शुद्ध उपयोग को मिलाकर भी विषय करे, वह तो अपेक्षा, अभेद से (कहा है), उस पर्याय को अभेद किया है, उसका बतलाना है परन्तु भेदनय से अलग पर्याय है, अभेदनय से अभेद है—ऐसी दोनों बातें की हैं, तथापि शुद्धपर्याय को अभेद किया न ! अशुद्धपर्याय सब एकत्रित होकर द्रव्य है-ऐसा नहीं कहा। समझ में आया ? यह शब्द तो पहले कहा था। प्रवचनसार है न ? प्रवचनसार की यहाँ तो एक-एक शब्द की सब खबर है या नहीं ? क्या शब्द है ? (१८१) गाथा है। लो ! देखो ! टीका में है, हों !

'**रागादिविकल्पोपाधिरहितसमाधिलक्षणशुद्धोपयोगोमुक्तिकारणं भणितः स तु शुद्धात्मद्रव्यलक्षणाद्धेयभूताच्छुद्धपारिणामिकभावादभेदप्रधानद्रव्यार्थिक-नयेनाभिन्नोऽपि**' इतना शब्द पड़ा है कि शुद्ध स्वरूप है, ध्रुव ज्ञायक है, उसके आश्रय से शुद्ध उपयोग प्रगट हुआ है, वह भेदनय से भिन्न है। देखो '**भेदप्रधानपर्यायार्थिकनयेन भिन्नः**' परन्तु अभेदनय से भिन्न संवर-निर्जरा की शुद्धता प्रगटी न, (उसे) अभेद कही है परन्तु सब पर्याय अभेद है-ऐसा नहीं। समझ में आया ? विवाद शास्त्र का... किस अपेक्षा से कथन है, उसे समझे नहीं, उसमें विवाद।

यहाँ तो अपेक्षा से कहा है, ८९ वीं गाथा है। दूसरे अध्याय की ८९ वीं गाथा है, उसमें यह कहा है कि '**शुद्धोपयोगोअभेदप्रधानद्रव्यार्थिकनयेनाभिन्नो**' देखा ? क्या (कहा) '**द्रव्यार्थिक-नयेनाभिन्नो**' किस अपेक्षा से ? वस्तु शुद्ध चैतन्य, वही द्रव्य है परन्तु उसके आश्रय से जो शुद्ध उपयोग प्रगट हुआ, वह अभेदनय से उसे द्रव्यार्थिक का विषय कहा, द्रव्यार्थिकस्वरूप कहा और भेद प्रधाननय से वही शुद्ध उपयोग भिन्न (कहा) परन्तु उसमें अकेली सब पर्याय नहीं, वापस सब पर्याय नहीं।

श्रोता : वर्तमान विकारी पर्याय, वह तो द्रव्य में है न।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। एक अपेक्षा ली है इतना। ज्ञानप्रधान अधिकार है न यह ? ये ज्ञेयप्रधान का अधिकार है न ? यह ज्ञेय अधिकार है। यह वस्तु शुद्ध ध्रुव चैतन्य है, उसका उपयोग किया, शुद्ध उपयोग, उस शुद्ध उपयोगरूप को अभिन्न गिनकर द्रव्यार्थिकनय कहा। सब पर्याय नहीं। सब पर्याय, अशुद्ध की पर्याय-ऐसी सब पर्याय नहीं।

श्रोता : वर्तमान की या भूत-भविष्य की।

पूज्य गुरुदेवश्री : वर्तमान की। भूत-भविष्य की कहाँ थी ? वे तो अन्दर घुस गयी है, यहाँ कहाँ थी ? यह तो स्पष्टता (की है) । लोगों को विवाद उठता है न ? बापू ! यह विवाद ऐसे... यह तो सर्वज्ञ से सिद्ध हुई वस्तु है। यह तीन काल-तीन लोक में बदले नहीं, ऐसी चीज़ है। यह कल्पना से अर्थ करते हैं, इससे कहीं वस्तु दूसरी हो जाये-ऐसा है नहीं। भगवान आत्मा ! यहाँ तो कहते हैं न ! क्षायिक समकित मुक्ति का कारण नहीं है, केवलज्ञान का कारण नहीं है।

श्रोता : शुद्ध उपयोग मुक्ति का कारण है-ऐसा कहा है !

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो द्रव्यार्थिकनय से अभेद करके कथन किया है, द्रव्यार्थिकनय कहा है इसलिए। समझ में आया ? यह तो मुक्ति का कारण साथ मिलाकर कहा है, वास्तव में वह है नहीं। परन्तु बात तो स्पष्ट करे। यह तो अब बहुत वर्षों से सब बातें होती हैं। यह कहाँ यहाँ नयी है ? समझ में आया ? यथाख्यातचारित्र मुक्ति का कारण नहीं है। आहाहा ! नरसिंहभाई ! क्या पढ़ा है या नहीं तुमने ? यह नियमसार है या नहीं घर में ? कहो, समझ में आया इसमें ?

क्षायिक के भेद में से एक यथाख्यातचारित्र भेद है। आत्मा की पर्याय में जैसा स्वरूप है, वैसा शुद्धरूप से परिणमन यथाख्यात हो गया, परन्तु वह पर्याय है, अवस्था है। वह केवलज्ञान का कारण नहीं है। आहाहा ! एक ओर कहे मोक्षमार्ग—सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, मोक्ष का कारण। एक ओर कहे कि मोक्षमार्ग भी मोक्ष का कारण नहीं।

श्रोता : परमपारिणामिकभाव वह मोक्ष का कारण नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; परमपारिणामिक मोक्ष का कारण (नहीं) । किस अपेक्षा से ? परमपारिणामिक तो मोक्ष का कारण है। परन्तु मोक्ष का कारण अर्थात् ध्यान की जो पर्याय है और यह पारिणामिक दोनों एक नहीं हैं - ऐसा कहकर कहा है। जो ध्यान की पर्याय है, वह और पारिणामिकभाव एक नहीं है। यदि ध्यान की पर्याय और पारिणामिक एक हो तो ध्यान की पर्याय नाश हो जाये तो पारिणामिकभाव का नाश हो जाये। समयसार में आया, द्रव्यसंग्रह में है। इसमें भी कहा है। इसमें ही कहा है। यह पढ़ा इसमें भी कहा है। इसमें ही है, खबर है। ८९ गाथा में यहाँ ही है। इसमें भी कहा है देखो ! '**ज्ञायते शुद्धपारिणामिकभावो ध्येयरूपो भवति, ध्यानभावनारूपो न भवति।**' समझे न ? ध्येय अकेला ध्रुवस्वरूप। ध्यान की पर्याय जो है, वह पारिणामिकभावस्वरूप नहीं है, इसलिए ध्यान की स्वरूप की पर्याय, वह पारिणामिकभाव में यदि अभेद मान लो तो ध्यान पर्याय का नाश होने पर पारिणामिक का नाश हो जायेगा। आहाहा ! समझ में आया ? यह सादी भाषा है, हों ! गुजराती बहुत ऐसी सूक्ष्म नहीं है। समझे न ? हिन्दी वाले ख्याल रखें (तो समझ में आये ऐसा है)।

श्रोता : भाषा तो सादी है परन्तु भाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : भाव में भी इसमें... भाव यह चैतन्य ध्रुवज्ञायक प्रभु, इसके अतिरिक्त की एक समय की पर्याय क्षायिक हो तो भी उस पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती; इसलिए वह पर्याय मुक्ति का कारण नहीं है। अब इसमें सादी भाषा है। इसमें कहीं कोई बहुत संस्कृत, व्याकरण और बहुत पढ़ा हो तो यह समझ में आये, ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! समझ में आया?

केवलज्ञान, लो! यह क्षायिकभाव की पर्याय है, क्षायिकभाव की पर्याय है, वह भी मुक्ति का कारण नहीं है क्योंकि केवलज्ञान स्वयं को नहीं है। किसी को है, उसका लक्ष्य करने जाये तो राग होता है। अपने में नहीं और जहाँ ऐसा होगा, ऐसा होगा—ऐसे विकल्प करे तो यह राग उत्पन्न होता है। समझ में आया? केवलदर्शन, वह पर्याय है; इसलिए मुक्ति का कारण नहीं है। आहाहा!

तथा अन्तरायकर्म के क्षयजनित दान,.... दान। आत्मा के स्वरूप का दान देता है न? स्वयं-स्वयं का दान दे, हों! पर की दान की बात नहीं। स्वरूप का दान स्वयं दे, वह पर्याय है। वह पर्याय मुक्ति का कारण नहीं है। स्वरूपलाभ-अपने स्वरूप की प्राप्ति-लाभ पर्याय में (हो), वह मुक्ति का कारण नहीं है। मुक्ति का कारण परमपारिणामिकभाव है। यह शुद्धभाव कहा है न ऊपर? शुद्धभाव कहो, शुद्धजीवास्तिकाय कहो, ज्ञायकभाव कहो, ध्रुवभाव कहो, एकरूप त्रिकाल चैतन्यस्वभाव कहो, कारणजीव कहो, कारणपरमात्मा कहो। समझ में आया? यह सब इसके गीत हैं।

भोग,... अपने अनुभव का पर्याय में भोग। **उपभोग,....** बारम्बार पर्याय का भोग। **और वीर्य।** अपने स्वरूप की पूर्ण पर्याय को रचनेवाला वीर्यपर्याय। यह पर्याय है, वह भी मुक्ति का कारण नहीं है, द्रव्य त्रिकाल है, वह मुक्ति का कारण है। आहाहा! समझ में आया?

क्षायोपशमिकभाव के अठारह भेद इस प्रकार हैं—मतिज्ञान,... क्षयोपशमभाव से होता है, वह मुक्ति का कारण नहीं है। वह आवरण का कारण है-ऐसा कहेंगे। यहाँ फिर कहेंगे। चार भाव आवरण संयुक्त होने से मुक्ति का कारण नहीं है, इस ओर ८५ में कहेंगे। किस अपेक्षा से-ऐसा जानना चाहिए या नहीं? **श्रुतज्ञान...** मुक्ति का कारण नहीं है, आवरण का कारण है।

श्रोता : केवलज्ञान नहीं तो क्या करें?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो नहीं, और यह तो है अवश्य न? मतिश्रुतज्ञान दोनों तो साधकजीव को होते हैं, तथापि उनका लक्ष्य करने जाये, उसका आश्रय करने जाये तो विकल्प उत्पन्न होते हैं; इसलिए वे मुक्ति का कारण नहीं है, इसलिए वे आवरण का कारण हैं। मुक्ति का कारण त्रिकाल भगवान सच्चिदानन्द प्रभु, सच्चिदानन्द सत् सत् शाश्वत् ध्रुव ज्ञान और आनन्द का पिण्ड प्रभु, वही मुक्ति का कारण है। जिसमें ऐसी मुक्ति की पर्यायें अनन्त पड़ी हैं, वे क्रम से उसमें से निकलती हैं। कहो, केशरीचन्दजी!

श्रोता : तो लक्ष्य किसका करना?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्य का लक्ष्य करना, अन्दर में अन्तर्वस्तु का लक्ष्य करना-ऐसा कहते हैं।

श्रोता : लक्ष्य करे कौन?

पूज्य गुरुदेवश्री : आत्मा। कौन करे? पर्याय लक्ष्य करे, पर्याय लक्ष्य करे, परन्तु वह पर्याय आश्रय करनेयोग्य नहीं; द्रव्य आश्रय करनेयोग्य है। आहाहा! लक्ष्य करनेवाली पर्याय लक्ष्य करनेयोग्य नहीं है। लक्ष्य करनेयोग्य द्रव्य है परन्तु लक्ष्य करती है पर्याय। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

यह तो ऐसा परमात्मा पूर्ण प्रभु पड़ा है न! उसे ज्ञेयरूप से-ध्येयरूप से ध्यान में, लक्ष्य में न ले, तब तक उसे नयी पर्याय धर्म की प्रगट नहीं होती और हुई हो तो भी उसमें से नयी प्रगट नहीं होती। अन्तर में एकाकार दृष्टि दे, तब नयी धर्म पर्याय बढ़ती है, क्षयोपशम में से क्षायिक होती है, क्षयोपशम समकित में से क्षायिक होती है, वह कहीं भगवान के लक्ष्य से नहीं होता तथा क्षयोपशम के लक्ष्य से नहीं होता, वह अन्तर में एकाग्र होने पर क्षायिक समकित होता है। आहाहा! गजब बात भाई! व्यवहार के कथन इतने होते हैं न इसलिए... उपादान-निमित्त में आया है, क्षायिक समकित आदि भगवान के समीप होते हैं।

श्रोता : इन्कार किया है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। सुन तो सही। उनके समीप हो तो सबको होना चाहिए। अपने पुरुषार्थ से होता है। ४७ दोहे बहुत अच्छे हैं, भैया भगवतीदास (द्वारा रचित हैं)। उनके अर्थ भी विपरीत करते हैं। अर र! ४७ दोहों की निमित्त की जो युक्तियाँ हैं न? वे कहते हैं वे सच्ची। उपादानयुक्ति खोटी। परन्तु इस उपादान को सिद्ध करने के लिये तो निमित्त की युक्ति मिथ्या करने को लिखा है। अजितकुमार ने जैनगजट में लिखा था, उनकी निमित्त की दलील बराबर है, परन्तु उपादान की ऊटपटांग है। भगवान! तू भी... भैया भगवतीदास ने तो उपादान का कार्य सिद्ध हो, तब निमित्त होता है, निमित्त करता नहीं, इसके लिये दोहे रचे हैं। जबकि ये कहते हैं कि निमित्त की दलील बराबर है, तब उपादान की दलील ऊटपटांग है। ठीक, भाई! कोई भी पूछनेवाला भी नहीं होता। कोई सेठ या ये पण्डित भी (पूछते नहीं कि) तुम यह क्या करते हो? यह किसे मिथ्या सिद्ध करते हो? ऐसा कहना पड़े या नहीं? क्या करना? ऐ...! ये बड़े पण्डित बैठे हैं। ये कहते हैं अब मुझे मेरा करना है, किसी का नहीं। कहो, समझ में आया इसमें?

श्रुतज्ञान, श्रुतज्ञान चौदह पूर्व का ज्ञान प्रगट हुआ हो। एक समय में बारह अंग का ज्ञान (प्रगट हुआ हो), वह मुक्ति का कारण नहीं है। भावज्ञान, हों! क्षयोपशमभाव, स्व संवेदन प्रत्यक्ष

-ज्ञान, समाधिवाला ज्ञान, मुक्ति का कारण नहीं है। वह पर्याय है। त्रिकाल भगवान शुद्धभाव त्रिकाल निरुपाधि निरावरणभाव, त्रिकाल एकरूप स्वभावभाव भगवान, वही मुक्ति का कारण है।

यहाँ तो कहे, बारह अंग का उघाड़ भाव श्रुतज्ञान वह आवरण का कारण है। ऐ..ई..! मार डाले न वहाँ! भावश्रुतज्ञान आवरण का कारण! भाईसाहेब क्या कहते हो तुम यह? भाई! पर्याय के लक्ष्य से राग होता है और पर्याय में-उघाड़ में कर्म के निमित्त का अभाव था, यह अपेक्षा लेकर वस्तु के स्वरूप में द्रव्य का आश्रय करे तो उसे श्रुतज्ञान की वृद्धि होती है, केवलज्ञान की उत्पत्ति होती है परन्तु वह श्रुतज्ञान के लक्ष्य से नहीं होता। इस लक्ष्य को बदलने के लिये पूरी बात करते हैं।

अवधिज्ञान,... लो! अवधिज्ञान। ऐसे नरक-स्वर्ग अन्दर सम्यग्दृष्टि अवधि से जाने, हों! वह अवधिज्ञान मुक्ति का कारण नहीं है। समझ में आया? पर्याय है। **मनःपर्ययज्ञान...** मन के भाव को जाने। (वह) मोक्ष का कारण नहीं है। ये चार ज्ञान क्षयोपशमभाव से है, चार क्षयोपशमभाव से।

श्रोता : मन:पर्ययज्ञान हो तो केवलज्ञान होता है?

पूज्य गुरुदेवश्री : उससे होता है? द्रव्य से होता है—ऐसा कह न कि भाई! मन:पर्ययज्ञान का जो विपुलमति ऐसा आता है न? विपुलमतिवाले को तो केवलज्ञान होता है। आता है न? ऋजुमति और विपुलमति। मन:पर्ययज्ञान के दो भेद। मुनि को ऋजुमतिज्ञान होता है और विपुलमति (होता है) परन्तु जिसे विपुलमति होता है, उसे केवलज्ञान होता है परन्तु विपुलमति ज्ञान से केवलज्ञान नहीं होता। समझे न?

परमअवधिज्ञान, लो! भाई! लो, परमअवधि और सर्वावधिज्ञान हो, उसे उस भव में केवलज्ञान होता है—ऐसा शास्त्र में है, परन्तु उस परमअवधि और सर्वावधि की पर्याय में से केवलज्ञान नहीं होता। आहाहा! समझ में आया? आता है या नहीं शास्त्र में? जिस भव में जिस जीव को परमअवधि होता है, वह जीव उस भव में मोक्ष जाता है। शास्त्र में लेख है परन्तु उसका अर्थ कि उस पर्यायवाले की पुरुषार्थ की उग्रता स्वभाव में हुई, द्रव्य के आश्रय से केवलज्ञान उस भव में लेगा। परमअवधि हुआ, इसलिए केवलज्ञान उसके आश्रय से होगा - ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो निमित्त ऐसा होता है, तब उसे पूर्ण उग्रता होने का काल है परन्तु उस द्रव्य में से केवलज्ञान होगा। पाठ ऐसे आते हैं, लो!

कुमतिज्ञान,... लो! यह तो ठीक, अज्ञान है न! **कुश्रुतज्ञान और विभंगज्ञान, ऐसे भेदों के कारण अज्ञान तीन; चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन और अवधिदर्शन, ऐसे भेदों के कारण दर्शन तीन;...** ये भी कोई मुक्ति का कारण नहीं है। अब **काललब्धि...** चलो... इसका विवाद। जरा इससे लिया, नहीं तो लेना है अन्तिम अधिकार। काललब्धि अर्थात् क्षायोपशमिकभाव। यहाँ काललब्धि की

व्याख्या पहले पाँच ली है न ? देशनालब्धि और पाँच वे नहीं। यहाँ काल अर्थात् क्षयोपशमिकभाव लेना। **करणलब्धि,...** अन्दर में करणलब्धि भी क्षयोपशमभाव से है, हों! यहाँ क्षयोपशमभाव कहना है। अन्दर में उघाड़ होता है, काललब्धि क्षयोपशम, उसे काललब्धि कहा है परन्तु वह क्षयोपशमभाव है। क्षयोपशमभाव के कारण मुक्ति नहीं है।

श्रोता : काललब्धि कालस्वरूप....

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ क्षयोपशमभाव को काललब्धि कहा है। पाँच लब्धि है न ? इस काललब्धि के अर्थ जो पाँच भाव हैं न ? क्षयोपशमलब्धि आदि, उन्हें यहाँ क्षयोपशम की जगह काललब्धि लिया है, बस! ऐसा। क्षयोपशम के काल की लब्धि यह। वास्तव में तो यह मोक्ष की लब्धि जो क्षयोपशमभाव से प्रगटी है, उसे यहाँ काललब्धिरूप से कहा है। जहाँ क्षयोपशम कहा, उसे यहाँ काललब्धि कहा है। पाँच में क्षयोपशमलब्धि कही, उसे यहाँ काललब्धि कहा है। यह पहले अपने आ गया है। स्वकाल में होता है, परन्तु यह काललब्धि स्वकाल में हो, वह मुक्ति का कारण नहीं है; मुक्ति का कारण द्रव्य है। ये पाँच बोल अपने पीछे आ गये हैं। आवश्यक में आ गये हैं। वे आ गये। अपने तब अर्थ किया था।

करणलब्धि,... स्वरूप का अनुभव। यह एकाग्र हो, इससे-करणलब्धि से केवलज्ञान नहीं होता। कहो, समझ में आया? करणलब्धि से वास्तव में तो सम्यग्दर्शन भी नहीं होता। आहाहा! गोम्मटसार कहता है कि करणलब्धि हो और सम्यग्दर्शन हो परन्तु यह तो पर्याय के नय की बात की है, उस पर्याय के आश्रय से सम्यक्त्व नहीं होता। करणलब्धि के परिणाम का व्यय होकर नया हो। द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! गजब बात भाई!

एक ओर गोम्मटसार कहे काललब्धि हो, उसे समकित (होता है)। अपूर्व (करण), अनिवृत्तिकरण, अध:करण ये हों, उसे समकित होता है। यह तो पर्याय ऐसी होती है, फिर ऐसी पर्याय होती है, वह पर्याय है, इसलिए उसके कारण ऐसी पर्याय होती है - ऐसा भी नहीं है। आहाहा! समझ में आया? पूर्व की पर्याय ऐसी थी, इसलिए ऐसी पर्याय बाद की हुई, बलजबरी होना चाहिए, ऐसा नहीं है। बड़ा दोष लिया है। विद्वत्परिषद कैसा कहलाता है ? आत्मावलोकन! आत्मावलोकन में दीपचन्दजी ने यह बात बहुत ली है। साधक-बाधक का अर्थ तुम ऐसा करोगे कि पूर्व की ऐसी पर्याय हो, इसलिए इसकी पर्याय से वह पर्याय होती ही है, उसके कारण होती है, ऐसा नहीं है। पूर्व में ऐसी पर्याय हो तो बाद में ऐसी हो—ऐसा करके साधक और साध्य (कहा है)। पूर्व की पर्याय साधक और साध्य कहा है। परन्तु तुम ऐसा लोगे कि यह पर्याय है, इसलिए वह पर्याय होती है (तो) अनर्थ हो जायेगा, ऐसा लिखा है, हों! आत्मावलोकन में दीपचन्दजी ने (लिखा है) ओहोहो! ये लोग तो... दीपचन्दजी, ये सब टोडरमलजी... आहाहा! बनारसीदासजी, राजमलजी आदि पूर्व के पण्डितों ने बहुत काम किया। समझ में आया? अनर्थ होगा-ऐसा कहा

है। क्या कहा ? यह पूर्व की (पर्याय) जिसे हमने साधक कहा, उस साधक से साध्य हो, वह साधक आवे तो उससे साध्य हो-ऐसा नहीं होता। मात्र पूर्व में अवस्था कौन थी, उसे साधक कहा है। बाद की अवस्था उससे होती है, वह थी, इसलिए होती है - ऐसा नहीं है। इतनी पराधीन पर्याय नहीं है। आहाहा! वह है या नहीं ? आत्मावलोकन कहाँ है ? लाओ तो सही अब, इस समय तो होना चाहिए न। समझ में आया ?

यह करणलब्धि मुक्ति का कारण नहीं है। यह करणलब्धि समकित का भी कारण नहीं है। आहाहा! गोम्मटसार में कहते हैं काललब्धि हो उसे समकित होता है। परन्तु वह तो पूर्व में पर्याय हो पश्चात् यह हो, इस अपेक्षा से कहा है। समझ में आया ? गजब बात! यह व्यवहार कारणकार्य है। निश्चयकारण तो द्रव्य कारणपरमात्मा स्वयं है। कारण प्रभु त्रिकाल, वह पर्याय का कारण है। समझ में आया ? आत्मावलोकन में है, दीपचन्दजी ने बहुत सरस बात की है। उन लोगों ने तो चिद्विलास आदि बनाये हैं। ओहोहो! शास्त्र के भावों को ही रखा है, घर की कोई बात नहीं। भवभीरु! आत्मा का ज्ञान और एक-एक अक्षर में किसी भी शास्त्र की परम्परा टूटे नहीं, ऐसी शैली से रखी है परन्तु अब निर्मान होकर जरा पढ़े या विचारे तो हो। हम बहुत जानते हैं, इसलिए उसका क्या ? वह आत्मावलोकन कहाँ है ?

यह **उपदेशलब्धि...** अर्थात् देशना। देशनालब्धि मुक्ति का कारण नहीं है। कहाँ है ? निकालो न वह। यह **उपशमलब्धि...** अर्थात् विशुद्धि, कषाय की मन्दता, वह मुक्ति का कारण नहीं है। आहाहा! यहाँ तो अभी दयाभाव को मुक्ति का कारण कहते हैं, भाई! गजब करते हैं। लो! साधक-साध्यभाव, जो साधे वह साधकभाव। ***जो भाव प्रवर्ते बिना अन्य-बाद का (उत्तर) भाव न प्रवर्ते, जब वही (पूर्व) भाव के प्रवर्तन का काल आवे, वह (पूर्व) भाव प्रवर्ता हो तब तो वह, उत्तरभाव का प्रवर्तना अवश्य साधता है, अन्य भाव प्रवर्ते वह (उत्तर) भाव सधता नहीं।*** दूसरा भाव हो, वह नहीं सधता इतना बात। यह भाव हो तो दूसरा भाव फिर आता है।

और कोई अज्ञानी ऐसा जान लेगा कि इस उत्तरभाव को यह (पूर्वभाव) अपने बल से प्रवर्ताता है... पूर्व की पर्याय, बाद की पर्याय को साध्य कही, पूर्व की पर्याय को साधक कही तो कोई अज्ञानी ऐसा कहे कि ***अपने बल से प्रवर्ताता है-यह (पूर्व) भाव जोरावरी से परिणमाता है, इस प्रकार साधकभाव माने तो वह तो अनर्थ है।*** मात्र पूर्व पर्याय थी इतना बताया। पश्चात् यह (पर्याय) हुई, वह साध्य परन्तु यह हुई तो वह बलजोरी से हुई—ऐसा साधक-साध्यपना माने तो अनर्थ है। ऐ... धन्नालालजी! ये दीपचन्दजी सम्यक्त्वी गृहस्थ थे।

साधकभाव इतना ही जानना कि वह भाव (साध्यभाव) अपने बल से प्रवर्तता है परन्तु ऐसा है कि वह भाव (साधकभाव) प्रवर्तते उस काल में इस भाव का (साध्यभाव का) भी प्रवर्तना होता है। साधकपना प्रवर्ता, साध्यभाव फिर होता है, इतना। जो इस भाव का

(साधकभाव) का होना, वह इस (साध्यभाव)होने में साक्षीभूत तो अवश्य होता है। लो! पूर्व की पर्याय बाद की पर्याय को साक्षीरूप में साक्षीभूत है।

श्रोता : निमित्त साक्षीभूत हो गया।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो पर्याय साक्षीभूत हो गयी। निमित्त, वह पूर्व का व्यवहार। मोक्षमार्ग की पर्याय मोक्ष के लिये साक्षीभूत है। ऐ जुगराजजी! आहाहा! बात बराबर रखी है, हों! पर्याय की स्वतंत्रता की प्रसिद्धि करने के लिये (बात रखी है)। ***साक्षीभूत तो अवश्य होता है तो इतनी इस भाव को साधकभाव की संज्ञा कहने में आती है। ऐसा इस अवसर में जानना।*** पूर्व की पर्याय बाद की पर्याय को साध्य कही, पहले की पर्याय को साधक कहा परन्तु (अर्थ इतना कि) पूर्व में यह हो, पश्चात् यह हो, इतना गिनकर कहा परन्तु यह हो, इसलिए बलजोरी दूसरे की-भविष्य की इसके कारण पर्याय हो (तो) अनर्थ-स्वतन्त्रपर्याय का नाश हो जाता है। ओहोहो! ऐई...! पढ़ा है या नहीं यह? बहुत समय हो गया, इसलिए याद नहीं लगता। इसमें यह साध्य-साधक का अर्थ किया है।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : वेग के कारण नहीं बढ़ते। उस पर्याय की बाद की अवस्था स्वयं के कारण स्वतन्त्र प्रगट होती है। देवानुप्रिया! इसके लिये तो जरा यह बात रखी है। यहाँ आया है इसलिए।

श्रोता : संस्कार निरस्त...

पूज्य गुरुदेवश्री : संस्कार कौन कहता है? पूर्व के संस्कार वर्तमान पर्याय में संस्कार आये, इसलिए आये यह बात झूठी है। यह तो व्यवहार से कहने में आता है। यथार्थ में पूर्व के संस्कार वर्तमान पर्याय को जोराबरी उत्पन्न करावे (ऐसा) है ही नहीं। वह पर्याय स्वतन्त्र अपने से प्रगट होती है। आहाहा! गजब बात भाई!

श्रोता : वेग के कारण....

पूज्य गुरुदेवश्री : वेग-फेग नहीं, बिल्कुल नहीं। इन्कार किया न! पूर्व की पर्याय है वह साधक, बाद की (पर्याय) साध्य परन्तु कोई अज्ञानी ऐसा माने कि साधक पर्याय है तो उसे बलजोरी से आना ही पड़ेगा (तो) अनर्थ करेगा।

श्रोता : साधक के वेग से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। साधक के वेग से साध्य नहीं होता। साध्य की पर्याय स्वयं के जोर से होती है। ऐ... देवानुप्रिया! यह तो वीतराग का मार्ग है। आहाहा! दीपचन्दजी ने बराबर काम कर लिया है, हों! ये शास्त्र प्रमाण लिया है। उत्पाद, उत्पाद के कारण है, ऐसा

प्रवचनसार १०१ गाथा में है। व्यय के कारण उत्पाद है – ऐसा नहीं, यह बात सिद्ध की है, भाई! यह सिद्ध की है, वह १०१ गाथा प्रवचनसार। व्यय के कारण से व्यय, उत्पाद के कारण से उत्पाद और ध्रुव के कारण से ध्रुव – तो कोई कहे कि पूर्व की साधकपर्याय व्यय हुई न, इसलिए यहाँ साध्य होता है (तो) ऐसा नहीं है। आहाहा!

श्रोता : उसका वेग....

पूज्य गुरुदेवश्री : वेग-फेग नहीं। यहाँ तो स्वतन्त्रता का (ढिंढ़ोरा है) । क्या है ? पूनमचन्दजी! व्यय के कारण उत्पाद नहीं और पूर्व की साधक पर्याय है तो साध्य है-ऐसा नहीं। मात्र साध्य होने के पहले यह पर्याय थी—ऐसा गिनकर साधक-साध्य कहने में आया है। ऐसी बात है। आहाहा! जैनदर्शन वस्तुदर्शन है, सत् दर्शन है।

एक पर्याय की सत्ता, वर्तमान सत्ता पूर्व की पर्याय है तो सत्ता आयी-ऐसा (नहीं है) सत् निरपेक्ष है। सहेतु पर्याय है नहीं। आहाहा! समझ में आया ? ऐ... केशरीचन्दजी!

श्रोता : साधक क्यों कहा ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ये कहा न ? साध्य होने के पहले यह पर्याय थी, इतना बतलाने को साधक कहा।

श्रोता : बलजोरी से लाया – ऐसा नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिल्कुल नहीं। आहाहा! कितना निरपेक्ष सत् है! द्रव्य तो निरपेक्ष ध्रुव है, यह उत्पाद समय-समय की पर्याय स्वतन्त्र निरपेक्ष (होती है) । पूर्व पर्याय थी, इसलिए इसे-साध्य को आना पड़ा या व्यय होकर यह कारण हुआ और पर्याय में कार्य आना पड़ा (-ऐसा) है ही नहीं। अमरचन्दभाई! आहाहा! कहो, देवीलालजी!

बापू! प्रभु सत्रूप से बिराजता है न! और पर्याय उस समय की सत् स्वतन्त्र (होती है) । यदि पूर्व के कारण से कहो तो पूर्व की पर्याय तो साधारण थी और यह हुई उग्र। एक दृष्टान्त (लेते हैं) । तो उग्र उसके कारण हुई है ? उग्र उसके कारण हुई है ? समझ में आया ? साधक में यह और साध्य में वह। पर्याय में विशेष निर्मल हुई, वह इसके कारण हुई है ? स्वतन्त्र है। एक न्याय से द्रव्य-गुण के कारण से नहीं, ध्रुव के कारण से नहीं; पर्याय, पर्याय के कारण से स्वतन्त्र प्रगट हुई। इस प्रकार सत् को न स्वीकार करे तो उस सत् का स्वभाव क्या है, वह समझा ही नहीं। समझ में आया ? आहाहा! ऐई..! यहाँ तो वह कारण आया न, उस पर से जरा सा (स्पष्टीकरण आया) ।

भाई! वस्तु भगवान आत्मा सत्रूप वस्तु त्रिकाल ध्रुव शुद्ध है। उसमें से जो यह पर्याय आयी तो पूर्व की जो साधक पर्याय थी तो यह हुई – ऐसा नहीं। (उससे हुई ऐसा कहना यह तो)

व्यवहार से कथन है। बलजोरी से पूर्व की पर्याय है तो इसे आना पड़ा, ऐसी वस्तुस्थिति है ही नहीं। आहाहा! और ध्रुवस्वभाव है तो पर्याय उसके कारण से उत्पन्न हुई – ऐसा भी नहीं।

श्रोता : उसके आश्रय से हुई....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह आश्रय हो, परन्तु हुई स्वतन्त्र। तीनों सत् हैं, तीनों सत् हैं। उत्पाद सत्, व्यय सत्, ध्रुव सत्, निरपेक्ष सत् अहेतुक है। आहाहा! अमरचन्दभाई! लो! यह विषय अन्दर से ठीक निकल गया। कहाँ गये? रतिभाई! कुछ नहीं कारण। पूर्व की पर्याय है, इसलिए उत्तर की पर्याय नहीं, लो! साधक-साध्य इतना कि साध्य होने के पहले की एक पर्याय थी, वह इसकी पूर्व की अपेक्षा से साधक कहा। साधक कहा, इसलिए यह साध्यपर्याय आयी (-ऐसा) नहीं है।

यहाँ कहते हैं, विशुद्धि-कषाय की मन्दता, वह मोक्ष का कारण नहीं है। कहो, क्षायिक समकित, मोक्ष का कारण नहीं तो फिर यह कहाँ से आ गयी? **प्रायोग्यतालब्धि,....** कर्म की स्थिति घटना। **ऐसे भेदों के कारण लब्धि पाँच; वेदकसम्यक्त्व;....** मोक्ष का कारण नहीं है, वेदक अर्थात् क्षयोपशमसमकित **वेदकचारित्र...** क्षयोपशमचारित्र **और संयमासंयमपरिणति।** श्रावक की सम्यग्दर्शनसहित की संयमासंयमपरिणति क्षयोपशमभाव से, क्षयोपशमभाव से आत्मा के आश्रय से हुआ सम्यग्दर्शन, ज्ञान और संयमासंयमपरिणति वह पर्याय है। पर्याय, मोक्ष का कारण नहीं है। कहो, समझ में आया इसमें?

अपने पंचास्तिकाय में लिखा है कि भाई! देखो! यह व्यवहार है, वह शुद्धि का कारण नहीं। सातवें गुणस्थान की शुद्धि का कारण विकल्प नहीं परन्तु छठे गुणस्थान की शुद्धि, वह सातवें का कारण है। यह तो व्यवहार का कारण निषेध करने को बात की है। समझ में आया? पंचास्तिकाय में नीचे टीका में हमारे पण्डितजी ने फुटनोट लिखा है कि भाई! यहाँ व्यवहार को निश्चय का कारण कहा है तो वह तो ऐसा नहीं परन्तु उस व्यवहार के विकल्प के काल में छठे गुणस्थान की जो शुद्धि थी, वह सातवें की शुद्धि का कारण है। उस विकल्प का कारण, इतना शुद्धि सिद्ध करने को (कहा) परन्तु वास्तव में छठवें की शुद्धि वह सातवें की शुद्धि को लाती है – ऐसा नहीं। आहाहा! ऐई!

भगवान आत्मा समय-समय की पर्याय प्रगटने में स्वतन्त्र है। यह नहीं परन्तु परमाणुमात्र, द्रव्यमात्र को पूर्व की पर्याय थी, इसलिए यह पर्याय हुई – ऐसा नहीं है। समझ में आया? उपादान का व्यय होकर उपादेय होता है, यह भी व्यवहार का कथन है। आहाहा! समझ में आया? पूर्व की पर्याय कौन सी थी? एक परमाणु में पहले एक समय में अनन्तगुणी शीत हो, दूसरे समय में अनन्तगुणा उष्ण हो। इस शीत के कारण उष्ण हुआ? पूर्व की पर्याय उपादानकारण और फिर

उपादेय, तो शीत का कारण और उष्णता कार्य – ऐसा हुआ? उपादान में तो व्याख्या ऐसी है कि उपादानकारण उस कार्यरूप परिणमता है; निमित्त, कार्यरूप नहीं परिणमता तो पूर्व की पर्याय व्यय होकर कार्य होता है; इसलिए उपादानकारण को कार्य का मूलकारण कहा है, वह भी व्यवहार से है। आहा! सेठी! अरे! व्यवहार के भेद अनेक होते हैं, निश्चय का एक ही प्रकार है। आहाहा! समझ में आया?

पूर्व की शुद्धि का अंश, फिर साध्य को प्रगट कराता है, यह कथन भी पूर्व में कौन था– उसका ज्ञान कराया, बाद में हुआ, उसका ज्ञान कराया, परन्तु ऐसा अर्थ नहीं है कि पूर्व में यह दशा थी, पाँचवें (गुणस्थान की) निर्मल पर्याय थी तो सातवें के पर्याय आयी–ऐसा नहीं है। तेरहवाँ आया तो चौदहवाँ (गुणस्थान आया) – ऐसा नहीं है।

श्रोता : चौदहवाँ था तो सिद्ध हुए।

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा भी नहीं है। सिद्ध की पर्याय स्वतन्त्र (हुई है)। ए... चन्दुभाई! अभी तो विवाद, व्यवहार और निश्चय में विवाद। अरे! भगवान! तेरा विवाद, बापू! यह सब टुकड़ा करने का है, टुकड़ा कर डालने का है। आहा! वस्तु अखण्ड प्रभु! एक स्वरूप शुद्धभाव, ध्रुवभाव बिराजमान है, वही आत्मा को मोक्ष का कारण है। समझ में आया? वह भी अपेक्षा से बात की है। मोक्ष की पर्याय, ध्रुव है तो हुई है – ऐसा कहना, वह भी अभी व्यवहार है। पूर्व की मोक्षमार्ग की पर्याय थी तो मोक्ष हुआ, वह भी व्यवहार कथन है। समझ में आया? ए... पूनमचन्दजी! बहुत विवाद। बड़ा झगड़ा अभी जगत का। राग हो तो ऐसा हो और धूल हो तो ऐसा हो, कषाय की मन्दता हो तो अमुक हो, अब सुन न! तुझे क्या पता पड़े सत्य का?

श्रोता : चारित्र हो...

पूज्य गुरुदेवश्री : धूल में.... चारित्र कहाँ से आया? व्यवहार की क्रियाकाण्ड में माने कि यह करते–करते हमें धर्म होगा और मिथ्यादृष्टि होकर निगोद में जायेंगे। भगवान कुन्दकुन्दाचार्य ने तो कहा, एक वस्त्र का धागा रखकर मुनिपने की दशा जो चाहिए वह वहाँ हो नहीं सकती। समझ में आया? जिसे वस्त्र को रखने का विकल्प है, भाव है, उसे मुनिपने की दशा नहीं हो सकती।

श्रोता : यह तो तृण रखने का भाव है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो तृण कहो या.... यह तो ठिकाने बिना के भाव। इतना रखे तो वह मुनि मनावे तो तीन कषाय के अभाव की मुनिदशा में पात्र लेने का, तृण लेने का विकल्प उसे नहीं होता। वह विकल्प नहीं होता और शुद्धि इतनी प्रगटी है, वहाँ दूसरी जाति का मन्द विकल्प होता है। उसके बदल ऐसा माने कि हम मुनि हैं। एक–एक तत्त्व में भूल करनेवाला

मिथ्यादृष्टि निगोदगामी है – ऐसा कहते हैं। नरसिंहभाई! आहाहा! रामस्वरूपजी! विशेष दण्ड दिया है? ककड़ी के चोर को फाँसी नहीं दी जाती, ककड़ी के चोर को फाँसी नहीं देते, ककड़ी के चोर को फाँसी ऐसा तुम्हारे आता है। हमारे चिभड़ा नो चोर कहते हैं। चिभड़ा होता है न? ऐसा नहीं है। उसने तत्त्व का महाविरोध किया है, इसलिए वह निगोद का अल्पज्ञ का आराधन करता है। मेरी ज्ञानदशा और श्रद्धादशा विपरीत होकर मेरा परिणमन विपरीत होकर मैं निगोद में जाऊँ – ऐसी बात है। कोई भेजता नहीं है, कोई ले नहीं जाता। कर्म भी निगोद में ले नहीं जाता। अपना जो तत्त्व का स्वरूप है, उससे पर्याय में तत्त्व का विरोध किया। मुनिपने की जो दशा और छठे गुणस्थान का संवर-निर्जरा का भाव है, वहाँ आगे आस्रव का भाव कितना? पंच महाव्रतादि विकल्प का इतना होता है। इससे विशेष विकल्प माना, उसने आस्रवतत्त्व की भूल, संवर-निर्जरा की भूल, उसके कारण अल्प और कार्य विशेष आवे, मोक्ष की भूल, उसे संयोग अजीव का इतना ही रहता है, छठी भूमिका हो, उसे संयोग मात्र शरीरादि का रहता है, आहार-पानी लेने का इतना, इतनी संयोग की भूल की कि उसे अधिक संयोग (होता है)। अजीव की भूल, आस्रव की भूल, संवर-निर्जरा की भूल, कार्य की भूल और जड़-चैतन्य-द्रव्य की भूल। सातों तत्त्व की भूल है। कुन्दकुन्दाचार्यदेव ऐसे के ऐसे व्यर्थ में नहीं कहते। इतना क्यों कहा? कितना कहा? सुन तो सही। समझ में आया? नरसिंहभाई! क्या है? जहाँ-तहाँ सिर फोड़ते हैं-जय महाराज! उससे यहाँ इनकार किया है।

औदयिकभाव के... लो! भाई! यह बात इतनी आयी। आहाहा! अब औदयिक (भाव) **नरकगति,...** मुक्ति का कारण नहीं है। इस नरकगति में दु:ख बहुत होता है; इसलिए नरक समकित का कारण है – ऐसा नहीं है। समझ में आया? ऐसा नहीं तो क्या... ऐसा नहीं तो क्या दु:ख रंग... आता है न? यह सब व्यवहार की बातें हैं। श्रीमद् में आता है। नरकगति, वहाँ बहुत दु:ख भोगे, इसलिए समकित का (कारण होता है-ऐसा) शास्त्र में आता है या नहीं? बहुत वेदना हो और (वेदना) समकित (होता है)। यह तो निमित्त की बातें हैं, सुन न! यहाँ जब स्वभाव का आश्रय करके सम्यक्त्व पाता है तो निमित्त से कहा जाता है कि यह बहुत वेदन था और लक्ष्य में गया, विचार में अन्दर उतर गया। बाकी नहीं – मुक्ति का कारण है नहीं।

श्रोता : प्रत्येक पर्याय स्वतन्त्र है?

पूज्य गुरुदेवश्री : स्वतन्त्र। अनादि-अनन्त स्वतन्त्र पर्याय है। प्रत्येक पर्याय स्वतन्त्र है।

श्रोता : पर्याय स्वत:सिद्ध अनादि-अनन्त है?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। स्वत:सिद्ध पर्याय अनादि-अनन्त नहीं होती। स्वत:सिद्ध का अर्थ एक समय की पर्याय स्वत:सिद्ध।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अनादि-अनन्त स्वत:सिद्ध द्रव्य।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह तो द्रव्य को लागू पड़ता है। द्रव्य को स्वत:सिद्ध लागू पड़ता है और पर्याय को स्वत:सिद्ध (लागू पड़ता है) एक समय का स्वत:सिद्ध, स्वत:सिद्ध। अपने से स्वत:सिद्ध उस पर्याय को लागू पड़ता है, पहला (अनादि-अनन्त) द्रव्य को लागू पड़ता है। ***प्रत्येक समय की पर्याय स्वत:सिद्ध निरपेक्ष स्वतन्त्र स्वत:सिद्ध है। स्वत:सिद्ध का अर्थ ऐसा नहीं कि त्रिकाल रहे। एक समय की पर्याय, द्रव्य सत्, गुण सत्, पर्याय सत्। १०७ वीं गाथा (प्रवचनसार)।***

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह फिर द्रव्य त्रिकाल की बात है, यह द्रव्य की बात है, वह नहीं; यहाँ द्रव्य की बात नहीं है, यहाँ तो पर्याय स्वत:सिद्ध, यह तो सब सिद्ध एक-एक स्वत:सिद्ध, हों! ***यह अशुद्धपर्याय स्वत:सिद्ध*** यह तो बारम्बार कहा है। ***जैसे त्रिकाल स्वत:सिद्ध है तो उसका अंश भी स्वत:सिद्ध है। ऐसी बात है, भाई! सत् वस्तु कोई ऐसी है।*** बहुत समय से कहते हैं, हों! यह कोई नयी बात नहीं है। लोग नहीं समझें, उन्हें नयी लगती है।

तिर्यंचगति,... मोक्ष का कारण, भाई! तिर्यंचगति गये और वहाँ समकित पाये।

मुमुक्षु : धर्म-धर्मी निरपेक्ष।

उत्तर : दोनों निरपेक्ष। धर्मी और धर्म दोनों निरपेक्ष। आप्तमीमांसा (में कहा है)। धर्म अर्थात् पर्याय। वह निरपेक्ष है, पर्याय निरपेक्ष है। धर्म कहो, पर्याय कहो। धर्मी कहो या द्रव्य कहो।

मनुष्यगति... यह मनुष्यगति मोक्ष का कारण नहीं है। अरे! मनुष्यगति बिना केवलज्ञान प्राप्त हो? एक व्यक्ति आया था। किस गाँव का? कुचामन का एक पण्डित था। बहुत वर्ष पहले (आया था)। कुचामन का पण्डित था। (वह कहता) मनुष्यगति के बिना केवलज्ञान होता है? पंचमकाल में केवलज्ञान? चौथे काल में होता है। अब किसी काल में नहीं होता। सुन न! केवलज्ञान द्रव्य के आश्रय से होता है, यह भी व्यवहार है। पर्याय के काल में पर्याय होती है, वह स्वत: है। आहा! ऐ अमरचन्दभाई! बात तो बापू! दूसरा प्रकार है। ओहोहो! मनुष्यगति से मोक्ष, केवल(ज्ञान) नहीं होता। कहाँ गये? भाई! प्रवीणभाई! प्रवीणभाई कहते हैं। आहाहा! कहाँ थे... 'बाल की खाल और सत् का सत्' वस्तु ऐसी है।

श्रोता : माने बिना इसकी गाड़ी आगे नहीं चलती।

पूज्य गुरुदेवश्री : बिलकुल नहीं चलती, सत् जवाब नहीं देता। ऐसा सत् है—ऐसा

मानेगा तो सत् जवाब देगा। नहीं तो सत् जवाब नहीं दे, अन्दर सत् की प्रतीति नहीं आयेगी। समझ में आया? ज्ञान में जैसा सत् है, वैसा ज्ञान सम्यक् हो तो स्वभाव की ओर झुकेगा तो सत् की प्रसिद्धि होगी; नहीं तो प्रसिद्ध नहीं होता। ऐसी बात है। वस्तु ऐसा पुकारती है। ***वस्तु पुकारती है कि हम द्रव्य स्वतन्त्र, गुण स्वतन्त्र, पर्याय स्वतन्त्र। गुण गुण से स्वतन्त्र, हों!*** वापस एक गुण के कारण दूसरा गुण होता है - ऐसा भी नहीं है। समझ में आया?

एक-एक पर्याय की अनन्त सप्तभंगी उतरती है, एक पर्याय में अनन्त सप्तभंगी! स्वयं से है, पर से नहीं। पूर्व पर्याय से नहीं - ऐसी एक सप्तभंगी। निमित्त से नहीं-ऐसी एक सप्तभंगी, ध्रुव से नहीं-ऐसी एक सप्तभंगी। यह चिद्विलास में दीपचन्दजी ने कहा है, बहुत उतारा है। समझ में आया? बापू! आहाहा! उन्होंने-दीपचन्दजी ने तो बहुत कहा है। एक पर्याय में कितने भंग किये हैं! नट और खट और कला और दूरी बड़ी... एक पर्याय में, हों! बनारसीदास ने लिया है, बनारसीदास ने थोड़ा लिया है, बनारसीदास ने बहुत नहीं लिया, बहुत थोड़ा लिया है परन्तु इन्होंने (दीपचनदजी ने) तो बहुत लिया है। नट और ठठ कहीं है। कितने में है वह? भाई ने उतारे हैं ये सब, हों! कौन? दीपचन्दजी! एक-एक का स्पष्टीकरण किया है। इसमें कहीं होगा। सत्ता... सत्ता, हों! जहाँ सत्ता का शोरवकोर आता हैं न कहीं? कहीं होगा... होगा यहाँ कहीं। दीपचन्दजी ने यह तो बहुत उतारा है। परमात्मपुराण, पीछे ज्ञानदर्पण में लिया है।

यहाँ तो कहते हैं कि मनुष्यगति, मोक्ष का कारण नहीं है। गति मोक्ष का कारण होगी? मोक्ष तो केवलज्ञान है, वह तो आत्मा के-द्रव्य के आश्रय से है। यह हमारे मनुष्यगति मिली, इतना तो हम पूर्व के पुण्य को लेकर मिला है न! इतनी तो पुण्य की सहायता हुई या नहीं? ऐसा कहते हैं। देखो! पूर्व का पुण्य था तो मनुष्यगति मिली। मनुष्यगति थी तो सुनने का मिला, सुनने को मिला तो हमें समकित होता है। सुन न अब! सुनने का मिला, इसलिए समकित होता है - ऐसा नहीं है। समझ में आया? सम्यग्दर्शन तो आत्मद्रव्य की दृष्टि हो तो होता है, बाकी सुनने से भी नहीं होता। रामस्वरूपजी!

देवगति, ऐसे भेदों के कारण गति चार;... चार गति में मोक्ष का कारण (नहीं)। गति मोक्ष का कारण होगी? **क्रोधकषाय, मानकषाय, मायाकषाय और लोभकषाय, ऐसे भेदों के कारण कषाय चार; स्त्रीलिंग, पुलिंग और नपुंसकलिंग,...** कौन अन्दर? विकारी, हों! **स्त्रीलिंग, पुलिंग और नपुंसकलिंग,...** विकार लेना। इस शरीर का आकार नहीं लेना क्योंकि वह उदयभाव है और शरीर का आकार तो दूसरा (जड़ है)। स्त्री-पुरुष, नपुंसक, मोक्ष का कारण नहीं है। पुरुषलिंग से मोक्ष होता है—ऐसा कहते हैं वह भी नहीं है। पुरुषवेद का उदय हो तो होता है ऐसा नहीं है। अभाव हो तो होता है। ऐसे विशेष भेद, विशेष कहेंगे.....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(१२) श्री बहिनश्री के वचनामृत, बोल- १०५-१०६, प्रवचन नं. ३७
दिनांक १४-०७-१९७८

आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेश धारण किया हुआ है। ज्ञायक तत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है। आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' या 'सिद्ध है' ऐसी एक ही पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है॥ १०५॥

आत्मा ने तो परमार्थ से त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेश धारण किया हुआ है। क्या कहते हैं? यह आत्मा जो है आत्मा; जो ज्ञायकभाव, ध्रुवभाव, सामान्य त्रिकाली एकरूप भाव, उस आत्मा ने तो त्रिकाल एक ज्ञायकपने का ही वेष परमार्थ से धारण (किया है)। उसे कोई संवर, निर्जरा और मोक्षपर्याय का वेष द्रव्य में नहीं है। आहाहा! वस्तु जो है, जो सम्यग्दर्शन का विषय; सम्यग्दर्शन का विषय जो त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुव, उसमें त्रिकाली को ज्ञायकपने का ही एक वेष है, अर्थात् उसका रूप ही ज्ञायकपना ही एक उसका रूप है। आहाहा! उसकी दृष्टि करना, अनुभव करना—इसका नाम सम्यग्दर्शन है। यह सम्यग्दर्शन की पर्याय भी ज्ञायकभाव में नहीं है। आहाहा! जो इसकी श्रद्धा करे, वह पर्याय भी श्रद्धावान चीज़ में नहीं। आहाहा! उस सम्यग्दर्शन की पर्याय में (तेरे) ज्ञायकभाव की श्रद्धा आ जाती है। यह पूर्णानन्द अखण्ड है—ऐसी श्रद्धा (हो जाती है), परन्तु वह ज्ञायकभाव, पर्याय में नहीं आता। पर्याय, ज्ञायकभाव में नहीं आती; ज्ञायकभाव, पर्याय में नहीं आता। आहाहा! ऐसी बातें हैं, चन्दुभाई! इसने तो एक ज्ञायकभाव ही वेष धारण किया है। आहाहा! जाननस्वभाव शक्ति त्रिकाल एकरूप त्रिकालीस्वभाव ध्रुव, यह इसका वेष है, यह इसका वेष है, यह इसकी स्थिति है, यह इसका रूप है। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

ज्ञायकतत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है,... आहाहा! भगवान ज्ञायकस्वरूप, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उसे कोई पर्याय का वेष नहीं है। अर्थात् उसमें मुनिपने की, मोक्षमार्ग की पर्याय का वेष, ज्ञायक में नहीं है। आहाहा! द्रव्यलिंग तो है ही नहीं उसे। ये नग्नपना

और पंच महाव्रत के परिणाम, ये यति के बाह्य धर्मचिह्न, धर्मलिंग, द्रव्यलिंग—यह तो आत्मा में, ज्ञायक में है ही नहीं।

अलिंगग्रहण का १७ वाँ बोल है। अलिंगग्रहण के बीस बोल हैं न, उसमें १७ वाँ बोल है। आत्मा में द्रव्य और भाववेद का अभाव है; वैसे धर्म के चिह्न बाह्य नग्नपना, पंच महाव्रत, अट्ठाईस मूलगुण—यह बाह्य वेष, उस वस्तु में नहीं है। आहाहा! जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उस चीज़ में बाह्य वेष नहीं; बाह्य वेष तो नहीं...

यहाँ कहते हैं, देखो! **ज्ञायकतत्त्व को परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं है।** दो बात! आहाहा! उसे कोई पर्याय की अपेक्षा नहीं कि मोक्ष की पर्याय हो तो ज्ञायकपना रहे, संवर-निर्जरा की पर्याय हो तो ज्ञायकपना रहे—ऐसी कोई पर्याय की अपेक्षा वस्तु को नहीं है। ज्ञायकभाव, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उसे पर्याय का वेष नहीं है। कोई पर्याय का, यह कहेंगे, और किसी पर्याय की ज्ञायकपने को अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसा है। ऐसा यह सम्यग्दर्शन का विषय ज्ञायकभाव, नित्यानन्द प्रभु! अभी तो चौथे गुणस्थान की बात है। बाबूलालजी! आहाहा! ऐसा दिगम्बर धर्म है। सेठियों ने भी सुना नहीं होगा। जो सुना हो, वह जय नारायण! जो सुना हो, उसे हाँ करते हैं। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं प्रभु! निज सत्ता, जो ध्रुव ज्ञायक सत्ता, जानन सत्ता, जिसका जानना—वह सत्ता उसका स्वरूप है। वह ज्ञायक त्रिकाल है। उसे—ज्ञायक को, सम्यग्दर्शन के ध्येयरूपी ज्ञायक को, सम्यग्दर्शन के विषयरूपी ज्ञायक को पर्याय का वेष नहीं है तथा उसे पर्याय की अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। दो बातें (हुई)।

अब तीसरी बात, देखो! कहते हैं **आत्मा 'मुनि है'....** यह भी वेष है; मुनि का भावलिंग, वह आत्मा में—ज्ञायकपने में नहीं है। यह 'परमात्म प्रकाश' में ८८ वीं गाथा में कहा है परमात्मप्रकाश। परमात्मप्रकाश है न? उसकी ८८ वीं गाथा में कहा है। यहाँ यह है '**अप्पा लिंगिउ एक्कु ण वि**' आत्मा में एक भी लिंग नहीं है। द्रव्यलिंग और भावलिंग दोनों आत्मा में, ज्ञायकभाव में नहीं है। त्रिकाली सत्ता ज्ञायकभाव, आहाहा! मूल पाठ है, हों! ८८ गाथा, परमात्मप्रकाश '**अप्पा लिंगिउ एक्कु ण वि णाणिउ जाणइ जोइ**' धर्मी ऐसा मानता है कि मेरे ज्ञायकभाव में कोई लिंग ही नहीं। द्रव्यलिंग अर्थात् अट्ठाईस मूलगुण या नानपना, वह भी मेरे स्वरूप में नहीं।

इसलिए द्रव्यलिंग तो सर्वथा ही नहीं है, और वीतराग निर्विकल्पसमाधिरूप भावलिंग... यह मुनि का (भावलिंग)। भावलिंग उसे कहते हैं जिसे निर्विकल्प समाधि और आनन्द उग्र वर्तता हो, उसे मुनि कहते हैं। आहाहा! बाकी सब द्रव्यलिंगी बाहर के पंच महाव्रतादि अच्छे हों

तो... वह भी अभी तो ठिकाना नहीं है, क्योंकि उनके लिये चौका करके आहार लेते हैं। चौका करते हैं न? निर्दोष तो मिले ऐसा नहीं है। इसलिए वह तो व्यवहार का द्रव्यलिंग ही नहीं है। आहाहा! यह द्रव्यलिंग जिसे कहते हैं, जिसके लिये बनाया हुआ आहार भी न ले और अट्ठाईस मूलगुण जिसके चुस्त हों और नग्नदशा चुस्त हो, वस्त्र का टुकड़ा भी न हो। अन्दर में राग की तीव्रता का मिथ्यात्वभाव भले हो परन्तु बाहर में टुकड़ा नहीं और अन्दर में निर्दोष आहार लेने के लिये सदोष आहार ले नहीं—ऐसा जिसका द्रव्यलिंग है, वह भी स्वरूप / ज्ञायकभाव में तो नहीं है।

तदुपरान्त निर्विकल्प, वीतरागी निर्विकल्प समाधिरूप भावलिंग... आहाहा! भावलिंगी मुनि को वीतरागता, निर्विकल्प अभेदता, आहाहा! और... है? समाधि, शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... आहाहा! तीन कषाय के अभावरूपी शान्ति उन्हें —मुनि को होती है। चौथे गुणस्थान में एक अनन्तानुबन्धी की कषाय का अभाव और शान्ति होती है। अन्दर शान्ति होती है। शान्ति का वेदन हो, तब तो उसे सम्यग्दृष्टि कहते हैं। आहाहा! यह तो अकेला आकुलता का वेदन (होवे) व्रत और तप और भक्ति अकेली आकुलता, उस वेदन को स्वयं माने कि हम व्रती हैं, तपस्वी हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है, भाई!

यहाँ तो कहते हैं कि जिसे ये व्रत और तप के परिणाम बराबर हों तो भी वह आकुलता और दु:खरूप है। आहाहा! वह तो स्वरूप में / ज्ञायक में / त्रिकाल में तो नहीं परन्तु निर्विकल्प समाधि जिसका भावलिंग... आहाहा! विकल्प अर्थात् रागरहित निर्विकल्प शान्ति और निर्विकल्प आनन्द और निर्विकल्प ज्ञान और निर्विकल्प / रागरहित जिसमें आनन्द की, चारित्र की स्वरूप की स्थिरता है—ऐसा जो निर्विकल्प वीतराग समाधिरूप भावलिंग, वह भी ज्ञायक में नहीं है, क्योंकि वह पर्याय है। आहाहा! अब ऐसा कठिन पड़े। मार्ग तो यह है। आहाहा!

त्रिकाली ज्ञायकभाव वस्तु है न? अस्ति है न? अस्तित्व है न? और वह एकरूप त्रिकाल अस्तित्व है। आहाहा! ऐसे त्रिकाली एकरूप अस्तित्व में मुनि का भावलिंग जो मोक्ष का मार्ग वीतराग, निर्विकल्प शान्तिरूप भावलिंग **यद्यपि शुद्धात्मस्वरूप का साधक है...** पूर्ण आनन्द मोक्ष का, वह भावलिंग साधक है। द्रव्यलिंग तो साधक है ही नहीं। मोक्ष का साधक निर्विकल्प वीतराग समाधिरूप वीतरागदशा, वह मोक्ष का साधक है।

इसलिए उपचारनयकर जीव का स्वरूप कहा जाता है... व्यवहारनय से जीव का स्वरूप कहने में आता है। निर्विकल्प समाधि वीतराग आनन्द को भी जीव का उपचार से, व्यवहार से उसका लिंग है—ऐसा कहने में (आता है)। क्योंकि पर्याय है। पर्याय है कहो या उपचार से कहो या व्यवहार से कहो। इस ज्ञायकभाव को भावलिंग है, यह व्यवहार से कहने में आता है। यह पर्याय है न? पर्याय अर्थात् व्यवहार। आहाहा! कठिन बातें, ...भाई! कहीं सुना नहीं था तुम्हारे बाप ने कहीं?

मुमुक्षु : जोरदार है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बात तो ऐसी जोरदार है न! आहाहा!

आहाहा! क्या सन्तों का, दिगम्बर सन्तों का प्रवाह—मोक्ष का मार्ग! आहाहा! कहते हैं कि ज्ञायकभाव जो महा अनन्त गुण की सम्पदा से भरपूर प्रभु, ऐसा जो ज्ञायक त्रिकाली एकरूप रहनेवाली चीज़, जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उस चीज़ में द्रव्यलिंग तो है नहीं परन्तु भावलिंग भी उसे उपचार से पर्याय में है अर्थात् कहने में आता है परन्तु **तो भी परम सूक्ष्म निश्चयनयकर भावलिंग भी जीव का नहीं है।** आहाहा! कहो शिवलालभाई! अन्य कहते हैं देव-गुरु पर? देव-गुरु पर? (संवत्) २०१० के साल ऐसा प्रश्न किया था। अरे! देव-गुरु तो पर परन्तु यह भावलिंग मुनि का मोक्षमार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान निश्चय सत्य, त्रिकाली ज्ञायक की दृष्टि, ज्ञान और रमणता, यह वस्तु है, वह भी पर है; द्रव्य में नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग है। कहो! धर्मचन्दजी! खण्डवा में सुना है कभी? तुम तो पहले से दिगम्बर हो। आहाहा!

प्रभु! तू एक समय में अनन्त-अनन्त गुण की सम्पत्ति से भरपूर प्रभु ज्ञायकद्रव्य, द्रव्य है। आहाहा! वस्तु अनन्त सम्पत्ति का नाथ अकेला ज्ञायकभाव जो सम्यग्दर्शन का विषय है, उसमें भावलिंग का भी अभाव है। सम्यग्दर्शन की पर्याय का तो अभाव है परन्तु सम्यग्दर्शनज्ञान - चारित्राणिमोक्षमार्गः जो निश्चय पर्याय है, निश्चय, हों! व्यवहार की बात तो पहले निकाल डाली। व्यवहार तो उपचार से असद्भूत व्यवहारनय से कहने में आया है, वह मार्ग है ही नहीं। आहाहा! परन्तु जो सद्भूत व्यवहारनय, पर्याय की अपेक्षा से, हों! ऐसा जो मोक्ष का मार्ग, ज्ञायकस्वरूप की अन्तर्मुख प्रतीति, अनुभव में पूर्णानन्द के नाथ की प्रतीति और पूर्णानन्द के नाथ का ज्ञान और अन्दर पूर्ण ज्ञायकभाव में अन्दर पर्याय में स्थिरता, ये तीन दशा भी ज्ञायकभाव में नहीं है। आहाहा!

इसमें पहले से बात आ गयी थी कि किसी भी पर्याय की अपेक्षा नहीं और कोई भी पर्याय का वेष नहीं, इसलिए यहाँ यह कहा। आहाहा! **परमसूक्ष्म शुद्धनिश्चयनयकर भावलिंग भी जीव का नहीं है।** क्योंकि भावलिंग तो साधनरूप है, पर्याय है; त्रिकाली ज्ञायकभाव नहीं। आहाहा! त्रिकाली ज्ञायकभाव ध्रुव नित्यानन्द प्रभु, जिसमें इसकी सिद्ध की पर्याय का भी जिसे वेष नहीं है। आहाहा! यह इसमें आया।

जिसे **'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है'...** इस पर्याय का ज्ञायकभाव में अभाव है। अरे! केवलज्ञानी की पर्याय का भी ज्ञायकभाव में अभाव है। आहाहा! समझ में आया? **आत्मा 'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है'...** आहाहा! **या 'सिद्ध है'...** आहाहा! **ऐसी एक ही पर्याय-अपेक्षा वास्तव**

में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। आहाहा! मोटाणी! कभी सुना नहीं यह सब वहाँ पाउडर के धन्धे में और यह और... आहाहा!

श्रोता : आज सुनने आये हैं।

दान का भाव होता है, वह तो राग है, वह भी ज्ञायकभाव में तो नहीं परन्तु जो राग को जाननेवाली वीतरागी पर्याय... आहाहा! व्यवहार को जाना हुआ प्रयोजनवान है—ऐसा जो कहा, वह व्यवहार तो आत्मा में है नहीं, पर्याय में नहीं तो वह व्यवहार जो राग है, वह तो द्रव्य में है ही नहीं। परन्तु जो व्यवहार को जाननेवाली सम्यग्ज्ञान पर्याय... आहाहा! उस राग को जानने की तो वास्तव में तो अपने को जानने की (पर्याय) है क्योंकि पर्याय में स्वद्रव्य ज्ञात होता है और पर्याय में स्वपरप्रकाशक स्वभाव के कारण राग ज्ञात होता है, वह राग ज्ञात नहीं होता परन्तु अपनी स्वपरप्रकाशक पर्याय ज्ञात होती है... आहाहा! वह स्वपरप्रकाशक पर्याय भी ज्ञायकभाव में नहीं। देवीलालजी! यहाँ तो चारों ओर शान्ति एकान्त है। यह सब चलता है। बड़े-बड़े पन्द्रह हजार लोगों में (लें तो लोगों को ऐसा लगे कि) यह क्या कहते हैं? बात तो यह आवे परन्तु इसे कोई दृष्टान्त-तर्क करके (स्पष्ट करना पड़ता है)। आहाहा! गजब बात है।

वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। पर्याय की अपेक्षा, मुनि की अपेक्षा, भावलिंगी सन्त, हों! आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का प्रचुर स्वसंवेदन वैभव। कुन्दकुन्दाचार्य ने कहा न? कि मैं मेरे निज वैभव से समयसार कहूँगा। वह निज वैभव क्या? प्रचुर स्वसंवेदन, स्व आत्मा का प्रचुर बहुत अधिक प्रत्यक्ष आनन्द का वेदन, वह मेरा वैभव है - ऐसा कुन्दकुन्दाचार्य ने (समयसार की) पाँचवीं गाथा में कहा है। वे ही कुन्दकुन्दाचार्य वापस कहते हैं कि यह मोक्ष की और मोक्ष के मार्ग की पर्याय मेरे द्रव्य में नहीं है और मेरा जो द्रव्य है, सम्यग्दर्शन का विषय जो ज्ञायक है, वह मोक्ष की पर्याय और मोक्ष के मार्ग की पर्याय को करता नहीं। आहाहा! कठिन आया, चन्दुभाई! सुने तो सही, बापू! ऐसी वस्तु कब मिलेगी? भाई! आहाहा! भगवान सर्वज्ञदेव का कहा हुआ परम सत्य, सन्त जगत के समक्ष प्रसिद्ध करते हैं, आढ़तिया होकर प्रसिद्ध करते हैं कि मार्ग यह है। आहाहा! तुझे रुचे तो ले, न रुचे तो स्वतन्त्र है, न रुचे तो स्वतन्त्र है। आहाहा!

मुमुक्षु : पर्याय को करे नहीं परन्तु जानने का काम तो करे न?

उत्तर : जानने का काम पर्याय करे। द्रव्य-गुण है, द्रव्य गुण तो ध्रुव है। कार्य तो पर्याय में होता है। यह तो त्रिकाल कारण है। उनकी शक्ति कहलाती है। स्वपरप्रकाशक शक्ति त्रिकाल परन्तु यह स्वपरप्रकाशक शक्ति। स्वपरप्रकाशक का परिणमन-पर्याय वह नहीं। आहाहा! वहाँ भी प्रश्न हुआ था। कुरावड में तुम थे? प्रश्न हुआ था। बहुत लोग थे न! दिल्ली से भाई आये थे न? दिल्ली से... हितैषी, प्रकाशचन्द (हितैषी) दिल्ली से आये थे, उन्होंने प्रश्न किया था, यह

जो ज्ञान को आत्मा का लक्षण कहा है, वह क्या चीज़ है ? लक्षण कहा है, वह दो प्रकार से (कहा है) एक तो त्रिकाली ज्ञान को लक्षण कहकर आत्मा लक्ष्य बताया है कि जो ध्रुव है। नियमसार में त्रिकाली ज्ञान ध्रुव को लक्षण (कहा है और) आत्मा लक्ष्य। इतना समझाया है परन्तु वह लक्षण और लक्ष्य को समझ कौन सकता है ? पर्याय। ज्ञान की पर्याय, वह उसका वास्तविक लक्षण है जो कि पर्याय में लक्षण जो है ज्ञान त्रिकाल, त्रिकाली लक्षण और त्रिकाली वस्तु उसका लक्ष्य। इसका निर्णय करती है लक्षण, वह तो पर्याय। कुरावड़ में बड़ा प्रश्न चला था। झमकलालजी ! हमारे झमकलालजी वहाँ बहुत ध्यान रखते। लोग बहुत, बराबर ध्यान रखना, दस-दस बारह हजार लोग व्याख्यान में (आते थे) और उन लोगों की व्यवस्था भी बहुत... पन्द्रह-पन्द्रह हजार लोगों के जीमने की रसोई। दिगम्बर सब एकत्रित (हुए)।

मुमुक्षु : १५०-२०० वर्ष में ऐसा आनन्द कभी नहीं आया। कुरावड़ में ऐसा आनन्द कभी नहीं आया। इतनी ज्यादा संख्या...

उत्तर : दस-दस, बारह-बारह हजार की सभा! लोग सुनें, बापू! मार्ग तो यह है, भाई! पहले धीमे-धीमे, धीरे-धीरे समझना परन्तु मार्ग यह है। इस मार्ग के अतिरिक्त कुछ भी कम-अधिक विपरीत होगा तो मिथ्यात्व है। आहाहा!

मुमुक्षु : उदयपुर में बहुत....

उत्तर : उदयपुर में तो शिक्षण चला था। आहाहा! बीस दिन शिक्षण चला था। उदयपुर में हम तीन दिन थे, बाद में वह चलाया। लोगों में प्रचार है। विरोधी विरोध भी करते हैं, करें, उन्हें न जँचे तो क्या होगा? ऐसी बात... व्यवहार देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा, पंच महाव्रत परिणाम, वह धर्म नहीं और धर्म का कारण नहीं। शुभराग है। भैयाजी! सबेरे प्रश्न किया था। आहाहा! राग है न? विकल्प है, कषाय का अंश है, वह मोक्ष का मार्ग नहीं। आहाहा! अकषायभाव जो है, ज्ञायक त्रिकाली जिनस्वरूप है, त्रिकाली-उसकी श्रद्धा-ज्ञान और रमणता जो निर्विकल्प शान्ति, वह भी पर्याय है। आहाहा! वह मोक्ष का मार्ग है, वह मार्ग हो परन्तु वह पर्याय और मोक्ष की पर्याय दोनों का द्रव्य में तो अभाव है। अथवा द्रव्य है वह... आहाहा!

दो बात याद आयी। एक तो ३८ गाथा, नियमसार की ३८ वीं गाथा। निश्चय आत्मा किसे कहा ? ऐसा लिखा। पर्यायरहित त्रिकाली चीज़, वह निश्चय आत्मा। भाई ! ३८ गाथा। केवलज्ञान भी नाशवान है—ऐसा लिया है। नियमसार ३८ गाथा। पुण्य-पाप, आस्रव-बन्ध, संवर-निर्जरा और मोक्ष सातों हीं पर्याय नाशवान हैं क्योंकि पर्याय है। एक समय की स्थिति—मर्यादा है। वह नाशवान है और भगवान त्रिकाली वस्तु है, वह अविनाशी है। आहाहा! और वह अविनाशी-त्रिकाली वस्तु है, उसे यहाँ हम निश्चय से सत्यार्थ आत्मा कहते हैं। सत् आत्मा वह है। आहाहा!

त्रिकाली ज्ञायकसत्ता पूर्ण, उसे निश्चय आत्मा, सत् आत्मा एक है—ऐसा कहने में आया है। पर्याय को सत् आत्मा नहीं क्योंकि पर्याय नाशवान् है। केवलज्ञान की पर्याय नाशवान है। आहाहा! एक बात।

दूसरी बात, समयसार की ३२० गाथा, जयसेनाचार्य की टीका और मूल पाठ। कि भगवान आत्मा इस बन्ध के मार्ग को करता नहीं, बन्ध को करता नहीं, मोक्ष के मार्ग को करता नहीं, मोक्ष को करता नहीं। भैयाजी! वस्तु है न त्रिकाल! मोक्ष का मार्ग तो पर्याय है। द्रव्य है, वह पर्याय को करता नहीं। समझ में आये ऐसी भाषा है। आहाहा! ३२० गाथा है। उदय को भी भगवान जाने, निर्जरा को जाने, मोक्ष को जाने, बन्ध को जाने, मोक्ष के मार्ग को भी जाने। आहाहा! इस मोक्ष के मार्ग को और मोक्ष को आत्मा करता नहीं। आत्मा तो द्रव्य-त्रिकाली ज्ञायक है। आहाहा! यह पर्याय करती है। आहाहा! कार्य तो पर्याय में होता है, त्रिकाली ध्रुव तो सदृश पड़ा है, उसमें कार्य कैसा पर्याय का? आहाहा! समझ में आया?

मुमुक्षु : अकारक और अवेदक।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ; भगवान आत्मा... निश्चय आत्मा तो उसे कहा कि एक समय की चीज़ या केवलज्ञान की पर्याय, वह भी नाशवान है; इस अपेक्षा से त्रिकाली ज्ञायकवस्तु सत्.. सत्.. सत्.. सत्.. सत्.. सत्.. एकरूप सदृश त्रिकाली है, उसे निश्चय सत्य आत्मा कहा और उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा! समझ में आया? और इस बन्ध तथा मोक्ष के मार्ग की पर्याय को नाशवान गिना; इसलिए उसे अविनाशी भगवान को आत्मा कहने में आया। इस पर्याय को आत्मा कहने में नहीं आया। यह व्यवहार आत्मा। निश्चय मोक्षमार्ग की पर्याय और मोक्षपर्याय यह व्यवहार आत्मा, त्रिकाली वह निश्चय आत्मा। ऐसी बातें, आत्मा के वापस दो प्रकार (हुए)। आहाहा!

केवलज्ञान और केवलदर्शन, अनन्त आनन्द सर्वज्ञ अरिहन्तदेव त्रिलोकनाथ को पूर्ण आनन्द और अनन्त गुण, पर्याय (में) प्रगट हो गये। तथापि वह पर्याय है। आहाहा! उसे द्रव्य करता नहीं तथा वह पर्याय, द्रव्य में नहीं। आहाहा! समझ में आता है न? भले भाषा तो सादी है, भले भाव तो बहुत ऊँचे हैं। आहाहा!

यह तो बहिन का १०५ वाँ बोल। १०५। जिसे केवलज्ञान और मुनिपना या सिद्ध **ऐसी एक ही पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है।** दूसरा बोल आया था न? **परमार्थ से कोई पर्यायवेश नहीं है, कोई पर्याय-अपेक्षा नहीं...** इसका अर्थ किया। इसे मुनिपना, मोक्ष का मार्ग या सिद्धपद या केवलज्ञान, वह तो पर्याय है; एक समय की अवधि की एक समय की (पर्याय है)। सिद्धपने की भी पर्याय एक समय की, दूसरे समय दूसरी (होती है)। ध्रुव जो द्रव्य

ज्ञायक त्रिकाल, वह तो त्रिकाल है। आहाहा! समझ में आया? ऐसा तो जब पुस्तक सामने आयी हो तो चले न! खींचकर लेने जाये तो (आवे नहीं)। यह तो है इसमें, इसलिए इसका विस्तार होता है।

द्रव्यलिंग नहीं, भावलिंग नहीं, मुनिपना नहीं, केवलज्ञान नहीं, सिद्धपद नहीं, आहाहा! ऐसा एकरूप सदृश अर्थात् ध्रुव, उसे हम यहाँ आत्मा कहते हैं, उसे द्रव्य कहते हैं, उसे सामान्य कहते हैं, उसे पर्यायरहित आत्मा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो अभी बाहर से अटके हैं, यह व्रत पालते हैं और यह नियम करना और यह अमुक खाना, ऐसा न खाना और वस्त्र घटा देना और वस्त्र छोड़ देना... कहाँ था? आहाहा!

जो प्रभु त्रिकाली नित्यानन्द प्रभु, जो सम्यग्दर्शन का विषय, वह तो मोक्ष के मार्ग को और समकित को भी नहीं करता—ऐसा कहते हैं। ऐ..ई..! यह त्रिकाली अपरिणामी चीज़ है। यह पलटता नहीं, बदलता नहीं। जिसकी पर्याय में हलचल, वह पर्याय इसमें अन्दर नहीं। आहाहा! हलचलरहित ध्रुव। आहाहा! वह एकरूप त्रिकाल चीज़, वह सम्यग्दर्शन को आश्रय करने योग्य वह चीज़ है। समकिती की ध्रुव पर हमेशा नज़र रहती है। चाहे तो विकल्प आवे खाने-पीने का, बोलने का सब (विकल्प आवे) परन्तु दृष्टि में तो त्रिकाली; जिसमें मोक्ष की पर्याय भी नहीं—ऐसे ध्रुव पर नज़र हमेशा होती है। आहाहा! और ध्रुव की नज़र हटे और यदि पर्याय पर नज़र जाये, हटकर नज़र जाये, हों! जानने के लिये जाने, वह तो ज्ञान जाने की पर्याय है, परन्तु द्रव्य में—ध्रुव का आश्रय छूटकर पर्याय को यदि जोड़ने जाये तो पर्याय में विकल्प उठे और उसमें लाभ माने तो, आहाहा! यहाँ तक मिथ्यात्व कहलाता है।

इसलिए यहाँ कहा कि ज्ञायकतत्त्व को इस ज्ञायकपने का वेष एक है। त्रिकाली ज्ञायकपना; जानने की क्रिया, वह भी जिसमें नहीं, क्योंकि वह तो परिणमन है, परिणमन पर्याय है और वस्तु अपरिणामी त्रिकाल है। आहाहा!

मुमुक्षु : ज्ञायक कहकर जानने की पर्याय....

उत्तर : यह तो (समयसार की) छठी गाथा में नहीं कहा? '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणगो दु जो भावो।**' परन्तु यह पर्याय के जानने का कहा परन्तु वह पर्याय जो है, वह पर को जानती है, वह पर्याय को पर्याय जानती है। वह पर्याय पर को जानती है—ऐसा कहना व्यवहार है। पर्याय पर्याय को जानती है, वह निश्चय है। आहाहा! चौथा पद आ गया है। '**णादो जो सो दु सो चेव**' चौथा पद है। '**ण वि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो**' भगवान आत्मा प्रमत्त-अप्रमत्त है ही नहीं। पहले गुणस्थान से चौदह गुणस्थान आत्मा में नहीं है। आहाहा! नवरंगभाई! तेरहवाँ गुणस्थान... हमारे एक .....भाई थे। तेरहवाँ कहते। तेरहवाँ गुणस्थान तेरा नहीं, 'लाठी' वाले, धीरुभाई के भाई, तलटिया। उन्हें बेचारों को सुनने का प्रेम था, पहले दूसरे रस में चढ़ गये, गाने

में और उसमें... फिर यहाँ सुनने आते। तेरहवाँ गुणस्थान तेरा नहीं—ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्योंकि वह तो पर्याय है। एक समय की पर्याय तो व्यवहार का विषय है। त्रिकाली जो है, वह निश्चय का विषय है। उसमें एक पर्याय का विषय, व्यवहार का विषय उसमें नहीं। दोनों हैं अवश्य। ऐसा नहीं कि (है ही नहीं) त्रिकाली में नहीं परन्तु पर्याय पर्याय में है, व्यवहारनय का विषय भी वर्तमान में जो है, वह विषय है। मोक्ष का मार्ग है, केवलज्ञान है, सिद्ध है क्योंकि एक जीववस्तु है।

सुनो! जीववस्तु है, उसकी पर्याय में दो भाग किये—एक संसार अनादि शान्त, एक मोक्ष, सादि-अनन्त; संसार अनादि-शान्त पर्याय है न? मोक्ष सादि-अनन्त। दो भाग पड़ गये। आहाहा! ये जीव वस्तु त्रिकाली में दो भाग करना, वह व्यवहार का विषय हो गया। आहाहा! ऐसा है। जँचना कठिन पड़े। यह मानो कि यह जैन की बात होगी ऐसी? जैन में तो दया पालो और व्रत करना और त्याग करना और तपस्या (करना)... अरे! बापू! तूने सुना नहीं, भाई! वीतराग दर्शन कोई अलौकिक बात है, यह विश्व दर्शन है, वस्तु का स्वरूप है, वैसा जाना ऐसा भगवान ने कहा है। आहाहा! तुझे सुनने को न मिले; इसलिए यह दूसरी चीज़ है, नयी है-ऐसा तुझे लगता है। नयी नहीं है, अनादि की ऐसी ही है। आहाहा!

ज्ञायकभाव, यही त्रिकाली निश्चय आत्मा। ज्ञायकभाव त्रिकाली में मोक्ष की पर्याय, केवलज्ञान की पर्याय, मुनि पर्याय का अभाव है। ज्ञायकभाव, यही निश्चय आत्मा। ज्ञायकभाव, यह मोक्ष और मोक्ष के मार्ग की पर्याय को नहीं करता, वह ज्ञायकभाव। आहाहा! पर्याय, पर्याय को करे। क्यों? कि केवलज्ञान जो उत्पन्न होता है या सिद्ध की पर्याय उत्पन्न होती है, वह पर्याय षट्कारक से परिणमति स्वयं से उत्पन्न होती है। आहाहा! जिसे द्रव्य की अपेक्षा नहीं। यह पाठ है ऐसा। समझ में आया? आहाहा! प्रवचनसार। विकार के षट्कारक हैं, वे स्वतन्त्र हैं। यह बात वर्णीजी के साथ चली थी (उन्हें) नहीं जमती थी, यह बात थी नहीं, हिन्दुस्तान में नहीं थी।

मुमुक्षु : आपने कहा उसमें कि एक भी नहीं।

उत्तर : हाँ, एक भी नहीं थी। उस दिन तो इतनी बात हुई थी, (संवत्) २०१३ के साल। पहले सम्मेदशिखर की यात्रा आये न पहले। २१ वर्ष (हुए) २०१३ के साल। २००३ के साल तो यहाँ विद्वत्परिषद भरी थी। २१ वर्ष (पहले) चर्चा हुई। सब पण्डित बैठे थे। कहा, आत्मा में / पर्याय में जो विकार होता है, वह पर्याय में षट्कारक का परिणमन पर्याय का है। राग की कर्ता पर्याय राग, राग का कर्म राग, राग का साधन राग, राग में से राग, राग का आधार राग है। इस राग को द्रव्य-गुण का कारण भी नहीं तथा पर कारक की अपेक्षा नहीं। एकदम कठिन पड़ गया था। यह ऐसा? (उन्होंने कहा) अरे! बड़ी भूल में आये, सुना नहीं, यह बात चलती नहीं थी।

पंचास्तिकाय की ६२ गाथा, पंचास्तिकाय की ६२ गाथा रखी थी कि देखो! इसमें लिखा है कि एक समय की जो पर्याय विकारी, हों! मिथ्यात्व की, राग-द्वेष की, विषय-वासना की उस पर्याय (का) कर्ता पर्याय, कर्म पर्याय, करण पर्याय साधन वह पर्याय, पर्याय का आधार पर्याय, पर्याय से पर्याय (हुई)। पर्याय से पर्याय रखी; यह षट्कारक पर्याय का परिणमन, जिसे पर कारक की तो अपेक्षा नहीं परन्तु जिसे द्रव्य-गुण की अपेक्षा नहीं। आहाहा! कोलाहल हो गया कि ये लोग मूल में भूले हैं। आहाहा! विकार को कर्म की अपेक्षा नहीं? यह पाठ देखो! पंचास्तिकाय ६२ गाथा। परकारक की जिसे अपेक्षा नहीं तो फिर जहाँ निर्विकारी पर्याय... आहाहा! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की निर्दोष शान्ति और आनन्द की पर्याय (हुई), उस पर्याय के षट्कारक का परिणमन स्वयं से है; द्रव्य-गुण से नहीं, तथा कर्म का अभाव हो तो यह परिणमन हो—ऐसी अपेक्षा उसे नहीं। आहाहा! यह तो कल हिन्दी में चला था, अब गुजराती में आज (लिया है)। मूल बात थी न! आहाहा!

ऐसा उपदेश है। इसमें अब क्या करना? कुछ सूझ नहीं पड़ती। व्रत कर सके नहीं, दया कर सके नहीं, वह तो विकल्प है (—ऐसा कहते हैं)। परन्तु सुन तो सही! वस्तु जो त्रिकाली है, उस पर दृष्टि कर सकता है या नहीं? दृष्टि करता नहीं, वह करना है, वह करने का है। आहाहा! और जो दृष्टि का विषय है, वह दृष्टि वहाँ करनी है और फिर उसमें स्थिर होना है, वह चारित्र है। चारित्र कोई व्रत और वह कोई चारित्र नहीं। आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

'मुनि है' या 'केवलज्ञानी है' या 'सिद्ध है' ऐसी एक भी पर्याय-अपेक्षा वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। आहाहा! चिल्ला उठें ऐसा है। यह मथुरा, मथुरा, मथुरा में गये थे न एक बार? सभा में पण्डित थे, सभा बड़ी थी। कहा-केवलज्ञान एक समय की पर्याय है, वह नाशवान है। आहाहा! पण्डित कहें - यह क्या? एक समय का केवलज्ञान गुण नहीं। गुण है, वह तो त्रिकाल है आत्मा में। उत्पन्न हो, वह गुण नहीं होता; उत्पन्नध्वंसी है, वह पर्याय है। केवलज्ञान भी पर्याय है, केवलज्ञान भी अवस्था है। भाई! पण्डितों में खलबलाहट हो गयी परन्तु कैलाशचन्दजी थे कि बात पर्याय की है। पर्याय है वह कहीं त्रिकाली चीज नहीं, गुण त्रिकाली हैं। आहाहा!

मूल तत्त्वज्ञान का विषय ही पूरा सब फेरफार हो गया। मूल चीज़ सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति का कारण कौन? इसमें ही सब विवाद उठे हैं। आहाहा! अन्य मार्ग को / कुमार्ग को मार्ग मान लिया है। अरे प्रभु! इसमें हित क्या होगा? भाई! आहाहा! आहाहा! देह छोड़कर जहाँ जाना है, बापू! वहाँ ऐसी मान्यता होगी कि इस राग से धर्म होता है और... बापू! वहाँ तू दुःख का वेदन करेगा क्योंकि वर्तमान वह राग है, वह दुःख है और दुःख के वेदन में भविष्य में तू जायेगा। अरर! आहाहा! भाई! तेरे हित की बात है।

जहाँ से आनन्द उत्पन्न होता है—ऐसी जो चीज़, उसे ऐसा कहना कि आनन्द इससे उत्पन्न हुआ, यह भी व्यवहार है। आनन्द, आनन्द से उत्पन्न होता है। छोटाभाई! बात अच्छी आ गयी। ठीक तुम यहाँ आये हो न! कलकत्ता से आये हैं, माल बात आ गयी। आहाहा!

वास्तव में ज्ञायक पदार्थ को नहीं है। ज्ञायक तो ज्ञायक ही है। आहाहा! जिसमें सिद्ध और मुनिपने के मार्ग की पर्याय का भी अभाव है। आहाहा! यह पर्यायदृष्टि छोड़ और द्रव्यदृष्टि कर। इस पर्याय की महिमा से उत्पन्न हुए, वहाँ नज़र न रख। नज़र तो वहाँ ज्ञायकस्वरूप एकरूप है, वहाँ नज़र (रख)। नज़रबन्दी... यह जादूगर नज़रबन्दी नहीं करते? इसी प्रकार यहाँ तेरी जादूगरी, नज़रबन्दी नज़र को ध्रुव में ध्रुव पर ले। आहाहा! तब वह नज़रबन्दी का सम्यग्दर्शन कहलाता है। आहाहा! और इस सम्यग्दर्शन के बिना यह पठन जो शास्त्र के ग्यारह अंग का किया, वह भी अज्ञान है और उस सम्यग्दर्शन के बिना व्रत-तप और परीषह सहन करे, वह सब क्लेश है। आहाहा! समझ में आया? १०५ (बोल पूरा) हुआ। वह तो इस गुजराती में थोड़ा लिया।

चैतन्यस्वरूप आत्मा तेरा अपना है इसलिए उसे प्राप्त करना सुगम है। परपदार्थ पर का है, अपना नहीं होता, अपना बनाने में मात्र आकुलता होती है॥१०६॥

१०६ **चैतन्यस्वरूप आत्मा तेरा अपना है...** तू स्वयं चैतन्यस्वरूप भगवान ज्ञायकस्वरूप तो तू पोते (स्वयं) है। पोते अर्थात् स्वयं। आहाहा! वह कहीं बाहर से लाना है ऐसा है नहीं। **इसलिए उसे प्राप्त करना सुगम है।** है तो स्वयं, उसे प्राप्त करना है। आहाहा! प्रभु है। चैतन्यस्वरूप आत्मा, ज्ञायकस्वरूप प्रभु। यहाँ ज्ञायक नहीं कहकर चैतन्यस्वरूप लिया। वह जाननस्वरूप आत्मा था (यहाँ) त्रिकाली चैतन्यस्वरूप आत्मा (लिया)। आहाहा!

चैतन्यस्वरूप भगवान आत्मा तो त्रिकाल तेरा है। वह तेरा स्वयं का अर्थात् तू स्वयं है। चैतन्यस्वरूप आत्मा तो तू स्वयं है। आहाहा! स्वयं तू स्वयं है। आहाहा! है, उसे प्राप्त करना; है, उसकी सत्ता / अस्तित्व, अस्तित्व को अस्तित्व से प्राप्त करना, वह तो सरल है। आहाहा! समझ में आया?

चैतन्यस्वरूप आत्मा... पहले व्याख्या यह की है कि आत्मा अर्थात् क्या? चैतन्यस्वरूप। वह रागस्वरूप, पुण्यस्वरूप और पापस्वरूप वह नहीं। आहाहा! चैतन्यस्वरूप जो भगवान ज्ञानस्वरूप प्रभु... आहाहा! वह तो तू स्वयं ही है अर्थात् वह तो तेरा है। आहाहा! तेरा अपना है वह तो। आहाहा! वह अपनेरूप करना, उसमें कहते हैं कि दुर्लभ क्या है? आहाहा! **इसलिए**

उसे प्राप्त करना सुगम है। श्रीमद् में भी आता है—सत् सरल है, सर्वत्र है। आहाहा! वस्तु है, वह शाश्वत् स्वयं स्थायी किसी भी क्षेत्र में हो और किसी भी पर्याय में हो, वस्तु तो वस्तुरूप से अन्दर शाश्वत् है। आहाहा! यह चैतन्यस्वरूप आत्मा तेरा अपना है; इसलिए उसे प्राप्त करना सुगम है। आहाहा! है, उसे प्राप्त करना, उसमें विशेष क्या है? कहते हैं। परन्तु परपदार्थ है... आहाहा!

परपदार्थ पर का है,... वास्तव में राग है न? दया, दान, व्रत का राग भी परवस्तु है। उसे अपना करना, वह नहीं हो सकता। आहाहा! राग है, वह अपना नहीं हो सकता, क्योंकि वह परवस्तु है। तो रजकण को, शरीर को, पर को अपना करना, वह तो दूर रहा। आहाहा! भाई! यह हमारी स्त्री है, अर्धांगिनी है, आधा अंग हम और आधा यह, तीन काल में नहीं, बापू! आहाहा! वह तो धूल है। उसका शरीर अलग, उसका आत्मा अलग, वह तो पर है; पर को अपना करना, वह तो दुर्गम्य है, क्योंकि वह नहीं हो सकता और है, उसे प्राप्त करना, वह तो हो सकता है। आहाहा! समझ में आया? पैसा लक्ष्मी, इज्जत, मकान, ये सब पर हैं। उन्हें अपना करना, वह नहीं हो सकता। उस पर को अपना करने में तुझे आकुलता होगी, तथापि परवस्तु तेरी होगी नहीं। आहाहा!

चैतन्यस्वरूप आत्मा तेरा अपना है; इसलिए उसे प्राप्त करना सुगम है। सरल है। आहाहा! कोई स्थल हो, वहाँ जाना हो, तब तो वह सुगम है परन्तु स्थल ही न मिले वहाँ कहाँ जाना? इसी प्रकार राग और पुण्य और परवस्तु में तो आत्मा का स्थान ही नहीं। आहाहा! उसे तू आत्मा का करना चाहेगा तो किसी प्रकार होगा नहीं। आहाहा! आकुलता होगी। पर को अपना करना चाहेगा वहाँ कर तो नहीं सकेगा (परन्तु) आकुलता होगी। आहाहा! ऐसी बात है।

परपदार्थ पर का है,... परपदार्थ पर का है। वह है अवश्य परन्तु वह उसका है; तेरा नहीं। शरीर, मकान, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, माँ, बाप... आहाहा! वे तो परचीज़ हैं। वह पर (चीज़) तो पर की है, उसे तेरी करना, वह किस प्रकार हो सकेगा? और वहाँ तेरा पुरुषार्थ काम करता है पूरे दिन। इसे सम्भालूँ और इसे यह करना और यह करना और उसका यह करना। आहाहा! स्त्री को प्रसन्न रखूँ और स्त्री को अनुकूल संयोग मिलाऊँ... परन्तु प्रभु वह पर है, उसे क्या करेगा तू? आहाहा! लड़के-लड़की और पुत्र-पुत्री, विवाह करके ठिकाने लगाना... भाई! पर का तू क्या कर सकता है। आहाहा!

परपदार्थ पर का है, अपना नहीं होता,... यह अंगुली है, वह अंगुली की है, यह अंगुली इस अंगुली की नहीं। इसीलिए इस अंगुली को यहाँ करना, यह नहीं हो सकता। इस अंगुली को इस अंगुली की करना नहीं हो सकता। इस अंगुली को अंगुली की करना यह हो सकता है। अपनी अपने को करना वह हो सकेगा। अंगुली की जड़; वैसे आत्मा स्वयं अपना करना, वह हो सकेगा परन्तु परपदार्थ जो पररूप है, उसे अपना करना नहीं हो सकेगा। आहाहा! पहले से बाबा! आहाहा! राग, यह रजकण परद्रव्य है। आहाहा!

यहाँ तो नियमसार में वहाँ तक लिया कि मोक्ष का मार्ग है, वह परद्रव्य है। उसे तू स्वद्रव्य करना चाहेगा पूरे त्रिकाल में तो नहीं हो सकेगा। मोक्ष का मार्ग, हों! पर्याय। वह है तो परद्रव्य से पर / भिन्न है, उसे वहाँ परद्रव्य कहा। उसका कारण? कि वह परद्रव्य है, वह स्वद्रव्यरूप नहीं हो सकती। वह पर्याय स्वद्रव्यरूप नहीं हो सकती। आहाहा! वह पर है, वह पररूप रहेगी। पर्याय, पर्यायरूप रहेगी, परन्तु पर्याय को तू द्रव्य की करने जायेगा तो नहीं बन सकेगी। आहाहा!

मुमुक्षु : यह न्याय नया है।

उत्तर : ऐसा कहा था न कि परपदार्थ क्यों कहा, यह पहला अर्थ किया था कि जैसे परद्रव्य में से नयी पर्याय नहीं आती; वैसे मोक्ष के मार्ग की पर्याय में से नयी पर्याय नहीं आती; इसलिए परद्रव्य कहा—यह अर्थ तो हो गया है। समझ में आया? आहाहा! क्या कहा? कि आत्मा जो वस्तु-त्रिकाली है, उसमें जो मोक्ष का मार्ग प्रगट होता है, उसे भी परद्रव्य कहा। अर्थात्? कि जैसे आत्मा को नयी मोक्ष, केवलज्ञान की पर्याय आदि प्राप्त करनी होवे तो परद्रव्य में से नहीं होती; वैसे पर्याय में से पर्याय नहीं होती। यह नयी केवलज्ञान आदि की पर्याय तो द्रव्य में से होगी; इस कारण पर्याय को परद्रव्य कहा। समझ में आया? और इस परद्रव्य को अपना करना चाहे तो नहीं हो सकता।

विशेष कहेंगे..... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१३

श्री प्रवचनसार, गाथा ११४ प्रवचन नं. १२५
दिनांक ०५-०७-१९७९

प्रवचनसार गाथा ११४। **अब, एक ही द्रव्य के अन्यपना और अनन्यपना होने में जो विरोध है, उसे दूर करते हैं। (अर्थात् उसमें विरोध नहीं आता, यह बतलाते हैं)।** अर्थात् क्या? कि सामान्यरूप से द्रव्य वह का वही है और विशेषरूप से द्रव्य भिन्न-भिन्न — अन्य-अन्यरूप है, तथापि वह अनन्य है। वह सामान्य से कहीं भिन्न नहीं है, अन्य-अन्य अवस्था होने पर भी अनन्य है — ऐसी बात!

प्रत्येक द्रव्य... दृष्टान्त जीव का देंगे परन्तु प्रत्येक द्रव्य सामान्य है, वह तो वह का वही है। विशेष है (वह) अन्य-अन्य है, तथापि वह विशेष पर्याय स्वकाल में अन्य-अन्य होने पर भी द्रव्य से अनन्यमय है, द्रव्य से भिन्न नहीं है। आहाहा! यह तो प्रत्येक वस्तु का स्वरूप (ऐसा है)। आत्मा को परद्रव्य के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! कर्म के साथ, शरीर के साथ, देश के साथ, परिवार के साथ, कीर्ति के साथ, पैसे के साथ, वेतन के साथ सुमनभाई! साथ आते हैं, कोई सम्बन्ध नहीं है।

प्रत्येक द्रव्य अपना स्वरूप कायम रखकर अन्य-अन्य, भिन्न-भिन्न अवस्थारूप होता है, इस अपेक्षा से अन्य भी कहलाता है और इसकी ही इसकी है, इसलिए अनन्य है। इसकी है, वह द्रव्य स्वयं ही पर्यायरूप आया है (— ऐसा भी कहलाता है)। आहाहा! ऐसी बात! ऐसा बँटवारा! पूरी दुनिया का बँटवारा कर डाला। गाथा —

दव्वट्ठिएण सव्वं दव्वं तं पज्जयट्ठिएण पुणो।
हवदि य अण्णमणण्णं तक्काले तम्मयत्तादो॥११४॥

द्रव्यार्थ से सब द्रव्य हैं, पर्याय से वे अन्य हैं।
द्रव्य तन्मय उस समय, इस हेतु से वो अनन्य हैं॥

समस्त द्रव्यों की बात है, दृष्टान्त जीव का देंगे। आहाहा! तत्त्वज्ञान इतना सूक्ष्म है कि पर्याय में जीव को नारकी आदि अनेकपना होने पर भी, वह अन्य-अन्य होने पर भी अनन्य है। आत्मा के साथ उस पर्याय का तन्मयपना है। आहाहा! चाहे तो हिंसा के परिणाम हों, दया के हों, पूजा के, भक्ति के परिणाम (हों), रौद्रध्यान के परिणाम हों... वे परिणाम द्रव्य की पर्याय में हैं

और अन्य-अन्य अवस्था होने से अन्य भी कहलाता है और आत्मा उसमें वर्तता है, इसलिए अनन्य भी कहलाता है। आहाहा! पर के साथ कुछ सम्बन्ध नहीं। पर — अन्य है, वह अलग चीज और द्रव्य की पर्याय अन्य-अन्य होती है, वह अलग चीज है। आहाहा! प्रत्येक द्रव्य की पर्याय अन्य-अन्य होती है, तथापि वह (पर्याय उस द्रव्य के साथ) अनन्य है। अन्य है, वह अनन्य है। दूसरे पदार्थ अन्य हैं वे (अपने द्रव्य के साथ) अनन्य नहीं, वे अत्यन्त भिन्न हैं। आहाहा! समझ में आया?

टीका - वास्तव में सभी वस्तु... देखा? '**द्रव्य**' शब्द न देते हुए '**वस्तु**' कहा है। **सर्वस्य हि वस्तुनः** क्योंकि उसमें बसी हुई अनन्त शक्तियाँ हैं। प्रत्येक द्रव्य — परमाणु कहो या आकाश कहो या जीव हो, (उसे) वस्तु क्यों कहा? कि उसमें अनन्त अन्वयी गुण बसे हुए हैं, अनन्त... अनन्त... अनन्त... अत्यन्त अनन्त! आहाहा! चाहे तो आत्मा हो, चाहे तो आकाश हो या चाहे तो परमाणु हो परन्तु अनन्त... अनन्त... अत्यन्त अनन्त... गुणों से भरपूर (पदार्थ है)। इसलिए उसे वस्तु कहा है। वस्तु में बसी हुई शक्तियाँ हैं, वे अपनी हैं। वह वस्तु दूसरे की शक्ति में बसे और दूसरे की शक्ति यहाँ आवे — ऐसा नहीं है। आहाहा! निकटतम शरीर, निकटतम पुत्र या स्त्री या परिवार (होवे), तथापि वह चीज अत्यन्त भिन्न है। उसका — द्रव्य का विशेषपना अन्य-अन्य होने पर भी, वह पर्याय द्रव्य से अनन्य है, भिन्न चीज नहीं। जैसे भिन्न द्रव्य अत्यन्त अन्य है, ऐसे यह पर्याय अन्य-अन्य होती है, इसलिए अन्य ही है — ऐसा नहीं है। पहले नहीं थी और हुई इस अपेक्षा से अन्य ही कहलाती है और द्रव्य उसमें वर्तता है, इसलिए अनन्य भी है — ऐसा है। चिमनभाई! सूक्ष्म है, भाई!

वास्तव में सर्व वस्तु... में, एक वस्तु नहीं कही, सर्व अर्थात् अनन्त-अनन्त वस्तु। **सामान्य-विशेषात्मक होने से...** प्रत्येक अनन्त वस्तु स्वयं, स्वयं से सामान्य-विशेष है। सामान्य अर्थात् द्रव्यरूप से सामान्य और पर्यायरूप से विशेष। इस प्रत्येक द्रव्य का स्वतः सामान्य-विशेष स्वरूप है। आहाहा! जैसे सामान्यपना एकरूप समूह है, ऐसे विशेषपना पर के संयोग से होता है या पर से होता है—ऐसा नहीं है। प्रत्येक द्रव्य की वह विशेष अवस्था उस-उस समय, पहले नहीं थी और हुई—इसलिए वह अन्य द्रव्य के सम्बन्ध से हुई—ऐसा नहीं है। आहाहा! इस प्रकार अन्य और एकदम अकस्मात् दूसरी पर्याय लगे, तथापि वह पर्याय पहले नहीं थी, इस अपेक्षा से विशेषरूप से देखें तो वह अन्य है परन्तु वही विशेषपना सामान्य वहाँ वर्तता है; इसलिए सामान्य से अनन्य है, सामान्य से पृथक् चीज नहीं है। आहाहा!

जैसे सभी चीजें अत्यन्त भिन्न हैं... आहाहा! एक आत्मा को और दूसरे आत्मा को कोई सम्बन्ध नहीं है। सामान्यरूप से दोनों एक और विशेषरूप से भिन्न—ऐसा भी पर के साथ नहीं। आहाहा! अथवा सामान्यरूप से भिन्न और विशेषरूप से एक ऐसा भी नहीं। क्या कहा यह? जो

अनन्त आत्माएँ और अनन्त परमाणु हैं, वे सामान्यरूप से भिन्न और विशेषरूप से एक हैं—ऐसा भी नहीं है तथा सामान्यरूप से भिन्न हैं, इसलिए पर्याय से भी भिन्न-पर हैं—ऐसा नहीं है। भिन्न स्वयं है परन्तु अनन्य ही है। अपने द्रव्य से उस-उस पर्याय का काल-स्व काल क्रमानुपाती (है, उसमें) कल आ गया है। उस समय वह पर्याय क्रम में—स्व-काल में क्रमानुसार आनेवाली आयी, इसलिए उसे पहली पर्याय की अपेक्षा से अन्य कहते हैं परन्तु वस्तु की अपेक्षा से अनन्य है। आहाहा! वह पर्याय किसी दूसरे से हुई है (— ऐसा नहीं है।) आहाहा! यह बात बैठना (कठिन) भाषा भले ही सरल है परन्तु इसका भाव कठिन है।

कलश-टीका में कहा है। कलश-टीका में! (कि) भाई! कठिन है। वास्तव में कठिन तो है परन्तु स्वरूप का वेदन करने पर वेदन पर से भिन्न ज्ञात होता है। कठिन तो है परन्तु भगवान आत्मा सामान्यरूप जो द्रव्य है, उसे देखने से देखनेवाली पर्याय भले उसकी है, परन्तु वह देखती है सामान्य को; और वह पर्याय ऐसा मानती है कि मैं तो अखण्ड एकस्वरूप विराजमान हूँ! पर्याय ऐसा जानती है। आहाहा! क्योंकि पर्याय का विषय वह है। पर्याय का विषय अकेली पर्याय न रहकर पर्याय का विषय त्रिकाली द्रव्य है। आहाहा! वह त्रिकाली द्रव्य जो वस्तु महाप्रभु है, (वह पर्याय का विषय होता है)।

(यहाँ चलते विषय में) दृष्टान्त जीव का देंगे। बात समस्त द्रव्यों की कहनी है परन्तु दृष्टान्त जीव का देंगे। लोगों को ख्याल में आ सके इसलिए। **वास्तव में सभी वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होने से...** इसका अर्थ कि कोई चीज किसी से बनी है, कोई ईश्वर कर्ता है या एक द्रव्य दूसरे द्रव्य की पर्याय कर सकता है—ऐसा कुछ नहीं है। आहाहा! समस्त द्रव्य अर्थात् वस्तु **सामान्य-विशेषात्मक होने से...** कायम रहने की अपेक्षा से सामान्य और बदलने की अपेक्षा से विशेष। नहीं पलटने की अपेक्षा से सामान्य। आहाहा! प्रत्येक वस्तु नहीं पलटने की अपेक्षा से सामान्य है, पलटने की अपेक्षा से विशेष है, परन्तु दो होकर उसका स्वरूप दो है, उसमें (समाप्त हो जाता है)। पर को और उसे कोई सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! प्रिय पुत्र हो, प्रिय स्त्री हो, उसके साथ कोई सम्बन्ध नहीं है? आहाहा!

मुमुक्षु : आत्मा को पुत्र कैसा?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु कमलभाई पुत्र हो, लो! सात-आठ हजार का वेतन (लावे) अरे! किसका पुत्र? बापू! किसका बाप? किसका बेटा? आहाहा! इसका विशेष भी एक समय टिके... आहाहा! उस-उस द्रव्य का विशेष भी एक समय टिके तो दूसरी चीज उसकी है, यह कहाँ (आया)? प्रभु! आहाहा! समझ में आया?

प्रत्येक वस्तु कायम रहने की अपेक्षा से तो भले ध्रुव है परन्तु क्षणिक अवस्था की

(अपेक्षा से) वह एक समय ही होती है, तथापि विशेष क्षणिक है। एक ही समय है, उसकी है, तथापि एक समय है, और उसे पूर्व की पर्याय की अपेक्षा से अन्य भी कहते हैं और आत्मा की अपेक्षा से अन्दर वर्तता है, इसलिए अनन्य भी कहते हैं। पर को और आत्मा को या एक परमाणु को और दूसरे परमाणु को... आहाहा! कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। यह बात बैठना (कठिन पड़ती है)। ***आहाहा! लोगों को विचार (करने का) समय कहाँ है ? कहाँ (विचार) करते हैं ? दुनिया की जंजाल में... आहाहा! समय बिताकर जिन्दगी चली जाती है, फिर बहुत-सों का अवतार पशु में होना है, तिर्यंच में जाना है। आहाहा! क्योंकि धर्म नहीं तथा यह क्या वस्तु है ?— उसे समझने का विकल्प भी विशेष नहीं कि दिन में दो-दो, चार-चार घण्टे यह क्या चीज है ? (इसे ग्रहण करने का प्रयत्न करे) तब तो पुण्य भी बाँधे। आहाहा!***

यहाँ कहते हैं कि **वस्तु का स्वरूप देखनेवालों के क्रमशः (१) सामान्य और (२) विशेष को जाननेवाली दो आँखें हैं...** इस प्रकार लिया। अनुक्रम से सामान्य और विशेष को देखने में द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक (दो चक्षुएँ हैं)। एक साथ देखने का भी लेंगे। पाठ तो इतना लिया है परन्तु एक साथ देखने में भी लेंगे।

इनमें से पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके... यहाँ से उठाया है लो! द्रव्यार्थिक को बन्द करके (ऐसा) वहाँ से नहीं उठाया है। प्रत्येक द्रव्य को देखने के लिये पर्यायार्थिक आँख को सर्वथा बन्द करके... पर्याय है अवश्य, है परन्तु उसे देखने की आँख को—दृष्टि को बन्द करके... आहाहा! गजब बात है! पहले तो कहा कि सामान्य-विशेष वस्तु है परन्तु विशेष को देखने की आँख को बन्द करके... आहाहा! है ? वह भी फिर कथंचित् बन्द करके—ऐसा नहीं! **पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके...** (ऐसा कहा है)। जानना है न ? (इसलिए ऐसा कहा है) आहाहा!

मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा... (अर्थात्) अकेली खुली हुई ज्ञान की पर्याय, आहाहा! द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा (अर्थात्) द्रव्य जिसका प्रयोजन है। अर्थ अर्थात् द्रव्य - अर्थ - द्रव्य जिसका प्रयोजन है, उस नय से देखने पर विशेष नय की आँख बन्द करके... आहाहा! **मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक...** भाषा देखी!? उस (अवस्था को देखनेवाली आँख) तो बन्द कर दी, अवस्था को देखनेवाली आँख बन्द कर दे... आहाहा! तो तुझे सामान्य, अवस्था में ज्ञात होगा। अवस्था को देखने की आँख बन्द करने से सामान्य को देखना। वह देखना तो फिर पर्याय-विशेष है, परन्तु पर्याय को देखने का विषय विशेष नहीं, सामान्य रहेगा। विशेष की देखने की पर्याय—आँखें सर्वथा बन्द कर दे। दूसरे को देखने का बन्द कर दे, यह बात तो एक ओर रही। आहाहा!

तेरे अतिरिक्त दूसरे पदार्थ—चाहे तो भगवान तीन लोक के नाथ! उन्हें देखने की दृष्टि, वह कहीं पर्यायदृष्टि या द्रव्यदृष्टि नहीं है। आहाहा! मात्र तुझमें दो प्रकार हैं—सामान्यपना

(अर्थात्) कायम रहनापना और बदलनापना (अर्थात्) विशेषपना। इस बदलनेपने की आँख को बन्द करके... पर को देखने की आँख बन्द करके, यह तो नहीं। आहाहा! आहाहा! गजब बात है! पर को देखने का तो बन्द ही कर दे। आहाहा! थोड़े शब्दों में बहुत (भरा) है, हाँ प्रभु! आहाहा! बहुत बातें (भरी हैं)! आहाहा!

पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके... ऐसा नहीं कहा कि परद्रव्य को देखने का बन्द करके... आहाहा! प्रभु तुझमें जहाँ सामान्य और विशेष—दो पड़खे हैं, वे दो हैं, उनमें भी विशेष को देखने की आँख 'सर्वथा' बन्द करके... कथंचित् खोलकर और (कथंचित्) बन्द करके (ऐसा नहीं कहा) अथवा गौण करके, यह भी यहाँ तो नहीं (कहा)। आहाहा!

मुमुक्षु : आप तो अभी ही सम्यग्दर्शन होने की बात कर रहे हो।

पूज्य गुरुदेवश्री : आहाहा! वस्तु (ऐसी है)। तीन लोक के नाथ की दिव्यध्वनि है। आहाहा! जगत् का भाग्य है कि वाणी रह गयी है। कुन्दकुन्दाचार्य तो निमित्त हैं। आहाहा! इसे सुनने का और विचार करने का अवसर नहीं लेना... प्रभु! तुझे कहाँ जाना है? कहाँ रहना है?

यहाँ तो पर्याय की आँख भी सर्वथा बन्द करके (—ऐसा कहते हैं)। आहाहा! स्त्री-पुत्र देखना बन्द कर दे यह बात तो (नहीं की है) वे तो तुझमें नहीं उनकी तो हम बात ही नहीं करते। समझ में आया?

पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके जब मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा... परन्तु खुली हुई, हाँ! वह ज्ञान वापस (खुला हुआ है)। उसे देखनेवाली है तो पर्याय परन्तु वह खुला हुआ ज्ञान। पर्याय को देखने का बन्द कर दिया तो स्व को देखने का ज्ञान खुला। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! क्या टीका! ऐसी बात कहाँ है? भरतक्षेत्र में... आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने तो अमृत का सागर बहाया है! थोड़े शब्दों में बहुत (भरा है)! क्या कहें उसकी गम्भीरता!! आहाहा!

ऐसा वे कहते हैं। पहले बात (कि) सर्व वस्तुएँ सामान्य विशेषात्मक है। अब, तेरी वस्तु को तुझे देखना हो तो... आहाहा! **जब मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है...** देखो, इसमें पर की बात नहीं ली है कि पर्यायनय को बन्द करके पर को देखना। आहाहा! पर्यायार्थिकनय को बन्द करके... ओहोहो! अमृत बहाया है प्रभु ने! अरे! जगत् को (समझने की फुरसत कहाँ है)।

कहते हैं कि तुझमें दो प्रकार—सामान्य और विशेष। उसमें जीव को उतारते हैं, हाँ! सामान्य बात तो करते हैं, सामान्य-विशेष सबकी (बात करते हैं) परन्तु घटित करते हैं जीव में। जीव में घटित करके कहेंगे कि फिर सब द्रव्यों में (तद्नुसार) समझ लेना, ऐसा। आहाहा!

जयसेनाचार्यदेव की टीका में है, इसमें स्पष्ट नहीं है। जयसेनाचार्यदेव की टीका है न! उसमें है, देखो! '**सर्वद्रव्येषु यथासंभवं ज्ञातव्यभित्यर्थः**' अन्तिम शब्द है। जयसेनाचार्यदेव की टीका। यह तो धीरजवान का काम है, भाई! उसमें आता है न? भाई! निभ्रत! निभ्रत पुरुषों द्वारा! आहाहा! चिन्तारहित पुरुषों द्वारा। आहाहा! निभ्रत पुरुषों द्वारा यह वस्तु विचारी जाती है। आहाहा!

मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक... पर्यायचक्षु को सर्वथा बन्द करके... एक तो जोर दिया। इसलिए मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा... आहाहा! द्रव्य को देख सके उस प्रकार ज्ञान की (पर्याय) प्रगट करके... आहाहा! पर्याय को देखना नहीं परन्तु द्रव्य को देखने की पर्याय का उघाड़ प्रगट करके। आहाहा! **मात्र खुली हुई...** वापस **खुली हुई...** कहा है, हाँ! (अर्थात्) प्रगट करके... आहाहा! वस्तु है वस्तु, उसे कहते हैं कि पर्याय को देखने की आँख बन्द करके और द्रव्यार्थिक को (देखने के) **खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा...** यह इस नय का ज्ञान खुला हुआ है। द्रव्यार्थिक को जो नय देखता है, वह ज्ञान खुला हुआ है। पर्याय को (देखने का) जब बन्द कर दिया है, तब उसे स्व को देखने का ज्ञान खुला है। आहाहा!

अकेले खुले हुए द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा जब अवलोकन किया जाता है देखा जाता है तब नारकपना, तिर्यंचपना,... देखो, जीव में घटित किया। **मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना...** सिद्ध भी पर्याय है न? आहाहा! इन **पर्यायस्वरूप विशेषों में रहनेवाले...** इन **पर्यायस्वरूप विशेषों में रहनेवाले एक जीवसामान्य को देखनेवाले...** आहाहा! वापस अवलोकन करनेवाली पर्याय; अवलोकन करनेवाली पर्याय है। पर्याय को देखना बन्द करके, द्रव्य को देखने की खुली हुई ज्ञान की पर्याय से (अवलोकन करने से)... आहाहा! क्या भरा है! अब, ऐसे का ऐसा पढ़ जाये (फिर कहे) प्रवचनसार पढ़ गये... एक व्यक्ति कहता है—महाराज! बहुत महिमा करते हैं न (तो) समयसार पन्द्रह दिन में पढ़ गया हूँ। बापू! पन्द्रह दिन में भाई! उस गहन बात का पार आवे ऐसा नहीं है। प्रभु! आहाहा! गहन बात है। यह प्रवचनसार चलता है। प्रवचन-दिव्यध्वनि चलती है। आहाहा!

मुमुक्षु : आज दिव्यध्वनि का दिन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, आज दिव्यध्वनि का दिन है, बात सत्य है। श्रीमद् की ओर से दिव्यध्वनि (नाम का मासिक) पत्र निकाला है, भाई! गड़बड़ सब गड़बड़! श्वेताम्बर का डाला, श्वेताम्बर के साधु ने ऐसा किया और अमुक ने ऐसा किया (उसमें लिखा है)। भाई का लेख है, भोजूभाई नहीं? मोरबीवाले। श्रीमद् ने छह पद कहे, उसमें सम्यग्दर्शन की व्याख्या की है। छह पद को देखना। यहाँ तो कहते हैं कि छह पद का भेद है... आहाहा! उस आँख को बन्द करके... आहाहा! बहिनों लड़कियों को सूक्ष्म पड़े तो ध्यान रखकर सुनो बापू! यह तो अमृत का

घर है। बापू! महा कठिनता से आया है। आहाहा! बहिन-लड़कियों-माताओं को थोड़ा सूक्ष्म पड़ेगा, धीरे से सुनना, विचार करना, भाई! आहाहा! अरे! ऐसा समय कब आवे? भाई!

क्या भाव भरे हैं! देखा? कहते हैं कि वस्तु सामान्य-विशेष है। उसे विशेष (को) देखने की आँख सर्वथा बन्द करके और द्रव्यार्थिक खुले हुए ज्ञान-द्रव्य को देखनेवाला खुला हुआ ज्ञान; वापस वह है तो पर्याय... आहाहा! परन्तु पर्याय, पर्याय को न देखकर, पर्याय द्रव्य को देखने से... ऐसा कहना है। आहाहा! गजब बात है, भाई! आहाहा! समझ में आया? भाई!

वस्तु है भगवान आत्मा! उसमें सामान्य और विशेष दो पहलू हैं अवश्य, तथापि विशेष पहलू को देखने की आँख तो सर्वथा बन्द कर दे। पर को देखने की बात तो नहीं परन्तु तेरी पर्याय को सर्वथा देखने का बन्द कर दे। आहाहा! और **मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक...** अकेले द्रव्य को देखने का जो खुला हुआ ज्ञान है... आहाहा! गजब भरा है न? सामने पुस्तक है न? आहाहा! मात्र (कहा क्योंकि) उस (पर्यायार्थिक चक्षु को) बन्द कर दिया न? अकेला कहा; वापस इस खुला हुआ द्रव्यार्थिक है। ऐसा का ऐसा द्रव्यार्थिक नहीं, जिसे द्रव्य का प्रयोजन है—ऐसा ज्ञान खुला है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। आहाहा! जीवनरामजी! सन्तों ने तो अमृत बहाया है। शब्द-शब्द में कितनी गम्भीरता और कितनी गहराई है! आहाहा! सत्य को समझने के लिए भले ही थोड़ा समय लगे परन्तु थोड़ा (भी) सत्य भलीभाँति समझना चाहिए। आहाहा!

भगवान आत्मा सामान्य और विशेष होने पर भी... सामान्य अर्थात् त्रिकाली ध्रुव रहना और विशेष अर्थात् पर्याय बदलती रहना, तथापि बदलती पर्याय को देखने की आँख बन्द करके... आहाहा! दूसरे को देखने का—भगवान को देखने का बन्द करके... (ऐसा नहीं कहा।) आहाहा! परन्तु तेरी पर्याय है, उसे देखने की आँख बन्द करके... आहाहा! विमलचन्दजी! विमलचन्द की बात चलती है यह। प्रभु, तेरी बात तो देख! आचार्य सन्त कह नहीं सकें (इतनी) गम्भीर बात! (सब) छोड़कर (जंगल में) बैठे हैं। आहाहा!

(पर्याय को) देखने का सर्वथा बन्द करके... प्रभु! क्या कहना है आपको? आहाहा! आत्मा को देखने के लिये उसकी पर्याय को देखने की आँखें सर्वथा बन्द करके और जब अब द्रव्यार्थिक को देखना है न? (तो वह देखने का) तो पर्याय में आता है या नहीं? इससे कहते हैं कि **मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा...** आहाहा! वाह! प्रभु! कहते हैं, अन्दर की ज्ञान की पर्याय अकेले द्रव्य को जाने, वह खुली है। आहाहा! पर्यायार्थिक को देखे वह सर्वथा बन्द हो गयी है। आहाहा! ऐसी बातें सुनने को नहीं मिलती और फिर लोग (ऐसा कहते हैं) एकान्त है... वहाँ एकान्त है...! बापू! एकान्त है। सुन भाई! आहाहा! बापू! तेरे घर की बातें हैं, भाई! ओहो!

सन्त कहते हैं कि तेरी पर्याय को देखना तू सर्वथा बन्द कर दे। आहाहा! और द्रव्य को देखने का जो खुला हुआ ज्ञान, आहाहा! समझ में आया? आहाहा!

जब मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है... देखा जाता है। वह तो पर्याय हुई न ? पर्याय से द्रव्य को देखने में आता है न ? आहाहा ! पर्याय को पर्यायरूप से देखने का बन्द कर दे और द्रव्य को देखने की खुली हुई पर्याय द्वारा अवलोकन कर। आहाहा ! ऐसी बात है। आहाहा !

(द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा) **जब देखा जाता है तब नारकपना,...** अब जीव पर लिया। कहना तो है सब द्रव्यों का, परन्तु इसे एकदम समझ में आये, इसलिए जीव को यह समझाये तो पर को बराबर समझे और स्व को बराबर समझे तो पर को जाने परन्तु इसे ही न जाने तो पर को जानना कहाँ से आवे ? स्व-पर प्रकाशक इसका स्वभाव है परन्तु स्व को जाने बिना पर का प्रकाशक जानने का स्वभाव होने पर भी स्व को जाने बिना उसमें पर का जानना नहीं आ सकता। आहाहा ! समझ में आया ?

नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना... सिद्ध भी पर्याय है। आहाहा ! सिद्ध की पर्याय को देखने की दृष्टि को बन्द करके, आहाहा ! गजब बात ! प्रभु ! आपको क्या कहना है ? सिद्ध की पर्याय को, पर्यायनय को-पर्याय को देखनेवाली आँख को सर्वथा बन्द करके... सुमनभाई ! यह तुम्हारे कायदे-फायदे में कहीं नहीं आया होगा ? आहाहा ! आया, बराबर ठीक, भाग्यशाली ! समय पर यह बात आयी। आहाहा ! ***जितना गहरा भासित होता है, भाषा उतनी सब नहीं आती।*** आहाहा !

आहाहा ! सन्त कहते हैं कि तेरी पर्याय को देखने की आँख बन्द कर दे ! अरे ! प्रभु ! क्या कहना है आपको ? आहाहा ! दूसरे को देखना—परमात्मा, पंच परमेष्ठी (को देखना), वह बात तो कहीं अन्यत्र रह गयी। आहाहा ! परन्तु तेरी पर्याय देखने की आँखों को भी सर्वथा बन्द करके और पर्याय में द्रव्य को देखने का हो, वह ज्ञान उघाड़ कर... आहाहा ! वहाँ (ज्ञान) खुलता है—ऐसा कहते हैं। इस प्रकार पर्यायार्थिकनय को बन्द किया तो अन्दर स्व को देखने का ज्ञान खुलता है। आहाहा ! (देखनेवाली) वह है तो पर्याय परन्तु पर्याय का विषय यहाँ पर्याय नहीं है।

पर्यायस्वरूप... ये पाँचों पर्याय कहीं न ? चार गति की और एक सिद्ध की। आहाहा ! इस सिद्ध को देखने की पर्याय की आँख को भी बन्द करके... अरे..! आहाहा ! स्वयं को तो सिद्ध पर्याय नहीं परन्तु श्रद्धा में उसे है कि मुझे सिद्ध पर्याय होनेवाली है, तथापि उस सिद्ध पर्याय को देखने की आँख बन्द कर दे और जो दूसरे सिद्ध हैं—अनन्त सिद्ध ! वदित्तु सव्व सिद्धे लो ! वहाँ यह लिया ! भाई ! समयसार में ! ज्ञान में (सिद्धों को) स्थापित करके—ऐसा वहाँ कहा न ? यहाँ तो कहते हैं कि तेरी पर्याय में सिद्ध को देखने का बन्द कर दे। आहाहा ! भाई ! यह तो प्रवचनसार है। भाई ! यह तो सन्तों का हृदय-कलेजा है ! आहाहा ! अरे ! ऐसी बात सुनने को कहाँ मिले ? भाई ! आहाहा !

कहते हैं कि खुले हुए द्रव्यार्थिकनय द्वारा... आहाहा! जब इस (पर्याय को देखने का) बन्द किया तो उसे स्व को देखने का ज्ञान खुला। समझ में आया? (द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा) जब अवलोकन किया जाता है, तब सिद्धपद आदि **पर्यायस्वरूप विशेषों में रहनेवाले एक जीवसामान्य को देखनेवाले...** आहाहा! देखा? पर्याय की ओर की आँख बन्द करके, (ऐसा कहकर) फिर तो द्रव्य को (देखने का) बन्द कर दे और पर्याय को जाने—ऐसा भी कहेंगे। जानने की अपेक्षा से (ऐसा भी कहेंगे)। परन्तु यहाँ मूल पहले यहाँ से लिया है। द्रव्य को देखने का – यहाँ से लिया है। आहाहा!

भगवान! यह तो भगवान के घर की बातें हैं! बापू! पामर प्राणी क्या कहे इसे? आहाहा! ऐसी चीज है! लो! ऐसा अभिमान कर डालते हैं कि यह मुझे आता है, (हमने) बहुत पढ़ा है, बापू! आहाहा! (वह सारा) गर्व उतर जाये—ऐसा है, भाई! तेरी पर्याय को देखना भी बन्द कर दे। आहाहा! और देखना रहेगा तो सही, उस (पर्याय को देखने का) बन्द किया तो द्रव्य को देखने का खुला ज्ञान... आहाहा! उसके द्वारा देखे जाने पर **पर्यायस्वरूप विशेषों में रहनेवाले...** इन पाँचों पर्यायों में—विशेषों में रहनेवाले **एक जीवसामान्य को देखनेवाले...** भाषा क्या है? **पर्यायस्वरूप विशेषों में रहनेवाले...** आहाहा! दूसरी चीज तो कहीं पर्याय में रही हुई है ही नहीं। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र और सिद्ध को भी निकाल दिया! आहाहा! मात्र पर्यायें—जो सिद्ध की पर्याय है—ऐसे विशेषों में रहनेवाले, उन विशेषों में रहनेवाले, **एक जीवसामान्य को देखनेवाले...** (अर्थात्) एक जीव को सामान्य एकरूप ध्रुव को जाननेवाले... (यह) पर्याय तो हुई। आहाहा! कहो, ऐसा कभी सुना था? स्थानकवासी में कहीं नहीं था? भगवान त्रिलोक के नाथ की यह वाणी है। आहाहा! आत्मा को स्पर्श करा दे—ऐसी बात है! रहे नहीं भाई! अब अलग नहीं रह सकता। आहाहा! इस प्रकार जिसने देखा कि जिसे सिद्ध की पर्याय पर भी दृष्टि नहीं है परन्तु उस पर्याय में रहनेवाला जो आत्मा (है उसे अवलोकन करता है / देखता है) आहाहा! है? **पर्यायस्वरूप विशेषों में रहनेवाले एक जीवसामान्य का... एक जीवसामान्य का...** वे पाँच पर्यायें थी। आहाहा! उन पाँचों पर्यायों में रहनेवाला... आहाहा! आहाहा! क्या शैली! और क्या टीका! गजब है!

एक जीवसामान्य को देखनेवाले और विशेषों को न देखनेवाले... आहाहा! क्या कहा? **एक जीवसामान्य को...** यह सामान्य क्या होगा? कायम रहनेवाली एकरूप, बदले बिना रहनेवाली एक चीज, अस्तिरूप बदले बिना कायम रहनेवाला (तत्त्व) वह सामान्य है। आहाहा! यह तो बनियों के व्यापार के धन्धे में कहीं आया नहीं होगा? कान्तिभाई! पाउडर का धन्धा है न इसे।

मुमुक्षु : वह विषय अलग और यह विषय अलग।

पूज्य गुरुदेवश्री : यहाँ तो इस विषय को देखने का भी बन्द। पाउडर है, वह परमाणु की एक पर्याय है, उसे देखने का नहीं।

यहाँ तो सिद्ध की पर्याय को देखने से ना किया है। आहाहा! हाँ, उसमें रहनेवाले... है न? **एक जीव सामान्य को देखनेवाले...** आहाहा! **और विशेषों को न देखनेवाले...** आहाहा! उन **जीवों को 'वह सब जीवद्रव्य है' ऐसा भासित होता है।...** है? आहाहा! अपनी पर्याय को, सिद्ध आदि पर्याय को भी देखने की आँख बन्द कर दे। आहाहा! यह (जड़) आँख ऐसी बन्द कर दे वह नहीं, हाँ! जो पर्याय देखने में आती है, उस पर्याय को (देखने का) बन्द कर दे और खुले हुए—द्रव्यार्थिकनय के खुले हुए चक्षु द्वारा (देखने पर)... आहाहा! पर्याय में रहनेवाले... आहाहा! (एक जीवसामान्य को देखनेवाले उन जीवों को) **'वह सब जीवद्रव्य है' ऐसा भासित होता है।...** आहाहा! वह पर्याय की नजर बन्द करके और द्रव्य को जानेवाली खुली हुई पर्याय द्वारा द्रव्य को देखने से 'वह सब जीवद्रव्य है' बस! वस्तु यह है (ऐसा भासित है)। आहाहा! समझ में आया? **'वह सब जीव द्रव्य है'...** उसमें पर्याय के भेद नहीं। पर्याय में रहनेवाला कहा, ऐसा कहा न? **पर्यायस्वरूप विशेषों में रहनेवाले एक जीवसामान्य को देखनेवाले और विशेषों को न देखनेवाले जीवों को 'वह सब जीवद्रव्य है' ऐसा भासित होता है।...** आहाहा!

भगवान आत्मा! द्रव्य सामान्य, जो अनन्त... अनन्त... अनन्त... अचिन्त्य अनन्त शक्तियों का एकरूप सागर प्रभु, (उसे) द्रव्यार्थिकनय के खुले हुए ज्ञान से देखने पर वह सब जीव ही है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी गाथायें साधारण लगे... (कोई ऐसा कहता है), प्रवचनसार ऐसा है और उसकी अपेक्षा समयसार ऐसा है, बापू! सब है वह है। समयसार, प्रवचनसार, नियमसार उसकी क्या बात करना! भरतक्षेत्र में कहीं ऐसी बात है नहीं और इस प्रकार अन्दर (परिणमन) करे तो प्राप्त हुए बिना रहे ही नहीं—ऐसा कहते हैं। ऐसा कहा न? **'वह सब जीव द्रव्य है' ऐसा भासित होता है।...** कहा न? क्या कहा? **भासित होता है...** ऐसा कहा। ज्ञात होता है—ऐसा कहा। आहाहा! धन्य काल! धन्य समय, बापू!

पर्याय को देखनेवाली दृष्टि को सर्वथा बन्द करके और द्रव्य को देखनेवाले खुले हुए द्रव्यार्थिकनय के ज्ञान द्वारा इन पाँचों ही पर्यायों में रहनेवाला... पाँचों पर्यायों में रहनेवाला (कहा)! पर में तो रहा है ही नहीं, पर की पर्याय में तो रहा है ही नहीं, व्यवहार से भी नहीं रहा। आहाहा! यह तो अपनी पाँच पर्यायों में रहा है (ऐसा कहा)। आहाहा! ऐसे जीव को देखनेवाले (और) विशेषों को नहीं देखनेवाले (जीव को) यह **'सब जीवद्रव्य है' ऐसा भासित होता है।...** आहाहा! इस प्रकार यदि देखे तो जीवद्रव्य भासित होता है (ऐसा कहते हैं)। आहाहा! प्रभु! यह पाँचवाँ काल है—ऐसा हल्का काल है... उसमें... काल-बाल कहीं लागू नहीं पड़ता, प्रभु! जिसे पर्यायनय भी लागू नहीं पड़ती! आहाहा! जानने के लिये पर्यायनय से देखने की बात करेंगे परन्तु वह बाद में करेंगे। पहले यह करके (बाद में वह बात करेंगे) दो नयों में पहले यह नय ली है। आहाहा!

मुमुक्षु : तभी पर्याय का ज्ञान सच्चा होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : तब ज्ञान सच्चा, यह बात नहीं। ज्ञान उसे देखता है (ऐसा कहना है)। वही ज्ञान सच्चा है; तथापि सच्चा ज्ञान देखता है (ऐसा कि) यह सब जीवद्रव्य है। पाँचों पर्यायों में रहनेवाला यह... यह तत्त्व है। आहाहा! अच्छी बात है। प्रवचनसार अभी पढ़ा नहीं था।

यहाँ अधिक वजन, यहाँ है। यह तो पर्याय भासती है—ऐसा भी कहेंगे। पर्यायनय से भासती है (— ऐसा) ज्ञान करने को (कहेंगे)। यहाँ तो पहले यहाँ से शुरु किया है। आहाहा! प्रभु! तेरी पाँच पर्यायों में रहनेवाला तू; उस पर्याय को देखने की आँख बन्द कर दे! सिद्ध की पर्याय को देखने की आँख बन्द कर दे। आहाहा! और यह वस्तु जो है, उसके खुले हुए ज्ञान द्वारा अवलोकन कर। तब तुझे भासित होगा कि यह सब जीव है।

पूरा परमात्मा आहाहा! अनन्त... अनन्त अचिन्त्य शक्ति का एकरूप! एकरूप, दोरूप भी नहीं। आहाहा! आहाहा! गुणभेद भी नहीं – ऐसा कहा न? आहाहा! क्या टीका? अमृतचन्द्राचार्य! जीव जरा शान्ति से विचार नहीं करते, पढ़ते नहीं और एकदम कर डालते हैं — उनका एकान्त है... एकान्त है... एकान्त है... भाई! बापू! (उसके) परिणाम आयेगा, भाई! परिणाम तो सत्य होगा वह आयेगा। असत्य का असत्य परिणाम आयेगा। बापू! आहाहा!

यह एक बात पहले ली, अब पर्याय को देखने की बात लेते हैं। **और जब द्रव्यार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके...** देखा? ज्ञान कराना है न? पर्याय इसकी है, इसमें है, उसमें यह रहता है; इसलिए पर्याय का ज्ञान कराना है। आहाहा! पर का ज्ञान कराने की यहाँ बात नहीं है। आहाहा! **जब द्रव्यार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके मात्र खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षु के द्वारा...** देखा? खुली हुई तो है जानने की पर्याय। पर्याय को देखनेवाला ज्ञान है न? जैसे द्रव्य को देखनेवाला ज्ञान है, वैसे पर्याय को देखनेवाला ज्ञान है न? आहाहा! **खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है, तब जीवद्रव्य में रहनेवाले...** जीवद्रव्य में रहनेवाले **नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना — पर्यायस्वरूप अनेक विशेषों को देखनेवाले...** जीव द्रव्य में रहनेवाले—ये पाँचों पर्यायें जीवद्रव्य में (रहती है)। आहाहा! ये कहीं पर में नहीं है। आहाहा! ऐसा उपदेश! इसलिए अनजान व्यक्तियों को-क्रियाकाण्डवालों को ऐसा लगता है कि यह क्या लगा रखी है? आहाहा! बापू! प्रभु! तेरे घर की बात है भाई! आहाहा! तेरा घर इतना बड़ा है, यह तूने सुना नहीं है। प्रभु! आहाहा!

पर्याय से विशेष बात आयेगी।

(१४) श्री प्रवचनसार, गाथा-११४ प्रवचन नं. १२६
दिनांक ११-०७-१९७९

प्रवचनसार, गाथा ११४। **वास्तव में सभी वस्तु...** (सर्व वस्तु कहा परन्तु) दृष्टान्त आत्मा का देंगे, परन्तु सर्व सामान्य वस्तु के लिए कथन है। ***सभी वस्तु सामान्य-विशेषात्मक होने से वस्तु का स्वरूप देखनेवालों के क्रमशः (१) सामान्य और (२) विशेष को जाननेवाली दो आँखें हैं... इसमें क्या कहा ? कि देखनेवाला जो आत्मा है, वह सामान्य-विशेष (देखता है), पर को नहीं। अपनी विशेष पर्याय में पर ज्ञात होता है, वह अपनी पर्याय है। पर्याय ज्ञात होती है। इसलिए (ऐसा कहा कि) सामान्य-विशेष को देखनेवाले.... पर को देखनेवाले, यह बात नहीं। समझ में आया ?***

सभी वस्तु सामान्य-विशेषरूप होने से, विशेषस्वरूप होने से वस्तु का स्वरूप देखनेवाला अनुक्रम से पहले सामान्य जानता है, फिर विशेष जानता है, क्योंकि सामान्य का ज्ञान यथार्थ होवे, उसे विशेष का ज्ञान यथार्थ होता है और विशेष जानने में भी पर जानता है, यह बात यहाँ नहीं ली है। क्योंकि आत्मा जो पर को जानता है, वह तो अपनी पर्याय में पर्याय को जानता है। आहाहा! समझ में आया ? यह कल नहीं आया था। वे लोग आये हैं तो नया तो कुछ आयेगा। आहाहा!

वस्तु को सामान्य-विशेष देखनेवाले—ऐसा कहा। वस्तु को सामान्य-विशेष और पर देखनेवाले—ऐसा नहीं कहा। स्वयं अपने को पर्याय में ज्ञात होता है, पर्याय ज्ञात होती है। वह वस्तु ज्ञात होती है—ऐसा कहना तो असद्भूत व्यवहार है। आहा...हा...! सामान्य जो त्रिकाल आत्मा है, उसका जो विशेष है, उस विशेष में विशेष को जानना है। यहाँ तो विशेष के द्वारा पहले सामान्य ज्ञात होगा, वहाँ वस्तु के कारण फिर विशेष को जानेगा—ऐसा कहेंगे। क्योंकि सामान्य को जानने से जो ज्ञान होता है, वह वास्तविक अपनी विशेष पर्याय है, उसे वास्तविक रीति से वही जान सकता है। आहाहा!

(१) सामान्य और (२) विशेष को जाननेवाली दो आँखें हैं... तीन चक्षुएँ नहीं कही। अपना सामान्यस्वरूप और अपना विशेषस्वरूप, बस! इस विशेष में दूसरे ज्ञात हो जायें, वह विशेष तो अपनी पर्याय है। आहाहा! यह कल नहीं आया था। वे लोग आये हैं, इसलिए आज

फिर से लिया है। आहाहा! और **क्रमशः...** ऐसा शब्द है न? पहले सामान्य को देखता है फिर विशेष (को देखता है)—ऐसा आयेगा। समझ में आया?

इनमें से... अब इसमें (अर्थात्) सामान्य और विशेष देखनेवाले हैं, इसमें। **पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके...** अपनी पर्याय में जो ज्ञात होता है, वह पर्याय ज्ञात होती है; इसलिए पर को जानने की चक्षु बन्द करके—ऐसा नहीं कहा। अपनी जो पर्याय है, उसमें सब ज्ञात होता है, वह पर्याय जानती है। वह पर्याय है, उस पर्यायदृष्टि के चक्षु बन्द करके... आहाहा! यह तो कोई बात है! आँख बन्द करके और पर वस्तु का जानना बन्द करके—ऐसा नहीं कहा। समझ में आया? आहाहा! गम्भीर वस्तु है, भगवान! कोई भी एक-एक गाथा लो, प्रवचनसार, समयसार, नियमसार... नियमसार की तो बात क्या करना! स्वयं ने स्वयं के लिये बनाया! आहाहा! वह तो स्वयं के लिए बनाया! आहाहा! यह तो उपदेश के वाक्य हैं।

(एक भाई का) इनका लड़का मर गया, युवा! दो वर्ष का विवाहित, स्त्री युवा! यहाँ सुन गये। यहाँ चार दिन सुनकर गये, सुन करके पालीताना गये, वहाँ एकदम रोग हो गया, युवा! २३ वर्ष की उम्र उसकी पत्नी गुजर गयी परन्तु आँख में से आसूँ नहीं। शोक कराने आवें, उन्हें समझावे—भाई! वह तो मेहमान था, वह मेहमान कितना काल रहेगा? आहाहा! बापू! जगत् की चीजें ऐसी हैं।

यहाँ कहते हैं कि पर को नहीं जानता। आहाहा! केवली लोकालोक को जानते हैं (—ऐसा) कहना वह भी असद्भूत व्यवहार है। आहाहा! पर के साथ सम्बन्ध क्या है? पर और स्व के बीच अत्यन्त अभाव का महा किला पड़ा है। स्वद्रव्य और परद्रव्य की पर्याय के बीच; द्रव्य-गुण तो ध्रुव सामान्य है... आहाहा! पर्याय के बीच अत्यन्त (अभाव का) किला पड़ा है। सबेरे कहा था न? अभय का! भगवान आत्मा अभय है, दुर्घट किला है—ऐसा यह किला है कि जिसमें पर्याय का प्रवेश नहीं है। आहाहा!

यहाँ तो एक समय की जो पर्याय है, उसमें पर का प्रवेश नहीं और पर को तथा पर की पर्याय और स्व की पर्याय के बीच अत्यन्त अभावरूपी किला पड़ा है। आहाहा! तथापि यहाँ शब्द ऐसा लिया है कि भगवान आत्मा विशेष को जानता है। सामान्य को जानता है, यह पहले कहने के बाद विशेष को जानता है (—ऐसा कहते हैं)। पर को जानता है—ऐसा नहीं लिया। भाई! आहाहा! अब, आँखें बन्द करके और पर का देखना बन्द करके—ऐसा नहीं लिया।

पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा... कथंचित्—ऐसा भी नहीं। आहाहा! पर्याय में जो विशेषता है, उसे जो स्वयं जानता है परन्तु उस पर्याय चक्षु को सर्वथा बन्द करके... अरे..रे! आहाहा! आँख बन्द करके और पर को देखना बन्द करके—ऐसा नहीं कहा। आहाहा! भाई! यह तो वीतराग की

दिव्यध्वनि है। आहाहा! **पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके...** (अर्थात्) पर्याय का लक्ष्य ही छोड़ करके... अपनी पर्याय, हाँ! **मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा...** यह क्या कहा? कि पर्याय को (देखने की) बन्द किया परन्तु अब कोई देखनेवाली पर्याय रही है या नहीं? द्रव्य को देखनेवाली पर्याय रही है या नहीं? **खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा... मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा...** आहाहा! गजब काम किया है न! यह टीका!

पर्यायार्थिक (चक्षु द्वारा) पर को (देखना बन्द करके ऐसा) नहीं परन्तु अपनी पर्याय को देखना, सर्वथा बन्द करके; अकेले खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा... द्रव्यार्थिक नय है, वह ज्ञान है, वह खुला हुआ ज्ञान है। (वह) है तो पर्याय परन्तु देखनेवाली पर्याय देखनेवाले को न देखकर अर्थात् पर्याय को न देखकर, खुला हुआ ज्ञान (द्रव्य को देखता है)। पर्याय (को देखना) बन्द किया है, तथापि खुला हुआ ज्ञान है, तब वह ज्ञान द्रव्य को जानता है। आहाहा! यह तो तीन लोक के नाथ की बातें हैं, बापू! यह कोई ऐरे-गैरे की बात नहीं है। आहाहा!

कहते हैं कि वस्तु सामान्य-विशेष तू स्वयं है। उसमें विशेष में पर को जानना, वह कुछ नहीं आया? यह तो वहाँ तेरी पर्याय ही ज्ञात होती है। अब, वह पर्याय ज्ञात होती है, उसकी आँखें बन्द करके... पर्याय को देखने की चक्षु सर्वथा बन्द करके... परन्तु अब बन्द करके हुआ परन्तु तब कोई द्रव्य को देखनेवाली ज्ञानचक्षु कुछ रही है या नहीं? आहाहा! **मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु...** भाषा देखो! आहाहा! मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिकनय... अजब बातें हैं, बापू! यह तो वीतराग त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ की वाणी हैं! आहाहा!

पर्यायार्थिक (चक्षु को) बन्द किया न? तब 'मात्र' कहा न? परन्तु **मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु...** द्रव्यार्थिकनय है। नय है न? अर्थात् द्रव्य को देखनेवाली खुली हुई दशा, खुली हुई है। पर्याय को देखना जहाँ बन्द किया... आहाहा! वहाँ द्रव्य को देखनेवाली पर्याय विकसित हो गयी है। आहाहा! यह कल ले लिया गया था, हों! आज तुम आये हो तो फिर से लिया है।

मुमुक्षु : हमें भी लाभ मिला न!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो जब-जब (कहें), तब बात ही कोई अलग है! अलौकिक! वाणी में गम्भीरता का पार नहीं, प्रभु! आहाहा!

कहते हैं कि पर को जानने की बात तो छोड़ दी, पर को जानने का बन्द कर दे — ऐसा नहीं कहा, क्योंकि यह पर को नहीं जानता है। आहाहा! 'ऊर्ध्वता' शब्द आता है न? 'समता रमता ऊर्ध्वता'... आहाहा! 'ज्ञायकता सुखभास'—समयसार नाटक का शब्द है। ऊर्ध्वता—मुख्यता स्वयं पर्याय में है, तब ज्ञात होता है अर्थात् पर्याय ही ज्ञात होती है। नारकी, तिर्यंच, मनुष्य, देव और सिद्ध—पाँच पर्याय। इसकी अपनी पाँच (पर्याय), हाँ! उस सिद्ध पर्याय को

देखनेवाली पर्यायचक्षु को भी बन्द कर दे। आहाहा! इससे तुझे अन्दर द्रव्य को देखनेवाली चक्षु का विकास होगा। आहाहा! गजब बात है! समझ में आया? अरे...रे! प्रभु का विरह पड़ा, वाणी रह गयी। आहाहा!

अपनी पर्याय को—पाँच पर्यायों को जो देखती है, सिद्ध की पर्याय को भी जो देखती है, उस चक्षु को सर्वथा बन्द कर दे। आहाहा! पहले (पर को देखने की) पर्याय को बन्द कर दे (या) द्रव्य को (देखने का) बन्द कर दे और पर्याय को देख—ऐसा नहीं कहा। यहाँ से (लिया है) क्योंकि सामान्य को देखने से जो ज्ञान होता है, वह ज्ञान विशेष को भलीभाँति जान सकेगा, अपने विशेष को,... आहाहा! समझ में आया? समझ में आये उतना समझना, भाई! प्रभु का पार नहीं पड़ता; उसी गम्भीरता का पार नहीं पड़ता। आहाहा!

मात्र खुली हुई... वह (पर्यायचक्षु) बन्द है, तब यह अकेला खुला हुआ। आहाहा! आहाहा! कल यह कहा जा चुका है।

मुमुक्षु : आज जमावट होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह वस्तु है बापू! यह तो फिर से लिया, कहा। दो व्यक्ति नये आये हैं। यह तो भगवान की वाणी है, चाहे जब फिर से लो, वह कुछ फिर से है ही नहीं। उसका तो पार ही नहीं है।

पर्यायार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके (—ऐसा कहा तो) अब जब सर्वथा बन्द कर दिया (तो) वह तो पर्याय को देखने की पर्यायदृष्टि को सर्वथा बन्द किया परन्तु द्रव्य को देखनेवाला ज्ञान तो खुला है। आहाहा! एक लाईन... आहाहा!

देख तो सही प्रभु! तू कौन है? आहाहा! सामान्य-विशेष में भी, विशेष की चक्षु सर्वथा बन्द कर दी अर्थात् विशेष को देखनेवाली आँख को सर्वथा बन्द कर दी परन्तु विशेष में स्व को देखनेवाला उघाड़ तो रह गया। आहाहा! समझ में आया? (विशेष को देखने की चक्षु) अकेली बन्द हुई परन्तु अकेला उघाड़ का भाव—वस्तु है, उसे देखने के उघाड़ का भाव रह गया, हो गया। आहाहा! जहाँ पर्याय को देखने का बन्द किया... आहाहा! वहाँ द्रव्य को देखने का (ज्ञान) उघड़ गया। आहाहा! जाननेवाला है, वह जाननेवाली पर्याय में से अन्धेरा हो जाये—ऐसा तो कभी है नहीं। आहाहा!

कहते हैं कि तूने भले पर्याय को (देखने का) सर्वथा बन्द कर दिया। (तूने) तेरी पर्याय को देखना सर्वथा बन्द किया; पर की तो बात यहाँ है ही नहीं। आहाहा! पर की सिद्ध पर्याय को देखने की बात भी नहीं। यहाँ पर्याय में (बात) लेंगे। तो अपनी पाँच पर्याय लेंगे—नारकी, मनुष्य, तिर्यंच, देव, और सिद्धपर्याय, अपनी; पर की नहीं परन्तु इन अपनी पाँच प्रकार की

पर्यायों में वर्तता जीव है, उसे देखना बन्द कर दे। आहाहा! भगवान! बात सूक्ष्म है। आहाहा!

मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा... देखो! खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु है। है तो वह (भी) पर्याय। समझ में आया? आहाहा! अब (कोई) कहता है कि हम प्रवचनसार पढ़ गये! वह एक व्यक्ति कहता है—महाराज कहते हैं कि समयसार बहुत सूक्ष्म है, (मैं) पन्द्रह दिन में पढ़ गया! बापू! यह एक शब्द और एक लाईन का पार नहीं पड़ता, भाई! यह परमात्मा की वाणी है! यह दिगम्बर सन्तों की वाणी है! केवली के मार्गानुसारियों की यह वाणी है!! आहाहा!

मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है... आहाहा! पर्याय को देखना सर्वथा बन्द करके और द्रव्य को देखनेवाली पर्याय द्वारा जब द्रव्य को देखा जाता है... समझ में आया? इसमें कोई (ऐसा कहे कि) हम जान सकते हैं (तो कहते हैं कि) बापू! पार नहीं पड़ता। आहाहा! प्रभु की वाणी का (पार नहीं पड़ता), सन्त दिगम्बर मुनि अर्थात् केवली के मार्गानुसारी! आहाहा! जिन्हें अल्प काल में केवलज्ञान है, परन्तु कहते हैं कि उस पर्याय को देखना हमारे नहीं है। आहाहा! हमें तो द्रव्य को पहले देखना है और उस पर्याय को देखने की (चक्षु) बन्द की, इसलिए कोई देखने की पर्याय रही ही नहीं (—ऐसा नहीं है)। पर्याय को देखना बन्द किया तो द्रव्य को देखने का उघड़ा हुआ ज्ञान प्रगट हुआ। आहाहा! आहाहा! रमणीकभाई! यह ऐसी बात आयी है! आहाहा!

मात्र खुली हुई... दो हुए न? पहली (पर्याय की आँख को) बन्द किया और इसे (खोला) आहाहा! **मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक...** खुली हुई (अर्थात्) अपने पुरुषार्थ से खुली हुई ऐसा। आहाहा! जहाँ पर्याय को देखना बन्द किया... आहाहा! वहाँ द्रव्य को देखने की पर्याय खुल गयी। आहाहा! रतिभाई! ऐसी व्याख्या है, ऐसी वस्तु है। आहाहा! समयसार... प्रवचनसार... नियमसार... अष्टपाहुड़... पंचास्तिकाय... अलौकिक बातें! आहाहा! यह कहीं पढ़ने से मिले ऐसा नहीं है। आहाहा! पढ़ने से तो कहते हैं कि वह तो पर्याय को जानने की दशा हुई। आहाहा! उसे तो बन्द कर दे, प्रभु! जब एक को बन्द किया वहाँ एक खुल गयी। आहाहा!

कहने का आशय ऐसा है कि जहाँ पर्यायदृष्टि बन्द की... आहाहा! वहाँ द्रव्यदृष्टि-द्रव्य को देखनेवाली द्रव्यार्थिक चक्षु खुल गयी। खुली हुई द्रव्यार्थिक चक्षु (प्रगट हो गयी)। आहाहा! उस (चक्षु) द्वारा **देखा जाता है, तब नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना-पर्यायस्वरूप...** अब विशेष कहते हैं। **विशेषों में रहनेवाले...** वह विशेषरहित है—ऐसा नहीं; विशेष में रहनेवाला सामान्य है। आहाहा! भले (विशेष को) देखना बन्द कर दिया। आहाहा! **पर्यायस्वरूप विशेषों में रहनेवाले... पर्यायस्वरूप विशेषों में रहनेवाले...** आहाहा! पर को जानने में रहनेवाले—ऐसा नहीं; मात्र अपनी जो यह पाँच प्रकार की पर्याय है—चार गति और सिद्ध

(—ऐसी) पाँच पर्याय विशेष है, उसमें रहनेवाला जो सामान्य... आहाहा! उसकी सन्धि तो की।

पर्यायस्वरूप विशेषों में रहनेवाले... आहाहा! **एक जीवसामान्य को... एक जीवसामान्य को...** कहना तो है समस्त द्रव्यों (के) सामान्य-विशेष को, परन्तु लोगों को जीव का दृष्टान्त देकर दूसरी बात ठीक पड़े, इसलिए (जीव का) दृष्टान्त दिया है। समझ में आया? बाकी तो सब द्रव्यों को देखनेवाला तो तू है न! इसलिए विशेष में तो तू आ गया। समझ में आया? इन विशेषों में रहनेवाला जो सामान्य है, जो पर्यायदृष्टि की देखने की आँखें बन्द की हैं, तथापि उस पर्याय में रहनेवाला जीव! आहा! समझ में आया? आहाहा! **पर्यायस्वरूप विशेषों में रहनेवाले एक जीवसामान्य को देखनेवाले... एक जीवसामान्य को देखनेवाले...** (कहा तो) देखनेवाली तो पर्याय है... आहाहा! परन्तु देखना है द्रव्य को। आहाहा!

(समयसार में) ३२० गाथा में अन्त में कहा है न—जयसेनाचार्य (ने कहा है)। प्रभु! सहज निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य वह मैं हूँ—पर्याय ऐसा कहती है। 'द्रव्य मैं हूँ'—ऐसा द्रव्य को तो कुछ है नहीं, जानना या (ऐसा दूसरा) कार्य नहीं। आहाहा! पर्याय ऐसा कहती है कि 'मैं तो यह हूँ' निज परमात्मद्रव्य वह मैं हूँ। भले विशेषों में रहनेवाला मैं, परन्तु हूँ यह! कहा न? **एक जीवसामान्य...** शब्द लिया है न? भले विशेषों में रहनेवाला कहा, परन्तु एक जीव सामान्य को... वह तो वहाँ कहा, वह यहाँ है। आहाहा! देखनेवाली पर्याय में एक सामान्य को देखा, खुली हुई ज्ञान की पर्याय ने (एक सामान्य को देखा) बन्द हो गयी पर्याय (वह) पर्यायनय और वह बन्द हो गयी, इसलिए खुली हुई ज्ञान की द्रव्यार्थिक पर्याय ने सामान्य को देखने पर... आहाहा! दो-तीन लाईन में कितना डाल दिया है! आहाहा! अपार बात है बापू! यह कोई साधारण बात नहीं है। आहाहा! यह तो दिगम्बर सन्तों की वाणी है (ऐसी वाणी) कहीं है नहीं, कहीं है नहीं। आहाहा!

उसमें रहनेवाला तत्त्व, उस तत्त्व को जाननेवाला (ज्ञान) खिला, कहते हैं। आहाहा! जो पर्याय पर दृष्टि थी, तब द्रव्य को जाननेवाला ज्ञान अस्त हो गया। आहाहा! परन्तु पर्याय को देखने का जहाँ सर्वथा बन्द किया... आहाहा! तो स्व को देखने का ज्ञान खिला। उन विशेषों में रहनेवाला जो जीव सामान्य... आहाहा! है? **विशेषों में रहनेवाले एक जीवसामान्य को...** आहाहा! **देखनेवाले और विशेषों को न देखनेवाले...** आहाहा! है न? सामने पुस्तक है या नहीं? आहाहा!

यह कोई कथा नहीं, प्रभु! यह तो भागवत् कथा है! आहाहा! किसका गर्व करना? किसके जानने का अभिमान करना? भाई! आहाहा! परमात्मा की एक-एक गाथा में सब रहस्य भरा है, प्रभु! आहाहा! ये सन्त जब उसकी व्याख्या करते होंगे, (तब) उसकी व्याख्या का पार नहीं मिलता! और भगवान की वाणी में आया होगा उतना तो झेला भी नहीं जाता। आहाहा!

भगवान ने देखा, उसमें अनन्तवें भाग कहा गया। कल दिव्यध्वनि का दिवस था, कल यह शुरु हुआ है। दिव्यध्वनि है यह! आहाहा! उस दिव्यध्वनि में आया हुआ, (उसे) 'ओम्कार ध्वनि सुनी अर्थ गणधर विचारैं, रचि आगम उपदेश भविक जीव संशय निवारै।' आहाहा!

यहाँ कहते हैं कि आगम में यह बात आयी और यह बात जिसने अन्दर में जानी... आहाहा! उसका संशय नहीं रहता। द्रव्य को (देखनेवाला) खुला हुआ ज्ञान, जहाँ विशेष में रहनेवाले जीव को देखा, सामान्य को देखा, वहाँ संशय नहीं रहता। मिथ्यात्व का कोई अंश नहीं रहता। आहाहा! **और विशेषों को न देखनेवाले जीवों को...** सभी जीव लिये हैं न? एक ही जीव नहीं लिया। यह पर्यायचक्षु बन्द करके और खुले हुए ज्ञान से जीव को देखते हैं—ऐसे सब जीव... आहाहा! अरे रे! पंचम काल के प्राणी को भी ऐसा है—ऐसा कहते हैं। पंचम काल के सन्त श्रोताओं को ऐसा कहते हैं—पंचम काल के श्रोताओं को (—ऐसा कहते हैं)। आहाहा! तुझसे नहीं होगा—ऐसा यहाँ नहीं कहते हैं। आहाहा! मुझे समझ में नहीं आता, यह बात छोड़ दे। पर्याय है, उसे भी देखना जहाँ बन्द करना है; उसमें नहीं जान सकता यह प्रश्न ही कहाँ है? आहाहा!

ऐसे **विशेषों को न देखनेवाले जीवों को...** 'जीव' को नहीं लिया, उन 'जीवों' को (ऐसा बहुवचन लिया है) आहाहा! पंचम काल के सन्त सामने श्रोता को—इन जीवों को... आहाहा! पर्यायचक्षु बन्द करके खुले हुए ज्ञान से देखनेवाले ऐसे पंचम काल के जीवों को... यह चौथे काल की बात है? आहाहा! अमुक गिरेगा, इसके लिए लोग घबराते हैं। वह गिरेगा वहाँ खड़ा हो जायेगा, अन्दर देख तो सही! खुली हुई ज्ञान-पर्याय (पर्याय को देखना) बन्द करके जहाँ अन्दर पड़ा... वहाँ तुझे भगवान दिखेगा! आहाहा! तुझे भगवान का साक्षात्कार होगा। वह भगवान गुप्त नहीं रहेगा, आहाहा! पर्यायचक्षु बन्द करके खुले हुए चक्षु में अब वह भगवान गुप्त नहीं रहेगा। आहाहा! गजब बात है! चार लाईन! आहाहा!

ऐसे जीवों को... अवलोकन करनेवाले 'जीव को' नहीं लिया। आहाहा! पंचम काल के प्राणी को कहते हैं प्रभु! तू तो ऐसा है न! आहाहा! और पर्यायचक्षु बन्द करके देख तो बहुत जीवों को... आहाहा! **'वह सब जीवद्रव्य है'...** (ऐसा भासित होता है)। पर्याय का लक्ष्य छूट गया है, वह सब जीवद्रव्य है। आहाहा! द्रव्यार्थिकनय के खुले हुए ज्ञान से विशेष में रहनेवाले सामान्य को अवलोकन करनेवाले को... आहाहा! **'वह सब जीवद्रव्य है' ऐसा भासित होता है।...** है? वह जीवद्रव्य है—ऐसा भासित होता है। आहाहा! कल थोड़ा-बहुत आया था, हों! यह तो तुम आये, इसलिए फिर से लिया है और यह तो पार नहीं पड़ता, बापू! चाहे जितनी बार (लो न)! आहाहा! इसके भाव की गम्भीरता! इसके भाव की अपरिमितता!!

मुमुक्षु : परम परमेश्वर भासित होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : ओहोहो! यहाँ परमेश्वर होने की ही बात है। **'वह सब जीवद्रव्य है'...**

ऐसा कहा न ? ऐसा कहा या नहीं ? 'वह सब' अर्थात् पाँचों पर्यायों को देखना नहीं, सिद्ध पर्याय को देखना नहीं। आहाहा! अरे रे! ऐसी बात कहाँ मिले ? भगवान का विरह पड़ा, वाणी रह गयी। वाणी ने विरह भुलाया, वाणी ने विरह भुलाया! आहाहा! **एक जीवसामान्य को देखनेवाले...** (अर्थात्) एक ही जीवसामान्य को देखनेवाले। आहाहा! **और विशेषों को न देखनेवाले...** बहुवचन है। पंचम काल के बहुत जीव भी तद्नुसार देखेंगे। आहाहा!

विश्वास... विश्वास ला! तुझमें ताकत है, प्रभु! तू पूर्ण वीर्य से भरपूर है! आहाहा! अनन्त... अनन्त... आनन्द और अनन्त सुख के सागर के जल से भरपूर प्रभु! सुख के सागर—जल से (भरा हुआ) आहाहा! सुख का सागर, यह सुख का जल! इसे—भरे हुए भगवान को तू देख! आहाहा! वहाँ तुझे (वह) 'सब जीव है'—ऐसा भासित होगा। है ? आहाहा! प्रभु! तू स्त्री, पुरुष, नपुंसक नहीं है। तू इस शरीर को मत देख, वस्त्र को मत देख, आकृति को मत देख; पर को देखने की ही बात बन्द कर दे, यहाँ तो (—ऐसा कहते हैं)। यह स्त्री का शरीर है, और पुरुष का शरीर है... आहाहा! यह तो बात ही बन्द कर दी। अपने को देखने की पर्याय में ज्ञात हो, उसे भी बन्द कर दे। आहाहा! आहाहा! यह वस्तु! यह सिद्धान्त!

'वह सब जीवद्रव्य है'... वह सब जीवद्रव्य है—ऐसा भासित होता है। **भासित होता है...** ऐसा कहा है न ? बहुत जीवों को (भासित होता है) न ? खुली हुई चक्षु से न ? एक आँख बन्द की अकेली एक खुली हुई चक्षु! आहाहा! इसके बाद सप्तभंगी आयेगी। आज तो यहाँ से शुरुआत की है। ११५ (गाथा में) सप्तभंगी (आयेगी) यह तो कुन्दकुन्दाचार्य की वाणी! साक्षात् भगवान के पास (सुनी हुई)! आहाहा! और उसकी टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य! वे भगवान के पास गये थे। यह (निज) भगवान! कुन्दकुन्दाचार्य अपने (भगवान) और पर के (भगवान) दोनों के पास गये थे, आहाहा! वे अमृतचन्द्राचार्य यह कहते हैं। श्लोक में तो इतना ही है। **'दव्वट्ठिसण सव्वं दव्वं तं पज्जयट्ठिएण पुणो। हवदि य अण्णमणण्णं...'** पर्याय से अन्य-अन्य है, अन्य-अन्य है; द्रव्य की अपेक्षा अनन्य है। पर्याय अपेक्षा से अन्य... अन्य... अन्य... है, वस्तु अपेक्षा से अनन्य है—अन्य-अन्य नहीं। आहाहा! यह गाथा। **'तक्काले तम्मयत्तादो॥'** उस काल में उस-उस पर्याय में—विशेष में तो है परन्तु विशेष को न देखकर सामान्य को देखने जा, प्रभु! जिसमें अतीन्द्रिय सुख का सागर उछलता है। जो इन्द्रियगम्य नहीं है, विकल्पगम्य नहीं है, पर्यायचक्षु को गम्य नहीं है। आहाहा! जो द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा ही ज्ञात हो—ऐसा वह तत्त्व है। आहाहा!

पहले में—११३ में आ गया है। **पर्यायों का द्रव्यत्वभूत अन्वयशक्ति के साथ गुंथा हुआ (एकरूपता से युक्त) जो क्रमानुपाती (क्रमानुसार) स्वकाल में उत्पाद होता है...** है ? ११३ (गाथा) की टीका! बहुत विस्तार आ गया है। क्रमानुपाती—क्रम अनुसार और उस काल में (ऐसा कहा), तथापि उस विशेष को देखने की आँख बन्द कर दे। आहाहा! स्वकाल में उसकी

वह पर्याय होगी ही, वह काल निश्चित हो गया है। उसका जन्म क्षण है। आहाहा! परन्तु उस पर्याय को देखने का बन्द कर! स्वकाल में पर्याय उत्पन्न होगी ही; तथापि उसे देखने का बन्द कर दे। बन्द किया तो देखना बन्द ही हो गया—ऐसा नहीं। पर्यायनय से देखने का सर्वथा बन्द किया, इससे अब पर्याय में उसे जानने का कुछ नहीं रहा—ऐसा नहीं। आहाहा! पर्याय को देखने का जहाँ सर्वथा बन्द किया, तब अन्दर द्रव्यार्थिकनय से खुला हुआ (जो) ज्ञान (प्रगट हुआ), उस ज्ञान द्वारा यह जानने में आया। अरे! ऐसी बातें कहाँ हैं? बाहर की बातें, क्रियाकाण्ड.. अरे... प्रभु! जहाँ तेरे भव का अन्त न आवे, आहाहा! वह चीज क्या (काम की)? चौरासी के अवतार! नरक के दुःखों का वर्णन सुना न जाये, बापू! तुझे देखने से आनन्द की बात—व्याख्या कही न जाये, वैसा तुझे आनन्द आयेगा!!

खुले हुए ज्ञान से द्रव्य को देखने पर... आहाहा! पर्यायदृष्टि में पहले यह ज्ञान बन्द था, पर्यायदृष्टि में... पर की दृष्टि में नहीं। आहाहा! अवस्था में देखनेवाले को तुझे तेरी दृष्टि देखती नहीं थी। आहाहा! उस अवस्थादृष्टि को बन्द करके... आहाहा! फिर कुछ रहा या नहीं? भगवान तो ज्ञानमूर्ति प्रभु! केवलज्ञान का कन्द है न! (पर्यायचक्षु) बन्द करने के बाद उसकी पर्याय में कुछ विकास रहा या नहीं? विकसित चित्-चमत्कार वस्तु है! जयवन्त वर्ते प्रभु! आहाहा!

भाई! परिचित की व्याख्या तो एक जगह ऐसी की है न? सर्वज्ञ! परिचित अर्थात् सर्वज्ञ। परि अर्थात् सर्व प्रकार से, चित अर्थात् ज्ञान। परिचित अर्थात् सर्वज्ञ। आहाहा! ऐसा परिचय! वह (समयसार की चौथी गाथा में) श्रुत, परिचित, अनुभूता... (आता है) वह नहीं। गुलाँट खाकर ऐसा परिचित होता है। वह जो परिचित है, वह तो राग का परिचय है, पर्यायदृष्टि का परिचय है। आहाहा! वह गुलाँट खाता है, तब द्रव्य को देखनेवाली आँख द्वारा देखने से उसे परिचित अर्थात् सर्वज्ञपना प्रगट हो जाता है, वह परिचित है। परि अर्थात् सर्वथा प्रकार से ज्ञान को देखना। आहाहा! ज्ञान को देखना, हाँ! पर को देखना नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

ऐसा भासित होता है। **'वह सब जीवद्रव्य है' ऐसा भासित होता है।...** यहाँ तक तो पर्याय को देखने का बन्द करके और बन्द होकर अर्थात् द्रव्य को देखने का ज्ञान प्रगट हुआ—प्रगट हुए बिना रहता ही नहीं। आहाहा! जिसने पर्याय को देखने की चक्षु बन्द की, उसे स्व को जानने का खिला हुआ ज्ञान प्रगट हुए बिना रहता ही नहीं। आहाहा! और उस प्रगट हुए ज्ञान द्वारा—द्रव्यार्थिकनय द्वारा (देखने पर) द्रव्यार्थिकनय भी ज्ञान है न? नय है न? ज्ञान का अंश है न? द्रव्यार्थिक अर्थात् वह पूरा द्रव्य है वह नहीं। द्रव्यार्थिकनय से देखनेवाला द्रव्य। आहाहा! वह प्रगट हुआ ज्ञान द्रव्यार्थिकनय है, उससे देखने पर द्रव्य दिखता है। आहाहा! (यह सब) लिखते हैं न? फिर डालेंगे। आत्मधर्म में आता है न? आहाहा!

अब, यह जब भासित हुआ, तब अब पर्याय को जाननेवाला यथार्थ ज्ञान हुआ। पहले

द्रव्यार्थिक को बन्द करके पर्याय को देखा—ऐसा नहीं लिया। पर्यायनय को (चक्षु को) बन्द करके द्रव्यार्थिक चक्षु द्वारा देखा और यह जो भासित हुआ, तब अब पर्याय का यथार्थ ज्ञान हुआ। समझ में आया? **और जब द्रव्यार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके...** देखो! देखने में आया है परन्तु उस ओर का लक्ष्य अभी छोड़कर (—ऐसा कहते हैं)। सामान्य जो यह सब है... यह सब है... यह वस्तु है—ऐसा ज्ञान हुआ है, तथापि अब उस ओर का देखना बन्द करके, पर्याय भी तेरी है, तुझमें है, उसे देखने के लिए यह (द्रव्यार्थिक चक्षु) बन्द कर। आहाहा! बहुत सूक्ष्म बात है, चन्दुभाई! गम्भीर है। बापू! परमात्मा की वाणी-दिगम्बर सन्तों की वाणी (गम्भीर है)। श्वेताम्बर की तो कथनपद्धति ही मिथ्यादृष्टि होने के बाद की है। अरे... प्रभु! कठोर लगे, क्या हो? यह बात कहाँ है? आहाहा! जहाँ केवलज्ञान प्रवाहित है ऐसा! अल्प काल में केवलज्ञान होने की तैयारीवाली बात है। आहाहा! तथापि कहते हैं कि पहले पर्याय को देखने का बन्द करके और अब द्रव्यार्थिक को (देखने की) चक्षु बन्द कर। (सामान्य) ज्ञात हो गया परन्तु अब उस ओर का लक्ष्य बन्द कर। समझ में आया? आहाहा!

द्रव्यार्थिक चक्षु को सर्वथा बन्द करके... (अर्थात्) उसकी ओर का लक्ष्य छोड़कर ऐसा (कहना है)। **मात्र खुली हुई पर्यायार्थिक...** देखा? उसमें **मात्र खुली हुई द्रव्यार्थिक...** था। पहली लाईन। इसमें **मात्र खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षु के द्वारा...** पर्याय भी इसमें है न? उसमें वर्तता द्रव्य है न? पर को और इसे कोई सम्बन्ध नहीं है यह बात यहाँ विशेष सिद्ध करना है (—ऐसा कहते हैं कि) वह पर्याय भी इसकी है। उस पर्याय को और पर को कुछ सम्बन्ध नहीं है। आहाहा! यह केवलज्ञान हुआ, (वह) व्रजनाराचसंहनन था, इसलिए हुआ (—ऐसा तो नहीं)। अरे..! चार ज्ञान और मोक्ष का मार्ग था, इसलिए केवलज्ञान हुआ—ऐसा भी नहीं। आहाहा! अब इस पर्याय को देख, कहते हैं। परन्तु वह पर्याय पर्याय से हुई है, हाँ! नारकी की मनुष्य की, चार गति की, और सिद्ध पर्याय—पाँच पर्यायें (पर्याय से हुई है)। है?

मात्र खुली हुई पर्यायार्थिक चक्षु के द्वारा देखा जाता है, तब जीवद्रव्य में रहनेवाले... देखा? पहले में **विशेषों में रहनेवाले...** ऐसा था। है? **पर्यायस्वरूप विशेषों में रहनेवाले...** एक जीवद्रव्य ऐसा था। अब यहाँ कहते हैं, **जीवद्रव्य में रहनेवाले...** द्रव्य में रहनेवाले! पर्याय का सम्बन्ध था, पर के साथ कोई सम्बन्ध (नहीं), आहाहा! **नारकपना, तिर्यंचपना, मनुष्यपना, देवपना और सिद्धपना—पर्यायस्वरूप अनेक विशेषों को देखनेवाले....** आहाहा! **और सामान्य को न देखनेवाले...** (अर्थात्) पर्याय का लक्ष्य उस ऊपर से छोड़कर इतना, हाँ! **जीवों को (वह जीवद्रव्य) अन्य-अन्य भासित होता है,...** पहले में सब एकरूप भासित होता है (ऐसा आया था)। इसमें अन्य-अन्य पर्याय है। अन्य-अन्य भासित होता है, पर्याय अन्य.. अन्य.. अन्य.. अन्य.. अन्य.. अन्य.. अन्य.. अन्य.. अन्य.. अन्य.. अन्य.. अन्य.. अन्य.. ऐसा भासित होता है। विशेष कहेंगे।

(१५) श्री कलश टीका, श्लोक १९२ प्रवचन नं. २१३
दिनांक २४-०१-१९७८

यह कलश टीका चलती है। मोक्ष अधिकार का अन्तिम कलश है। मोक्ष... मोक्ष, मोक्ष की व्याख्या करेंगे।

(मन्दाक्रान्ता)

बन्धच्छेदात्कलयदतुलं मोक्षमक्षय्यमेत-
न्नित्योद्योतस्फुटितसहजावस्थमेकान्तशुद्धम्।
एकाकारस्वरसभरतोऽत्यन्तगम्भीरधरं
पूर्णं ज्ञानं ज्वलितमचले स्वस्य लीनं महिम्नि॥१९२॥

'**एतत् पूर्णं ज्ञानं ज्वलितं**' क्या कहते हैं? कि यह आत्मा जो है आत्मा अन्दर, वह तो ज्ञानानन्द, सहजानन्दस्वरूप है। उसका मूल असली स्वरूप ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञानस्वरूप है। वह जिसकी प्रगट दशा में पूर्ण अतीन्द्रियज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हो और चार गति परिभ्रमण से रहित हो, उसका नाम मोक्ष कहते हैं। मोक्ष, वह आत्मा का अतीन्द्रिय शुद्ध परिणाम है तो उसका कारण भी अतीन्द्रिय शुद्ध परिणाम होना चाहिए। समझ में आया?

मोक्ष क्या है? है न? यह आया न? '**एतत् पूर्णं ज्ञानं ज्वलितं' जिस प्रकार कहा है कि समस्त कर्ममलकलंक का विनाश होने से, जीव द्रव्य जैसा था...** है? इसमें सूक्ष्म बात कही है। जीव जो अन्दर आत्मा है, वह तो जैसा था वैसा प्रगट हुआ। था कैसा? कि अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त अतीन्द्रिय शान्ति, स्वच्छता का पिण्ड-पुंज आत्मा है। वह आत्मा जैसा था, जिस प्रकार छोटी पीपर में चौंसठ पहरी चरपराहट थी तो घोंटने से प्रगट बाहर आती है, वह प्राप्त की प्राप्ति है; इसी प्रकार जैसा था, चौंसठ पहरी चरपराहट उसमें-छोटी पीपर में थी, वह घोंटने से (बाहर आयी)। चौंसठ पहरी या रुपया कहो या सोलह आना कहो, (वह) प्रगट होती है। इसी प्रकार जीवद्रव्य जैसा था... आहाहा! है? यह मोक्ष की व्याख्या करते हैं।

यह भगवान आत्मा देह से... यह तो मिट्टी-जड़-धूल है। उसे जाननेवाला... निश्चय से तो ऐसा है, जरा सूक्ष्म पड़ेगा, अपनी वर्तमान ज्ञान की जो पर्याय है, वह ज्ञान की पर्याय पर को

जानती है, यह तो असद्भूतनय से कहने में आया है। ***वास्तव में तो अपनी ज्ञान की पर्याय में पर जानने में आता है, यह व्यवहार है परन्तु उस पर्याय में अपना ज्ञान होता है, यह निश्चय है।*** यह जिसकी सत्ता में जानने में आता है... सत्ता अर्थात् जिसकी पर्याय-अवस्था-वर्तमान हालत। यह तो जीवद्रव्य की व्याख्या है परन्तु वर्तमान में जो ज्ञान की पर्याय-अवस्था है, उसमें यह जानने में आता है, वह वास्तव में यह जानने में नहीं आता, जानने में तो अपनी ज्ञान की वर्तमान अवस्था की ताकत जानने में आती है। आहाहा! सूक्ष्म है, भाई! धर्म बहुत सूक्ष्म है। लोगों ने बाहर से मान लिया है, यह दया, दान, व्रत, भक्ति और तप यह धर्म-वर्म नहीं; धर्म अन्तर की कोई अपूर्व चीज़ है।

कहते हैं कि एक समय की अपनी जो वर्तमान दशा प्रगट है, उस दशा में यह... यह... यह... जानने में आता है, यह कहना व्यवहार है; निश्चय से तो अपनी ज्ञान की पर्याय अपने से जानने की प्रगट होती है, उसे ही जानता है। आहाहा! क्योंकि जिसमें तन्मय होकर जाने, उसे जानना कहा जाता है तो पर का जानना (होता है, वह) पर को ज्ञान में तन्मय होकर तो जानता नहीं। हसमुखभाई! सब सूक्ष्म बातें हैं। आहाहा!

यह तो अन्दर आत्मद्रव्य जैसा था, वैसा प्रगट हुआ — ऐसा कहते हैं न? तो यहाँ कहना है कि ***इसकी वर्तमान पर्याय में ज्ञान की दशा पर को जानती थी, वह वास्तव में (जानती) नहीं थी क्योंकि पर में तन्मय नहीं; इसलिए वास्तव में पर को नहीं जानती। परसम्बन्धी का ज्ञान अपनी पर्याय में अपने से होता है, उसे जानती है। आहाहा! हैं? ऐसा सूक्ष्म है।***

मुझे तो दूसरा कहना है कि जो एक समय की ज्ञान की वर्तमान दशा पर को जानती है—ऐसा तो नहीं, क्योंकि उसमें तन्मय-एकमेक तो है नहीं। एकमेक हुए बिना उसे जानती है—ऐसा कैसे कहा जाये? भाई! आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! यहाँ तो भगवानरूप से बुलाते हैं। आत्मा अन्दर भगवानस्वरूप ही है, इसे पता नहीं। ***यहाँ तो एक समय की वर्तमान यह जानन है न? जाननदशा, प्रगट, वह वास्तव में तो ज्ञान की पर्याय ज्ञान की पर्याय को ही जानती है। आहाहा! यह भी अभी पर्यायबुद्धि हुई। सूक्ष्म बात है, भाई!***

सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ हुए, वे कहाँ से हुए? यह अन्दर में है, उसमें से हुए। जैसा था-ऐसा कहा न? अन्दर में इसकी शक्ति अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त शान्ति आदि का सागर भगवान अन्दर है। **जैसा था...** प्रथम ***अपनी पर्याय में पर को जानता नहीं परन्तु अपने को जानता है परन्तु यह तो एकसमय की पर्यायबुद्धि है। यह एक समय की अवस्था जैसा था, उसे जाने। सूक्ष्म बात है भाई! यह तो धर्म की बात है। जो एक समय की वर्तमान दशा चलती है, वह पर को नहीं जानती। वास्तव में तो अपनी पर्याय में तन्मय है तो उसे जानती है, पर में तन्मय नहीं। अब यह एक समय की पर्याय अपने को जानती है पर्याय, यहाँ तक उसकी पर्यायबुद्धि,***

अंशबुद्धि, वर्तमान बुद्धि हुई। आहाहा! अब इतना जाने तब (ऐसा कहा जाये तब)। पर को जानता है, यह बात तो कहीं रह गयी। आहाहा! समझ में आया? धर्म ऐसी चीज़ है। सर्वज्ञ परमात्मा त्रिलोकनाथ जिनेन्द्रदेव वीतराग परमेश्वर ने जो धर्म कहा, वह अलौकिक चीज़ है और इसके बिना जन्म-मरण का अन्त कभी आया नहीं। जन्म-मरण करते... करते... करते... अनन्त काल से भटकता हुआ परिभ्रमण करता है। आहाहा! क्या कहना था?

यहाँ मोक्ष की बात चलती है, परन्तु पहले यहाँ वर्तमान पर्याय, मुक्तस्वरूप जीवद्रव्य जैसा था, वैसा वर्तमान पर्याय में जब जानने में आता है, तब तो उसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात है। हसमुखभाई! वहाँ कहीं पैसा-वैसा में कुछ मिले—ऐसा नहीं है, करोड़-फरोड़ और धूल में। सब भूल है। पैसा पाँच करोड़ और दस करोड़ और अरब रुपये... वह तो मिट्टी है, धूल है। यह भी धूल मिट्टी है। यह चीज़ कहाँ है? राख है, यह तो श्मशान की राख होगी। अन्दर भगवान आत्मा जो है, वह तो आनन्द प्रभु, सच्चिदानन्द—सत् शाश्वत् ज्ञान और आनन्द का भण्डार था, है, वह तो पहले पर्याय में जानने में आया। आहाहा! क्या कहना है?

मोक्ष है, वह पूर्ण एकान्त शुद्ध है – ऐसा आगे कहेंगे। एकान्त शुद्ध है न? **'एकान्तशुद्धं' सर्वथा प्रकार शुद्ध है।** जो मोक्ष है, वह तो अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रियज्ञान, शान्ति आदि से पूर्ण शुद्ध है। मोक्ष! और संसार है, वह विकारदशा से परिपूर्ण विकार है। यह प्राणी दुःखी है। चाहे तो राजा हो या चाहे तो अरबोंपति हो परन्तु यह पैसे का स्वामी-मालिक होता है तो वह दुःखी है, अज्ञानी है, मूर्ख है। आहाहा! जैसा आत्मा था, वैसा मोक्ष में प्रगट हुआ, उसका अर्थ यह हुआ कि वर्तमान पर्याय में जैसा था, वैसा अन्तर में अनुभव और प्रतीति हो, तब मोक्ष जो परिपूर्ण शुद्ध है, उसका उपाय अपूर्ण शुद्धता की पर्याय प्रगट हुई। हैं? शुरुआत हुई। *आहाहा! सूक्ष्म बात, भगवान! अनन्त काल से भटककर मर गया है, चौरासी के अवतार कर-करके। कीड़ा, कौआ, कुत्ता - ऐसे अनन्त भव किये, चौरासी लाख योनि! एक-एक योनि में अनन्त भव किये, प्रभु! उसे थकान लगी नहीं और देखता नहीं कि मैं कौन हूँ अन्दर? आहाहा!*

यहाँ तो एक समय की वर्तमान दशा में पर का जानना भी नहीं, वह तो स्वयं को जानता है क्योंकि पर में तन्मय नहीं। केवलज्ञानी लोकालोक को जानते हैं-ऐसा कहना, वह तो असद्भूतव्यवहारनय से है। आहाहा! क्योंकि उसमें तन्मय नहीं होते, उसरूप नहीं होते, तो पर्यायरूप से-उसरूप से होता है तो उसे ही जानता है। इसी प्रकार यहाँ नीचे अज्ञानी या ज्ञानी वर्तमानदशा में पर को तन्मय होकर नहीं जानते; इसलिए उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान अपने में तन्मय होकर जानते हैं तो उसका नाम पर्याय को जानते हैं - ऐसा कहने में आया है। अब यहाँ तो इससे आगे ले जाना है। देवीलालजी! ऐसी बातें हैं भाई! *आहाहा! अरे! मनुष्यपना मिला और*

यदि यह तत्त्व-आत्मतत्त्व, आत्मज्ञान क्या चीज़ है, उसे जाना नहीं तो चार गति में दुःखी होकर भटकेगा। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि जैसा था, वैसा प्रगट हुआ। यह मोक्ष की व्याख्या की। जैसा अन्दर में था, अनन्त आनन्द मुक्त, अनन्त शान्ति, शान्ति शक्ति वह जैसी थी, वैसी वर्तमान दशा में जैसा पूर्ण था, वैसा पूर्ण पर्याय में प्रगट हुआ इसका नाम मोक्ष है। अब यहाँ तो मोक्ष का कारण पहले बताना है। आहाहा! जैसा था, वैसा है-अनन्त ज्ञान, अनन्त आनन्द, उसमें है, प्रभु! आहाहा! जैसे उस पीपर के दाने में चौंसठ पहरी चरपराहट भरी है। तीखाश को हिन्दी में चरपराहट कहते हैं, अपने तीखाश कहते हैं। अन्दर चौंसठ पहरी, रुपया-रुपया - पूर्ण भरी है तो जैसी थी, वैसी चौंसठ पहरी घोंटने से पर्याय में प्रगट हुई।

इसी प्रकार जैसा (स्वरूप) था... आहाहा! कैसा था? ***पूर्ण ज्ञान, पूर्ण आनन्द, पूर्ण शान्ति, पूर्ण स्वच्छता से भरपूर भगवान जैसा था वैसा है। उसका वर्तमान में, वर्तमान पर्याय में पर को जानने में जो पर्याय की ताकत मानी है परन्तु उस पर्याय में स्व को जानने की ताकत है—ऐसा जानकर वह पर्याय स्व को-त्रिकाली को जाने, तब उसे मोक्षमार्ग की पर्याय उत्पन्न हुई।*** पूर्ण शुद्धपर्याय, आत्मा की पूर्ण शुद्धदशा है, तो शुद्धपरिणाम का कारण भी आत्मा का शुद्धपरिणाम होना चाहिए। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! सूक्ष्म बात है, भगवान! इसने कभी सुनी नहीं, कभी की नहीं। आहाहा! बालपना खेल में खोया, बालपना खेल में और क्रीड़ाओं में (खोया), जवानी स्त्री में मोह्या, वृद्धावस्था देखकर रोया। वृद्धावस्था हुई परन्तु यह तत्त्व अन्दर भगवान आत्मा सद्‌चिदानन्द स्वरूप प्रभु, सर्वज्ञ परमेश्वर ने, जैसा था, वैसा प्रगट किया; जैसा था, वैसा प्रगट हुआ-इसका नाम मोक्ष।

अब, दूसरी बात। यह आत्मा तो जैसा था, वैसा पूर्ण शुद्धदशा अर्थात् मोक्ष (प्रगट हुई) तो इसका कारण भी आत्मा का शुद्धपरिणाम होना चाहिए। आहा! होना चाहिए अर्थात् है। आहाहा! शुद्ध वस्तु जैसी है... आहाहा! परिपूर्ण परिपूर्ण वस्तु भरी है। उसकी वर्तमान पर्याय-दशा में अन्दर में जैसा था, वैसी प्रतीति अनुभव में हुई, तब तो उसे मोक्ष का मार्ग प्रगट हुआ। मोक्ष जो पूर्ण शुद्धपर्याय है, पूर्ण पवित्र अनन्त आनन्द की दशा है, उसका अपूर्ण शुद्ध परिणाम, शुद्ध स्वभाव के भान में जो प्रगट हुए, वह पूर्ण शुद्ध परिणाम का कारण है। ऐसी बातें अब। ऐसा मार्ग, भाई! अभी सुनना कठिन पड़ता है। आहाहा! बाहर की धमाधम मानो ऐसे बाहर से धर्म हो जायेगा। धर्म तो अन्दर स्वभाव पड़ा है, उसमें है। आहाहा!

कहते हैं कि **जैसा था...** यहाँ शब्द आया न? **समस्त कर्ममलकलंक का विनाश होने से,...** शब्द तो पूर्ण ज्ञान है परन्तु कर्म का नाश होने से (-ऐसा) कथन किया, क्योंकि पहले

मलिन था, वह बताने के लिये। आहाहा! **समस्त कर्ममलकलंक का...** वापस समस्त, हों! मोक्ष में एक राग भी नहीं रहता कि जिससे फिर से अवतार करना पड़े। जो चना होता है, चना, वह सेंकने से भुन जाता है न? तुम्हारे डालिया को क्या कहते हैं? हैं? चना। वह सींका हुआ चना फिर से नहीं उगता। कच्चा हो, तब तक बोवे तो उगता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा पक्का हो गया, अपने आत्मा में से अज्ञान का नाश करने से और पूर्ण पर्याय-दशा को प्रगट किया, वह अब फिर से संसार में अवतार धारण नहीं करता। आहाहा! यह अवतार धारण करना, वह तो कलंक है। अन्दर भगवान सच्चिदानन्द प्रभु अतीन्द्रिय आनन्द और अतीन्द्रिय ज्ञान का अन्दर सागर पड़ा है। कहाँ देखे? कभी देखा नहीं। उस चीज़ की वर्तमान परिणाम में, परिणामी वह वस्तु त्रिकाल जैसी है, वैसी प्रतीति में, ज्ञान में, अनुभव में आना, वह शुद्धपरिणाम है। वह शुद्धपरिणाम पूर्ण शुद्ध (परिणाम का) कारण है। समझ में आया? आहाहा! एक तो समझना कठिन पड़े, वह करे कब? आहाहा!

श्रोता : आप सरल कर दो।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल भाषा से तो आता है। करना तो इसे है या नहीं? आहाहा! सरल में कोई कर दे? आहाहा!

मुमुक्षु : मदद करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : मदद करे तो भी यह खोटी बात है।

जीवद्रव्य... है? जीवद्रव्य अर्थात् वस्तु। अन्दर भगवान आत्मतत्त्व। तत्त्व कहो, द्रव्य कहो, वस्तु कहो, पदार्थ कहो—वह आत्मद्रव्य, आत्मपदार्थ, आत्मवस्तु, आत्मतत्त्व, वस्तु त्रिकाली अविनाशी, कभी नयी उत्पन्न हुई नहीं, नाश होगा नहीं—ऐसी जो अन्तर वस्तु है... **जैसा था...** आहाहा! **जैसा था...** कैसा था? **अनन्त गुण बिराजमान,...** आहाहा! वह तो अनन्त गुण से बिराजमान था। आहाहा! सूक्ष्म बात है, प्रभु! अनन्त शक्ति अन्दर में है। अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, ऐसे अनन्त गुण बिराजमान है, तो जैसा था, वैसा प्रगट हुआ। है? जैसा था, वैसा परिणमन में बाहर में प्रगट हुआ। आहाहा! शक्ति में था, वह प्राप्त की प्राप्ति पर्याय में (हुई) पहले कहा न? कि पर्याय में द्रव्य की प्रतीति, अनुभव करने से उसका मोक्ष का मार्ग शुरु होता है और जब पूर्ण आश्रय हुआ, त्रिकाल का पूर्ण आश्रय हुआ तो केवलज्ञान और मोक्षदशा होती है। उस मोक्षदशा के कारण में पहले तो यह कहा। समझ में आया? कि कर्म का नाश करके। आहाहा! ऐसा कहा न? इस कलंक का नाश करके। **जीव द्रव्य जैसा था अनन्त गुण बिराजमान, वैसा प्रगट हुआ।**

कैसा प्रगट हुआ? 'मोक्षं कलयत्'... आहाहा! मोक्ष की व्याख्या। **जीव की जो निःकर्मरूप अवस्था,...** यह मोक्ष की व्याख्या। जो रागवाली और कर्मवाली दशा है, वह तो संसार में भटकने

की चीज़ है। आहाहा! कर्म और रागरहित निष्कर्म अवस्था, पूर्ण निष्कर्म अवस्था। नास्ति से बात की है। राग और कर्म से रहित निष्कर्म अवस्था, उसका नाम मोक्ष और राग तथा कर्म की अवस्था, उसका नाम संसार (है)। आहाहा!

जीव की जो निःकर्मरूप अवस्था,... यह मोक्ष की व्याख्या करते हैं। **कलयत्** उसरूप परिणम गया, परिणम गया। आहाहा! **कलयत्** है न? अनुभव हो गया, परिणमन हो गया। जैसी है मोक्ष अवस्था, पूर्ण कर्मकलंक रहित, पूर्ण अशुद्धता से रहित, पूर्ण शुद्ध जैसा था, वैसी अवस्थारूप परिणमन हुआ, पर्याय में दशा हुई, उसका नाम मोक्ष कहते हैं। आहाहा! समझ में आया? ऐसी बात, भाई! मार्ग तो ऐसा है। आहाहा!

अभी तो देखो न! छोटी-छोटी उम्र के कितने ही हार्टफेल हो जाते हैं। दस-दस वर्ष की उम्र, पच्चीस-पच्चीस वर्ष की उम्र (में) हार्टफेल, कुछ ख्याल नहीं और एक सेकेण्ड में देह उड़ जाती है, एकदम! स्थिति पूरी हो जाये, इसलिए एकदम देह छूट जाती है! देह संयोगी चीज़ है, यह संयोगी चीज़ तो इसकी स्थिति से छूटती है। यह तो अपना स्वरूप जैसा था, वैसा प्रगट हुआ तो राग और शरीर और कर्म उनके कारण छूट गये। आहाहा! इसका नाम मोक्ष कहने में आता है। जिसमें अनन्त अतीन्द्रिय आनन्द है, जिसमें अतीन्द्रिय अनन्त ज्ञान है। कैसे? कि **अनन्त गुण से बिराजमान...** था - ऐसा कहा था न? हैं? वैसा ही प्रगट हुआ। आहाहा! निष्कर्म अवस्था। (अनन्त गुण से) बिराजमान (था) वैसा प्रगट हुआ। क्या प्रगट हुआ? कि **जीव की जो निःकर्मरूप अवस्था, उस अवस्थारूप परिणमता हुआ।** आहाहा! अरे! ऐसे शब्द हैं। पूर्ण दशा। अनन्त.. अनन्त आनन्द... आहाहा!

सिद्ध की दशा का वर्णन है न? बहिन का (बहिनश्री के वचनामृत का) वाँचन अभी आयेगा। बहिन ने सिद्ध का नहीं लिखा? उसका वर्णन किया है न? आहाहा! बहिन ने सिद्ध की व्याख्या शान्ति... शान्ति... शान्ति... शान्ति... पूर्ण शान्ति। आहाहा! बहिन होशियार है, बालब्रह्मचारी बहिन है। अभी व्याख्यान के बाद पढ़ा जायेगा। उसका पत्र ऐसा आया है, ऐसी भाषा है उसकी कि ऐसा... बहिन का वचन करके तो पागल... पागल हो जाये ऐसा है। धर्म, धर्मरूप से, हों! दूसरा कुछ सूझे नहीं, ऐसा लिखा है। होशियार बहिन है। उस दुनिया में पागल हो जाये, वह नहीं। इस दुनिया के पागल अर्थात् अन्दर में दूसरा कुछ सूझे नहीं। आत्मा.. आत्मा.. आत्मा.. आत्मा.. आत्मा.. आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. आनन्द.. शान्ति, विभाव से भिन्न, यह शब्द लिखा है। एक संक्षिप्त शब्द है। बहिन ने लिखा है, विभाव से भिन्न तेरी चीज़ है न! विभाव अर्थात् विकार। विकार अर्थात् पुण्य और पाप के भाव, ये सब विकार और विभाव हैं, उनसे भगवान आत्मा अन्दर भिन्न है। आहाहा!

वह जैसी शक्ति थी, वैसी निष्कर्म अवस्था का परिणमन हुआ। देखा? **कलयत्** का अर्थ परिणमन हुआ, अभ्यास किया, अनुभव कहो, **कलयत्** में अभ्यास कहो, अनुभव कहो, अवस्था कहो सब एक अर्थ में है। आहाहा! **कलयत्** अवस्थारूप परिणमन हुआ। क्या कहा? कि जैसे छोटी पीपर चौंसठ पहरी शक्तिरूप से अन्दर थी, वह घूंटने से बाहर आयी। चौंसठ पहरी अर्थात् पूर्ण-पूर्ण चरपराहट बाहर प्रगट हुई। वैसे भगवान आत्मा में... एक छोटी पीपर जैसी जड़ चीज़ में पूर्ण चरपराहट भरी है और बाहर प्रगट होती है तो यह तो चैतन्य का नाथ भगवान अन्दर में पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान चौंसठ पहरी, चौंसठ अर्थात् रुपया-रुपया, चौंसठ पैसा, पूर्ण आनन्द और पूर्ण ज्ञान से भरा था, वह पर्याय में, अनुभव में, दशा में आ गया। आहाहा! वहाँ कहीं पैसे में सुनने का मिले ऐसा नहीं है।

सभी पैसेवाले दुःखी हैं बेचारे। शास्त्र में पैसेवाले को भिखारी कहते हैं। भिखारी भीख माँगता है, भगवान होकर माँगता है। पैसा लाओ, पैसा लाओ, स्त्री लाओ, पुत्र लाओ, कीर्ति (लाओ)... भिखारी है। अनन्त-अनन्त आनन्द और शान्ति अन्दर पड़ी है न तुझमें! तेरी लक्ष्मी अन्दर में पड़ी है न सच्चिदानन्द प्रभु! उस लक्ष्मी का स्वामी हो न, उसका मालिक हो न! आहाहा! समझ में आया? शान्तिभाई! कठिन बात है। दुनिया से विरुद्ध है परन्तु प्रभु! तेरे आत्मा के घर की बात है, नाथ! तू अन्दर कौन है देह में! यह तो मिट्टी है, हड्डियाँ हैं, यह तो श्मशान का राख होकर उड़ जायेगी। आहाहा! तू उड़े-नाश हो - ऐसा नहीं है। तू तो अविनाशी है, अनादि-अनन्त है। है, उसकी उत्पत्ति नहीं; है, उसका नाश नहीं; है, वह प्रगट है। आहाहा! है?

'कलयत्' कैसा है मोक्ष? आगामी अनन्त काल पर्यन्त अविनश्वर है,... आहाहा! जैसी वस्तु है आत्मतत्त्व, अनन्त आनन्द आदि अविनश्वर, वैसी मोक्ष अवस्था भी पर्याय हुई—दशा हुई परन्तु अब अविनश्वर रहेगी। क्योंकि अविनश्वर आत्मा है, उसकी दशा में से अनन्त आनन्द आदि पूर्ण प्रगट हुए, मोक्ष (हुआ) तो वह अविनश्वर है, वह भी अब अनन्त काल रहेगा। आहाहा! मोक्ष होने के बाद कोई अवतार धारण करना पड़े (-ऐसा नहीं है)।

श्रोता : भक्त कष्ट में आवे, तब धारण करे।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह बात ही सब मिथ्या है। भक्त और कष्ट, भगवान को कहाँ था? अपने स्वरूप में जहाँ आनन्द में पूर्ण दशा हो गयी, उसका ज्ञान भी करता नहीं, वह ज्ञान तो अपनी पर्याय का करते हैं। आहाहा! है? आहाहा! बापू! मार्ग अलग, प्रभु! ***आहाहा! अभी तो प्राणी देखो न! दुःखी बेचारे, महंगाई, साधारण गरीब मनुष्य तो मिलना मुश्किल पड़े। पैसेवाले तो बहुत दिखे, वह भी दुःखी और यह भी दुःखी। रंक दुःखी, राजा दुःखी, सेठ दुःखी और देव दुःखी। सुखी एक सन्त। जिन्हें आत्मा का ज्ञान हुआ, मैं अनन्त आनन्दकन्द हूँ, सच्चिदानन्द प्रभु***

का जिन्हें भान हुआ, वे जगत में सुखी हैं। 'सुखिया जगत में सन्त, दुरिजन दुखिया' आहाहा! वे सब दुःखी हैं। शान्तिलाल! सच्ची बात होगी। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, मोक्ष अवस्था किसे कहें ? आगामी अनन्त काल तक रहनेवाली और **'अतुलं' उपमा रहित है।** आहाहा! यह अतीन्द्रिय आनन्दस्वरूप भगवान अन्दर है, वह जहाँ पर्याय में अनुभव करके, अन्तर में अनुभव करके दशा में पूर्ण आनन्द हुआ, उसे उपमा क्या देना ? किसकी उपमा देना ? कि इन्द्र के सुख से परमात्मा में-मोक्ष में अनन्त गुना सुख ? इन्द्र का सुख तो जहर का सुख है। इस आत्मा का सुख तो अतीन्द्रिय सुख है तो अतीन्द्रिय सुख को कोई उपमा है नहीं। समझ में आया ? आहाहा!

'अतुलं' उपमा रहित है। किस कारण से ? 'बन्धच्छेदात्'... देखो! **मूल सत्ता से नाश द्वारा।** आहाहा! जैसे इस चने के ऊपर का छिलका-छिलका नाश होता है, वैसे चना पक्का होता है, वह फिर उगता नहीं है, वह मिठास देता है। वह मिठास कहाँ से आयी ? कच्चे चने में मिठास नहीं थी, तूरा था और पक्के में मिठास आयी, वह कहाँ से आयी ? बाहर से आयी ? अन्दर में मिठास पड़ी थी, वह बाहर आयी। सेंकने से बाहर आती हो तो लकड़ी को सेंके, कोयले को सेंके तो बाहर आनी चाहिए। कहाँ अन्दर में है कहाँ ? चने में मिठास पड़ी है तो सेंकने से डालिया... तुम्हारे डालिया कहते हैं न ? चना। आहाहा! वह मिठास जैसे है, वैसे आत्मा में अतीन्द्रिय आनन्द की मिठास है। आहाहा! उस मिठास को भी चने तो जानते नहीं। हैं ? और चने की मिठास का ज्ञान हुआ, वह चने की मिठास का नहीं। आहाहा! उस समय की उस पर्याय में वैसा ज्ञान स्वयं से उत्पन्न हुआ है। चने में मिठास है, वैसा ज्ञान, हों! उस ज्ञान में तन्मय अपना ज्ञान है, तो जिसमें-ज्ञान में मिठास का ज्ञान है, वह अनन्त ज्ञान की मिठास में जब ज्ञान लग गया... आहाहा! अनन्त आनन्द अन्दर भरा है, उसमें मिठास लग गयी अन्दर में, तो पर्याय में-दशा में पूर्ण आनन्द हो जाता है, फिर उसका आगामी काल में कभी नाश नहीं होता। है ?

किस कारण से ? अर्थात् आठ कर्म... अर्थात् कर्म हैं न ? राग-द्वेष, पुण्य-पाप, वह भावकर्म है और जड़कर्म आठ हैं, उन सबका नाश होता है उस कारण से। किस कारण से ? **मूल सत्ता से नाश द्वारा। कैसा है शुद्ध ज्ञान ? (अर्थात् जीवद्रव्य) 'नित्योद्यौत-स्फुटितसहजावस्थं'** आहाहा! **शाश्वत प्रकाश से प्रगट हुआ है...** जैसा आत्मा अविनाशी शाश्वत् है, उसकी अनन्त आनन्द आदि शक्तियाँ शाश्वत् हैं, वैसा पर्याय में शाश्वत् अतीन्द्रिय आनन्द प्रगट हो गया। आहाहा! वस्तु शाश्वत्, गुण शाश्वत्, पर्याय-अवस्था शाश्वत्! आहाहा! द्रव्य-गुण शाश्वत् और संसार की, राग-द्वेष की पर्याय अशाश्वत्, अस्थिर थी। तो जैसा द्रव्य-वस्तु शाश्वत् है, उसकी शक्ति-गुण आनन्द आदि शाश्वत् हैं, वैसी पर्याय शाश्वत् हो गयी। आहाहा! ऐसा उपदेश किस

जाति का होगा ? अन्य कहते हैं कि दया पालना, व्रत करना, इस देश की सेवा करना.. कौन करे ? भगवान ! आहाहा ! तेरे शरीर में रोग आता है तो तेरी मिटाने की शक्ति नहीं। वह तो जड़ है, वह तो जड़ है। आहाहा ! तो पर के (रोग) तो मिटा नहीं सकता। अभिमान है, अज्ञान है। आहाहा !

यहाँ तो अपनी (संसार अवस्था) मिटा सकता है। ऐसा कहा न ? '**नित्योद्योत**' **शाश्वत प्रकाश से...** '**स्फुटित**' लो, यहाँ स्फुटित आया। कल आया था न ? **स्फुट,** स्फुट। यह तो **स्फुटित प्रगट हुआ है...** जैसा अन्दर में आनन्द था, वैसा प्रगट हुआ। आहाहा ! कैसा है ज्ञान ? प्रगट हुआ नित्य और '**सहजावस्थं**' **अनन्त गुण बिराजमान शुद्ध जीव द्रव्य जिसको, ऐसा है।** आहाहा ! अवस्था अर्थात् पर्याय-दशा ऐसी है। जैसी सहज शक्तिरूप त्रिकाल प्रभु है, ऐसा अनुभव करके, आनन्द का वेदन करके आत्मज्ञान करते-करते, स्थिरता करते-करते पूर्ण दशा प्रगट हो गयी। वह पूर्ण शाश्वत् दशा है। **अनन्त गुण बिराजमान शुद्ध जीव द्रव्य जिसको, ऐसा है।** यह जीव द्रव्य ही अनन्त गुण से (बिराजमान) है, वैसी पर्याय भी शुद्ध अनन्त काल रहेगी। आहाहा ! संसार का नाश और मोक्ष की उत्पत्ति, आत्मद्रव्य त्रिकाली ध्रुव। आहाहा ! यह क्या कहते हैं ? यह तो विज्ञान का विज्ञान है, अन्तर आत्मज्ञान है। आहा ! आत्मज्ञान बिना कभी जन्म-मरण का अन्त नहीं आयेगा। चौरासी अवतार में भटक-भटककर तेली की घानी की तरह पिलकर मर गया है अनन्त काल से। आहाहा !

यहाँ कहते हैं स्वयं नित्य प्रगट हुआ। सहज अनन्त गुण से **अवस्थ** बिराजमान है। **सहजावस्थं** शब्द है। **अवस्थ** का अर्थ अवस्था नहीं लेना। अनन्त गुण से बिराजमान **अवस्थ** निश्चय है। सहज निश्चय से अनन्त गुण हैं, बस ऐसा लेना; अवस्था में नहीं। **अवस्थ,** निश्चितरूप से है। आहाहा !

और कैसा है ? '**एकान्तशुद्धं**'... अब आया, ओहो ! आत्मा जहाँ अनन्त एकान्त शुद्ध अन्दर था, वैसी दशा प्रगट हुई। अन्तर अनुभव करते-करते, आत्मज्ञान में लीन होते-होते, तो वह पर्याय, वह अवस्था ऐसी हुई कि एकान्त शुद्ध, सर्वथा शुद्ध (हुई)। कथंचित् शुद्ध और कथंचित् अशुद्ध - ऐसा नहीं। आहाहा ! (कोई कहे) सिद्ध को भी दु:खी कहो। वे दु:खी नहीं, पूर्ण आनन्दस्वरूप हैं। आहाहा ! पूर्ण आनन्द हुआ, उसे फिर जन्म-मरण नहीं है। आहाहा !

'**एकान्तशुद्धं**' **सर्वथा प्रकार शुद्ध है।** आहाहा ! परमात्मप्रकाश में तो थोड़ा कहा है— इन्द्रियों का सुख भगवान को नहीं। परमात्मप्रकाश में लिया है। इन्द्रियों का सुख कहाँ है ? वह तो इन्द्रिय की जड़ की कल्पना है, उन इन्द्रियों का सुख नहीं, इतना वहाँ परमात्मप्रकाश में थोड़ा लिया है। यहाँ तो (कहते हैं) एकान्त परिपूर्ण शुद्ध सुखी ही हैं। आहाहा ! अतीन्द्रिय आनन्द का नाथ भगवान अन्दर अतीन्द्रिय ज्ञान और अतीन्द्रिय आनन्द का सागर नाथ अन्दर बिराजमान है,

उसका अन्तर में अनुभव करते-करते, उसका अनुसरण करते-करते दशा में जहाँ पूर्ण शुद्धता प्रगट हुई... आहाहा! वह नित्य एकान्त शुद्ध है। आहाहा!

और कैसा है ? 'अत्यन्तगम्भीरधीरं'... आहाहा! **अनन्त गुण से बिराजमान...** गम्भीर। ओहो! क्या कहना! फोड़ा होता है न फोड़ा? गम्भीर फोड़ा बहुत पक जाये ऐसे सड़न, सड़न हो जाये, (रुई की) बत्ती भी अन्दर गिरे नहीं। आत्मा का आनन्द जहाँ प्रगट हुआ (वह) अत्यन्त गम्भीर है। अर्थात्? उस आनन्द की इतनी गम्भीरता है कि जिसका पार नहीं। आहाहा! ऐसा आनन्द अन्दर भरा ही है परन्तु उसकी दृष्टि और सम्यग्दर्शन, ज्ञान और अनुभव करते-करते वह प्रगट होता है। आहाहा! अनन्त-अनन्त गम्भीर, जिसकी एक समय की दशा पूर्ण मोक्ष, उसका पार नहीं। अक्षय अनन्त गम्भीर है। आहाहा! अक्षय अनन्त! जहाँ चारित्र को अक्षय अनन्त कहा तो पूर्ण दशा की अक्षय अमेय की मर्यादा क्या कहना? कहते हैं। अत्यन्त गम्भीर है, भाई! आहाहा! मोक्ष का मार्ग वह धर्म, वह धर्म कोई अलौकिक चीज़ है। वह कोई बाहर से प्राप्त नहीं होती। अन्तर आत्मा में पड़ा है, अन्दर में ध्यान करने से, अन्तर के आनन्द का ध्यान करने से आनन्द और धर्म होता है। आहाहा! यहाँ तो थोड़ी दया पाले और थोड़ा पैसा खर्च करे तो कहे धर्म हो गया, लो! धूल में भी धर्म नहीं। तेरे करोड़, दो करोड़, अरब खर्च कर न! वह तो धूल है, मिट्टी है। मिट्टी में तेरा धर्म कहाँ से आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं अत्यन्त गम्भीर और धीर—दो शब्द प्रयोग किये हैं। अनन्त गुण से बिराजमान - ऐसा और धीर। धीर है अर्थात् सर्वकाल रहनेवाला है, शाश्वत् रहनेवाला है। संसार का नाश होकर आत्मा का मोक्ष हुआ, अपना अनुभव करते-करते केवलज्ञान हुआ, परमात्मा (हुआ) वह शाश्वत् है। आहाहा! है?

किस कारण से ? 'एकाकारस्वरसभरतः'... आहाहा! **एकाकार।** क्या कहा? **एकरूप हुए...** अनन्त अनन्त आनन्द एकरूप दशा हो गयी। जैसी विकारी दशा थी तो अनेकरूप थी। मोक्षदशा अन्दर हुई (तो) अन्दर आत्मा एकरूप से आनन्द है। दशा में एकरूप आनन्द पूर्ण प्रगट हुआ, अनेकपना नाश हो गया, ऐसा एकाकार। आहा! **'स्वरस' अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख, अनन्त वीर्य के अतिशय के कारण।** विशेषता के कारण सुखी है। आहाहा!

और कैसा है ? 'स्वस्य अचले महिम्नि लीनं' अपने निष्कम्प प्रताप में मग्नरूप है। भावार्थ इस प्रकार है कि सकलकर्मक्षयलक्षण मोक्ष में आत्मद्रव्य स्वाधीन है, अन्यत्र चतुर्गति में जीव पराधीन है। चाहे तो नरक में जाओ, पशु में, मनुष्य में, या देव सब पराधीन हैं। यह **मोक्ष का स्वरूप कहा।** लो! यह मोक्ष अधिकार पूरा हुआ।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(१६) श्री समयसार, श्लोक २७१, २७२ प्रवचन नं. ५७८
दिनांक २५-०६-१९६८

२७१ कलश, इसका अर्थ हो गया। इसका भावार्थ। २७१ का भावार्थ। क्या कहते हैं ?

भावार्थ : ज्ञानमात्र भाव ज्ञातृक्रियारूप होने से ज्ञानस्वरूप है। यहाँ कहते हैं कि यह आत्मा जो है, वह जानने का काम करे, जानने का; वह कोई पर का ज्ञेय है, इसलिए जानने की क्रिया इसे है—ऐसा नहीं और पर के ज्ञेय को जानता है, इसलिए इतना ज्ञान है –ऐसा नहीं। ***जानने की पर्याय में छह द्रव्य ज्ञात हुए। वह छह द्रव्य का ज्ञान अपनी ज्ञान की पर्यायरूप से हुआ है। छह द्रव्य के आकार से भले कहा जाये परन्तु है सब ज्ञान की ही पर्याय। समझ में आया ? छह द्रव्य ज्ञात होते हैं, ऐसा नहीं,-ऐसा यहाँ कहते हैं। छह द्रव्य सम्बन्धी की ज्ञान की पर्याय अपने को जनाती है, वह ज्ञान स्वयं ज्ञेय है, स्वयं ज्ञान है और स्वयं उसका ज्ञान द्वारा जाननेवाला ज्ञाता है। थोड़ी सूक्ष्म बात है।*** ये सब अन्तिम श्लोक तो ऐसे हैं न!

धर्म की दृष्टिवन्त को ज्ञान अलग चीज़ है और उसका ज्ञेय अलग चीज़ है और ज्ञाता अलग (चीज़ है)—ऐसा भासित नहीं होता, ऐसा कहते हैं। समझ में आया? जानन ज्ञानमात्रभाव, जाननक्रियारूप वह जानने की अवस्थारूप आत्मा की ज्ञानक्रिया है। वह ज्ञानस्वरूप है, वह कहीं पर को, ज्ञेय को जाने, इसलिए ज्ञेयस्वरूप है – ऐसा नहीं। समझ में आया?

और वह स्वयं ही निम्न प्रकार से ज्ञेयरूप है। जाननक्रिया वह स्वयं ही अपना ज्ञेय है। आहा! **बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है,...** ***जानने की अवस्था में बाह्य ज्ञेय जो उसका स्वरूप है, वैसा यहाँ जानने में जानने की पर्याय होती है, तथापि उस जानने की पर्याय से ज्ञात होनेयोग्य पदार्थ अत्यन्त भिन्न हैं। कहो, समझ में आया इसमें ? यह शरीर, वाणी, मन, ज्ञान की पर्याय में ज्ञात होते हैं (तो) कहते हैं कि वे ज्ञेय ज्ञात होते हैं ? नहीं; वह तो ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है। ज्ञान की पर्याय, वे ज्ञेय जैसे हैं, उनका ज्ञानरूप से ज्ञान का जानना यहाँ परिणमन होता है। वह ज्ञान की क्रिया ही स्वयं अपने को जानती है।*** पोपटभाई! बहुत सूक्ष्म! स्वयं ही अभेद वस्तु है। समझ में आया?

बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है,... जानने में ये रागादि, शरीरादि बाह्यपदार्थ, धर्मास्ति, अधर्मास्ति, आकाश, ये जानने में आते हैं। कहते हैं कि ये जानने में आये हैं ? कि नहीं; उनका उस सम्बन्धी का ज्ञान स्वयं अपने रूप से ज्ञान का परिणमन हुआ है, वह स्वयं अपनी ज्ञान की पर्याय स्वयं

जाने और स्वयं ज्ञेय है; परज्ञेय तो भिन्न रह गये। समझ में आया? यह फर्श आदि ज्ञात होते हैं?– नहीं, ऐसा कहते हैं।

श्रोता : अपने को जानते ज्ञात हो जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह ज्ञात होते हैं वे नहीं, वे नहीं। यहाँ तो आगे (बात) चलती है, यहाँ तो यह फर्श है, वह परज्ञेय है, उसे जानने की पर्याय हुई, वह फर्श के कारण नहीं और यहाँ फर्श ज्ञात नहीं होता। यहाँ तो ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है, फर्श नहीं – ऐसा कहते हैं। जेठालालभाई! समझ में आया?

इसी प्रकार दर्पण की अवस्था देखो तो उसमें मानो यह सामने आम हो, ऐसे नारियल हो, कोयला हो, वह जो दर्पण की अवस्था है, वह इनरूप हुई है – ऐसा नहीं। वह तो दर्पण की अवस्था स्वच्छतारूप हुई है, वह अपनी अवस्था है। समझ में आया? दर्पण में ऐसे बाहर की चीज़ दिखाई दे, वह चीज़ वहाँ है? वह दर्पण की अवस्था चीज़ से तो भिन्न है और चीज़ें उससे भिन्न हैं। समझ में आया?

यह ज्ञान चैतन्य-दर्पण है, इसकी-ज्ञान की वर्तमान अवस्था जो ज्ञेय हैं, उन्हें जाननेरूप परिणमे, वह पर्याय अपनी है, उसे ज्ञान जानता है, इन्हें नहीं। बाहर के ज्ञेय तो बाहर रह गये। समझ में आया? लवजीभाई! रुपये के ब्याज का धन्धा करते हैं, कहते हैं वह ज्ञान में ज्ञात होता है या यह ज्ञात होता है? नहीं, ऐसा कहते हैं। ए.. प्रवीणभाई! क्या इस शेयर बाजार में झपट्टा चलता है। ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा हो, लाओ.. लाओ कहते हैं, ये सब ज्ञेय ज्ञान की पर्याय जानती है, उस ज्ञेय की पर्याय-ज्ञेय ज्ञान की पर्याय से भिन्न चीज़ है, तथापि ज्ञान की की पर्याय है, वह उन्हें जाननेरूप से परिणमी है, वह अपनी ज्ञान की दशा है, उसे ज्ञान जानता है, इसे (परज्ञेय को) नहीं। समझ में आया?

देखो! यह मार्ग वीतराग का! इस वस्तु का ऐसा स्वरूप है। कहते हैं तेरी ज्ञान की पर्याय परिणमनरूप हुई, वह ज्ञेय के कारण हुई है? और वास्तव में वह ज्ञेय को जानने की पर्याय उस ज्ञेय की है? ज्ञेय तो ज्ञान की पर्याय से भिन्न रह गये हैं। समझ में आया? चिमनभाई! क्या कहते हैं यह? कहना क्या है परन्तु? बापू! तेरी ज्ञान की पर्याय का धर्म तुझसे हुआ, वह तुझे ज्ञात होता है, परवस्तु नहीं-ऐसा कहते हैं। पहले कहा कि ***इस राग को जानता है न ज्ञान? कि नहीं। राग सम्बन्धी का परिणमित ज्ञान अपने ज्ञानरूप परिणमित पर्याय-ज्ञान की कल्लोल उठती है, उसे ज्ञान जानता है। समझ में आया? अब पर का करना तो रहा नहीं, पर से इसमें होने का रहा नहीं और पर को देखने का रहा नहीं – ऐसा यहाँ कहना है, भाई!*** क्या कहा, समझ में आया इसमें?

आत्मा भगवान सच्चिदानन्द ज्ञानमूर्ति को पर करे, आत्मा पर का कुछ करे, राग करे,

यह तो उसमें है ही नहीं। समझ में आया ? परन्तु पर को जानता है - ऐसा उसमें नहीं, कहते हैं। ऐसा कहते हैं यहाँ तो। समझ में आया इसमें कुछ ? भगवान ज्ञानस्वरूप चैतन्य ज्योति जो वस्तु है, वह पर का कुछ फेरफार करे, वह तो बात है ही नहीं, कहते हैं। परन्तु पर को जानना - ऐसा कहना, वह भी व्यवहार है। कारण ? वह पर है, उस सम्बन्धी की ज्ञान की पर्याय अपनी अपने में ज्ञान कल्लोलरूप से, तरंगरूप से परिणमी है, उसे ज्ञान जानता है। पोपटभाई ! सूक्ष्म, बहुत सूक्ष्म। मुम्बई की धमाल में से मुश्किल से मस्तिष्क खाली (हुआ हो), उसमें ऐसा सूक्ष्म आवे।

ज्ञान, ज्ञान की तरंग उठे, वह ज्ञान की कल्लोल है। वह ज्ञेय की कल्लोल है ? ज्ञान में ऐसा ज्ञात हुआ, ज्ञान ऐसा परिणमा कि यह छह द्रव्य हैं, छह द्रव्य हैं। यह परिणमा, वह ज्ञान परिणमा है ? वह ज्ञान की परिणति है या पर की है ? अपने अस्तित्व में ज्ञान की परिणति हुई है, अपने अस्तित्व में उस ज्ञेय की परिणति हुई नहीं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया ? भगवान आत्मा ज्ञान की अवस्था... ओहोहो ! वीतरागमार्ग तो देखो ! अन्य बात में कहीं अन्यत्र ऐसा होता नहीं।

यहाँ तो कहते हैं कि ज्ञान छह द्रव्य को जाननेरूप जानने की पर्याय हुई, वह परज्ञेय के कारण हुई ? परज्ञेय ज्ञात हुए ? परज्ञेय को जानता है ?-नहीं। वह स्वयं ज्ञान की अवस्था छह द्रव्य जितने हैं, उन्हें जानने की पर्यायरूप अपनी पर्याय से परिणमी है, उसे ज्ञान जानता है। इसे जाने, वह तो पर की वस्तु है, उसमें इसे जानना कहाँ आया ? समझ में आया ? धर्मी ऐसे आत्मा को जानता है-ऐसा कहना है। मैं मेरी पर्याय ज्ञानरूप परिणमती है, उसे मैं जानता हूँ-ऐसा धर्मी जानता है। मैं पर को जानता हूँ; पर को करता हूँ, वह इसमें है नहीं। आहाहा !

बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है,... स्वयं ही निम्न प्रकार से ज्ञेयरूप है। किस प्रकार ? कि **बाह्य ज्ञेय ज्ञान से भिन्न है,...** एक बात। **ज्ञान में प्रविष्ट नहीं होते;...** दो बात। **ज्ञेयों के आकार की झलक ज्ञान में पड़ने पर...** इस अपेक्षा से समझाया है। ज्ञेयों के आकार की झलक अर्थात् जैसे सामने चीज़ है और दर्पण की स्वच्छता में ज्ञात होती है न ? वह अवस्था पर के आकार हुई—ऐसा कहना वह व्यवहार है। आकार है, वह तो जो पर है, उसके स्वरूप अवस्था दर्पण की होती है। इसी प्रकार पर है, उसे जाननेरूप अपनी स्वच्छ अवस्था स्वयं होती है, वह अपने अस्तित्व में अपने ज्ञेय के को स्वयं जानती है। अपने अस्तित्व में वे ज्ञेय आये नहीं। अपने अस्तित्व में ज्ञेय आये नहीं तो पर को जाने - ऐसा कहाँ से आया ? कहते हैं। ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है।

अपने अस्तित्व में ज्ञेय आये हैं ? जानने की पर्याय जानी, उसमें ज्ञेय आये हैं ? समझ में आया ? वे ज्ञेय उसमें आते हैं—ऐसा माननेवाले ज्ञेय की अवस्था स्वच्छरूप से स्व अस्तित्व से परिणमति है - ऐसा वे मानते नहीं। यह पर इसमें आया - ऐसा माननेवाला, स्वच्छता की निर्मल पर्याय इतनी बड़ी है, इतना ही मैं और उसे मैं जाननेवाला हूँ—ऐसा न मानकर पर के अस्तित्व

के कारण यहाँ मेरे जानने में आया, उस स्व के अस्तित्व की महिमा का उसे पता नहीं। कहो, अमलचन्दभाई! समझ में आया? समझ में आया? भाई! क्या नाम है? गम्भीरचन्द! यह तो गम्भीर बात है, बहुत गम्भीर है, देखो!

भगवान ऐसा कहते हैं, भगवान! तू कौन है? तू कौन है? तेरी ज्ञान की पर्याय में छह द्रव्य ज्ञात होते हैं—ऐसा कहना, वह तो व्यवहार हो गया। क्योंकि छह द्रव्य ज्ञात नहीं होते, छह द्रव्य का यहाँ ज्ञान का परिणमना अपनी कल्लोल की पर्याय में परिणमना हुआ है, वह तो अपने अस्तित्व में ज्ञान की पर्याय का परिणमना हुआ है, छह द्रव्य का परिणमना यहाँ आया नहीं। समझ में आया? तेरे ज्ञान की पर्याय का अस्तित्व इतना बड़ा है – ऐसा कहते हैं। वह ज्ञेय के कारण नहीं। समझ में आया? आहाहा!

यह तो बड़ा हमारे छह खण्ड का राज है और हमारे पैसा है। अरे! वह बड़ा नहीं। सुन न! वह कहाँ घुस गया था? ऐसा कहते हैं यहाँ तो। छह लड़के और इतना पैसा और इतनी पत्थर की टाईल, यह कहाँ यहाँ आये हैं? कहते हैं और उनका ज्ञान, उनके सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ हुआ है? उनका अस्तित्व यहाँ है? उनके सम्बन्धी के ज्ञान का अस्तित्व यहाँ है? उस सम्बन्धी का अपना ज्ञान जो है, उसरूप परिणमा, उसका अस्तित्व यहाँ है। समझ में आया? जयचन्दभाई! ऐसा मार्ग है। आहाहा!

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : कहाँ प्रविष्ट हो? वह तो दर्पण की स्वच्छता ही परिणमी है। वह ज्ञान की पर्याय की कल्लोल ऐसी है। छह द्रव्य को जाने—ऐसी जो ज्ञान की पर्याय, वह अपनी पर्याय को स्वयं जानती है।

श्रोता : अपनी पर्याय जाने, फिर राग-द्वेष क्यों होते हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसलिए कहते हैं न यह। है कहाँ राग-द्वेष? राग-द्वेष ही नहीं -ऐसा कहते हैं। अपनी पर्याय जाने, उसमें राग-द्वेष करना कहाँ रहता है? और राग-द्वेष है ही नहीं - ऐसा कहते हैं। चिमनभाई! देखो! यह वीतरागी तत्त्व सर्वज्ञ ने कहा हुआ-सिद्ध हुआ है। यह बात सर्वज्ञ के अतिरिक्त, वीतरागमार्ग के अतिरिक्त तीन काल-तीन लोक में कहीं नहीं होती।

एक समय की पर्याय छह द्रव्य को जाननेरूप परिणमी है (तो) कहते हैं कि उन्हें जानने के लिये परिणमी है? अपनी ज्ञान की ही पर्याय इतनी बड़ी है, उसे वह जानती है। ज्ञेयों के आकार की झलक, झलक अर्थात् कुछ अन्दर घुस नहीं जाता परन्तु बताते हैं कि वह ज्ञान की पर्याय साकार ऐसी होती है कि जैसी परचीज़ है, उसरूप से परिणमने का अपनी पर्याय का अस्तित्व अपने स्वभाव से अपने अस्तित्व में अपने कारण से होता है।

ज्ञेयों के आकार की... ज्ञेय की जो स्थिति है, वह ज्ञान में ज्ञात होने पर, **झलक ज्ञान में पड़ने पर...** इसका अर्थ उस ज्ञान में परिणमने पर। **ज्ञान ज्ञेयाकाररूप दिखाई देता है...** वह ज्ञान छह द्रव्य के पर्याय, द्रव्य-गुण-पर्याय जाने—ऐसा दिखता है परन्तु ऐसा है नहीं। **परन्तु वे ज्ञान की ही तरंगें हैं।** आहाहा! कितनी सूक्ष्मता और कितनी वास्तविकता और कितनी अस्तित्व की महत्ता है! हैं? आहा! यह महत्ता भासित नहीं हो और पर की महत्ता भासित होती है। इसके कारण यह जानता हूँ, उसे मैं जानता हूँ। भाई! तेरी पर्याय की महत्ता का तुझे पता नहीं। समझ में आया? इतना बड़ा ज्ञात होता है, वह इतना बड़ा है, इसलिये ज्ञात होता है और इतना बड़ा ज्ञात होता है, इसलिये उसका-सामने का परिणमन को मैं जानता हूँ? नहीं, इतने बड़े को जाननेवाले की पर्याय मेरी कल्लोलरूप परिणमी है, उसे मैं जानता हूँ। आहा! समझ में आया? उतारते-उतारते कहाँ लाये, देखो न! अनन्त शक्ति में से एकरूप लाये, चार-द्रव्य, क्षेत्र में से एक रूप लाये, तीन भेद में से एकरूप मैं का मैं, जाननेवाला भी मैं, ज्ञात होऊँ वह मैं, जाननेवाला मैं, ज्ञात होऊँ मैं और ज्ञान द्वारा जानूँ वह मैं। तीनों में मैं का मैं हूँ। समझ में आया?

बनारसीदासजी ने दृष्टान्त दिया था। उस दिन बात हुई थी। यह शब्द है न? यह सरस्वती होती है। इसे अक्षर कहो तो यह है, सरस्वती कहो तो यह है और इसमें भरा हुआ अर्थ है तो यह है। इसका भाव तो यह है। वैसे आत्मा ज्ञान की पर्यायरूप छह द्रव्य और अपने को जानने की पर्यायरूप परिणमता है, वह स्वयं ही है, वह स्वयं ही ज्ञेय है। 'स्व-पर प्रकाशक शक्ति हमारी तातैं वचनभेद भ्रम भारी।' वचनभेद भ्रम भारी, निजरूपा-ज्ञेयरूपा निजरूपा पररूपा भासी। निजरूप स्वज्ञेय, पररूप परज्ञेय परन्तु परज्ञेय सम्बन्धी की ज्ञान की पर्याय का कल्लोल परिणमन वह मेरा, मेरे अस्तित्व में, मेरे कारण इतना उसमें हूँ, उसे जानना वह ज्ञान है। समझ में आया?

राग को जानना है, कहते हैं कि राग-व्यवहार है, उसे ज्ञान ने जाना? नहीं; वह तो ज्ञान की पर्याय इसी प्रकार की हुई है, उसे स्वयं ज्ञान, ज्ञान की पर्याय को जानता है, राग को नहीं। समझ में आया?

ज्ञेयों के आकार का प्रकार ज्ञान में स्वयं से ज्ञात होते ज्ञेयों के प्रकार का भाव जो है, ऐसे यहाँ ज्ञान में स्वयं से, अपने में ज्ञात, परिणमते वे कल्लोल अपनी ज्ञान की ही अवस्था है। **वे ज्ञान तरंगें ही ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं।** वे ज्ञेय नहीं - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पाँच लाख का बँगला और अभराय से भरा हो। अभराय ही कहते हैं न? क्या कहते हैं? फर्नीचर! किसने कहा? फर्नीचर... फर्नीचर! ऐसे फर्नीचर हों। लाख-दो लाख रुपये, पाँच लाख तो अन्दर फर्नीचर में पड़े हैं। बँगला दस लाख का, दो-पाँच लाख का फर्नीचर (पड़ा हो) कहते हैं कि उसमें ऐसी तुझे ज्ञान की पर्याय ज्ञात होती है या वह ज्ञात होता है? क्या कहता है? सुन! तेरे

अस्तित्व का उसमें ज्ञान है या पर के अस्तित्व का ज्ञान है ? इसी प्रकार यहाँ कहते हैं। उस समय के ज्ञान के परिणमन में तेरे अस्तित्व का ज्ञान है या पर के अस्तित्व का ज्ञान है ? समझ में आया ? तेरे अस्तित्व का ज्ञान है। इतना ज्ञान ही वह मैं हूँ। ऐसा ज्ञान उसे ज्ञेय करके जानता है।

परन्तु वे ज्ञान की ही तरंगें हैं। वे ज्ञान तरंगें ही ज्ञान के द्वारा ज्ञात होती हैं। आहा! कैसी बात की है! ऐसी बात कहीं (है नहीं)। वस्तु की स्थिति की हद इतनी है, मर्यादा इतनी है। **इस प्रकार स्वयं ही स्वतः जानने योग्य होने से...** भगवान आत्मा **स्वयं ही स्वतः जानने योग्य होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेयरूप है। स्वयं ही स्वतः जानने योग्य होने से...** यह कारण दिया, **ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेयरूप है।** अपना ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञेयरूप है।

और स्वयं ही अपना जाननेवाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है। यह ज्ञानमात्र स्वयं ज्ञाता है। जाननेवाला भी स्वयं, जानने में भी स्वयं, जाननेवाला भी स्वयं। समझ में आया ? ज्ञात स्वयं, जाननेवाला स्वयं, जाननेवाला... ज्ञान द्वारा ज्ञात होता है, स्वयं और ज्ञेय भी स्वयं और ज्ञाता भी स्वयं। तीन में कोई एक भी अलग चीज़ है नहीं। पर ज्ञात होता है और आत्मा जाननेवाला है—ऐसा है नहीं, ऐसा कहते हैं।

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु दृष्टि जाये पर के ऊपर और वस्तु का अस्तित्व ऐसा नहीं, ऐसा कहते हैं। वस्तु का अस्तित्व पर के कारण नहीं है। यह ज्ञान की पर्याय स्वयं की ज्ञेयरूप से परिणमी है, वह अस्तित्व अपना इतना अपना है। उसके बदले पर को जानता है, ऐसा कहा जाये वहाँ अपना अस्तित्व इतना है, वह तो मानता नहीं। दृष्टि मिथ्या हुई। समझ में आया ? आहा!

वह **स्वयं ही अपना जाननेवाला होने से ज्ञानमात्र भाव ही ज्ञाता है। इस प्रकार ज्ञानमात्र भाव ज्ञान, ज्ञेय और ज्ञाता-ज्ञेय इन तीनों भावों से युक्त...** तीन भावसहित। **सामान्य विशेषस्वरूप वस्तु है।** सामान्य ध्रुव और जानने की पर्याय विशेष यह सब स्वयं वस्तु है। **'ऐसा ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ'...** ऐसा ज्ञानमात्र ज्ञायकभाव वह मैं। **इस प्रकार अनुभव करनेवाला पुरुष अनुभव करता है।** ऐसा धर्मी मैं ज्ञानमात्र ज्ञात होनेयोग्य मैं, जाननेवाला मैं और ज्ञात होने योग्य भी मैं, ज्ञान द्वारा जानूँ वह मैं, ज्ञात हो वह मैं-ज्ञेय, जाननेवाला वह मैं। जाननेवाला मैं, ज्ञात पर और पर द्वारा मैं जानूँ-ऐसा है नहीं। समझ में आया ?

इस ज्ञेय द्वारा ज्ञान ज्ञात होता है—ऐसा नहीं, ज्ञान द्वारा ज्ञान ज्ञात होता है। यह पुस्तक ज्ञेय है, इसके द्वारा ज्ञान ज्ञात हो, ऐसा नहीं-ऐसा कहते हैं। वीतराग की वाणी परज्ञेय है, उसे ज्ञान जानता है, इसलिए वाणी को ज्ञान जानता है-ऐसा नहीं। अपनी ज्ञानपर्याय ऐसी ही स्वयं से इतनी और ऐसी परिणमित हुई है कि उसे ज्ञेयरूप से ज्ञान जानता है और ज्ञातारूप से ज्ञान ज्ञेय को जानता

है। इसलिए ज्ञाता भी स्वयं, कर्ता स्वयं, कर्म ज्ञान स्वयं, और ज्ञेय भी स्वयं। वस्तु वह की वह है, कहते हैं। समझ में आया?

धर्म में (इसका) क्या काम होगा? जीव को सुखी होने का धर्म करना, उसमें यह क्या काम? कर्मों को करो, व्रत करो, नियम करो, यह करो उसमें यह कहाँ आया? कहते हैं। यह कहते हैं कि सुन न! तुझे जो व्रत का विकल्प उठता है, देह की क्रिया होती है, वह तुझसे तो नहीं, तेरे अस्तित्व के (कारण नहीं) और उसके अस्तित्वपने के (कारण) तेरा ज्ञान परिणमता है-ऐसा नहीं। समझ में आया? तेरा ज्ञान तेरे कारण से, उस क्षण में, उस प्रकार का परिणमन करे, उसे आत्मा ज्ञेयरूप से जाने। आहाहा! सूक्ष्म पड़े, इसलिये लोग हाँक रखते हैं, आज भी बहुत आया है। जैन संदेश पर प्रहार किया है। इन्हें याद किया, याद तो करे न।

श्रोता : सामान्य-विशेष के परिणमन में सामान्यभाव...

पूज्य गुरुदेवश्री : सामान्य ध्रुव, सामान्य ध्रुव और परिणमन की क्रिया विशेष। परिणमन की क्रिया वह ज्ञेय। जो परिणमन की क्रिया विशेष है, वह ज्ञेय है। वह विशेष है और सामान्य भी ज्ञेय है। दोनों ज्ञेय हैं और ज्ञान जाननेवाली पर्याय उसे जानती है। ज्ञाता स्वयं जानता है। वस्तु तो एक की एक हुई। समझ में आया या नहीं इसमें?

'ऐसा ज्ञानमात्र भाव मैं हूँ' इस प्रकार अनुभव करनेवाला... स्वसन्मुख में इस प्रकार से स्वज्ञेय स्वयं ज्ञान से जाने और ज्ञाता जाने। लो! उसमें पर को कोई सम्बन्ध है नहीं। यह २७१ कलश कहा। यह तो कर्म, राग करावे—ऐसा रहा नहीं और राग, ज्ञान करावे, यह रहा नहीं। भाई! क्या कहा, समझ में आया इसमें? भगवान आत्मा के अस्तित्व में जो ज्ञान का परिणमन है, वह कर्म के कारण राग है-ऐसा नहीं और राग के कारण ज्ञान है—ऐसा नहीं और वह ज्ञान राग को जानता है-ऐसा नहीं। समझ में आया? समझ में आये ऐसा है, हों! जयन्तीभाई! न समझ में आये ऐसा नहीं है, यह तो सादी भाषा है। कोई बहुत ऐसी सूक्ष्म नहीं आती।

श्रोता : विषय बहुत गम्भीर है।

पूज्य गुरुदेवश्री : गम्भीर तो कहा। गम्भीरचन्दजी (कहा), उस समय पूछा क्या नाम है? गम्भीर (वस्तु है)।

भगवान आत्मा... ओहोहो! किसी भी क्षण में और पल में अपनी ज्ञान की पर्याय को ज्ञेय करके जानता है-ऐसा कहते हैं। समझ में आया? पर का जानना हो तो पर के जानने का ज्ञेय, वह यहाँ अस्तित्व में आ जाये। ऐसा आता नहीं। वह तो परसम्बन्धी का ज्ञान का परिणमन स्वयं से परिणमा है, वह अपने अस्तित्व में है। समझ में आया? २७१ (कलश पूरा) हुआ। अब २७२।

अब, **आत्मा मेचक, अमेचक इत्यादि अनेक प्रकार से दिखायी देता है, तथापि यथार्थ ज्ञानी निर्मल ज्ञान को नहीं भूलता—इस अर्थ का काव्य अब कहते हैं:—**

(पृथ्वी)

क्वचिल्लसति मेचकं क्वचिन्मेचकामेचकं
क्वचित्पुनरमेचकं सहजमेव तत्त्वं मम।
तथापि न विमोहयत्यमलमेधसां तन्मनः
परस्परसुसंहतप्रकटशक्तिचक्रं स्फुरत्॥२७२॥

समस्त शक्तियों का समूह भगवान स्वयं ही है। **(ज्ञानी कहता है:-)** धर्मी ऐसा जानता है। कहता है, यह तो शब्द लिया है। **मेरे तत्त्व का ऐसा स्वभाव ही है...** धर्मी-सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है.. समझ में आया? धर्मी-धर्म करनेवाला सम्यग्दृष्टि ऐसा जानता है कि **मेरे तत्त्व का ऐसा स्वभाव ही है...** मेरा ज्ञानतत्त्व आत्मा, उसका ऐसा स्वभाव है। **कि कभी तो वह (आत्मतत्त्व) मेचक (अनेकाकार, अशुद्ध) दिखायी देता है,...** पर्याय में अशुद्धपना दिखायी देता है। ऐसा तत्त्व का-पर्याय का स्वभाव है। यहाँ साधक की बात है न? मलूपचन्दभाई! जो अशुद्धपना निकाल दिया था, और फिर ज्ञानरूप से रखा। अभी तक सब शक्तियों में से निकाल दिया था।

यहाँ अशुद्ध दिखायी देता है, पर्याय में दिखायी देता है, अशुद्धता अवस्था में दिखायी देती है, ऐसा भी एक पर्याय में स्वभाव है-ऐसा ज्ञानी जानते हैं। जानते हैं, हों! समझ में आया? भगवान आत्मा-तत्त्व का ही ऐसा स्वभाव है कि किसी समय तो वह मेचक अर्थात् मलिन दिखायी देता है। मलिन अर्थात् अशुद्ध, अनेक प्रकार, रागरूप दिखायी देता है कि है, जानता है, जाननेयोग्य अवस्था है। अशुद्ध दिखायी देता है - ऐसा डाला है। अशुद्ध नहीं, ज्ञान दिखायी देता है परन्तु उस अशुद्ध सम्बन्धी का ज्ञान यह जानता है कि यह अशुद्ध है, ऐसा। रागादि है - ऐसा जानता है। समझ में आया?

कभी मेचक-अमेचक (दोनोंरूप) दिखायी देता है... वस्तुरूप से शुद्ध है और पर्यायरूप से अशुद्ध है। दोनों ज्ञान में आते हैं। समझ में आया? भगवान आत्मा-ऐसा तत्त्व का स्वभाव है। है न? **सहजमेव तत्त्वं मम।** है न दूसरी लाईन का? **सहजमेव तत्त्वं मम।** मेरा तत्त्व ऐसा है कि... तथापि ऐसा जानकर ज्ञानी भ्रम में नहीं पड़ता, उलझन में नहीं आता - ऐसा कहना है। यह क्या? अकेला शुद्धस्वरूप भगवान आत्मा, फिर पर्याय में अशुद्धता-यह क्या है? है (ऐसा) जानता है। समझ में आया? त्रिकाल द्रव्य शुद्ध है और पर्याय अशुद्ध है - ऐसे दोनों एक साथ में भी जानता है।

कभी मेचक-अमेचक (दोनोंरूप) दिखायी देता है... ज्ञान में मलिन अवस्था को ज्ञान जाने। जानने में कहाँ... था? और ज्ञान त्रिकाल शुद्ध हूँ, उसे भी जाने। समझ में आया? **कभी**

मेचक-अमेचक (दोनोंरूप) दिखायी देता है और कभी अमेचक (-एकाकार शुद्ध) दिखायी देता है;... अकेला शुद्धद्रव्य देखो तो शुद्ध ही है। समझ में आया ? पर्याय में भी शुद्ध की अवस्था देखो तो शुद्ध है। अशुद्ध की ओर लक्ष्य जाये तो देखो तो वह अशुद्ध है, वह भी ज्ञात होता है और शुद्ध तथा अशुद्ध दोनों एक साथ पर्याय में भी ज्ञात होते हैं। समझ में आया ?

कोई कहे व्रत ले लो और साधु हो जाओ न! हो गया जाओ। 'जैन सन्देश' में टीका (आलोचना) की है न ? भाई! आया है न ? टीका आयी है, यह नाम आया, नहीं ? उस चित्राबाई का नाम आया, वहाँ आयी थी न ? नाम आया था, इसलिए जैन सन्देश में बहुत प्रहार किया। आहा! ऐसा का ऐसा विवाद करते हैं। महासाधु ऐसे, महापवित्र, महापवित्र उनकी तुम निन्दा करते हो। कैलाशचन्दजी लिखते हैं। तुम्हारी तो आदत ही ऐसी निन्दा करने की पड़ गयी है। उन्हीं-उन्हीं ने वापस यहाँ डाला है। कहो, समझ में आया ? आहाहा! क्या करता है तू ? भगवान! तुझे पता नहीं, भाई! जहाँ अभी आत्मा का भान ही नहीं, वहाँ साधुपना कैसा ? वहाँ आचार कैसा ? भाई! उसे पता नहीं। बाहर का भेष लेकर जगत में स्वयं भरमाता है और भटकाता है। आहाहा! वास्तविक भगवान आत्मा जहाँ हाथ आया नहीं और अन्दर पता लगे बिना परमेश्वरता प्रगट होती नहीं और प्रगट में तो अकेला विकार / मिथ्यात्व है, उसमें मान बैठे कि हम साधु हैं। क्या हो ? ओहोहो! भगवान भी वहाँ पर में कर क्या सके ? केवली जाने और करे क्या ? अनादि का ऐसा ही कोई अज्ञानी स्वच्छन्दता में अपने स्वरूप को भूलकर कुछ का कुछ मानकर बैठा होता है। इस प्रकार चौरासी के अवतार में (भटकता है)। आहाहा! एक जीव मरकर कहाँ जाये, एक मरकर कहाँ जाये। कहीं पता नहीं। स्वरूप के भान और अनुभव बिना बाहर के क्रियाकाण्ड का क्या फल आवे, इसका इसे पता नहीं।

वह आता है न ? 'फल अनेकान्त लोचन न देखे' आनन्दघनजी में आता है। आनन्दघनजी में-श्वेताम्बर में आता है, हों!

'कोई कहे सेविये विविध क्रियाकरि
फल अनेकान्त लोचन न देखे,
फल अनेकान्त क्रियाकरि बापड़ा
रलवड़े चहूं गति माहि लेखे,
धार तलवार नी सोह्यली गोह्यली,
चोदमां जिणतणी चरण सेवा'

आहा! 'कोई कहे सेवे विविध क्रियाकरि' भिन्न-भिन्न राग दया, दान, व्रत, भक्ति, यह करके आत्मा को सेवन करते हैं। 'फल अनेकान्त...' परन्तु उसका फल अनेकान्त अर्थात्

एक ही शुद्धता, वह तो नहीं। अनेकान्त-किसी में मनुष्यपना मिले, कोई देवपने मिले, कोई पशुपने हो, ऐसे विकार के फल तो अनेक प्रकार के हैं। शुद्धता की एकता इसके-विकार के फल में नहीं। यह आनन्दघनजी कहते हैं, हों! 'फल अनेकान्त...' अनेकान्त अर्थात् कोई एक प्रकार का नहीं। इस प्रकार शुद्ध.. शुद्ध (नहीं) अनेक भिन्न-भिन्न कोई राग की मन्दता के फल में कोई स्वर्ग में, कोई व्यन्तर में, कोई ज्योतिष में, कोई राजा हो, सिंह हो और बाघ हो। आहा!

'फल अनेकान्त क्रियाकरि बापड़ा, रलवड़े चहूं गति माहि लेखे,..' चार गति में जीव भटकता है। अरे! इसकी इसे दया नहीं। स्वयं की स्वयं को दया नहीं - ऐसा कहते हैं। अरे! मैं कहाँ जाऊँगा? कोई निर्णय-थाप आयी अन्दर से? कि मुझे भव नहीं और भव हो तो भी वह एकाध-दो भव साधक को पूरा करना है, यह तो कहाँ भव और कितने का कोई ठिकाना नहीं और क्या तुझे क्रियाकाण्ड का रंग चढ़ गया, कहते हैं। आहाहा! यह तो कहाँ है सब?

भाई! तेरा स्वरूप तो ज्ञानानन्द शुद्ध चैतन्य है—ऐसी दृष्टि हुई, ज्ञान का भान हुआ कि मैं चैतन्य निर्मल हूँ, मैं आनन्दस्वरूप हूँ—ऐसा भान होने पर भव का नाश हुआ, तथापि कहते हैं ज्ञानी को जरा ऐसा भास होता है, मलिन परिणाम जरा दिखायी दे (तो) जानता है कि पर्याय में इतना भाग बाकी है। एक ओर शुद्ध को देखे तो अत्यन्त शुद्ध है, एक ओर दोनों को देखे कि शुद्ध और अशुद्ध तो दोनों ओर दिखायी देता है। दिखाव हो, मेरे ज्ञानस्वरूप में कोई दूसरी चीज़ हुई नहीं।

कभी अमेचक (-एकाकार शुद्ध) दिखायी देता है; तथापि परस्पर सुसंहत (-सुमिलित, सुग्रथित, भली प्रकार गुंथी हुई)... ऐसी भी एक अवस्था में मलिनता और निर्मलता दोनों एक समय में होती है। त्रिकाली शुद्ध और अवस्था मलिन - ऐसा भी होता है। एक ओर शुद्ध अकेला देखने पर, द्रव्य शुद्धरूप ज्ञात होता है। इस पर्याय की अकेली शुद्धता देखने पर अकेली पर्याय भी ज्ञात होती है। आहाहा!

श्रोता : तथापि आकुलता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : आकुलता नहीं है। है, जानो, जानने का स्वभाव है। क्रम-क्रम से वह गल जायेगी और परमार्थपद रह जायेगा। समझ में आया? ऐसा होने पर भी परस्पर सुग्रथित, गुँथी हुई वस्तु की स्थिति ही ऐसी है, कहते हैं। मेरा तत्त्व ही ऐसा है। समझ में आया? पर्याय में एक भाग में मलिनता दिखती है, उसी पर्याय में एक भाग में निर्मलता दिखती है, उसी भाग में अकेला द्रव्य देखे तो शुद्ध दिखता है। यह तो स्वरूप ऐसा है, तत्त्व ऐसा ही है, कहते हैं। किसी के कारण है और किसी में यह है - ऐसा है नहीं। मुझमें इस प्रकार से स्थिति है, वैसा जानता है - ऐसा कहते हैं। समझ में आया? मेरी पर्याय जरा विकाररूप है, जानता है। उसी पर्याय में निर्मलता है, वह भी जानता है। उसी काल में पूरा द्रव्य त्रिकाल शुद्ध है, वह भी जानता है। ऐसी शक्तियों

में प्रकार भिन्न-भिन्न होने पर भी गुँथी हुई वस्तु है, उसमें एक बात निकाल दो तो वस्तु सिद्ध नहीं होगी – ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

तथापि परस्पर सुसंहत... तथापि परस्पर सुसंहत... देखो! पर्याय निर्मल भी हो, एक भाग मलिन भी हो। उससे क्या? ऐसी वस्तु की मर्यादा है। पर्याय का जरा भाग मलिन हो, आंशिक निर्मल हो और पूर्ण निर्मल द्रव्य है। हो, उसमें कोई अमेल नहीं है – ऐसा कहते हैं। वह कहीं अमेल नहीं है। सुसंहत है, मेलवाला है – ऐसा कहते हैं। आहाहा! ऐसा नहीं हो सकता – ऐसा नहीं है, ऐसा (कहते हैं)। ऐसा नहीं हो सकता – ऐसा नहीं है। ऐसा ही तत्त्व है ऐसा कहते हैं। समझ में आया?

तथापि... ऐसा होने पर भी पारस्परिक अर्थात् अशुद्धता पर्याय की, शुद्धता पर्याय की, द्रव्य की शुद्धता ऐसे पारस्परिक सुमिलित है, मिलित चीज़ है, यह वस्तु का स्वरूप ही है, सुग्रथित है, गुँथा हुआ ही इस प्रकार से है। **(भली प्रकार गुंथी हुई) प्रगट शक्तियों के समूहरूप से...** ऐसी प्रगट शक्तियों के समूह द्वारा **स्फुरायमान वह आत्मतत्त्व निर्मल बुद्धिवालों के मन को...** निर्मल बुद्धिवाले मन को-सम्यग्ज्ञानी को **मन को विमोहि (-भ्रमित) नहीं करता।** भ्रम नहीं होता। यह क्या? एक ओर द्रव्यस्वभाव शुद्ध, फिर पर्याय थोड़ी शुद्ध, और एक पर्याय थोड़ी अशुद्ध। अमरचन्दभाई! आहा! यह तो वस्तु की स्थिति है। पूर्ण परमात्मा न हो, तब तक वस्तु की मर्यादा की गुंथणी इस प्रकार की है। इस प्रकार गुँथी हुई चीज़ है। समझ में आया?

एक बार कहा था कि आत्मा अत्यन्त आत्मा ही उसे कहना। कि द्रव्य-गुण और पर्याय शुद्ध हो उसे आत्मा कहना? समझ में आया? और यह विकल्प परिणाम है, वह कहीं आत्मा नहीं परन्तु वह अशुद्ध है-ऐसा यहाँ जानते हैं, ऐसा यहाँ कहते हैं। समझ में आया? अशुद्धता है,... हो उससे उलझन में आ जाता है (कि) यह, यह क्या? यह पर्याय की उस प्रकार की... शुद्ध नहीं, अशुद्धता हो, वह सब मेलवाला है, कहते हैं। अमेल (नहीं) द्रव्य शुद्ध, कितनी ही पर्याय शुद्ध और कोई अशुद्ध। क्या यह मेलरहित है? कि नहीं; मेलवाला है। जेठालालभाई! आहा! तत्त्व की साधकदशा में ऐसी स्थिति ही मेलवाली है, नहीं तो दूसरे प्रकार से हो सकती ही नहीं – ऐसा कहते हैं। आहाहा! यह वस्तु की स्थिति ही ऐसी है – ऐसा कहते हैं। यहाँ तो यह सिद्ध करना है न? अब अन्तिम महा बड़े श्लोक हैं, अलौकिक गम्भीर श्लोक हैं। वस्तु का, तत्त्व का दोहन है।

एक ओर ऐसा कहते हैं कि अशुद्धता द्रव्य, गुण, पर्याय में है ही नहीं। 'सिद्ध समान सदा...' मेरी पर्याय शुद्ध है, कहते हैं ले! ऐसा भी कहते हैं, ऐई! एक ओर कहे कि पर्याय मेरी अशुद्ध है, मेरे कारण मेरी अशुद्ध है, मेरे कारण मुझमें अशुद्ध है। अरे... अरे...! जब तक पूर्ण

केवलज्ञान पर्याय की दशा पूर्ण प्रगट नहीं हुई, (तब तक) हो। हो इससे आदर है और आदरणीय है—ऐसा नहीं है और हो, हो उससे साधकपना चला जाता है—ऐसा नहीं है और हो, उससे उलझन आ जाती है (कि) यह क्या? ऐसा भी नहीं है। समझ में आया?

ओहो! अमृतचन्द्राचार्य ने जंगल में रहकर गजब काम (किया है)। ओहोहो! परमेश्वर का पेट खोला है। केवलज्ञानियों का कलेजा खोलकर रख दिया है। पर्याय में जाना, वैसा कहा, यह तो अपूर्व वस्तु है, भाई! और यह तेरे घर की तुझमें है। है, उसे देख-जान और है, उसे अनुभव कर। समझ में आया? किसी की चीज़ नहीं कि वह अपनी होकर उसे अनुभवे। यह तो तेरी चीज़ है।

कहते हैं इस प्रकार **प्रगट शक्तियों के समूहरूप से...** यह भी एक शक्ति हुई। त्रिकाली शक्ति, पर्याय में इतनी अशुद्धता, यह भी एक शक्ति है न इतनी? योग्यता की शक्ति है। इतनी योग्यता की शक्ति है। स्वयं के कारण से है। देखो! इसमें कहीं पर के कारण से यह बात यहाँ नहीं ली है। पर का कारण यहाँ कहीं है नहीं। अपने अस्तित्व की ही इस दशा का स्वरूप यहाँ वर्णन किया जाता है। कहो समझ में आया इसमें?

प्रगट शक्तियों के समूहरूप से स्फुरायमान वह आत्मतत्त्व निर्मल बुद्धिवालों के मन को... ऐसा जानने पर भी सम्यग्ज्ञानी को-धर्मी को **निर्मल बुद्धिवालों के मन को विमोहित (-भ्रमित) नहीं करता, उलझन करता नहीं...** आहाहा! उलझे क्या? जानता है कि ऐसा होता है। समझ में आया? धर्मी को पर्याय में अशुद्धता होती है—ऐसा जाने, शुद्धता होती है—ऐसा जाने, त्रिकाल द्रव्य शुद्ध है-ऐसा जाने-ऐसा कहते हैं। मेरे घर में यह मेल कैसा? इस घर में नहीं परन्तु पर्याय में अंश में वह है, उसे तू जानना, उलझन में पड़ना नहीं। साधकपना है।

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। यह है, जानता है इतना। यहाँ तो तत्त्व को जाने ऐसा कहा न? देखो न! '**सहजमेव तत्त्वं मम**' ऐसा है। '**तथापि न विमोहयति अमल मेधसां**' ऐसा है न? '**अमल मेधसां**' निर्मल बुद्धिवाले '**अमल**' अर्थात् निर्मल '**मेधसां**' अर्थात् बुद्धि। '**परस्पर-सुसंहत-प्रकट-शक्ति-चक्रं स्फुरत् तत्**' लो! समूह, समूह का अर्थ चक्र हुआ। चक्र का अर्थ किया न? प्रगट शक्ति का समूह। अशुद्धता भी एक योग्यता है, शुद्धता भी एक योग्यता है, त्रिकाल शुद्धरूप स्वभाव है।

यह तो घर में सम्हालने आया, उसकी बात चलती है। उसने घर को देखा है, जाना है कि यह तो शुद्धचैतन्य है, मैं तो ज्ञान हूँ। तथापि यह क्या है तब? और इस ज्ञान में यह अवस्था

मुझे ? होती है, अवस्था का एक अंश एक समय की पर्याय की योग्यता अंश है, एक ही पर्याय के दो भाग होते हैं। उससे क्या ? एक पर्याय के दो भाग-थोड़ा अशुद्ध, थोड़ा शुद्ध। हो, पर्याय के दो भाग। वस्तुस्थिति है, उसमें क्या ? जानने में आती है।

(संवत्) २०१३ में बात हुई थी। सुरेन्द्रनाथ है न ? मैंने कहा-एक पर्याय के दो भाग पुस्तक में आया था, वह तुम न ! हाँ ! सुरेन्द्रनाथ, ईसरी में है न ? ब्रह्मचारी है, अभी ईसरी में प्रमुख है। अध्यापक, क्या कहलाता है ? अधिष्ठाता.. अधिष्ठाता। अभी गये थे न ! यह तब २०१३ के साल की बात है। एक पर्याय के दो भाग की चर्चा हुई थी। वह तुम न ? ऐसा कि एक पर्याय के दो भाग होते हैं ? नहीं होते—ऐसा कहना था। समाचार-पत्र में आया था। एक पर्याय के दो भाग होते हैं ? दो भाग होते हैं। वह यहाँ आता है। मेलवाली बात है।

श्रोता : साधक है।

पूज्य गुरुदेवश्री : साधक है न ! यहाँ साधक की बात चलती है न ! सिद्ध की कहाँ बात है। हो तो जानते हैं। नहीं जितनी अशुद्धता और शुद्ध हुई है, उसे भी जानते हैं। पूरा द्रव्य शुद्ध है, उसे जानते हैं। समझ में आया ? इससे सम्यग्दर्शन का विषय अशुद्ध है-ऐसा नहीं है। यहाँ तो ज्ञान प्रधान की बात करनी है।

ज्ञान ने शुद्ध द्रव्य को विषय किया है, तथापि परिणमन में कुछ अशुद्धता और शुद्धता दो भाग है—ऐसा ज्ञानी जानता है, ऐसा कहते हैं। तथापि वह सम्यग्दर्शन का विषय है-ऐसा नहीं। विषय तो ध्रुव ही है परन्तु ध्रुव का अवलम्बन करने पर भी जितना अवलम्बन हुआ, उतनी शुद्धता और अभी बाकी रहा, उतनी अशुद्धता है। उग्र अवलम्बन हो जाये तो अकेली शुद्धता हो जाये। ऐसा सिद्ध करने के लिये यह बात की है। समझ में आया ?

भावार्थ : आत्मतत्त्व अनेक शक्तियोंवाला होने से... देखो ! सैंतालीस शक्तियाँ ली हैं न ? सैंतालीस क्या ली है ? शक्ति ही ली है न ? ज्ञेय अधिकार में। प्रवचनसार में सैंतालीस नय। सैंतालीस शक्ति ली समयसार में और सैंतालीस नय (प्रवचनसार में)। परन्तु नय का विषय है न उस प्रकार का ? नय तो ज्ञान है, जानता है, यह आया है। कर्तापना परिणमा है, राग वह मेरा है, वह कर्ता-कर्मरूप करूँ—ऐसा नहीं परन्तु राग का परिणमन है, वह मेरा है, मेरे अस्तित्व में है, पर के कारण नहीं। ज्ञान को जानना है न ? श्रद्धा में तो द्रव्य विषय अभेद एकदम है, उसमें तो दो प्रकार भी नहीं है। पर्याय, गुण और भेद भी कहाँ है उसमें ? परन्तु उसके साथ हुआ ज्ञान ऐसा समय-समय का विवेक करता है। समझ में आया ?

आत्मतत्त्व अनेक शक्तियोंवाला होने से किसी अवस्था में कर्मोदय के निमित्त से अनेकाकार अनुभव में आता है;... लो ! निमित्त से अनेक प्रकार का विकल्प आदि, रागादि ज्ञात

होते हैं। जो यहाँ आया वापस। **कर्मोदय के निमित्त से...** परन्तु निमित्त से न? नैमित्तिक किसका? लेख आते हैं। यहाँ तो कहते हैं स्वभाव के कारण से नहीं, इससे निमित्त के लक्ष्य से हुआ विकार है-ऐसा बताने को बात की है। पाठ में तो कुछ है ही नहीं। यह तो सीधा तत्त्व ही मेरा ऐसा है परन्तु वह अशुद्धपना जरा सा है, वह निमित्त है, उसके लक्ष्य से इतना है, वह है। स्वभावसन्मुख जितना आया है, उतनी शुद्धता है और पूर्ण शुद्धता नहीं, इसलिए इतना अभी परसन्मुख लक्ष्य है, इसलिए कर्म के उदय के निमित्त से (ऐसा कहा है) उपादान से नहीं।

अनेकाकार अनुभव में आता है; किसी अवस्था में शुद्ध एकाकार अनुभव में आता है... लो! अकेला शुद्धद्रव्य देखे अथवा शुद्ध की पर्याय का ही अनुभव करे (तो) शुद्ध एकाकार ज्ञात होता है **और किसी अवस्था में शुद्धाशुद्ध अनुभव में आता है;...** दोनों एक साथ में भी जानता है। त्रिकाल शुद्ध हूँ, पर्याय में कितनी ही शुद्धता है और अवस्था में कितनी ही अशुद्धता भी है। **तथापि यथार्थ ज्ञानी स्याद्वाद के बल के कारण...** देखो! अपेक्षित ज्ञान जितने प्रकार हैं उन्हें जानता है। जैसे (वेदान्ती) कहे आत्मा और आत्मा का अनुभव? दो? ऐसा वेदान्त (कहता है।) आत्मा और अनुभव ये तो दो हो गये। ऐसा नहीं होता। आत्मा, आत्मा का अनुभव करे-ऐसा नहीं होता। दो नहीं, द्वैत नहीं। यहाँ तो कहते हैं सुन न! आत्मा का अनुभव और वह पर्याय निर्मल तथा अनिर्मल दोनों को जाने-ऐसा वस्तु का-तत्त्व का स्वरूप है। तू मानता है वैसा तत्त्व नहीं है। समझ में आया? शुद्धता प्रगट हुई, पश्चात् अकेली शुद्धपर्याय ही होती है-ऐसा नहीं है। ऐसा यहाँ कहते हैं। **यथार्थ ज्ञानी स्याद्वाद के बल के कारण भ्रमित नहीं होता, जैसा है वैसा ही मानता है, ज्ञानमात्र से च्युत नहीं होता।** जाननेवाला देखनेवाला मैं ज्ञातादृष्टा हूँ, उसे जानूँ, इसे जानूँ, जानने से (उलझता) नहीं। क्या समझ में आया? अब २७३ (कलश) कहते हैं।

आत्मा का अनेकान्तस्वरूप (अनेक धर्मस्वरूप) वैभव... देखो! आया यह वैभव। देखो! यह वैभव-प्रताप, महिमा। अपने आत्मवैभव नाम दिया है न, हरिभाई ने! शक्तियों के (प्रवचनों की पुस्तक का नाम) आत्मवैभव। आत्मा का अनेकान्त अर्थात् अनन्त धर्मस्वरूप, अनेक धर्मस्वरूप। ऐसा है न? अनेक है न? अनेक अर्थात् अनेक, अन्त अर्थात् धर्म। **अनेकान्तस्वरूप वैभव अद्भुत (आश्चर्यकारक) है...** अद्भुत एक शब्द लिया है, फिर आगे दो लेंगे। यहाँ शुरुआत करते हैं। अहो! भगवान आत्मा का वैभव अद्भुत है! उसके वैभव को क्या कहें! आहा!

भगवान यह आत्मा, हों! उसका वैभव। वैभव है न यह? यह तो तुम्हारे वैभव में सब बातें चलती हैं, इसे इतने पैसे हैं, इसे सोने का इतना है, इसे अमुक है परन्तु उसका कहाँ है वह? उसका कहते हैं? वह तो है उसका है-पर का है। इसका है-ऐसा कहनेमात्र है। झूठी भाषा से

नहीं कहा था? झूठी भाषा से इसके सम्बन्ध के लिये ऐसा कहा जाता है कि इसका है। अर्थात् (इसका है नहीं)। यह वैभव धूल का कब था? आहाहा! इतना वैभव इसका चाहिए तो। आहाहा! ...हुकमचन्द सेठ का एक कमरा एक करोड़ का! एक करोड़ रुपया। बताने गये थे। एक करोड़ रुपये का एक। कमरे में सब (भरा हुआ)। एक कमरा था, उसमें सब भरा हुआ। सेठ के घर में होता है न? यह चाँदी की सब यादगिरी की... चाँदी का क्या कहलाता है वह सब? अभिनन्दन का खोका। धूल में खोका साथ आवे ऐसा नहीं है। रह गया और पड़ा रहा। मान सेवन किया हो कि मुझे मिला। उसमें आत्मा मर गया। किसका मान? तेरे मान के लिये तू तैयार है। दूसरा तुझे क्या दे? ऐसा आत्मा का वैभव, यह बात अब कल कहेंगे।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१७

श्री समयसार, गाथा ७५ प्रवचन नं. ५८५
दिनांक ०१-०८-१९६८

यह कर्ता-कर्म अधिकार की ७५ गाथा है। देखो! यहाँ आया है **स्वयं व्याप्त होने से (व्याप्तरूप होता होने से) कर्म है...** है ? क्या कहते हैं ? थोड़ी सूक्ष्म बात है। यह जो पुण्य और पाप, राग और द्वेष, सुख और दु:ख की जो रागदशा या कल्पना है, वह कर्म का कार्य है। कर्म, कर्ता और वह अवस्था, उसका व्याप्य अर्थात् अवस्था है। धर्मी की अवस्था नहीं। यह बात चलती है। समझ में आया ?

धर्मी-सम्यग्दृष्टि उस राग से और कर्म से भिन्न पड़े हैं। धर्मी उसे कहते हैं कि जो राग, पुण्य-पाप के जो विकल्प हैं और जो कर्म है और शरीर—उनसे उसकी दृष्टि भिन्न है। भिन्न होने से अपने स्वभाव की अभिन्न दृष्टि के कारण जितने पुण्य-पाप आदि, हर्ष-शोक, दया, दान, व्रत, व्यवहाररत्नत्रय का जितना राग उत्पन्न होता है, वह व्याप्य अर्थात् अवस्था है (और) कर्म व्यापक है। समझ में आया ? कल चला, वही बात चली।

यहाँ सम्यग्दृष्टि जीव की बात चलती है। सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी-धर्मी की बात चलती है। धर्मी का आत्मा, जो पुण्य-पाप, व्यवहाररत्नत्रय का राग है, उससे भिन्न पड़ गया है। राग से भिन्न अपना आत्मा है—ऐसा मानता है, क्योंकि राग है, वह आस्रव है और कर्म आदि हैं, वे तो अजीव हैं। आत्मा, जिसे सम्यग्ज्ञान में-सम्यग्दर्शन में आत्मा का भान हुआ, उस धर्मी में, जो राग से भिन्न पड़े हैं, उस आत्मा को जो रागादि, पुण्य-पाप, दया, दान, व्यवहार विकल्प, जितने व्यवहाररत्नत्रयस कहलाता है, उतना जो राग उत्पन्न होता है, उस राग को करनेवाला कर्म है। आहाहा! समझ में आया ? सम्यग्दृष्टि उसका कर्ता नहीं। आहा! सूक्ष्म बात है। समझ में आया ?

सम्यग्दृष्टि की दृष्टि ध्रुव चिदानन्द पर पड़ी है; इस कारण ध्रुव में से निर्मल आनन्द और शान्ति आदि स्वच्छता, वीतरागी पर्याय धर्मी को उत्पन्न होती है। वह वीतरागी पर्याय धर्मी का कार्य है और धर्मी कर्ता है, परन्तु जो रागादि व्यवहार उत्पन्न है, वह कर्म का परिणाम है क्योंकि अपने परिणाम नहीं तो कर्म के परिणाम हैं। जैसे कर्म भिन्न है, वैसे यह राग, पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत के परिणाम भी आत्मा से भिन्न हैं। समझ में आया ? तो कर्म व्यापक होकर-पसरकर,

विस्तार पाकर उस विकारी की पर्याय में व्याप्य अवस्था विकार की होती है। आत्मा पसरकर-विस्तार पाकर विकार होता है—ऐसा आत्मा में नहीं है और धर्मी की दृष्टि आत्मा पर है। समझ में आया ? धन्नालाजी ! आहाहा !

जैसे यह पुण्य और पाप, दया और दान, व्रत, भक्ति का शुभराग या सुख-दुःख की कल्पना, व्याप्य है। किसका ? कर्म का। कर्म स्वतन्त्र व्यापक होकर विकारी पर्याय स्वयं व्याप्य होती है। वैसे यह शरीर, वाणी, मन परमाणु हैं, वे व्यापक कर्ता है और उनकी वैसी पर्याय होती है, वह उनका कर्म है। ***जैसे शरीर व्यापक होकर-कर्ता होकर अपनी ऐसी अवस्था करता है, वह शरीर की व्याप्य अवस्था है; वैसे विकारी पर्याय, कर्म की व्याप्य अवस्था है। जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव, कर्म की व्याप्य-अवस्था है, आत्मा की नहीं। आहाहा!*** चिल्लाये ऐसा है।

श्रोता : स्वभाव से नहीं तो कहाँ से होती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : द्रव्यस्वभाव में कहाँ है ? सम्यग्दृष्टि की दृष्टि तो द्रव्य पर है। समझ में आया ? ऐसी बात है, भाई ! जिनेश्वरस्वामी ! अब जमती है या नहीं ?

भगवान आत्मा अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द का पुंज प्रभु आत्मा है। धर्मी की दृष्टि में द्रव्य है, तो द्रव्य का कार्य तो निर्मल ज्ञाता-दृष्टा वीतरागी पर्याय, वह द्रव्य का कार्य है। द्रव्य का कार्य कहो या सम्यग्दृष्टि का कार्य कहो। समझ में आया ? वस्तु की स्थिति ऐसी है। लोगों को खबर नहीं पड़ती और ख्याल नहीं आता, इसलिए कहीं वस्तु की स्थिति बदल जाती है ?

जब तक पुण्य और पाप के विकल्प (होते थे), जब तक पर्यायबुद्धि थी, तब तक विकार परिणाम का कार्य मेरा और मैं कर्ता—ऐसा मानता था। समझ में आया ? दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा के परिणाम, वह मेरा कार्य और मैं उसका करनेवाला—ऐसी जहाँ तक पर्याय अर्थात् राग और विकार पर रुचि थी, तब तक व्याप्य विकार अवस्था और व्यापक अज्ञानी कर्ता (था)। समझ में आया ?

परन्तु जब दृष्टि पलट गयी (कि) अंश राग (मैं) नहीं, अल्पज्ञ पर्याय भी मैं नहीं, निमित्त नहीं, राग नहीं, अल्पज्ञपर्याय जितना भी मैं नहीं; मैं तो द्रव्य शुद्ध चिदानन्द ज्ञायकमूर्ति हूँ—ऐसी दृष्टि होने से धर्मी को द्रव्यस्वभाव में से परिणमन होकर, द्रव्यस्वभाव में विकार नहीं; उसमें तो निर्विकारी शान्ति, आनन्द आदि है तो उसका कार्य आनन्द और शान्ति और ज्ञाता-दृष्टा के परिणाम (होता है), वह धर्मी का कर्म अर्थात् कार्य है। आहाहा ! समझ में आया ? और ***यह शरीरादि की अवस्था, भाषा की अवस्था और पुण्य-पाप के परिणाम की अवस्था (होती है) तो पुण्य-पाप के परिणाम की अवस्था का व्यापक कर्म है और शरीर की तथा भाषा की अवस्था का व्यापक***

पुद्‌गल है। दोनों पुद्‌गल के परिणाम गिनकर, रागादि, पुण्य आदि दया, दान के विकल्प भी पुद्‌गल के परिणाम हैं। पुद्‌गल स्वतन्त्र व्यापक होकर विकार की पर्याय व्याप्य करता है और विकारी पर्याय स्वयं व्याप्त होने से कर्म है। यहाँ तक आया है। समझ में आया? गजब बात, भाई! है न? देखो! इसमें है। इसमें है, उसका अर्थ होता है, ऊपर से नहीं होता।

कहते हैं कि ये दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, काम-क्रोध के शुभाशुभभाव, वह व्याप्य और कर्म उनका व्यापक है। कर्म कर्ता और वह विकारी अवस्था उसका कार्य है-एक बात। फिर शरीर, वाणी की पर्याय (होती है), उसका पुद्‌गल कर्ता है और वह उसका व्याप्य है—तो दोनों को पुद्‌गल परिणाम कह दिया। जैसे दया, दान, वैसे भगवान के परिणाम तीर्थंकरगोत्र बाँधने का भाव, वह पुद्‌गल परिणाम और शरीर की अवस्था, वह पुद्‌गल का परिणाम। दोनों पुद्‌गल के परिणाम हैं। पुद्‌गलद्रव्य स्वतन्त्र व्यापक है। समझ में आया? **इससे पुद्‌गलपरिणाम का कर्ता है...** ये पुण्य-पाप के परिणाम और शरीर की अवस्था, भाषा की अवस्था (होवे उसमें) **पुद्‌गल द्रव्य स्वतन्त्र व्यापक होने से...** पुद्‌गल परिणाम का कर्ता पुद्‌गल है।

और पुद्‌गलपरिणाम... अर्थात् शुभ और अशुभ विकल्प और राग तथा भाषा और देह की अवस्था, सबको यहाँ पुद्‌गलपरिणाम कहने में आया है। **पुद्‌गलपरिणाम उस व्यापक से...** उस व्यापक द्वारा, पुद्‌गल व्यापक से विकारी पर्याय और शरीर अवस्था, भाषा की अवस्था **स्वयं व्याप्त होने के कारण...** पर्याय स्वयं व्याप्त होने से। भाई! वहाँ पर्याय स्वतन्त्र ली। व्यापक है, वह कर्ता है और व्याप्य अवस्था स्वयं प्राप्त होती है। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म है। तत्त्वदृष्टि ऐसी चीज़ है कि इस तत्त्व की दृष्टि के बिना मान ले कि हम धर्मी हैं और धर्म करते हैं। अनादि का माना है और मनाता है और मानता है, उसे भला माना है। स्वतन्त्र है।

कहते हैं कि पुद्‌गलद्रव्य स्वतन्त्र व्यापक है। पुद्‌गलद्रव्य शब्द से कर्म और शरीर, वाणी, मन के परमाणु स्वतन्त्र व्यापक हैं; इससे पुद्‌गल परिणाम के कर्ता हैं। यह पुद्‌गलद्रव्य स्वतन्त्र व्यापक अर्थात् कर्ता (है और) पुण्य-पाप और दया, दान, व्रत, भक्ति के परिणाम का कर्ता पुद्‌गलद्रव्य है। पुस्तक सामने रखी है या नहीं? पुस्तक सामने रखी है न? उसमें है या नहीं? ऐसा लिखा है? समझ में आया?

भाई! प्रभु! तेरे दृष्टि जब प्रभुता-आत्मा पर पड़ी हो, तब पामर विकार का कर्ता आत्मा नहीं होता। विकार के परिणाम जो हुए, उनका ज्ञाता होकर ज्ञानपरिणाम जीव का कर्म है परन्तु वह राग और व्यवहार, आत्मा का कर्म है, कार्य है और परिणाम है-ऐसा है नहीं। आहाहा! गजब बातें, भाई!

इसलिए पुद्‌गलद्रव्य के द्वारा कर्ता होकर... कर्म और शरीर के पुद्‌गल द्वारा कर्ता होकर...

पुद्गलद्रव्य शब्द से कर्म और शरीर और वाणी के परमाणु। वे कर्ता होकर **कर्मरूप से किया जानेवाला...** पुण्य-पाप, दया, दान, व्रत के भाव वे कर्मरूप से पुद्गल के द्वारा किये जाते हैं। **जो समस्त कर्म, नोकर्मरूप पुद्गलपरिणाम हैं... जो समस्त कर्म, नोकर्मरूप पुद्गलपरिणाम हैं...** पुण्य और पाप, राग और द्वेष, सुख-दु:ख की कल्पना वह पुद्गलपरिणाम और शरीर की अवस्था और भाषा की अवस्था (होवे वह) सब पुद्गलपरिणाम हैं। आहाहा! वह पुद्गलपरिणाम है।

उसे जो आत्मा... उसे जो **पुद्गलपरिणाम को और आत्मा को...** शब्द-शब्द में जरा धीरे से समझे तो समझ में आये ऐसी बात है। यह तो अन्तर्दृष्टि की बात है। अध्यात्मस्वभाव की दृष्टि है तो उसमें क्या होता है, उसकी बात चलती है। जिसे पुण्य-पाप का राग और शरीर से भिन्न आत्मा है ऐसा सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान हुआ, उसकी बात है। समझ में आया? आहाहा! वे पुद्गलपरिणाम हैं। **कर्मरूप से किये गये जो समस्त कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलपरिणाम...** अथवा पुण्य-पाप और शरीर की अवस्था तथा भाषा की अवस्था (होती है) वे सब पुद्गलपरिणाम है।

उसे... उस पुद्गलपरिणाम को **जो आत्मा...** जो आत्मा **पुद्गलपरिणाम को और आत्मा को...** शुभ-अशुभराग और सुख-दु:ख की कल्पना तथा भाषा की पर्याय, उस पुद्गलपरिणाम को और आत्मा को कैसा सम्बन्ध है? **घट और कुम्हार की भाँति व्याप्यव्यापकभाव के अभाव के कारण...** जैसे कुम्हार व्यापक और घट व्याप्य है-ऐसा नहीं। कुम्हार कर्ता और घट कार्य है-ऐसा है नहीं।

देखो, **आत्मा, पुद्गलपरिणाम को और आत्मा को...** पुद्गलपरिणाम समझ में आया? दोनों, पुण्य-पाप, राग-द्वेष, कर्म का उदय, शरीर की अवस्था, भाषा की अवस्था, सबको एक पुद्गलपरिणाम में गिनने में आया है। क्यों?—कि एक ओर भगवान ज्ञानस्वरूप आत्मा है और एक ओर राग से लेकर सब अज्ञान है। अज्ञान अर्थात्? जिसमें ज्ञान नहीं। एक ओर राम है तथा एक ओर गाँव है। राजमलजी! राम अर्थात् भगवान चिदानन्द। 'निजपद रमै सो राम कहिये।' भगवान आत्मा अपना शुद्ध चैतन्यस्वरूप, उसकी दृष्टि होने से अपने में शान्ति में रमनेवाले को यहाँ सम्यग्दृष्टि ज्ञानी कहते हैं। वह सम्यग्दृष्टि ज्ञानी **पुद्गलपरिणाम को और आत्मा को घट और कुम्हार की भाँति व्याप्यव्यापकभाव के...** कुम्हार कर्ता और घट कर्म नहीं है। इसी प्रकार विकारी परिणाम और आत्मा, आत्मा कर्ता और विकारी परिणाम कर्म, घट और कुम्हार की तरह नहीं है। फूलचन्दभाई! आहाहा! कहो समझ में आया? समझाये छे कांई – हमारी गुजराती भाषा है।

तत्त्वदृष्टि का विषय और तत्त्वज्ञानी का कार्य... तत्त्वदृष्टि का विषय द्रव्य है और उसका कार्य निर्मल अवस्था है। सम्यग्दृष्टि का कार्य तो ज्ञातादृष्टा के परिणाम हों वह उसका कार्य है। व्यवहार के विकल्प का कार्य यह पुद्गलपरिणाम है, पुद्गल उसका कर्ता है। **पुद्गलपरिणाम**

को और आत्मा को घट और कुम्हार की भाँति... कुम्हार व्यापक और घट व्याप्य, इसका अभाव है। वैसे पुण्य-पाप के परिणाम व्याप्य और आत्मा कर्ता-इसका अभाव है। समझ में आया? आहाहा! भाई! तत्त्वदृष्टि और धर्मदृष्टि कोई अलौकिक चीज़ है। समझ में आया?

जहाँ आत्मा परमात्मा निजस्वरूप पूर्णानन्द प्रभु है—ऐसी अन्तर्दृष्टि से अपना पता लिया तो धर्मी को तो शान्ति, ज्ञान और आनन्द के ही परिणाम उत्पन्न होते हैं। समझ में आया? बाकी रहा वह? वह तो भिन्न रह गये। उनसे भिन्न पड़कर तो आत्मा का भान किया है। भिन्न रहे न? तो उसका क्या कार्य? जैसे कर्म भिन्न है, वैसे कर्म के उदय से रागादि हुए, पुण्यादि हुए, वे भी भिन्न ही हैं। समझ में आया? समयसार आत्मा की बात अलौकिक अपूर्व है, भाई! ऐसे कोई पढ़ ले (और कहे) हमने समयसार पढ़ लिया... पढ़ ले, पढ़ा हो तो पन्द्रह दिन में पढ़ ले। अक्षर पढ़े हो तो (पढ़ ले)।

भाई! समयसार अर्थात् आत्मा। भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्यप्रभु पूर्णानन्द का नाथ वह तो निर्वाणनाथ है। मोक्ष की पर्याय का नाथ यह है। क्या राग का नाथ है? क्या राग को उत्पन्न करे? और राग की रक्षा करके? राग का अर्थ यह। उत्पन्न करे और रक्षा करे, उसका नाम नाथ। योगक्षेम करनेवाला आता है न? योगक्षेम करे उसका नाम नाथ। जैसे कि इसे लक्ष्मी मिली है, उसकी रक्षा करे और न मिली हो तो प्राप्त करा दे, उसका नाम नाथ। योगक्षेम करनेवाला। क्या आत्मा राग को उत्पन्न करता है? और राग की रक्षा करता है? क्या ऐसा आत्मा में है? आता है न? योगक्षेम करनेवाला। समझ में आया? आहाहा! क्षेम अर्थात् जो चीज़ मिली है, उसकी रक्षा करे और न मिली हो, उसे प्राप्त करा दे, उसका नाम नाथ है। शास्त्र में नाथ की व्याख्या है।

भगवान आत्मा जो स्वरूप शुद्धपर्याय में प्राप्त हुआ उसकी रक्षा करे और नहीं प्राप्त हुआ, उसकी प्राप्ति करे - उसे प्राप्त करावे। वह द्रव्यस्वभाव प्राप्त कराता है। समझ में आया? आत्मा अपने स्वरूप का नाथ है। अपनी सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की पर्याय जितनी प्रगट हुई, उसकी तो रक्षा करता है और नहीं प्राप्त हुए, ऐसे केवलज्ञानादि को प्राप्त कराता है—ऐसा द्रव्यस्वभाव आत्मा नाथ है। क्या आत्मा राग उत्पन्न करता है? और राग की रक्षा करता है? राग का नाथ आत्मा है? समझ में आया?

भगवान निर्मलानन्द प्रभु (है और) राग तो मेल है। चाहे तो तीर्थंकरगोत्र जिस भाव से बँधे, वह भी मेल है। वह भी धर्म से विरुद्ध भाव है, वह अधर्म है। जरा सी कड़क भाषा होवे तो इसे समझ में आवे। वहाँ तो कहे हाय... हाय...! जिनेश्वरदासजी! जिस भाव से तीर्थंकरगोत्र बँधे, वह भाव धर्म नहीं है। धर्म से बन्ध पड़ेगा? धर्म नहीं तो फिर समझ लेना। वह पर्याय आत्मा का कार्य और आत्मा कर्ता-ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? जैसे कुम्हार कर्ता और बड़ा

कर्म है, वैसा है ही नहीं। कुम्हार व्यापक... व्यापक अर्थात् पसरनेवाला और पसरकर घट की पर्याय हुई—ऐसा है नहीं। मिट्टी पसरकर-विस्तार पाकर घट की पर्याय हुई है। बराबर है ? यह समझ में आये ऐसी सादी भाषा है। कोई ऐसी गूढ़ नहीं है, नहीं है। समझ में आया ?

भगवान आत्मा..! कहते हैं कि उस पुद्गलपरिणाम का, जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र बँधे उस परिणाम का और आत्मा का, घट और कुम्हार की भाँति, कुम्हार कर्ता व्यापक होकर घड़े की पर्याय का कर्ता है और घट पर्याय उसका कार्य है; ऐसे आत्मा और पुद्गलपरिणाम पुण्य-पाप, दया, दान तीर्थंकरगोत्र का भाव वह व्याप्य है और आत्मा व्यापक है, आत्मा कर्ता है और वे कर्म हैं-ऐसा नहीं है। राजमलजी! यह तो दूसरी प्रकार की वकालात है। आहाहा! ये वकील हैं परन्तु व्यापार करते हैं। यह तो वेपार-आत्मा की बात है।

कहते हैं **पुद्गलद्रव्य के द्वारा कर्ता होकर कर्मरूप से किया जानेवाला जो समस्त कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलपरिणाम...** समस्त, ऐसा (कहा है)। कोई भी राग का अंश हो, महाव्रत का विकल्प, आस्रव का, तीर्थंकरगोत्र का, दया, दान का, गुण-गुणी के भेद का विकल्प आदि है, उन सबका-समस्त **कर्म-नोकर्मरूप पुद्गलपरिणाम उसे जो आत्मा, पुद्गलपरिणाम को और आत्मा को घट और कुम्हार की भाँति व्याप्यव्यापकभाव के अभाव के कारण कर्ताकर्मपने की असिद्धि होने से,...** समझ में आया ? कहो, समझ में आता है या नहीं ? यह डॉक्टर है। भोपाल.. ये डॉक्टर है ? डॉक्टर है। डॉक्टर! समझ में आया ? यह दूसरा इंजैक्शन है, जन्म-मरण का अन्त लाने का इंजैक्शन है। आहाहा!

श्रोता : संसार का अन्त आवे ऐसी बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : इसमें संसार ही नहीं - ऐसी दृष्टि है। ऐसा यहाँ तो कहते हैं।

श्रोता : डॉक्टर शरीर की रक्षा करता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : करता नहीं, यह तो मानता है, यह तो मानता है। राग करता है। यहाँ तो आत्मा में कोई पर है ही नहीं। आहाहा! क्या कहते हैं, देखो तो सही!

जैसे घट की पर्याय का कर्ता कुम्हार नहीं होता क्योंकि घट और कुम्हार दोनों चीज़ ही भिन्न है। तो घट का कार्य और कुम्हार व्यापक कर्ता-ऐसे दो के बीच अभाव है, कर्ता-कर्मपने का अभाव है; इसी प्रकार आत्मा को और पुण्य-पाप, दया-दान के विकल्प, तीर्थंकरगोत्र बाँधने के भाव तो व्याप्य-व्यापकपने का अभाव होने से आत्मा व्यापक होकर उस व्याप्य अवस्था को नहीं की होने से दोनों के बीच कर्ताकर्मपने का अभाव है। अमरचन्दभाई! थोड़ा परन्तु यथार्थ कैसा है, उसे समझना चाहिए। समझ में आया ? अन्य लोग चिल्लाते हैं। अर र..! हाय.. हाय..!

श्रोता : पहले तो दृष्टान्त ही बैठता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : पहले तो दृष्टान्त ही बैठता नहीं। कुम्हार के बिना घड़ा होता है ? सुन न अब ! मिट्टी से घड़ा होता है। क्या कुम्हार से होता है ? कुम्हार मूर्ख हो, वह अभिमान करे कि मैंने घड़ा किया। सम्यग्दृष्टि भी कुम्हार होता है।

श्रोता : वह तो अभिमान नहीं करता।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं करता। यह विकल्प आया, उसका भी कर्ता नहीं तो घड़े का कर्ता तो कहाँ से होगा ? समझ में आया ? घड़ा बनाने का विकल्प आया, वह विकल्प भी कर्म का परिणाम है और कर्म का कार्य है, वह विकल्प पुद्गल का परिणाम और आत्मा, घट और कुम्हार की भाँति कर्ता-कर्म का सम्बन्ध नहीं है, वैसे ही विकारी पुण्य-पाप के परिणाम और आत्मा को कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है। समझ में आया ? नहीं तो उसमें पाठ देख ले। और कोई कहेगा कि यह सोनगढ़वाले ऊपर से कहते हैं। कितने ही ऐसा कहते हैं। कानजीस्वामी अपने अर्थ करते हैं। अरे ! भगवान सुन तो सही। अक्षर के ऊपर से तो अर्थ होता है। कानजीस्वामी तो निश्चय की बात करते हैं, व्यवहार की बात छोड़ देते हैं। यहाँ व्यवहार की बात नहीं करते ? व्यवहार है, वह आत्मा का व्याप्य नहीं है-ऐसा नहीं कहते ? कहो, समझ में आया ? मलूपचन्दजी ! क्या है ? तो व्यवहार का नाश हो जायेगा। तो करना क्या ? शुभभाव न करे तो फिर करना क्या ? ऐसा रात्रि को प्रश्न आया था। किसी का था न ? प्रश्न होता है।

श्रोता : मन्दिर का कार्य रुक जायेगा !

पूज्य गुरुदेवश्री : मन्दिर जाता है कौन ? आता है कौन ? यहाँ तो कहते हैं कि शुभभाव में आत्मा जाता नहीं तो फिर मन्दिर में कौन जाता है ? आहाहा ! मन्दिर में तो ठीक, परन्तु आत्मा तो शुभभाव में जाता नहीं, यह बात तो चलती है। आहाहा ! आत्मा शुभभाव में जाये तो मिथ्यादृष्टि हो जाता है। समझ में आया ? यह बात तो चलती है। शुभभाव में जाये, इसका अर्थ क्या ? शुभभाव मेरा है और मैं शुभभाव करता हूँ और शुभभाव मेरा कार्य है (-ऐसा माननेवाला) मिथ्यादृष्टि है, जैन नहीं, उसे जैन की दृष्टि की खबर नहीं। अमरचन्दभाई ! गजब बात ! कठिन लगे। अभी हमारे मलूपचन्दभाई को तो बड़ा मन्दिर करना है। कहो समझ में आया ? आहाहा !

भगवान ! सुन तो सही, प्रभु ! तुझमें क्या पड़ा है ? क्या विकार है ? विकार की खान आत्मा है ? वह तो आनन्द, ज्ञान और शान्ति की खान है। उसमें एकाग्र होने से तो शान्ति और आनन्द प्राप्त होता है। क्या राग प्राप्त होता है ? आहाहा ! समझ में आया ? जैनदर्शन कहो, आत्मदर्शन कहो, विश्वदर्शन कहो, वस्तुदर्शन कहो। ऐसी चीज़ है। यह कोई बनायी हुई नहीं, यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है। समझ में आया ? यह भी आता है न ? पहले कलश में आता है न ?

करे कर्म सो ही करतारा, जो जाने सो जाननहारा
कर्ता सो जाने नहि कोई, जाने सो कर्ता नही होई॥

'**करे कर्म सो ही करतारा**' पुण्य-पाप के विकल्प मेरा कार्य है, वह कर्ता है, मिथ्यादृष्टि है। '**जो जाने सो जाननहारा**' पुण्य-पाप के परिणाम को जाननेवाला तो जानने की पर्याय का कर्ता है। '**कर्ता सो जाने नहि कोई**' राग का करनेवाला जो मिथ्यादृष्टि, वह ज्ञातादृष्टा नहीं रह सकता और '**जाने सो कर्ता नही होई**' राग और शरीर की अवस्था होती है, उसे अपने से अपने में जानता है—ऐसा जाननेवाला राग का कर्ता नहीं होता। ऐसी वस्तु की स्थिति-मर्यादा है। समझ में आया? 'वस्तु व्यवस्था जैसी कही जिणंदे तेसी' ऐसा आता है। बनारसीदास में है, भाई! 'वस्तु व्यवस्था जैसी कही जिणंदे तेसी' जिनेन्द्र कहते हैं, वैसा हम कहते हैं – ऐसा समयसार नाटक में आता है। आहाहा!

पहले तो कुम्हार कर्ता और घड़ा कार्य यह बात ही नहीं बैठती। यह कार्य नहीं करता? तो अपने आप घड़ा हो जाता है। भगवान! मिट्टी में उत्पाद होने की पर्याय है या नहीं? उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत् है या नहीं? तो मिट्टी में जब घड़े की उत्पत्ति हुई तो वह उत्पाद स्वयं से हुआ है। क्या कुम्हार के उत्पाद से वहाँ उत्पत्ति हुई है? समझ में आया? उत्पादवययध्रौव्ययुक्तं सत्—तो घड़ा जो बना, वह मिट्टी में से उत्पन्न हुआ। वह उत्पाद है, पूर्व की अवस्था का व्यय हुआ और मिट्टी की ध्रुवता रह गयी। क्या कुम्हार उसमें घुसकर घड़े की पर्याय को उत्पन्न करता है? कुम्हार तो अपनी पर्याय में राग को उत्पन्न करता है और ज्ञानी हो, सम्यग्दृष्टि हो तो उस राग को जानने की ज्ञानगुण की पर्याय को उत्पाद करता है। यह आता है न? भाई! आता है न?

माघनन्दि मुनि। माघनन्दि मुनि की कथा आती है। नाम भूल जाते हैं। माघनन्दि मुनि की (बात आती है)। मुनि थे, सम्यग्दृष्टि ज्ञानी (थे)। समझ में आया? फिर कोई पुरुषार्थ की कमजोरी हुई तो कुम्हार की सुन्दर लड़की थी, (मुनि) वहाँ जा पहुँचे और बरसात गिरी, बरसात गिरी तो कुम्हार की लड़की के जो बर्तन थे, वे नष्ट होनेवाले थे। वे वहाँ खड़े थे और उसके बर्तन बच गये तो वह कुम्हार की कन्या थी उसे यहाँ प्रेम हो गया और मुनि को भी वहाँ राग हो गया। उसके घर में गये।

(इस ओर) संघ में ऐसा कोई प्रश्न उठा। इस प्रश्न का उत्तर तो माघनन्दि देंगे। उनके पास सम्यग्ज्ञान है। राग और घड़े की अवस्था को जाननेवाला वहाँ रहता है, बनानेवाला नहीं। कठिन बात है। समझ में आया? संघ में प्रश्न उठा कि इसका उत्तर कौन देगा? जाओ वहाँ। माघनन्दि देंगे, तो संघ का व्यक्ति वहाँ गया और पूछा-साहेब! इसका क्या स्पष्टीकरण है? क्या मेरे सम्यग्ज्ञान की अभी इतनी कीमत है? तुम यहाँ पूछने आये हो। ओहो! एकदम जागृत हो गये

और मोरपिच्छी लेकर साधु होकर चले गये। समझ में आया? अन्दर में साधुपना प्रगट हो गया। आहाहा! सम्यग्दर्शन और ज्ञान था, चारित्र से भ्रष्ट हुए थे। समझ में आया? लोगों को बात कठिन लगती है। सुन तो सही!

यहाँ कहते हैं कि राग आया उसका कर्ता ज्ञानी आत्मा नहीं। जैसे घट का कर्ता कुम्हार नहीं। कुम्हार करनेवाला और घट कर्म - ऐसा तीन काल में है ही नहीं। इसी प्रकार पुण्य-पाप के परिणाम कार्य और आत्मा कर्ता, दोनों के बीच तीनों काल व्याप्त-व्यापकपने का अभाव है। न्यालचन्दजी! गजब कठिन बात है। एकान्त है... एकान्त है (ऐसी लोग पुकार करते हैं)। अरे! भगवान! सुन तो सही। बापू! प्रभु! सम्यक् एकान्त ही है।

चैतन्यस्वभाव सन्मुख जहाँ आत्मा हुआ तो उसमें से तो ज्ञान और आनन्द की ही पर्याय प्रगट होती है। क्या आत्मा की खान में विकार भरा है? और जिससे भिन्न पड़ा, (उससे तो) भेदज्ञान हो गया है। यहाँ तो भेदज्ञान की बात चलती है। समझ में आया? पुण्य-पाप, शरीर से भिन्न पड़कर भेदज्ञान किया है तो पर से भिन्न है और अपने से अभिन्न है। ऐसा सम्यग्दृष्टि जीव चाहे तो चौथेवाला हो या पाँचवेंवाला हो या छठे (गुणस्थानवाला) हो, वह रागादि व्यवहार का विकल्प वह पुद्गल का परिणाम और आत्मा, दो के बीच कुम्हार और घड़े की भाँति—कुम्हार कर्ता और घट कर्म, जैसे नहीं हैं; वैसे आत्मा और पुद्गल के परिणाम-आत्मा कर्ता और पुद्गल परिणाम कर्म - ऐसा होता नहीं। जिनेश्वरदासजी! गजब बात भाई! भगवान! यह तो वस्तु की स्थिति की बात है। आहाहा! कायर का तो कलेजा काँप उठे, ऐसी बात है। सुन तो सही!

चैतन्य बादशाह जहाँ अन्दर से जागृत हुआ, उसे राग-फाग है ही नहीं। समझ में आया? यहाँ तो क्षण और पल में (अज्ञानी ऐसा मानता है कि) मैंने किया, मेंने भाषा की, मैंने उपदेश दिया, मैंने कर्म बाँधा, मैंने राग किया, और मैंने पुण्य किया। बात सच्ची, तूने पुण्य ही किया है। विकार किया और कर्ता होकर मिथ्यादृष्टि हुआ। समझ में आया?

कहते हैं **पुद्गलपरिणाम को और आत्मा को...** पुद्गलपरिणाम कौन? शुभ-अशुभ विकल्प, सुख-दुःख की कल्पना, शरीर और भाषा की अवस्था, इन सबको पुद्गलपरिणाम कहा। **पुद्गलपरिणाम को और आत्मा को घट और कुम्हार की भाँति...** घट और कुम्हारी की भाँति हिन्दी में जैम कहते हैं न? भाँति तो है ही, यह तो दूसरा अर्थ है या नहीं? भाँति तो है ही। घट और कुम्हार की भाँति, नहीं चलता? नहीं चलता हो। दूसरा कोई हिन्दी या नहीं? तुम तो हिन्दी बहुत पढ़े हो। ऐई! तरह! अच्छा। घट और कुम्हार की तरह.. समझ में आया? **व्याप्यव्यापकभाव के अभाव के कारण...** घट का कार्य-पर्याय और कुम्हार कर्ता, दो के बीच में ऐसा सम्बन्ध है ही नहीं। इसीप्रकार भगवान आत्मा और राग के परिणाम, पुण्य-पाप व्यवहार

के परिणाम दो के बीच कर्ता-कर्म, व्याप्य-व्यापकपने का अभाव है।

कर्ताकर्मपने की असिद्धि होने से,... देखो! वहाँ किसी प्रकार सिद्धि नहीं होती, साबित नहीं होता। आहाहा! है शब्द, यह तो महामन्त्र है। यह कोई साधारण (बात) नहीं है। यह तो अमृतचन्द्राचार्यदेव ने आत्मा की प्रसिद्धि की है। इस टीका का नाम 'आत्मख्याति' है। टीका का नाम आत्मख्याति है। आत्मा प्रसिद्ध हुआ। मैं ज्ञान, दर्शन और आनन्द हूँ; मैं राग, पुण्य और शरीर नहीं हूँ—ऐसे सम्यग्दर्शन में जहाँ आत्मा प्रसिद्ध हुआ तो कहते हैं कि घड़े और कुम्हार के बीच कर्ता-कर्म का जैसे अभाव है, वैसे आत्मा और पुण्य-पाप के परिणाम और शरीर की अवस्था, इन दो के बीच कर्ता-कर्मपने का अभाव है। कहो, समझ में आया? पण्डितजी! ऐसी बात है। दुनिया चिल्लाये या इनकार करे, उसके घर रही। दुनिया कहे, अरे! अब समझ तो सही! तू आत्मा है या विकार है? विकार है तो तू विकार का कर्ता है, वह तो अज्ञानरूप से बराबर है, वह तो अनादि से चलता ही है। तू आत्मा है? तो आत्मा क्या है? आत्मा आस्रवतत्त्व है? आत्मा अजीवतत्त्व है? आत्मा मेल तत्त्व है? आत्मा बन्ध, भावबन्धतत्त्व है? आत्मा द्रव्यबन्धतत्त्व है? वह तो अबन्धतत्त्व है।

भगवान अबन्धतत्त्व कहो या मोक्षतत्त्व कहो, वह तो मुक्तिस्वरूप है। राग से और पर से मुक्त स्वरूप है ऐसी जहाँ धर्मी की दृष्टि हुई तो आत्मा और पुद्गलपरिणाम दो के बीच कार्य-कारण है ही नहीं। कार्य-कारण है ही नहीं। आत्मा कारण और विकारी कार्य-ऐसा है ही नहीं। आहाहा! कुम्हार कर्ता अथवा कारण और घट कार्य-ऐसा है ही नहीं। मिट्टी कर्ता अर्थात् कारण और घड़ा कार्य-ऐसा है। कुम्हार कारण और घड़ा कार्य-ऐसा है नहीं। इसी प्रकार धर्मात्मा का आत्मा, वही आत्मा है; आत्मा हुआ, वह आत्मा हुआ। आहाहा! वह आत्मा कर्ता अथवा कारण और विकारी परिणाम कार्य - ऐसा है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा! गजब बात, भाई! ...चलता नहीं। अधिक लोग हैं तो यह लिया है। पन्द्रह बार पूरा हुआ है, यह सोलहवीं बार चलता है, यह समयसार सभा में सोलहवीं बार चलता है, सोलह। समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं **असिद्धि होने से, परमार्थ से करता नहीं...** लो! वास्तव में विकारी परिणाम का आत्मा कर्ता नहीं, रचनेवाला नहीं, बननेवाला नहीं, होनेवाला नहीं। जैसे कुम्हार घटरूप होनेवाला नहीं, रचनेवाला नहीं, बननेवाला नहीं, कर्ता नहीं; इसी प्रकार धर्मी सम्यग्दृष्टि जीव, राग का कर्ता नहीं, रचनेवाला नहीं, बननेवाला नहीं, उसकी पर्याय नहीं। आहाहा! थोड़ा न समझ में आये तो रात्रि में पूछना। समझ में आया? रात्रि में एक घण्टा रखा है न? थोड़ा कठिन पड़े तो पूछ लेना।

परमार्थ से करता नहीं है,... तब कोई कहे कि परमार्थ से करता नहीं, व्यवहार से करता

है या नहीं ? अर्थात् वास्तव में कर्ता नहीं। बोलने में आवे वह भाषा की चीज़ है। घड़ा कुम्हार ने किया यह बोलने की चीज़ है। वास्तविक चीज़ की वस्तुस्थिति नहीं। इसी प्रकार सम्यग्दृष्टि ने यहाँ पूजा की, भाव किये—ऐसा बोलने में आता है; वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। समझ में आया ? **परमार्थ से करता नहीं है, परन्तु...** तो अब है क्या ?

(मात्र) पुद्‌गलपरिणाम के ज्ञान को... देखो ! क्या कहते हैं ? **(मात्र) पुद्‌गल-परिणाम के ज्ञान को...** वह विकारी परिणाम जो दया, दान, व्यवहार के उत्पन्न हुए, उस सम्बन्धी का ज्ञान। उस काल में वह राग है, पुण्य-पाप के विकल्प हैं, उस सम्बन्धी का ज्ञान। (राग का) कर्ता नहीं परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान जो अपने में स्वलक्ष्य से हुआ, (उस) **पुद्‌गलपरिणाम के ज्ञान को...** पुद्‌गलपरिणाम अर्थात् दया, दान, काम के परिणाम, शरीर, वाणी की अवस्था पुद्‌गल के परिणाम, ये दोनों पुद्‌गल के परिणाम हैं। उस **पुद्‌गलपरिणाम के ज्ञान को आत्मा के कर्मरूप से करता हुआ...** क्या कहते हैं ? जितने प्रकार के रागादि विकल्प उठते हैं, उस सम्बन्धी जानती ज्ञान की पर्याय प्रगट हुई। स्वलक्ष्य से आत्मा का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान स्व-पर प्रकाशक पर्याय है तो रागादि के ज्ञान की पर्याय (हुई), वह आत्मा का कार्य है। समझ में आया ? भाई ! देखो !

पुद्‌गलपरिणाम के ज्ञान को आत्मा के कर्मरूप से करता हुआ... जो राग, पुण्य-पाप के भाव (हुए), उनका यहाँ अपने में रहकर ज्ञान हुआ, ऐसा जो ज्ञान हुआ, वह आत्मा का कर्म है, वह आत्मा का कार्य है। **आत्मा के कर्मरूप से...** आत्मा के कर्मरूप से, आत्मा की अवस्थारूप से, आत्मा की दशारूप से **करता हुआ अपने आत्मा को जानता है...** देखो ! उन्हें जानता है - ऐसा भी नहीं कहा। ***राग को जानता है और व्यवहार को जानता है, शरीर को जानता है, यह भी नहीं। अपनी पर्याय उस सम्बन्धी की ज्ञान की पर्याय को करता हुआ अपने को जानता है। आहाहा! पर को जानता है—ऐसा कहना व्यवहार है। पर को कहाँ जानता है ? क्या पर में तन्मय होता है ? रागादि हुए उसमें ज्ञान तन्मय होता है ? वह तो भिन्न है। समझ में आया ? ओहोहो!*** वस्तुस्थिति वीतरागदर्शन और आत्मदर्शन अलौकिक चीज़ है। वास्तविक तत्त्व सुनने को न मिले तो समझ में तो कहाँ से आये ? और प्रयोग तो कहाँ से करें ? प्रयोग अर्थात् अन्तर्मुख होकर अनुभव करना, वह तो कहाँ से हो ?

श्रोता : राग को जानता है या अपने को जानता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : इसकी पर्याय राग को जानती है, वह अपना कार्य है। वह अपने को जानता है। अपने को जानता है, राग को नहीं।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। उस सम्बन्धी का ज्ञान अपना कर्मरूप हुआ, उसे जानता है। फिर

से बात लेते हैं, यहाँ छोड़ने की बात नहीं है।

फिर से, देखो! कहते हैं कि रागादि, पुण्यादि के परिणाम आत्मा का कार्य और आत्मा उनका कर्ता – ऐसा नहीं है तो है क्या? तो कहते हैं कि **पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को...** जो राग आया, दया-दान का विकल्प था, उस सम्बन्धी ज्ञान अपने में हुआ। वह राग है, इसलिए हुआ है – ऐसा नहीं है। आत्मा ज्ञानमूर्ति है तो उसका ज्ञान अपने में हुआ। राग का ज्ञान हुआ, उस ज्ञान को अपने कर्मरूप से, वह ज्ञान अपने कार्यरूप से करता आत्मा। ज्ञान की पर्याय का कार्य कर्मरूप से करता हुआ। राग को कर्मरूप से (कार्यरूप से) करता हुआ – ऐसा नहीं। सूक्ष्म बात है। स्पष्ट बात है। समझ में आया?

कहते हैं **पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को....** अर्थात् यह शुभ-अशुभभाव, तीर्थंकरगोत्र (बाँधने का) जो भाव उत्पन्न हुआ, वह पुद्गलपरिणाम है, उसका ज्ञानी ने ज्ञान किया कि यह है। बस! इतना, अपने में उसका ज्ञान हुआ, उस सम्बन्धी का ज्ञान अपना है, ज्ञान उसका नहीं, अपना ज्ञान है। ***राग का ज्ञान, वह अपना ज्ञान है। उस सम्बन्धी का कहने में तो निमित्त है, उसका ज्ञान कराया परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान हुआ, वह ज्ञानरूपी पर्याय-कर्म आत्मा करता है। उस ज्ञानरूपी पर्याय को कर्मरूप से करता हुआ*** **अपने आत्मा को जानता है...।**

श्रोता :...

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो नहीं परन्तु वापस राग को जानता है-ऐसा भी नहीं कहा। अन्य तो दूसरी बात हुई। राग को जानता है-ऐसा भी नहीं कहा, देखो!

कहते हैं कि **पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को...** एक बात हुई। दूसरी (बात) **कर्मरूप से करता हुआ...** उस पुद्गलपरिणाम के ज्ञानरूपी कार्यरूप से आत्मा करता हुआ, **अपने आत्मा को जानता है...** राग को नहीं।

श्रोता : व्याप्य-व्यापक उसमें है और इसमें नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : व्याप्य-व्यापक उसमें नहीं, वह तो दूसरी बात है परन्तु उसे जानता है – ऐसा भी नहीं। यहाँ तो ऐसा कहना है। जरा सूक्ष्म बात है। उस काल में रागादि हुए, उनका ज्ञान (हुआ)। आत्मा के स्वलक्ष्य में दृष्टि है तो स्व की पर्याय का जैसा कार्य हुआ, वैसा उस सम्बन्धी का ज्ञान हुआ परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान हुआ, उस ज्ञान को कर्ता हुआ अपने को जानता है, राग को नहीं। समझ में आया? है? देखो! इसमें है या नहीं? यहाँ तो शब्द-शब्द का अर्थ अन्दर से होता है। यह घर की कल्पना की बात नहीं है, हों! वस्तु की स्थिति ऐसी है। आहाहा! पर को जानना, ऐसा कहना तो क्या पर के साथ तन्मय होता है? राग के साथ ज्ञान तन्मय तो है नहीं। व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प है, उसका ज्ञान हुआ, तो ज्ञान क्या राग के साथ तन्मय

है ? तो वह तो कर्म नहीं परन्तु उस सम्बन्धी का ज्ञान अपने में हुआ, उसे कर्मरूप से करता, कार्यरूप से करता, पर्यायरूप से करता हुआ उस ज्ञान को आत्मा जानता है, उसे जानता है, कार्य हुआ उसे जानता है (राग को) नहीं। समझ में आया ? धीरे से समझना। यह तो शान्ति से समझने की चीज़ है।

भगवान आत्मा ज्ञायकभाव से चैतन्यस्वरूप से भरपूर है तो चैतन्यस्वरूप स्वभावरूप आत्मा है—ऐसी जहाँ अनुभवदृष्टि हुई तो सम्यग्दृष्टि को वह ज्ञान की पर्याय बहती है, ज्ञान की उत्पत्ति होती है, ज्ञान की उत्पत्ति होती है। तो कहते हैं कि उस समय राग हुआ न? ***उस राग सम्बन्धी का ज्ञान अपने में हुआ। वह अपने में उत्पन्न हुआ, उस अपने ज्ञान को आत्मा जानता है, अपने में जो ज्ञान की उत्पत्ति हुई, उसे ही जानता है, राग की उत्पत्ति अपने में नहीं होती; इसलिए उसे नहीं जानता।*** फिर से

श्रोता : अपने को भी जानता है, उदय को भी जानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। उसे जानता ही नहीं, वह तो परसम्बन्धी का अपना ज्ञान है, उसे जानता है, बस!

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं, नहीं। वह व्यवहार हुआ। ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध व्यवहार हुआ, वह परमार्थ नहीं।

फिर से, कहते हैं। **पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को...** ये रागादि, पुण्यादि परिणाम जो हुए और शरीरादि, भाषा की पर्याय हुई, वे पुद्गल के परिणाम हैं, उनके ज्ञान को। उनका ज्ञान क्यों कहा? कि वे तो निमित्त हैं। उस सम्बन्धी की अपने ज्ञान में उस समय वैसी ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई है। अपने को जानने की पर्याय उत्पन्न हुई है और उसे जानने की पर्याय स्वयं के कारण से, स्वयं के आश्रय से उत्पन्न हुई है, राग के आश्रय से नहीं।

श्रोता : राग सम्बन्धी का ज्ञान...

पूज्य गुरुदेवश्री : राग सम्बन्धी का ज्ञान, राग के आश्रय से (उत्पन्न) नहीं हुआ, राग है तो ज्ञान उत्पन्न हुआ - ऐसा नहीं है। यहाँ तो ऐसा कहते हैं। फिर से लो। समझ में आया? डॉक्टर, लॉजिक से तो बात है, लॉजिक से बात है। ऐसी कोई कचर-पचर की बात नहीं।

भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूप चैतन्यबिम्ब है अथवा वह ज्ञान का सूर्य है, तो सूर्य में से जो किरण निकले, वह तो सफेद ही है। उसी प्रकार आत्मा ज्ञानसूर्य है, उसमें से किरण निकली, तो जो राग है, उस सम्बन्धी का ज्ञान अपने में से निकला है। उसके कारण से नहीं।

श्रोता : पुद्गल परिणाम हैं, इसलिए नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं।

श्रोता : राग है, इसलिए नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : राग है, इसलिए ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई - ऐसा नहीं है, ऐसा बताना है। जिनेश्वरदासजी! समझ में आया? राग तो विकार है, पर है। पर के कारण ज्ञान की पर्याय उत्पन्न होती है? आहाहा! क्योंकि जो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई, वह अपना कार्य अवश्य, उसमें राग का ज्ञान किया—ऐसा कहने में आता है, परन्तु वह ज्ञान उत्पन्न हुआ, वह राग है तो उत्पन्न हुआ है - ऐसा नहीं है। ज्ञायक है तो ज्ञान की स्व-पर प्रकाशक की पर्याय उत्पन्न हुई, तो पर्याय का काम कर्मरूप से कर्ता हुआ, (उस) पर्याय को आत्मा जानता है। भाई! देखो!

श्रोता : ज्ञेयाकार ज्ञान कहने में आता है न?

पूज्य गुरुदेवश्री : ज्ञेयाकार ज्ञान तो कहने में आता है। क्या ज्ञेयाकार ज्ञान होता है? ज्ञानाकार ज्ञान हुआ है। आहाहा! समझ में आया? यह बात तो चलती है।

ज्ञान में घटाकार हुआ, वह अपने अस्तित्व में अपने कारण से हुआ? - या ज्ञेय के कारण वहाँ ज्ञानाकार हुआ? ज्ञेय के कारण नहीं; अपने कारण से ज्ञानाकार हुआ है। समझ में आया?

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : कारण-फारण नहीं, कुछ नहीं। राग कारण है तो ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हुई-ऐसा भी नहीं और राग है, इसलिए ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं। ज्ञान है तो ज्ञान उत्पन्न हुआ - ऐसी यहाँ बात करते हैं। समझ में आया? भगवान! चैतन्य का मार्ग कोई अलौकिक है। आहाहा!

यहाँ तो ऐसा कहते हैं कि पुद्गलपरिणाम के ज्ञान को-यह तो निमित्त से एक कथन किया। ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्धी (कहा) परन्तु उस ज्ञान की जो उत्पत्ति हुई, वह अपने ज्ञानगुण का अन्दर आश्रय लिया, उसके कारण उत्पत्ति हुई है। राग आया, इसलिए उसके कारण ज्ञान की उत्पत्ति हुई है, उस सम्बन्धी के ज्ञान की उत्पत्ति राग है तो उत्पत्ति हुई है ऐसा नहीं है। समझ में आया? राजमलजी! आहाहा! थोड़ा अन्तर पड़ने से पूरा विरुद्ध हो जाता है। अमुलखचन्दजी!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : अपनी पर्याय है। जिसमें है, उसमें से उत्पन्न हुई है, स्वयं से उत्पन्न हुई है। राग है तो उत्पन्न हुई है? बिल्कुल नहीं। उस गुण की पर्याय उत्पन्न (हुई), वह गुण का उत्पाद है। राग उत्पन्न हुआ, उससे यह उत्पाद हुआ है? स्वयं से उत्पन्न हुई है। समझ में आया? भले उस सम्बन्धी के ज्ञान की पर्याय स्वयं से उत्पन्न हुई तो अपने कार्यरूप से, कर्मरूप से करता हुआ आत्मा अपने को जानता है। इसका नाम आत्मा का धर्म और आत्मा का कार्य है। विशेष कहेंगे......

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(१८)

श्री समयसार, गाथा २९४ प्रवचन नं. ३६१
दिनांक ०६-१२-१९७९

समयसार २९४ गाथा है। पाँचवाँ पैराग्राफ चलता है न? यहाँ आया **क्योंकि रागादि के बिना भी चैतन्य का आत्मलाभ संभव है...** क्या कहते हैं? राग न हो तो भी आत्मा तो अकेला रह सकता है। इसलिए राग, वह कहीं आत्मा का स्वरूप नहीं है। राग के बिना अकेला आत्मा का, मोक्ष का लाभ मिल सकता है। राग कहीं आत्मा की चीज़ नहीं है।

अब कहते हैं, ऐसे राग साथ में उत्पन्न होता है न? **रागादि की चैतन्य के साथ ही...** जहाँ ज्ञान उत्पन्न होता है, उसी काल में राग उत्पन्न होता है। एक समय में साथ में है। राग-द्वेष का **चैतन्य के साथ ही...** सूक्ष्म बात है, भाई! यहाँ तो जितना व्यवहार दया, दान, भक्ति, व्रत, आदि के परिणाम, वे सब राग हैं। वे आत्मा में जाननेयोग्य हैं, वे आत्मा की चीज़ नहीं हैं। उनसे आत्मा को जरा भी लाभ नहीं। क्यों? कि **रागादि की चैतन्य के साथ ही उत्पत्ति होती है...** है? आत्मा ज्ञानस्वरूप वस्तु है, उस ज्ञान की उत्पत्ति होती है, उसी समय में राग-द्वेष आदि दया, दान, व्रत का विकल्प उत्पन्न होता है। समय तो एक ही है। **वह चेत्यचेतकभाव (ज्ञेयज्ञायकभाव) की अति निकटता के कारण ही है,...** ऐसा कैसे है? एकसाथ दोनों उपजते हैं? ज्ञान, आत्मा ज्ञानस्वरूप है। वह ज्ञान की पर्याय उपजे और साथ में राग की उपजे - ऐसा कैसे? वह अतिनिकटता के कारण और चेत्यचेतकपने के कारण। अर्थात्? राग है, वह ज्ञात होने योग्य है, आत्मा जाननेवाला है। आत्मा चेतक है, राग चेत्य है। ज्ञात होनेयोग्य है—ऐसा सम्बन्ध होने से नजदीकपना लगता है; इसलिए राग और आत्मा एक हो - ऐसा लगता है। आहाहा! कठिन काम।

जितना व्यवहार का राग—दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, पूजा, यह सब राग, आत्मा की दशा; आत्मा तो ज्ञानस्वरूप आनन्दस्वरूप है, जिस समय में ज्ञान उत्पन्न होता है, उसी समय में राग भी साथ में उत्पन्न होता है। एक साथ उत्पन्न होता है - उसका कारण? कि वह तो चेत्य-चेतकपने के कारण है। यह राग है, वह ज्ञात होने योग्य है और आत्मा जाननेवाला है। दोनों एक नहीं हैं। आहाहा! जिसे दुनिया अभी व्यवहार साधन कहकर धर्म कहती हैं। दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, तप करो, भक्ति करो, पूजा करो - ऐसा कहकर लोग धर्म कहते हैं। उसे यहाँ भगवान, राग कहकर आत्मा में जाननेयोग्य ऐसी दूसरी चीज़ है, वह आत्मा की चीज़ नहीं।

आत्मा चेतक है-जाननेवाला है और राग ज्ञात होनेयोग्य दूसरी चीज़ अलग है, दोनों होकर एक चीज़ नहीं है। आहाहा! ऐसा कठिन काम।

यह व्रत, तप, भक्ति, पूजा, दान और दया और ऐसा जो भाव आता है कहते हैं कि वह राग है। तब होता क्यों है ? कि चेत्यचेतकपने के कारण। वह ज्ञेय है और यह ज्ञायक है। राग है, वह ज्ञात होनेयोग्य है और आत्मा जाननेवाला है। उसके कारण निकट से देखने में आता है। अज्ञानी को दोनों एक जैसे लगते हैं। अज्ञानी को राग की क्रिया से आत्मा को लाभ होता है - ऐसा जानता है। आहाहा! बहुत कठिन काम, कहते हैं। जिसे लोग धर्म मानें, उसे यहाँ कहते हैं कि विकार है। वह तो एक जाननेयोग्य चीज़ है। वह व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान है, इस बात को यहाँ सिद्ध किया। व्यवहार आता है, होता है परन्तु जाना हुआ प्रयोजनवान है। आहाहा! है ?

इस चेत्य और चेतकपने की। चेतक अर्थात् ज्ञायक, चेत्य अर्थात् ज्ञेय तथा चेतक अर्थात् ज्ञायक। है ? चेत्यचेतक—चेत्य अर्थात् ज्ञेय, ज्ञात होनेयोग्य और चैतन्य अर्थात् जाननेवाला - चेतक। इन दोनों की **अति निकटता के कारण ही है,...** दोनों एक समय में और एक क्षेत्र में हैं। यह क्या कहा ? आत्मा ज्ञानानन्दस्वरूप है और यह राग उत्पन्न होता है, वह विकार बन्ध लक्षण है, वह बन्ध का लक्षण है। आत्मा का ज्ञान लक्षण है। दोनों लक्षण भिन्न होने से दोनों चीज़ भिन्न है, तथापि निकटपना और एक क्षेत्र में और एक काल में है। जाननेवाला और ज्ञात होनेयोग्य एक समय में होने से अज्ञानी को, वह राग मेरी चीज़ है अथवा राग से मुझे लाभ होगा—ऐसा अज्ञानी को, भेदज्ञान नहीं है, इसलिए ऐसा मानता है। आहाहा! ऐसी बात है। इन पुराने लोगों को क्या, झवेरचन्दभाई ने सुना होगा सब, यह सुना होगा (कि) व्रत पालना, तप करना, और यह करना और वहाँ आंकड़िया में क्या होता है ? वह यहाँ कहते हैं ***व्रत, तप, उपवास, भक्ति और भगवान का स्मरण करना, यह सब राग है। राग है, वह चेत्य है अर्थात् ज्ञेय है और आत्मा चेतक है अर्थात् वह उन्हें जाननेवाला ज्ञायक है। दोनों भिन्न चीज़ है।*** आहाहा! ऐसा कब सुनने को (मिले) ? समझे नहीं और जन्म-मरण से छूटे नहीं। आहाहा! है ?

एक लाईन में कितना समा दिया, देखा! आहा! यह राग और द्वेष का **चैतन्य के साथ ही...** आत्मा के ज्ञान की दशा के साथ ही **उत्पत्ति होती है...** क्षेत्र एक है, काल एक है, भाव भिन्न है। भगवान आत्मा चैतन्य / जाननस्वभाव है और ये दया, दान, व्रत, रागादि के परिणाम वे, चेत्य अर्थात् जाननेयोग्य है, वे ज्ञेय है। आत्मा ज्ञायक है, वे ज्ञेय है। ज्ञेय और ज्ञायक दोनों एक नहीं परन्तु साथ में एक साथ में उत्पन्न होते हैं, इससे अज्ञानी को भ्रम उत्पन्न होता है कि राग भी मेरी चीज़ है और उस राग को करने से मुझे कुछ लाभ होगा —ऐसा अज्ञानी अनादि से मिथ्याश्रद्धा में मान रहा है। कहो, यशपालजी! यह तो सब व्यवहार उड़ जाता है। आहाहा! उड़ नहीं जाता,

रहता है। है तो सही, नहीं तो फिर जाननेयोग्य कहा किसे? जाननेयोग्य, व्यवहार जाननेयोग्य है परन्तु जाननेवाला उससे भिन्न चीज़ है। आहा! जाननेवाला वह भिन्न चीज़ है और राग से जाननेवाला (राग और जाननेवाला) भिन्न चीज़ है। दो चीज़ें अत्यन्त भिन्न हैं।

ज्ञायक चैतन्य तो ज्ञायक है। शरीर और वाणी की बात तो यहाँ नहीं ली। वह परवस्तु तो अत्यन्त भिन्न है। स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, धन्धा-व्यापार की तो बात नहीं ली है, वह परवस्तु तो अत्यन्त भिन्न है। उसे तो आत्मा कुछ माने कि मैं करूँ तो भी कर नहीं सकता। यह माने तो करे, मान्यता कर सकता है। राग मेरा है—ऐसी मान्यता कर सकता है परन्तु परचीज़ मेरी है—ऐसा करे तो वह परचीज़ इसकी नहीं होती। यह राग भी माने (कि) मेरा है—ऐसा माने परन्तु राग इसका नहीं होता, किन्तु मान सकता है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म काम है।

रागादिक... रागादि अर्थात् द्वेषादि रति, अरति, विषय-वासना, भक्ति आदि के भाव, वे सब रागादि में जाते हैं। वे **चैतन्य के साथ ही...** चैतन्य के साथ ही, साथ, एकसाथ उत्पन्न **उत्पत्ति होती है, वह चेत्यचेतकभाव (ज्ञेयज्ञायकभाव) की...** चेत्य अर्थात् ज्ञेय और चेतक अर्थात् ज्ञायक। चेत्य अर्थात् विकार और चेतक अर्थात् निर्विकारी चैतन्य। इन दोनों को जाननेवाला और ज्ञात होने योग्य इतना सम्बन्ध है, बाकी दूसरा सम्बन्ध उन्हें कुछ है नहीं। आहाहा! व्यवहार करते-करते निश्चय होता है—ऐसा किसी प्रकार इसमें सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! व्यवहार है, व्यवहार आता है, होता है, चीज़ है परन्तु वह चेतक को जाननेयोग्य है। आहाहा! और वह क्यों ऐसा होता है? एक साथ उत्पत्ति है इसलिए। ज्ञान की पर्याय उत्पन्न हो और उसी काल में तथा उसी क्षेत्र में राग की उत्पत्ति हो। भाव अलग, भाव अलग, हों! आहाहा! अब ऐसी सूक्ष्म बात! भगवान का स्मरण करना, णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं! कहते हैं कि ये स्मरण करना, वह राग है। राग है, वह चेत्य है, चेत्य है अर्थात् ज्ञेय है, ज्ञेय है अर्थात् ज्ञायक से भिन्न है। जाननेवाले आत्मा से वह चीज़ भिन्न है और जानने में आनेयोग्य चीज़ से ज्ञायकभाव भिन्न है। आहाहा!

ऐसे **चेत्यचेतकभाव (ज्ञेयज्ञायकभाव) की अति निकटता के कारण ही है,...** बहुत नजदीक है। एक साथ उत्पन्न होते हैं, इसलिए लोगों को भ्रम पड़ता है कि दया, दान, व्रत का विकल्प जो उत्पन्न होता है, वह जीव का है-ऐसा भ्रम उत्पन्न होता है। आहाहा! जो कुछ कर सकता वह कर सके, वह कहते हैं कि यह तू नहीं, तू तो ज्ञायक चैतन्यस्वरूप है, जाननेवाला देखनेवाला है। इसके अतिरिक्त अधिक जो अन्दर डाला कि राग का कर्ता हूँ तो मर गया, मिथ्यात्व होगा। तूने चैतन्य को मार डाला। आहा! भयंकर भावमरण खड़ा किया। यह राग की क्रिया मेरी है और राग से मुझे लाभ होता है-उसमें राग से भिन्न चैतन्य है, उसे उसने नष्ट कर दिया। वह चैतन्य नहीं परन्तु ऐसा कि रागवाला वह चैतन्य है। आहाहा! ऐसा कठिन है। युवकों

को भी यह तो कठिन पड़े ऐसा है। पुराने आग्रह न हों तो युवक शीघ्र पकड़े और वृद्ध को तो पुराने आग्रह हों तो छोड़ना कठिन पड़े।

एक लाईन में कितना डाला है! जितने विकल्प उठें, चाहे तो परमेष्ठी का स्मरण, पंच परमेष्ठी का स्मरण नवकार (गिने), वह क्या कहते हैं? आनुपूर्वी! आनुपूर्वी नहीं? णमो अरिहंताणं, णमो आइरियाणं। उलट-पुलट (बोलने का) बराबर ध्यान रखकर पढ़े। (वह) राग है, कहते हैं। वह राग है, वह आत्मा की जाति नहीं है, वह आत्मा और राग भिन्न है और इसलिए वह राग जाननेयोग्य में ज्ञात होता है और आत्मा उसका जाननेवाला है-ऐसा ज्ञात होता है। आहाहा!

इसमें बड़ी गड़बड़ (चलती है) राग ऐसा हो, व्यवहार से ऐसा हो, व्यवहार से यह हो, व्यवहार से निश्चय हो, व्यवहार करते-करते निश्चय हो, आहाहा! यह भी एक अपेक्षा से कथन है। बाकी तो ज्ञायकस्वरूप में एकाग्र होता है, इसलिए राग उत्पन्न नहीं होता वह राग को छोड़ता है - ऐसा कहने में आता है। आहाहा! कोई कहे, ऐसा कहाँ से निकाला? वीतरागमार्ग में है यह? यह किसमें है यह? यह किसकी पुस्तक है? यह समयसार है। दो हजार वर्ष पहले बनाया हुआ। कुन्दकुन्दाचार्य ने बनाया है। वे तीर्थंकर के पास गये थे। सीमन्धर भगवान बिराजमान हैं, महाविदेह में बिराजमान हैं, प्रभु अभी बिराजते हैं। आहा! उनके पास गये थे, आठ दिन रहे थे और आकर यह शास्त्र बनाया। आहाहा! इसकी टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य भले भगवान के पास नहीं गये थे परन्तु इस भगवान के पास अन्दर गये थे। आहाहा! गजब बात! एक लाईन में कितना भरा है!

एक तो एक बात है कि रागादि एक बात। दूसरा चैतन्य, दो बात। तीसरा साथ ही उत्पन्न होते हैं, तीन बात। एक साथ ही उत्पन्न होते हैं, तीन बात। यह चेत्यचेतकपने के कारण। ऐसा कैसे है? कि वह तो ज्ञात होनेयोग्य है और आत्मा जाननेवाला है। उसके कारण नजदीक से एक समय में उत्पन्न होते हैं। आहाहा! दूसरे प्रकार से (कहें तो) ***जो राग जिस समय में उत्पन्न होता है, उसी समय में उस राग का ज्ञान स्वयं से ही उत्पन्न होता है। क्या कहा यह? राग जो कोई दया, दान, भक्ति आदि का विकल्प उत्पन्न हो, उसी समय में उस राग की अस्ति है, इसलिए उसका ज्ञान होता है-ऐसा नहीं है। वह ज्ञानगुण की पर्याय ही स्वयं स्व-पर प्रकाशकरूप से उस समय में प्रगट होती है। इसलिए उसे जाननेवाला कहकर राग को ज्ञात होनेयोग्य कहने में आया है। आहाहा!***

वास्तव में तो आत्मा ही स्वयं अपनी पर्याय को जानता है। जाननेवाले का कर्ता स्वयं आत्मा है, यह भी व्यवहार है। पर्याय पर्याय की कर्ता है, वह राग के कारण नहीं, द्रव्य-गुण के कारण नहीं। जानने की पर्याय, जानने की कर्ताकर्म से स्वयं स्वतंत्ररूप से होती है। उसके साथ राग को मिलाना, शामिल करना और राग मेरा है—ऐसा मानना वह मिथ्यात्व अर्थात् आत्मा के स्वरूप की हिंसा है। आत्मा के स्वरूप की हिंसा है। अरर! ऐसी बातें अब।

अब कहते हैं, पहले निषेध किया कि वह **अति निकटता के कारण ही है, एकद्रव्यत्व के कारण नहीं;...** क्या कहा यह ? जाननेवाला चैतन्य भगवान और दया, दान के विकल्प जो राग है, दोनों एक द्रव्य नहीं, द्रव्य दोनों भिन्न हैं। आहाहा! दो पदार्थ भिन्न हैं, दो तत्त्व भिन्न हैं। वह (राग) आस्रवतत्त्व, पुण्यतत्त्व, पापतत्त्व है, यह आत्मतत्त्व है, दोनों तत्त्व भिन्न चीज़ है, एक वस्तु नहीं। नव तत्त्व में भी ऐसा आता है या नहीं ? दया, दान, व्रत के परिणाम, वह पुण्यतत्त्व है। हिंसा, झूठ, चोरी, धन्धा-व्यापार का परिणाम, वह पापतत्त्व है। भगवान तो इन पुण्य-पाप तत्त्व से भिन्न ज्ञायकतत्त्व है। इसलिए दो तत्त्व अत्यन्त भिन्न हैं अर्थात् ये साथ में उत्पन्न होते हैं, वह एक द्रव्यत्व के कारण नहीं। एक साथ में, एक काल में, एक क्षेत्र में ज्ञान उत्पन्न हो और राग उत्पन्न हो, वह एक द्रव्यत्व के कारण नहीं, एक वस्तुत्व के कारण नहीं, दो होकर एक पदार्थपने के कारण नहीं। आहाहा! है ?

जैसे... आहाहा! **(दीपक के द्वारा) प्रकाशित किया जानेवाला...** अब बहुत सूक्ष्म बात आयेगी। आहाहा! दीपक द्वारा **प्रकाशित किया जानेवाला घटादिक...** घड़ा, रथ, पानी आदि चाहे जो चीज़ हो वह। **(दीपक के द्वारा) प्रकाशित किया जानेवाला घटादिक (पदार्थ) दीपक के प्रकाशकत्व को ही प्रगट करते हैं...** आहाहा! वह दीपकपने को ही प्रसिद्ध करते हैं, वे घट-पट को प्रसिद्ध नहीं करते। घट-पट तो घट-पट में रहे। घड़ा आदि प्रसिद्ध नहीं करते क्योंकि वे तो उनमें रहे। उन सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान अपना है, उसे प्रसिद्ध करता है क्योंकि वह अपने में रहा है। आहाहा!

फिर से, दीपक है, वह दूसरी चीज़ को प्रकाशित करता है - ऐसा नहीं है। वह अपनी प्रकाश की चीज़ को ही प्रकाशित करता है। दीपक का स्वभाव ही स्व-पर को प्रकाशित करने का है। स्वयं उसके कारण प्रकाशित होता है। वह दूसरी चीज़ को प्रकाशित करता है - ऐसा नहीं है। आहाहा! बहुत सूक्ष्म आया। अब सिद्धान्त आयेगा। यह तो दृष्टान्त आया।

इस प्रकार (आत्मा के द्वारा) चेतित होनेवाले... आत्मा द्वारा जानने में आनेवाले जो रागादि, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम, क्रोध के परिणाम जानने में आने पर, वे **रागादिक (अर्थात् ज्ञान में ज्ञेयरूप से ज्ञात होनेवाले रागादि भाव) आत्मा के चेतकत्व को ही प्रगट करते हैं...** यह क्या कहते हैं ? आहाहा! आत्मा अपने को जानता है और रागादि हों, उन्हें जानता है। वह जानने को-जानने की पर्याय को प्रकाशित करता है, पर को नहीं, रागादि को नहीं, सूक्ष्म बात है। आहाहा!

दीपक दूसरी चीज़ को प्रकाशित नहीं करता क्योंकि दूसरी चीज़ में वह प्रविष्ट नहीं होता। वह अपनी चीज़ में रहकर प्रकाशित करता है अर्थात् वह तो दीपक के प्रकाश को प्रकाशित करता है। आहाहा! ***इसी प्रकार आत्मा राग, दया, दान, काम, क्रोध के परिणाम में प्रवेश कर***

नहीं जानता, उनमें तन्मय होकर नहीं जानता। तन्मय तो अपनी पर्याय में होकर जानता है; इसलिए वह प्रकाशित करता है, वह अपनी ज्ञान की पर्याय को प्रकाशित करता है, रागादि को प्रकाशित नहीं करता। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है। कहाँ ले गये ?

आत्मा का स्वभाव स्वत: स्वयं स्व-पर प्रकाशक होने से पर के कारण पर को प्रकाशित करता है - ऐसा नहीं है। पर के कारण पर को प्रकाशित करता है - ऐसा नहीं है। पर को और अपने को प्रकाशित करता है, वह स्वयं को प्रकाशित करता है, अपनी पर्याय को प्रकाशित करता है। वह पर चीज़ को प्रकाशित नहीं करता। आहाहा! समझ में आया इसमें कुछ ? बहुत सूक्ष्म है, बापू!

जैसे (दीपक के द्वारा) प्रकाशित किया जानेवाला... घड़ा, मकान कोई भी चीज़ सामने हो वह। दीपक के सामने एक सर्प हो, उसे प्रकाशता है, उस सर्प को प्रकाशित नहीं करता। उस सर्प सम्बन्धी अपना प्रकाश-जो दीपक का प्रकाश है, उसे प्रकाशित करता है क्योंकि सर्प के साथ दीपक के प्रकाश का तन्मयपना नहीं है। आहाहा!

इसी प्रकार आत्मा ज्ञानानन्दप्रभु राग, दया, दान, व्रत, भक्ति, काम परिणाम हों, उन्हें प्रकाशित नहीं करता। पहले कहा था कि उन्हें जानता है, जाननेयोग्य है और यह जाननेवाला है। ऐसा कहकर अब कहते हैं कि वह जाननेयोग्य है, यह भी व्यवहार से कहा था, बाकी उन्हें प्रकाशित नहीं करता; अपनी पर्याय में द्विरूपता को प्रकाशित करता है। अपने को प्रकाशित करता है और राग को प्रकाशित करता है, इस द्विरूपता को प्रकाशित करता है, वह अपना प्रकाश है। आहाहा! ऐसी बात है। सूक्ष्म पड़े ऐसा है। मार्ग तो यह है, भाई! अभी तो सब गड़बड़ चली है। धर्म के नाम से गड़बड़-गड़बड़ बाहर से चलायी। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु! एक बात सुन। *तू एक चैतन्य है या नहीं ? है तो तेरा स्वभाव जानना है या नहीं ? वह जानना है तो जानना स्व-पर प्रकाशकरूप से है या अकेले स्व-रूप से ही है ? जब स्व-पर प्रकाशकरूप से जानना है तो वह पर को प्रकाशित करता है या अपने को प्रकाशित करता है ? स्व-पर प्रकाशकपना अपने को प्रकाशित करता है। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म। कहाँ ले गये ? राग का कर्ता नहीं। ज्ञानस्वरूपी प्रभु, चैतन्यप्रभु आत्मा इन दया, दान, राग का कर्ता तो नहीं परन्तु इसका जाननेवाला भी नहीं। आहाहा! यहाँ ले गये। जाननेवाला कहा था, वह इसके जानने में वे आते हैं, इसलिए (कहा था) परन्तु वास्तव में तो वह अपने ज्ञान को प्रकाशित करता है। स्व-पर प्रकाशक अपनी शक्ति है, उसे विस्तरित करता है, इन रागादि को विस्तारता नहीं करता। चैतन्य का स्व-पर प्रकाशक विस्तार अपने ज्ञान को विस्तारता है, परवस्तु-ज्ञेय को विस्तारता नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है।*

यह किस प्रकार का धर्म ? ऐसा वीतराग का जैनधर्म होगा ? इच्छामि पडिक्कमणां..

इरिया विहिया.. उसमें आवे मिच्छामि दुक्कडम.. तो समझ में भी आवे। तस्सुतरि करणेण, पायश्चित करणेन, अप्पाणं बोसरे.. अन्त में आता है अप्पाणं बोसरे। अप्पाणं कौन? और बोसरे कौन? इसका भी पता नहीं होता। आहाहा!

यहाँ आत्मा के गुण की मर्यादा ली है। इस आत्मा के गुण की मर्यादा चैतन्य की स्व-परप्रकाशक की है। वह पर को प्रकाशित करता है—ऐसा प्रसिद्ध नहीं करता परन्तु पर सम्बन्धी अपना जो पर प्रकाशक स्वभाव है, वह स्व-पर प्रकाशक है, उसे प्रकाशित करता है। आहाहा! ऐसा अब सुनना मुश्किल पड़ता है, यह बैठाना कठिन (पड़ता है)।

पहले तो यह लिया कि राग-पुण्य और पाप का भाव हो, वह चैत्य है - ज्ञात होने योग्य है, बस! इतना कहा। आत्मा जाननेवाला है, इतना कहा। वह एक काल में और एक क्षेत्र में एक साथ उत्पन्न होते हैं, तथापि दोनों भिन्न चीज़ है। वह (राग) ज्ञात होनेयोग्य चीज़ है, यह जाननेयोग्य है। अब यहाँ तो कहते हैं कि यह ज्ञात होनेयोग्य चीज़ है, वह बात कही थी परन्तु वह इसके प्रकाश में प्रकाशित होती है, वह अपना प्रकाश है, उस चीज़ को प्रकाशित नहीं करता, वह अपना चैतन्य का स्व-पर प्रकाशक (स्वभाव है), उसे प्रकाशित करता है। आहाहा! ऐसी बातें हैं। थोड़ा सूक्ष्म पड़ता है परन्तु समझनेयोग्य यह है। बाहर की बातें सुन-सुनकर तो बहुत वर्ष व्यतीत किये। आहाहा!

सत्य बात परमेश्वर त्रिलोकनाथ (यहाँ कहते हैं कि) ज्ञानस्वरूपी आत्मा, ज्ञानस्वरूपी आत्मा वह ज्ञान, ज्ञेय में कहाँ तन्मय होता है? ज्ञेय सम्बन्धी का जो ज्ञान अपना है, उसमें वह तन्मय है; इसलिए वह स्वयं अपने ज्ञान के स्व-पर प्रकाश को विस्तारता है, विस्तरता है, पर का विस्तार नहीं करता। आहाहा! अब इसे ऐसा समझने के लिये समय कब प्राप्त करना। आहाहा!

चैतन्यद्रव्य भगवानस्वरूप चैतन्य प्रकाश है, चैतन्य चमत्कारी वस्तु है, चैतन्य चमत्कारी वस्तु है। चमत्कारी अर्थात् अपने में रहकर अनन्त को प्रकाशित करती है, तथापि अनन्त को प्रकाशित करती है-ऐसा कहना वह अपेक्षा है। अनन्त को अपने भाव को प्रकाशित करता है। अनन्त को अपनी पर्याय में अनन्त ज्ञात हो, उस अनन्त को प्रकाशित करता है। आहाहा! समझ में आया इसमें? कठिन काम है, बापू! यह कहीं कलकत्ते-फलकत्ते में मिले ऐसा नहीं है। दिल्ली और कलकत्ते में सर्वत्र धूल मिले, ऐसा है वहाँ। आहाहा!

प्रभु! तू कितना है? कहाँ है? कि ज्ञात हो, ऐसे पदार्थ में मैं नहीं, ज्ञात हो, ऐसे पदार्थ में मैं नहीं। कहाँ है? मैं तो मेरे स्व-पर प्रकाशक की पर्याय में हूँ। आहाहा! गजब है न! ऐसी शैली सन्तों ने जगत को सादी भाषा में, संक्षिप्त भाषा में, सादी भाषा में चैतन्यचमत्कार को सामने रखा

है, सामने। यह सब ज्ञात होता है ? कि नहीं। ज्ञान की पर्याय में यह सब (ज्ञात होता है) ? यहाँ तो सूक्ष्मरूप से अन्दर का राग लिया है। यह सब ज्ञात होता है ज्ञान में ?-कि नहीं। यह चैतन्य का स्वभाव है कि प्रकाशित करना। उसके अस्तित्व में रहकर प्रकाशित करता है वह अपने ज्ञान को प्रकाशित करता है। इन चीज़ों में वह ज्ञान नहीं जाता, तथा उस चीज़ के कारण यहाँ ज्ञान का प्रकाश नहीं होता। उस चीज़ के कारण यहाँ प्रकाश नहीं होता, यह प्रकाश वहाँ नहीं जाता तथा यह प्रकाश... आहाहा! अनन्त है, इसलिए अनन्त को पहुँच जाये तो अनन्त को जाने, अनन्त को पहुँच जाये तो अनन्त को जाने, तीन काल को पहुँच जाये तो तीन काल को जाने... आहाहा! ऐसा नहीं है। समझ में आया? यह तो मन्त्र है, भाई! यह अपने अनन्तभाव जानने का जो स्वभाव है, उस स्वभाव में अनन्त ज्ञात होते हैं। उस स्वभाव में अनन्त ज्ञात होते हैं, वह अपनी पर्याय ज्ञात होती है, पर नहीं। पर को तो स्पर्श भी नहीं करता। आहाहा! ऐसा स्वरूप है। ऐसा सुना था या नहीं ? आहाहा!

जन्म-मरण कर-करके, बापू! चौरासी के अवतार (में) अनन्त भव कर-करके मर गया है (तो भी) थका नहीं, थका नहीं, परान्मुख नहीं होता, वहाँ बाहर ही बाहर की नजरें। आहाहा! अभी तो बाहर करने की नज़र, एक बात। फिर बाहर को जानने की नज़र, दो बात। आहाहा! फिर मुझमें ज्ञात होता है, यह वह ज्ञात होता है, यह तीसरी बात। अब यहाँ कहते हैं कि मुझमें ज्ञात होता है, वह मैं ज्ञात होता हूँ, यह चौथी बात। आहाहा! भाषा तो सादी है। भाव समझ में आवें ऐसे हैं या नहीं ? यशपालजी! भाषा तो (सादी है)। ऐसा मार्ग है, बापू! आहाहा! ***अरे! यह मनुष्य देह तो चली जायेगी, मनुष्य देह की राख हो जायेगी। यह तो राख है, मिट्टी, धूल, राख है। श्मशान में राख इतनी भी नहीं होगी। इतनी होकर हवा आयेगी तो (उड़ जायेगी)।***

***रजकण तारा रखण शे अने जेम रखडती रेत,
पछी नरतन पामीश क्यां ? पछी नरतन पामीश क्यां ?
चेत चेत चेत नर चेत!***

प्रभु! तुझे करने का यह है, भाई! ऐसा काल आया है। आहा! अब फिर कहाँ जायेगा ? बापू! कहाँ जाकर क्या करेगा तू ? यदि मनुष्यपना हारकर कहीं ढोर में चला गया (तो) अनन्त काल में वापस मनुष्यपना मिलना मुश्किल। ढोर मरकर माँस खाकर जाये नरक में। आहाहा! वह निकलकर सिंह हो और मरकर वापस वहाँ जाये और ऐसे भव अनन्त किये, बापू! मूल चीज़ को (पकड़े नहीं और कहे) हमें समझ में नहीं आता, हमें सूक्ष्म पड़े, हमने ऐसा करके, ऐसा करके निकाल दिया और जगत की चीज़ जो जाननेयोग्य नहीं वास्तव में उसमें गहरा उतर गया, गहरा। आहाहा!

श्रोता : वह सरल पड़ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल मानता है, सरल कुछ नहीं पड़ता। सरल तो यहाँ है। जाननेवाला

भगवान स्वयं क्षण-क्षण में स्वयं, अपने और पर को अपने कारण से स्वयं प्रकाशित करता है। आहाहा!

स्व-परप्रकाशक शक्ति हमारी, ताते वचन भेद भ्रम भारी,
ज्ञेय शक्ति द्विधा प्रकाशी, निजरूपा पररूपा भासी।

ज्ञेय दो हैं परन्तु वास्तव में तो ज्ञेय वह भासता है। चैतन्य ज्ञेय है, उस चैतन्य ज्ञेय में प्रकाश है और उस प्रकाश से स्वयं प्रकाशित होता है। पर से प्रकाशित है ? पर से प्रकाशित है ? आहाहा! इसका अस्तित्व ही इतना बड़ा है कि अपने में रहकर, पर को स्पर्श किये बिना, पर का अस्तित्व है, इसलिए अपने को जानता है, इतना सब ऐसा भी नहीं। ***अपने अस्तित्व की सत्ता ही इतनी है कि पर अनन्त हैं, उन्हें स्पर्श किये बिना स्व-पर प्रकाशक को प्रकाशित करता है। उस परपदार्थ को प्रकाशित नहीं करता, स्व को प्रकाशित करता है। आहाहा! ऐसी वस्तु है।*** इतनी लाईन में बहुत भरा है! बहुत भरा है! यहाँ से उठाकर आज का पैराग्राफ ही पूरा सरस है। आहाहा!

यह हुआ न? **रागादि की चैतन्य के साथ ही उत्पत्ति होती है, वह चेत्यचेतकभाव (ज्ञेयज्ञायकभाव) की अति निकटता के कारण...** निकटता के कारण; एकपने के कारण नहीं। आहाहा! एक द्रव्यपने के कारण नहीं। आहा! **जैसे (दीपक के द्वारा) प्रकाशित किया जानेवाला...** घड़ा, सर्प, बिच्छु.. आहाहा! दीपक के प्रकाश में ज्ञात हो कि यह सर्प है, बिच्छु है; तथापि उस दीपक के प्रकाश को प्रकाशित करता है, सर्प को नहीं। प्रकाश को प्रकाशित करता है कि इसी और इसी के दो के प्रकाश को प्रसिद्ध करता है। इसी प्रकार भगवान आत्मा... आहाहा! **चेतित होनेवाले रागादिक (अर्थात् ज्ञान में ज्ञेयरूप से ज्ञात होनेवाले रागादि भाव) आत्मा के चेतकत्व को ही प्रगट करते हैं...** आहाहा! रागादि हैं, उन्हें जाननेवाला चैतन्य है - ऐसा प्रकाशित करते हैं। आहाहा! राग तो अन्धा है, राग में कहाँ जानने की शक्ति है ? यह जानने की शक्ति है, उसे प्रसिद्ध करता है। इस राग को प्रसिद्ध ज्ञान नहीं करता। आहाहा! ऐसा है। कान में पड़ना कठिन। कहाँ का कहाँ जाना ? कहाँ भटका, कहाँ भ्रमा, आहाहा!

आत्मा के चेतकत्व को ही... भाषा देखी ? क्या कहते हैं यह ? रागादि को नहीं। **आत्मा के चेतकत्व को ही प्रगट करते हैं—रागादिकत्व को नहीं।** आहाहा! गजब काम किया है न! ऐसी-ऐसी बात कहीं नहीं है। दिगम्बर सम्प्रदाय के अतिरिक्त और इस समयसार के अतिरिक्त कहीं बात नहीं। आहाहा! कहते हैं कि आत्मा के चेतकपने को ही प्रसिद्ध करते हैं। 'ही' शब्द है न ? सामनेवाले को - ऐसा नहीं। यह तो चैतन्य का स्व-पर प्रकाशकपना विशाल है, विशाल है, उसकी सत्ता ही विशाल है। उस विशालता को ही प्रसिद्ध करता है। विशालता में विशाल वस्तु प्रसिद्ध करता है - ऐसा नहीं। आहाहा! सुननेयोग्य यह बात है। आहाहा!

ऐसा होने पर भी... है तो ऐसा। ***आत्मा के प्रकाश में आत्मा का प्रकाश ही प्रसिद्ध करता है, रागादि को नहीं। आहाहा! वे नजदीक में नजदीक एक समय में और एक क्षेत्र में उत्पन्न होते हैं। आहाहा! उन्हें भी प्रसिद्ध नहीं करता। अपनी प्रकाश की द्विरूपता, उसे और अपने को प्रकाशित करे—ऐसी अपनी शक्ति को प्रकाशित करता है। आहाहा! चेतकत्व को ही प्रगट करते हैं... शब्द रखा है, देखा? यहाँ एकान्त किया। पर को प्रसिद्ध नहीं करता है, अपने को ही प्रसिद्ध करता है। आहाहा!*** सन्तों की शैली जो बात करे, उस बात को ऐसे सिद्ध (करते हैं)। ***स्वयं चेतकपने को ही प्रसिद्ध करता है... ज्ञात हो उसे नहीं, वह ज्ञात नहीं होता। उस सम्बन्धी का ज्ञान यहाँ ज्ञात होता है, उस सम्बन्धी का यहाँ ज्ञान अपना-अपने से हुआ है, वह ज्ञात होता है। आहाहा! ऐसी बात! 'ही' शब्द पड़ा है न? आत्मा के चेतकत्व को ही प्रगट करते हैं—रागादिक को नहीं। अरे! पर को तो नहीं परन्तु एक क्षेत्र और एक काल में उत्पन्न हो, उसे भी नहीं। आहाहा!***

(यह) तीन लोक के नाथ की वाणी है। मुनि, भगवान की वाणी कह रहे हैं। आहाहा! तीन लोक का नाथ बिराजता है। एक साथ में उत्पन्न होते हैं उसे भी (प्रसिद्ध नहीं करता)। दूसरी चीज़ तो एक साथ उत्पन्न नहीं होती, दूसरी चीज़ परन्तु ये ***राग-द्वेष, दया, दान एक समय में ज्ञान और राग एक साथ उत्पन्न होते हैं, उन्हें भी ज्ञान प्रसिद्ध नहीं करता; ज्ञान, ज्ञान को प्रसिद्ध करता है। आहाहा! पर तो पर रह गया। यह तो राग तो एक क्षेत्र और एक काल में उत्पन्न होता है। अन्य तो परक्षेत्र और उनका काल पर है, सब परवस्तु-शरीर, वाणी, मन, कर्म, स्त्री, कुटुम्ब, परिवार, पूरी दुनिया धन्धा, वह तो पर रहा, उसकी तो यहाँ कोई बात ही नहीं है। आहाहा!***

एक साथ में उत्पन्न हों, उन्हें भी प्रकाशित करता है-ऐसा कहना, कहते हैं वह व्यवहार कहा। वास्तव में अपने प्रकाश को प्रकाशित करता है। आहाहा! चैतन्य की स्व-पर प्रकाशित करने की शक्ति है, उसे प्रकाशित करता है; पर को प्रकाशित करता है - ऐसा नहीं, पर का जाहिर करता है - ऐसा नहीं। अपनी स्व-पर प्रकाशक (शक्ति है), उसे प्रसिद्ध करता है। आज का जरा सूक्ष्म है। आहाहा! कहो, देवीलालजी! ऐसी बातें हैं।

ऐसा होने पर भी... है तो ऐसा, कहते हैं। एक साथ में उत्पन्न हो, उस चीज़ को भी जानता है - ऐसा कहना, वह व्यवहार है; अपने को प्रकाशित करता है, वह निश्चय है। आहाहा! जो चीज़ परक्षेत्र में, परकाल और परभाव से है, उसकी बात तो यहाँ कुछ की ही नहीं। आहाहा! **ऐसा होने पर भी उन दोनों (-आत्मा और बन्ध) की अत्यन्त निकटता के कारण...** अत्यन्त निकट है। एक समय में साथ में और क्षेत्र में साथ में। आहाहा! **भेदसंभावना का अभाव होने से...** अज्ञानी को भेदज्ञान का अभाव होने से। आहाहा!

ऐसा होने पर भी... ऐसा कहा, देखा? वस्तु तो ऐसी है, वस्तु की स्थिति तो इस प्रकार

से है। **ऐसा होने पर भी उन दोनों (-आत्मा और बन्ध) की अत्यन्त निकटता के कारण भेदसंभावना का अभाव होने से...** राग और आत्मा अत्यन्त भिन्न है। आहाहा! ये दया, दान, भक्ति, व्रत का विकल्प जो राग है, इनसे भगवान आत्मा अत्यन्त भिन्न है। अरे रे! कैसे बैठे? अभी शरीर से भिन्न बैठना कठिन पड़ता है। इस शरीर से भिन्न, यह तो अत्यन्त भिन्न चीज़ है। यह तो मिट्टी है और (स्वयं) चैतन्य है। यहाँ तो एक साथ में उत्पन्न होते हैं—ऐसे राग और द्वेष, दया और दान, व्रत और भक्ति ऐसा विकारभाव, उसे नहीं जानकर अपने को जानता है—ऐसा ही स्वरूप है, ऐसा ही स्वरूप है। **ऐसा होने पर भी...**ऐसा कहा न? ऐसा स्वरूप है, ऐसा। यह स्वरूप तो ऐसा है। **ऐसा होने पर भी...** - ऐसा कहा न?

उन दोनों (-आत्मा और बन्ध) की अत्यन्त निकटता के कारण भेदसंभावना का अभाव होने से अर्थात् भेद दिखाई न देने से... अन्दर दया, दान के परिणाम राग है, विकार है और भगवान आत्मा भिन्न है। आहाहा! वह पर को भी प्रकाशित नहीं करता, अपने को प्रकाशित करता है। ऐसा होने पर भी, ऐसा होने पर भी, वस्तु की मर्यादा ऐसी होने पर भी... आहाहा! वस्तु की स्थिति ऐसी होने पर भी **भेदसंभावना का अभाव होने से...** भेदज्ञान के अभाव के कारण। **भेद दिखाई न देने से...** राग और आत्मा अज्ञानी को भिन्न दिखायी नहीं देते। शरीर और वाणी, ये तो जड़, मिट्टी, धूल हैं। स्त्री-पुत्र-पैसा तो कहीं... कहीं... धूल बाहर रह गयी। आहाहा!

ऐसा होने पर भी... अर्थात् समझ में आया? है तो ऐसा कि आत्मा अपने को प्रकाशित करता है। है तो ऐसा। ऐसा होने पर भी, अत्यन्त निकट राग, दया, दान, व्रत का विकल्प जो उठता है, वह अत्यन्त निकटता के कारण भेद का अभाव होने से भिन्नता **भेद दिखाई न देने से (अज्ञानी को) अनादिकाल से एकत्व का व्यामोह (भ्रम) है;...** अनादि से। राग मेरा है और राग मेरा कर्तव्य है, यह अनादि का अज्ञानी को भ्रमणा और मिथ्याभ्रम है। **वह व्यामोह...** इस प्रकार होने पर भी, उस व्यामोह (को) तोड़ने की एक ही विधि है। **प्रज्ञा द्वारा ही...** देखा? **द्वारा ही...** और वह भी एक ही **प्रज्ञा द्वारा ही अवश्य छेदा जाता है।** इस ज्ञान की पर्याय को स्वसन्मुख झुकाने से उनसे भिन्न पड़ जाता है। राग और ज्ञान की पर्याय दोनों प्रज्ञा के द्वारा अत्यन्त भिन्न पड़ते हैं, दूसरा कोई उपाय है नहीं।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

१९

श्री समयसार, गाथा ३२० प्रवचन नं. ३८८
दिनांक ०८-०२-१९८०

समयसार, ३२० गाथा। अब शिष्य पूछता है—इसका अर्थ यह है कि जिसे सुनने की गरज है, वह पूछता है। सुनने के लिये सुनने आना, वह अलग चीज़ है और अपने आत्मा के लिये सुनना... यह बात कहेंगे।

अब प्रश्न होता है कि—(ज्ञानी करता-भोगता नहीं है,...) ऐसी अन्तर जिज्ञासा हुई है। धर्मी, रागादि-द्वेषादि को करता नहीं और भोगता नहीं। **(मात्र जानता ही है) यह कैसे है ?** इसकी रीति क्या है ? इसका प्रकार क्या है ? ऐसी जानने की जिज्ञासा है। **इसका उत्तर दृष्टांतपूर्वक कहते हैं :—** जिसे यह सुनने की जिज्ञासा है, उसे यहाँ उत्तर दिया जाता है। ऐसी शैली कही है।

दिट्ठी जहेव णाणं अकारयं तह अवेदयं चेव।
जाणइ य बंधमोक्खं कम्मुदयं णिज्जरं चेव॥३२०॥

ज्यों नेत्र, त्यों ही ज्ञान नहिं कारक, नहीं वेदक अहो!
जाने हि कर्मोदय, निरजरा, बन्ध त्यों ही मोक्ष को॥३२०॥

टीका : पहले से दृष्टान्त देते हैं। पूछना क्या है कि आत्मा यह सब करता है, वेदन में आता है (और) तुम कहते हो कि आत्मा करता नहीं और वेदता नहीं। पर को करता नहीं और राग को वेदता नहीं। यह क्या चीज़ है ? यह उसकी क्या आश्चर्यता है ? उसका स्वभाव ऐसा विस्मयकारी क्या है ? ऐसी शिष्य को जानने की जिज्ञासा हुई है। उससे कहते हैं।

जैसे इस जगत में... पहले जगत सिद्ध किया। यह जगत है। **इस जगत में...** (ऐसा कहकर) अस्ति सिद्ध की है। जगत की अस्ति सिद्ध की है। **नेत्र दृश्य पदार्थ से अत्यन्त...** नेत्र जो आँख है, वह देखने योग्य **पदार्थ से अत्यन्त भिन्नता के कारण...** आँख जिसे देखती हे, उस देखने योग्य पदार्थ से आँख तो अत्यन्त भिन्न है। **अत्यन्त भिन्नता के कारण उसे करने-वेदने (-भोगने) में असमर्थ होने से,...** सिद्धान्त यह कहा। आँख प्रत्येक पदार्थ को (देखे) अत्यन्त भिन्न, प्रत्येक पदार्थ से आँख भिन्न, वह आँख भिन्न को करे और वेदे कैसे ? अपने में हो, उसे करे और वेदे, परन्तु पर को करे और वेदे, वह तो अत्यन्त भिन्न है। जिसे आँख छूती भी नहीं, उसे करे-भोगे—यह कैसे बने ?

अत्यन्त भिन्नता के कारण उसे करने-वेदने (-भोगने) में असमर्थ होने से,... आँख, जगत की चीज़ को देखे, तथापि आँख से जगत की कोई चीज़ की नहीं जाती, वैसे भोगी नहीं जाती। **दृश्य पदार्थ को न तो करता है...** उस देखनेयोग्य पदार्थ को आँख करती और वेदती नहीं। आहाहा! **यदि ऐसा न हो तो...** आँख यदि करे और वेदे तो, करती और वेदती (होवे तो) भिन्न पदार्थ को नहीं और करती-भोगती हो तो **अग्नि को देखने पर, [१]संधुक्षण की भाँति,...** (संघुक्षण)=संघुकण; अग्नि सुलगानेवाला पदार्थ; अग्नि चेतानेवाली वस्तु। अग्नि चेतती है, उससे अग्नि चेतती है।

इसी प्रकार **अपने को (-नेत्र को) अग्नि का कर्तृत्व (जलाना),...** आवे। जैसे संघुकण आग को—अग्नि को सुलगाता है, वैसे आँख पर से भिन्न है, उसे करे और वेदे तो सुलगानापना आवे-तो आँख तो सुलगानापना (आवे)। आँख ऐसे पड़े वहाँ दूसरा सुलगना चाहिए। आँख को सुलगानापना आवे। **और लोहे के गोल की भाँति अपने को (नेत्र को) अग्नि का अनुभव दुर्निवार होना चाहिए,...** आँख भिन्न चीज़ को देखनेमात्र से उसे भोगे तो, लोहे का गोला जैसे अग्नि में उष्ण हो जाता है, वैसे आँख भी अग्नि में अग्निमय हो जाए। आहाहा! **अग्नि का अनुभव दुर्निवार होना चाहिए,...** आँख को भिन्न चीज़ को अनुभव करने का भाव आ जाए।

(अर्थात् यदि नेत्र दृश्य पदार्थ को करता और भोगता हो...) आँख है, वह दूसरी चीज़ को... आहाहा! किसी भी चीज़ को करती और वेदती हो तो **(तो नेत्र के द्वारा अग्नि जलनी चाहिए...)** आँख द्वारा अग्नि होनी (चाहिए)। जैसे संघुकण करता है, वैसे आँख ऐसे करे, वहाँ अग्नि होनी चाहिए। यदि आँख और उस भिन्न पदार्थ को ऐसा सम्बन्ध होवे तो आँख ऐसे हो, वहाँ-वहाँ सुलगना चाहिए। **(यदि नेत्र दृश्य पदार्थ को करता और भोगता हो तो नेत्र के द्वारा अग्नि जलनी चाहिए...)** आँख के द्वारा अग्नि होना चाहिए। जैसे वह संघुकण अग्नि को सुलगाता है; वैसे आँख जहाँ पड़े, वहाँ सुलगना चाहिए। आहा...!

(नेत्र को अग्नि की उष्णता का अनुभव होना चाहिए;...) आँख है, वह अग्नि को देखती है, परन्तु अग्नि का अनुभव नहीं। यदि उसमें एकाकार होवे तो अनुभव हो। तो वह तो भिन्न चीज़ है। आँख और जो चीज़ अग्नि है, वह तो भिन्न है। भिन्न को अग्नि करे भी नहीं और भिन्न को अग्नि वेदे भी नहीं। यह तो अभी दृष्टान्त है। आहाहा! **(किन्तु ऐसा नहीं होता,...)** आँख से सुलगता नहीं और आँख पर को वेदती नहीं। **(नेत्र को अग्नि की उष्णता का अनुभव होना चाहिए; किन्तु ऐसा नहीं होता, इसलिये नेत्र दृश्य पदार्थ का कर्ता-भोक्ता नहीं है)** आँख है, वह देखनेयोग्य पदार्थ को (देखे)। देखनेयोग्य—इतना सम्बन्ध अवश्य, परन्तु तदुपरान्त उसे सुलगावे या जलावे, तब तो स्वयं ही अग्निमय हो जाए। आँख, अग्निमय हो जाए, जल जाये और

आँख करे तो ऐसे आँख पड़े तो वहाँ अग्नि होनी चाहिए। **(किन्तु ऐसा नहीं होता, इसलिये नेत्र दृश्य पदार्थ का कर्ता-भोक्ता नहीं है)** आँख, देखनेयोग्य पदार्थ को (इतना कहकर) देखनेयोग्य पदार्थ का सम्बन्ध रखा, परन्तु तदुपरान्त उसे सुलगावे और जलावे—ऐसा नहीं हो सकता।

किन्तु केवल दर्शनमात्रस्वभाववाला होने से,... आँख तो **किन्तु केवल दर्शनमात्र-स्वभाववाला होने से वह (नेत्र) सबको मात्र देखता ही है;...** यह दृष्टान्त कहा। आँख तो सभी चीज़ों को देखती ही है। किसी चीज़ को करती नहीं, किसी चीज़ को जलाती नहीं और किसी चीज़ से जलती नहीं। अग्नि से आँख जलती नहीं, अग्नि को आँख करती नहीं। आहाहा!

उसी प्रकार... यह तो दृष्टान्त था, अब सिद्धान्त आत्मा पर उतारते हैं। **ज्ञान...** अर्थात् आत्मा। आत्मा अर्थात् ज्ञानस्वभाव, आत्मा अर्थात् ज्ञानस्वरूप। जैसे नेत्र, अग्नि को सुलगाता नहीं और अग्नि से जलता नहीं; वैसे आत्मा भी, आहाहा! **स्वयं (नेत्र की भाँति) देखनेवाला होने से,...** देखनेवाला है। व्यवहार से पर को देखनेवाला है। जैसे आँख पर को देखती है, वैसे आत्मा पर को देखे अवश्य। जिस काल में जो चीज़ है, उस काल में वह आँख देखे; वैसे आत्मा भी उसे देखे अवश्य। आहाहा! देखने के अतिरिक्त करना या वेदन करना उसमें होता नहीं। देखने का सम्बन्ध है-एक बात तो ली है। आँख देखती है, वह अग्नि को करती नहीं। वैसे आत्मा देखता है—ऐसा तो है, देखता नहीं-ऐसा नहीं। आहाहा!

आत्मा अर्थात् ज्ञान। **स्वयं (नेत्र की भाँति) देखनेवाला होने से,...** इतना लिया। ज्ञान पर को देखता है, इतना लिया। यद्यपि पर को देखता है, यह अभी व्यवहार है, तथापि इतना सम्बन्ध लिया, तो जैसे पर को देखता है—ऐसा व्यवहार है तो पर को करे—ऐसा व्यवहार होना चाहिए। आहाहा! (तो कहते हैं) ऐसा नहीं है। आहाहा! आँख (को) देखने का सम्बन्ध है, इससे कहीं आँख दूसरे को सुलगावे? या दूसरे को वेदे? इसी प्रकार आत्मा (को) देखने का सम्बन्ध है। आहाहा! इतना तो लिया। **देखनेवाला होने से,...** आहा!

(नेत्र की भाँति) देखनेवाला होने से, कर्म से अत्यन्त भिन्नता के कारण... जैसे अग्नि पर पदार्थ से भिन्न है, उसे देखे तो भी उससे सुलगे या जले नहीं; वैसे आत्मा कर्म को देखे अवश्य। आहाहा! **कर्म से अत्यन्त भिन्नता के कारण...** अकेला भिन्न नहीं लिया। प्रभु! चैतन्य ज्ञानस्वरूप भगवान, परपदार्थ से अत्यन्त भिन्नता के कारण देखनेवाला होने पर भी, इतनी बात है। उसमें आया था कि भाई! एक जब स्वयं करता है तो फिर साथ में पर का भी करे। करता है न? अपना किये बिना रहता है? यह आ गया था। करता है तो भी पर को तो कर्ता-भोक्ता नहीं। अपने परिणाम को भले करे और भोगे। आहाहा!

यहाँ निर्मल परिणाम को करे और भोगे, उसकी बात है; मलिन की बात नहीं। आत्मा,

नेत्र की भाँति पर के साथ देखने के सम्बन्धमात्र से पर को देखे, इसलिए पर का कुछ करे (-ऐसा नहीं है।) पर का देखना, ऐसा तो इसका सम्बन्ध है परन्तु देखना सम्बन्ध है, इसलिए कुछ करे (-ऐसा नहीं है) आहाहा! हाथ को हिलावे, पैर को हिलावे, आँख को हिलावे, बोले (-ऐसा नहीं है)। जो चीज़ है, उसे देखता है तो देखने पर भी जो चीज़ देखता है, वही देखे बराबर। उसके परिणाम में वही देखने का बराबर आवे - ऐसा होने पर भी। आहाहा!

वह देखनेवाला होने पर भी **कर्म को न तो करता है...** आहाहा! रागादि, कर्म आदि को करता नहीं। करता नहीं कहा। क्यों नहीं करता - ऐसा नहीं कहा। ज्ञान कहा सही न? ज्ञान अर्थात् आत्मा। ज्ञान ऐसे देखने का जानने का सम्बन्ध इतना कहते हैं, तथापि देखनेमात्र के उपरान्त उसे करने और वेदने का (सम्बन्ध नहीं है)। **अत्यन्त भिन्नता के कारण निश्चय से उसके करने-वेदने-(भोगने) में असमर्थ होने से,...** आहाहा! जीव ज्ञानस्वरूप होने से, उसे कर्म का उदय हो उसे देखता है। देखने के सम्बन्धमात्र से कर्म के उदय को वेदे या करे - ऐसा नहीं है। आहा! अभी तो चार बोल लेंगे।

कर्म को न तो करता है और न वेदता (भोगता) है,... आहाहा! कर्म-पर को जानने-देखने का सम्बन्ध होने पर भी, पर को करता और वेदता बिल्कुल नहीं है। आहाहा! यह सब पूरे दिन यह धन्धा-व्यापार धमाल चलती है न? दुकान पर बैठा। कहते हैं कि आत्मा को और उसे देखनेमात्र का सम्बन्ध है। देखने के उपरान्त उसे करने और वेदने का बिलकुल स्वभाव नहीं है। आहाहा! जैसे आँख अग्नि को कुछ करती नहीं, ऐसे भगवान आत्मा कर्म और कर्म से प्राप्त चीज़, उस किसी चीज़ को-कर्म को करता-भोगता नहीं तो पर की तो बात क्या करना? आहाहा! करता और भोगता नहीं।

न वेदता (भोगता) है, किन्तु केवल ज्ञानमात्रस्वभाववाला... आहाहा! **केवल ज्ञानमात्र-स्वभाववाला (-जानने का स्वभाववाला) होने से...** भगवान तो जानने के स्वभाववाला है, बस! पूरी दुनिया को देखे। आहा! उसे वासना के काल में संयोग को देखे। आहाहा! तथापि उस विषय-वासना को करता नहीं और सामने की चीज़ को जो भोगता है—ऐसा देखता है, उसे यह आत्मा करता नहीं। आहाहा!

केवल ज्ञानस्वभाव! एकान्त नहीं कहा? केवल ज्ञान लिया, अकेला ज्ञानस्वभाव। कथंचित् ज्ञानस्वभाव और कथंचित् कर्तापना, राग का कर्तापना, अरे! बन्ध और मोक्ष का कर्तापना कथंचित् तो अनेकान्त कहलाये (तो कहते हैं) ऐसा नहीं है। ***आहाहा! भगवान आत्मा ज्ञानस्वभाववाला होने से जानने का काम करे। जानने के स्वभाववाला होने से जानने का काम करे। आहाहा! परन्तु वह बन्ध को करता नहीं। राग को-बन्ध को करता नहीं, तथा राग को वह***

ज्ञान वेदता नहीं। बन्ध को ज्ञान जानता है। जानने का स्वभाव होने से जानता है इतना कहते हैं परन्तु वह राग को करे और वेदे—ऐसा उसका स्वरूप नहीं है। आहाहा! पर का करना तो कहीं रह गया। आहाहा! हीरा, माणिक, जवाहरात और वस्त्र... इस एक रजकण को मात्र देखे। रजकण से लेकर पूरी दुनिया (देखे) परन्तु एक रजकण को करे या राग को करे और वेदे, जानने के सम्बन्धमात्र से करने और वेदने का सम्बन्ध हो जाये - ऐसा नहीं है। आहाहा! पर को जानने और देखने का सम्बन्ध है। इतने मात्र से पर को करे और वेदे, यह है नहीं। आहाहा! है?

किन्तु केवल ज्ञानमात्रस्वभाववाला (-जानने का स्वभाववाला) होने से कर्म के बन्ध को... यहाँ अब कठिन बात आयी। कर्म का बन्ध हो, उसे जाने; बन्ध करे नहीं। बन्ध हो, (तब) परज्ञेयरूप से बन्ध को जाने; बन्ध को करे नहीं। आहाहा! ज्ञानावरणीय कर्म से ज्ञान रुकता है, गोम्मटसार में तो ये सब (कथन) आते हैं। आठ कर्म से ऐसा होता है और आठ कर्म से ऐसा होता है। यह तो निमित्त का ज्ञान कराने को (कहा है)। आहा!

यहाँ तो केवल ज्ञानस्वभाव, केवल ज्ञानमात्र। ज्ञानमात्र कहने से ज्ञान अकेला नहीं परन्तु ज्ञानमात्र कहने से दूसरे अविनाभावी गुण हैं, परन्तु ज्ञानमात्र कहने से राग को और पर को करता नहीं, इसके लिये मात्र कहा है। आहाहा! वह बोले नहीं, चले नहीं। आहाहा! दूसरे को शिक्षा दे नहीं, दूसरे से शिक्षा ले नहीं। लो, यहाँ तो यह आया? कल दोपहर को तो यह आया था कि गुरु के वचनों को पाकर... वह तो मात्र सुदृष्टि का उपदेश दिया, वह इसने ले लिया, सुदृष्टि को कर लिया, इतनी बात कहने के लिये की है।

यहाँ तो कहते हैं **केवल ज्ञानमात्रस्वभाववाला (-जानने का स्वभाववाला) होने से कर्म के बन्ध को...** करता नहीं, जानता है। शास्त्र में आवे कि चौथे गुणस्थान में इतनी प्रकृति (की) इतनी सत्ता होती है, इतना उदय होता है, इतना वेदन अन्दर वेदनयोग्य अर्थात् अनुभाग होता है परन्तु यह जाने। आहाहा! चौथे गुणस्थान में आठ प्रकृति में से आठ कर्म की इतनी प्रकृति होती है, इतनी छूटती है, इतनी बँधती है, इतनी सत्ता में रहती है। इतनी उदीरणा होती है, इतना उदय आवे, यह बात सब आवे परन्तु उसे जाने। आहाहा! अरे! नजदीक की चीज़ कर्म है, उसके उदय को भी जाने तो परचीज़ को यह करे और यह करना, (यह तो होगा कहाँ से)? आहाहा! आत्मा चले और आत्मा बोले और आत्मा पर के टुकड़े करे, पर का चूरा करे, मदद करे, पर से मदद ले, वह वस्तु के स्वरूप में नहीं है। आहाहा!

बन्ध को तथा मोक्ष को,... *आहाहा! ज्ञान तो मोक्ष को करता नहीं। आहाहा! बात बहुत ऊँची है। ३२० गाथा। बन्ध को करे और मोक्ष को करे, यह भी नहीं। बन्ध को भले न करे परन्तु मोक्ष को करे न? मोक्ष पूर्ण दशा (करे न)? कि नहीं। उस काल में वह पर्याय होती ही है, उसे*

करे क्या ? करे तो न हो, उसे करे। जिसकी स्थिति न हो, उसे करे, उसे किया कहा जाए, परन्तु जाननेवाले ज्ञानी को मोक्ष की पर्याय है – ऐसा जाने बस। है उसे जाने। आहाहा!

मोक्ष की पर्याय को भी करे नहीं क्योंकि उसमें भाव नाम का एक गुण है, जिस गुण के कारण दृष्टि जो द्रव्य पर पड़ी और द्रव्य का स्वीकार हुआ, वहाँ जो बन्ध का रागादि है... आहाहा! उसे वह करता नहीं। ***आहाहा! उस गुणस्थान में उसके प्रमाण में कर्म का उदय आवे और उदीरणा हो, उसे वह करता नहीं। आहाहा! अन्तिम हद है। ज्ञानस्वभाव! ज्ञानस्वभाव! बहुत ही खींचकर तू कहे तो जाने-देखे – ऐसा हम कहते हैं। वास्तव में तो पर का जानना-देखना, वह व्यवहार है। आहाहा!***

श्रोता : जानता नहीं, वह भी व्यवहार ?

पूज्य गुरुदेवश्री : यह पर को जानता है, वह भी व्यवहार। करे और वेदने की तो बात ही नहीं। स्वयं अपने को जानता है, यह निश्चय। आहाहा! परन्तु कहते हैं कि तू बहुत ले जा तो देखे-जाने इतने तक रख। आहाहा!

आत्मतत्त्व ज्ञानस्वरूपी भगवान, वह मोक्ष को करे भी नहीं। आहाहा! पुरुषार्थ कहाँ गया वहाँ ? कहते हैं कि वह जाने, यही उसका पुरुषार्थ है। जाने कि यह हुआ मोक्ष। उस समय उस काल में वही पर्याय शुभभाव के कारण (होती ही है)। शुभभाव का स्वभाव है, शुभ-अशुभ आदि हैं न ? उसके कारण पर्याय होती ही है। करूँ तो होती है, विकल्प करूँ तो होती है,... करूँ तो होती है... आहाहा! ऐसा स्वरूप नहीं है।

वह बन्ध को करता नहीं और मोक्ष को भी करता नहीं। आहाहा! क्योंकि मोक्ष की पर्याय उस काल में वह होनी ही है। होनी ही है, उसे करे तो होनी है, होती है, होती है, होती है, उसे करता है अर्थात् क्या ? आहाहा! ज्ञान प्रभु पर्याय होती है अथवा है, है उसे करना क्या ? मोक्ष की पर्याय है। जाननेवाले को वह मोक्ष की पर्याय वहाँ है। है उसे करना क्या ? आहाहा! सत्... सत् को करना क्या ? तो है वह नहीं हो ऐसा हो जाये। मोक्ष की पर्याय भी उस काल में होती है, वही उसका स्वभाव है। द्रव्यदृष्टि हुई इससे उसके अन्तर में गुण में ऐसा भाव नाम का गुण है कि वह पर्याय होती ही है। भाव नाम का गुण है कि वह मोक्ष की पर्याय उस काल में होती ही है। आहाहा! शुद्ध।

उस भाव नामक गुण के कारण, पूरी द्रव्यदृष्टि हुई है, इसलिए वह मोक्ष की पर्याय होती है, होती है। होती है, उसे करता हूँ – ऐसा कैसे आवे ? कहते हैं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है। उस-उस काल में वह पर्याय होती ही है अथवा है, अथवा सत् है, सत् है। आहाहा! सत् है, उस सत् को करे ? आहाहा! ऐसी बात है। अभी तो लोग कहीं बाहर में (धर्म) मानकर, मनवाकर (रुक

गये हैं)। यहाँ तो प्रभु ज्ञानस्वभाववाला होने से उस समय में मोक्ष की पर्याय होती है, होती है, उसे करता है – यह तो विरुद्ध हुआ। है उसे करता है, यह तो विरुद्ध है। आहा! है उसे जानता है। आहाहा! यह वस्तु का स्वरूप है।

बन्ध को तथा मोक्ष को,... आहाहा! इसी प्रकार **कर्म के उदय को...** उदय भी है। उदय है, उसे जानता है। इस ज्ञान में रहकर अपने को और उदय को द्विरूपतारूप से जानता है। इतना भले कहे। उदय को जानता है, इतना कहें। इसके अतिरिक्त दूसरा तो कोई (सम्बन्ध) है ही नहीं। यहाँ तक आया कि उदय को जानता है, बस! इतनी बात ज्ञान को सिद्ध करके, जाननेवाला आत्मा है इस अपेक्षा से। आहाहा! **उदय को तथा निर्जरा को...** आहाहा! आत्मा निर्जरा को करता नहीं। क्यों? कि उस समय अशुद्धता टलती है, शुद्धता बढ़ती है, कर्म खिरते हैं, ये निर्जरा के तीन प्रकार हैं। बाह्य कर्म खिरना एक प्रकार; अशुद्धता का गलना एक प्रकार और शुद्धता का बढ़ना एक प्रकार। इस समय कहते हैं वे तीन हैं। एक समय में तीनों हैं। हैं उन्हें करे क्या? आहाहा! सूक्ष्म बात है। आहाहा! इस सोने को या हीरे को घिसे (तो कहते हैं कि) वह पर्याय तो वहाँ है। अब है उसे यह करे, उसका अर्थ क्या? नहीं, उसे करे – ऐसा होता है, परन्तु वह पर्याय वहाँ है ही। आहाहा!

सत् निर्जरारूप पर्याय है। यहाँ शुद्धता की वृद्धि वह निर्जरा; अशुद्धता का गलना वह भी निर्जरा और कर्म का (खिरना वह भी) निर्जरा है परन्तु वास्तव में तो शुद्धता का बढ़ना (वह निर्जरा है)। परन्तु यहाँ कहते हैं कि शुद्धता का बढ़ना, वह भी उस काल में है। आहाहा! निर्जरा के प्रकार तीन, उनमें वास्तव में तो शुद्धता का बढ़ना, वह निर्जरा है। अशुद्धता का गलना, वह तो व्यवहारनय से है और कर्म का टलना, वह तो असद्भूत व्यवहारनय से है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो शुद्धता का बढ़ना, वह भी उस समय में वह है, बढ़ना वह है। आहाहा! शुद्ध उपयोग से वहाँ बढ़ता है, वह उस समय में है। है उसे करना क्या? आहाहा!

श्रोता : उत्पन्न होता है, यह भी नहीं लेना?

पूज्य गुरुदेवश्री : उत्पन्न होता है, उसे करता नहीं। यह बात तो ऐसी है। यह बात तो सिद्ध की है। उत्पन्न होता है न? वह उत्पन्न होता है न? है, उसे उत्पन्न होता है (उसे) करना? सूक्ष्म बात है भाई! आहाहा! जो मोक्ष उत्पन्न होता है.. अरे! निर्जरा भी उत्पन्न होती है। आहाहा! उत्पन्न होती है, उसकी अस्ति तो है। अस्ति है, उसे करना है? सूक्ष्म बात है। आहा!

निर्जरा को... भाषा कैसी की है? **केवल ज्ञानमात्रस्वभाववाला होने से...** यह वहाँ लिया। यहाँ लिया **मात्र जानता ही है।** अन्तिम, **मात्र जानता ही है।** उस निर्जरा को भी करता है.. होती है, वहाँ करता है यह किस प्रकार? मोक्ष भी होता है, उस समय में सत है उस रूप वह क्रमबद्ध के... क्रमबद्ध से उठाया है न यह सब? मोक्ष की पर्याय क्रमसर के काल में होती है, उसे करना

क्या ? निर्जरा के काल में निर्जरा-शुद्धि की वृद्धि है, उसे करना क्या ? आहाहा! ऐसी बात है। उसके बदले यहाँ तो कहते हैं पर का करना, पर को सहायता करना, मदद करना, सबको साथ रखने के लिए एक-दूसरे को मदद करो तो शान्ति से रहा जा सके। आहाहा। इस प्रकार लोगों को ऐसा बाहर से मीठा लगता है। पराधीनता की दृष्टि है न! आहाहा! यहाँ कहते हैं वह तो दृष्टि विरुद्ध है।

यहाँ तो सत् है, जैसे त्रिकाली ज्ञानस्वभाव सत् है, जैसे त्रिकाली आत्मा सत् है उसे क्या करना ? इसी प्रकार वह वह पर्याय उस काल में वह सत् ही है। आहा! दोनों सत् है। वस्तु त्रिकालीरूप सत् है, निर्जरा और मोक्ष, वह भी उस काल के समयरूप से वे सत् हैं। हैं उन्हें करना क्या ? आहाहा! गजब बात की है।

सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार है न ? और वह भी—उसे जानने की पर्याय भी वास्तव में निर्जरा को, मोक्ष को जानती है—ऐसा कहा; करता है - ऐसा नहीं कहा परन्तु फिर भी ***निर्जरा के, मोक्ष के काल में वह ज्ञान की पर्याय भी उस प्रकार से वहाँ होनी ही है। मोक्ष को, निर्जरा को जाने—ऐसी ही पर्याय उस काल में होनी है। आहाहा! जरा सूक्ष्म है। निर्जरा और मोक्ष की पर्याय तो है। है उसे भले जाने—ऐसा कहना परन्तु जानने की पर्याय भी उस काल में है।*** आहाहा! तथापि इतना कहे कि पर को जानता है, इतना कहो। वह पर को जानता है, उस प्रकार ही है। वह ज्ञान की पर्याय जो सर्वविशुद्धज्ञान है, वह पर को जानती है, उस प्रकार ही वह है। यह पर है, इसलिए पर को जानती है - ऐसा भी नहीं है। आहाहा! ऐसा मार्ग है।

सत् को सत्‌रूप से सिद्ध करते हैं। है, सत् है। आहाहा! इतना कहते हैं कि जानती है, परन्तु जानती है, वह भी पर्याय सत् है। उसी प्रकार से उसी समय में उसे जानना—ऐसी ही पर्याय वह है, उसे जाने; इसलिए वह पर्याय उसे जानती है, वह भी व्यवहार है। आहाहा! ***वह जानने की पर्याय भी उस काल में क्रमसर में उसे जाने—ऐसा स्वयं अपनी पर्यायरूप से है। आहाहा!*** बहुत सूक्ष्म है। आहाहा!

चारों बोल लिये हैं। बाकी क्या रखा ? बन्ध और मोक्ष। आहाहा! द्रव्यबन्ध से तो भिन्न है परन्तु भावबन्ध को भी उसी प्रकार से वह वहाँ जानता है। राग बँधता है, राग होता है, उस-उस काल में वह होता है और उस-उस काल में जानने का काम वह ज्ञान की पर्याय उस काल में स्वयं से करती है। आहाहा! वह राग और बन्ध है, इसलिए उसकी अपेक्षा रखकर जानने की पर्याय होती है, यह व्यवहार है। समझ में आया ?

जानने की पर्याय होती है। आहाहा! अनन्त गुणों को, अनन्त पर्यायों को, मोक्ष-निर्जरा आदि, उदय आदि को उस समय में वह ज्ञान की पर्याय उन्हें उस प्रकार से जाने, उस प्रकार से ही

स्वयं उत्पन्न होती है। इस प्रकार स्वयं अपने से स्वतन्त्र उत्पन्न होती है। आहाहा! अब यहाँ बाहर के लोगों को अटकना, इसे करना और... एक जगह सुना था। पचास पण्डित इन्दौर में एकत्रित हुए थे। उस समय यहाँ के विरोध की यह चर्चा रखी कि - पर का कर्ता न माने वह दिगम्बर जैन नहीं है। आहा! अरे! प्रभु! क्या करते हो? आहाहा!

कर्ता तो नहीं और वास्तव में तो उसका जाननेवाला भी नहीं। जाननेवाला जाननेवाले को जानते हुए, जाननेवाले को, जाननेवाले को, जानने की पर्याय सत् उत्पन्न होती है। परन्तु इतना व्यवहार यहाँ सिद्ध करना है कि उस मोक्ष को, निर्जरा को, जानता है। जानने की पर्याय और मोक्ष तथा बन्ध की पर्याय और निर्जरा की (पर्याय) भिन्न हैं। अनन्त पर्यायें एक समय में होती हैं। अनन्त गुण की अनन्त पर्यायें अक्रम से, अक्रम से एक साथ होती हैं। आहाहा! निर्जरा की पर्याय को, मोक्ष की पर्याय को भी उस समय की पर्याय होती है, वह जानती है-ऐसा कहने में आता है। आहाहा! सूक्ष्म तो है थोड़ा। ३२० (गाथा)।

श्रोता : जानने की पर्याय का भी कर्तापना नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : जानना वह भी करना, जानने का करूँ, जानने का करूँ-यह भी नहीं। वह जानने की पर्याय भी उस काल में सत्‌रूप से है और होती है। आहाहा! ऐसा है। पूरी दुनिया में मैं करूँ, मैं करूँ, पूरे दिन यह धन्धा मैंने किया और इसे मैंने किया और इसे मैंने किया, मैंने इन्हें सम्हाला, लड़कों को बड़ा किया, पाल-पोसकर पढ़ाकर (बढ़ा किया)। सब गप्प है, यह तो कहते हैं। आहाहा!

जहाँ अपनी निर्जरा और मोक्ष की पर्याय... आहाहा! उसे भी जानने का काम (करे), करने का नहीं, जानने का काम करे। आहाहा! उस पर के रजकण को या पर के स्कन्ध को कुछ पलटावे, बदलावे (-ऐसा नहीं)। आहाहा! आत्मा रोटी कर सके, लड्डू बाँध सके, यह तो है ही नहीं, कहते हैं। आहाहा! ऐसा सिद्ध करना है कि उस समय में उसका सत् है, उस प्रकार से तो होता है। वह सत् है, उसमें तेरे हेतु की उसे क्या आवश्यकता है? इतना रख कि तू ज्ञान है और वह ज्ञान नहीं। इसलिए जानने का काम करे। आहाहा! ऐसा मार्ग है। कहाँ ले जाना इसे!

यहाँ कहते हैं एकेन्द्रिय की दया पालो, दोइन्द्रिय की दया पालो, त्रीइन्द्रिय की दया पालो, चौइन्द्रिय-पंचेन्द्रिय की (दया पालो)! आहाहा! हिंसा न करो, ये सब व्यवहार के वचन हैं। आहाहा! उस समय में हिंसा होनी ही नहीं थी। आहाहा! उसे ज्ञान जानता है। आहाहा! वह ज्ञान भी हिंसा होनी नहीं थी, यह अपेक्षा रखकर ज्ञान उत्पन्न हुआ है - ऐसा भी नहीं है। अनन्त पर्याय एक समय में उत्पन्न होती है, उनमें एक पर्याय को दूसरी पर्याय की भी अपेक्षा नहीं है। आहाहा! ऐसा उसका सत्स्वरूप है।

३२० गाथा.. आहाहा ! भाई ने रखा है न ? जयसेनाचार्य की टीका में कि भाई ! योगीन्द्रदेव भी ऐसा कहते हैं कि आत्मा, बन्ध और मोक्ष को करता नहीं। एक गाथा रखी है न ? है न इसमें है या नहीं ? श्री योगीन्द्रदेव ने भी कहा है कि '...' जिनवर—तीन लोक के नाथ जिनेश्वर ऐसा कहते हैं। दूसरी भाषा क्या कहलाती है ? कहते हैं—ऐसा कहना (पड़ता है)। वाणी, वाणी के कारण आती है परन्तु उस वाणी के निमित्त हैं, इसलिए कहते हैं – ऐसा कहने में आता है। वाणी है, तो भूतार्थ उस समय उसकी पर्याय है, योग्यता से वह वाणी आती है। भगवान हैं, इसलिए आती है-ऐसा भी नहीं। आहाहा ! परन्तु भाषा क्या कही जाये ? बड़े का नाम देना हो तब (ऐसा कहे) '...' हे योगी ! योगी अर्थात् योग को आत्मा में जोड़नेवाले ***आहाहा! परमार्थ से जीव उत्पन्न भी नहीं होता, परमार्थ से जीव, निर्जरा और मोक्षरूप भी उत्पन्न नहीं होता और मरता भी नहीं। आहाहा! और बन्ध-मोक्ष को करता नहीं। ऐसा श्री जिनवर कहते हैं।*** दृष्टान्त जिनवर का दिया, जिनवर ऐसा कहते हैं। बन्ध और मोक्ष को करता नहीं-ऐसा जिनवर कहते हैं। आहा !

इसका अर्थ इतना कि आत्मा जो स्वभाव है, उस ओर जहाँ जानने का लक्ष्य हुआ, (वहाँ) सब छूट गया, बस ! फिर जो है, वह जाने। उस निर्जरा को जाने, मोक्ष को जाने, साधक के समय निर्जरा को जाने, साध्य के समय मोक्ष को जाने। आहाहा ! वह जानने की पर्याय भी वैसी ही, स्वयं, उस काल में, उस प्रकार की, स्वयं से उत्पन्न होती है। आहाहा ! ***जानने की पर्याय भी बन्ध को, मोक्ष को, निर्जरा को, उदय को-जिनवर कहते हैं कि आत्मा करता नहीं, जानता ही है। जानता है, वह ज्ञान की पर्याय भी उस काल में, उस प्रकार से अपना उत्पन्न होने का काल था तो हुई है। आहाहा! कठिन काम है जरा!***

इसमें ऐसा आया है कि एकदेश शुद्धनयाश्रित यह भावना... यह भावना अर्थात् ज्ञान की पर्याय आदि, श्रद्धा की पर्याय, चारित्र की पर्याय जो भावनारूप प्रगट हुई, वह आंशिक शुद्धिरूप परिणति है। वह निर्विकार स्वसंवेदन लक्षण क्षायोपशमिक ज्ञानरूप होने से... वह क्षायोपशमिक ज्ञान है। वस्तुरूप से भले श्रद्धा उपशमरूप हो, क्षयोपशमरूप हो, क्षायिकरूप हो परन्तु उसे जाननेवाला ज्ञान क्षयोपशमज्ञान है, उसे जाननेवाला यहाँ अभी क्षायिकज्ञान नहीं है। क्या कहा समझ में आया ? आहाहा ! परमार्थ से जीव उपजता भी नहीं अर्थात् किसमें ? पर्याय में उपजता नहीं और पर्याय को व्यय करता नहीं। आहाहा !

प्रवचनसार में १०१ गाथा में ऐसा कहा कि जो पर्याय उत्पन्न होती है, उसे ध्रुव की अपेक्षा नहीं है। जानने की अपेक्षा से यहाँ जानती है। यह ऐसा ज्ञेय आया, इसलिए यहाँ ज्ञान ऐसा होता है-ऐसी अपेक्षा नहीं है। जानने के ज्ञान ने जो ज्ञात होने योग्य बराबर सामने आया; इसलिए उसे यहाँ जानती है, इतनी अपेक्षा से ज्ञान की उत्पत्ति हुई – ऐसा भी नहीं है। आहाहा ! यह यहाँ कहा, देखो न ! आहा !

एकदेश व्यक्तिरूप है। क्षयोपशमज्ञान की अपेक्षा से... भले क्षायिकसमकित हुआ परन्तु ज्ञान की अपेक्षा से क्षयोपशमज्ञानरूप हुआ तो भी ध्याता पुरुष ऐसा भाता है कि सकल निरावरण अखण्ड... आहाहा! भगवान आत्मा सकल निरावरण, सकल निरावरण-पूर्ण निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय है। अखण्ड है और एकरूप है। प्रत्यक्ष प्रतिभासमय (अर्थात्) ज्ञान में प्रत्यक्ष प्रतिभासमय दिखता है, ज्ञात होता है-ऐसा है। अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण शुद्धपारिणामिक सहज स्वभाव लक्षण निज परमात्मद्रव्य.. आहाहा! निज परमात्मद्रव्य वह मैं हूँ; पर तो नहीं, राग नहीं, पर्याय नहीं। आहा!

पर्याय ऐसा जानती है कि सकल निरावरण अखण्ड एक ज्ञानस्वरूप अविनश्वर परम पारिणामिकभाव लक्षण निज परमद्रव्य-परमात्मद्रव्य वह मैं हूँ। पर्याय कहती है कि मैं पर्याय हूँ - ऐसा भी नहीं। आहाहा! ऐसी बात है। निज परमात्मद्रव्य, वही मैं हूँ, वही मैं हूँ। जो सकल निरावरण है, वही मैं हूँ, एकान्त कर दिया। कथंचित् ऐसा और कथंचित् वैसा नहीं रखा।

जो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय। आहा! ज्ञान की पर्याय में उतना ही पूरा भासित होता है। आहाहा! उस प्रत्यक्ष ज्ञान में ज्ञात हो, ऐसा भगवान आत्मा अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य वही मैं हूँ, परन्तु ऐसा नहीं भाता कि खण्ड ज्ञान मैं हूँ। क्षयोपशमज्ञानरूप भी मैं हूँ - ऐसा नहीं भाता-ऐसा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो कहा कि क्षयोपशमज्ञान में या क्षायिकज्ञान में ज्ञात होता है। जो है, वैसा ज्ञात होता है परन्तु फिर भी धर्मी क्षयोपशमज्ञान को भी नहीं भाता। उसकी दृष्टि द्रव्य पर होती है। आहाहा! ३२० गाथा वँच गयी है। बहुत व्याख्यान हो गये हैं। यह तो योगीन्द्रदेव ने भी ऐसा कहा है कि '...' आहाहा!

अकेला ज्ञानस्वरूप भगवान पूर्णानन्द का नाथ पूर्ण ज्ञान, उसे ज्ञानप्रधान से पूरे आत्मा को लिया। क्योंकि ***उस पर्याय में अनन्त पर्याय और द्रव्य-गुण ज्ञात होते हैं। उस पर्याय को भी उत्पन्न करता हूँ - ऐसा नहीं है। आहाहा! वह भी उस काल में है; है उसे भी मैं जानता हूँ। आहाहा! ऐसा यहाँ कहा।***

बन्ध को, मोक्ष को, कर्म के उदय को, निर्जरा को केवल जानता है। निर्जरा को भी करता नहीं, मोक्ष करता नहीं। गजब बात है! उसके बदले यहाँ तो (कहते हैं) पर का करना, दया पालना, पर की दया पालना, और पर को मदद करना और पर को सहायता करना। अत्यन्त तत्त्वविरुद्ध है परन्तु अब क्या हो? विशेष कहेंगे....

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

(२०) श्री समयसार, गाथा १०९ से ११२, श्लोक ६३ प्रवचन नं. २०९
दिनांक ०२-०७-१९७९

श्री समयसार कलश ६३ –

(वसन्ततिलका)

जीवः करोति यदि पुद्‌गलकर्म नैव,
कस्तर्हि तत्कुरुत इत्यभिशंकयैव।
एतर्हि तीव्र-रय-मोह-निवर्हणाय,
संकीर्त्यते शृणुत पुद्‌गल-कर्म-कर्तृ ॥६३॥

'यदि पुद्‌गलकर्म जीवः न एव करोति' शिष्य का प्रश्न है। समझने का इच्छुक है, इसलिए उससे सुन ऐसा कहेंगे। **'शृणुत'** कहा न? **'शृणुत'** सुन! **पुद्‌गलकर्म को जीव नहीं करता। यदि पुद्‌गलकर्म को जीव नहीं करता तो फिर उसे कौन करता है? 'इति अभिशंकया एव' ऐसी आशंका करके,...** आशंका अर्थात् शंका नहीं परन्तु मुझे समझ में नहीं आया–इसका नाम आशंका है। शंका अर्थात् तुम्हारा कहना खोटा है – ऐसी शंका, वह नहीं। आशंका कही है। हमें यह कैसे है, क्या है, यह समझ में नहीं आता। **ऐसी आशंका करके,... 'तीव्र-रय-मोह-निवर्हणाय' तीव्र वेगवाले मोह का (कर्तृकर्मत्व के अज्ञान का) नाश करने के लिए,...** आहाहा!

यह कहते हैं कि–'पुद्‌गलकर्मकर्तृ संकीर्त्यते' पुद्‌गलकर्म का कर्ता कौन है; 'शृणुत' शब्द आया है न इसमें, लो! **वन्दितु** में नहीं आया, **वोच्छामि** आया है। पहली गाथा। कहूँगा, यहाँ तो सुन, यह आया है। क्योंकि वस्तु है न? आत्मा, वह द्रव्य है, वह कर्ता नहीं – ऐसा सिद्ध करना है। द्रव्य तो शुद्ध है। आहा! वह कर्ता राग का या कर्म का, गुणस्थान का कर्ता वह है ही नहीं। आहाहा! जिसकी दृष्टि में मिथ्यात्व गया है, वह तो ठीक परन्तु मिथ्यात्व हो तो भी कहते हैं कि द्रव्यस्वभाव है, उन मिथ्यात्वादि गुणस्थान को कर्म करता है, आत्मा नहीं। आहाहा! यह कहते हैं देखो!

'शृणुत' इसलिए (ये ज्ञान के इच्छुक पुरुषों!) इसे सुनो। आहा!

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा।।१०९।।

तेसिं पुणो वि य इमो भणिदो भेदो दु तेरसवियप्पो।
मिच्छादिट्ठी आदी जाव सजोगिस्स चरमंतं।।११०।।

एदे अचेदणा खलु पोग्गलकम्मुदयसंभवा जम्हा।
ते जदि करेंति कम्मं ण वि तेसिं वेदगो आदा।।१११।।

गुणसण्णिदा दु एदे कम्मं कुव्वंति पच्चया जम्हा।
तम्हा जीवोऽकत्ता गुणा य कुव्वंति कम्माणि।।११२।।

सामान्य प्रत्यय चार, निश्चय बन्ध के कर्ता कहे।
–मिथ्यात्व अरु अविरमण, योग कषाय ये ही जानने।।१०९।।

फिर उनहि का दर्शा दिया, यह भेद तेर प्रकार का।
–मिथ्यात्व गुणस्थानादि ले, जो चरमभेद सयोगिका।।११०।।

पुद्गलकरम के उदय से, उत्पन्न इससे अजीव वे।
वे जो करें कर्मों भले, भोक्ता भि नहिं जीवद्रव्य है।।१११।।

परमार्थ से 'गुण' नाम के, प्रत्यय करे इन कर्म को।
तिससे अकर्ता जीव है, गुणस्थान करते कर्म को।।११२।।

टीका : वास्तव में पुद्गलकर्म का, पुद्गलद्रव्य ही एक कर्ता है;.. आहाहा!

श्रोता : पुद्गलद्रव्य....

पूज्य गुरुदेवश्री : वह दूसरी जाति। ये तेरह गुणस्थान के अचेतन परिणाम हैं। ये सब अचेतन पुद्गल हैं–ऐसा यहाँ सिद्ध करना है। भगवान आत्मा में ये कहाँ हैं? यह तो ६८ गाथा में आ गया है। गुणस्थान आत्मा में नहीं है।

पुद्गलकर्म का, पुद्गलद्रव्य ही एक कर्ता है;... एक बात। **उसके विशेष...** चार हैं। एक तो पुद्गल, उसके विशेष चार। **मिथ्यात्व, अविरति, कषाय और योग बन्ध के सामान्य हेतु होने से चार कर्ता हैं;...** पहले एक कर्ता है कहा, पश्चात् उसके चार भेद किये। **वे ही भेदरूप किये जाने पर...** उन चार के भेद करने पर, एक के चार और चार के तेरह। आहाहा! **(अर्थात् उन्हीं के भेद करने पर), मिथ्यादृष्टि से लेकर सयोगकेवली पर्यन्त तेरह कर्ता है।** आहाहा! यहाँ तो उन्हें यहाँ तक समझाना है कि भाई! द्रव्य है न, जो शुद्ध चैतन्यद्रव्य, उसका लक्ष्य कर तो यह मिथ्यात्व है, वह सब नाश हो जायेगा, ये सब कर्ता हैं, वह कर्तापना तुझमें नहीं रहेगा। आहाहा!

चैतन्य शुद्ध द्रव्य है, उसमें मिथ्यात्व से लेकर तेरह गुणस्थान वे उसके स्वरूप में नहीं हैं। वे तो पुद्गल कर्म के कारण होने से चार और तेरह भेद पड़े हैं। वह पुद्गलकर्म करता है तो

करो, तुझे क्या है ? आहाहा! ऐसा कहकर जीव शुद्ध द्रव्य है, वह सिद्ध करना है। शुद्ध जीवद्रव्य है, वह इनका कर्ता नहीं। आहाहा! तेरह हैं वह.. आया न ?

अब, जो पुद्गलकर्म के विपाक के प्रकार होने से... अब तेरह तो नाम दिये। पहला पुद्गलकर्म बन्ध का कारण कहा, उसके चार भेद कहे-मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और योग; उसके तेरह भाग सयोगीकेवली तक। **जो पुद्गलकर्म के विपाक के प्रकार होने से...** तेरह प्रकार तो पुद्गलकर्म का पाक है। उसमें भगवान आत्मा के आनन्द का पाक नहीं है। आहा! अभी इन्होंने इसकी अशुद्ध पर्यायें हैं, वे सब पुद्गल में डाल दी है। है ?

कहते हैं कि **जो पुद्गलकर्म के विपाक के प्रकार होने से अत्यन्त अचेतन हैं...** यह तेरह गुणस्थान अचेतन हैं। यह तो ६८ गाथा में आ गया है। जड़ है, वह करे तो करो। चैतन्य भगवान आत्मा आनन्द का नाथ प्रभु! आहाहा! यहाँ तो मिथ्यात्व से लिया है। समकित हो और बन्ध न पड़े, (वह तो बराबर), परन्तु यहाँ तो मिथ्यात्व (लिया है)। यह वस्तु का स्वरूप, वस्तु ऐसी बनी हुई है, वस्तु ऐसी शुद्ध चैतन्यघन है कि मिथ्यात्व आदि भी उसमें नहीं है। वह सब पुद्गलकर्म के विपाक का फल मिथ्यात्व आदि है-ऐसा कहते हैं। आहाहा! क्या कहा ? सम्यग्दर्शन के पश्चात् तो ऐसा कहते हैं कि भाई! वे अचेतन हैं और अचेतन वह कर्ता है परन्तु यहाँ तो अभी मिथ्यात्व से लेकर कहा है। ***मिथ्यात्व है, वह पुद्गलकर्म के विपाक का फल है। तेरे आत्मा में से विपाक हो, मिथ्यात्व हो-ऐसी वस्तु नहीं है। आहाहा! समझ में आया ?*** उसे शुद्ध की दृष्टि करानी है। वस्तु शुद्ध है। मिथ्यात्व, वह भी पुद्गलकर्म के विपाक का फल है; वह चैतन्य का फल नहीं है। आहाहा! शुद्ध जाने वह शुद्ध को अनुभव करे, अशुद्ध जाने वह अशुद्ध को पावे, आता है या नहीं ? आहाहा! बहुत सूक्ष्म!

वस्तु है, द्रव्य जो वस्तु है, वह तो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निजपरमात्मद्रव्य है। आहाहा! वह द्रव्य कर्म को कहाँ करे ? उसकी पर्याय के भेद पड़ते हैं, पर्याय के भेद, वे भी पुद्गलकर्म का पाक है - ऐसा कहते हैं। आहाहा! मिथ्यात्व है, वह भी दर्शनमोह का पाक है; अव्रत है, वह चारित्रमोह का पाक है। वे सब कर्म के पाक के तेरह भेद हैं। आहाहा! सूक्ष्म बात है जरा अन्दर। यहाँ तो इससे भी आगे ले जायेंगे।

जो पुद्गलकर्म के विपाक के प्रकार होने से... कौन ? मिथ्यात्व से लेकर संयोगी-तेरह गुणस्थान, वे कर्म के **विपाक के प्रकार होने से अत्यन्त अचेतन हैं...** सयोगी गुणस्थान अचेतन हैं। गुणस्थान है न ? आहाहा! चैतन्यमूर्ति भगवान पूर्ण स्वरूप परमपारिणामिक स्वभाव... आहाहा! उसमें वह कहाँ है ?

जो पुद्गलकर्म के विपाक के प्रकार होने से अत्यन्त अचेतन हैं–ऐसे तेरह कर्ता... हैं। ये तेरह—मिथ्यात्व, सासादन, मिश्र, अविरति, विरताविरति, विरति, सप्तम, आठ, नौ, दस, ग्यारह, बारह, तेरह **अचेतन हैं ऐसे तेरह कर्ता...** अचेतन ऐसे ये तेरह कर्ता। पुद्गलकर्म के पाक ऐसे जो अचेतन तेरह गुणस्थान। आहाहा! **केवल व्याप्यव्यापकभाव से यदि कुछ भी पुद्गलकर्म को करें तो भले करें;...** आहाहा! अर्थात् ? केवल व्याप्यव्यापकभाव से (अर्थात्) ये व्यापक होकर नया कुछ कर्म–व्याप्य बँधे तो वह उसमें जाता है। व्याप्यव्यापक उसमें (जाता है)। वास्तव में तो पर में—प्रत्येक द्रव्य का व्यापक द्रव्य है और पर्याय व्याप्य है, वह यहाँ नहीं लेना।

यहाँ तो यह कहते हैं कि तेरह गुणस्थान जो हैं, वे व्यापक हैं और नये कर्म बाँधते हैं, वह व्याप्य है। वह कर्म व्यापक है और नया कर्म, वह व्याप्य है। तेरह गुणस्थान हैं, वे तो कर्म के पाक का फल है। अब यह कहते हैं कि नये कर्म बाँधने में भले वे बाँधें। व्याप्यव्यापक होकर, वह विकारी भाव है वह पसर कर भले नये कर्म–व्याप्य को बाँधे–ऐसा यहाँ सम्बन्ध लेना है। आहा! नहीं तो, व्याप्यव्यापक भाव तो एक द्रव्य में (होता है)। कर्ता, वह व्यापक; कर्म / कार्य, वह व्याप्य – ऐसा होता है। परन्तु यहाँ तो एकदम अत्यन्त शुद्ध वस्तु लेनी है। चैतन्यद्रव्य लेना है। द्रव्य (चैतन्यस्वरूप) है। तेरह गुणस्थान अचेतन हैं, चैतन्य नहीं। तेरह गुणस्थान अचेतन हैं, चैतन्य नहीं। आहाहा!

आत्मा का जो चैतन्यस्वभाव है, वह स्वयं तेरह गुणस्थान को कैसे करे ? वे (गुणस्थान) तो अचेतन हैं। उन्हें तो करे नहीं परन्तु नया कर्म बाँधे, वह कहाँ है ? अचेतन गुणस्थान ही जहाँ चैतन्य के नहीं, वे तो नये बाँधे वह तो वहाँ रहा नहीं। थोड़ी देर क्यों कहा है ? कि जिसे यह सुनने की इच्छा थी और शुद्धद्रव्य के ऊपर आश्रय करने का भाव हो, उसे कोई मिथ्यात्वादि हों तो भी अल्पकाल में मिट जायेंगे, सब टल जायेगा। आहाहा!

करें तो भले करें;... ये तेरह गुणस्थान पुद्गल हैं, वे नये कर्म को करे तो करो। ऐसा कहते हैं। आहा! **ऐसे तेरह कर्ता ही केवल व्याप्यव्यापकभाव से यदि कुछ भी पुद्गलकर्म को करें तो भले करें; इसमें जीव का क्या आया?** जो द्रव्य है, वह तो शुद्ध चैतन्यघन, आनन्दकन्द प्रभु है। वह नया कर्म बँधा तो यह तो कहते हैं, वह गुणस्थान के कारण नया बँधा है। वह व्याप्यव्यापक उसमें गया। आत्मा कहीं उसमें आता नहीं। आहाहा! आत्मा तो तेरह अचेतन गुणस्थान में आता नहीं तो फिर नये बन्धन में तो कैसे (करे) ? आहाहा! सूक्ष्म है, जरा अटपटा है।

जयसेनाचार्य ने इसमें लिखा है न ? हल्दी और फिटकरी, लाल रंग दो से होता है, एक से नहीं होता – ऐसा लिखा है। ऐसे कि लड़का एक से नहीं होता, दो जनें हों–आदमी और स्त्री। ऐसे दो का पुत्र है, एक का पुत्र नहीं। ऐसा कहकर यहाँ पुद्गलकर्म का कार्य है – ऐसा उन्हें

बताना है। चैतन्य की पर्याय है, उसकी योग्यता परन्तु पुद्गल शामिल है, तब वह कार्य हुआ है – ऐसा कहते हैं। वह उस टीका में है। आहाहा!

तेरह कर्ता ही... वापिस है। मिथ्यात्व सासादन, मिश्र, अविरति सम्यग्दृष्टि, विरताविरति श्रावक और विरति मुनि, अप्रमत्त सातवाँ (गुणस्थान) आदि तेरह, ये तेरह गुणस्थान अचेतन हैं। यह ६८ (गाथा) में आ गया है। जौ से जौ होता है – ऐसा आ गया है। पुद्गल से पुद्गल होता है। जो **पुद्गलकर्म के विपाक के प्रकार होने से अत्यन्त अचेतन हैं ऐसे तेरह कर्ता ही केवल...** इसमें ले, देखा? कर्म के कारण यह गुणस्थान हुआ। यहाँ दूसरी बात है।

यह सब पुद्गल है। इस अपेक्षा से, अन्य अपेक्षा लेने जाये तो पर्याय तो इसकी है और स्वयं क्रमबद्ध में की है परन्तु इसके स्वरूप में नहीं है। ***जिसे स्वरूप का लक्ष्य करना है, उसे भले मिथ्यात्व आदि हो, तथापि स्वरूप के लक्ष्य से वे सब तेरह कर्ता हैं और स्वयं ज्ञाता हो जाता है। इसलिए मिथ्यात्व मिट जाता है और अन्य भी टल जाता है। आहाहा! सूक्ष्म बात है।***

इसमें जीव का क्या आया? पुद्गलकर्म को करे पुद्गल तो करो, तेरह के तेरह व्याप्यव्यापक से, कर्ता-कर्म से (करे तो करो)। ठीक! आहाहा! तेरह गुणस्थान कर्ता और नया बँधता है, वह उनका कर्म। आहाहा! यह थोड़ी देर चले। वस्तु जो ऐसी पूर्ण है, उसके ऊपर जो इसका लक्ष्य गया... आहाहा! तो उसे ये तेरह गुणस्थान कर्ता होकर करे परन्तु जीव का क्या आया? जीव तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति है। उसका आश्रय बढ़ने से लक्ष्य वहाँ होगा तो यह मिथ्यात्वादि भी मिट जायेंगे। ये तेरह गुणस्थान टल जायेंगे और तेरह गुणस्थान इसमें नहीं रहेंगे। आहाहा! मिथ्यात्व भी नहीं रहेगा। शुद्धद्रव्य क्या करे? जब इसे द्रव्य बैठे-ऐसा कहना है। चैतन्य शुद्धद्रव्य वस्तु है, वह तो सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय—ऐसा द्रव्य है, उसका जिसे लक्ष्य होता है, उसे भले कहते हैं कि यह तेरह हैं, वे भले करें थोड़े बहुत काल, परन्तु उसमें जीव को क्या आया? आहाहा! समझ में आया?

सम्यग्दृष्टि तो कर्ता नहीं, गुणस्थान का भी कर्ता नहीं। वैसा यह है, इसके गुणस्थान हैं, उन्हें अचेतन कहकर, कर्म का पाक गिनकर, जीवद्रव्य का स्वभाव है, उसका वह पाक कहाँ है? भगवान तो आनन्दमूर्ति प्रभु है, अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है। आहा! सुख समुद्र, स्तुति में नहीं आया था? 'गुण भरियो सुख दरियो' आहा! अतीन्द्रिय आनन्द का दरिया है। स्तुति में आया था, स्तुति में। 'गुण भरियो सुख दरियो।' आहाहा!

इस पैसे-वैसे में सुख नहीं ऐसा कहते हैं। स्त्री, पुत्र और यह मकान और इज्जत इसमें सुख नहीं – ऐसा कहते हैं। सुख तो यहाँ तुझमें है। इतना सुख भरा है कि यदि तेरा वहाँ लक्ष्य लाये.. आहा! मिथ्यात्वादि तेरह गुणस्थान थोड़ी देर करे तो करो, तेरे जीव को फिर कुछ है नहीं।

आहाहा! जरा सूक्ष्म बात है, हों! आहाहा! आत्मा द्रव्य है—ऐसा जो अस्ति, परमानन्द की मूर्ति प्रभु है। प्रत्येक का आत्मा, हों! वह है, वह मिथ्यात्व को कैसे करे? मिथ्यात्व है, वह पुद्‌गल कर्म का पाक है। आहाहा! भाषा ऐसी ली है। ऐसा कहा न? सुनो! ऐसा कहा था न? सुनने का अर्थ क्या किया था? है?

हे ज्ञान के इच्छुक पुरुषों! अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं, सुन, भाई! बात तो यह है कि वह ज्ञान का इच्छुक है, उसे कहते हैं सुन, आहा! तू ऐसी चीज़ अन्दर जीवद्रव्य है कि जिसमें तेरह गुणस्थान नहीं और इससे उस गुणस्थान को, तू प्रभु चैतन्य है तो गुणस्थान को अचेतन कहते हैं। आहाहा! वह अचेतन नये कर्म को थोड़े काल करे तो करो। जीव का क्या आया? आहाहा!

यह गाथायें अलग प्रकार की हैं। अशुद्धनिश्चय से जो पर्याय होती है, उसे व्यवहार गिनकर और पुद्‌गलकर्म का पाक गिना। यहाँ अकेला द्रव्यस्वभाव जो है चैतन्यमूर्ति ज्ञान का कन्द है, अतीन्द्रिय आनन्द का रसकन्द वस्तु है। आहा! उस वस्तु में फिर यह मिथ्यात्व और गुणस्थान-फुणस्थान उसमें कहाँ है? आहाहा! इसलिए ये सब पुद्‌गलकर्म के विपाक हैं। पुद्‌गलकर्म का फल है, चैतन्य का नहीं। आहाहा! इसे लक्ष्य बदलाते हैं। सुन! - कहकर लक्ष्य बदलाते हैं। आहा! भगवान कहते हैं, अन्दर भले मिथ्यात्वादि गुणस्थान हो। आहाहा! ऐसे अन्दर में शुद्धचैतन्यमूर्ति भगवान पूर्ण आनन्द है, जो उसका लक्ष्य करने जायेगा तो यह तेरह गुणस्थान थोड़े समय बन्धन का कर्ता हों तो हो, तेरे जीवद्रव्य का कुछ नहीं। आहाहा! ओहो!

एक ओर कहते हैं कि राग का कर्ता निश्चय से जीव है। १८९ गाथा प्रवचनसार। निश्चय से है, निश्चयनय से है। राग और पुण्य-पाप के परिणाम का निश्चयनय से कर्ता है, १८९ गाथा। वहाँ इसकी पर्याय में है - ऐसा बतलाना है। परन्तु यहाँ तो वस्तु जहाँ ऐसी अन्दर पूर्णानन्द जहाँ है, (वहाँ) अन्दर पर्याय भी नहीं। आहाहा! क्षायिकभाव या उपशमभाव भी जिसमें नहीं—ऐसा सहज परम पारिणामिक स्वभावरूप पिण्ड प्रभु... आहाहा! सहज परमस्वभावभाव का पिण्ड आत्मा, वह क्या करे? कहते हैं। गुणस्थान को क्या करे? और वह नये कर्म को क्या करे? आहाहा! थोड़ा अटपटा है।

श्रोता : आप स्पष्ट कर दो...

पूज्य गुरुदेवश्री : हाँ, इतना तो करते हैं। **शृणु** इसमें से है। हे ज्ञान के इच्छुक सुन! ऐसा कहा है न? **वंदित्तु** में सुन—ऐसा नहीं आया, वहाँ **वोच्छामि** आया है। (अर्थात् कि) कहूँगा। यहाँ तो अमृतचन्द्राचार्य स्वयं कहते हैं कि यदि तुझे इसमें शंका पड़े कि पुद्‌गलकर्म का कर्ता कौन? आत्मा कर्ता नहीं तो यह पुद्‌गलकर्म तो होता है, कहते हैं। सुन, सुन! तुझे समझना हो तो समझ कि यह पुद्‌गलकर्म है-तेरह गुणस्थान, यह पुद्‌गलकर्म का विपाक है; इसलिए वे

अचेतन हैं। वे अचेतन थोड़े अचेतन को-नये बन्धन को व्याप्यव्यापक होकर करें, (उसमें) जीवद्रव्य को क्या है? आहाहा! जीवद्रव्य व्यापक होकर गुणस्थान करे, वह तो है नहीं तो फिर नया कर्म बाँधे, वह तो इसमें-द्रव्यस्वभाव में है ही नहीं। आहाहा! कथन अलग प्रकार के हैं।

केवल व्याप्यव्यापकभाव से... देखा? **तेरह कर्ता ही केवल व्याप्यव्यापकभाव से...** आत्मा को क्या सम्बन्ध है? आहाहा! **कुछ भी पुद्गलकर्म को करें तो भले करें;...** आहाहा! **इसमें जीव का क्या आया?** भगवान तो जो चिदानन्दघन है, उसमें कुछ हीनता या न्यूनता है नहीं। आहाहा! उसमें से वापस कोई ऐसा निकले कि देखा? विकार होता है, वह कर्म के कारण होता है। यहाँ तो स्वभाव की स्थिति सिद्ध करनी है कि भगवान! तेरा स्वभाव चैतन्यस्वभाव है और इन तेरह गुणस्थान का अचेतनस्वभाव है - ऐसा भिन्न करना है। आहाहा! समझ में आया?

वहाँ (प्रवचनसार) १८९ गाथा में शुद्धनिश्चय से कहा है। शुद्धनिश्चय से राग का कर्ता जीव है अर्थात् राग की पर्याय में उसका अपना विपरीत बल है परन्तु यहाँ दूसरी अपेक्षा है, यहाँ तो द्रव्यस्वभाव अनादि-अनन्त द्रव्यस्वभाव ऐसा द्रव्यस्वभाव है कि जिसे गुणस्थान स्पर्श नहीं करते। आहाहा! वे गुणस्थान, पुद्गलकर्म का पाक होने से अचेतन हैं; प्रभु चैतन्य है। वे अचेतन नये कर्म के अचेतन को व्याप्यव्यापकभाव से करे तो करो, चैतन्य को क्या है। आहा! चेतनजी! यह कहा था, तब कहा था, पहले कहा था। आहाहा! यहाँ आशय ऐसा है।

(शिष्य) कहता है कि पुद्गलकर्म तो करे नहीं, तब करता कौन है? ऐसा पूछा न? है तो सही, पुद्गलकर्म बँधता है, पुद्गलकर्म है और तुम कहते हो कि उस कर्म को आत्मा नहीं करता। तब उसका कर्ता कौन है? यदि तुझे समझना हो तो इस प्रकार सुन, ज्ञान के इच्छुक! **शृणु** एक **शृणु** उसमें आता है। गाथा श्लोक आता है न? धवल में।

यहाँ तो यह कहना है न अपेक्षा से! यह महाप्रभु अन्दर है तुझे भले न बैठे परन्तु यह महाप्रभु है अन्दर चैतन्य आनन्द का कन्द, कन्द है। आहाहा! तेरह गुणस्थान उसमें नहीं और तेरह गुणस्थान हैं, वे आस्रव हैं, वे पुद्गलकर्म का पाक है। वे आस्रव हैं और थोड़े नये आस्रव को करे तो करो, द्रव्य को क्या है? आहाहा! देवीलालजी! अटपटा है। इसमें से वापस उपादान में होता है, निमित्त से होता है, यह निकालकर निकाले तो वह यहाँ काम नहीं। यहाँ तो शुद्ध उपादान प्रभु है, अशुद्ध उपादान, वह निमित्त के आधीन होता है। इसलिए अशुद्ध उपादान को यहाँ अचेतन कह दिया है।

श्रोता : पुद्गल कहा।

पूज्य गुरुदेवश्री : पुद्गल कहा, अचेतन कहा न? पुद्गलकर्म कहा, उसके इकट्ठे चार भेद किये, उसके इकट्ठे तेरह किये वे सब अचेतन हैं। आहाहा! चैतन्यवस्तु जो, अन्दर चेतन

चेतना है... आहाहा! जिसमें अकेला शाश्वत् चैतन्यस्वभाव भरा है। शाश्वत् चैतन्यस्वभाव, वह स्वयं कर्म को कैसे करे? आहाहा! ऐसा कहकर, जो समझा नहीं और आशंका से पूछता है, उसे कहते हैं, भाई! ध्यान तो रख, मैं कहता हूँ, वह किस अपेक्षा से है? आहाहा! प्रभु! तेरा द्रव्य जो वस्तु है, तुझे उसका विश्वास नहीं, अव्यक्तरूप से भी विश्वास नहीं। उसे यहाँ विश्वास कराते हैं। आहाहा! ऐसे तेरह गुणस्थान होने पर भी अचेतन होने से (उन्हें करता नहीं)। चैतन्य तो चैतन्य है, चैतन्य में अचेतन आये नहीं और चैतन्य अचेतन में आता नहीं। आहा! कठिन काम है? क्या आया? **(कुछ भी नहीं)।**

अब यह सामनेवाले का **यहाँ यह तर्क है कि ''पुद्गलमय मिथ्यात्वादि को भोगता हुआ...** जीव स्वयं ही वेदता है न? शंकाकार शिष्य कहता है। **''पुद्गलमय मिथ्यात्वादि को भोगता हुआ जीव सवयं ही मिथ्यादृष्टि होकर पुद्गलकर्म को करता है।''** भोगता हुआ। तुम कर्ता नहीं कहो परन्तु वेदता (भोगता) कौन है? जड़ वेदता है? आहाहा! जीव स्वयं ही मिथ्यादृष्टि होकर पुद्गलकर्म को करता है, वेदता हुआ, हों! है? **''पुद्गलमय मिथ्यात्वादि को भोगता हुआ...''** जो तेरह अचेतन कहे हैं न? उन्हें **''भोगता हुआ जीव सवयं ही मिथ्यादृष्टि होकर पुद्गलकर्म को करता है।'' (इसका समाधान यह है कि:-) यह तर्क वास्तव में अविवेक है,...** जड़ को आत्मा भोगता नहीं, जड़ को आत्मा करता नहीं।

श्रोता : विकार को करता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : वह तो अचेतन आ गया। जड़ को भोगता नहीं। यह विकार यहाँ जड़ है। तेरह गुणस्थान जड़ कहे, फिर (विकार की क्या बात)? तेरहवाँ गुणस्थान तेरा नहीं। यह अपने धीरुभाई गाते हैं। धीरुभाई नहीं, तलकचन्दभाई लाठीवाले। आहाहा!

जो चैतन्यद्रव्य है, चैतन्यद्रव्य जो है, वह सब उसके गुण चैतन्यस्वरूप हैं और वह भी अखण्ड, अभेद, पूर्ण है – ऐसा जो जीवद्रव्य... आहाहा! वे तेरह गुणस्थान कर्म को करें और थोड़ा बँधे तो भले बाँधो। उससे वस्तु को क्या है? आहाहा!

यहाँ तो मस्तिष्क में एक आया था, तब कहा था कि ऐसा जीव लिया है कि जो अभी है मिथ्यात्व में परन्तु यह पुद्गल, पुद्गल को करता है और जीव नहीं करता, यह कैसे है? यह तुम क्या कहते हो? मुझे समझ में नहीं आता, शंका नहीं परन्तु आशंका (की है)। कि सुन भाई! आहाहा! वे अचेतन मिथ्यात्वादि भाव हैं, वे पुद्गल को करें तो करो। तब शिष्य कहता है, परन्तु प्रभु! तुमने कर्ता उसे नहीं कहा परन्तु भोगता कौन है? जड़ भोगता है? अचेतन को वेदता कौन है? पुद्गलकर्म के फल को वेदता कौन है? आत्मा वेदता है, इसलिए कर्ता इसे (आत्मा को) कहना चाहिए। कहते हैं, सुन, सुन! यह तेरा अविवेक है। उस पुद्गलकर्म को आत्मा वेदता नहीं। आहाहा! समझ में आया?

यह तर्क वास्तव में अविवेक है, क्योंकि भाव्यभावकभाव का अभाव होने से... पुद्गलकर्म भावक, उसका जो भाव्य, यह तेरह गुणस्थान आदि, उसका अभाव होने से। **भाव्यभावकभाव का अभाव होने से...** ***भावक जो कर्म, उसका भाव्य जो तेरह गुणस्थान, वह पुद्गल, उसके परिणाम - ऐसा जो भाव... आहा! उसका अभाव होने से... आत्मा में उसका अभाव है। आहाहा! कर्म के पाक से हुए अचेतन गुणस्थान का भेद, वह वास्तव में भाव्य है, वह कर्म भावक है, उसका वह भाव्य है। वह कर्म भोगे तो भोगो आत्मा को क्या है? आहाहा! अटपटा है।***

क्योंकि भाव्यभावकभाव का अभाव होने से.. प्रभु! चैतन्यद्रव्य है, उसमें जो यह पुद्गल, रागादि का भाव, कर्म का भाव-विपाक है, उसे आत्मा कैसे वेदे? आहा! क्योंकि वह भावक का भाव्य का भाव है। भगवान ज्ञायक और उसका वह भाव है-ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा सूक्ष्म है। आहा!

भगवान अन्दर आनन्द का नाथ, अतीन्द्रिय आनन्द से ठसाठस भरा हुआ शाश्वत्, शाश्वत् वज्र.. आहाहा! शाश्वत् हीरा है प्रभु! वह अचेतन में कैसे आवे? आहाहा! वह अचेतन जो है, वह तो पुद्गल का कार्य है और उससे थोड़ा नया बँधे तो भले बाँधो। तब शिष्य कहता है परन्तु तुमने कर्म का कर्ता तो भले उड़ाया, परन्तु वेदता कौन है? जड़ वेदता है दु:ख को? सुन, सुन! कहते हैं। इस राग को वेदे, वह भाव्यभावक है, वह पर का है, उसे आत्मा नहीं वेदता। वह तो ज्ञायकमूर्ति पूर्णानन्द है, वह इसे वेदे? आहा! यहाँ तो द्रव्य को निराला सिद्ध करना है। देवीलालजी! ऐसा है।

भाव्यभावकभाव का अभाव होने से... यह कर्म है, वह भावक है और इसका भाव्य वह कर्म का है। उसका तो भगवान आत्मा में अभाव है। भावकभाव्य का भाव (अर्थात्) कर्म भावक है, उसका भाव्य जो दु:ख का आना, दु:खादि या सुख कल्पना, वह सब भावक का भाव्य है। उसके भाव का जीव में तो अभाव है। आहाहा! क्या अपेक्षा है, वह अपेक्षा समझनी चाहिए न? फिर सब जगह रख दे कि देखो! उपादान से होता है और निमित्त से होता है (-ऐसा कहा है)। चौदह गुणस्थान तो निमित्त हैं। उनके अपने उपादान की अन्दर नहीं शुद्ध उपादान। क्या अपेक्षा है? बापू!

यहाँ तो भगवान द्रव्य सकल निरावरण अखण्ड प्रतिभासमय परमात्मा स्वयं है। वह परमात्मा स्वयं गुणस्थान में कहाँ आता है? इसलिए यह चैतन्य है तो उन गुणस्थान को अचेतन कहा। वे अचेतन थोड़े नये कर्म को बाँधे तो बाँधो। आहाहा! उसमें तो यह आया कि इसका लक्ष्य जो चैतन्यद्रव्य पर यदि जाता है, वह अभी मिथ्या है, भाई! तब कहा था, पहले भी कहा था। आहाहा! चैतन्यहीरा ज्ञान का रसकन्द प्रभु पूर्णानन्द का नाथ... आहाहा! वह तो आनन्द का पिण्ड है। आनन्द का पिण्ड आत्मा, ज्ञान का पिण्ड आत्मा, शान्ति का पिण्ड वह ध्रुव चीज़ है। आहाहा! वह चैतन्य है, इन गुणस्थान अचेतन कर्म के पाक के फल को वह कैसे करे? आहाहा!

वे अचेतन गुणस्थान जो हैं, वे नये कर्म को व्याप्यव्यापक होकर करे तो करो। आहाहा! एक ओर पुद्गल डाल दिया और एक ओर सामने चैतन्य रखा है। आहाहा! समझ में आया?

श्रोता : इसलिए ऐसा कहा न कि आत्मा दु:ख को वेदे नहीं, जाने।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह उसकी खोटी बात। यहाँ दूसरी बात है। यह दूसरी बात है। यहाँ तो कर्ता नहीं कहना तो फिर वेदने का कहाँ से आया? यह तो मिथ्यादृष्टि से लेकर तेरहवाले को, कर्ता नहीं और भोक्ता नहीं – ऐसा कहना है। यह तो कहते (हैं कि) समकिती है, उसे अब सुख का ही वेदन होता है, दु:ख का वेदन नहीं होता। तो राग है, वह दु:ख का वेदन है, एक समय में दोनों हैं, यह अपेक्षा अलग है और वह अपेक्षा अलग है। वह तो फिर सम्यग्दृष्टि को जहाँ हो वहाँ ऐसा लिया जाता है कि उसे सुख का वेदन है। (ऐसा कहकर) मुख्य की बात ली हो, गौण जो दु:ख का वेदन है, वह सम्यग्दृष्टि के विषय में न ले। ज्ञान का विषय जब चलता हो, तब सब साथ में ले। ज्ञानधारा और कर्मधारा दो नहीं आयी? कर्मधारा, वह दु:खरूप है; ज्ञानधारा, वह सुखरूप है। आहाहा!

यहाँ (जो कहते हैं) वह यहाँ तो अभी मिथ्यात्व भी जीव में नहीं और मिथ्यात्व नये मिथ्यात्व को थोड़ा करे, उसमें आत्मा का क्या आया? ऐई! आहाहा! वह भी इस थोड़े समय है, हों! उसे छूट जानेवाला है। जिसे आत्मद्रव्य जो है, वह कर्म करता नहीं और अचेतन करता है, वह चैतन्य से भिन्न है और वह अचेतन नये कर्म को करे तो करो और वेदता है — ऐसा यदि तू कहता है तो वह तेरा अविवेक है। विकार को वेदना, वह जीव का स्वरूप नहीं है। आहाहा! (वेदे) तो विकारी द्रव्य हो गया। द्रव्य तो शुद्ध चैतन्यमूर्ति है। आहाहा! ऐसे प्रकार होते हैं। किस अपेक्षा से कहा है, वह समझना चाहिए।

द्रव्यस्वभाव भगवान महाप्रभु बिराजता है। आहा! वह महात्मा है, छोटा आत्मा नहीं। महात्मा है, महात्मा प्रभु अन्दर है। आहाहा! जिसमें कोटाकोटी सूर्य से भी चैतन्य के प्रकाश का पार नहीं। अपरिमित चैतन्यधातु आया था न भाई! बेहद चैतन्यधातु वहाँ रुक गयी है। रुक गयी है, वह वस्तु नहीं रुकी, वस्तु तो वस्तु है। आहाहा! पर्याय रुकी है, यहाँ रुकी उस अवस्था को अचेतन कहकर चैतन्य से भिन्न किया है। आहा! सूक्ष्म है, थोड़ा अटपटा है। धीमे से तो कहा जाता है। इसमें से फिर ऐसा ही निकाल डाले, एकान्त ही कर डाले कि मिथ्यात्व, मिथ्यात्व आत्मा को करता है, वह कर्म कराता है। यहाँ तो वस्तु का जो त्रिकाली स्वरूप है, उसका लक्ष्य कराने के लिये यह मिथ्यात्वादि सभी गुणस्थान उसमें नहीं और इसलिए वे अचेतन हैं। चैतन्य के सामने वे अचेतन हैं और अचेतन, अचेतन को थोड़ा करे तो करो, द्रव्यस्वभाव का क्या आया है? आहाहा!

क्योंकि भाव्यभावकभाव का अभाव... भाव्यभावकभाव का अभाव। सब भा.. भा.. भ..

भा.. है। कर्म जो है पुद्गल, तेरह गुणस्थान वे पुद्गल हैं, वे भावक हैं और उनका भाव्य (अर्थात्) नया कुछ कर्म आवे, उसे भाव्य कहा जाता है। ऐसे भावक का जो भाव्य, ऐसा जो भाव, भावक का भाव्य - ऐसा जो भाव, उसका स्वरूप में अभाव है। क्या कहा?

भगवान चैतन्यस्वरूप के समक्ष जो गुणस्थान हैं, वे भावक हैं और उनका भाव्य नया बँधे, वह उनका भाव्य है। अथवा कर्म भावक है और तेरह गुणस्थान उसका भाव्य है। आहाहा! ऐसे भावक के भाव्य का भाव, उसका प्रभु में अभाव है। आहाहा! कहो, पण्डितजी! आहाहा!

श्रोता : .....

पूज्य गुरुदेवश्री : यह किस अपेक्षा से कहा जानना चाहिए न! इसलिए यह जयसेनाचार्य ने ऐसा (कहा कि) पुत्र है, वह दो का होकर है। ऐसा कि पर्याय इसकी है और दूसरा पुद्गलकर्म है — ऐसा उसमें इस जगह टीका में लिखा है परन्तु उसका एकान्त ले ले तो ऐसा भी नहीं है।

वास्तव में तो पर्याय है, उस काल में विकृत अवस्था उस-उस समय में, उस-उस काल में उत्पन्न होती है। वह उत्पन्न (उस-उस काल में होती है वह) भी किसे (कहा जाये)? कि जिसका लक्ष्य द्रव्य है। क्रमबद्ध का लक्ष्य (हुआ है) उसे द्रव्य लक्ष्य है। क्रमबद्ध के लक्ष्यवाला अकर्ता है और अकर्ता है; इसलिए ज्ञातादृष्टा है और ज्ञातादृष्टा है, वह ज्ञान को जानता है, अन्दर ज्ञायक को जानता है। उसे रागादि का भाव उसका नहीं है, वह पर का है - ऐसा कहकर निकाल दिया है, ऐसा। समझ में आया? उसे फिर वह राग कर्म ही कराता है (-ऐसा कहा है)। उसके किसी गुण में ऐसा कोई गुण नहीं; द्रव्य तो ऐसा है परन्तु द्रव्य के अनन्त गुण में का गुण नहीं की राग तो करे, ऐसा कोई एक भी गुण नहीं। अनन्त-अनन्त गुण हैं। उन अनन्त-अनन्त गुण का कन्द रसकन्द प्रभु द्रव्य है। आहाहा! यह कहते हैं कि गुणस्थान को कैसे करे? और गुणस्थान कर्म को करे तो करो। आहाहा! और वेदे तो उस वेदने में वहाँ जाता है। आत्मा उसे राग को, दुःख को वेदे (-ऐसा है नहीं)। कर्म का फल है, उसे आत्मा वेदता नहीं। वह तो कर्म - पर वेदा जाता है। आहाहा! यहाँ तो आनन्द का वेदन है। यहाँ तो अभी सुननेवाले को लक्ष्य द्रव्य पर कराकर, यह कर्म कौन बाँधता है, यह उसे समझाना है। आहाहा!

''पुद्गलमय मिथ्यात्वादि को भोगता हुआ जीव स्वयं ही मिथ्यादृष्टि होकर पुद्गलकर्म को करता है।'' ऐसा शिष्य ने तर्क किया है। **(इसका समाधान यह है कि:-) यह तर्क वास्तव में अविवेक है, क्योंकि भाव्यभावकभाव का अभाव होने से आत्मा निश्चय से पुद्गलद्रव्यमय मिथ्यात्वादि का भोक्ता भी नहीं है,..** जीव द्रव्य है, वह मिथ्यात्व को, राग को भोगे किस प्रकार? वस्तु है वह। आहाहा!

श्रोता : एक पर्याय की बात की और एक द्रव्य त्रिकाल की बात की।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह तो बात इतनी करे न! उसे तो ऐसे वेदन करता है न! परन्तु वह वस्तु है, वह कहाँ वेदती है? वह इसमें है ही कहाँ? वहाँ जा न! आहाहा! राग वेदन में आता है, वह तो पुद्गल का वेदन है। अरे रे! ऐसा है। क्योंकि प्रभु आत्मा में कहाँ है? राग का करना नहीं, वैसे राग का वेदना वस्तु में कहाँ है? आहाहा! ऐसा चैतन्य प्रभु महात्मा-बड़ा महात्मा महा आत्मा स्वयं अन्दर है, वह विकार को कैसे करे और विकार को कैसे भोगे? आहाहा! कठिन है; (इसलिए) जरा धीरे-धीरे तो कहा जाता है। मार्ग ऐसा है, बापू! आहाहा!

यह तो परम सत्य त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ जिनेश्वरदेव की वाणी है। आहाहा! प्रभु! तू द्रव्यस्वभाव है न तेरा, ऐसा कहते हैं। तेरा द्रव्यस्वभाव है, वह तो त्रिकाल निरावरण है न! उसे आवरण हो, तब तो उसे गुणस्थान के भेद पड़े। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! वह तो पर्याय को राग का सम्बन्ध है, द्रव्य को राग का सम्बन्ध है नहीं। आहाहा! समझ में आये उतना समझना, बापू! यह तो वीतराग परमेश्वर (द्वारा कहा गया) गहन विषय है। आहा!

कहते हैं कि प्रभु! जो पूर्ण चैतन्यद्रव्य है, उसके हिसाब से तो यह तेरह गुणस्थान पुद्गल हैं, अचेतन हैं, कर्म के पाक के हैं। आहाहा! वहाँ प्रभु का पाक नहीं है। आहाहा! प्रभु तो आनन्द का नाथ है। उसके पाक में तो अतीन्द्रिय आनन्द पके। आहाहा! उसमें राग पके, वह नहीं। वह तो पुद्गल का पाक है। इसलिए तू वेदन करनेवाला आत्मा है तो करता वह है—ऐसा जो तू कहना चाहता है तो वह तेरा तर्क खोटा है। जैसे कर्ता नहीं, वैसे उसका वेदक भी नहीं। सुजानमलजी! ऐसी बात है। आहाहा!

निश्चय से पुद्गलद्रव्यमय मिथ्यात्वादि... मिथ्यात्व को तो पुद्गल कहा। मिथ्यात्वपरिणाम, अव्रतपरिणाम, कषायपरिणाम.. आहाहा! सजोग में भी जो योग परिणाम है, वे सब पुद्गल कहे। पुद्गल के परिणाम पाक, पुद्गल कहा। आहाहा! वह तो उसमें आता है न? ७६-७७ गाथा पुद्गलपरिणाम कहकर फिर पुद्गल कह दिया, वह पुद्गलद्रव्य है। आहा! आहाहा!

तेरा नाथ अन्दर बिराजता है, चैतन्य हीरा, चैतन्य स्फटिक रत्न, उस स्फटिक रत्न में काली, हरी झाँई (उठती है), वह तेरी कहाँ है? आहा! जब सिद्ध करना हो (तब ऐसा कहे) काली, लाल झाँई तो उसकी योग्यता है तो हुई है। वह तो पर्याय को सिद्ध करनी हो, तब (ऐसा कहते हैं) परन्तु यहाँ जहाँ द्रव्य ही अकेला सिद्ध करना है। आहाहा! नहीं तो स्फटिकमणि में काले नीले फूल हों, उसकी झाँई पड़ती है, वह कहीं उनके कारण नहीं पड़ती, उसकी अपनी योग्यता है, पर्याय की उसकी स्वयं की योग्यता है। लकड़ी में यहाँ रखोगे तो नहीं पड़ेगी, उसमें योग्यता नहीं है। वह दियासलाई का दृष्टान्त कहा था न? बीड़ी पीवे तो उस ओर जले और इस ओर ठण्डा हो। दियासलाई का छोर ठण्डा हो, (आगे का भाग) गर्म हो और लोहा हो, पाँच हाथ

का लम्बा सरिया (हो उसे) चार अंगुल अग्नि में रखो तो ठेठ तक (गर्मी) जायेगी।

श्रोता : लकड़ी में नहीं जाती।

पूज्य गुरुदेवश्री : लकड़ी को नहीं लगती। लकड़ी को तो यह दो-तीन अंगुल की सली भी यहाँ सुलगे तो यहाँ गर्म नहीं होता। उसकी अपनी योग्यता है और लोहा वहाँ पाँच हाथ का हो और चार अंगुल अग्नि में रखो-इतना ऐसा (रखो तो) एकदम गर्म ठेठ (तक हो जायेगा)। पकड़ा नहीं जा सकेगा। वह उसकी अपनी योग्यता है। समझ में आया?

इसी प्रकार जब विकार को इसकी पर्याय में सिद्ध करना हो, तब उसकी अपनी योग्यता में है। आहाहा! परन्तु यहाँ तो पर्याय नहीं, यह तो द्रव्य सिद्ध (करना है)। अकेला द्रव्य अन्दर शुद्ध है। आहाहा! चैतन्य हीरा सकल निरावरण अखण्ड एक प्रत्यक्ष प्रतिभासमय... आहाहा! ऐसा जो शुद्ध पारिणामिक परमभावलक्षण निज परमात्मद्रव्य, वह मैं हूँ, खण्ड ज्ञान वह मैं नहीं। आहा! सम्यग्दृष्टि ऐसा भाता है परन्तु यह तो सम्यग्दर्शन के पहले भी उसे यह समझाते हैं। ऐई! आहाहा! प्रभु! तू बड़ा महाप्रभु है। तू उसकी बात तो भूल गया और इसका करे और यह करे और यह वेदे और यह करे... क्या है? जो राग को करता नहीं, गुणस्थान को करता नहीं और वेदता नहीं, वह बात अन्दर पड़ी तो पड़ी रही पूरी चीज़। आहाहा! समझ में आया? शान्तिभाई! ऐसा तुम्हारे हीरा-माणिक में कहीं नहीं आया होगा। आहाहा! इसे पत्थर में नहीं आया होगा।

श्रोता : हमारी वकीलात में नहीं आया होगा।

पूज्य गुरुदेवश्री : तुम्हारी वकालात में कहाँ से आवे? आहाहा!

पुद्गलद्रव्यमय मिथ्यात्वादि का भोक्ता भी नहीं है, तब फिर पुद्गलकर्म का कर्ता कैसे हो सकता है? जब उसका भोक्ता भी नहीं तो कर्ता कैसे होगा? आहाहा! **इसलिए यह सिद्ध हुआ...** उसका फल यह आया कि **जो पुद्गलद्रव्यमय चार सामान्यप्रत्ययों के भेदरूप तेरह विशेष प्रत्यय...** प्रत्यय कहो या आस्रव कहो। पुद्गल-द्रव्यमय-एक तो एक बात यहाँ से उठायी। पुद्गलद्रव्यमय। पहले कहा था न? वास्तव में पुद्गलकर्म का पुद्गलद्रव्य ही एक कर्ता है। वह यहाँ लिया। **पुद्गलद्रव्यमय चार सामान्यप्रत्ययों के भेदरूप...** पुद्गलद्रव्यमय चार सामान्य अर्थात् मिथ्यात्व, अव्रत, कषाय और योग, ये सामान्य प्रत्यय अर्थात् आस्रव, इनके भेदरूप तेरह विशेष आस्रव। **जो कि 'गुण' शब्द से (गुणस्थान नाम से) कहे जाते हैं...** गुण अर्थात् गुणस्थान, गुण अर्थात् गुणस्थान। आहाहा! ऐसा (समझने की) निवृत्ति कहाँ है लोगों को? आहा! उसमें महिलाओं को बेचारियों को लड़के सम्हालना। एक-दो वर्ष का हो और एक चार वर्ष का हो और एक छह वर्ष का हो और एक आठ वर्ष का हो। छह-सात लड़के सम्हाले। अर र र! इसमें जिन्दगी चली जाती है। आहाहा!

प्रभु! तू एक चैतन्यरत्न है, वह अचेतन में कैसे आवे प्रभु? चैतन्य हीरा, वह अचेतन रेत में-धूल में कैसे आवे? आहाहा! ऐसा कहते हैं। अचेतन कहा न? भाई! चैतन्य रत्न हीरा प्रभु! वे गुणस्थान अचेतन हैं, उस धूल में हीरा कहाँ से आवे? आहाहा! और जब वेदन को तू कहता हो तो भी हम कहते हैं कि भगवान जो आनन्द का नाथ प्रभु है, वह अचेतन के वेदन में कहाँ से आवे? आहाहा!

श्रोता : दोनों भिन्न है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रभु बड़ा महाद्रव्य, द्रव्य अर्थात् क्या? बापू! आहाहा!

यहाँ तो तेरह गुणस्थान की पर्याय को पुद्गल का कार्य है (-ऐसा कहा है)। आहाहा! वह चैतन्यवस्तु महाप्रभु महात्मा है, वह महा आत्मा महाप्रभु है। आहाहा! आता है-महापदार्थ। आहाहा! भाई! वह वस्तु महापदार्थ प्रभु है। भले तुझे ऐसी शंका पड़ी कि कर्म कौन करे? भाई! महाप्रभु चैतन्य है, उसमें अचेतनपना कहाँ से आवे कि जिससे अचेतन को आत्मा करे? आहाहा! वह महाप्रभु चैतन्य है, वह अचेतन वेदन में कहाँ से आवे? आहाहा! वह भगवान पूर्णानन्द का नाथ है। यह तो मिथ्यादृष्टि को भी मिथ्यात्व से लेकर उसका कर्ता पर है, यह द्रव्य नहीं - ऐसा कहा है। समझ में आया? परन्तु किसे? कि जिसे यह क्या है, यह जानने की इच्छा है और लक्ष्य द्रव्य पर करना है उसे। आहाहा!

इसलिए यह सिद्ध हुआ कि-जो पुद्गलद्रव्यमय चार सामान्यप्रत्ययों... मिथ्यात्व आदि चार आस्रव। **के भेदरूप तेरह विशेष प्रत्यय हैं जो कि 'गुण' शब्द से (गुणस्थान नाम से) कहे जाते हैं, वे ही मात्र कर्मों को करते हैं,...** आहाहा! भगवान द्रव्यस्वभाव गुणस्थान को नहीं करता तो पुद्गलकर्म को कैसे करे? नये बाँधे कैसे? उसे बाँधना-बाँधना कहाँ है? आहाहा! **मात्र कर्मों को करते हैं, इसलिए जीव पुद्गलकर्मों का अकर्ता है, किन्तु 'गुण' ही उनके कर्ता हैं;...** गुण अर्थात् गुणस्थान, तेरह गुणस्थान। **उनके कर्ता हैं; और वे 'गुण' तो पुद्गलद्रव्य ही हैं;...** ये तेरह गुणस्थान तो पुद्गल के परिणाम कहे थे, वे पुद्गलद्रव्य हैं। आहाहा। यह तो पहले पुद्गलद्रव्य कहा था। आहाहा! वास्तव में पुद्गलकर्म का पुद्गलद्रव्य ही एक कर्ता कहा था।

इससे यह सिद्ध हुआ कि पुद्गलकर्म का, पुद्गलद्रव्य ही एक कर्ता है। आहाहा! तेरह गुणस्थान के वे-वे परिणाम, वे अचेतन हैं और वे अचेतन, अचेतन का कर्ता है और नया थोड़ा कदाचित् बाँधे तो भी वह अचेतन-अचेतन का कर्ता है। आत्मा चैतन्यद्रव्य भगवान है, उसे कुछ लगता-बगता नहीं है - ऐसा वह चैतन्यद्रव्य है, ऐसा यहाँ लक्ष्य कराना है।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२१

श्री समयसार, गाथा १७-१८ प्रवचन नं. ७९
दिनांक ०६-०९-१९७८

यह दशलक्षण पर्व का पहला दिन है न? उत्तमक्षमा। उत्तमक्षमा आदि जो दश बोल हैं, वे चारित्र के भेद हैं। चारित्र मुख्य मोक्ष का कारण है, इसलिए चारित्र के दश प्रकार के धर्म (कहे गये हैं)। आत्मा का अनुभव, शुद्ध चैतन्य की दृष्टि और अनुभव हुआ हो और फिर उसमें चारित्र-लीनता हुई हो, उसे यह दश प्रकार का धर्म होता है। दश प्रकार के धर्म से सुख होता है, आनन्द होता है। आहाहा!

दश प्रकार का धर्म किसे कहते हैं? कि जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द आता हो। आहाहा! और इसमें अतीन्द्रिय आनन्द है, इससे अतीन्द्रिय आनन्द है, वह अतीन्द्रिय आनन्द सुखस्वरूप ही है। दश प्रकार का धर्म.... ऐसी बात है, भाई! उत्तम क्षमा कहा न? सम्यक्त्वसहित की (बात है), सम्यक्त्व बिना जो कुछ है, वह कोई क्षमा नहीं है, वह तो रूँधी हुई कषाय होती है। आहाहा! ऊपर आया है, भाई! ३९३ श्लोक।

मुनिधर्म क्षमा आदि भावों से दश प्रकार का है। सौख्यसार.... उससे सुख होता है, आहाहा! यह चारित्रधर्म। जिसमें अतीन्द्रिय आनन्द आता है, आहाहा! उसका नाम दश प्रकार का मुनि का धर्म कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है, बापा! बहुत कठिन! है इसमें? सौख्यसार.... इससे सुख होता है और इसमें सुख है अथवा सुख का सार है। यह दश प्रकार का धर्म सुख का सार, आनन्द का सार उसमें है। आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द का वेदन विशेष हो, उसका नाम यहाँ दश प्रकार का धर्म है। आहाहा! ऐसी व्याख्या.... ३९३ में है। अब ३९४, दशों में, हाँ! दशों प्रकार का धर्म.... आहाहा! यह दशलक्षणी पर्व, यह दश प्रकार का धर्म, चारित्र का भेद है। सम्यग्दर्शनसहित अनुभव और चारित्र हुआ हो, उसमें विशेष आनन्द आता है, उसे यहाँ दश प्रकार का धर्म कहा जाता है। आहाहा! ऐसी बात है।

सम्यग्दर्शन में स्वरूप की दृष्टि होने से आनन्द का स्वाद आता है परन्तु थोड़ा है, आहाहा! और चारित्र में प्रचुर आनन्द है और उसमें क्षमादि हो.... आहाहा! उस क्षमा में तो महा आनन्द... आनन्द आता है, समझ में आया? ऐसी बात है। इन दश धर्म में पहला उत्तम (क्षमा धर्म कहा)।

श्रोता : वीतरागभाव को धर्म कहते हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री : वह वीतरागभाव ही यह दश प्रकार का धर्म है। यह तो उसके भेद बताये, वरना वीतरागभाव एक ही धर्म और वह चारित्र और वह दश प्रकार का धर्म, वीतरागभाव है—ऐसी बात है। यह दश प्रकार का धर्म वीतरागभाव है। आहाहा! बहुत ही राग का अभाव करके अतीन्द्रिय आनन्द के उग्र अनुभव में आनन्द आता है, उसे यहाँ दश प्रकार का धर्म कहा जाता है। यह तो क्षमा की और अमुक किया — ऐसी बात नहीं है। यह तो उत्तमक्षमा और उत्तममार्दव!

अन्तर में आत्मा आनन्द प्रभु के अन्तर अनुभव में अतीन्द्रिय स्वाद का आना, उसका नाम तो सम्यग्दर्शन है। आहाहा! और चारित्र (अर्थात्) विशेष आनन्द का आना, उसका नाम चारित्र है। उसमें दश प्रकार के धर्म.... आहाहा! उस सुख के स्वाद में वृद्धि होती है.... आहाहा! उसका नाम (दश प्रकार का धर्म है)। बात ऐसी है।

कोहेण जो ण तप्पदि, सुरणरतिरिएहिं कीरमाणे वि।
उवसग्गे वि रउद्दे, तस्स खिमा णिम्मला होदि॥

(कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा ३९४)

जो कोई सन्त मुनि मनुष्य, तिर्यञ्च, अचेतन आदि उपसर्ग में होने पर भी तप्तायमान नहीं होते, क्रोध से तप्तायमान नहीं होते परन्तु आनन्द से उग्र आनन्द के स्वाद में आ जाये... आहाहा! उसे यहाँ दशलक्षणी पर्व में प्रथम उत्तमक्षमाधर्म कहा गया है। आहाहा! समझ में आया? श्रावक को पञ्चम गुणस्थान में भी दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों होते हैं। नियमसार में भक्ति आती है न? दर्शन — सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र की श्रावक भक्ति करता है। वह भक्ति (रूप) परिणमन करता है। आहाहा! उसे यह दश प्रकार के धर्म का अंश है, मुनि को विशेष है, इसे आंशिक है परन्तु उस अंश में आनन्द का विशेष स्वाद आता है। सुखसार...! आहाहा!

शीशम की लकड़ी होती है न? शीशम.... शीशम। उसके अन्दर चिकना, कठिन सार होता है, ऐसे ही यह सुखसार! आहाहा! उत्तमक्षमा में अतीन्द्रिय आनन्द का सार आता है... आहाहा! उसको उत्तमक्षमाधर्म कहते हैं। उस मुनि को निर्मल क्षमा होती है, फिर दृष्टान्त दिया है। ऐसे-ऐसे मुनि हो गये हैं न? शान्त... शान्त... घानी में पिले.... आहाहा! इन पाण्डवों को लोहे के गहने बनाकर पहनाये.... आहाहा! अतीन्द्रिय आनन्द की बाढ़ आती थी। उपसर्ग और परीषह सहन करे, उसमें सहन (करना) उसे कहते हैं कि ज्ञाता-दृष्टा रहकर आनन्द का विशेषपना प्रगट हो, उसका नाम परीषह सहन किया कहा जाता है। आहाहा! ऐसी चीज है, भाई! वीतराग के मार्ग की पूरी लाईन में अन्तर है। यह वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। यह इस उत्तमक्षमा का कहा। अब चलता अधिकार।

यहाँ तक आया है, **साध्य जो निष्कर्म...** दशा। मोक्ष की दशा, वह साध्य है। **अभेद शुद्धस्वरूप, उसकी सिद्धि की इसी प्रकार उपपत्ति है...** आहाहा! निज भगवान का दर्शन करना, प्रतीति करना-ज्ञान करना, और रमणता (करना —) यह निष्कर्म अवस्था / मोक्ष की प्राप्ति का उपाय है। आहाहा! **अन्यथा अनुपपत्ति है...** यह अनेकान्त है। वे अनेकान्त में ऐसा कहते हैं न? कि निश्चय से भी होता है और व्यवहार से भी होता है, यह अनेकान्त है। आहाहा!

यहाँ तो भगवान आत्मा.... आहाहा! अपने निश्चयदर्शन-ज्ञान और चारित्र से निष्कर्म अवस्था साध्य होती है, अन्यथा नहीं, इसका नाम अनेकान्त है। व्यवहार से या राग से या निमित्त से नहीं — अनेकान्त इसका नाम है कि स्व से होता है, पर से नहीं। अभी अनेकान्त को फुदड़ीवाद कर दिया है। आहाहा! निश्चय से भी होता है, व्यवहार से भी होता है, उपादान से भी होता है, निमित्त से भी होता है, यह तो फुदड़ीवाद है, एकान्त मत-मिथ्या है। बहुत सूक्ष्म बात, बापू! आहाहा! है?

इसी प्रकार उपपत्ति है, अन्यथा अनुपपत्ति है... दूसरे प्रकार मुक्ति की अवस्था की उत्पत्ति होती नहीं है। आहाहा! अपने भगवान आत्मा (की) अतीन्द्रिय आनन्द की दृष्टि, ज्ञान, और रमणता करना, यह एक निष्कर्म अवस्था की प्राप्ति का उपाय है। आहाहा! दूसरा कोई उपाय नहीं है। दो मोक्षमार्ग कहते हैं, वह तो कथन की शैली है, आहाहा! मोक्षमार्ग तो यह एक ही है, आहाहा! भाई! यह तो जिसे भव की थकान लगी हो, भव की पीड़ा (लगी हो कि) कहाँ जाऊँगा? आहाहा! (उसके लिए बात है।) शरीर में एक पीड़ा आती है तो सहन नहीं होती, आहाहा! शरीर में रहकर प्रभु! अन्दर तेरा काम करना है। मैं तो आनन्दकन्द प्रभु शुद्ध चैतन्यघन (हूँ), उसकी प्रतीति में आनन्द आना, उसका ज्ञान करने में आनन्द आना, उसमें स्थिरता करने में आनन्द आना.... आहाहा! ऐसा मार्ग है। **दूसरे प्रकार से नहीं होती...** है न? **साध्य की सिद्धि इसी प्रकार होती है, अन्य प्रकार से नहीं होती।** है? आहाहा!

(श्रोताओं से) इस दरवाजे के पास से हट जाओ। ऐसा क्या, यह, ठेठ पीछे से आते है और सामने बैठते हैं; हट जाओ या बाहर। बाद में आते हैं और सामने बैठना है, आहाहा!

अब, **(इसी बात को विशेष समझाते हैं—)** है न? **जब आत्मा को, अनुभव में आने पर...** क्या (कहते हैं)? अनेक पर्याय में राग-द्वेष और विकल्प (होते हैं)। आहाहा! **जब आत्मा को अनुभव में आने पर अनेक पर्यायरूप भेदभावों...** अनुभव अर्थात् यहाँ आनन्द के अनुभव की बात नहीं है। राग और पुण्य-पाप, यह अनेक प्रकार के (भाव) जो वेदन में — अनुभव में आते हैं। **अनेक पर्यायरूप भेदभावों के साथ मिश्रितता होने पर भी...** आहाहा! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनन्द के साथ यह पुण्य और पाप के असंख्य प्रकार के (भाव) साथ में मिश्रितपना अनादि से हो गया है, (ऐसा) माना है। आहाहा! है?

मिश्रितता होने पर भी, सर्व प्रकार से भेदज्ञान में प्रवीणता से... आहाहा! अन्तर में राग से भिन्न करने में प्रवीणता... राग, वह बन्ध का लक्षण है; भगवान का लक्षण ज्ञान है। उस ज्ञान से राग को भिन्न करके... आहाहा! ऐसी बात है। पर्याय में पुण्य और पाप के अनेक विकार अनुभव में आने पर भी, मिश्रितता होने पर भी, वस्तु तो वस्तुरूप है। राग की मिश्रितता मानी है, समझ में आया? आहाहा! राग और आत्मा की एक मिश्रितदशा होने पर भी.... आहाहा! **सर्व प्रकार से भेदज्ञान...** देखो! सर्व प्रकार से, एक अंश भी राग का अपने में नहीं है — ऐसे सर्व प्रकार से भेदज्ञान.... आहाहा! अन्तर में झुकने से राग से भिन्न हो जाता है — ऐसी बातें अब।

(सर्व प्रकार से) भेदज्ञान में प्रवीणता से... सर्व प्रकार से, एक अंश भी राग मेरा नहीं है। आहाहा! **जो यह अनुभूति है, सो ही मैं हूँ...** यह जानने का अनुभव होता है, वह मैं हूँ; राग मैं नहीं हूँ। चाहे तो देव-गुरु-शास्त्र की भक्ति का राग हो; गुण-गुणी के भेद का राग हो, परन्तु राग से आत्मा को मिश्रित मान लिया है, तो उसे भेदज्ञान करके.... आहाहा! रागभाव से भगवान आत्मा का भेदज्ञान करने से, भिन्नता करने से, सर्व प्रकार से भिन्नता करने से.... आहाहा! यह क्रिया.... समझ में आया?

यह अनुभूति है सो ही... भेदज्ञान करने से जो ज्ञान का अनुभव रहा, वह मैं हूँ। है? **यह अनुभूति है सो ही मैं हूँ—ऐसे आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ...** आत्मज्ञान से प्राप्त होता हुआ... आहाहा! भगवान आत्मा, राग से मिश्रित अवस्था में होने पर भी, भिन्न करने की — भेदज्ञान की कला से, सर्व प्रकार से भेदज्ञान करने से एक ज्ञानरूप रहा, वह मैं हूँ। आहाहा! ऐसी बात है। जिसे कल्याण करना हो, उसे यह मार्ग है, भाई! बाकी सब बातें हैं। आहाहा!

यह अनुभूति है, सो ही मैं हूँ... यह जाननहार आत्मा — ऐसी अनुभूति सो मैं! राग की मिश्रितता होने पर भी सर्व प्रकार से भेदज्ञान से भिन्न करने पर जो ज्ञान है, सो मैं हूँ, अनुभूति वह आत्मज्ञान। आहाहा! अरे....! ऐसी बातें। **प्राप्त होता हुआ इस आत्मा को जैसा जाना है, वैसा ही है। इस प्रकार की प्रतीति...** जानने में आया कि यह तो ज्ञानस्वरूपी भगवान है, आनन्दस्वरूपी प्रभु है। इस प्रकार ज्ञान में भेदज्ञान से अनुभूति-ज्ञान की अनुभूति, वह मैं हूँ—ऐसा जाना, ऐसी ही प्रतीति—इस प्रकार की प्रतीति हुई। आहाहा!

प्रतीति जिसका लक्षण है ऐसा, श्रद्धान उदित होता है... आहाहा! उसे सम्यग्दर्शन प्रगट होता है। अरे....! राग के भाग से अन्दर में भगवान को भिन्न करके जो ज्ञान का अनुभव रहा, वह मैं हूँ और वह आत्मज्ञान है। आहाहा! उस ज्ञान में ऐसा आत्मा ज्ञात हुआ, ऐसी ही प्रतीति आयी। आत्मा का ज्ञान हुआ, वैसी ही प्रतीति हुई कि यह आत्मा! आहाहा! ऐसी बात...। **ऐसा श्रद्धान उदित होता है...।**

तब समस्त अन्य भावों का भेद होने से... जब राग से, पुण्य के विकल्प से ज्ञानस्वरूपी

भगवान भिन्न होने से, भिन्न का ज्ञान हुआ, और भिन्न की प्रतीति हुई। यह जानने में आया, वही आत्मा — ऐसी प्रतीति हुई। फिर अन्य भावों का भेद होने से... **समस्त अन्य भावों...** आहाहा! गुण-गुणी का विकल्प / भेद उठता है, उससे भी भेद करके... आहाहा! **समस्त अन्य भावों का भेद होने से निःशंक स्थिर होने में समर्थ...** होता है। आहाहा! स्वरूप में निःशंकरूप से स्थिर होने से चारित्र होता है।

राग से भिन्न ज्ञानस्वरूप है — ऐसी अनुभूति हुई, वह आत्मज्ञान; और उस आत्मज्ञान में जो आत्मा ज्ञात हुआ, वैसी प्रतीति हुई। प्रतीति होने के बाद अन्यभावों से, रागादि से भिन्न होकर (स्थिर होने में समर्थ हुआ) है ? **निःशंक स्थिर होने में...** स्वरूप में निःशंकरूप से स्थिर होने से **आत्मा का आचरण उदय...** होता है। यह आत्मा का आचरण....। राग से भिन्न श्रद्धा, ज्ञान करने के बाद और फिर राग से भिन्न होकर स्वरूप में स्थिर होना, निःशंकरूप से (स्थिर होना कि) मैं यही हूँ। राग और दया, दान का विकल्प है, वह मैं नहीं। आहाहा! काम बहुत (कठिन है)। शास्त्र का जो परलक्ष्यी ज्ञान है, वह भी मैं नहीं हूँ क्योंकि उसमें आत्मज्ञान नहीं हुआ। आहाहा! आत्मज्ञान अर्थात् जो आत्मा है, उसका ज्ञान। राग से भिन्न पड़कर (हुआ) आत्मज्ञान और ऐसी प्रतीति (होना कि) यह आत्मा... ज्ञान में आया ऐसा 'यह आत्मा' ....ऐसी प्रतीति और समस्त अन्य भावों से भिन्न पड़कर निःशंकरूप से स्थिर होने की सामर्थ्य प्रगट हुई, आहाहा! रागादि मैं नहीं और मेरी चीज में निःशंकरूप से स्थिर होना, आहाहा! (तब) **आत्मा का आचरण उदय...** होता है। तब आत्मा का आचरण (उदय होता है)। भगवान आत्मा में लीन होता है; आचरण अर्थात् स्वरूप का आचरण होता है — यह आचरण का उदय अर्थात् चारित्र (प्रगट) हुआ। आहाहा! ऐसी बात है।

आत्मा को साधता है। इस प्रकार अनुभूति — ज्ञान, वह मैं; और उस ज्ञान में आत्मा ज्ञात हुआ — ऐसी प्रतीति हुई, तब समस्त अन्य भावों से भिन्न होकर निःशंकरूप से स्वरूप में स्थिर होने का आचरण — आत्म-आचरण प्रगट हुआ। इस प्रकार आत्मा की सिद्धि है; इस प्रकार **आत्मा को साधता है।** आहाहा! **ऐसे साध्य आत्मा की सिद्धि की इस प्रकार उपपत्ति है।** इस प्रकार साध्य जो निष्कर्मदशा — मोक्ष की सिद्धि इस प्रकार है, दूसरे प्रकार से नहीं है। आहाहा! थोड़े में भी कितना भर दिया है!

राग / विकल्प और भगवान / वीतरागस्वरूप—दोनों का मानों मिश्रितपना हो गया हो, ऐसे मिश्रितपने में राग से भिन्न पड़कर अनुभूति—यह जाननेवाला... जाननेवाला ही मैं—ऐसा ज्ञान हुआ, वह आत्मज्ञान हुआ। आहाहा! समझ में आया ? लो, यह दशलक्षण पर्व का पहला दिन। आहाहा!

श्रोता : सुख का पहला दिन, सुख प्राप्त करने का पहला दिन!

पूज्य गुरुदेवश्री : यह सुख, सुख, सुख कहा था न कल, भाई ने वहाँ, वहाँ सूरतवाले आये न! आहाहा!

भगवान सुख का भण्डार है न, प्रभु! अतीन्द्रिय आनन्द का सागर है, है न! — उसे राग से भिन्न करके ज्ञान में अतीन्द्रिय सागर का ज्ञान — आत्मज्ञान हुआ। आहाहा! और जैसा जानने में आया, वैसी प्रतीति हुई और समस्त राग से भिन्न पड़कर निःशंकरूप से आत्म-आचरण करने का पुरुषार्थ हुआ। आहाहा! यह चारित्र....। सूक्ष्म बात, बापू! अरेरे...! अनन्त काल से भगवान को भूलकर भ्रम में अनादि से पड़ा है, वह दुःख के पन्थ में है। आहाहा! इस प्रकार सिद्धदशा की उपपत्ति है। साध्य सिद्ध!

ऐसा होने पर भी.... आहाहा! अब आया... यह शरीर, पैसा, और प्रतिष्ठा यह श्मशान की हड्डियों की फासफूस है। आहाहा! जिसे इसकी विस्मयता लगती है, उसे आत्मा की विस्मयता नहीं लगती। जिसे आत्मा के अतिरिक्त बाह्य पदार्थ की अतिशयता, विशेषता भासित होती है, उसे आत्मा की भिन्नता नहीं भासित होती। आहाहा! समझ में आया कुछ? ऐसा होने पर भी....।

परन्तु जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा... आहाहा! ज्ञान में अनुभवस्वरूप भगवान आत्मा, आहाहा! **आबाल-गोपाल...** आबाल अर्थात् बालक से लेकर वृद्ध; गोपाल अर्थात् वृद्ध, बालक से लेकर वृद्ध को — सबको; आहाहा! अनुभव में **सबके अनुभव में सदा स्वयं ही आने पर भी...** आहाहा! उसकी पर्याय में, ज्ञान की पर्याय है, उसका स्वपरप्रकाशक स्वभाव है, उस कारण पर्याय में स्वस्वरूप जानने में आता है। पर्याय में द्रव्यस्वरूप भगवान जानने में आता है, तथापि अज्ञानी को पर तरफ के बन्ध के लक्ष्य होने से, राग के प्रेम के कारण वह अन्तर में देख नहीं सकता। मेरी वस्तु, मैं आत्मा पर्याय में जानने में आता है — ऐसा देख नहीं सकता।

फिर से, आहाहा! ज्ञान की जो वर्तमान पर्याय है, उस पर्याय का स्वभाव ही स्वपरप्रकाशक है, चाहे तो अज्ञान हो या ज्ञान हो! उस पर्याय में आत्मा ही जानने में आता है, क्योंकि स्वपरप्रकाशक स्वभाव होने से ज्ञान की पर्याय में स्ववस्तु है, वही जानने में, अनुभव में आ रही है। पर्याय में द्रव्य ही ज्ञात होता है। आहाहा! है ?

श्रोता : कब ?

पूज्य गुरुदेवश्री : अभी; सदा। नहीं कहा यह? अनुभव में सदा और स्वयं, सदा और स्वयं। आहाहा! ज्ञान की पर्याय में सदा.... स्वयं.... आहाहा! **आने पर भी... स्वयं ही आने पर भी...** आहाहा! कहते हैं कि ज्ञान की वर्तमान दशा में सदा, स्वयं जानने में आता है — ऐसा होने

पर भी, **अनादि बन्ध के वश...** परन्तु अनादि राग के वश.... आहाहा! राग, वह वास्तव में परद्रव्य है, वह स्वद्रव्य नहीं है। आहाहा! ज्ञान की पर्याय में स्वद्रव्य जानने में आता होने पर भी, राग जो परद्रव्य है, उसके साथ (एकपने की) दृष्टि के कारण पर्याय में ज्ञात होते आत्मा को नहीं जानता, उसे नहीं जानता। आहाहा! अद्‌भुत, भाई!

फिर से, **परन्तु जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान...** ज्ञानस्वभावी **भगवान आत्मा...** देखो, भगवान आत्मा ज्ञानस्वरूपी अनुभव... **आबाल-गोपाल सबके...** बालक से (लेकर) वृद्ध, आहाहा! सबको अनुभव में, सबको अनुभव में... सबको सदा और सबको स्वयं, आहाहा! भाई! यह कोई वार्ता, कथा नहीं; यह तो भगवत् (कथा है)। आहाहा!

आबाल-गोपाल सबको सदा... सबको और सदा और स्वयं आत्मा ही ज्ञान की पर्याय में जानने में आता है। आहाहा! अरे! ऐसा होने पर भी, अनादि बन्ध के वश.... परन्तु दृष्टि राग और विकल्प पर है, आहाहा! उसके वश हो जाने से, पर्याय में द्रव्य ज्ञात होता है, फिर भी उसे जान नहीं सकता। आहाहा! राग की एकता की अन्धबुद्धि में पर्याय में ज्ञात होते हुए भगवान को जान सकता है, फिर भी जानता नहीं है। आहाहा! ऐसी बात है। अन्दर है या नहीं ? आहाहा!

ऐसा अनुभूति—ज्ञानस्वरूप भगवान आत्मा, आबाल-गोपाल को ज्ञान की पर्याय में जानने में आता है। सबको, सदा और स्वयं.... यह आत्मा ही सदा, स्वयं अपनी पर्याय में जानने में आता है। आहाहा! परन्तु अपने स्वभाव की तरफ दृष्टि नहीं होने से और राग के वश होकर, अबन्धस्वरूप जो पर्याय में ज्ञात होता है, वह राग के बन्ध के (वश), रागरूप बन्ध के वश होकर, अबन्धस्वरूप जो पर्याय में जानने में आता है, उसे जान नहीं सकता। आहाहा! क्या कहा ? यह तो धीरज का काम है, बापू! आहाहा!

बालक से लेकर वृद्ध सभी आत्मा में जो ज्ञान की पर्याय है, उसमें यह अनुभूति (स्वरूप) भगवान आत्मा ही जानने में आता है। आहाहा! ऐसा होने पर भी, अनादि राग के सम्बन्ध में — यह बन्ध कहो या राग का सम्बन्ध कहो... आहाहा! राग के सम्बन्ध में रुकने से, अबन्धस्वरूप पर्याय में ज्ञात होता है, वह बन्ध में रुकने के कारण, अबन्ध ज्ञात होता है (तो भी) उसे जानता नहीं है। आहाहा!

फिर से, ***आत्मा आनन्द, ज्ञानस्वरूप है। वह पर्याय में अज्ञानी को भी, बालक से वृद्ध (सबको) सदा स्वयं आत्मा, वह आत्मा ही पर्याय में अनुभव में आता है। आहाहा! ऐसा होने पर भी, अज्ञानी, राग के सम्बन्ध में रुकने से — राग के बन्धभाव में रुकने से, पर्याय में अबन्धस्वरूपी भगवान (आत्मा) ज्ञात होने पर भी, राग के सम्बन्ध में पड़े हुए को वह जानने में नहीं आता।*** कहो, अन्दर है या नहीं ? आहाहा!

नजर तले ऐसी चीज दिखती हो परन्तु नजर और लक्ष्य अन्यत्र होता है तो वह नहीं दिखता है। आहाहा! अरे...! प्रभु! तू तेरी पर्याय में, ज्ञान की एक समय की पर्याय में प्रभु! सदा आबाल-गोपाल को और स्वयं भगवान आत्मा ही ज्ञात होता है। आहाहा! क्या टीका (है)! भरतक्षेत्र में (अजोड़ है)! आहाहा! राग के वश, होकर पर्याय में अबन्धस्वरूप ज्ञान में आता होने पर भी राग के सम्बन्ध में रुकने से अबन्धस्वरूप ज्ञात नहीं होता।

फिर से, आहाहा! भगवान आत्मा, उसकी ज्ञान की पर्याय भले अज्ञान हो, परन्तु उस पर्याय में पर्याय का स्वभाव ज्ञान है न? तो उसका स्वपरप्रकाशक स्वभाव है। अत: पर्याय में स्वयं आबाल-गोपाल को सदा स्वयं आत्मा ही ज्ञात होता है। आहाहा! ऐसा होने पर भी, राग के सम्बन्ध के बन्ध के वश से उस पर्याय में अबन्ध ज्ञात होने पर भी उसे नहीं जानता, राग को जानता है। आहाहा! अरे...! यह बात कहाँ है? बापा! दिगम्बर सन्त हैं। आहाहा! केवलज्ञान का विरह भुलावे — ऐसी बात है। आहाहा! दूसरे को दु:ख लगे कि यह हमारा, यह तुम्हारा एक ही है। बापू! तुम्हारा-हमारा नहीं, यह तो वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है। आहाहा!

क्या कहा? ***कि आत्मा, पर्याय में अबन्धस्वरूप है, उस पर्याय में पर्याय का स्व-परप्रकाशक स्वभाव होने से अज्ञानी की पर्याय में भी वह द्रव्य ही जानने में आता है परन्तु अज्ञानी, राग के सम्बन्ध में रुकने से राग को जानता है; जो उसमें है नहीं, उसे जानता है और पर्याय में जो जाननेवाली चीज है, उसे नहीं जानता। आहाहा!*** कहो, सुमनभाई! वहाँ कहीं ऐसा मिले ऐसा नहीं है। (वह सब) भटकने के मार्ग हैं, बापू! आहाहा! अरे...! इसे सत्य कान में न पड़े, (वह) सत्य को किस प्रकार शोधे? आहाहा!

भगवान! तेरा स्वरूप जो पूर्ण अबद्धस्वरूप है... आहाहा! वह तेरी पर्याय में अबद्ध ही स्वयं, सदा, सबको जानने में आता है — ऐसा होने पर भी राग के सम्बन्ध में, बन्ध में वहाँ रुकने से पर्याय में अबन्ध ज्ञात होता है, उसे जान नहीं सकता... आहाहा! ऐसी बात है। चाहे तो भगवान की भक्ति का राग हो, या चाहे शास्त्र की भक्ति का राग हो.. आहाहा! परन्तु वह राग का बन्ध... राग वह बन्ध है (और) भगवान अबन्धस्वरूप है, तो पर्याय में अबन्धस्वरूप जानने में आता है, स्वभाव ही ऐसा है; पर्याय का स्वभाव ही ऐसा है, आहाहा! ***ज्ञान की पर्याय का — अवस्था का त्रिकाली अवस्थायी प्रभु स्वयं जानने में आता है — ऐसा पर्याय का धर्म है, स्वभाव है। ऐसा होने पर भी, राग के सम्बन्ध में रुकने से और राग को जानने से रागरहित चीज पर्याय में जानने में आती है, उसे जानता नहीं... आहाहा! कहो, ऐसी बात है बापू! कठिन बात, भाई! वीतरागमार्ग (अलौकिक है।)***

राग की पर्याय में रुकने से वीतराग भगवान आत्मा जिनस्वरूपी... आहाहा! जिनस्वरूपी भगवान आत्मा, उस पर्याय में वह जिनस्वरूप ही ज्ञात होता है। आहाहा! ऐसा होने पर भी,

जिनस्वरूप से विरुद्ध जो राग — चाहे तो दया-दान-भक्ति-व्रत का कोई भी विकल्प हो... आहाहा! उसे देखने से — बन्ध के वश होकर पर्याय में अबन्धस्वरूप ज्ञात होने पर भी, उसे नहीं जानता है। आहाहा! ऐसी बात है, भाई! कितनों को तो यह नयी लगती है। यह समयसार कहीं नया है? दो हजार वर्ष से तो बना हुआ है। आहाहा! वस्तु का स्वरूप ही ऐसा है न प्रभु!

जहाँ स्वयं सदा पर्याय में — ज्ञान की दशा में जानने में आता होने पर भी लक्ष्य बन्ध (— राग) पर है। राग का विकल्प चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति (का हो परन्तु) राग में ही एकाकार हुआ है, राग को देखता है। राग को देखता है तो पर्याय में अरागी अबन्धस्वरूपी जानने में आता है, उसे नहीं जानता। आहाहा! अरे... ! आहाहा! बहुत ही भरा है, ओहोहो.. ! सन्त तो करुणा करके जगत् को आत्मा की प्रसिद्धि करते हैं। भाई! भगवान की प्रसिद्धि तेरी पर्याय में हो रही है परन्तु तेरी नजर राग और पर्याय में रुकने से... आहाहा! उस पर्याय में जानने की शक्ति और जानना होने पर भी, जानता नहीं। आहाहा! यहाँ तो अकेली ज्ञान की क्रिया की बात है।

जब ऐसा अनुभूतिस्वरूप भगवान आत्मा... देखो! ***भगवान आत्मा...! आहाहा! अनन्त... अनन्त... आनन्द और ज्ञान की लक्ष्मी का भण्डार भगवान है। वह आबाल-गोपाल... बालक से लेकर वृद्ध सबको... आहाहा! आठ वर्ष का बालक हो... आहाहा! प्रभु! उसकी ज्ञान की पर्याय में वह भगवान आत्मा जानने में आता है। आहाहा! सबको सदा स्वयं पर्याय में भगवान ज्ञात होने पर भी, अनादि राग के वश होकर राग के ज्ञान में रुकने से, अबद्धस्वरूप का ज्ञान होने पर भी, उसका ज्ञान नहीं करता। आहाहा!*** ऐसा उपदेश... अन्य तो व्रत करो, तप करो, प्रतिमा ले लो, जाओ! आहाहा!

भाई! तेरा नाथ अन्दर महाप्रभु है न! भगवान आत्मा कहा न? भगवान... आहाहा! अज्ञानी का आत्मा भी भगवान आत्मा कहा... आहाहा! भाई! तुझे तेरा पता नहीं, जिसका पता होता है, उसका तुझे पता नहीं, तुझे पता नहीं और राग की खबरों में रुकने से भगवान रुक गया। आहाहा! कहो, युगलजी! ऐसी बातें हैं। आहाहा! यह समझ में आये ऐसा है, हाँ! भाषा कोई ऐसी कठिन नहीं, भाषा तो सादी है। आहाहा! क्या सन्तों ने काम किया है! आहाहा!

आत्मा की प्रसिद्धि... इस टीका का नाम आत्मख्याति है। उस आत्मख्याति की प्रसिद्धि करने पर... ***आहाहा! पर्याय में आत्मा ज्ञात होने पर भी... क्योंकि पर्याय का स्वभाव स्वपरप्रकाशक होने से... भले तेरी नजर वहाँ न हो परन्तु वह स्वपरप्रकाशक स्वयं जानने में आता है। स्वयं भगवान जानने में आता है। आहाहा! परन्तु अनादि बन्ध के वश से...*** देखो! इस राग के अंश के बन्ध के वश पड़ा है... भगवान आत्मा पर्याय में ज्ञात होने पर भी, राग के अंश के वश पड़ा है। आहाहा!

परद्रव्यों के साथ एकत्व के निश्चय से... *वास्तव में तो यह विकल्प-राग है, वह भी*

परद्रव्य है, आहाहा! वह स्वद्रव्य नहीं है। भगवान आत्मा... आहाहा! व्यवहार के रसिकों को तो यह ऐसा लगता है कि यह क्या कहते हैं? भाई! तेरे घर की बात है प्रभु! और तेरा घर तुझे ज्ञात होता है। जानने में आने पर भी तेरी नजर वहाँ नहीं है। आहाहा! कहो, हीराभाई! ऐसा है। ऐसा कैसा उपदेश! करना क्या? कुछ हाथ नहीं आता? आहाहा! भाई! करना यह है, पर के — बन्ध का लक्ष्य छोड़कर अबन्धस्वरूपी भगवान ज्ञात होता है, वहाँ नजर डाल! — यह करना है, बाकी तो सब व्यर्थ है। आहाहा!

परद्रव्यों के साथ एकत्व के निश्चय से... यह क्या कहा? राग और स्वभाव की एकता है — ऐसा मानने से... आहाहा! विभाव का अध्यास हो गया है, इसलिए... आहाहा! **एकत्व के निश्चय से मूढ़-अज्ञानीजन को...** आहाहा! एक ओर भगवान आत्मा कहा (और यहाँ मूढ़ कहा) आहाहा! भाई! यह तो अमृत का प्रवाह है। आहाहा! अमृत का सागर भगवान, तेरी पर्याय में भगवान आत्मा सदा स्वयं ज्ञात होता है। प्रभो! यह तेरी पर्याय का स्वभाव है परन्तु तूने अनादि से राग-चाहे तो शुभ हो... आहाहा! गुण-गुणी के भेद के विकल्प में रुकने से... आहाहा! मूढ़ अज्ञानी को **जो यह अनुभूति है वही मैं हूँ...** जाननेवाला ज्ञान मैं हूँ — **ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता...** इसलिए आत्मा का ज्ञान, आत्मज्ञान प्रगट नहीं होता। आहाहा! ऐसी बातें हैं।

वीतरागस्वरूपी भगवान, पर्याय में ज्ञात होने पर भी, राग के वश हुआ होने से, राग का ज्ञान करने से स्व का ज्ञान रुक गया। आहाहा! राग का, विकल्प का ज्ञान किया, अरे...! शास्त्र के ज्ञान से वहाँ रुक गया। आहाहा! मेरी पर्याय में बहुत शास्त्र का ज्ञान हुआ, आहाहा! भाई! यह शास्त्रज्ञान कोई तेरी चीज नहीं है। आहाहा! परन्तु उसमें रुकने से... आहाहा! वह बन्धभाव है। आहाहा! ज्ञान को वहाँ रोकने से ज्ञान में भगवान ज्ञात होता है, उसे मूढ़ जानता नहीं है। आहाहा!

अज्ञानीजन को 'जो यह अनुभूति है वही मैं हूँ'... जाननेवाली चीज है, वही मैं हूँ — **ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता...** उसे ऐसा आत्मज्ञान प्रगट नहीं होता; राग का ज्ञान प्रगट होता है। आहाहा! ऐसी गम्भीर बातें! साधारण समाज को (ऐसा उपदेश)? परन्तु सत्य हो, वह समाज के समक्ष रखना या असत्य रखना? और समाज आत्मा है या नहीं? प्रभु! भगवान आत्मा है, भाई! ऐसा भगवान आत्मा, पर्याय में ज्ञात होने पर भी, पर्याय में राग में रुकने से... आहाहा! वह (आत्मा) जानने में आता है, उसे मूढ़ ने जाना नहीं है। आहाहा!

ऐसा आत्मज्ञान उदित नहीं होता... उसे तो राग का ज्ञान हुआ। आहाहा! भगवान ज्ञानस्वरूपी प्रभु अकेला जाननेवाला, उसका ज्ञान नहीं हुआ। जिसमें वह चीज नहीं है — ऐसे राग का ज्ञान हुआ। आहाहा! तो आत्मज्ञान उदित नहीं हुआ। आहाहा! भगवान! **और उसके अभाव से अज्ञात का श्रद्धान गधे के सींग के श्रद्धान समान है...** अज्ञात, जो चीज जानने में नहीं आयी, उसकी श्रद्धा क्या? आहाहा! विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२२

श्री समयसार, गाथा ६ प्रवचन नं. २१
दिनांक ३०-०६-१९७८

शिष्य का ऐसा प्रश्न था कि 'शुद्धात्मा' जो तुम कहते हो, वह कौन है ? कैसा है ? कि जिसका 'स्वरूप' जानना चाहिए, और जिसे जानने से हित हो और अहित टले, वह क्या चीज़ है। तब कहा कि यह आत्मा अनादि-अनन्त, नित्य उद्योतरूप, स्पष्ट प्रकाशमान ज्योति है। यह संसार अवस्था में पुण्य-पाप को उत्पन्न करनेवाले, दुरंत कषायचक्र (अर्थात्) उसका जो शुभाशुभभाव होता है, परन्तु यह ज्ञायक, शुभाशुभरूप नहीं होता, (ये तो) उसकी अवस्था में होते हैं।

ज्ञायकभाव जो वस्तु है, यह शुभाशुभरूप नहीं होती। जो इसरूप हो तो... वस्तु है जो ज्ञानरस, ज्ञानप्रकाशस्वरूप तथा शुभाशुभ (भाव) है अचेतन, अन्धकारस्वरूप, इसरूप आत्मा हो तो आत्मा जड़ हो जाये, आहाहा! इसलिए यह शुभ एवं अशुभभावरूप ज्ञायक वस्तु जो है पदार्थ, इसरूप नहीं होने से-शुभाशुभरूप नहीं परिणमने से, इसमें प्रमत्त-अप्रमत्त के पर्यायरूप भेद इसमें नहीं हैं। आहाहा! मूलगाथा है, छट्ठी का लेख कहते हैं न। आहाहा!

ज्ञायक वस्तु चैतन्य, आहा! जो अकेला ज्ञानरस, आनन्दरस, शान्तरस, वीतरागरस-स्वरूप बिराजमान, वह रागरूप कैसे हो ? आत्मा जिनस्वरूपी, वीतरागस्वरूप में बिराजमान ज्ञायकभाव, वह रागरूप कैसे हो ? आहाहा!

श्रोता : तब रागरूप कौन होता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री : पर्याय में राग होता (है), वस्तु में राग नहीं। आहाहा!

चैतन्यप्रकाश का चन्द्र शीतल, शीतल, शीतल—ऐसा चैतन्यप्रकाश का पुञ्ज प्रभु (ज्ञायक), वह अशीतल-ऐसा जो विकार एवं आकुलता, उसरूप कैसे हो ? आहाहा! भगवान जिनचन्द्रस्वरूप प्रभु! आहा! वस्तु क्या हैं ? चैतन्य के रस से भरपूर प्रभु, वह अचेतन ऐसे शुभाशुभ परिणामों के भावरूप यह ज्ञायकभाव-वस्तुस्वभाव कैसे हो ? इसलिए वह प्रमत्त-अप्रमत्त नहीं। यहाँ तक तो आया है, अन्तिम एक महत्वपूर्ण पंक्ति रही है।

उसे शुद्ध क्यों कहा ? ज्ञायकभाव यह शुभाशुभभावरूप परिणमता नहीं, उस वस्तु को आपने शुद्ध क्यों कहा ? तब कहते हैं, वह शुद्ध तो है ही। परन्तु (अन्य द्रव्य से) भिन्न उपासना

की जाये तो उसे शुद्ध जाना जाता है। क्या कहा? वस्तु तो त्रिकाल शुद्ध है। वह तो है, परन्तु है किसको? आहाहा!

वही समस्त अन्य द्रव्यों के भाव,... अन्य द्रव्य के भाव अर्थात् कर्म के रस आदि, आहाहा! इसमें विकार नहीं लेना। यहाँ तो अन्य द्रव्य के भाव लेना। यह अन्य द्रव्य के भावों से भिन्न होने पर, विकार से भिन्न हो जाता है। 'भाव'—ऐसा कहना है न! अन्य द्रव्य के भाव अर्थात् अभी पुण्य-पाप के भाव, वह यहाँ नहीं, अन्य द्रव्यों का जो 'भाव' अनुभाग, उसकी शक्ति, 'भाव' उससे भिन्न—उसका लक्ष्य छोड़कर उससे भिन्न, जब उसका लक्ष्य छोड़े तब विकार का लक्ष्य भी साथ में छूट जाता है। आहाहा! - ऐसा मार्ग है।

वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से... अन्य द्रव्य के भाव से... यह अर्थ किया है। उसमें 'मोक्षमार्गप्रकाशक' में भिन्नरूप उपासित होता हुआ, स्वयं अर्थ यह किया है। क्या कहा? यहाँ आत्मा ज्ञायकभाव शुद्ध चैतन्यस्वभावभाव त्रिकाल, स्वयं शुभाशुभरूप नहीं हुआ, ऐसे शुद्ध स्वभाव को 'शुद्ध' क्यों कहा? है तो वह त्रिकाल शुद्ध परन्तु जिसने अन्य द्रव्य के भाव का लक्ष्य छोड़ा, और स्वद्रव्य की पर्याय में उसका सेवन किया... आहाहा! उसका अर्थ यह हुआ कि अन्य द्रव्य के भावों से लक्ष्य छूटा, अर्थात् स्वद्रव्य के भाव तरफ की उपासना हुयी, अर्थात् विकार का लक्ष्य भी इसके साथ में छूट गया। आहाहा! मूलमार्ग-ऐसा है भाई!

यह तो 'दर्शनशुद्धि' की व्याख्या है। आहाहा! मूल रकम, मूल रकम है यह पवित्र शुद्धज्ञायक है। परन्तु 'है' वह किसे ख्याल में आये? 'है' यह किसकी प्रतीति में आये? 'है' उसका ज्ञान किसको हो? है तो है। आहाहा! अन्य द्रव्य एवं अन्य द्रव्य के भाव का लक्ष्य छोड़कर जो अन्य द्रव्य के भाव में अस्तित्वपने का जोर है, वह छोड़कर और उससे छूटा अर्थात् अंतर चैतन्य ज्ञायकभाव, की ओर उसकी पर्याय गयी, आहाहा! यह पर्याय ने उसका सेवन किया। आहाहा! यह पर्याय जो वर्तमान ज्ञान और श्रद्धा की पर्याय है, यह पर के लक्ष्य को छोड़कर अपने चैतन्य के ज्ञायकभाव के लक्ष्य में जहाँ आया तब उसकी पर्याय में शुद्धता का सेवन हुआ, अर्थात् शुद्धता में एकाग्रता हुयी, एकाग्रता हुयी, इससे ज्ञात हुआ कि 'यह' शुद्ध है। सूक्ष्म बात है बापू! आहाहा!

चैतन्यधाम प्रभु स्वयं ज्योति सुखधाम... उसका सेवन अर्थात् पर के आश्रय का लक्ष्य छोड़कर, और स्व चैतन्य ज्ञायकभाव, उसका लक्ष्य करने पर... यह लक्ष्य कब हो? कि उसकी पर्याय में उस तरफ का झुकाव हो तब, तो उस पर्याय में द्रव्य का सेवन हुआ है? '**वह समस्त द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप से उपासित होता हुआ,**' वस्तु तो शुद्ध है, परन्तु भिन्नरूप से उपासित होता हुआ, उसे शुद्ध कहते हैं। उसे शुद्धपना ज्ञात हुआ। पर्याय में-शुद्धदशा में यह शुद्ध है—ऐसा ज्ञात हुआ। उसे शुद्ध कहा जाता है। आहाहा! समझ में आता है? है सामने?

एक और भगवान ज्ञायकभाव और एक तरफ, दूसरे सभी अनन्ता द्रव्य। यहाँ कर्म का मुख्यपना है, उसके तरफ का जो लक्ष्य है, आहाहा! यहाँ से (त्रिकाली से) लक्ष्य तो अनादि से छूट गया। इसलिए उसकी पर्याय में 'यह शुद्ध है'—ऐसी तो दृष्टि हुई नहीं। इसलिए भिन्नरूप से सेवन करता हुआ', अन्य द्रव्यों के भावों को (अपने) द्रव्य से भिन्न करने पर भिन्न करते हुए, इसका अर्थ यह कि द्रव्य ऊपर लक्ष्य जाने पर, यह लक्ष्य गया यह वर्तमान में पर्याय में शुद्धता हुई, उस शुद्धता द्वारा 'यह शुद्ध है'—ऐसा ज्ञात हुआ। आहाहा! उसे शुद्ध है। जिसे शुद्ध है, उस पर्याय में अशुद्धता ज्ञात होती है और अशुद्धता ऊपर ही जिसका अनुभव और पर्याय ऊपर जिसकी रुचि, दृष्टि है, उसे तो शुद्ध है ही नहीं। वस्तु भले शुद्ध है, परन्तु उसे शुद्ध है ही नहीं। आहाहा! गजब बात है!

समयसार (में)!! उसकी एक एक गाथा, एक एक पद, सर्वज्ञ अनुसारिणी भाषा है। त्रिलोकनाथ सर्वज्ञ परमेश्वर के द्वारा कही हुई वस्तु ही यह प्रभु-सन्त कहते हैं। आहाहा! और यह न्याय से इसके ख्याल में आ सकता है। न्याय से ख्याल में आए, फिर अन्दर जाय तो अनुभव हो। आहाहा! एक पद शेष था न कल, कारण कि उसका कहीं स्पष्टीकरण शीघ्र नहीं हो सकता। आहाहा!

यह ही ज्ञायक है वह... ही... वह... ही अर्थात् वह... ही.. वह... ही... अर्थात् ज्ञायक है, वही है। तेज (प्रकाश) नहीं, वही। यह त्रिकाल ज्ञायक स्वरूप, जिसमें पर्याय नहीं, जिसमें शुभाशुभभाव नहीं, जिसमें प्रमत्त-अप्रमत्त भेद नहीं। आहाहा! ऐसी वस्तु है न, आहाहा! '**समस्त अन्यद्रव्य के भावों से** भिन्न अन्य, आहाहा! तीर्थंकर भी यहाँ तो नोकर्म में है, वास्तव में तो कर्म जो अन्दर है, उसके तरफ का उदय भाव जो है, उसके तरफ का लक्ष्य छोड़ करके, आहाहा! स्वयं ज्ञायक चैतन्यमूर्ति प्रभु है। आहाहा! चैतन्यचन्द्र है प्रभु तो, आहाहा!

वस्तु जिन (स्वरूप) 'घट घट अन्तर जिन वसे, घट घट अन्तर जैन', आहाहा! परन्तु 'मत मदिरा के पान सों मतवाला समझे न'। जिसका राग (करने को) अभिप्राय एवं पर की रुचि ऐसी (रुचि) वालों को, यह वस्तु है तो जिनस्वरूप। है तो शुद्ध, शुद्ध कहो, जिनस्वरूप कहो, ज्ञायक कहो, ध्रुव कहो, अभेद कहो, सामान्य कहो (एक ही बात है) आहाहा! ऐसी वस्तु होने पर भी, अज्ञानी का पर के ऊपर लक्ष्य है, इसलिए उसके पास यह द्रव्य मौजूद है, उसकी उसको खबर नहीं। आहाहा!

एक समय की पर्याय के समीप प्रभु मौजूद है, भगवान अनाकुल आनन्द का नाथ, एक समय की पर्याय जो है ज्ञान की जाननेरूप, इस पर्याय के नजदीक ही प्रभु है। पूरा ध्रुव चिदानन्द प्रभु पास में मौजूद है, परन्तु वहाँ उसकी नजर न होने से... आहाहा! (समयसार) १७-१८ गाथा में तो—ऐसा कहा कि उसकी वर्तमान ज्ञान की पर्याय... सूक्ष्म बात है बापा! आहाहा! प्रभु!

तुम्हारी प्रभुता का पार न मिले। आहाहा! उसकी प्रभुता की पूर्णता का कथन करना मुश्किल है। आहाहा!—ऐसा तू सर्वोत्कृष्टनाथ अन्दर बिराजमान है। आहा! उसे एक समय की पर्याय के एकत्ववाले को, वह नजदीक है, वह नजर में (आता नहीं)। पर्याय का स्वभाव तो—ऐसा है, क्या कहा?

ज्ञान की एक समय की पर्याय का स्वभाव तो ऐसा है, कि पूरे द्रव्य (को) यह जानता है। समझ में आया? आहाहा! एक समय की प्रगट जो पर्याय है ज्ञान की, वर्तमान, उसमें यह द्रव्य ही जानने में आता है, परन्तु अज्ञानी की दृष्टि वहाँ नहीं, आहाहा! अनादि की अज्ञानी की दृष्टि दया, दान, व्रत, काम, क्रोध के परिणामों पर है, अथवा उसे जाननेवाली एक समय की पर्याय... बस, यह वहीं खड़ा हुआ है। आहाहा! वह मिथ्यादृष्टि है, सत्यदृष्टि से विरुद्ध दृष्टि है। सत्य जो प्रभु ज्ञायकभाव कहो, सत्यार्थ कहो, भूतार्थ कहो, सत्साहेब पूर्णानन्दप्रभु, आहाहा! उसके ऊपर इसकी नजर नहीं। है तो ऐसी यह वस्तु है, ज्ञात होती ही है। क्या कहा?

ज्ञान की पर्याय में जानने में तो आती है, यही परमात्मा कहते हैं, प्रभु-ऐसा कहते हैं। त्रिलोकनाथ, जिनेश्वरदेव, उनका अनुसरण करनेवाले सन्तों-ऐसा कहते हैं कि प्रभु-ऐसा कहते हैं। प्रभु! एकबार सुनो। तुम्हारी ज्ञान की वर्तमान एक समय की दशा, उसका स्व-पर प्रकाशक स्वभाव होने से, चाहे तुम्हारी नजर वहाँ न हो, परन्तु पर्याय में द्रव्य ही ज्ञात होता है। आहाहा! अरेरे! ऐसी बात कहाँ है? कहाँ जाना है कौन है, (जीव को) उसका पता नहीं लगे। आहाहा!

भगवान आत्मा... त्रिलोकनाथ—ऐसा कहते हैं, प्रभु तुम जितने महान प्रभु हो, इतना तुम्हारी एक समय की पर्याय में, अज्ञानदशा में भी पर्याय में ज्ञात होता है। क्योंकि ज्ञान की पर्याय का स्वभाव है स्वपरप्रकाशक, तो इस पर्याय में स्व प्रकाशित तो है। परन्तु तुम्हारी नजर वहाँ नहीं। आहाहा! तुम्हारी नजर हीं दया की.. भक्ति की.. व्रत पाले.. पूजा वगैरह की—ऐसा जो राग, उसके ऊपर तुम्हारी नजर है। उस नजर के कारण राग से भिन्न जो राग को जाननेवाली ज्ञानपर्याय है, वही पर्याय स्व को जाननेवाली है, परन्तु उसमें तुम्हारी नजर नहीं होने से, तुम्हें राग और पर्याय जानने में आती है, वह मिथ्याबुद्धि है, मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया?

परन्तु जिसकी दृष्टि परद्रव्य और भाव से हट गयी, आहाहा! एवं पर्याय के भेद... पर्याय इसमें नहीं, इसलिये पर्याय में से लक्ष्य छूट कर... आहाहा! अन्य द्रव्यों के भाव से लक्ष्य छूटा, तो राग से भी छूटा और राग से छूटने से पर्याय पर से भी लक्ष्य छूट गया। आहाहा! ऐसी बात है बापू!

सम्यग्दर्शन की, धर्म की पहली वस्तु ऐसी वस्तु है। अधिकतर लोग यों ही जिन्दगी बिताकर तत्त्व की दृष्टि किये बिना चले जायेंगे। वह तो चौरासी के अवतार करेंगे बापा! चौरासी

के अवतार! वह कोई तुम्हारा नहीं और तुम उसके नहीं। वहाँ जाकर जन्मोगे! आहाहा! तो एक बार जहाँ प्रभु है, वहाँ नजर करो न! जहाँ भगवान चैतन्य स्वरूप है प्रभु, अकेला अखण्ड आनन्दकन्द पूर्णानन्द चैतन्यरस से भरपूर जिनस्वरूप आत्मा है। यह त्रिकाल जिनस्वरूपी प्रभु वीतराग है। उसे पर का लक्ष्य छोड़कर, राग का लक्ष्य छोड़कर... राग को जाननेवाली पर्याय (का) लक्ष्य छोड़ा तो उससे भी लक्ष्य छूट गया। आहाहा! और उसका लक्ष्य जब आत्मा ऊपर गया, तब पर्याय में शुद्धता प्रगटी। छठवीं गाथा बहुत मुद्दे की रकम है। आहाहा!

समस्त अन्य द्रव्यों (के) समस्त... समस्त लिया न? उसमें तीर्थंकर आये एवं तीर्थंकर की वाणी आयी—उसके ऊपर से भी लक्ष्य छोड़ दो। आहा! '**समस्त अन्य द्रव्य**' और उसके '**भाव**' आहाहा! भगवान का भाव तो केवलज्ञान, कर्म का भाव पुण्य-पाप का रस, इन सभी से लक्ष्य छोड़ दो। आहाहा! अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप उपासित होता हुआ, इसे राग से, निमित्त से भिन्न, आत्मा ज्ञायक भगवान पूर्णस्वभाव से भरपूर जिनचन्द्र वीतरागी शीतल स्वभाव से पूरा भरा हुआ भगवान, उसके ऊपर लक्ष्य जाने पर, अर्थात् कि उसकी पर्याय में उसका लक्ष्य होने पर, अर्थात् कि उसकी पर्याय में द्रव्य का लक्ष्य होना, वह उसकी सेवा है। आहाहा! यह द्रव्य की सेवा। आहाहा! कितना भरा है इसमें, हों? आहाहा! ***अरेरे! जगत कहाँ रहा है किस ओर चला जा रहा है; अनादि से भटकता, चौरासी के अवतार कर-करके कौआ-कुत्ता निगोद के भव करके मिथ्यात्व में भटकते हुए मरा है, साधु भी हुआ अनन्त बार, दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ, परन्तु दृष्टि राग और पर्याय ऊपर है। आहाहा!***

जहाँ भगवान पूर्णस्वरूप है उसकी उपासना... उसका अर्थ कि उसका स्वीकार, उसका सत्कार, अर्थात् कि उसका आश्रय। '**यह भिन्नरूप उपासित होता हुआ' शुद्ध कहलाता है।** यह राग और पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, स्वरूप की सेवा करनेवाले, अर्थात् कि स्वरूप का लक्ष्य होने पर उसकी पर्याय में जो शुद्धता होती है, उस शुद्धता ने द्रव्य का सेवन किया, अर्थात् शुद्धता ने द्रव्य को स्वीकारा, यह शुद्धता की पर्याय से शुद्धद्रव्य को स्वीकार किया। इसलिए शुद्ध की पर्याय में शुद्ध ज्ञात हुआ, उसे शुद्ध कहा जाता है। आहाहा! भाई! यह तो गम्भीर भाषा है!!

यह तो उन्नीसवीं बार पढ़ा जाता है। समयसार पहले से अन्त (तक) कभी डेढ़ वर्ष, कोई बार दो वर्ष, किसी बार ढाई वर्ष, इस प्रकार अठारह-अठारह बार चल चुका है। यह उन्नीसवीं बार प्रारम्भ होता है। आहाहा! गजब बात है।

वीतराग त्रिलोकनाथ की वाणी, यह सन्त आड़तिया होकर प्रसिद्ध करते हैं। प्रभु! तुम कौन हो? यह तुम्हें कब ख्याल आये? तुम हो ज्ञायक, जिसमें शुभाशुभभाव है ही नहीं, इसलिए इसमें पर्याय भेद है ही नहीं, परन्तु यह तुम्हें कब ख्याल में आये? है तो है, शुद्ध। तुम जब पर

का लक्ष्य छोड़कर और द्रव्य को ध्येय बनाओ, द्रव्य को ध्येय बनाकर जिस पर्याय में इसका सत्कार हुआ, उपासना हुई, शुद्धता प्रगटी, उस सम्यग्दर्शन-ज्ञान की पर्याय में यह शुद्ध है—ऐसा जानने में आता है। समझ में आया? आहाहा! ऐसी बात है, कठिन बात है, बापू! ***लोगों को वीतरागमार्ग मिला नहीं, बाहर की प्रवृत्ति, यह राग मार्ग, संसार मार्ग है, अभी तो उसमें पड़ा है, (रचा) पचा है, पूजा, भक्ति, व्रत और तप उपवास, यह सभी रागमार्ग है, अन्यमार्ग है, वह जैनमार्ग नहीं। आहाहा!***

यहाँ प्रभु ऐसा कहते हैं, तुम्हारी प्रभुता कैसी है, यह तुमने पूछा था और उसका 'स्वरूप' जानना चाहिए—ऐसा तुमने पूछा था, तब इसका उत्तर यह है कि इस वस्तु को पर (द्रव्य) का सम्पूर्ण लक्ष्य, सम्पूर्ण परद्रव्य और (पर) भाव का लक्ष्य छोड़कर, पूर्ण ज्ञायकभाव शुद्धभाव ऊपर (लक्ष्य) जाने पर जो पर्याय में शुद्धता होती है, सम्यग्दर्शन होता है, उस जीव को यह शुद्ध है—ऐसा कहा जाता है। पर्याय की शुद्धता का भान हुआ, सम्यग्दर्शन हुआ, यह अन्तर का लक्ष्य करके, आश्रय करके, सत्कार एवं स्वभाव का सम्मान करके, तब उस जीव को यह शुद्ध है—ऐसा कहा जाता है। कठिन बात है बापा! आहाहा! क्या हो?

यह अनन्तकाल यों का यों चला गया। जैन (कुल) में अनन्त बार जन्मा, अनन्त बार भगवान के समवसरण में भी गया। आहाहा! परन्तु यहाँ (ज्ञायक तरफ) जहाँ जाना है, वहाँ नहीं गया, और उसकी विधि क्या है, उसकी भी खबर नहीं हुई। आहाहा! इस एक पंक्ति में ऐसा भाव भरा है, इसका तो पार पड़े—ऐसा नहीं, बापा! आहाहा! यह भगवान की वाणी और उसका भाव, जो अन्तर में भासित होता है, उतना तो भाषा में आये नहीं। आहाहा! साक्षात् ऐसी वाणी मौजूद है देखो न। आहाहा!

यह ज्ञायकभाव, पुण्य-पापरूप हुआ नहीं। अर्थात् पुण्य-पाप के होनेवाले, उसका कारण जो शुभाशुभभाव, उसरूप प्रभु ज्ञायकभाव तो हुआ ही नहीं। इसलिए वह प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय उसमें नहीं। आहाहा! चौदह गुणस्थानों के भेद भी इसमें नहीं।—ऐसा जो अभेद भगवान ज्ञायकशुद्ध, एकरूप प्रभु वह, किसे शुद्ध कहलाये? कौन उसे शुद्ध कहे? कि जो शुद्ध तरफ का सत्कार करके और परद्रव्य का जिसे आश्रय और सत्कार छूट गया है.. आहाहा! भगवान पूर्णानन्द के सिवाय, परवस्तु की कोई भी महानता, विशेषता, अचिंत्यता, चमत्कार सब छूट गया है, आहा! महान हूँ तो मैं, शुद्ध हो तो भी मैं, चमत्कारिक वस्तु हो तो भी मैं, प्रभु होय तो मैं। समझ में आया? आहाहा!-ऐसा है, ***अरे रे! जिन्दगी संसार में मजदूरी करके चली जाती है। सभी मजदूरी हैं—यह पत्नी, बच्चे और धन्धा, राग का बड़ा मजदूर है। आहाहा! और कदाचित् शुभभाव में आया तथा शुभ करे तो भी यह राग की मजदूरी है। मजदूर आहाहा! शुभराग यह***

मजदूरी है, यह तुम्हारी चीज़ नहीं प्रभु! तुम्हारी चीज़ में तो पर्याय भी नहीं—ऐसी चीज़ को ग्रहण करने से जो पर्याय होती है, यह पर्याय (की) शुद्धता में यह शुद्ध है—ऐसा ज्ञात होता है। आहाहा!

यह दया-दान के विकल्प एवं व्रत के भावों से यह ज्ञात हो-ऐसा नहीं। कारण कि यह तो राग है। यह तो दु:ख है, राग है। यह व्रत, तप, भक्ति, पूजा, यह तो राग-दु:ख है, आहाहा! और भगवान तो आनन्दस्वरूप है, अतीन्द्रिय आनन्द की गाँठ है। आहाहा! उसकी सेवा अर्थात् उसका सत्कार, उसका आदर, अन्य सभी वस्तुओं से उसकी महानता भासने पर जो पर्याय में निर्मलता प्रगट हो, उसको यह आत्मा शुद्ध है—ऐसा कहा जाता है। आहाहा! गजब बात है न? यह प्रभु के वचन है, बापू! शेष सभी नि:सार है। आहाहा! समझ में आया? कुछ अर्थात् समझ जाये तब तो प्रभु! अलौकिक बात है। परन्तु कुछ समझ में आया है? अर्थात् किस रीति (पद्धति) से कहा जाता है? किस रीति से कहते हैं, इसकी गन्ध आती है (समझ आती है)? इसप्रकार। आहाहा!

अरे रे! इसने मूल बात छोड़कर अन्य बात पकड़कर अनादि से बैठा (है) आहाहा! मूल भगवान स्थित है, वहाँ जाता नहीं; गरीब, पामर, पुण्य और पाप के भाव, भिखारी रंक है। पामर है। पामरता को पकड़कर बैठा है, एक समय की पर्याय भी पामर है। आहाहा!

सम्यग्दृष्टि जीव को पूर्णता का ज्ञान, पर्याय में होने पर भी यह पर्याय, केवलज्ञान के समक्ष भी पामर है। तब जहाँ अभी पर्याय में, क्या वस्तु है, ज्ञात हुई नहीं एवं पर में जानकर स्थित है, यह तो भिखारी में भिखारी पर्याय है, दीन पर्याय है। जिसमें भगवान आया नहीं। जिस पर्याय में दीन पुण्य एवं पाप, दया और दान, व्रत और भक्ति, राग जिसमें आता है, यह पर्याय तो भिखारी, आहाहा! पामर है।

यहाँ तो ऐसी पर्याय में, जो अन्य द्रव्य की सेवा से भिन्न हुई और शुद्ध चैतन्य मूर्ति प्रभु है, पर्याय में उसका आदर हुआ, उसका सत्कार हुआ, तब पर्याय में सम्यग्दर्शन हुआ, उस सम्यग्दर्शन ने यह शुद्ध है-ऐसा जाना। आहाहा! यह सम्यग्दर्शन भी केवलज्ञान के पास पामर है और त्रिकाली वस्तु की तुलना में भी पामर है। आहाहा!

नित्य प्रभु, शुद्ध चैतन्यधातु, चैतन्यधातु चैतन्यपना ही जिसने धारण कर रखा है, जिसमें पुण्य एवं पाप, दया-दान, व्रत, विकल्प की गन्ध नहीं। चौदह गुणस्थान (रूप) पर्यायों की जिसमें गन्ध नहीं। आहाहा! तेरहवाँ गुणस्थान 'सयोगीकेवली' यह भी जिस वस्तु में नहीं, कारण कि वह तो पर्याय है। आहाहा! ऐसे भगवान को जिसने शोधा, साधा और शुद्ध है, इस प्रकार पर्याय में अनुभव हुआ, उसे यह आत्मा ज्ञायक एवं शुद्ध है, भूतार्थ है—ऐसा कहा जाता है।

आहाहा! ऐसी बात है बापू, अभी तो मुश्किल लगे-ऐसा है। अभी तो श्रद्धा के नाम पर बड़ा घोटाला है। चाहे महाव्रत पाले एवं भक्ति करे तथा व्रत करे और मन्दिर में करोड़ रुपया खर्च करे, यह सभी घोटाला है।

श्रोता : छिलका कूटते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री : छिलका कूटते हैं। ***कदाचित राग की मन्दता हो तो यह थोथा पुण्य है। आहाहा! इसमें जन्म-मरण का अन्त नहीं, प्रभु! यह तो सभी जन्म-मरण का बीज है, आहाहा! यह शुभभाव भी मेरा है एवं मैं करता हूँ—ऐसा मिथ्यात्वभाव... आहाहा! यह अनन्त चौरासी के अवतारों का गर्भ है, इसमें से अनन्त अवतार निगोद और नरक के पशु के-ढोर के अवतार होंगे।*** आहाहा! वहाँ किसी की सिफारिश काम नहीं आये कि हमने बहुतों को समझाया था न... बहुतों को जैन वाड़ा में एकत्रित किया था न... आहाहा! बापू! यह वस्तु भिन्न है। आहाहा!

यहाँ तो बोलने का विकल्प भी जहाँ हमारा नहीं। आहाहा! भगवान तीन लोक के नाथ आत्मा एवं उनकी वाणी भी हमारी नहीं, आहा! उसके लक्ष्य में जाऊँ तो मुझे राग हो, यह लक्ष्य छोड़कर चैतन्यभगवान ज्ञायकभाव परमपिण्ड प्रभु विद्यमान है, एक समय की पर्याय के पास ही विद्यमान है, वहाँ नजर करने से, जिस नजर में सम्यग्दर्शन होता है, सम्यग्ज्ञान होता है, उसे यह आत्मा शुद्ध है—ऐसा कहा जाता है। समझ में आया? छठवीं एवं ग्यारहवीं गाथा तो अलौकिक है। यह तो अन्तिम एक पद की व्याख्या चलती है। आहाहा! इसका पार नहीं, आहाहा! सम्यग्दृष्टि-ज्ञानी सन्त, आत्मा के आनन्द का अनुभव करनेवाले। आहाहा! ऐसे सन्तों की वाणी का क्या कहना?

'वह ही' अर्थात् ज्ञायक, वह पुण्य-पापरूप हुआ नहीं, प्रमत्त-अप्रमत्तरूप हुआ नहीं। **वह ही,** उसी वस्तु को। **'समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्नरूप उपासित होता हुआ'** उसकी सेवा करे तो। उसको सेवा अर्थात् दृष्टि में सत्कार एवं आदर करे तब उसे यह द्रव्य शुद्ध है। आहाहा! देखो, इतना चला।

अब चौथे पद की व्याख्या, सूक्ष्म है प्रभु! क्या हो सकता है? **प्रभु का मार्ग है वीरों का कायरों का काम नहीं वहाँ।** आहाहा! यह पुण्य-पाप में-पुण्य में धर्म एवं पाप में अधर्म माननेवाले पामर मिथ्यादृष्टि... कहते हैं, ऐसे जीवों का यहाँ काम नहीं। आहाहा! यहाँ तो पुरुषार्थी... आहाहा! अन्तर स्वरूप का स्वीकार करनेवाला पुरुषार्थी है, यह तो ऐसे पुरुषार्थवालों की बातें हैं। आहाहा!

अब चौथे पद की व्याख्या चलती है। **दाह्य के आकार होने से अग्नि को दहन कहते हैं।** क्या कहते हैं? अग्नि को 'जलानेवाली' कहा जाता है। यह जलने योग्य पदार्थ के आकारवाली

होने से, यह लकड़ी को कण्डे को जलाये तब, आकार तो वैसा होता है न.. ? जैसा कण्डा और लकड़ी है उसका—ऐसा आकार होता है। परन्तु यह आकार कहीं उसके कारण नहीं हुआ, वह तो अग्नि का आकार है। सूखा हुआ गोबर हो 'सुखा हुआ' समझे ? जो यों ही गोबर पड़ा हो, एवं सूख गया हो और गोबर इकट्ठा करके थापें, वह कण्डा, वह गोबर पड़ा हो एवं सूख गया हो, उसे काठियावाड़ में 'अड़ायुछाणु' कहते हैं। तुम्हारे यहाँ कुछ कहा जाता होगा। तो वह गोबर जैसा सूखा हो, उसे अग्नि जलाये तो आकार तो वैसा ही हो परन्तु वह आकार तो अग्नि का है। इसका (गोबर का) नहीं। जलने योग्य वस्तु के आकार की हुई, इसलिए दाह्य के आकाररूप अग्नि, पराधीन हुई—वह जलनेयोग्य के आकार हुई पराधीन-ऐसा नहीं। आहाहा! अभी तो यह दृष्टान्त है, हों! आत्मा में तो बाद में घटायेंगे। आहाहा! अरे!!

'दाह्य के (जलने योग्य पदार्थ के) आकाररूप'... अर्थात् ? जो कण्डा, लकड़ी, कोयला, उनके आकाररूप अग्नि होने से **दहन-जलानेवाली कहलाती है।** है न ? दहन अर्थात् जलानेवाली। **'तथापि उसे दाह्यकृत अशुद्धता नहीं...'** जलनेयोग्य पदार्थ का जैसा आकार यहाँ हुआ, इसलिये उसकी अपेक्षा से वहाँ आकार हुआ है, ऐसी अशुद्धता-पराधीनता उसको नहीं। यह अग्नि का आकार हुआ है, वह स्वयं से हुआ है। ऐसे आकाररूप अग्नि स्वयं से हुई है। यह कण्डा और लकड़ी और कोयला के आकाररूप अग्नि हुई, इसलिए वह जलनेयोग्य आकाररूप हुई, तो जलानेयोग्य अग्नि को पर की पराधीनता है-ऐसा नहीं। आहाहा! है ?

जलनेयोग्य पदार्थों के आकाररूप होने से अग्नि को 'दहन' कहा जाता है... 'दहन' (ऐसा आया) तो आवाज ऐसी आयी कि जलनेयोग्य हो, उसे जलाती है अर्थात् कि उसके आकाररूप हुई-ऐसा नहीं है। उस समय अग्नि अपने आकाररूप हुई है। आहाहा! जलनेयोग्य पदार्थ के आकाररूप अग्नि हुई, वह अग्नि अपने आकाररूप स्वयं अपने से हुई है। आहाहा! समझ में आया ? अभी तो यह दृष्टान्त है। फिर, सिद्धान्त तो अन्दर उतरेगा।

तथापि दाह्यकृत... जलने योग्य पदार्थ के आकाररूप होने से, अशुद्धता अग्नि को नहीं। यह अशुद्धता अग्नि को, उसके कारण नहीं। वह तो अग्नि अपने आकाररूप हुई है, जो आकार है, वह अग्नि का आकार है; जलनेयोग्य पदार्थ का यह आकार नहीं। आहाहा! **'उसी प्रकार ज्ञेयाकार होने से..'** ज्ञानस्वरूपी प्रभु, ज्ञेय-ज्ञात होनेयोग्य, पदार्थों का आकार यहाँ होने से, वह मानो कि ज्ञेयकृत आकार है-ऐसा नहीं; वह तो ज्ञान का अपना ही आकार इस प्रकार परिणमा है। आहाहा!

फिर से... एकदम समझ में आये यह-ऐसा नहीं, आहाहा! जैसे जलनेयोग्य के आकाररूप अग्नि होने से, अग्नि को जलनेयोग्य पदार्थ की अशुद्धता अर्थात् पराधीनता उसे नहीं। अग्नि

स्वयं ही उस आकाररूप हुई है। *उसी प्रकार ज्ञेयाकार ज्ञान में शरीर, वाणी, मन, मकान, पैसा—ऐसा आकार दिखे... उसके आकाररूप यहाँ ज्ञान हुआ, इसलिए वह ज्ञेयाकार की अपेक्षा से हुआ—ऐसा ज्ञान के आकार को पराधीनता नहीं। ज्ञान स्वयं, खुद उसरूप उस आकाररूप हुआ है। पर को जानने के समय, पर वस्तु जैसी है, उस आकाररूप ज्ञान हुआ, परन्तु वह ज्ञान, (जो) जानने लायक है उसके कारण हुआ है-ऐसा नहीं। वह ज्ञान ही स्वयं उस आकाररूप (खुद) परिणमा है स्वयं से स्वतन्त्र। अरे! अरे! 'ज्ञेयाकार होने से...' अर्थात् ? अब जरा सूक्ष्म लेते हैं। यह राग होता है न ? समकिती-ज्ञानी को जो राग होता है, तो राग जैसा यहाँ ज्ञेयाकार होता है, राग के जैसी यहाँ ज्ञान की पर्याय हो, परन्तु इसलिए ज्ञान की पर्याय राग के कारण हुई है-ऐसा नहीं। आहाहा! यह ज्ञान की ही पर्याय उस आकाररूप परिणमे—ऐसी स्वतन्त्र अपने से हुई है। आहाहा!*

धर्मी जीव को आत्मज्ञान हुआ है, उसे अभी राग आता है तब राग के आकाररूप यहाँ ज्ञान होता है, **पर्याय में जैसा राग है, वैसा यहाँ ज्ञान होता है परन्तु उससे वह ज्ञानाकार राग के आकाररूप हुआ, इसलिए पराधीनता है-ऐसा नहीं। यह ज्ञानाकार राग का ज्ञान होकर, ज्ञानाकार ज्ञान स्वयं स्वयं से परिणमा है। यह ज्ञेय-राग के कारण नहीं। किसे यह पड़ी है ?** पूरी दुनियाँ, आहाहा! बाईस घण्टे, तेईस घण्टे पत्नी, बच्चे, व्यापार पाप, अकेला पाप बापू! एकाध घण्टे का समय मिले, सुनने जाये, वहाँ सभी उल्टा कहें, पूरा उसका घण्टा लूट लेते, तुम्हें ऐसे धर्म होगा और तुम्हें ऐसे होगा। तुम्हें इससे होगा! आहाहा! अरे.. जिन्दगी चली जाती है।

परमात्मा की पुकार है प्रभु! तुमने तुम्हारे स्वभाव से स्वभाव को स्वीकार करके शुद्धता जानी, अब यह शुद्धता जो पर्याय में आयी, हुई यह ज्ञान, उसमें अभी भी रागादि होता है, यह राग का ज्ञान यहाँ होता है, इसलिए वह राग जैसा है, वैसा ही ज्ञान यहाँ होता है, इसलिए ज्ञेयकृत अशुद्धता यहाँ हुई-ज्ञान उस आकाररूप हुआ, इसलिए ज्ञेयकृत अशुद्धता हुई-ऐसा नहीं। यह ज्ञान का स्वभाव ही, उस प्रकार (हुआ है) राग सम्बन्धी ज्ञान, अपना स्वयं से हुआ है, ऐसी उसकी स्वाधीनता है। आहाहा! वीतराग का मार्ग सूक्ष्म है बापू! अरे! अभी तो कहीं मिलता नहीं भाई! क्या कहें ? सुनने मिलता नहीं, करे तो कहाँ से ? आहाहा!

क्या कहते हैं ? कि सम्यग्दृष्टि को अपनी पर्याय में शुद्ध त्रिकाली (वस्तु) है—ऐसा ज्ञात हुआ, इसलिए उसे शुद्ध कहा। अब इस तरफ इस तरफ जाने पर शुद्ध की पर्याय प्रगटी, उसमें शुद्ध ज्ञात हुआ, इसलिए इसे शुद्ध कहा। अब दूसरी तरफ रागादिक जानने में आते हैं, अभी राग शेष है, *यह राग ज्ञात होता है, इसलिये वह 'राग का ज्ञाता है' वैसा ज्ञान है ? तो कहते हैं 'ना'। यह राग सम्बन्धी ज्ञान, रागाकारे हुआ, वह ज्ञान अपने आकाररूप हुआ है। यह राग के कारण हुआ नहीं, अपने स्व-पर प्रकाशक स्वभाव के कारण यह पर प्रकाशरूप ज्ञान हुआ है। आहाहा!* समझ में आया कुछ ? भाषा समझ में आती है न ?—ऐसा मार्ग है, भाई! क्या करें ? आहाहा!

यहाँ तो समकिती को ज्ञानी को आत्मा का ज्ञान हुआ कि त्रिकाल शुद्ध है।—ऐसा पर्याय में ज्ञान हुआ, इसलिए उसे शुद्ध कहा जाता है। अब, इसकी पर्याय में राग होता है और उसकी पर्याय में यह शरीर, मकान आदि ज्ञात होता है। वह ज्ञान, वह जैसा ज्ञेय है, उस आकाररूप यहाँ ज्ञान होता है, इसलिए वह ज्ञान की पर्याय ज्ञेय के कारण (हुई) इतनी पराधीनता है? तब कहते 'ना'। यह ज्ञेयकृत ज्ञान हुआ नहीं, यह ज्ञान का अपना स्वभाव ही परप्रकाश का उसप्रकार का उसरूप हुआ है। आहाहा! गहन विषय है बापू!

अरेरे! सत्य हाथ न आये, तब तक मर जानेवाला है बेचारा। चौरासी के अवतार में भटक-भटक करके कचूमर निकल गया है बापू! प्रभु तो कहते हैं कि तुम्हारे दुःख का एक क्षण, तुम्हारे एक क्षण का नरक का दुःख, प्रभु! करोड़ों भवों एवं करोड़ों जीभों से न कह सकें। ऐसे दुःख तुमने एक क्षण में भोगे हैं। ऐसे-ऐसे तेंतीस सागर और ऐसा अनन्त काल... आहाहा! भाई! इस मिथ्यात्व के कारण यह सब हुआ बापू! आहाहा! तब सम्यग्दर्शन बिना यह चौरासी के अवतार में मर जायेगा बापा! भटकने का कहीं अन्त नहीं आयेगा। भाई! आहाहा।

—ऐसा जो सम्यग्दर्शन, आहाहा! जिसने त्रिकाली शुद्ध को पकड़ा और ज्ञान की पर्याय में शुद्धता एवं आनन्द का स्वाद आया और 'स्वप्रकाशक' पर्याय ज्ञान की हुयी, अब उसको भी अभी पूरा केवलज्ञान नहीं, इसलिए उसे थोड़ा राग आता है, तो इस राग का यहाँ ज्ञान होता है। जैसा राग हो, मन्द राग तो मन्द का, तीव्र होय तो तीव्र का (ज्ञान होता है) तो यह राग, रागकृत ज्ञान के आकाररूप ज्ञान हुआ है? या ज्ञान की स्वयं की ज्ञानकृत, स्वयं का आकार इसप्रकार होने के कारण हुआ है? आहाहा! अब ऐसा सभी व्यापारियों को धन्धे के कारण सूझे कहाँ। आहाहा! बनियों को जैन धर्म मिला। आहाहा! मार्ग सूक्ष्म है भाई! ओहोहो! गजब बात करते हैं न!!

प्रभु! तुझे कहते हैं कि आत्मा का ज्ञान हुआ, परन्तु अब यह शुद्ध चैतन्य का ज्ञान हुआ, पर्याय में शुद्ध है—ऐसा भासित हुआ, परन्तु अभी इस पर्याय में जो राग होता है और उस पर्याय का ज्ञान अभी है, इसमें पर का ज्ञान, शरीर का, स्त्री का, कुटुम्ब का जिस प्रकार से (ज्ञेय होता) इसी प्रकार यहाँ ज्ञान होता है। तो यह ज्ञेय है, उसकी अपेक्षा से वैसा ज्ञान हुआ है? कि यह ज्ञान का परप्रकाशक का स्वतः स्वभाव होने से, पर की अपेक्षा बिना स्वयं ज्ञानकृत, पर का जानने का भाव (कार्य) हुआ, यह ज्ञाता का कार्य है। आहाहा! समझ में आया?

फिर से... यहाँ तो ज्ञात हुआ, उसे अब पर ज्ञात होता है, यह बात चलती है। आहाहा! जिसे आत्मा का ज्ञान नहीं, उसकी तो बात ही नहीं। यह तो पराधीन होकर, मिथ्यात्व में पड़ा भटककर मरनेवाला है। आहाहा! जिसे यह आत्मा ज्ञान स्वरूपी प्रभु! यह जिनस्वरूपी वस्तु, यह जिन के परिणाम में जिनस्वरूपी जानने में आया, शुद्ध परिणाम में शुद्धवस्तु ज्ञात हुई, उसे

शुद्ध कहा। अब, इस तरफ (क्या होता है) ? आहाहा ! कि इस तरफ ***ज्ञान की पर्याय अभी जैसा राग होता, द्वेष होता, उसी प्रकार वह ज्ञान वैसा ही जाने, इसलिए वह ज्ञान, उस ज्ञेय कृतता के कारण अशुद्ध है ? अर्थात् पराधीन है ? कि, नहीं। यह ज्ञान का उस समय का स्वभाव ही, स्व को प्रकाशने के समय, पर को प्रकाशने का स्वभाव स्वतः है, यह स्वतः रूप ज्ञान, राग को जानता हुआ परिणमता है। आहाहा! वह ज्ञायक का ज्ञान है, वह राग का ज्ञान नहीं-ऐसा कहते हैं। आहाहा!***

अरे रे ! यह वस्तु मिले नहीं (वहाँ) क्या करे ? आहा ! अरे ! अनन्त भव हुए, आहाहा ! जैन साधु हुआ, दिगम्बर साधु अनन्त बार हुआ, परन्तु उस राग की एकता तोड़कर स्वभाव का ज्ञान किया नहीं, और स्वभाव का ज्ञान होने में पर की कोई अपेक्षा है नहीं। अब यहाँ तो (ऐसा कहते हैं) पर का ज्ञान करने में भी पर की अपेक्षा नहीं। आहाहा ! समझ में आया ? समझ में आये उतना समझना प्रभु ! यह तो... तीन लोक के नाथ की बातें हैं बापा ! जिसे इन्द्र और गणधर सुनते (हैं), आहाहा ! यह बात, बापू ! कहीं साधारण बात नहीं है। आहाहा !

ज्ञेयाकार होने से उस भाव को... उस भाव को अर्थात् **ज्ञेयाकार हुआ जो ज्ञान उस भाव को, ज्ञायकता प्रसिद्ध है। ज्ञायकता** है यह प्रसिद्ध है, परन्तु यह **ज्ञायकता** है यह क्या ? 'तथापि ज्ञेयकृत अशुद्धता उसे नहीं', राग ज्ञात होता है एवं उसका यहाँ ज्ञान होता है, इसलिए राग की अपेक्षा रखकर ज्ञान हुआ है यहाँ, ऐसा नहीं। आहाहा !

विशेष कहने में आयेगा... समय हो गया।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

२३

श्री समयसार, गाथा ६ प्रवचन नं. २२
दिनांक ०१-०७-१९७९

जलने योग्य पदार्थ के आकाररूप होने से अग्नि को दहन अर्थात् जलानेवाली कहा जाता है। अग्नि, जलने योग्य पदार्थ के आकाररूप होने से, अग्नि को 'दहन' —ऐसा कहा जाता है, (—ऐसा) लगे कि पर को जलाती हो—ऐसा कहने में आता (है) कहा जाता है, ***तो भी दाहकृत अशुद्धता उसे नहीं।*** *यह अग्नि जो दाहरूप हुई, परन्तु यह कहीं जलने योग्य पदार्थ के कारण, अग्नि उस आकाररूप हुई-ऐसा नहीं। आहाहा!-ऐसा है! यह अग्नि स्वयं ही अपने स्वभाव से, स्वयं को प्रकाशित करती हुई और पर को प्रकाशित करती हुई स्वयं ही परिणमती है, अग्नि, अग्निरूप (परिणमति है)। यह जलाती है, उसके आकाररूप हुई अग्नि, इसलिए इतनी पराधीनता हुई-ऐसा नहीं। अग्नि, स्वयं ही स्वयं के आकाररूप परिणमित हुई है।* **ज्ञेयाकार हुआ, वह ज्ञानाकार स्वयं का** *है। - ऐसा है न ?*

तथापि दाहकृत अशुद्धता उसे नहीं 'इसी प्रकार, ज्ञेयाकार होने से,.. ज्ञायक जाननेवाले स्वभाव (ने) स्वयं को जाना और दूसरे पदार्थों के आकाररूप ज्ञान परिणमा, **ज्ञेयाकार होने से उस भाव को,** उस जाननेवाले भाव को **ज्ञायकपना प्रसिद्ध है।** 'जाननेवाला' है-ऐसा प्रसिद्ध है।' **तथापि उसे ज्ञेयकृत अशुद्धता नहीं** 'जाननेवाला' जानने योग्य के आकाररूप हुआ ज्ञान, फिर भी ज्ञेयपदार्थों के कारण यह ज्ञान की पर्याय हुई—ऐसा नहीं है। आहाहा! यह तो ज्ञानाकाररूप परिणमन ही स्वयं का इस जाति का है। स्व को जानता है और को जानने की पर्याय हुई, यह स्वयं से हुई है। रागादिक परवस्तु है, इसलिए यहाँ राग का ज्ञान उसरूप हुआ-ऐसा नहीं है। आहाहा! यहाँ तक तो आया था।

'कारण कि ज्ञेयाकार अवस्था में...' जो ज्ञान है यह जो ज्ञेय जाननेयोग्य पदार्थ के आकाररूप अवस्था में... **यह ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप जो ज्ञात हुआ,** यह तो ज्ञायकरूप ज्ञात हुआ है, पररूप ज्ञात हुआ है - ऐसा नहीं। आहाहा! जानने के प्रकाश भाव से, ज्ञेय को, राग को जानने पर भी यह राग के आकाररूप ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं, उसके कारण नहीं। यह तो स्वयं का स्वपर प्रकाशक स्वभाव है, स्व को प्रकाशित किया है और राग को प्रकाशता है, यह स्व की प्रकाशशक्ति के कारण प्रकाशित करता है। यह राग के कारण पर को प्रकाशता है—ऐसा ज्ञेयाकार

ज्ञेय के कारण अशुद्धता या पराधीनता हुई-ऐसा नहीं है। आहाहा! – ऐसा है। न्याय का तत्त्व सूक्ष्म बहुत। आहाहा! है ?

ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ.. देखो ? यह राग का ज्ञान हुआ – ऐसा कहना, यह व्यवहार है। यह राग सम्बन्धी का ज्ञान, ज्ञान का ज्ञान अपना हुआ है। आहाहा!

श्रोता : अपना ज्ञान कहना यह भेद हुआ न ?

पूज्य गुरुदेवश्री : भेद है, इतना कर्ता, कर्म सिद्ध करना है न ? क्योंकि यहाँ तो पर्याय को कर्ता सिद्ध करना है। स्व को जाननेवाला ज्ञान और पर को जाननेवाला, ज्ञान—ऐसा स्वपर प्रकाशक ज्ञान, वह इस ज्ञायक का कार्य है, कर्म है, आत्मा उसका कर्ता है। राग है... उसका यहाँ ज्ञान हुआ, इसलिए राग कर्ता है और ज्ञानकार या राग के आकाररूप ज्ञान, वह राग का कार्य है – ऐसा नहीं है। बहुत सूक्ष्म बात है, बापू! आहाहा! शुकनलालजी! यह शुकन की बात चलती है। प्रथम.. प्रथम आहाहा!

आचार्यों ने ऐसा कहा था न ? कि हमारा और पर का मोह नष्ट करने के लिये मैं कहूँगा। आहाहा! ऐसा अमृतचन्द्राचार्य ने उसमें से निकाला (कहा)। जैसे स्वयं निकाला तीसरे श्लोक में, कि मैं यह टीका करता हूँ, इसमें मेरी शुद्धता होना, क्योंकि अनादि की मुझे अशुद्धता है। मुनि हूँ, आचार्य हूँ, परन्तु अभी अशुद्धता का अंश अनादि का है, आहाहा! तब इस टीका के समय... लिखा—ऐसा है कि टीका से... परन्तु उसका अर्थ यह है कि टीका के काल में हमारा लक्ष्य (जोर) द्रव्य ऊपर है, उसके जोर से अशुद्धता टलेगी – ऐसा आचार्य स्वयं कहते हैं कि मैं जो यह समयसार कहूँगा, वह अपने भाव और द्रव्य स्तुति से कहूँगा और भाववचन एवं द्रव्यवचन से कहूँगा। आहाहा! सामनेवाले के द्रव्यवचन और द्रव्यस्तुति नहीं कही, सामनेवालों में तो अनन्त सिद्धों की स्थापना की है। यह स्थापित किया है (अर्थात् कि) जो स्थापित करता है, उसे वह स्थापा है—ऐसा कहने में आया है। आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि मैं यह '**वंदितु सव्वसिद्धे**' सर्व सिद्धों को मैंने अपनी पर्याय में स्थापा है, हमने उसका अर्थ '**वंदितु सव्वसिद्धे**' क्योंकि ध्येय जो साध्य जो आत्मा, उसके स्थान पर सिद्ध है, इसलिए सिद्धों को मैं नमस्कार करता हूँ, अर्थात् कि सिद्धों को (जो) मेरी पर्याय में स्थापित करता हूँ, यह हमारी पर्याय, स्वयं सिद्धदशा को प्राप्त होगी और सिद्ध—ऐसा मेरा स्वरूप, पर्याय उस तरफ जायेगी ही, इसलिए मैं उसे वन्दन करता हूँ। इसलिए हमने हमारी पर्याय में उसे स्थापित किया है। आहाहा! और श्रोताओं भी... सभी श्रोता नहीं (परन्तु) जिसने अपनी ज्ञान की पर्याय में अनन्त सिद्धों को स्थापित किया – ऐसा कहा, परन्तु यह (श्रोता स्वयं) स्थापित करे जब, आहाहा! उसकी एक समय की अल्पज्ञ अवस्था में। इसमें मैंने कहा, यह उसने सुना,

सुनकर के उसकी पर्याय में अनन्त सिद्धों को स्थापित करे, अर्थात् कि राग से भिन्न होकर ज्ञान की पर्याय में स्थापित करे, उसका लक्ष्य, जिस प्रकार अरहन्त के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाननेवाला, स्वयं को जाने - ऐसा कहा, इस प्रकार अनन्त सिद्धों को जिसने पर्याय में स्थापित किया, उसने अनन्त सिद्धों को पर्याय में जाना। आहाहा! एक समय की ज्ञान की पर्याय तो अनन्त सिद्धों को जाना। यह तो एक अरहन्त को जाना कहो या अनन्त अरहन्त को जाना कहो, अनन्त सिद्ध को जाना कहो या एक सिद्ध को जाना कहो, सभी एक ही है। आहाहा! यह अनन्त सिद्ध जो (हमारी) अल्पज्ञ दशा में, अनन्त जो सर्वज्ञ है, यह स्थापे हमने अपने में यह तो हमारी बात रही, हमने स्थापित किया पर में परन्तु यह (स्वयं में) स्थापे, तब पर में स्थापे—इस प्रकार व्यवहार कहा जाता है। आहाहा! उसकी अल्पज्ञदशा में अनन्त सर्वज्ञों को वन्दन किया है अर्थात् स्थापित किया है। आहाहा! आहाहा! यह अनन्त सिद्धों को जो पर्याय जाने एवं स्थापित करे, वह पर्याय विवेक करके द्रव्य तरफ ढ़ले बिना रहे नहीं। आहाहा! ऐसी बातें हैं बहुत गम्भीर! गाथायें जैसे जैसे गहराई में जाते हैं, उसका भाव बहुत सूक्ष्म (भासित होता है) बहुत! आहाहा!

ऐसे श्रोता जो हैं कि जिनने पर्याय में अनन्त सिद्धों को स्वयं अपने से स्थापित किया है। 'हमने स्थापा है' यह तो निमित्त से (कथन) है। आहाहा! ऐसे श्रोताओं को सिद्धपना... अपना स्वरूप है, उसकी दृष्टि होती है, और वह श्रुतकेवली एवं केवली के द्वारा कहा हुआ है, तब वह जीव भी श्रुतकेवली होगा ही, श्रुतकेवली अर्थात् समकिती। जिसने अनन्त सिद्धों को अपनी अल्पज्ञ पर्याय में स्थापित किया है... अरे! बापू! यह कैसी बात है? आहाहा! जिसकी एक समय की अल्पज्ञ पर्याय, भले असंख्य समय उपयोग हो, उसमें अनन्त सिद्धों का ज्ञान करे और पर्याय में स्थापे अर्थात् कि रखे, आहाहा! जिसकी पर्याय में अनन्त सिद्धों रहे... आहाहा! ऐसा जिसने स्वयं किया—ऐसे श्रोताओं को यहाँ लिया है। आहाहा! वैसे तो अनन्त बार भगवान के पास सुना, वह बात नहीं है। भगवान के पास तो अनन्त बार सुना है। आहाहा!

जो श्रोता, अपनी एक समय की अल्पज्ञ अवस्था होने पर भी, अनन्त सर्वज्ञ-सिद्धों को अल्पज्ञ में स्थापता हूँ-रखता हूँ। आहाहा! उसका लक्ष्य और दृष्टि द्रव्य ऊपर जायेगी और उसके लक्ष्य से सुनेगा तो उसकी अशुद्धता टल जाएगी। लक्ष्य के कारण; सुनने के कारण नहीं। समझ में आया कुछ?

मेरा मोह भी—ऐसा लिखा है न भाई? अनादि का मेरा मोह-ऐसा लिखा है। प्रथम गाथा में उस प्रकार लिखा है, जिस प्रकार तीसरे श्लोक में उस प्रकार लिखा है कि अनादि से कलुषित परिणाम हमारे में हैं। आहाहा! आचार्य हूँ तो (भी) है। आहाहा! एक तरफ ऐसा कहना कि सम्यग्दृष्टि को राग है ही नहीं, दु:ख है ही नहीं—वह तो किस अपेक्षा से? अनन्तानुबन्धी एवं

मिथ्यात्व की अपेक्षा से (सम्यग्दृष्टि को) दु:ख और राग नहीं। आहाहा! यहाँ तो आचार्य स्वयं कहते हैं, अरे! अमृतचन्द्राचार्य अर्थ-टीका करते हुए कहते हैं कि मुझमें मोह है, वह कब का है? अनादि का है। हे भाई! पहली गाथा में (कहा है कि) अनादि का है। आहाहा! यही बात तीसरे कलश में अमृतचन्द्राचार्य ने ली है, आहाहा! यह मोह मुझमें अस्थिरता का है, हों! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तो है। मुनि है न? आनन्द का अनुभव तो है, परन्तु उसके साथ कुछ राग, अनादि का है, यह अनादि का है। गया था, फिर हुआ है-ऐसा नहीं। आहाहा!

श्री कुन्दकुन्दाचार्य की गाथा की टीका करनेवाले अमृतचन्द्राचार्य इस तरह कहते हैं, कि श्री कुन्दकुन्दाचार्य-ऐसा कहना चाहते हैं। आहाहा! प्रभु! क्या तुम इनके ज्ञान में, हृदय में बैठ गये हो? ऐसी वस्तु की स्थिति है-ऐसा हम कहते हैं। आहाहा!

अपना (आत्मा) भगवान अरिहन्त के एक के द्रव्य-गुण-पर्याय को जाने, तब वह जाननेवाले आत्मा को जाने—ऐसा कहा, तब यह तो अनन्त सिद्धों को जो पर्याय में जाने, अर्थात् कि स्थापित करे, उसे स्व के लक्ष्य से सम्यग्दर्शन हुए बिना रहे नहीं। आहाहा! और वह श्रुतकेवली.. अर्थात् समकिती। श्रुतकेवली अर्थात् वह विशेष ज्ञान नहीं परन्तु यह श्रुतकेवली होगा और फिर केवली होगा। आहाहा! गजब बात है न!! यह सिद्धान्त कहलाये, एक-एक श्लोक की थाह आये नहीं, उसकी गम्भीरता सन्तों की, दिगम्बर मुनि... आहाहा! उनकी वाणी, उस वाणी में गम्भीरता और गहराई की... थाह नहीं मिले!

यहाँ कहते हैं, जब अपने आत्मा को हमने 'ज्ञायक' कहा और ज्ञायकरूप से 'ज्ञायक' ज्ञात हुआ, तब 'जाननेवाले' को तो जाना परन्तु 'जाननेवाला' है - ऐसा कहा जाता है तो पर को भी जानता है - ऐसा उसमें हुआ। पर को जानता है - ऐसा भले कहें, परन्तु वास्तव में तो पर है तो उसे जानता है - ऐसा नहीं। पर (अर्थात्) रागादिक हुए, उन्हें जानता है, यह रागादिक के कारण जानता है—ऐसा नहीं परन्तु उस ज्ञान की पर्याय का स्वपर प्रकाशक सामर्थ ही ऐसा है कि स्वयं स्वयं को जानता है। ज्ञायक ज्ञायक को (जानता है)। यहाँ पर्याय की बात है, हों! द्रव्य को तो जानता है। आहाहा! गजब बात है!

वस्तु स्वरूप चिदानन्द प्रभु 'ज्ञायकरूप से तो ज्ञात हुआ' लक्ष्य में आया, दृष्टि में आया, परन्तु उसे 'जाननेवाला' कहते हैं तो स्वपरप्रकाशक, पर को जाननेवाला इसमें आया। तुमने तो स्व का जाना, अब पर का भी जानना इसमें आया? तब कहते हैं 'पर को जानना, यह इसमें नहीं आया (परन्तु) परसम्बन्धी का ज्ञान स्वयं को स्वयं से हुआ है, ऐसे 'ज्ञायक' को ज्ञानपर्याय ने, ज्ञान से जाना, यह जाननेवाले की पर्याय उसने जानी। समझ में आया? बहुत कठिन काम, बापू! मार्ग ऐसा मार्ग है वीतराग सर्वज्ञ का।

'सर्वज्ञ नो धर्म सुसर्ण जाणी, आराध्य आराध्य प्रभाव आणी,
अनाथ एकांत सनाथ थाशे, ऐना विना कोई न बाह्य स्हाशे।'

आहाहा! यहाँ कहते हैं कि मेरे और तुम्हारे मोह के नाश के लिये... आहाहा! प्रतिज्ञाबद्ध इतना सब प्रभु! अपने मोह के नाश के लिये तो भले (कहे, क्योंकि) इतनी अस्थिरता है परन्तु.. श्रोता के (क्यों)? श्रोता को हमने सिद्ध कहा है न? अनन्त सिद्धों को इन्होंने पर्याय में स्थापित किया है स्वयं! आहाहा! मैंने स्थापित किया, यह बात तो मैंने की। आहाहा! एक समय की अल्पज्ञ पर्याय में अनन्त सिद्धों को स्थापित किया। यह पर्याय अन्दर झुककर द्रव्य सन्मुख ही जाती (है) इतनी पर्याय में सर्वज्ञ, अनन्त सर्वज्ञों को रखा। आहाहा! वह पर्याय, सर्वज्ञस्वभावी प्रभु, उसके ऊपर ही उसका लक्ष्य जाता है।

जिसने एक समय में-पर्याय में, अनन्त सर्वज्ञों को स्थापित किया..., रखा.., आदर किया, सत्कार किया..., स्वीकार किया और वह एक समय में, अनन्त सर्वज्ञों को जाना। उस समय की पर्याय जानी न? उसे जानता है न? आहाहा!

उसका आत्मा उसे ज्ञायकरूप तो ज्ञात हुआ, परन्तु यह 'ज्ञायक' है अर्थात् कि 'जाननेवाला' है—ऐसा कहकर पर को जानता है—ऐसा जो आता है, तो पर के आकाररूप ज्ञान हुआ, वह पर के कारण हुआ - ऐसा नहीं।

धर्मी को भी अभी राग आता है और राग का ज्ञान होता है,... बारहवीं गाथा में कहेंगे, **जाना हुआ प्रयोजनवान।** भाषा तो चारों तरफ से एक अविरोध बात को सिद्ध करती है। आहाहा! इस ज्ञायकता में जो राग-व्यवहार आया और ज्ञात हुआ, वह राग है, उसे यह जानता है, और राग है, इसलिए यहाँ राग का ज्ञान, ज्ञेयाकाररूप से ज्ञान हुआ - ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसा मार्ग साधारण लोगों को बिचारे को.. ?

वीतराग परमेश्वर, त्रिलोकनाथ अनन्त जैन परमेश्वरों का यह सभी कथन है। एक मुनि का कहो या अनन्त तीर्थंकरों का कहो या अनन्त सन्तों का कहो, आहाहा! और मुनि तो जिनको पर्याय में तीन कषाय का अभाव होकर जिन्हें जिनदशा प्रगटी है, आहाहा! उन्हें मुनि कहते हैं। वे मुनि कहते हैं कि 'मैं इस समयसार को कहूँगा।' यह 'कहूँगा' इसमें तो विकल्प है न? विकल्प है परन्तु मेरा वजन वहाँ नहीं, तो यहाँ स्वसन्मुख के जोर के लक्ष्य से यहाँ बात करूँगा (और) मेरा ज़ोर वहाँ स्वभाव ऊपर बढ़ेगा एवं अशुद्धता टल जायेगी।

इसी प्रकार सुननेवालों को भी अनन्त सिद्धों को जिसने स्थापित किया, उनको... स्व के लक्ष्यपूर्वक सुनते हैं और पूरी बात आयेगी इसमें, इसलिए उसको भी स्वलक्ष्य होकर मोह टलेगा और अस्थिरता भी उसकी टलकर और प्रथम श्रुतकेवली होगा अर्थात् समकिती होगा। श्रुतकेवली

द्वारा कहा हुआ है, और यह श्रुतकेवली स्वयं होंगे अर्थात् सम्यग्दृष्टि होंगे और बाद में केवली होंगे। आहाहा! कहो शकुनलालजी! इस गाथा का – ऐसा अर्थ है। पार पड़े नहीं – ऐसा है। आहाहा!

दिगम्बर सन्त अर्थात् केवली के मार्ग पर चलनेवाले, शेष सभी ने कल्पना से बातें की है। आहा! इसके तो एक-एक शब्द के पीछे भावों में कितनी गम्भीरता है!! कहते हैं कि भले हम 'ज्ञायक' कहते हैं और हमने ज्ञायक को जाना और 'जाननेवाले' को भी जाना। अब उसे जाननेवाला है तो पर का भी जाननेवाला है—ऐसा साथ में आया, स्वपर प्रकाशक है न? तब पर का जाननेवाला है न? तो पर को जाननेवाला है, इसलिए पर को जानता है! यह पर है उसके आकार का ज्ञान हुआ (तो) **जैसा पर है, उस स्वरूप में ज्ञान हुआ, तब इतनी तो ज्ञेयकृत अशुद्धता आयी या नहीं? इतनी ज्ञेयकृत-प्रमेयकृत पराधीनता आयी या नहीं? (तो कहते हैं) कि नहीं। आहाहा! यह तो राग के ज्ञान के समय, शरीर के ज्ञान के समय, वह ज्ञान ज्ञायकपने की पर्यायरूप ही ज्ञात हुआ है, यह राग की पर्यायरूप से एवं राग से ज्ञान हुआ है – ऐसा जाना नहीं।** आहाहा! कहो, सुरेन्द्रजी! है ऐसी बातें? आहाहा! अरे, प्रभु! तुम्हें खबर नहीं भाई! आहाहा! तुम्हारा द्रव्य और उसकी पर्याय, इसका सामर्थ्य कैसा है? आहाहा! देवीलालजी! कहाँ बैठे वहाँ, आओ यहाँ आओ। समझ में आया? आहाहा!

हम तो कहते हैं कि राग, शरीर एवं (दूसरा) जो कुछ दिखता है, उस समय उनके आकाररूप ज्ञान हुआ, अतः उसके कारण हुआ – ऐसा नहीं। हमारे ज्ञान का स्वभाव ही ऐसा है कि स्व को जानते समय पर को जानने की पर्याय स्वयं से अपने में होती है, उसे हम जानते (हैं)। आहाहा! अरे! प्रभु की वाणी तो देखो! आहाहा! यह सन्तों की वाणी साक्षात् मिले और यह वाणी... आहाहा! गजब बातें हैं न!!

यह ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप में जो ज्ञात हुआ.. देखा? ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप यह ज्ञान की पर्यायरूप ज्ञात हुआ है, ज्ञान की पर्यायरूप से यह ज्ञात हुआ है, पर की पर्याय अपेक्षा ज्ञात हुआ है – ऐसा नहीं है। आहाहा! भाई! मार्ग बहुत सूक्ष्म है बापू! और जिसका फल भी अनन्त संसार का अन्त! आहाहा! अनन्त संसार का अन्त और अन्त बिना की पर्याय सादि-अनन्त प्रगटे। आहाहा! बापू! वह मार्ग कोई अलौकिक होता है। आहाहा!

यह ज्ञेयाकार अवस्था में... है? यह ज्ञेय-राग को जानने की अवस्था में भी **ज्ञायकरूप से जो ज्ञात हुआ...** है, यह ज्ञान की पर्यायरूप से यह ज्ञात हुआ है, राग की पर्यायरूप से ज्ञात हुआ है-ऐसा है नहीं। आहाहा!

है न सामने पुस्तक? आहाहा! ***ज्ञेयकृत अशुद्धता उसे नहीं... अर्थात्? राग को एवं उस समय जो शरीर की क्रिया हो, उस प्रकार ज्ञान स्वयं परिणमे एवं जाने, फिर भी यह ज्ञेयकृत की***

अशुद्धता-पराधीनता ज्ञान के परिणमन को नहीं। आहाहा! यह ज्ञान का परिणमन जो हुआ, वह ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप जो ज्ञात हुआ, 'यह जाननेवाला ज्ञात हुआ है' इसमें जानी गई ऐसी वस्तु ज्ञेय नहीं हुई। जो ज्ञात हुई है यह वस्तु, ज्ञात नहीं हुई। यह 'जाननेवाला ज्ञात हुआ है' वहाँ। आहाहा! गूढ़ बातें हैं भाई! आहाहा! अलौकिक चेतनस्वरूप ही अलौकिक है बापू! आहाहा!

उसकी एक समय की पर्याय में सर्वज्ञ को स्थाप कर... आहाहा! गजब काम किया है न? (संसार से) उठा लिया है। आहा! जिसने अनन्त सिद्धों को स्थापा, उसे संसार से उठा लिया है, आहाहा! उसे हों? अकेला श्रोता रूप से-नहीं। आहाहा! जिसने अनन्त सिद्धों को अपनी पर्याय में स्थापित किया और उसको ज्ञान का, ज्ञायक का ज्ञान हुआ, वह ज्ञान राग को और शरीर को जाने, इसलिए उसे ज्ञेयकृत, प्रमेयकृत अशुद्धता नहीं हुई। यह तो ज्ञायक की ही पर्याय (हुई), उसे यह जानता है। यह राग के जानने के समय राग के आकार ज्ञान हुआ। वह राग के कारण ज्ञान उस आकाररूप हुआ - ऐसा नहीं। उस समय ज्ञान (का) ही अपने ज्ञानाकार होने का पर्याय का स्वभाव था, इस प्रकार हुआ। तब उस समय राग ज्ञात हुआ नहीं; जाननेवाले की पर्याय को उसने जाना है। समझ में आया? आहाहा!

वह (अर्थात्) **ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ 'वह' स्वरूप प्रकाशन की (स्वरूप को जानने की) अवस्था में भी...** स्वयं ज्ञात हुआ है। क्या कहा यह? कि, यह ज्ञायक प्रभु स्वयं को ज्ञायकरूप से जहाँ जाना, सम्यग्दर्शन-ज्ञान में ज्ञात हुआ, उस समय जो ज्ञान में रागादिक परज्ञेय ज्ञात हो, उसी समय भी उसने राग को जाना—ऐसा नहीं। राग सम्बन्धी का अपना ज्ञान, स्वयं से हुआ है, उसे वह जानता है। ज्ञेयाकार के समय में भी अपनी पर्याय को जानता है और **स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी...** दो बातें ली हैं न? क्या कहा? ज्ञेयाकार अवस्था में ज्ञायकरूप से जो ज्ञात हुआ 'वही', **स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी दीपक की भाँति...** स्वयं ज्ञात हुआ है आहाहा! स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी, जिस प्रकार ज्ञेयाकार के ज्ञान के समय भी ज्ञान की पर्याय उसे ज्ञात हुई है, 'जाननेवाला जो है' उसकी पर्याय ज्ञात हुई है; इसी प्रकार स्वरूप प्रकाशन की अपेक्षा से भी... आहाहा! उदाहरण दिया है। **'दीपक की भाँति', कर्ता-कर्म का अनन्यपना होने से ज्ञायक ही है।...** अर्थात्? ***स्वयं जाननेवाला इसलिए स्वयं कर्ता और अपने को जाना, इसलिए स्वयं ही 'कर्म'।*** आहाहा! यह पर्याय की बात है, हों! जाननेवाले को जाना और ज्ञेय को जाना, यह जानना पर्याय का कार्य (है), ज्ञायक कर्ता, उसका यह कार्य है। यह राग-व्यवहार (को) जाना, अत: व्यवहार कर्ता और जानने की पर्याय कर्म - कार्य ऐसा नहीं। आहाहा! कितना समाया है? वह कहता था कि हमने पन्द्रह दिन में समयसार पढ़ डाला! बापा! भाई! तुम्हारा प्रभु कौन है? अरे! उसे जानने के लिए... आहाहा! अरे! अनन्त

काल के परिभ्रमण में किसी दिन यह सच्चा प्रयत्न इसने किया ही नहीं। उलटे प्रयत्न को उसने माना कि हम कुछ कर रहे हैं, धर्म कर रहे हैं। हैरान होकर चार गतियों में भटकता है। आहाहा!

यहाँ कहते हैं, भगवान आत्मा जब सर्वज्ञरूप से स्थापा और जब उसे सर्वज्ञ स्वभाव का भान हुआ, आहाहा! तब उसने स्व-जाननेवाले को तो जाना, परन्तु उसी समय पर को जाना है उस समय भी, जाननेवाले की पर्याय को ही यह जाना है। जाननेवाले की पर्याय रूप से यह ज्ञात हुआ है। राग की पर्याय के रूप में जाना है – ऐसा नहीं। आहाहा!! यह तो ग्रन्थ सामने है, किस शब्द का अर्थ होता है? आहाहा! भगवान परमात्मा, उनकी वाणी और मुनियों की वाणी दोनों में अन्तर नहीं। आहाहा! मुनि तो आड़तिया होकर सर्वज्ञ की वाणी कहते हैं। भाई! तुमने सुनी नहीं। आहाहा!

तुम कौन हो और तुम किसे जाननेवाले हो? कि मैं ज्ञायक हूँ और मैं अपनी पर्याय को जाननेवाला हूँ। आहाहा! यह ज्ञान की पर्याय मेरा कार्य-'कर्म' है। कर्म अर्थात् कार्य और 'कर्ता' मैं (हूँ)। वास्तव में तो, पर्याय 'कर्ता' और पर्याय ही 'कर्म' है। परन्तु यहाँ ज्ञायकभाव कर्तारूप सिद्ध करके, ज्ञानपर्याय उसका कार्य है—ऐसा सिद्ध (करना है)। ***आहाहा! वास्तव में तो वह ज्ञान की पर्याय उसका 'कार्य' है और उस समय की पर्याय जो है, वही उस पर्याय का कर्ता है। आहाहा! पूरा द्रव्य है, वह तो ध्रुव है, उसे कर्ता कहना, यह तो उपचार से है। समझ में आया? ध्रुव है, वह तो परिणमता नहीं, बदलता नहीं।***

बदलने की पर्याय जो ज्ञायक को जाननेवाली हुई (वह) पर को जानने के समय भी, स्वयं के ज्ञानरूप परिणमी, (अतः) वह स्वयं ही 'कर्ता' और स्वयं ही स्वयं का 'कर्म' है राग 'कर्ता' और यह ज्ञान की पर्याय उसका 'कार्य' हो - ऐसा है नहीं। आहाहा! इसके एक पद में से बाहर निकलना कठिन पड़े, इतनी तो गम्भीरता है इसमें। आहाहा!

बापू! प्रभु! तुम महाप्रभु हो भाई! तुम महाप्रभु हो... और तुम्हारी पर्याय भी महाप्रभु की है। जो ज्ञात हुआ है, उसकी यह पर्याय है, आहाहा! यह प्रभु की पर्याय है। यह राग की नहीं। आहाहा! इस ज्ञान में स्व जहाँ ज्ञात हुआ और जहाँ जाना, उसी समय यह पर का जानना वहाँ होता है न? कहते हैं कि यह पर का जानना हुआ, यह पर के कारण जानना हुआ – ऐसा नहीं। यह जानने की पर्याय ही स्वयं, स्वयं के स्वपरप्रकाशकरूप परिणमने की ताकत से वह परिणमी है। इसलिए वह पर्याय कर्म है और वही पर्याय 'कर्ता' अथवा जीव कर्ता भले कहा जाता है। आहाहा!

वास्तव में षट्कारक का परिणमन पर्याय में है, द्रव्य में षट्कारक की शक्ति है परन्तु परिणमन नहीं। समझ में आया कुछ? आहाहा! इसलिए जिस ज्ञान की पर्याय ने स्वयं को जाना, उस पर्याय ने राग सम्बन्धी स्वयं के ज्ञान के परिणमन को उसने जाना। व्यवहार का विकल्प

उठता है, उसका जो ज्ञान होता है, उस ज्ञान की पर्याय को स्वयं स्वयं से जानता है और वह स्वयं स्वयं से हुई है। व्यवहार से पर्याय हुई नहीं। उसे जाननेवाली पर्याय, रागादि-व्यवहार आया, उसका ज्ञान हुआ, इसलिए उससे ज्ञान हुआ है (- ऐसा नहीं है)। उसमें ज्ञान कहाँ था? राग में कहाँ ज्ञान था? आहाहा! जिस ज्ञायक में-प्रभु में ज्ञान भरा है, आहाहा! उसे जहाँ अन्दर से जाननेवाला जानता है, तब जाननेवाला स्वयं और स्वयं को जानता है और जाननेवाला स्वयं की पर्याय को जानता है। 'राग को जानता है', यह भी बात व्यवहार से कथन है। आहाहा! कहो समझ में आया?

दीपक की भाँति 'कर्ता कर्म का अनन्यपना... है। अन्यपना नहीं। कर्ता है, वही कर्म है और कर्म है, वही उसका कर्ता है। समझ में आया? 'होने योग्य' और 'हुआ' वह दोनों अनन्य हैं। भिन्न-भिन्न नहीं। आहाहा! कर्ता होनेवाला और कर्म हुआ, वह अनन्य है, वह दोनों एक ही वस्तु है। आहाहा! **'अनन्यपना होने से ज्ञायक ही है'** स्वयं जाननेवाला, यह 'कर्ता' इसलिए स्वयं कर्ता, आहाहा! राग सम्बन्धी ज्ञान हुआ, यह ज्ञान की पर्याय का कर्ता स्वयं है और उसका कर्म भी अनन्य उसमें है। आहाहा! यह ज्ञान, राग को जानता है—ऐसा नहीं, और राग के कारण ज्ञान हुआ है - ऐसा नहीं। आहाहा! ऐसी व्याख्या है अब, साधारण बेचारे सम्प्रदाय (के पक्ष) में रुके हों, (उन्हें) समय मिले नहीं कभी पूरे दिन (में)। दो घड़ी मिले, वहाँ शेष बाईस घण्टे तो पत्नी, बच्चे और धन्धा तथा पाप में पूरी जिन्दगी जाये, आहाहा! अरे रे! उसमें दो घड़ी सुनने जाये, वहाँ मिले—ऐसा कि ठिकाने बिना का, सत्य के विरुद्ध बातें मिलें। आहाहा!

यह ज्ञेयाकार अवस्था में भी ज्ञायकरूप से जो ज्ञात हुआ', वह स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी ज्ञायकरूप से ज्ञात हुआ, ज्ञायक ही है। है न अन्तिम शब्द? बीच में इतना छोड़ दो थोड़ा.. **'दीपक की भाँति कर्ता-कर्म का अनन्यपना होने से,...' स्वरूप प्रकाशन की अवस्था में भी ज्ञायक ही है।** ऐसा है न? वह (दीपक का) तो दृष्टान्त है। आहाहा! किसी ने ऐसा जाना हो कि हमने समयसार सुना है, इसलिए इसमें कुछ नवीनता नहीं होगी - ऐसा नहीं प्रभु। आहाहा! यह नयी वस्तु है बापू, भगवान। आहाहा!

क्या कहा? 'स्वयं जाननेवाला, इसलिए स्वयं कर्ता', राग की, शरीर की क्रिया हुई, उसका यहाँ ज्ञान हुआ, यह ज्ञान का कार्य स्वयं का है। यह (ज्ञान) कार्य राग और शरीर का नहीं; इसलिए वह कार्य स्वयं ज्ञान की पर्याय का, ज्ञान का है, वह कर्ता और स्वयं को जाना, इसलिए स्वयं कर्म। आहाहा! यहाँ पर्याय की बात है, हों! जानने में आयी है पर्याय, यह पर्याय उसका कार्य... राग जानने में आया है—ऐसा नहीं, उसी प्रकार राग से यहाँ ज्ञान का कार्य हुआ—ऐसा नहीं, यह राग का कार्य नहीं, यह ज्ञायक का कार्य है। आहाहा! समझ में आया? आहाहा! एक

साधारण सरकार के नियम गहन होते हैं, तो यह तीन लोक के नाथ (का कानून है) आहाहा! सर्वज्ञस्वरूप! उसके नियम तो कैसे हों बापू! आहाहा! एक-एक गाथा में कितनी गम्भीरता है!

स्वयं जाननेवाला, इसलिए स्वयं कर्ता। किसका जाननेवाला? स्वयं की पर्याय का। केवली लोकलोक को जानते हैं - ऐसा भी यह नहीं। केवली अपनी पर्याय को जानते हैं। आहाहा! पर्याय उसका कार्य है और कर्ता उसका ज्ञानस्वरूप है, अथवा पर्याय है। आहाहा! यह लोकालोक है, इसलिए यहाँ केवलज्ञान हुआ है - ऐसा नहीं। समझ में आया? यह प्रश्न तो (संवत्) १९८३ के वर्ष में उठा था। ... (संवत्) १९८३, कितने वर्ष हुए? इक्यावन, इक्यावन वर्ष पहले प्रश्न उठा था, पचास और एक। (कि) यह लोकालोक है, इसलिए केवलज्ञान है? कि केवलज्ञान स्वयं से है, लोकालोक के कारण नहीं? यह एक प्रश्न था। सेठ ने ऐसा कहा कि लोकालोक है, तब इसका यहाँ ज्ञान हुआ है। तब उसे वीरजीभाई ने मना किया (कि - ऐसा नहीं है।) फिर दोनों नीचे आये, और हमसे पूछा। हमने कहा बापू - ऐसा नहीं है। केवलज्ञान ज्ञान से-स्वयं से होता है। केवलज्ञान के कार्य, कार्य का कर्ता आत्मा एवं कर्म केवलज्ञान। लोकालोक कर्ता तथा केवलज्ञान 'कर्म' (-ऐसा नहीं) इतने अधिक शब्द तब नहीं थे उस समय, परन्तु लोकालोक है, इसलिए ज्ञान की पर्याय हुई है - ऐसा नहीं। समझ में आया? आहाहा!

अरेरे! एक भी बात को सर्वज्ञ के न्याय से बराबर जाने तो... एक 'भाव' जाने तो सभी 'भाव' यथार्थ ज्ञात हो जायें, परन्तु एक भी भाव को समझने का ठिकाना नहीं है। आहाहा! अरेरे! जिन्दगी पूरी होने को आयी, तब इसमें क्या करना, वह रह गया। आहाहा! किया... ढेर अकेला पाप का। पुण्य का ठिकाना नहीं होता कि भाई! चार-चार घण्टे तक सच्चा सत् समागम करना। सत्समागम भी किसे कहना, उसकी भी अभी समझ नहीं की। आहाहा! और सत्शास्त्रों का चार-चार घण्टे वाँचन करना हमेशा, तब पुण्य तो बँधे, उसका भी ठिकाना नहीं। आहा! धर्म तो करे नहीं (परन्तु पुण्य भी नहीं होता)। आहाहा! सत्शास्त्र और सत्समागम, दोनों का परिचय रहे, चौबीस घण्टे में चार घण्टे तो भी पुण्य बँधे, यह धर्म नहीं। धर्म तो राग से भिन्न होकर सर्वज्ञता स्वरूप मेरा है—ऐसा अन्तर में दृष्टि करके अनुभव करे, तब उसे सम्यग्दर्शन हो। आहाहा! समझ में आया?

'जैसे दीपक घट पट आदि को प्रकाशित करने की अवस्था में दीपक है...' दीपक जो है न? यह घट और पट अर्थात् वस्त्र, उसे प्रकाशते समय भी दीपक तो दीपक ही है। यह दीपक जिन्हें प्रकाशता है, उसरूप हुआ? आहाहा! **दीपक घटपटादि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है...** क्या कहा यह? दीपक घटपटादि की अवस्था को प्रकाशित करते समय दीपक तो दीपकरूप है। यह घट-पट को प्रकाशित करते समय भी घट-पटादि की अवस्थारूप

कहीं दीपक नहीं हुआ। आहाहा! और घट-पट के कारण प्रकाशित करता है - ऐसा नहीं। दीपक के प्रकाश के कारण प्रकाशित करता है। आहाहा! **दीपक घट-पट आदि को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है और स्वयं को, अपनी ज्योतिरूप शिखा को प्रकाशित करने की अवस्था में भी दीपक ही है...** इस प्रकार 'ज्ञायक' राग और पर को जानने के समय भी ज्ञायक की पर्याय तो ज्ञान की ही है, और स्वयं को प्रकाशने के समय भी यह ज्ञान की ही पर्याय है। आहाहा! पर को जानते समय यह पर्याय पर को कारण हुई - ऐसा नहीं। घट पट को प्रकाशता है प्रकाश, इसलिए प्रकाश घट-पट के कारण प्रकाशित करता है - ऐसा नहीं। दीपक का स्वयं का प्रकाशक स्वभाव है, घट पट को प्रकाशित करते समय भी दीपक तो दीपक ही है, और अपनी ज्योति को प्रकाशने के समय भी दीपक तो दीपक ही है। बहुत सूक्ष्म है बापू! एक घण्टे में कितना आया! फुरसत न मिले, अवकाश न मिले, पूरे दिन पाप के कारण और शरीर की सुरक्षा के लिये करना हो तो पूरे दिन जाए, उलझा रहे पूरे दिन। उसका, ऐसा करना... इसका, ऐसा करना... उसका - ऐसा करना... फिर भी (जो) होना होता है, वह होता है। इसके करने से कुछ नहीं होता। आहाहा! और यह तो (सम्यग्दर्शन) तो पुरुषार्थ से होता ही है। आहाहा!

दीपक, घट और पट अर्थात् वस्त्रादिक या कोयला या नाग, उसे प्रकाशने के समय भी दीपक तो दीपकरूप रह कर प्रकाशित करता है। पररूप होकर प्रकाशित करता है ? और पर को प्रकाशता है ? यह तो दीपक, दीपक को प्रकाशित करता है और अपने प्रकाश को भी प्रकाशित करते समय स्वयं दीपक, दीपक को प्रकाशित करता है।

इसी प्रकार भगवान आत्मा जाननेवाला जानने में आता है, उस अवस्था में भी ज्ञायकरूप से ही स्वयं रहा है। पररूप हुआ नहीं और (वह) अवस्था पर के कारण हुई नहीं। आहाहा! और स्वयं जानते समय भी यह तो स्वयं ही अपनी पर्याय हुई। आहाहा! अब ऐसा सभी याद रखना ? ऐसा मार्ग प्रभु का, बापू! और यह मार्ग जिनेश्वरदेव के अलावा कहीं है नहीं। तीन लोक के नाथ तीर्थंकरदेव... आहाहा! परन्तु बातें बहुत सूक्ष्म हैं प्रभु! आहाहा! यह कहीं पैसा खर्च कर डाले करोड़, दो करोड़, पाँच करोड़; इसलिए धर्म हो जाये, (-ऐसा नहीं) आहाहा! शरीर की क्रिया कर डाले छह-छह महीना उपवास, शरीर सूखे (-ऐसा) उपवासादि करे, और धारणारूप अकेला क्षयोपशम पर को प्रभावित करनेवाली बुद्धि की बातें करे, परन्तु अन्तर क्या वस्तु है ? आहाहा! उसे खोजने (पहचानने) यह नहीं जाता।

'अन्य कुछ नहीं' उसी प्रकार 'ज्ञायक को समझना'... अर्थात् ? 'जाननेवाला' भगवान स्व को जानते समय पर्याय में स्व को जाना, वैसी ही पर्याय में पर को भी जाना। यह पर को जाना, वह जाननेवाली पर्याय हुई, यह स्वयं से ही हुई है अर्थात् वास्तव में तो अपनी पर्याय को

उसने जाना है। आहाहा! कारण कि पर्याय में कुछ ज्ञेय आये नहीं। घट-पट को दीपक प्रकाशित करता है, इसलिए दीपक के प्रकाश में घट-पट कहीं आ गये नहीं; दीपक के प्रकाश में वह कहीं प्रवेश किये नहीं। आहाहा! समझ में आया?

इस प्रकार भगवान चैतन्य दीपक चैतन्य चन्द्र प्रभु....—ऐसा जिसको अन्तर में ज्ञान हुआ, राग से भिन्न होकर, सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा है—ऐसा जहाँ ज्ञान हुआ, वहाँ अल्पज्ञ पर्याय में सर्वज्ञस्वभाव का भान हुआ, यह अल्पज्ञ पर्याय हुई, वह सर्वज्ञ स्वभाव की है, यह ज्ञायक की पर्याय है, उसे इसने जाना। और यह पर्याय पर को जाने, यह भी ज्ञायक की पर्याय है। यह पर की पर्याय है और पर के कारण हुई है - ऐसा है नहीं। आहाहा! एक बार मध्यस्थ होकर सुने तो...! सभी (लोग) आग्रह रखकर रुके हैं कि 'इससे ऐसा हो और इससे ऐसा हो...' आहाहा! व्रत करने से संवर हो एवं तपस्या करने से निर्जरा हो न! आहाहा!

श्रोता : व्रत कहना किसे?

पूज्य गुरुदेवश्री : परन्तु यह व्रत किसे कहना? निश्चय व्रत किसे कहना? उसकी खबर न लगे। व्रत करे तो संवर हो और उपवास करे तो निर्जरा हो.. अरे भगवान! यह व्रत के विकल्प व्यवहार के हैं, यह तो पुण्य-बन्ध का कारण हैं और उपवास आदि जो विकल्प हैं यह भी पुण्य-बन्ध का कारण है, यदि राग मन्द किया हो तो, (परन्तु) वहाँ संवर-निर्जरा नहीं। आहा!

वहाँ ३२० गाथा में तो ऐसा भी कहा है न कि उदय को जानने के समय भी ज्ञान की पर्याय को जानता है। निर्जरा के समय भी निर्जरा की पर्याय को जानता है, यह निर्जरा करता नहीं। उदय को जानता है - ऐसा कहना, परन्तु फिर भी यह राग को जानता है, वह ज्ञान की पर्याय हुई है, वह तो उसे जानता है। निर्जरा को उस समय में जानता है, यह भी निर्जरा की पर्याय जो ज्ञानरूप हुई है, उसे यह जानता है। बन्ध को जानता (है); बन्ध का जो ज्ञान हुआ है, उस ज्ञान की पर्याय को जानता है। मोक्ष की पर्याय को जानता है; मोक्ष को जानता है, बन्ध को जानता है, निर्जरा को जानता है; विपाक-सविपाक एवं अविपाक को जानता है। आहाहा! चार बोल लिए हैं न? सविपाक-अविपाक, सकाम-अकाम। आहाहा! दिगम्बर सन्तों ने तो गजब काम किया है! उन्हें समझनेवाले विरले होते हैं। ऐसी बात अन्य कहीं नहीं है भाई! आहाहा! उनकी गहराई की बातें... आहाहा!

ऐसा यहाँ कहा है। लो न! आहाहा! और कर्ता-कर्म का अनन्यपना है - ऐसा कहा अर्थात् क्या? कि 'कर्ता' अन्य और 'कार्य' अन्य - ऐसा हो सके नहीं। 'कर्ता' ज्ञान की पर्याय का आत्मा और उस पर्याय का कार्य रागादिक को जानना, यह उसका कार्य - ऐसा नहीं। कर्ता-कर्म अनन्य होता है। अन्य-अन्य नहीं। वही कर्ता और वही कर्म होता है। आहाहा! वही कर्ता

और वही कार्य होता है। आहाहा! राग को जानते समय, ज्ञान ज्ञानरूप हुआ उसका 'कर्ता' भी ज्ञान और कर्म भी ज्ञान। यह राग का ज्ञान, यह राग कर्ता एवं राग का ज्ञान कार्य - ऐसा नहीं। आहाहा! व्यवहाररत्नत्रय का विकल्प उठा, तो उसका जो यहाँ ज्ञान हुआ, वह उसके कारण (ज्ञान) हुआ (ऐसा नहीं है)। उसमें कहाँ ज्ञान था तो हुआ? ज्ञान तो यहाँ है (आत्मा में) है। आहाहा!

स्वप्रकाशक ज्ञान... आता है न? 'स्वपर प्रकाशक शक्ति हमारी, तातैं वचन भेद भ्रम भारी।' स्व प्रकाशक ज्ञेय और परप्रकाशक पर-दोनों वस्तु ज्ञेय। ज्ञेय स्व और पर दोनों, फिर भी पर को जानते समय वह पर्याय स्वयं स्वयं से जानती है। आहाहा! यह यहाँ सिद्ध करना है।

विशेष कहेंगे... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२४ श्री समयसार, गाथा १३ प्रवचन नं. ६०
दिनांक २७-०९-१९६६

...मुनि को लक्ष्य कर दशलक्षण की बात है न? चारित्र का आराधन है। चारित्र में नौवाँ बोल आकिंचन है। धर्मात्मा को-मुनि को अन्य परिग्रह तो होता नहीं। स्त्री-पुत्र, वस्त्र-पात्र तो होते नहीं; मात्र उनके शिष्य, संघ और अचेतन पुस्तक, पिच्छी, कमण्डल धर्म के उपकरण होते हैं, उनमें भी ममत्व नहीं करते।

श्रोता : पिच्छी हो और ममत्व न हो?

पूज्य गुरुदेवश्री : परद्रव्य है, उसमें स्वयं को क्या?

श्रोता : शिष्य... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : शिष्य कहाँ से आया? शिष्य तो व्यवहार में कहने में है; निश्चय में तो गुरु-शिष्य है ही नहीं।

कहते हैं, लोकव्यवहार—लोक का व्यवहार—लौकिक व्यवहार से तो विरक्त हैं ही, परन्तु अपने शिष्य, संघ में जो ममता हो तो उस लोकव्यवहार को भी छोड़ दे। चेतन में शिष्य संघ आदि, अचेतन में मोरपिच्छी, कमण्डल, पुस्तक आदि में मेरा कुछ नहीं। विकल्प मेरा नहीं तो दूसरी कौनसी चीज़ मेरी है? ओहो! समझ में आया? जो चीज़ मुझसे भिन्न पड़ जाती है, वह मेरी नहीं और मुझसे नहीं छूटे, वह मेरी है। ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदि मेरा स्वभाव मुझसे छूटता नहीं। विकल्प, राग, शरीर तो छूट जाते हैं। वह चीज़ मेरी नहीं। 'पंच महाव्रत का विकल्प भी मेरा नहीं'—ऐसा आकिंचन (धर्म में) कहते हैं। समझ में आया? कुछ भी मेरा नहीं।

मैं तो शुद्ध आनन्द, ज्ञानानन्द शुद्ध अनन्त स्वभाव से भरपूर सागर हूँ। मुझमें विकल्प भी नहीं तो शिष्य, सम्प्रदाय, संघ, कमण्डल, मोरपिच्छी या पुस्तक—वे मुझमें कहाँ से आये? ऐसे अन्तर में आनन्दस्वरूप का अनुभव करने से सहज पर की ममता का छूट जाना, उसका नाम आकिंचन धर्म कहने में आता है। अनन्त काल में इसने कभी किया नहीं। समझ में आया? पहले श्रद्धा में तो यह लिया है कि राग भी मेरा नहीं। सम्यग्दर्शन हुआ, तब श्रद्धा में लिया कि राग मेरा नहीं, शरीर मेरा नहीं, तीन काल में कोई चीज़ मेरी नहीं। यह तो सम्यग्दर्शन होने के काल में ऐसा हुआ है। यहाँ तो चारित्र की बात है। समझ में आया?

स्वरूप की स्थिरता चैतन्यधाम अनन्त गुण का राम-आतमराम प्रभु, वह मेरी चीज़ है। उसमें लीनता करके परपदार्थ की ममता छोड़ दे, उसका नाम आकिंचनधर्म जो संवर और निर्जरा का कारण है, वह मोक्ष का कारण है। यह नौवाँ आकिंचनधर्म (हुआ)।

चलता अधिकार - १३ वीं गाथा। कहाँ तक आया? सेठी! पता नहीं? भावार्थ चलेगा? इतना याद रखा, निक्षेप में थोड़ा बाकी रहा है। स्पष्टीकरण बराबर हुआ नहीं। यहाँ क्या कहा? भगवान कुन्दकुन्दाचार्यदेव वास्तविक तत्त्व का स्वरूप, अनुभूति से जो भिन्न है, वास्तविक चीज़ है, उससे भिन्न चीज़ है, वह पर्याय में भले हो। नवतत्त्व के भेद वर्तमान में विकल्प में पर्याय में है, परन्तु वह है, इतना जानने योग्य है। आदरणीय तो मात्र चैतन्य ज्ञायक भूतार्थस्वरूप शुद्ध चैतन्य की अनुभूति में इस नवतत्त्व के भेद का अभाव है। समझ में आया? नवतत्त्व असत्यार्थ है। पर्यायदृष्टि से नौ सत्य है। अनुभवदृष्टि से ये नौ असत्यार्थ हैं। नौ हैं - ऐसे सत्यार्थ है, आश्रय करनेयोग्य है ऐसा नहीं।

श्रोता : असत्यार्थ हुआ तो वे हैं या नहीं?

पूज्य गुरुदेवश्री : हैं न। उसमें नहीं - ऐसा नहीं। पर्याय है, भेद है। अभेद में, दृष्टि में आते नहीं। सामान्य में लक्ष्य करने से थोड़ा भेद तो है, नहीं ऐसा नहीं। सर्वथा अभेद हो जाये तो वीतराग हो जाये। समझ में आया? परन्तु अन्दर में अभेद में वे भेद दिखाई नहीं देते। पर्याय है।

श्रोता : विकल्प मिट गये?

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका विकल्प मिट गया। मात्र चैतन्य अनुभूति सत्यार्थ है, उसमें नहीं। पर्याय में है। पहले ज्ञान में लक्ष्य किया था कि वे हैं। स्वभाव का अनुभव करने में वे हैं नहीं।

उसी प्रकार प्रमाण : प्रथम विचार करने में प्रमाण का ज्ञान होता है, विकल्पात्मक है। है। प्रत्यक्ष ज्ञान, परोक्षज्ञान निमित्त परोक्ष में है, यह सब है। ऐसा यथार्थवस्तु सिद्ध करने को ज्ञान करना, अनुभव करने में ये प्रमाण, प्रमेय असत्यार्थ हो गये। एक स्वरूप भगवान आत्मा की अनुभूति करने में ये कोई भेद सहायक है नहीं।

इसी प्रकार नय : सामान्य द्रव्य का ज्ञान मुख्यरूप से करना, पर्याय को गौण करना। पर्याय का मुख्य ज्ञान, द्रव्य को गौण करना-ऐसे क्रमसर, भेदसहित पर्याय से द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक का ज्ञान होता है। है इतना, परन्तु अनुभव करने में वह भेद है नहीं। समझ में आया?

अब निक्षेप - नामनिक्षेप है। नाम पाड़े - ऐसा ज्ञान करने में है। जैसे कोई भगवान का नाम ले तो ऐसा नामनिक्षेप है। ज्ञान करने में है, सम्यग्दर्शन का कारण नहीं। इसी प्रकार भगवान की स्थापना है और उनकी पूजा का शुभभाव है। हो, परन्तु उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं

होता। यही कहते हैं, यही याद करने को कहा। धवल में जो आया है कि जिनबिम्ब दर्शन करने से... जम्बूप्रसादजी ने वहाँ बहुत सुना है, जिनबिम्ब दर्शन करने से मिथ्यात्व के टुकड़े हो जाते हैं। हाथी को जैसे सिंह प्रहार करे (तो) टुकड़े हो जाते हैं, वैसे जिनबिम्ब से मिथ्यात्व के टुकड़े हो जाते हैं - ऐसा वहाँ लिखा है। समझ में आया? यह तो व्यवहारनय के कथन हैं।

यहाँ कहते हैं कि जिनबिम्ब, वह स्थापनानिक्षेप है। वह स्थापनानिक्षेप है। ज्ञेय के चार भेद में नाम, स्थापना, द्रव्य, भाव, योग्यता वर्तमान है परन्तु उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता।

श्रोता : ....

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं; लिखा है, वह तो निमित्त से कथन है। जिनबिम्ब का लक्ष्य (करता) है, फिर अपने जिनबिम्ब में दृष्टि हुई, तब सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया?

श्रोता : व्यवहार तो होता है, महाराज!

पूज्य गुरुदेवश्री : व्यवहार का अर्थ क्या? व्यवहार से कहने में आता है, ऐसा है नहीं, ऐसा है नहीं। व्यवहार उपचार से अन्यथा कहता है। ऐसा है नहीं। व्यवहार कहे ऐसा मान लेना, वह मिथ्यात्व है। समझ में आया? यह टोडरमलजी ने लिया है। एक द्रव्य को दूसरे द्रव्य में मिला दे, वह व्यवहार का लक्षण है। एक द्रव्य के भाव को दूसरे द्रव्य में मिला दे, एक कारण को दूसरे कार्य में मिला दे—ऐसे व्यवहार के कथन हैं परन्तु ऐसा मान ले तो मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? एक द्रव्य का भाव दूसरे में मिलाकर व्यवहारनय कहता है। मात्र निमित्त का ज्ञान कराने की बात है। उसके आश्रय से आत्मा को लाभ होता है - ऐसा नहीं। देखो! यह जिनबिम्ब का ही याद आया था, भाई! यह स्थापना है, दर्शन है, शुभभाव है, (वह) जाननेयोग्य है; आदरनेयोग्य नहीं। समझ में आया?

श्रोता : जाननेयोग्य है... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : नहीं। ज्ञेय है, ज्ञेयरूप से है। ज्ञेय के चार भेद हैं। नाम, स्थापना, योग्यता वर्तमान प्रगट, वह प्रगट भी पर्याय है, उस पर्याय का जानना हो, वह बराबर है (परन्तु) आश्रय करनेयोग्य नहीं। आहाहा! समझ में आया? सुनो... सुनो! समझ में आया?

इन चारों निक्षेपों का अपने-अपने लक्षणभेद से (विलक्षणरूप से — भिन्न-भिन्नरूप से) अनुभव किये जाने पर वे भूतार्थ हैं,... अनुभव अर्थात् ज्ञान। ज्ञान करने में नाम निक्षेप, स्थापना, द्रव्य-भाव हैं। **और भिन्न लक्षण से रहित...** ये चार लक्षण जो भिन्न पड़े, उन्हें छोड़कर **एक अपने चैतन्यलक्षणरूप जीवस्वभाव का अनुभव करने पर...** भगवान चैतन्यस्वरूप एक स्वभाव है। उसका अनुभव करने पर ये चारों अभूतार्थ हैं। चारों निक्षेप सम्यग्दर्शन की अनुभूति में सहायक नहीं हैं। समझ में आया?

चारों ही निक्षेप से आत्मा का सम्यग्दर्शन नहीं होता – ऐसा कहते हैं। भावनिक्षेप भी पर्याय है, भाई! सर्वज्ञ की पर्याय हो या अपनी पर्याय हो, उस पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता – ऐसा यहाँ कहते हैं। भावनिक्षेप है, द्रव्यनिक्षेप योग्यता है, स्थापना निक्षेप है, निमित्त है, नाम (है), वह जाननेयोग्य है। भगवान आत्मा...! वर्तमान पर्याय के चार भेद का लक्ष्य छोड़कर अकेला चैतन्यस्वरूप.. देखो! यहाँ कहते हैं। यहाँ कहते हैं उसे झूठा कहकर वहाँ (धवल में) कहा है? कि भगवान के दर्शन से सम्यग्दर्शन होता है, तो क्या परलक्ष्य से होता है? अन्तर्मुख दृष्टि किये बिना कभी सम्यग्दर्शन नहीं होता। बाहर के लक्ष्य में तो शुभराग है। समझ में आया? जम्बूप्रसादजी! अन्तर में एकाग्र होना है, वहाँ बाहर में क्या लक्ष्य करे। जम्बूप्रसादजी! निर्णय करना, हों! भाई! बहुत दूर से आये हो, वहाँ जाने के बाद फिर गड़बड़ होगी। बराबर निर्णय तो करना चाहिए न?

चार निक्षेप, उनका विषय जाननेयोग्य है। व्यवहारनय, निक्षेप को जानता है। नय है, वह विषयी है; निक्षेप, विषय है। नय उस निक्षेप को जानता है कि यह व्यवहार है, स्थापना है, यह द्रव्य है, यह भाव है परन्तु वह जाननेयोग्य है किन्तु अन्दर आदर करनेयोग्य नहीं है। आहाहा! समझ में आया? ऐसी गड़बड़ी है। शास्त्र में ऐसा आवे कि भगवान के दर्शन से सम्यग्दर्शन होता है, वेदना से सम्यग्दर्शन होता है, जातिस्मरण से सम्यग्दर्शन होता है – ऐसा आता है। वह तो निमित्त के कथन हैं। ऐसा है नहीं। जातिस्मरण हुआ उससे–परलक्ष्य से सम्यग्दर्शन होता है? समझ में आया? पूर्व भव का जातिस्मरण हुआ, लो! तो क्या उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है? बिलकुल नहीं। समझ में आया? आहाहा! अवधिज्ञान हुआ, तो क्या अवधिज्ञान की पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है?

भगवान तो नियमसार में तो ऐसा कहते हैं कि अपनी पर्याय क्षायिक हो, क्षयोपशम हो या उपशम हो, उसे तो हम हेय कहते हैं, परभाव कहते हैं और परद्रव्य कहते हैं – ऐसे तीन बोल लिये हैं। समझ में आया? नियमसार कहाँ गया? ५० वीं गाथा है। देखो! नियमसार ५० वीं गाथा। क्या कहते हैं? देखो!

पुव्वुत्तसयलभावा परदव्वं परसहावमिदि हेयं।
सग-दव्व-मुवादेयं अंतर-तच्चं हवे अप्पा।।५०।।

पूर्व में जो उदय, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक ऐसे चार भाव कहे, वे हेय हैं। देखो! टीका में है। **शुद्धनिश्चयनय के बल से...** विभावगुण पर्याय के भेद हेय है। किस कारण से? **वे परस्वभाव हैं...** जरा सूक्ष्म बात है। क्षायिकसमकित की पर्याय को भी यहाँ परस्वभाव कह दिया है क्योंकि पर्याय के आश्रय से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। समझ में आया? ५० वीं गाथा बराबर लिख लेना। नियमसार की ५० गाथा।

पुव्वुत्तसयलभावा पूर्व में जो सकलभाव कहे, वे सब हेय हैं। पाठ में हेय है। पाठ में पहले **परदव्वं** है, बाद में **परसहाव** है, पश्चात् **हेयं** है। अर्थ में पहले लिया है कि हेय है क्योंकि परस्वभाव है क्योंकि परद्रव्य है। समझ में आया? अपनी पर्याय में क्षयोपशम-समकित हुआ, क्षायिकसमकित हुआ, उसे ही यहाँ तो हेय कहने में आया है। क्यों? कि जैसे परद्रव्य में से अपनी नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती, वैसे पर्याय में से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती तो उस पर्याय को भी यहाँ पाठ में परद्रव्य कह दिया है। ऐसा कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं।

सग-दव्व-मुवादेयं एक द्रव्य सामान्य ज्ञायक अन्तर सत्व परमात्मा, वही अपना **अप्पा** अन्तर उपादेय है। समझ में आया? जैसे कर्म और शरीर का लक्ष्य-आश्रय करने से सम्यग्दर्शन नहीं होता। इसी प्रकार पर्याय का क्षयोपशम ज्ञान है, उपशमभाव हो या क्षायिक (भाव हो), उसके लक्ष्य से, उसमें से नयी पर्याय नहीं आती। नयी पर्याय प्रगट होने में अपना **अप्पा** त्रिकाल ज्ञायकमूर्ति है, उसे उपादेय करके नयी पर्याय प्रगट होती है। आहाहा! समझ में आया? तो चार निक्षेप तो कहीं रह गये।

भाई! यहाँ तो वहाँ तक कहते हैं कि चार भाव, हों! (मैं) नहीं। विभाव.. विभाव-चार पर्याय विशेष भाव है। भगवान आत्मा एक स्वरूप से चैतन्यबिम्ब बिराजमान है। उसका आश्रय करने से, वही एक उपादेय है। उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है, उसके आश्रय से चारित्र होता है, उसके आश्रय से शुक्लध्यान होता है, उसके आश्रय से केवलज्ञान होता है। पर्याय के आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं, चारित्र नहीं, शुक्लध्यान नहीं और केवलज्ञान नहीं। पर का आश्रय करने से विकल्प उत्पन्न होता है। आहाहा! समझ में आया? पर्याय का आश्रय करने से विकल्प उत्पन्न होता है क्योंकि पर्याय में पर्याय है नहीं। एक समय की पर्याय में दूसरी पर्याय नहीं। उस पर्याय का व्यय होता है और दूसरी पर्याय उत्पन्न होती है। उस पर्याय में पर्याय नहीं; तो यहाँ आचार्य महाराज कहते हैं कि उस पर्याय को तो हम हेय कहते हैं। चाहे तो उदय की-राग की पर्याय हो, चाहे उपशम हो, चाहे क्षयोपशम की, चाहे तो क्षायिक की हो; उसे हम हेय कहते हैं, उसे परभाव कहते हैं और उसे हम परद्रव्य कहते हैं। तीन बोल लिये हैं। **हेयं परसहावमिदि परदव्वं** समझ में आया? ओहो!

श्रोता : क्षायिक सम्यग्दर्शन हेय?

पूज्य गुरुदेवश्री : क्षायिक समकित हेय है क्योंकि समकित में से चारित्र की पर्याय नहीं आती। शान्ति की चारित्रपर्याय स्वभाव के आश्रय से होती है। (पर्याय के आश्रय से) चारित्र प्रगट नहीं होता, यह बात है। आहाहा! बात में इतना अन्तर है, मार्ग में बहुत फेरफार हो गया है।

भगवान! तेरा द्रव्य ही एक स्वरूप है, उसे ही हम तो परद्रव्य कहते हैं - ऐसा यहाँ

आचार्य कहते हैं। परद्रव्य को तो परद्रव्य कहते ही हैं, देव-गुरु-शास्त्र, स्थापनानिक्षेप, साक्षात् समवसरण में बिराजमान प्रभु परद्रव्य है। उनके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता।

श्रोता : दिव्यध्वनि से होता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : दिव्यध्वनि परद्रव्य है। यहाँ तो कहना है कि दिव्यध्वनि तो परद्रव्य है, भगवान परद्रव्य है, समवसरण परद्रव्य है, सम्मेदशिखर परद्रव्य है तो उनके आश्रय से सम्यग्दर्शन तीन काल में नहीं होता।

यहाँ तो कहते हैं कि अपने ध्रुव आत्मा के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन हुआ, उस सम्यग्दर्शन के आश्रय से भी शुद्धि की नयी पर्याय नहीं होती। अपने शुद्ध (स्वरूप के) आश्रय से नयी शुद्धपर्याय उत्पन्न होती है। आहाहा! अरे! चारित्र की पर्याय को यहाँ परद्रव्य कह दिया (कि) जो चारित्र अपने शुद्ध द्रव्य के अवलम्बन से उत्पन्न हुआ है। समझ में आया? ५० वीं गाथा समझे तो समझ में आये ऐसी है, हों! ऐसी बात है।

नियमसार, शुद्धभाव अधिकार, शुद्धभाव अधिकार। इस शुद्धभाव का अर्थ पर्याय नहीं। शुद्धभाव अर्थात् त्रिकाल। जो शुभ-अशुभ और शुद्धपर्याय है, वह बात नहीं। यहाँ शुद्धभाव अधिकार है तो यहाँ पहली ही गाथा में लिया है कि भगवान आत्मा... पहले भी ३८ गाथा में लिया है। वही बात यहाँ ५० (गाथा में) ली है। समझ में आया? देखो! ३८।

'जीवादिबहित्तच्चं हेयम्' - ऐसा पाठ है। शुद्धभाव अधिकार की ३८ वीं गाथा है। वह ५० है, यह ३८ वीं है एक ही अधिकार है। **'जीवादिबहित्तच्चं हेयम्'** जीव, अजीव विकल्प परद्रव्य आदि, संवर, निर्जरा, मोक्ष आदि पर्याय **'हेयम्'** **'जीवादिबहित्तच्चं हेयम्'** **'उपादेयमप्पणो अप्पा'** एक अपना **'अप्पा'** शुद्धध्रुवस्वभाव है, वही आदरणीय है, आश्रय करने योग्य है। यह ३८ वीं गाथा है, शुद्धभाव अधिकार की ३८ वीं, वह शुद्धभाव अधिकार की ५०वीं (थी) समझ में आया? अरे! परन्तु शास्त्र क्या कहते हैं यह समझना नहीं और अपना अभिप्राय छोड़ना नहीं, अपनी पकड़ छोड़ना नहीं। नहीं.. नहीं.. नहीं.. परन्तु सुन तो सही।

जहाँ भगवान आत्मा अपना शुद्ध चैतन्य ध्रुव पर दृष्टि होने से सम्यक्त्व हुआ, स्थिरता करने से चारित्र हुआ। उस चारित्र के आश्रय से भी शुक्लध्यान नहीं होता क्योंकि वह पर्याय है, उस पर्याय को भी यहाँ हेय कहा है, परभाव कहा है, परद्रव्य कह दिया है। स्वद्रव्य शुद्धध्रुव को ही स्वद्रव्य कहा है। आहाहा! समझ में आया? भगवान परमात्मस्वरूप एक समय में पूर्ण है। शुद्ध ज्ञायक चिदानन्द प्रभु की अनुभूति करने से, उसका आश्रय करने से अनुभव होता है, उसका आश्रय करने से शुक्लध्यान होता है, उसका आश्रय करने से केवलज्ञान होता है। पर्याय का आश्रय करने से नयी पर्याय उत्पन्न नहीं होती। समझ में आया?

तीन बोल लिये हैं। हेय, परभाव, परद्रव्य। ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्यदेव की सिद्ध करने की पद्धति (गजब है)! भगवान आत्मा...! एक समय की उत्पाद-व्यय, उत्पाद-व्यय पर्याय है न? वह तो व्यवहार आत्मा है। क्या कहा? सुनो! और दूसरी बात आ गयी। राग तो आस्रव है, परन्तु सम्यक् शुद्ध चैतन्यद्रव्य के आश्रय से जो सम्यग्दर्शन, क्षायिक चारित्र पर्याय उत्पन्न हुई, वह व्यवहार आत्मा है, पर्याय आत्मा है, पर्याय के अंशरूप व्यवहार आत्मा है; वह निश्चय आत्मा नहीं। आहाहा! जम्बूप्रसादजी!

श्रोता : पर्यायदृष्टि करनेवाला पर्यायमूढ़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसमें एकाकार हो तो मूढ़ है परन्तु पर्याय है—ऐसा जानकर द्रव्य का आश्रय करे तो ज्ञानी है। समझ में आया?

यहाँ तो थोड़ा दूसरा कहना था कि भगवान आत्मा ध्रुव शुद्ध वस्तु है, उसे चार निक्षेप के आश्रय से इस आनन्द की उत्पत्ति या सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति नहीं होती। अब यह शुद्ध भगवान आत्मा एक स्वभाव के आश्रय से जो दशा हुई, उस दशा को भी, आचार्य यहाँ कहते हैं कि हम उसे हेय कहते हैं, परभाव कहते हैं, परद्रव्य कहते हैं। व्यवहार से आत्मा (कहते हैं)। शुद्धपर्याय को व्यवहार से आत्मा (कहते हैं) न्याय सुनो!

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग की पर्याय, स्वभाव के आश्रय से उत्पन्न हुई, उस मोक्षमार्ग की पर्याय को हम व्यवहार आत्मा कहते हैं, व्यवहार आत्मा का अर्थ वह (कि) निश्चय आत्मा नहीं। निश्चय आत्मा का अर्थ-वह (पर्याय) परद्रव्य है। आहाहा! गजब बात है। राजबहादुरजी! बहुत सूक्ष्म है भाई! व्यवहार है न? भाई! व्यवहार अन्यथा कहता है, वास्तविक द्रव्य को (कहता नहीं)। आहाहा! गजब शैली है।

कहते हैं कि आश्रय करनेयोग्य नहीं परन्तु उसे यहाँ परद्रव्य क्यों कहा यह सिद्ध किया। क्षायिकभाव स्वभाव के आश्रय से हुआ, स्वभाव के आश्रय से चारित्र हुआ, छठे गुणस्थान में चारित्र आदि; उस पर्याय को यहाँ हेय कहा, परभाव कहा, परद्रव्य कहा। व्यवहार से उस चारित्रपर्यायसहित शुद्ध निर्मल पर्याय है, वह व्यवहार आत्मा है। निश्चय आत्मा एक समय की पर्यायरहित त्रिकाली ध्रुव, वह निश्चय आत्मा है। आहाहा!

फिर से कहते हैं। ओहोहो! कुन्दकुन्दाचार्यदेव की कथन पद्धति कोई गजब शैली है! यह तो भाई! दूसरे प्रकार से कहा कि आत्मा एक समय का शुद्ध ध्रुव त्रिकाल चैतन्यमूर्ति वह निश्चय आत्मा है और उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय उत्पन्न हुई। राग तो अनात्मा है, उसे एक ओर रखो, अभी राग बाकी है न? पर्याय में पूर्ण वीतराग नहीं तो (राग है), वह तो अनात्मा है, आस्रव में गया परन्तु शुद्धपर्याय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की-निश्चयमोक्षमार्ग की

पर्याय उत्पन्न हुई, उसे एक समय का अंश कहकर व्यवहार आत्मा कहा। एक समय की पर्याय है न? क्या कहा समझ में आया?

जो प्रगट है, वह तो एक समय की पर्याय है, दूसरे समय में दूसरी होती है, तीसरे समय में तीसरी होती है। आहाहा! केवलज्ञान है, वह एक समय की पर्याय है। केवलज्ञान दो समय नहीं रहता। दूसरे समय दूसरा (होता है)। वैसा ही, परन्तु दूसरा (होता है)। जम्बूप्रसादजी! केवलज्ञान पर्याय है, गुण नहीं। गुण है, वह तो त्रिकाल सदृश रहते हैं, पर्याय विसदृश है। एक समय की केवलज्ञान पर्याय हुई, वह दूसरे समय में वही नहीं रहता, वैसा ही होता है परन्तु वह नहीं, पर्याय दूसरी है। अत: केवलज्ञान भी एक समय का अंश सद्भूतव्यवहारनय का विषय है। ओहोहो! गजब बात है! सद्भूतव्यवहारनय का विषय है तो उसे व्यवहार आत्मा कहा। ओहोहो! गजब शैली है। समझ में आया?

कहते हैं कि नीचे साधकदशा में केवलज्ञान नहीं। क्षायिक समकित हो, चारित्रपर्याय हो, एक समय के त्रिकाल ध्रुव को सत्यार्थ आत्मा कहते हैं, सत्यार्थ आत्मा कहते हैं। एक समय की पर्याय को असत्यार्थ कहते हैं। त्रिकाल की अपेक्षा से असत्यार्थ कहते हैं और व्यवहार की अपेक्षा से उसे व्यवहार आत्मा कहते हैं। ए... हिम्मतभाई! धीरे समझो, भाई! फिर से कहेंगे एकदम नहीं रख देंगे। आहाहा!

श्रोता : ऐसा लगता है कि एक ही है, परन्तु प्रत्येक समय दूसरी पर्याय होती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रत्येक समय दूसरी है। वह तो उत्पाद होता है न! समय-समय का उत्पाद नया-नया है।

यहाँ तो दूसरी बात कहनी है कि आत्मा में जो पर्याय उत्पन्न होती है, शुद्धपर्याय, शुद्धपर्याय। वह शुद्धपर्याय, शुद्धद्रव्य के आश्रय से उत्पन्न हुई है परन्तु उस शुद्धपर्याय को निश्चय आत्मा नहीं कहते; व्यवहार आत्मा कहते हैं क्योंकि अंश है। एक समय की पर्याय, चारित्र-मोक्षमार्ग की पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय व्यवहार आत्मा है क्योंकि अंश है, त्रिकाल का एक भेद है। त्रिकाल को निश्चय आत्मा कहते हैं और अंश को व्यवहार आत्मा कहते हैं। व्यवहार कहा तो निश्चय से उसे परद्रव्य कह दिया। आहाहा!

श्रोता : ...

पूज्य गुरुदेवश्री : प्रगट हुई तो पर-भिन्न है, भिन्न है। ध्रुव से भिन्न है। उत्पादरूप है। ध्रुव तो भिन्न रह गया। उत्पादरूप हुई तो उतनी पर्याय को-शुद्धपर्याय को निश्चय आत्मा नहीं कहते। निश्चय आत्मा तो कायम रहे,उसे निश्चय आत्मा कहते हैं। अरे! यहाँ तो दूसरा लेना है। यहाँ

परद्रव्य कहा न? व्यवहार से आत्मा और निश्चय से परद्रव्य। आहाहा! गजब बात है, भाई! अभी कहेंगे, कहेंगे। ऐसे नहीं चला लेंगे।

आत्मा है वह एक समय में ध्रुव सदृश चिदानन्द अनादि-अनन्त एकरूप वस्तु है। उसमें उत्पाद-व्यय नहीं, उत्पाद-व्यय नहीं। उत्पाद-व्ययरहित जो ध्रुवस्वरूप है, उसे यहाँ निश्चय आत्मा कहते हैं। समझ में आया? परमात्मप्रकाश है? परमात्मप्रकाश की ४३ गाथा में ऐसा लिया है। पहला अधिकार और दूसरा अधिकार दोनों में ४३ (गाथा है)।

उत्पाद-व्ययरहित ध्रुव वही यथार्थ वास्तविक आत्मा है—ऐसा लिखा है। उसमें अपने आया न? नियमसार में आ गया, नियमसार में आ गया। क्या कहते हैं? नियमसार में वास्तविक आत्मा कहाँ आया? आया था न? शुद्धभाव में आया या किसमें आया? शुद्धभाव। यह आया, लो! अनादि-अनन्त अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाववाला सहज परमपारिणामिक जिसका स्वभाव ऐसा कारण परमात्मा वह वास्तव में आत्मा है। ***अनादि-निधन अमूर्त अतीन्द्रिय स्वभाव शुद्ध सहज परमपारिणामिकभाव स्वभाव कारणपरमात्मा ही आत्मा है। उसे ही आत्मा कहते हैं। त्रिकाल ध्रुव को वास्तविक आत्मा कहा। उत्पाद-व्यय को वास्तविक आत्मा (कहा) नहीं। आहाहा!*** समझ में आया? देखो, वास्तव में वह आत्मा है। यहाँ टीका में पाठ है न? ***एक समय का ध्रुव वास्तव में आत्मा है। वास्तव में कहो या सच्चा आत्मा कहो। एक समय की पर्याय वास्तव में आत्मा नहीं, वास्तविक आत्मा नहीं। वह पर्यायरूप व्यवहार आत्मा है। आहाहा!*** सेठ! बहुत सूक्ष्म है।

फिर से, यहाँ तो ऐसे का ऐसा कैसे जाने दें? बराबर पक्का करना चाहिए न! ***एक समय का जो ध्रुव है, उसे यहाँ वास्तविक आत्मा कहा है। वास्तविक एक समय की पर्याय जो है, चारित्र की-मोक्षमार्ग की पर्याय, वह वास्तविक आत्मा नहीं। भाई! वास्तविक नहीं तो अवास्तविक आत्मा सिद्ध हुआ। अवास्तविक अर्थात् व्यवहार आत्मा हुआ। आहाहा! गजब बात है!*** सन्तों की कथनी..! समझ में आया? ऐसी बात दुनिया को सुनना कठिन (पड़े) ऐसी बात है। समझ में आया?

कहते हैं कि एक समय का भगवान आत्मा, उत्पाद-व्यय निकाल दो, उत्पाद-व्यय नहीं; उत्पाद-व्यय एक समय की पर्याय है। चाहे तो सिद्ध हो परन्तु वह उत्पाद-व्यय पर्याय है। क्या (कहा)? ***सिद्ध भी एक समय की पर्याय है। द्रव्य त्रिकाली कायम है। तो एक समय की पर्याय वह उत्पाद-व्यय है। वर्तमान पर्याय व्यवहारनय का विषय हुआ और त्रिकालस्वरूप जो भगवान एक स्वरूप है, वह निश्चय-वास्तविक आत्मा है। आहाहा!*** यह परिणमन व्यवहार आत्मा हो गया। पर्याय है या नहीं? वह पर्याय है। पर की क्रिया तो कहीं जड़ में रह गयी, वह तो व्यवहार

है ही नहीं। दया, दान का राग आया, वह व्यवहार नहीं, वह तो पर विकार है परन्तु यहाँ तो व्यवहार आत्मा किसे कहते हैं? आहाहा!

भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुण का एक स्वरूप ध्रुव चैतन्य प्रभु को वास्तविक आत्मा सर्वज्ञ परमेश्वर कहते हैं। दोपहर को यह चलता है। अकार्यकारण की शक्ति उसमें पड़ी है। उस आत्मा को वास्तविक आत्मा कहा और उस आत्मा के आश्रय से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की जो पर्याय उत्पन्न हुई.. समझ में आया? अपने स्वभाव के आश्रय से निश्चय सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय, मोक्षमार्ग की पर्याय प्रगट हुई, वह एक समय का अंश है, उत्पाद-व्यय अंश है; वह वास्तविक त्रिकाल नहीं तो उसे व्यवहार आत्मा कहा, अवास्तविक आत्मा कहा। समझ में आया? ***आहाहा! अवास्तविक आत्मा कहो.. पर्याय, हों! सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वीतरागी पर्याय जो कि त्रिकाल आत्मा के आश्रय से प्रगट हुई है, उस पर्याय को भगवान वास्तविक आत्मा नहीं कहते, क्योंकि एक समय की पर्याय है, वह व्यवहारनय का विषय हो गया। व्यवहार है, वह अभूतार्थ है। वह त्रिकाल भूतार्थ से भिन्न है।*** एक स्वरूप त्रिकाल है, उसे भूतार्थ आत्मा कहते हैं, सत्यार्थ आत्मा कहते हैं; एक समय की पर्याय को, अनित्यपने को व्यवहार आत्मा कहते हैं। उस व्यवहार आत्मा को ५० गाथा में कहा कि हेय है, परभाव है, परद्रव्य है। आहाहा! गजब बात है! समझ में आया?

देखो! यह परमात्मप्रकाश। दोनों अधिकार में ४३ है। देखो! ४३। **आगे यद्यपि पर्यायार्थिकनयकर उत्पादव्ययकर सहित है, तो भी द्रव्यार्थिकनयकर उत्पादव्ययरहित है, सदा ध्रुव (अविनाशी) ही है, वही परमात्मा...** वही परमात्मा (अर्थात्) अपना (आत्मा)। **निर्विकल्प समाधि के बल से तीर्थंकरदेवों ने देह में भी देख लिया है,...** क्या कहते हैं? फिर से - अपनी पर्याय में जो उत्पाद-व्यय होता है, पर्याय में; कर्म अलग, शरीर अलग... अलग। पूरा परमात्मप्रकाश रेकार्डिंग में उतर गया है, सब रेकार्डिंग में उतर गया है।

देखो! पाठ है। **अथोत्पादव्ययपर्यायार्थिकनयेन संयुक्तोऽपि यः द्रव्यार्थिकनयेन उत्पादव्ययरहितः स एव परमात्मा निर्विकल्पसमाधिबलेन जिनवरैर्देहेऽपि दृष्ट इति निरूपयति-** भगवान आत्मा एक समय में अनन्त गुण का पुंज है। उसमें गुण तो अनन्त है—ऐसा ध्रुव, उत्पाद-व्यय की पर्यायरहित भगवान तीर्थंकरदेव ने देह में, देह का स्पर्श किये बिना आत्मा रहता है। ओहो! उसे देह का तो स्पर्श नहीं परन्तु उसे उत्पाद-व्यय का स्पर्श नहीं। सुनो! उत्पाद-व्यय का तादात्म्य स्पर्श नहीं। ***एक समय की पर्याय उत्पाद-व्यय सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र आनन्द जो मोक्ष का मार्ग, हों! शुद्ध द्रव्य के आश्रय से सम्यग्दर्शन ज्ञान-चारित्र प्रगट हुए, उस एक समय की पर्याय को द्रव्य स्पर्श नहीं करता। आहा!*** यह फिर आ गयी, १७२ गाथा, प्रवचनसार १७२

गाथा में कहते हैं कि पर्याय को द्रव्य आलिंगन नहीं करता। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है, भाई!

शुद्ध चैतन्यधातु, द्रव्यवस्तु जिसमें अनन्त गुण पड़े हैं। अकार्यकारण गुण आदि, ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण का धाम, उसे सर्वज्ञ परमेश्वर वास्तविक आत्मा कहते हैं। ऐसे आत्मा को, देह का स्पर्श किये बिना भगवान उसमें रहते हैं, तो भगवान तीर्थंकरदेव ने उत्पाद-व्ययरहित पूरा आत्मा देह से भिन्न देख लिया है। समझ में आया? आहाहा!

ऐसा भगवान आत्मा उत्पाद-व्ययकर पर्याय से सहित है तो भी द्रव्यार्थिकनयकर उत्पाद-व्ययरहित है, सदा अविनाशी ही है। वही परमात्मा है, उसी वास्तविक आत्मा की अन्तर्दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होता है। प्रथम में प्रथम धर्म की शुरुआत वहाँ होती है। सिर फोड़कर मर जाये, क्रियाकाण्ड करके, व्रत पालन करके (मर जाये) परन्तु उसे सम्यग्दर्शन दूसरे प्रकार से नहीं होता। समझ में आया? मर जाये, उपवास कर-करके शरीर का चूरा हो जाये, महीने-दो महीने के मांसखमण करके, दया के भाव करके मर जाये, चूरा हो जाये (तो भी) उसमें धर्म बिलकुल नहीं। भगवान आत्मा एक समय का (में) ध्रुव चैतन्य प्रभु को पकड़ने से-उसके आश्रय से धर्म होता है। (उसका आश्रय) करने से धर्म होता है, दूसरी कोई पद्धति नहीं है।

यहाँ तो कहते हैं कि जो धर्म प्रगट हुआ, वह भी उत्पाद-व्ययवाली पर्याय (है जो) व्यवहारनय का विषय है। आहाहा! जिसे राग से मुक्ति होती है, वह तो व्यवहार है - ऐसा है नहीं। परन्तु निश्चयमोक्षमार्ग से मुक्ति होती है, वह निश्चयमोक्षमार्ग तो राग की अपेक्षा से कहा, परन्तु त्रिकाल द्रव्य की अपेक्षा से निश्चयमोक्षमार्ग की पर्याय व्यवहार है क्योंकि अंश-भेद है। समझ में आया? अरे! सर्वज्ञ ने क्या देखा और क्या कहा? उसका पता नहीं होता और उसे धर्म हो जाये... धूल में भी धर्म नहीं। मर गया अनन्त काल से। चौरासी के अवतार (किये)। जैन का दिगम्बर साधु निवृत्ति लेकर अनन्त बार हुआ। 'मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायौ पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायौ।' भगवान आत्मा एक समय में अखण्डानन्द पूर्ण अनन्त गुण का पिण्ड है, उसकी अन्तर्दृष्टि करने से, उसका आश्रय करने से सम्यग्दर्शन होता है। लाख बार चार निक्षेप से, भगवान की मूर्ति से और भगवान के दर्शन से सम्यग्दर्शन तीन काल में नहीं होता। समझ में आया? जम्बूप्रसादजी! आहाहा! गजब बात, भाई!

भाई! क्या कहा? कि प्रभु आत्मा तो एक समय का (में) अनादि-अनन्त ध्रुव, जिसमें अनन्त परमात्मा स्थित हैं। किसमें? कि द्रव्य में? द्रव्य जो एक समय का है, उसमें तो अनन्त सिद्ध परमात्मा स्थित हैं। अनन्त सिद्ध! क्योंकि सिद्ध, वह पर्याय है। ऐसी अनन्त पर्याय, सिद्ध की अनन्त पर्याये, आत्मद्रव्य में अनन्त पर्याय पड़ी है। ऐसा भगवान आत्मा परमात्मा स्वयं है,

उसका अनुभव करके उसका आश्रय करना, वह सम्यग्दर्शन है। इसके अतिरिक्त क्रियाकाण्ड करके मर जाये, लाख दूसरा करे और उसमें धर्म माने तो महामिथ्यात्व सेवन करता है। मिथ्यात्व-पाप क्षण-क्षण में (होता है)। महापाप तो वह है। मिथ्यात्व जैसा कोई पाप नहीं। आहाहा! समझ में आया? राग से धर्म होता है और दया से धर्म होता है और मैं पर की दया पाल सकता हूँ... मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। पापी है, पापी - महा-बड़ा पापी है। मिथ्यात्व जैसा (बड़ा पाप कोई नहीं है)। सप्त व्यसन के पाप से भी मिथ्यात्व का पाप अनन्त गुना है। समझ में आया? ए.. शोभालालजी! यहाँ कठिन बात है।

श्रोता : सरल है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सरल है? सेठ भी अब प्रसन्न हो गया, लो!

भगवान आत्मा...! यहाँ ४३ वीं गाथा में तो ऐसा कहना है कि उत्पाद-व्ययरहित जो आत्मा, वह आत्मा है, वह वास्तविक आत्मा है। यहाँ भी यह कहा कि वास्तविक आत्मा, कारणपरमात्मा, एक समय में अनन्त गुण का पिण्ड एकरूप, वही वास्तविक आत्मा है। जो पर्याय है, वह वास्तविक आत्मा नहीं। शरीर तो... आहाहा! देखो! मस्तिष्क में दूसरा प्रश्न आया। शरीर का प्रश्न हुआ था न? पण्डितजी! जयपुर... जयपुर..! पण्डित की उपस्थिति में वहाँ जयपुर में शरीर का प्रश्न हुआ था। जीवित शरीर से धर्म होता है या नहीं? ऐसा प्रश्न (हुआ था)। भगवान! सुन तो सही! आत्मा में एक ऐसा गुण है कि स्वधर्मव्यापक है। राग, शरीर में तो आत्मा कभी व्याप्त हुआ ही नहीं। आत्मा में एक स्वधर्मव्यापक नामक गुण है। सैंतालीस शक्ति में एक गुण है। समझे? सैंतालीस शक्ति है न? इस समयसार में पीछे है। समझ में आया? अपने अनन्त गुण में स्वधर्म में व्यापक है। कभी शरीर में, राग में आत्मा व्यापक नहीं है। आहाहा! उसे आत्मा कहते हैं। आहाहा! यहाँ तो कहते हैं, प्रभु!

यह दशलक्षणी का व्याख्यान है। यह मोक्षमार्ग का व्याख्यान है। आकिंचन का है न? यह उत्पाद-व्यय मेरे नहीं, ध्रुव मेरा है - ऐसा है। लो! ***शरीर तो मेरा नहीं, वाणी मेरी नहीं, खाना-पीना सब जड़ की क्रिया है, मेरी नहीं और अन्दर में दया, दान का राग आवे, वह मेरा नहीं। वह तो नहीं परन्तु उत्पाद-व्यय की पर्याय मेरे त्रिकाल में है - ऐसी पर्याय मुझमें नहीं। मेरी हो तो कायम रहे। एक समय की है। एक समय का व्यवहार है, एक समय की है।*** एक समय की है त्रिकाल नहीं—इस अपेक्षा से तो ग्यारहवीं गाथा में अभूतार्थ कह दी है। **ववहारोऽभूदत्थो** पर्याय असत्यार्थ है, इस अपेक्षा से, हों! त्रिकाल में नहीं, इस अपेक्षा से। पर्याय तो पर्याय है। समझ में आया? आहाहा! अरे! इसे सत्य का पता नहीं होता और धर्म होता है और कल्याण होगा... मर जायेगा अब। चौरासी के अवतार में अनन्त बार गोते खाये। निगोद के रास्ते हो और माने कि हम कुछ धर्म के रास्ते हैं।

यहाँ तो कहते हैं, एक बार सुन तो सही! चैतन्य भगवान एक समय में ध्रुव बिराजमान है, उसे हम निश्चय आत्मा, वास्तविक आत्मा कहते हैं। क्यों? कि उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र मोक्षमार्ग और मोक्ष प्रगट होता है। उसके आश्रय से ही मोक्षमार्ग प्रगट हुआ, वह भी उत्पाद-व्यय की पर्याय है। उस उत्पाद-व्यय की पर्याय के आश्रय से नयी शुद्धि उत्पन्न नहीं होती; इसलिए निश्चय मोक्षमार्ग को भी हम व्यवहार आत्मा कहते हैं। निश्चय से उसे परद्रव्य कहते हैं। आहाहा! गजब बात है! कहाँ की कहाँ बात आ गयी! कहो, जिनेश्वरदासजी! याद रहना जरा कठिन है। बोल थोड़ा सूक्ष्म आ गया है न!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रमाण, नय, निक्षेप चार। भगवान हो, स्थापना हो, योग्यता अपनी पर्याय में भावनिक्षेप हो, भगवान की पर्याय में केवलज्ञान भावनिक्षेप है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। भावनिक्षेप पर्याय है। वर्तमान प्रगट पर्याय को भावनिक्षेप कहते हैं। उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता तो भगवान के दर्शन से और बाहर से सम्यग्दर्शन होता है—ऐसा तीन काल में नहीं। व्यवहार है अवश्य, शुभभाव है। हो - परन्तु उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है या ज्ञान होता है या चारित्र होता है—ऐसा तीन काल में नहीं है। कहो, समझ में आया? दासबहादुरजी! ए... वेणीप्रसादजी! गजब बात है! प्रभु! तेरी ऐसी लीला है, उसकी तुझे खबर नहीं। अभी खबर नहीं, बेखबरी अज्ञानी मूढ़ है और मानता है कि हमें धर्म होता है। कहाँ है तेरा धर्म? समझ में आया?

एक समय में भगवान आत्मा... यहाँ तो कहते हैं कि कोई ऐसा कहे कि भगवान के दर्शन से समकित होता है तो यहाँ कहते हैं कि विलक्षण व्यवहारनय के विषय में गया। उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा! **अपने चैतन्यलक्षणरूप जीवस्वभाव का अनुभव करने पर...** सम्यग्दर्शन होता है। अपने आश्रय से अनुभूति होती है। किसी भी विकल्प से या पर के आश्रय से नहीं होती। साक्षात् परमेश्वर समवसरण में बिराजमान हो तो उनके आश्रय से भी सम्यग्दर्शन नहीं होता। दिव्यध्वनि के आश्रय से नहीं होता। पहले यह आता था न? दिव्यध्वनि से लाभ नहीं? सुन तो सही! दिव्यध्वनि सुनता है तो वह विकल्प-शुभराग है क्योंकि वह परद्रव्य है। समझ में आया? उससे सम्यग्दर्शन नहीं होता। राग मन्द करके सुनता है, ज्ञान का क्षयोपशम है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। आहाहा!

द्रव्य के आश्रय से होता है। अपने आश्रय से (होता है)। (दूसरे सब) निमित्त के कथन हैं। (भगवान की प्रतिमा के दर्शन से सम्यग्दर्शन हुआ) ऐसा कहा, परन्तु ऐसा है नहीं, है नहीं, परन्तु निमित्त का ज्ञान कराने को कहा। है नहीं (उसे कहा) व्यवहारनय का विषय ही ऐसा ही है कि है नहीं उसे कहना, उसका नाम व्यवहार है। आहाहा! समझ में आया?

भाई! तूने तेरा आत्मा, सर्वज्ञ ने देखा वैसा तूने कभी माना नहीं। माने तब तो सम्यग्दर्शन हो जाये और जन्म-मरण का अन्त आ जाये। चाहे तो ९६ हजार स्त्री के वृन्द में पड़ा हो, समझ में आया? आता है न? ९६ हजार। उसमें ८४ हजार है। उसमें पड़ा हो तो क्या है? भोग की वासना हो तो राग-दोष है। अन्तर में राग से भिन्न मेरी चीज़ अखण्डानन्द प्रभु है, उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन हुआ है तो बन्ध है ही नहीं, चल! समझ में आया? मिथ्यात्व से बन्ध पड़ता है, उसे ही बन्ध कहने में आया है। दोपहर को यह चलता है। आहाहा! अभी तो राग मन्द करे और ऐसा करे और वैसा करे... मन्द करना पड़े, करना पड़े। क्या करना पड़े? राग मन्द करना-ऐसी कर्ताबुद्धि है, तब तक मिथ्यादृष्टि है। भगवान आत्मा राग से भिन्न है। राग करना पड़ता है न! करना तो पड़ता है न! मूढ़ है। चैतन्य का खून करनेवाला मिथ्यादृष्टि है। आहाहा! समझ में आया? दूसरे की हिंसा करे, न करे; अपनी महान हिंसा करता है। आहाहा! समझ में आया?

यहाँ तो कहते हैं, अपने तो यह विषय जरा सूक्ष्म (चलता है) कि उत्पाद-व्यय-पर्याय को भी निश्चय से आत्मा नहीं कहा। व्यवहार आत्मा कहा। पर्याय है या नहीं? पर्याय को व्यवहार कहा, द्रव्य को निश्चय कहा, तो एक समय की सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र पर्याय प्रगट हुई, वह पर्याय है तो पर्याय का विषय व्यवहारनय का विषय हो गया। अतः व्यवहार आत्मा हुआ, निश्चय आत्मा नहीं हुआ। यह भारी गजब बात! तो दया, दान के विकल्प तो कहीं रह गये, वे तो धूल में गये। वह राग तो आस्रवतत्त्व में है। आहाहा! बहुत सत्य बात है, परन्तु यही सत्य है, यही सत्य है। शुरुआत का सत्य यही है। तीन काल-तीन लोक में दूसरा कोई सत्-यथार्थ है ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

श्रोता : गहरा स्वरूप...

पूज्य गुरुदेवश्री : अन्दर में गहरा स्वरूप भगवान आत्मा है, वहाँ गोता खाना पड़ेगा... वहाँ अन्दर बारम्बार दृष्टि करने से सम्यग्दर्शन होगा, दूसरा कोई उपाय नहीं है। लाख क्रियाकाण्ड करके मर जाये, अपवास और दया, दान और व्रत... आहाहा! दासबहादुरजी! क्या इसमें अकेला निश्चयाभास नहीं होता? अरे! सुन तो सही! तूने निश्चय क्या है यह (सुना नहीं)।

भगवान आत्मा अनन्त गुण का पिण्ड प्रभु ही वास्तविक आत्मा है। उसके आश्रय से अनुभव करने से अनुभूति होती है। भगवान के निक्षेप से और सामने परमात्मा तीर्थंकर भावनिक्षेप हो तो भी उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन नहीं होता। समझ में आया? तो फिर दया, दान के परिणाम से सम्यग्दर्शन होता है और मैं पर की क्रिया कर दूँ... समझ में आया? (ऐसा माननेवाला) महा-बड़ा पापी मूढ़ है। मैं परद्रव्य में कुछ संस्कार डालता हूँ, परद्रव्य में मैं कुछ सुधार करता हूँ (-ऐसा माननेवाला) बड़ा पापी मूढ़ मिथ्यादृष्टि है।

श्रोता : बहुत दूर की बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री : बहुत दूर की बात रही। हाँ, बहुत स्थूल मिथ्यात्व है। यह तो बड़ा स्थूल मिथ्यात्व है। समझ में आया?

यहाँ तो (कहते हैं) राग के विकल्प से मुझे लाभ होगा (-ऐसा माननेवाला) पापी मिथ्यादृष्टि (है) तेरी दृष्टि झूठी है, वह सत्य का खून करनेवाला है। समझ में आया? आहाहा! वह तो ठीक, परन्तु कहते हैं कि पर्याय के आश्रय से लाभ होगा—ऐसा माननेवाला मूढ़ है, यहाँ तो राग एक ओर रह गया। क्षयोपशम ज्ञान है, क्षयोपशम ज्ञान है, क्षयोपशम दर्शन है, क्षयोपशम वीर्य है। पर्याय में है न? उसके आश्रय से सम्यग्दर्शन होता है (-ऐसा माननेवाला) पर्यायमूढ़ जीव मिथ्यादृष्टि है। समझ में आया? यह सब निक्षेप में से आ गया। यहाँ तो भावनिक्षेप ख्याल में था न! भावनिक्षेप भी केवलज्ञान है। उसके आश्रय से भी नहीं। आहा!

पर्याय तो एक समय की दशा है। उसका आश्रय करे तो विकल्प होता है। एक समय की पर्याय में दूसरी पर्याय रहती है? एक समय की पर्याय में दूसरी पर्याय रहती है? अनन्त शुद्ध पर्याय तो द्रव्य में रहती है। द्रव्यस्वभाव त्रिकाल भगवान आत्मा की रुचि करने से, अनुभव करने से सम्यग्दर्शन होता है। समझ में आया? ओहो!

इस प्रकार इन प्रमाण-नय-निक्षेपों में भूतार्थरूप से एक जीव ही प्रकाशमान है। नवतत्त्व में, प्रमाण, नय, निक्षेप में भगवान आत्मा अकेला सत्य प्रभु, सत्य प्रभु, सच्चिदानन्द ध्रुव प्रभु ही बिराजमान है। उसे सत्य आत्मा कहते हैं। समझ में आया?

भावार्थ - इन प्रमाण, नय, निक्षेपों का विस्तार से कथन तद्विषयक ग्रन्थों से जानना चाहिये; उनसे द्रव्यपर्यायस्वरूप वस्तु की सिद्धि होती है। क्योंकि जानने से द्रव्य क्या है, पर्याय क्या है? - उसका बोध होता है। बोध (अर्थात् यहाँ) यथार्थ ज्ञान की बात नहीं है। साधारण बोध होता है, ऐसा। **वे साधक अवस्था में तो सत्यार्थ ही हैं...** प्रमाण से, नय से वास्तविक वस्तु की लक्ष्य में सिद्धि करना, वह प्रथम अवस्था में सच्चा है। **क्योंकि वे ज्ञान के ही विशेष हैं। उनके बिना वस्तु को चाहे जैसे साधा जाये...** अपनी कल्पना से (साधने जाये और) भगवान ने कहा वैसे नय, निक्षेप से, प्रमाण से वस्तु की सिद्धि न करे तो विपरीत हो जाये, विपरीत हो जाये।

अवस्थानुसार व्यवहार के अभाव की तीन रीतियाँ हैं : प्रथम अवस्था में प्रमाणादि से यथार्थ वस्तु को जानकर ज्ञान-श्रद्धान की सिद्धि करना;... प्रमाण से केवलज्ञान एक समय में तीन काल-तीन लोक को देखता है। ऐसे पर्याय को पहले विकल्प से निर्णय करना। मतिश्रुत परोक्ष है, अवधिज्ञान, मन:पर्ययज्ञान देशप्रत्यक्ष है—ऐसा विकल्प से बराबर निर्णय करना। ऐसा निर्णय करके, पश्चात् उसे छोड़कर मात्र ज्ञायकभाव का आश्रय करने से सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान

होता है। यह धर्म की पहली सीढ़ी और पहली शुरुआत (है)। समझ में आया ? इसके बिना तीन काल-तीन लोक में किसी क्षेत्र में दूसरे प्रकार से धर्म नहीं होता।

ज्ञान-श्रद्धान के सिद्ध होने पर श्रद्धान के लिये प्रमाणादि की कोई आवश्यकता नहीं है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान में वस्तु की प्राप्ति हुई, पश्चात् प्रमाण की कुछ जरूरत नहीं। **किन्तु अब यह दूसरी अवस्था में प्रमाणादि के आलम्बन से विशेष ज्ञान होता है...** सम्यग्दर्शन होने के बाद भी विशेष ज्ञान करने से, क्रम-क्रम से स्वरूप में स्थिरता करने से **राग-द्वेष-मोहकर्म के सर्वथा अभावरूप यथाख्यात चारित्र प्रगट होता है;...** क्योंकि प्रमाण का ज्ञान करना है न ? द्रव्य सामान्य त्रिकाल है और पर्याय एक समय की है। उसमें आ गया कि द्रव्य के आश्रय से लाभ है। द्रव्य के आश्रय से लाभ हुआ - ऐसा विशेष ज्ञान करने से दृष्टि पहले तो जानती है, तो विशेष ज्ञान से **राग-द्वेष-मोहकर्म के सर्वथा अभावरूप यथाख्यात चारित्र प्रगट होता है; उससे केवलज्ञान की प्राप्ति होती है।**

केवलज्ञान होने के पश्चात् प्रमाणादि का आलम्बन नहीं रहता। तत्पश्चात् तीसरी साक्षात् सिद्ध अवस्था है, वहाँ भी कोई आलम्बन नहीं है। इस प्रकार सिद्ध अवस्था में प्रमाण-नय-निक्षेप का अभाव ही है। संक्षिप्त में क्या कहते हैं ? पहले प्रमाण से पूरी चीज़ द्रव्य और पर्याय क्या है - यह निर्णय करना। नय से एक-एक धर्म और एक-एक गुण और एक-एक पर्याय को निर्णय करना और निक्षेप से नाम, स्थापना, योग्यता और भाव क्या है, यह निर्णय करना। बस इतना। यह निर्णय करने के बाद उसका लक्ष्य छोड़ देना और निज चैतन्य का आश्रय करके सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट करना। फिर प्रमाण, नय, निक्षेप की श्रद्धा-ज्ञान में आवश्यकता नहीं। पश्चात् चारित्र के लिये विशेष सिद्ध करना हो तो चारित्र स्वभाव के आश्रय से होता है, राग के आश्रय से नहीं होता। मजबूत संहनन शरीर हो तो चारित्र होता है ऐसा नहीं है। ऐसा निर्णय करके चारित्र प्रगट करना। फिर प्रमाण-नय-निक्षेप की आवश्यकता नहीं है। फिर केवलज्ञान हुआ, वहाँ आवश्यकता नहीं है, सिद्ध हुए वहाँ आवश्यकता नहीं है। इसका कलश आयेगा।

(**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव !)

२५

श्री समयसार, गाथा ७२ प्रवचन नं. १४०
दिनांक २६-०९-१९६६

समयसार, कर्ता-कर्म अधिकार चलता है। ७२ गाथा। हमारी बोत्तेर हमारी भाषा है। तुम्हारी बहत्तर या जो हो वह। हमें हिन्दी ऐसी नहीं आती। देखो! अन्तिम तीसरा बोल है। ७२ में आया न? **णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं** ७२ है न? ७०+२। यह टीका चलती है, देखो! दो बोल तो आ गये। तीसरा बोल भी आ गया। परन्तु विशेष स्पष्टता अपेक्षित है। पहले क्या कहते हैं? **णादूण आसवाणं असुचित्तं तदो णियत्तिं कुणदि जीवो।** ऐसे शब्द हैं। जो कोई प्राणी, पुण्य-पाप के विकल्प को मलिन जानकर, भगवान आत्मा सदा अतिनिर्मल है-(ऐसा जानता है।) इच्छामात्र, चाहे जो व्रत की इच्छा हो, भक्ति की हो, पूजा की हो, दया की हो या कोई भी हो; इच्छामात्र दुःखरूप है, इच्छामात्र मलिन है और भगवान आत्मा सदा अतिनिर्मल है। ऐसे **णादूण आसवाणं असुचित्तं णियत्तिं कुणदि जीवो।** अन्तर में उस राग से निवृत्त होकर अपने स्वभाव में एकाग्र होता है, उसे सम्यग्दर्शन और आत्मा की अनुभूति होती है। यहाँ से धर्म शुरु होता है। समझ में आया?

दूसरा बोल। **णादूण आसवाणं विवरीयभावं** जो राग उत्पन्न होता है—दया, दान, व्रत, भक्ति, तप, जप, पूजा आदि या काम, क्रोध—वे सब विपरीत भाव हैं। चैतन्य से विपरीत जड़ हैं। समझ में आया? चैतन्यप्रकाश का सूर्य है; राग में चैतन्य का अंश नहीं है। इस कारण से शुभ दया, दान, व्रतादि के भाव हैं, वे भी जड़ हैं। जड़ का अर्थ रजकण नहीं, परन्तु उनमें चैतन्य सूर्य प्रकाशमूर्ति प्रभु की चैतन्य किरण उस राग में नहीं है; इस कारण से राग को विपरीत / जड़ कहने में आया है।

णादूण आसवाणं विवरीयभावं यह आस्रव विपरीत भाव है। भगवान चैतन्यस्वभाव अपना रखता है।—ऐसे दो के बीच अन्तर जानकर अपने आत्मा में, अनुभूति में उस विपरीतभाव को छोड़ता है, (राग से) विपरीत भावरूप परिणमन करता है, इसका नाम सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान कहा जाता है। समझ में आया?

अब, तीसरा बोल चलता है। **णादूण आसवाणं दुक्खस्स कारणं** जो कोई विकल्प, वृत्ति

उत्पन्न होती है, वह सब दु:खरूप है। शुभभाव या अशुभभाव दु:खरूप है। **णादूण दुक्खस्स कारणं तदो णियत्तिं कुणदि जीवो।** अन्तर में उस विकार को दु:खरूप जानकर... आस्रव आकुलता उत्पन्न करनेवाले हैं; इसलिए दु:ख के कारण हैं। वृत्तिमात्र शुभ और अशुभ दु:ख-कारण है, दु:खरूप है, जहर है। समझ में आया? सेठी! जहर कहो, दु:खरूप कहो।

भगवान आत्मा तो, सदा ही निराकुलतास्वभाव के कारण किसी का कार्य तथा किसी का कारण न होने से... कल यह बात विशेष चली थी। क्या (कहते हैं)? देखो! आज विशेष चलती है, कल आयी थी। आत्मा अनन्त गुणसम्पन्न है। अनन्त गुणसम्पन्न! वस्तु एक, उसमें अनन्तानन्त गुण सम्पन्न है। उसमें एक गुण ऐसा है कि अकार्यकारण नामक आत्मा में अनादि-अनन्त एक गुण है। जैसे आत्मा ज्ञानस्वरूप है, आनन्दस्वरूप है, श्रद्धास्वरूप है; वैसे अकार्यकारणस्वरूप आत्मा है। आत्मा में वह अकार्यकारण नाम की शक्ति, गुण, स्वभाव अनादि-अनन्त है। तो वह आत्मा, जो राग-विकार उत्पन्न होता है, उस विकार का कार्य भी नहीं और विकार का आत्मा कारण भी नहीं। समझ में आया? देह, वाणी की क्रिया की बात नहीं, वे तो जड़ हैं, पर हैं। उनकी क्रिया तो अज्ञानी आत्मा भी नहीं कर सकता। यह देह, वाणी, हिलना, लना, ऐसे बोलना—यह क्रिया तो आत्मा की, तीन काल में अज्ञानी की भी नहीं है। समझ में आया? क्या कहा?

परद्रव्य की पर्याय तो परद्रव्य का कार्य है, क्योंकि प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्त है; तो प्रत्येक रजकण, एक-एक पोईन्ट अपना ध्रुवपना कायम रखकर अपनी उत्पादरूप पर्याय का कार्य करता है। उसका कार्य दूसरा करे-ऐसा तीन काल-तीन लोक में बनता नहीं। समझ में आया?

आज एक तो ऐसा प्रश्न मस्तिष्क में आया था, वह क्रमवर्ती का बहुत आता है न? क्रमवर्ती। क्रमवर्ती, पर्याय क्रमवर्ती है न? पर्याय, आत्मद्रव्य में क्रमवर्ती है। एक के बाद एक, एक के बाद एक (पर्याय है) और गुण अक्रम है। सुनो! तो पर्याय जो क्रमवर्ती-व्यवस्थित होती है और गुण अक्रम हैं तो आत्मा में एक क्रम अक्रम नाम का गुण पड़ा है। क्रमवर्ती-अक्रमवर्ती नाम का एक गुण पड़ा है। देखो! (१८ वीं शक्ति)। यह तो जरा क्रमवर्ती में दूसरा विचार आ गया। क्या आया? क्रमवर्ती है न? क्रमवर्ती। कहाँ आया?

क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है... जरा सुनो! इसमें क्रमवर्ती का स्पष्टीकरण आता है। क्या कहते हैं? देखो! आज दोपहर को और विचार आया, देखो, सुनो! है? **क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है ऐसी उत्पादव्ययध्रुवशक्ति।** क्रमवर्तीरूप पर्याय उत्पादव्ययरूप है, अक्रमवर्तीरूप गुण ध्रुवरूप है, ऐसा आत्मा में एक गुण है, भाई! सुनो! आत्मा में एक उत्पाद-व्यय-ध्रुव हो ऐसा एक गुण है। समझ में आया?

क्रमवर्तीरूप पर्याय में होना और अक्रमरूप गुणरूप में रहना ऐसा आत्मा में एक गुण है। उत्पादव्ययध्रुवत्व नाम की एक शक्ति है।

जैसे आनन्दनाम की शक्ति आत्मा में है वैसे उत्पादव्ययध्रुव – क्रमवर्तीरूप और अक्रमवर्ती नामक एक गुण अन्दर है। उस गुण के कारण क्रमरूप वर्तता है और अक्रम (गुण है)। वह गुण आत्मा में है तो उस आत्मा की दृष्टि (होने से).. यहाँ तो यह निकालना है, भाई! क्रमवृत्तिरूप होता है, उसका फल क्या? सुनो! ***थोड़ी सूक्ष्म बात है। आत्मा में क्रमसर अवस्था होती है। पर में भी क्रमसर होती है, आगे-पीछे किसी की पर्याय नहीं होती। अनन्त परमाणु हो या अनन्त आत्मा हो, जिस समय में जहाँ पर्याय होनी है वह होती है, उसमें कोई आगे-पीछे होती है - ऐसा तीन काल में नहीं है।***

इसी प्रकार आत्मा में भी क्रमसर व्यवस्थित पर्याय जो होती है और अक्रम जो गुण है, वह क्रमवृत्ति और अक्रमवृत्तिरूप एक उत्पादव्ययध्रुवत्व नाम का गुण आत्मा में है। समझ में आया? उस गुण का धारक आत्मा है। अतः जब क्रमवर्ती पर्याय है उसका निर्णय करनेवाला... लोग ऐसा कहते हैं कि क्रमसर होता है तो हमारे पुरुषार्थ क्या करना? समझ में आया? जरा शान्ति से सुनो! यह तो अन्तर की मूल बात है, जो इसने अनन्त काल में दृष्टि में नहीं ली है।

क्रमवर्ती-क्रमसर-क्रमबद्ध पर्याय का होना और अक्रम रहे, वे गुण। एक साथ अनन्त गुणों उसमें सीधे पड़े हैं, ऐसे (तिरछे) विस्तार में हैं और क्रमपर्याय ऐसी ऊर्ध्व विस्तार है। पर्याय में व्यवस्थित ऊर्ध्वक्रम पड़ा है और गुण में ऐसे अनन्त गुण (तिरछे) पड़े हैं। उन सबमें एक गुण ऐसा है कि उत्पादव्ययध्रुवयुक्त क्रमवर्ती-अक्रमवर्ती नाम का एक गुण है। क्रमवर्ती पर्याय क्रमबद्ध होती है—ऐसा निर्णय करनेवाले को उत्पाद-व्यय-ध्रुव जो गुण अन्दर है, उसका धारक द्रव्य है, उसकी दृष्टि होने से उसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा!

फिर से.. फिर से कहते हैं, हों! देखो! प्रभु! यह बात ऐसी है, यह तो अन्तर की चीज़ है। जिसने अन्दर में कभी चीज़ क्या है? आत्मा की प्रतीति कब होती है? आत्मा है - ऐसी प्रतीति कब होती है? कि आत्मा में जितने गुण हैं, उन गुणसहित जो द्रव्य है, उसकी प्रतीति होती है तो आत्मा की प्रतीति है। तो आत्मा में एक क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती नामक गुण है। समझ में आया? क्या? यह अठारहवाँ गुण, अठारहवीं शक्ति। क्रमवर्तीरूप और अक्रमवर्तीरूप वर्तन-वर्तना। आत्मा में क्रम-क्रम से वर्तना और अक्रम से रहना - ऐसा आत्मा में एक गुण है। तो क्रमवर्ती में लोग कहते हैं कि जो क्रमबद्ध होता है तो उसमें हमारे पुरुषार्थ क्या करना? क्रम से होगा, क्रम-क्रम से होगा। प्रभु! परन्तु सुन तो सही! समझ में आया? राजबहादुरजी! जरा ध्यान रखना!

क्रमवर्ती जो क्रमबद्धपर्याय होती है और अक्रम गुण जो हैं, उन दो का एक गुण अन्दर

में है। क्रमवर्ती होना और अक्रमवर्ती रहना - ऐसा एक ध्रुव गुण है। गुण ऐसा है कि क्रम से वर्तना और अक्रम से रहना - ऐसा एक गुण है।

श्रोता : आड़ा-टेढ़ा हो ऐसा... ?

पूज्य गुरुदेवश्री : ऐसा कोई गुण नहीं। अनन्त गुण का एक साथ में रहना और क्रम-क्रम से क्रमबद्ध अवस्था होना - ऐसा एक गुण है। एक साथ रहते हैं, उसका नाम अक्रम। आत्मा में गुण एक साथ रहते हैं या नहीं ? ज्ञान, दर्शन, आनन्द एक साथ विस्तार में रहते हैं और जो पर्याय है वह ऐसी क्रमसर रहती है। मुझे तो यहाँ दूसरा कहना है कि क्रमवर्ती पर्याय और अक्रमवर्ती गुण ये दो होकर एक गुण आत्मा में है, जिसे यहाँ उत्पादव्ययध्रुव नामक का गुण कहा है। वह गुण जब निश्चयदृष्टि में आवे तो गुण का धारक आत्मा है, तो आत्मा पर जब दृष्टि पड़ती है तो गुण की प्रतीति भी हो गयी। उस समय क्रमसर होता है और अक्रम गुण है (-ऐसी प्रतीति हो जाती है)। अत: क्रमवर्ती पर्याय तो जो होनेवाली है, वह होती है परन्तु क्रमवर्ती होती है और अक्रम रहता है—ऐसा गुण जो आत्मा में है, उस गुण का धारक द्रव्य है, उस द्रव्य की दृष्टि हुई तो उसमें क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती का तात्पर्य उसमें आ गया। जम्बूप्रसादजी !

फिर से.. फिर से (लेते हैं), यह (बात) ऊपर से तो कहते थे परन्तु आज गुण में से निकाला। भाई ! यह शक्ति में से निकाला, ऊपर से तो कहते थे कि देखो ! क्रमबद्ध है, क्रमबद्ध है, आत्मा में क्रमबद्ध अवस्था (होती है) परन्तु क्रमबद्ध है, वह क्रमबद्ध द्रव्य में होती है, तो उसकी द्रव्य पर दृष्टि जाये कि मैं ज्ञायक चिदानन्द हूँ तो वह क्रमबद्ध का फल आया। उसकी दृष्टि पर्याय पर रहे तो क्रमबद्ध जिसमें से होता है, उसकी दृष्टि तो हुई नहीं। पर्यायबुद्धि रही। उत्पादव्ययध्रुव रहना - ऐसा एक गुण है। क्रम से वर्तना और अक्रम (गुण रहना)। पाठ देखो तो एक-एक शब्द में बहुत गम्भीरता भरी है। यह तो अन्तर का हृदय है।

क्रमरूप, क्रमप्रवृत्ति, क्रमवृत्ति, क्रमवृत्ति (अर्थात्) क्रम से परिणमना, क्रम से परिणमनेरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन - वर्तना जिसका लक्षण है—ऐसी उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम की शक्ति। समझ में आया ? आत्मा में क्रम से वर्तना और अक्रमरूप रहना - ऐसा एक गुण है। क्रमबद्ध है—ऐसा निर्णय करनेवाले को उत्पादव्ययध्रुवगुण का निर्णय करना पड़ेगा और गुण का निर्णय, द्रव्य के आश्रय से होता है। आहाहा ! समझ में आया ? अकेले गुणभेद से निर्णय नहीं होता। यह तो राग उत्पन्न करता है। यह एक उत्पादव्ययध्रुव-क्रम प्रवर्तन और अक्रम वर्तन - ऐसा गुण है। ऐसे एक गुण का लक्ष्य करने से गुण की प्रतीति नहीं होती क्योंकि भेद हो गया। ऐसा गुण है कि क्रम से प्रवर्तता है, अक्रम से गुण रहता है—ऐसा एक गुण है तो उस गुण का धारक आत्मा है। उस आत्मा पर अन्दर दृष्टि जाती है तो उसके गुण की प्रतीति हुई और द्रव्य की प्रतीति हुई। जो

क्रम से होनेवाली होती है और अक्रम से गुण रहते हैं - ऐसी प्रतीति हो गयी। आहाहा! समझ में आया? सूक्ष्म बात है भाई! अभी तो कहाँ बात ले जाना थी? दूसरी बात ले जानी थी।

यहाँ तो वस्तु आत्मा पदार्थ है। पदार्थ है? अस्ति है। अस्ति है, वह तो द्रव्य हुआ - तो द्रव्य है तो शक्ति है या नहीं? कोई शक्ति बिना द्रव्य होता है? स्वभाव बिना द्रव्य होता है? तो द्रव्य है उसकी शक्ति कितनी है? ज्ञानशक्ति, दर्शनशक्ति, आनन्दशक्ति, अस्तित्वशक्ति, वस्तुत्वशक्ति है ऐसे उत्पादव्ययध्रुवशक्ति है। ऐसी शक्तियाँ संख्या से अनन्त हैं। एक आत्मा में ऐसी संख्या से... संख्या से... संख्या समझते हो न? - एक, दो, तीन - ऐसी अनन्तानन्त शक्तियाँ हैं। उनमें एक शक्ति ऐसी है कि क्रम से वर्तना... क्या शब्द है? देखो!

क्रमवृत्ति... क्रमवृत्ति - क्रम-क्रम से होना। और **अक्रमवृत्ति...** एक साथ रहना—ऐसा उत्पाद-व्यय-ध्रुव नाम का एक गुण आत्मा में है। समझ में आया? तो क्रमबद्ध होता है—ऐसा जब निर्णय करने जाता है तो क्रमबद्ध और अक्रम रहनेवाले जो गुण अन्दर हैं, उन गुण का धारक द्रव्य है, उस द्रव्य पर दृष्टि जाने से क्रमबद्ध और अक्रम का फल सम्यग्दर्शन हो गया। जरा सूक्ष्म बात, भारी सूक्ष्म! यह तो क्रम-क्रम के बहुत पुकार करते थे न? तो फिर विचार में, मनन करते-करते दोपहर को यह शक्ति ख्याल में आ गयी। नहीं तो स्पष्टीकरण करते थे कि भाई! जिसमें से क्रमवर्ती पर्याय है, उस द्रव्य की दृष्टि होने से तेरे पुरुषार्थ में क्रमबद्ध का निर्णय हुआ। पुरुषार्थ से निर्णय हुआ तो चैतन्यमूर्ति पर दृष्टि गयी तो स्वभाव में एकत्व हुआ और राग से पृथक् हुआ, पर के कार्य से पृथक् हुआ। अपने अनुभव में प्रतीति हुई, तब क्रमबद्ध का तात्पर्य सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान उसे हुआ - ऐसा तो बहुत बार कहा था परन्तु यह बात आज शक्ति में से निकाली। आगम आधार... आगम आधार है। भगवान! तेरी चीज़ ऐसी है, प्रभु! आहाहा!

प्रभु आत्मा! यह एक अपना आत्मा, हों! उसमें अनन्त गुण संख्या से हैं। यह तो कहा था न? जितने आकाश के प्रदेश हैं, अमाप... अमाप... अमाप... हैं.. है.. है न? आकाश है, उसमें कहीं नहीं - ऐसा आयेगा? नहीं - ऐसा कहाँ आयेगा? आकाश ऐसा का ऐसा है। अलोक है वहाँ नहीं - ऐसा आयेगा? है.. है.. ऐसा आयेगा। है.. है.. है.. है... तो कितना है? तो इतने आकाश के प्रदेश की जितनी संख्या है, उससे एक आत्मा में अनन्तगुने गुण हैं। आहाहा! उनमें एक गुण ऐसा है कि उत्पाद क्रमवृत्तिरूप-अक्रमवृत्तिरूप जिसका वर्तन है - ऐसा एक गुण आत्मा में है। उस गुण का धारक गुणी आत्मा है। गुणी पर दृष्टि जाने से सम्यग्दृष्टि को प्रतीति में आ गया है कि पर्याय क्रमवर्ती होती है और गुण अक्रमवर्ती है—ऐसा मेरा द्रव्य है, ऐसी उसे प्रतीति हो गयी है। आहाहा! भाई! समझ में आया?

फिर से.. फिर से, देखो! भाई! यह तो? अन्तर द्रव्य-गुण और पर्याय है तो आत्मा में

क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप ऐसे गुण की व्याख्या (लेते हैं), दूसरे सैंतालीस तो बाकी रहे। अनन्त गुण आत्मा में हैं। जैसे आत्मा ज्ञ-स्वभाव, आनन्द-स्वभाव, अस्तित्वस्वभाव, वस्तुत्वस्वभाव, प्रमेयत्वस्वभाव (स्वरूप है), वैसे क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप वर्तन जिसका लक्षण है, जिसका स्वरूप है—ऐसा उत्पादव्ययध्रुव नाम का एक गुण है। उस गुण का धारक द्रव्य है। अतः जब द्रव्य की दृष्टि हुई, द्रव्य की दृष्टि हुई कि मैं ज्ञायक हूँ और उसमें यह गुण है तो द्रव्य की दृष्टि में-प्रतीति में आ गया कि यह एक गुण अनन्त गुण को निमित्त है, तो अनन्त गुण भी क्रमवर्ती ही प्रवर्तन करते हैं। भाई! आहाहा! अरे भगवान! सुनो भाई! बात कोई अन्दर से आ गयी है। यहाँ तो आगम प्रमाण से सिद्ध करना है। समझ में आया?

देखो! आत्मा किसे प्रतीति में आया कहा जाता है? कि वह आत्मा अनन्त गुणरूप है, उसमें एक उत्पादव्ययध्रुवरूप—क्रमवृत्तिरूप, अक्रमवृत्तिरूप वर्तना जिसका स्वरूप है—ऐसा एक गुण है तो उस गुण का धारक भगवान आत्मा है। उस आत्मा की, जहाँ पर्याय का लक्ष्य छोड़कर, गुण-भेद का लक्ष्य छोड़कर द्रव्य का लक्ष्य करके एकत्वबुद्धि हुई, अनुभूति हुई, सम्यग्दर्शन हुआ तो सम्यग्दर्शन में उस गुण की प्रतीति आयी कि क्रमवर्ती और अक्रम से वर्तना उसका गुण है, उस गुण का धारक द्रव्य है। (तो उसकी प्रतीति हो गयी)। एक गुण नहीं, ऐसे अनन्त गुण हैं, सब अनन्त गुण क्रमवर्तीरूप परिणमते हैं और अक्रमवर्तीरूप गुणरूप से रहते हैं—ऐसे गुण का धारक द्रव्य अनादि से इसी प्रकार पूरा वर्तन करता है। आहाहा! समझ में आया? यह दृष्टि हुई तब, हों! तब तक उसका पता नहीं।

श्रोता : है तो सही परन्तु मानता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : मानता नहीं। आहाहा!

श्रोता : यही अनन्त पुरुषार्थ है।

पूज्य गुरुदेवश्री : अनन्त पुरुषार्थ हुआ और उसके ख्याल में आ गया कि क्रम से परिणमना और अक्रम से रहना - ऐसा मेरा स्वभाव है।

श्रोता : क्रमबद्ध में पुरुषार्थ किस प्रकार आता है, उसका यह स्पष्टीकरण है।

पूज्य गुरुदेवश्री : उसका स्पष्टीकरण है। ए.. हिम्मतभाई! यह समझ में आता है? इस प्रकार नहीं आया था परन्तु जिनेश्वरदासजी ने कहा था न कि शक्ति का थोड़ा कहो, तो मस्तिष्क में यह आ गया। कल कहा था न?

भाई! तेरी क्रीड़ा ऐसी है, प्रभु! आहाहा! उसका इसे पता नहीं होता और धर्म हो। धूल में भी धर्म नहीं। समझ में आया? उसे पुण्य का भी ठिकाना नहीं। मन्द कषाय से कोई पापानुबन्धी पुण्य बाँधे। धर्म-वर्म नहीं, उसे तीन काल में जन्म-मरण का अन्त आता नहीं।

भगवान आत्मा अनन्त गुण सम्पन्न एकरूप है। उसमें एक गुण ऐसा है कि क्रमवर्तनरूप और अक्रमवर्तनरूप ऐसा एक गुण है। उस गुण का धारक द्रव्य है, उस द्रव्य पर दृष्टि हुई तो प्रतीति में आ गया, अनुभूति में आ गया कि इस द्रव्य की प्रत्येक गुण की पर्याय क्रमसर होती है, गुण अक्रम से रहते हैं — ऐसा अनुभव में-प्रतीति में आ गया। जम्बूप्रसादजी! आहाहा! अरे भगवान! सूक्ष्म पड़ गया, लो! मैंने कहा यह बहुत साधारण है, आज दोपहर में फिर आया था न? नयी बात है। पहले इस प्रकार रखी नहीं, दूसरे प्रकार से बहुत प्रकार से रखी थी परन्तु इस प्रकार से अभी रखी है। कल भाई ने पूछा था न?

भाई! देखो! आत्मा की प्रतीति करनी है न? जैसा आत्मा है, वैसी प्रतीति करनी है न? तो वह सम्यक् कहलाये न? सम्यग्दर्शन सम्यक् अर्थात् जैसा आत्मा है, वैसी प्रतीति करे तो। आत्मा कैसा है? कि अनन्त गुण सम्पन्न। उसमें एक गुण ऐसा है कि क्रमवर्तनरूप और अक्रमवर्तनरूप ऐसा एक गुण है। अठारहवीं शक्ति। क्रमवृत्तिरूप-क्रमवर्तनारूप, अक्रमवर्तनारूप वर्तन—रहना जिसका स्वरूप है—ऐसा एक उत्पादव्ययध्रुव अक्रमवर्ती गुण है। आहाहा! गजब बात करते हैं न!

अमृतचन्द्राचार्य ने तो ऐसा निकाला है कि आत्मा उसे कहते हैं जिसमें क्रम से वर्तना और अक्रम से गुण रहना - ऐसा एक गुण है। उस गुणसहित आत्मा को प्रतीत किया, तब प्रतीति करने में अनुभूति हुई। जब राग से पृथक् हुआ, पर के कार्य का कर्ता नहीं, राग आवे, उसका मैं कर्ता नहीं और मेरी पर्याय निर्मल होती है, उसका विकल्प आया (कि) नयी करूँ तो ऐसा भी नहीं। क्योंकि द्रव्य ही क्रमवृत्तिरूप और अक्रमवृत्तिरूप गुण का धारक है। ऐसे द्रव्य की दृष्टि हुई तो गुण का कार्य अथवा अनन्त गुण का जो कार्य है, (उस क्रमरूप और अक्रम रहनेरूप होता है - ऐसी प्रतीति होती है)। वह गुण सर्व गुण में विभु है। एक गुण सभी गुण में विभु है। विभु समझे? व्यापक। आहाहा! समझ में आया?

जहाँ ज्ञानगुण है, वहाँ आनन्दगुण है, वहाँ यह उत्पादव्ययध्रुव नामक अक्रमवर्ती गुण साथ में है। समझ में आया? ओहोहो! कहते हैं, प्रभु! तेरा आत्मा ऐसा है। ऐसे आत्मा में क्रमवर्तनरूप और अक्रमवर्तनरूप ऐसा एक गुण है। उस गुण की प्रतीति कब होती है? उस गुण को धरनेवाला द्रव्य है तो द्रव्य की प्रतीति हुई तो पूरा द्रव्य; एक गुण में नहीं, अनन्त गुण में क्रमवर्ती पर्याय होती है और अक्रम गुण रहते हैं - ऐसी प्रतीति समकिती को आ गयी। आहाहा! राजबहादुरजी! अमरचन्दभाई! अरे.. भगवान!

उस समय राग आता है और वह भी क्रमसर आता है परन्तु वह जानने-देखनेवाले की पर्याय (में ज्ञात होता है) द्रव्य पर दृष्टि है तो द्रव्य का गुण ऐसा है कि क्रम से वर्तना और अक्रम

से वर्तना—ऐसे द्रव्य पर दृष्टि है तो राग उसके काल में आयेगा, परन्तु उसे जानने का ज्ञान क्रम से आयेगा। जानने का ज्ञान क्रम से आयेगा, वही राग को जाननेवाला ज्ञान क्रम से आयेगा। उसमें क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती की उसे प्रतीति हो गयी। आहाहा! अरे भगवान! हिम्मतभाई! इस प्रकार नहीं रखा था। यह जिनेश्वरदासजी ने कल प्रश्न किया कि थोड़ा कहो, थोड़ा कहो। आहाहा!

श्रोता : आधार दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री : आधार, बस! यहाँ तो आधार देना था। सर्वज्ञ ने देखा है, उस आधार का अब यहाँ काम नहीं। सर्वज्ञ ने देखा है; इसलिए क्रमबद्ध होता है – ऐसा यहाँ काम नहीं। द्रव्य का स्वभाव ऐसा है।

यहाँ तो ऐसी बात है, प्रभु! यह तो अन्तर की बात है। यह भाई कहते हैं, सुन्दर बात है। बराबर है। यह तो वस्तु की स्थिति ऐसी है, प्रभु! क्या कहें? उसका ख्याल आये बिना... यह वस्तु ऐसी है। यह वस्तु है, ऐसी सर्व वस्तु है। सभी वस्तु में भी ऐसा एक गुण पड़ा है कि वह भी अपने क्रम और अक्रम से प्रवर्तन करती है, परन्तु उस ज्ञान बिना उसे पता नहीं। यह तो ज्ञाता है तो इसे पता पड़ता है। समझ में आया? भाई! यह तो वापस सब में डाला, सब में है। सुनो! भाई! अपने तो अभी आत्मा सिद्ध करना है। आत्मा उसे कहते हैं, आत्मा उसे कहते हैं कि जिसमें एक गुण ऐसा है कि क्रमवर्तीरूप पर्याय वर्ते और अक्रमवर्ती गुण (रहे) – ऐसा गुण है। उस गुण के धारक आत्मा को माननेवाले को क्रमबद्ध पर्याय होती है और अक्रम गुण रहते हैं – ऐसी प्रतीति आ गयी है क्योंकि द्रव्य की श्रद्धा हुई है। सभी गुण की (प्रतीति आ गयी) पूरा द्रव्य क्रमबद्धपर्याय और अक्रम गुण रखता है – ऐसी श्रद्धा हो गयी। आहाहा! कहो, समझ में आया? कुछ समझ में आया या नहीं? थोड़ा।

यह बात ख्याल में न आवे ऐसी तो नहीं है। बात कोई ऐसी नहीं है, इसके ख्याल में यह ऐसा कहते हैं और यह ऐसा है – ऐसा ख्याल में न आवे, ऐसी बात नहीं है। भगवान आत्मा एक समय में मौजूदगी रखता है तो उसमें अनन्त गुण की मौजूदगी है तो एक गुण ऐसी मौजदूगी रखता है कि क्रम से प्रवर्ते और अक्रम से वर्ते—ऐसा गुण उसकी मौजूदगी में अन्दर पड़ा है। आहाहा!

श्रोता : इस शक्ति को न माने तो?

पूज्य गुरुदेवश्री : इस शक्ति को न माने तो द्रव्य को भी नहीं माना, गुण को भी नहीं माना और पर्याय को भी नहीं माना। उसने आत्मा को नहीं माना। आत्मा को ही वह मानता नहीं। समझ में आया? आहाहा! ए.. सेठ! कुछ समझ में आता है या नहीं? नहीं, बराबर नहीं आया अभी।

देखो! भगवान–आगम–अमृतचन्द्राचार्य क्या वर्णन करते हैं? कि सर्वज्ञ परमात्मा ने ऐसा

आत्मा देखा कि उस आत्मा में अनन्त गुण देखे। अनन्त गुण में भगवान ने ऐसा एक गुण देखा कि क्रम से प्रवर्ते, क्रमसर हो, किसी द्रव्य की पर्याय आगे-पीछे होती नहीं। आघी-पाछी समझते हो? हिन्दी आघी-पाछी को क्या कहते हैं? हमें बहुत हिन्दी नहीं आती। आगे-पीछे नहीं होती और गुण एक साथ रहते हैं और क्रमसर पर्याय होती है - ऐसा द्रव्य में गुण है। उस गुण का गुण क्या? उस गुण का गुण क्या? गुण का गुण - उसका अर्थ (यह कि) गुण का कार्य क्या? उस गुण का कार्य क्या? कि ध्रुवरूप से अक्रम रहना और पर्याय में क्रम रहना, उस गुण का गुण अर्थात् कार्य है। आहाहा! अरे! भगवान! इसने बात सुनी नहीं कि क्या है? आत्मा... आत्मा तो सब पुकार करते हैं परन्तु आत्मा कैसा है, उसकी प्रतीति नहीं। समझ में आया? ए... शोभालालजी!

लक्ष्य में से रजकण छोड़ दे, कर्म लक्ष्य में से छोड़ दे, वे तुझमें हैं ही नहीं। समझ में आया? और रागादि होते हैं, वे तुझमें नहीं। सुन! राग तो आस्रव है, यह कर्ताकर्म अधिकार चलता है न? शरीर, कर्म है, वह तो अजीवतत्त्व है; वह आत्मा में नहीं। एक (बात)। अब आस्रव-पुण्य-पाप के विकल्प हैं, वे आस्रवतत्त्व हैं, दुःखरूप हैं। वह आस्रवतत्त्व आत्मा में नहीं। (यदि आत्मा में होवे तो) दो तत्त्व भिन्न नहीं रहते है। समझ में आया? आस्रवतत्त्व आत्मा में नहीं। एक बात। तो उसमें है क्या? उसमें अनन्त गुण हैं। ज्ञान-दर्शन आदि अनन्त गुण हैं। उसमें एक गुण ऐसा है कि प्रत्येक गुण क्रमसर प्रवर्ते और गुण एकसाथ रहे - ऐसा एक गुण है। अनन्त गुण में ऐसा गुण है, अनन्त गुण की ताकत ऐसी है और अनन्त गुण की ताकत (ऐसी है) तो द्रव्य की ताकत भी ऐसी है। आहाहा!

श्रोता : यदि ऐसी ताकत को न माने तो द्रव्य को ही मानता नहीं।

पूज्य गुरुदेवश्री : तीनों को मानता नहीं, वह आत्मा को मानता ही नहीं। वैसे तो आत्मा-आत्मा करे परन्तु आत्मा ऐसा है - ऐसे न माने तो वह नास्तिक है। ऐसे आत्मा... आत्मा करे, वह क्या काम आवे? समझ में आया? सारी बात निकल गयी, हों! तुम दूर से आये हो न! यह तो आगम साक्षी से निकली, जम्बूप्रसादजी! भाई!

सर्वज्ञ ने देखा है, इसलिए होता है - ऐसा नहीं। वस्तु का स्वरूप ऐसा है। नहीं तो वस्तु के गुण का नाश हो जाता है। वस्तु के गुण में एक गुण ऐसा है-क्रमवर्तनरूप, अक्रमवर्तनरूप। गुणों का एकसाथ में रहना और क्रमसर व्यवस्थित पर्याय होना, आगे-पीछे नहीं - ऐसा गुण है। उस द्रव्य की प्रतीति करते हैं तो उस गुण की प्रतीति आ जाती है और ऐसी प्रतीति न करे तो उसे गुण की प्रतीति नहीं, द्रव्य की प्रतीति नहीं। दूसरी बात, भगवान आत्मा में जो यह उत्पादव्ययध्रुव गुण पड़ा है, उस गुण का परिणमन... भाई! अब गुण है, उसका कार्य क्या आया? कार्य क्या? वह तो गुण कहा, शक्ति कही, त्रिकाली शक्ति कही - तो त्रिकाली शक्ति का पर्याय में कार्य क्या?

समझ में आया ? त्रिकाली शक्ति का कार्य यह आया कि ध्रुवरूप रहा और क्रम से प्रवर्तन हुआ, यह त्रिकाली शक्ति का कार्य है। समझ में आया ? गजब बात, भाई !

श्रोता : प्रत्येक समय नयी-नयी बात आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री : नये शब्द आवे तो नया आवे न ! बात ऐसी है। उसका स्पष्टीकरण नये तर्क से आया। आहाहा ! अरे भगवान ! यहाँ सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ ने आत्मा है—ऐसा जाना और इन भगवान ने ऐसे आत्मा को जाना कि उसमें अनन्त गुण में एक गुण ऐसा पड़ा है कि जो क्रम से वर्ते और अक्रम से वर्ते - ऐसा भगवान ने जाना। ऐसा आत्मा जाना। ऐसा आत्मा जो प्रतीति में लेता है, ऐसा आत्मा है तो राग दुःखरूप है, मैं आत्मा आनन्दरूप हूँ ऐसे दुःख और आनन्द के बीच भेदज्ञान करके ज्ञायक सन्मुख झुकता है तो प्रतीति में आ गया कि यह द्रव्य-गुण ऐसे हैं। क्रम-क्रम से अवस्था होना और अक्रम से गुण रहना - ऐसा उसका गुण ही है। आहाहा ! ए.. हिम्मतभाई ! यह तो साक्षी अन्दर से निकाली। आहाहा !

सदृश-विसदृश और दूसरा एक गुण है। वह और बाद में, यह तो विचार आया था न ? विरुद्ध-अविरुद्ध शक्ति का अपने आया था न ? विरुद्ध-अविरुद्ध शक्ति आयी थी न ? तीसरी गाथा। विरुद्ध-अविरुद्ध शक्ति से विश्व का अनुग्रह करता है, तो वहाँ भी सदृश-विसदृश शक्ति कायम पड़ी है। उसमें उस समय विस्तार किया था। यह बताकर नहीं किया था। समझ में आया ?

यहाँ भगवान आत्मा... ओहो ! उसे आत्मा कहते हैं कि जो ज्ञान धारण करता है। उसे आत्मा कहते हैं कि जो आनन्द धारण करता है। उसे आत्मा कहते हैं कि जो अस्तित्व गुण धारण करता है। उसे आत्मा कहते हैं - चैतन्य के भाव प्राण को धारण करता है। उसे आत्मा कहते हैं कि राग के अभावरूप परिणमन करनेवाला एक अकर्ता नाम का आत्मा में गुण है। यहाँ यह बात चलती है न ? समझ में आया ? कर्म के निमित्त से होनेवाला विकृतभाव, उससे उपरमस्वरूप, उपरमस्वरूप... यह गाथा है। समझ में आया ? है या नहीं ? कहाँ आया ? यह आया, देखो !

इक्कीस शक्ति। **समस्त, कर्मों के द्वारा किये गये, ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न जो परिणाम उन परिणामों के करण के उपरमस्वरूप (उन परिणामों को करने की निवृत्तिस्वरूप) अकर्तृत्वशक्ति।** २१ वीं शक्ति। यहाँ तो आत्मा प्रतीति करनी है तो कहते हैं कि उसमें **कर्मों के द्वारा किये गये, ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न जो परिणाम..** हुए, राग को जाननेवाले ऐसे परिणाम हुए, राग को जाननेवाला-जैसा वह राग है, उससे उपरम-निवृत्तस्वरूप देखो। **परिणामों के करण के उपरमस्वरूप (उन परिणामों को करने की निवृत्तिस्वरूप) अकर्तृत्वशक्ति। (जिस शक्ति से आत्मा ज्ञातृत्व के अतिरिक्त कर्मों से किये गये परिणामों का कर्ता नहीं होता, ऐसी अकर्तृत्व नामक एक शक्ति आत्मा में है।)** इक्कीसवीं शक्ति। उसमें देखो !

जैसे आत्मा में क्रमवर्तनरूप पर्याय, अक्रमरूप ध्रुव - ऐसा गुण है। ऐसा एक गुण, हों! तीनों मिलकर एक गुण। उस गुण की जब प्रतीति हुई तो उसकी क्रमवर्ती पर्याय है, अक्रमवर्ती गुण है—ऐसी प्रतीति सम्यग्दर्शन में हुई, तब द्रव्य की यथार्थ श्रद्धा हुई। वरना इस गुण को निकालकर मात्र द्रव्य की श्रद्धा करे तो द्रव्य की श्रद्धा सच्ची नहीं है।

दूसरी बात। अब जब क्रमवर्ती परिणाम हैं, भाई! अपने उस राग को निकाल डालना है। क्रमवर्ती पर्याय है, अक्रमवर्ती गुण है—ऐसे द्रव्य की दृष्टि की, तो आत्मा में साथ में ऐसा एक गुण है कि निमित्त के लक्ष्य से जो विकल्प उठा है, उससे उपरमस्वरूप-उससे निवृत्तस्वरूप आत्मा में एक अकर्ता नाम के गुण का ज्ञातृत्व परिणाम उसका हुआ। जिस समय में राग हुआ है, उसी समय में (राग से) उपरमस्वरूप, उससे निवृत्तस्वरूप आत्मा में ज्ञातृ परिणाम हुए, वह अकर्तृत्वगुण का कार्य है।

फिर से **समस्त, कर्मों के द्वारा किये गये, ज्ञातृत्वमात्र से भिन्न जो परिणाम उन परिणामों के करण के उपरमस्वरूप...** वे रागादि आये, उनसे निवृत्तस्वरूप—ऐसा आत्मा में अकर्तृत्व नाम का गुण है। समझो, फिर से, जम्बूप्रसादजी! कल जिनेश्वरदासजी ने यह कहा था न? थोड़ी शक्ति कहो। शक्ति चलती हो तब चले। यहाँ तो साधारण आधार देते हैं। जब एक-एक शक्ति चलती हो, तब तो उस पर कितने ही बोल उतारते हैं। (रेकार्डिंग) में उतर गयी है, परन्तु अब छपे तो सही। लो, रामजीभाई कहते हैं, जल्दी छपेगी। कहो, समझ में आया?

क्या कहा? आत्मा में एक अकर्तृत्व नाम का एक अनादि-अनन्त गुण है। क्या (कहा)? आत्मा में जैसे क्रमवर्ती और अक्रमवर्ती होना-ऐसा एक गुण है, ऐसा आत्मा में एक अकर्ता नाम का गुण त्रिकाल पड़ा है। वह गुण...

त्रिकाल शक्ति रहनेवाली है। उस त्रिकाल की बात है। प्रत्येक समय है। आत्मा की दृष्टि हुई तो कर्म के उपरमस्वरूप अकर्तापना हुआ, कर्म के साथ सम्बन्ध ही नहीं रहा। अज्ञानी, जिसे शक्ति का भान नहीं और शक्तिवान का भान नहीं, वह राग का कर्ता होता है। समझ में आया? उसी समय राग तो आता है परन्तु अकर्तृत्वशक्ति धरनेवाले का भान नहीं तो उस राग का कर्ता होता है क्योंकि द्रव्य का भान नहीं परन्तु जिसे द्रव्य का भान है, उस द्रव्य में अकर्तृत्व नाम का गुण पड़ा है, उसका भी भान हुआ तो राग से निवृत्तरूप परिणाम होना, वह अकर्तृत्व गुण का फल है। आहाहा!

श्रोता : सम्यग्दृष्टि राग का अकर्ता है।

पूज्य गुरुदेवश्री : सम्यग्दृष्टि राग का अकर्ता है। सम्यग्दृष्टि राग का कर्ता नहीं, राग का ज्ञाता रहकर ज्ञेयरूप से जानता है। यहाँ तो जरा दूसरी बात सिद्ध करनी है। उस क्रम के साथ में,

भाई! उस क्रम के साथ में जो राग आता है, वह भी क्रम से होता है, उसका यहाँ लक्ष्य करना नहीं। यहाँ अकर्तृत्व नाम का आत्मा में गुण पड़ा है। उस अकर्तृत्वगुण का धारक द्रव्य है। पूरे गुण का-अकर्तृत्व है और राग का कर्ता नहीं। ऐसे द्रव्य की दृष्टि हुई तो उस समय जो राग होता है, उसके अभावस्वरूप परिणमन करना वह अकर्तृत्वगुण का फल है। आहाहा! गजब बात, भाई! यह सब आ गया है, हों!

अनन्त बात एक समय में है। यह तो एक-एक गुण का कार्य भिन्न-भिन्न बतलाना है। सब है एक समय में। सब गुण एक साथ और कार्य भी एक समय में साथ में है। शक्ति का वर्णन किया है, उसमें बहुत आता है। यहाँ तो थोड़ा आधार के लिये लेते हैं। क्या कहा, समझ में आया कुछ? थोड़ा परन्तु जैसा है, वैसा सत्य समझे तो इसका किनारा आवे। ऐसे का ऐसा ग्यारह अंग पढ़ गया, नौ पूर्व पढ़ गया, पढ़-पढ़कर पढ़ा, निकाला कुछ नहीं। राग निकाला और राग करना यह निकाला। यह तो अनादि से करता है, इसमें तुझे क्या मिला? समझ में आया? मैं पर का भला कर देता हूँ, मैं पर का भला कर देता हूँ, क्या धूल कर सकता है तीन काल में? ***पर का करना - ऐसा कोई तुझमें गुण नहीं है। वह तो नहीं परन्तु राग का कर्ता - ऐसा तुझमें गुण नहीं है। आहाहा!***

व्यवहाररत्नत्रय के विकल्प का कर्तापना - ऐसा कोई गुण आत्मा में नहीं है। आहाहा! देव-गुरु-शास्त्र, सर्वज्ञ ने कहे ऐसे देव-शास्त्र-गुरु की श्रद्धा का विकल्प, पंच महाव्रत का विकल्प और शास्त्रज्ञान-परसन्मुख का विकल्प, वह करना - ऐसा आत्मा में गुण नहीं है। उस विकल्प से निवृत्त होना—ऐसा आत्मा में अकर्तृत्व नाम का गुण है। आहाहा! समझ में आया? यह तो शान्ति से समझने की चीज़ है, भाई! यह ऐसी कोई (साधारण) चीज़ नहीं है।

यह तो सत्यस्वरूप है। सच्चिदानन्द प्रभु ऐसा है। सर्वज्ञ ने देखा है ऐसा है। कैसा है? कि आत्मा जब मानने में आया तो आत्मा में अकर्तृत्व नाम का गुण पड़ा है। उस अकर्तृत्वगुण को धरनेवाले द्रव्य की श्रद्धा हुई तो पर्याय में अकर्तृत्वगुण का परिणमन हुआ। द्रव्य और गुण में तो अकर्तृत्व व्यापक है परन्तु जहाँ दृष्टि हुई तो अकर्तृत्वगुण, पर्याय में व्याप्त हो गया। पर्याय में व्याप्त हो गया का अर्थ—राग से निवृत्त हुआ, वह पर्याय का परिणमन है। आहाहा! गजब बात, भाई! समझ में आया?

जिस समय राग है, उस समय में भी अकर्तृत्वगुण का कार्य राग से उपरमस्वरूप होकर परिणमना, वह अकर्तृत्वगुण का कार्य है। आहाहा! गजब भाई! आत्मा अर्थात् तो... ऐसे आत्मा.. आत्मा.. माने - ऐसा नहीं चलता। समझ में आया? वह चीज़ क्या है? वे शक्तियाँ कैसी हैं? और शक्ति का कार्य क्या है? द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों। अकर्तृत्वगुण शक्ति है। शक्ति का धारक

भगवान आत्मा है तो जब वह आत्मा मानने में आया तो पर्याय में अकर्तृत्वगुण का परिणमन हुआ। क्या (परिणमन हुआ) कि राग के अभावस्वरूप परिणमन हुआ। वह अकर्तृत्वगुण का पर्यायरूपी कार्य है। तब इसने आत्मा जाना, माना, अनुभव किया – ऐसा कहने में आता है। आहाहा! समझ में आया? ए... न्यालभाई! गजब बात, भाई! यह तो न्याल की बात है, हों! अनन्त काल में यह बात इसने यथार्थरूप से सुनी ही नहीं। सुनी नहीं, यथार्थरूप से सुनी नहीं। रुचे तो कहाँ से? समझ में आया? आहाहा!

कहते हैं कि भगवान आत्मा में तो एक गुण ऐसा है न कि जो कर्म के निमित्त से जो राग हुआ, उससे उपरमस्वरूप रहना—ऐसा इसका गुण है, उससे निवृत्तस्वरूप परिणमना इसका गुण है। समझ में आया?

राग के अभावरूप परिणमन होता है। राग का नाश होता है, (तब) कर्म भी उसके कारण से नाश को प्राप्त होता है। आहाहा! अरे! भगवान! नाश करना नहीं पड़ता, राग का नाश करना नहीं पड़ता क्योंकि राग का नाश करना – ऐसा कोई गुण आत्मा में नहीं है। राग तो ग्रहण किया नहीं। यह तो फिर एक त्यागउपादानशून्यत्व शक्ति। त्यागउपादानशून्यत्व शक्ति। राग का त्याग और राग के ग्रहण से शून्य – ऐसी शक्ति आत्मा में है। उससे शून्य है। राग का त्याग करना – ऐसा भी आत्मा में गुण नहीं। राग को ग्रहण किया है? कि नहीं करना – ऐसी आत्मा में शक्ति है। आहाहा! अरे! एक शक्ति, आत्मा क्या है (उसका पता नहीं होता)। समझ में आया? ऐसा कहते हैं कि हम मानते हैं, मानते हैं, बापू! मानते हैं, आत्मा मानना वह कोई अपूर्व दृष्टि है। समझ में आया?

अनन्त काल में वह चीज़ क्या है वह श्रुत, परिचित, अनुभूता नहीं। श्रुत में आयी नहीं, परिचय में कहाँ से आवे? अनुभव में तो आवे ही कहाँ से? आहाहा! अनादि से राग करना और राग अनुभवना, यह सुना है, यह अभ्यास है और अनादि से यह करता है। यह तो अनादि की निगोददशा जैसी जगत की दशा है। समझ में आया? आहाहा!

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा में... यहाँ तो वह दुःख है न? उस दुःख के विरामस्वरूप आत्मा यहाँ बताते हैं न? क्या कहा? **णादूण दुक्खस्स कारणं तदो णियत्तिं कुणदि जीवो।** यह इसमें से निकाला, इसमें है। रागादि विकल्प उठता है, वह दुःख है और आत्मा आनन्दस्वरूप है—ऐसे जहाँ दो के बीच भेद किया तो अन्दर निवृत्ति हो गयी। अकर्ता नाम का गुण भी द्रव्य में है तो राग से उपरमस्वरूप / निवृत्ति होकर अपने आनन्द की परिणति अन्दर हुई, उसका नाम द्रव्य की पर्याय कहने में आता है। आहाहा! यह कहाँ का कहाँ निकला!

भाई! प्रभु! तू कितना है? कहाँ है? इसका तुझे पता नहीं। आहाहा! सर्वज्ञ परमेश्वर

त्रिलोकनाथ केवलज्ञानी एक समय में जिन्होंने तीन काल-तीन लोक देखा, उन्होंने आत्मा ऐसा देखा है। ऐसा आत्मा तुझे प्रतीति में आवे, तब आत्मा माना – ऐसा कहा जाये। वरना नास्तिक है, आत्मा को मानता नहीं। है नहीं, उसे मानना, आत्मा है नहीं – ऐसा मानना, वह आत्मा को मानता ही नहीं। समझ में आया? आहाहा!

आत्मा को राग होता है न? राग यहाँ दु:खरूप कहा न? तो वास्तव में आत्मा में एक गुण ऐसा है कि स्वस्वामीसम्बन्ध नाम का एक गुण है। आत्मा में ऐसा एक गुण पड़ा है कि राग का स्वामी होना, राग मेरा—ऐसा स्वामी होना, ऐसा कोई गुण नहीं है परन्तु राग से उपरमस्वरूप जो अकर्तागुण से परिणमा और क्रमसर जो पर्याय परिणमती है—ऐसे उत्पादव्ययध्रुव की शक्ति के धरनेवाले की प्रतीति हुई... समझ में आया? तो साथ में... क्या कहा? अकर्तृत्वगुण का जब परिणमन हुआ तो साथ में.. सुनो! इस व्यवहारत्नत्रय का स्वामी नहीं रहा। स्वामी नहीं रहा क्योंकि आत्मा में एक स्वस्वामीसम्बन्ध नाम का एक गुण पड़ा है। उस गुण के धरनेवाले आत्मा की प्रतीति हुई तो शुद्ध द्रव्यगुणपर्याय का स्वामी है, इस राग का आत्मा स्वामी नहीं। समकिती स्वामी है नहीं। आहाहा! समझ में आया? यह तो शोर मचाते हैं न? ए... व्यवहाररत्नत्रय पहले, फिर निश्चयरत्नत्रय (होता है)। अरे.. प्रभु! तुझे पता नहीं आत्मा कौन है भाई! आत्मा कैसा है, इसका तुझे पता नहीं और मानता है कि हम आत्मा मानते हैं, आत्मा मानते हैं। माना..!!

श्रोता : छह द्रव्य माने...

पूज्य गुरुदेवश्री : छह द्रव्य कहाँ माने हैं? आत्मा क्या है, वह माना ही नहीं।

आत्मा को माना उसे कहा जाता है कि जो राग दु:ख का कारण है... यहाँ तो कर्ताकर्म बतलाना है न? तो उससे निवृत्त करना है। निवृत्त। **'णियत्तिं कुणदि जीवो' 'णियत्तिं कुणदि'** क्यों? आत्मा आनन्दस्वरूप है। अकर्तास्वरूप है, क्रमबद्धपरिणमन करना – ऐसा उसका स्वरूप है। ऐसे गुण के धरनेवाले द्रव्य का लक्ष्य करने से, रुचि करने से वह राग जो आया, उसका अकर्तागुण के परिणाम में उपरमस्वरूप से परिणमन हुआ। राग के अभावस्वरूप से परिणमन हुआ। क्रमसर परिणमन हुआ, गुण अक्रम रहे और राग का स्वामी नहीं रहा। इस राग के अभावस्वरूप परिणमन है, उसका स्वामी रहा। आहाहा! गजब बात, भाई!

प्रभु! तेरी तो लीला है। यह तो लोग कहते हैं 'ईश्वर लीला रे लीला..' ऐसा कोई ईश्वर है नहीं। समझ में आया? ईश्वर तू है। अनन्त शक्ति का धनी। शक्ति के बिना आत्मा नहीं रहता। समझ में आया?

श्रोता : शक्ति की लीला का वर्णन है।

पूज्य गुरुदेवश्री : यह लीला है, उसका वर्णन है। मोरबी के पास एक '**ज्ञानाला**' है। वहाँ हम गये थे। वहाँ एक शक्ति का मन्दिर है। ये काठी लोग मानते हैं। शक्ति का मन्दिर (था) हम शाम को भोजन करके घूमते थे, तब एक बाबा कहे - पधारो... पधारो! मैंने कहा - यह शक्ति नहीं। यह दैवी शक्ति नहीं। आत्मा में अनन्त शक्ति है, उस शक्ति के बिना भगवान को नहीं चलता। वह कहता था - शक्ति के बिना ईश्वर नहीं चलता। शक्ति के बिना ईश्वर को भी नहीं चलता। कहा - सत्य बात है। इस अनन्त शक्ति के बिना द्रव्य को नहीं चलता, वह ईश्वर है। वह कहता था कि हमारी दैवी शक्ति है, उसके बिना ईश्वर को नहीं चलता। कहा-यह तेरी देवी नहीं।

यह दैवी शक्ति, जो यह अकर्तृत्व है, उत्पाद-व्यय-ध्रुव है, समझे? अकर्ता गुण है—ऐसी अनन्त शक्ति के बिना द्रव्य को नहीं चलता, द्रव्य नहीं रहता। आहाहा! उस ईश्वर को अनन्त शक्ति की जरूरत पड़ी है, अन्दर है। ओहोहो!

यहाँ तो '**णियत्तिं कुणदि**' आया है न? भाई! क्रम आया, अकर्ता गुण है, आनन्द गुण है। यह आनन्दस्वरूप आत्मा है—ऐसी जहाँ दृष्टि हुई तो राग से निवृत्तरूप परिणमन हुआ। सम्यग्दर्शन की बात चलती है, हों! समझ में आया? राग बाकी है, वह ज्ञेय में रह गया, ज्ञेय में रह गया। अपना परिणमन, उससे उपरमस्वरूप हुआ, अकर्तापने का परिणमन हुआ तो राग के अभावरूप परिणमन हुआ, उसका नाम भेदज्ञान कहने में आता है। वह भेदज्ञान यहाँ बताते हैं। अरे! भगवान! समझ में आया?

क्या कहा देखो? **निराकुलतास्वभाव के कारण किसी का कार्य तथा किसी का कारण नहीं होने से दुःख का अकारण ही है...** सुनो! भगवान आत्मा (में) अकार्यकारण नाम का गुण पड़ा है; इस कारण आत्मा राग का कारण नहीं और आत्मा की निर्मल पर्याय हुई, वह राग से हुई ऐसा नहीं। समझ में आया? राग की मन्दता है, व्यवहार है तो सम्यग्दर्शन हुआ - ऐसा वस्तु में नहीं। भाई! यहाँ तो सिद्ध करना है कि वस्तु में ऐसा नहीं। आज थोड़ी गड़बड़ आयी है, उसमें आयी है। उसमें लिखा है कि किसी समय व्यवहार पहले होता है। नीचे ऐसे होता है। कोई सागरवाले पन्नालाल हैं, उन्होंने लिखा है, लेख लिखा है। भाई! भगवान! यह मार्ग समझे बिना लेख लिखा करते हैं। पहले, पश्चात् किसे कहना?

यहाँ तो भगवान आत्मा विकल्प के अभावस्वभावस्वरूप है। अब राग पहले, व्यवहार पहले और निश्चय बाद में - ऐसा आया कहाँ? समझ में आया? यहाँ तो (कहा कि) '**णियत्तिं कुणदि**' राग है, वह दुःखरूप है; आत्मा आनन्दरूप है। एक बात। उसमें अकर्ता नाम का गुण है तो राग से निवृत्तरूप परिणमना उसका गुण है। यहाँ आत्मा की दृष्टि हुई तो राग से निवृत्तरूप परिणमन हुआ; तब राग है, वह ज्ञेय में रह गया, अपनी पर्याय में नहीं आया। वह व्यवहार ज्ञेय

हो गया। व्यवहार का स्वामी नहीं, व्यवहार अपनी पर्याय में नहीं। आहाहा! गजब बात है न! समझ में आया? आज तो एक घण्टा इसमें गया। यह तो बात चले तब चले, भाई! त्रिकाल सत्य है, त्रिकाल सत्य है। उसमें कुछ फेरफार करे तो मिथ्यादृष्टि होगा। द्रव्य को माननेवाला नहीं रहेगा। समझ में आया? आहाहा!

निराकुलतास्वभाव के कारण... भगवान **किसी का कार्य...** नहीं अर्थात् उस राग से तो निवृत्तरूप कार्य है तो राग उसका कार्य है—ऐसा नहीं और राग से यहाँ सम्यग्दर्शन की पर्याय हुई—ऐसा नहीं क्योंकि आत्मा, राग का कारण नहीं; राग है तो कारण नहीं, कार्य नहीं। (कारणकार्य) आत्मा में है ही नहीं। आत्मा में राग का कारण नहीं और राग का कार्य नहीं ऐसा अनादि-अनन्त अकार्यकारण नामक गुण पड़ा है। वह अनादि-अनन्त गुण-द्रव्य है। उस द्रव्य पर दृष्टि होने से राग का कारण नहीं और राग का कार्य आत्मा नहीं - ऐसी प्रतीति अनुभव में आती है, तब उसने आत्मा माना कहने में आता है; नहीं तो वह आत्मा को मानता नहीं। आहाहा!

उसके जैसे गुण हैं, वैसा द्रव्य माने तो यथार्थ माना कहलाये न! गुण ऐसे हैं और माने दूसरा। उसमें गुण कुछ है और माने दूसरा कुछ, (उसे) आत्मा ही नहीं। आत्मा के गुण की श्रद्धा नहीं। राजबहादुरजी! **इस प्रकार विशेष (-अन्तर) को देखकर जब यह आत्मा, आत्मा और आस्रवों के भेद को जानता है, उसी समय क्रोधादि आस्रवों से निवृत्त होता है,...** निवृत्त का अर्थ—विकाररूप परिणमन नहीं रहा। स्वभाव की दृष्टि में विकाररूप परिणमन नहीं रहा। उसका सम्यग्दर्शन, ज्ञान और आनन्द कहते हैं।

विशेष कहेंगे.... (**श्रोता :** प्रमाण वचन गुरुदेव!)

२६ श्री परमात्मप्रकाश, गाथा—६८-६९, प्रवचन नं. ४७, दि. २८-०७-१९७६

यह श्री परमात्मप्रकाश चल रहा है। गाथा ६८ आखिरी भाव है, देखो ! 'उसी तरह' वहाँ है ? आखिरीसे छठवीं लाईन है। पहेले क्या कहा ? दृष्टांत दिया। कोई जीव सांकलसे बंधा हो उसे छूटा ऐसा कहना योग्य है, लेकिन जो बंधा ही न हो उसे छूटा कहना योग्य नहीं है। समझमें आया ? सांकलका दृष्टांत है, 'सांकल' समझमें आता है ? सांकल। कोई जीव सांकलसे बंधा हुआ हो उसे छूटा ऐसा कहना वह यथार्थ है, लेकिन जो सांकलसे बंधा ही न हो उसे छूटा ऐसा कहना यथार्थ नहीं है। यह तो दृष्टांत हुआ।

'उसी तरह यह जीव शुद्धनिश्चयनयसे बंधा ही नहीं'....आहाहा....! भगवान आत्मा वस्तु जो स्वभाव चिदानंद है, त्रिकाली द्रव्यभाव स्वभावभाव है वह कभी बंधा ही नहीं है। वस्तुको क्या बंधन ? समझमें आया ? सूक्ष्म अधिकार है। एक समयमें चिदानंद भगवान द्रव्यस्वभाव पूर्णानंदका नाथ है उस वस्तुको बंध क्या और मुक्ति क्या ? समझमें आया ? आहाहा....! वस्तुस्वभाव जो द्रव्यस्वभाव पर्याय बिनाका, पर्याय बिनाका जो द्रव्यस्वभाव है वह बंधा नहीं, वह तो त्रिकाल मुक्त स्वरूप है। शक्तिस्वरूप मुक्तस्वरूप है, सूक्ष्म बात है। भगवन् ! वह वस्तु जो दृष्टिका विषय है वह तो कभी बंधा भी नहीं और कभी मुक्त होता नहीं।

'उस वजहसे कहना ठीक नहीं' आहाहा....! द्रव्यस्वभाव जो पूर्ण अखंडानंद प्रभु, जो (श्री समयसार) १४-१५ गाथामें कहा न ?–अबद्धस्पृष्ट, वह अबद्धरूप है। वह बंधी हुई वस्तु नहीं है। वस्तु बंधे किस तरह ? पर्यायमें बंध और मुक्ति है। समझमें आया ? आहाहा....! पर्याय–वर्तमान दशा कि जो व्यवहारनयका विषय है उस पर्यायमें बंध और पर्यायमें मुक्ति है। समझमें आया ? सूक्ष्म बात है।

श्रोता :— हमें पर्यायसे क्या काम है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— करना पर्यायमें है न ! ध्रुवमें करना कहाँ है ? मोक्षमार्ग तो पर्याय है, वह शुद्धनयका विषय है, ध्यान रखना ? पर्याय है न ? मोक्षमार्ग वह पर्याय है क्योंकि बंधमार्ग-भाव वह भी पर्याय है। वह दोनों अशुद्धनयसे है। अशुद्धका मतलब

पर्यायसे (बंध) है, पर्यायका मतलब व्यवहारसे है, सूक्ष्म है भगवान् !

वस्तु जो है वह तो परिणमित बिनाकी चीज है। सूक्ष्म अधिकार है। आहाहा....! भगवान आत्मा जो उत्पाद-व्ययकी पर्यायसे रहित ध्रुव है वह तो बंधनमें भी नहीं और मोक्षमें भी नहीं है। आहाहा....! समझमें आया ? वह कहते हैं देखो ! '**शुद्ध निश्चयनयसे बंधा नहीं...**' वस्तु बंधे तो वस्तुका अभाव हो जाय। समझमें आया ? सूक्ष्म विषय है, भई ! सम्यग्दर्शनका विषय बंध और मोक्षकी पर्यायसे रहित है। समझमें आया ? 'परमात्मप्रकाश है न ! पंडितजी ! 'परमात्मप्रकाश' है ? पंडितजीसे कहता हूँ। पुस्तक है न ? समझमें आया ?

६८ गाथा ऐसी है कि जीवको जन्म नहीं, मृत्यु नहीं, बंध नहीं, मोक्ष नहीं–उसे जिनवर जीव कहते हैं। ६८ गाथा। '**ण वि उप्पज्जई ण वि मरइ**' जिसमें न तो उत्पाद होता है और न व्यय होता है। आहाहा....! '**बंधु ण मोखु करेइ**' बंधको करता नहीं, मोक्षको करता नहीं। हे योगी ! हे संत ! गुरु कहते हैं कि हे शिष्य ! '**जोइआ**' जोगी ! आहाहा....! '**जिणवरू एऊँ भणेइ**' मूल गाथा है। उसे जिनवर कहते हैं। कौन जीव ? निश्चय आत्मा–त्रिकाली आत्मा वह जीव, पर्याय नहीं।

श्रोता :— जीव कितने प्रकारके हैं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— एक व्यवहार और एक निश्चय जीव—इस तरह दो प्रकारके जीव है। जीवके दो प्रकार है। (त्रिकालीको निश्चय जीव कहते हैं) और उत्पाद-व्यय पर्यायवालेको व्यवहार जीव कहते हैं।

श्रोता :— एक जीवमें दो जीव कहाँसे आये ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— जीव एक है, पर्याय और द्रव्यके दो भेद है। पर्याय द्रव्यमें आती नहीं और द्रव्य पर्यायमें आता नहीं। सूक्ष्म है, भगवन् ! सर्वज्ञ वीतराग जिनवर ऐसे कहते हैं कि उसको हम जीव कहते हैं, निश्चय जीव–वास्तविक जीव यानि यथार्थ आत्मा उसको हम कहते हैं कि जिसको उत्पाद-व्यय नहीं, जन्म-मृत्यु नहीं, बंध-मोक्ष नहीं। आहाहा....! समझमें आया ?

बंध और मोक्ष, उत्पाद-व्यय तो पर्यायदृष्टिमें है, वह पर्यायके विषयमें है, द्रव्यके विषयमें वह नहीं। आहाहा....! समझमें आया ? '**जिणवरू एऊँ भणेइ**' आहाहा....! अनंत जिनवर ऐसा कहते हैं कि परमार्थ जीव उसको कहिये कि जो सम्यग्दर्शनका विषय है,

सम्यग्दर्शन पर्याय है लेकिन उसका विषय ध्रुव द्रव्य है। आहाहा....! वह द्रव्य जो त्रिकाली ध्रुव है, जिसमें उत्पाद-व्यय नहीं, जिसमें बंध-मोक्ष नहीं उसे जिनवर देव परमार्थ भगवान आत्मा कहते हैं। समझमें आया ? भाई ! भाई ! आहाहा....! पर्यायवंत जो पर्याय है वह तो पर्यायनयका विषय है। चाहे वह मोक्ष या मोक्षका मार्ग हो, वह व्यवहारनयका विषय है।

श्रोता :— मोक्ष वह व्यवहार और व्यवहार वह झूठा। अतः मोक्ष झूठा ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— व्यवहार झूठा किस अपेक्षासे ? वह तो त्रिकालीकी अपेक्षासे अभूतार्थ है, लेकिन स्वयंकी अपेक्षासे तो भूतार्थ है। आहाहा....! सूक्ष्म विषय है। यह गाथा ही बहुत सूक्ष्म है। आहाहा....!

आहाहा....! बहुत लक्ष करके सुननेलायक यह वस्तु है। अनंतकालमें यह वस्तु क्या है वह उसने लक्षमें ही नहीं ली है। भगवान आत्मा एक समयमें जो ध्रुव है, उस ध्रुवमें ओ उत्पाद-व्यय भी नहीं, उत्पाद-व्यय तो पर्यायमें है और बंध-मोक्ष भी पर्यायमें है। आहाहा....! गजबकी बात है ! अभी तो लोग बहारमें दया-दानसे मुक्ति मानते है, वह तो कहीं दूर रह गया, प्रभु !

यहाँ तो भगवान आत्मा, एक समयमें जो उत्पाद-व्यय है उससे रहित है। '**उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्**' यह तो '**तत्त्वार्थसूत्र**'में आता है। दशलक्षण पर्वमें आता है, 'उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्' भगवान आत्मा उत्पाद-व्यय और ध्रुव तीनों मिलकर प्रमाणका विषय है, प्रमाणका विषय है उसके दो भेद करके (कहते हैं)। त्रिकाली द्रव्य जो है वह बंध-मोक्षसे रहित है, वह सम्यग्दर्शनका विषय है और बंध-मोक्षकी पर्याय है वह व्यवहारनयका विषय है। आहाहा....! समझमें आया ? वीतरागका मार्ग बहुत सूक्ष्म है। अलौकिक बातें हैं। ऐसी बात कहीं भी नहीं। वीतराग सर्वज्ञके अलावा ऐसी बात कही नहीं है। श्वेताम्बरमें भी नहीं है तो फिर दूसरोंमें तो होगा ही कैसे ! आहाहा...! यह तो सनातन जैन दर्शनमें यह कथन है। समझमें आया ? ऐसा कहकर क्या कहना है ?

जो वस्तु बंध-मोक्ष रहित ध्रुव है उसका आश्रय करने योग्य है, पर्यायका भी आश्रय करने योग्य नहीं है। मोक्ष और मोक्षका मार्ग भी आश्रय करने योग्य नहीं है। पंडितजी ! सूक्ष्म विषय है, भाई ! आहाहा...! बात एकदम पलटी खाती है। वस्तु भगवान आत्मा एक समयमें ध्रुवका जो पिंड है, ध्रुव स्वरूप है, जिसमें उत्पाद-व्यय, बंध-मोक्ष नहीं है। आहाहा...! उस वस्तुको भगवान परमार्थ आत्मा कहते है। बंध-मोक्षकी पर्याय वह परमार्थ

आत्मा नहीं है। आहाहा...! बंध-मोक्ष तो पर्यायमें है। पर्यायमें रागकी एकताका बंध और रागके अभावरूप मोक्षकी पर्याय वह पर्यायमें है। आहाहा...! समझमें आया ?

पर्यायमें द्रव्य नहीं और द्रव्यमें पर्याय नहीं, इतना है। है तो (दोनों) साथमें ही। सुनो भाई ! यह भगवानकी बात सूक्ष्म है। पर्यायमें द्रव्य आता नहीं। ज्ञानकी पर्यायमें और श्रद्धाकी पर्यायमें पूरे द्रव्यका ज्ञान और द्रव्यकी श्रद्धा होती है। समझमें आया ? द्रव्य कैसा है उसकी श्रद्धा पर्यायमें होती है, (फिर भी) द्रव्य (पर्यायमें) आता नहीं है। आहाहा...! समझमें आया ? आहाहा...!

प्रभु ! तू एक बार सुन तो सही ! तेरे द्रव्यकी प्रभुता इतनी है कि जिसमें बंध-मोक्षकी पर्याय भी नहीं है। समझमें आया ? और जो बंध-मोक्षकी पर्याय है वह पर्याय है तो व्यवहारनयका विषय अर्थात् अशुद्धनयका विषय है। बंध, मोक्ष और मोक्षका मार्ग है, द्रव्यके आश्रयसे जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निश्चय-वास्तविक मोक्षमार्ग है, विकल्प है वह मोक्षमार्ग है ही नहीं। वह जो वास्तविक निश्चय मोक्षमार्ग है वास्तवमें वह भी पर्यायका विषय है, व्यवहारनयका विषय है। दूसरी भाषामें कहे तो वह अशुद्धनयका विषय है। आहाहा...! ऐसी बात है भाई !

तीनलोकके नाथ जिनवरदेव सभामें इन्द्र और गणधरके सामने ऐसा कहते थे, यह वह बात है। आहाहा...! भगवन् ! तू इतना बड़ा है, तेरा कितना माहात्म्य है और तेरी कितनी ध्रुवता-त्रिकालीपना है। आहाहा...! उसको पर्याय छूती नहीं। वह द्रव्य है वह निश्चय मोक्षमार्गकी पर्यायको स्पर्शता नहीं और मोक्षमार्गकी पर्याय जो है वह द्रव्यको स्पर्शती नहीं। ऐसी बात है, भगवन् ! आहाहा...! अरे ! अभी तो सब गड़बड़ हो गई है। व्यवहारसे होता है और उससे होता है और दया, दान और व्रत करो और उससे धर्म होगा....अरे ! भगवन् ! वह तो बंधमार्ग है न ! उससे मोक्षमार्ग होता है ? बंधमार्ग द्रव्यका आश्रय लेता है ? आहाहा...! रागादि भाव है वह तो (बंधमार्ग है)। (उसमें) लक्ष परका है, दिशा परकी है, वह दशाकी दिशा परकी ओर है। आहाहा...! और जो सच्चा मोक्षमार्ग है उसकी दशाकी दिशा द्रव्य सन्मुख है। समझमें आया ? अरेरे ....! प्रभुकी ऐसी बातमें लोगोंने सब गड़बड़ करदी है।

शास्त्रमें आता है न कि व्यवहार रत्नत्रय परंपरा मोक्षका कारण है, ऐसा आता है। किसको ?-कि जिसको त्रिकाली भगवान बंध-मोक्षकी पर्यायसे रहित है उसकी, उसको अनुभवमें दृष्टि हुई हो, जिसको आनंदका स्वाद आया हो। आहाहा...! जो आनंद स्वरूप

ध्रुव प्रभु है उसका आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र हुआ तो वह आनंदकी दशा हुई। त्रिकाली आनंद है उसकी आनंद दशा हुई। समझमें आया? आहाहा...! और जितना शुद्धोपयोग है उतना रागका भाव है। भगवानने व्यवहारनयसे जो कथन करके व्रत और नियम और तपस्या और क्रियाकांड कहे हैं, वह सब अशुद्धनयका विषय है और बंधका कारण है। आहाहा...! और जो मोक्षका मार्ग है वह निर्मल पर्याय है, उसका आश्रयदाता भगवान है। दाताका अर्थ वह पर्यायको देता नहीं। आहाहा...!

वह द्रव्य पर्यायका दाता नहीं है। वह अपने 'आत्मधर्म'में आ गया न? 'योगसार'में 'योगसार'का कथन 'आत्मधर्म'में बहुत आ गया। अब आत्मधर्म काफी अच्छा और स्पष्ट आ रहा है। लोग बहुत खुश हुये हैं। इस कार्तिक माहसे 'आत्मधर्म' पढ़कर लोग बहुत खुश हुये हैं। 'आत्मधर्म' तो अब 'आत्मधर्म' आया। आहाहा...! क्या कहा?

जो 'आत्मा' और 'आत्मधर्म' दो शब्द है, तो आत्मा है वह तो त्रिकाली है, उसमें बंध और मोक्ष भी नहीं है, मोक्षका मार्ग भी उसमें नहीं है। आहाहा...! जो बंध और मोक्ष है.....कहा न? ६८ गाथा....'**बंध भी व्यवहारनयसे है और मोक्ष भी व्यवहारनयसे है**' भाई! क्या कहा? सुनो भाई! यह तो अलौकिक मार्ग है। बंध भी व्यवहार है। पर्यायमें जो रागसे एकता है वह व्यवहारनय है। पर्याय है न! और मोक्षका सच्चा निश्चय है वह व्यवहार है। पर्याय है न! और सच्चा निश्चयमार्ग है वह भी व्यवहार है। पर्याय है न! आहाहा...!

श्रोता :— वह तो रागसे अलग हुई दशा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— अलग हुई है लेकिन है तो वह पर्याय न? पर्याय है वह व्यवहार है। आहाहा...! सूक्ष्म बात है, भगवन्! यहाँ 'प्रवचनसार'में ४७ नयमें यहाँ तक कहा, ४७-४७ नय है न? 'प्रवचनसार'में पीछे हैं। वहाँ तो ऐसा कहा है कि मिट्टीको उसकी बर्तन आदि पर्याय आदिसे देखना अशुद्धनय है, मिट्टीको सिर्फ मिट्टीरूपसे देखना वह शुद्धनय है; वैसे ही भगवान आत्माको निर्मल पर्यायसे सहित देखना वह अशुद्धनय है, यह सिद्धांत है उसमें? 'प्रवचनसार'में ४७-४७ नय-आखिरीके दो नय है न! आहाहा...! मिट्टीको उसकी पर्याय कि जो बर्तन आदि है, बर्तन है न? मिट्टीके बर्तन है न? बर्तन मिट्टीको देखना वह अशुद्धनय है। एक मिट्टीको देखना वह शुद्धनय है। वैसे ही भगवान आत्माको-निर्मल पर्यायसे सहित द्रव्यको देखना वह अशुद्धनय है। आहाहा...! गजब बात है! सिर्फ त्रिकाली द्रव्यको देखना वह शुद्धनय है। समझमें आया? मार्ग बहुत सूक्ष्म है

भाई ! वीतराग जिनेश्वरदर्शन वह दिगम्बरदर्शन है, दिगम्बरदर्शन है वह जिनेश्वरदर्शन है, आहाहा...! उसके अलावा ऐसी सत्त्वकी बात और कहीं है ही नहीं। आहाहा...! क्या कहा ?

'बंध भी व्यवहारनयसे है और मुक्ति भी व्यवहारनयसे है'। आहाहा...! क्योंकि बंध और मुक्ति तो पर्याय है, वस्तुमें बंध-मुक्ति नहीं। वह तो त्रिकाली चीज है। आहाहा...! और वही सम्यग्दर्शनका विषय है। **'भूदत्थोमस्सिदो खलु सम्मादिट्ठी हवदि जीवो'** (समयसार) गाथा ११ वीं है। **'व्यवहारोऽभूदत्थो'** पर्यायबुद्धि अभूतार्थ है। मोक्ष और मोक्षका मार्ग भी अभूतार्थ है। किस अपेक्षासे ?–त्रिकालकी अपेक्षासे। अपनी (पर्यायकी) अपेक्षासे (पर्याय) है लेकिन वह पर्यायनयका विषय है। आहाहा...! मोक्ष और मोक्षका मार्ग, सच्चा हाँ ! व्यवहार मोक्षमार्ग वह तो मोक्षमार्ग है ही नहीं, वह तो आरोपित कथन–निरूपण है। मोक्षमार्गकी प्ररूपणा दो प्रकारसे है। मोक्षमार्ग दो प्रकारका नहीं है। आहाहा...! कथनमें एसे आता है। जब अपना निश्चय मोक्षमार्ग अपनेसे प्रगट होता है उस समय राग—देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धाका राग, पंच महाव्रतका राग–व्यवहार साथमें देखकर–सहचर देखकर निमित्तका उपचार करके व्यवहार कहा है, वह मोक्षमार्ग नहीं है, सिर्फ साथमें निमित्त देखकर उपचार किया है। आहाहा...! ऐसी चीज है भगवन् !

'मुक्ति भी व्यवहारनयसे है' आहाहा...! रागको व्यवहारनयसे मोक्षका मार्ग कहा है उसकी तो बात ही कहाँ है ! वह तो बंधमार्ग है। समझमें आया ? क्योंकि पर्यायमें निर्मलता प्रगट हुई है। मुक्तिकी पर्याय अनंत आनंद, अनंत ज्ञान, दर्शन, केवलज्ञानकी पर्याय भी व्यवहारनयका विषय है। आहाहा...! पर्याय है न ! त्रिकालीमें भेद किया है। आहाहा...! भगवान त्रिलोकीनाथ जिनवरदेव ऐसा कहते हैं। पाठमें आ गया **'जिणवरू एउँ भणेइ'** आहाहा...!

प्रभु ! तू कौन है ? कायम रहनेवाला कौन है ? तू कौन है ? कायम रहनेवाली वस्तु तो द्रव्य स्वरूप, ध्रुवस्वरूप है। जिनवर ऐसा कहते हैं कि ध्रुव स्वरूपमें बंध-मोक्षकी पर्यायका अभाव है। आहाहा...! अरे ! मोक्षमार्गकी पर्याय, सम्यग्दर्शन-ज्ञानकी पर्यायमें द्रव्य आता नहीं। आहाहा...! समझमें आया ? भाई ! सूक्ष्म है। आहाहा...! जिनेश्वरदेव त्रिलोकनाथ परमात्मा गणधर और इन्द्रोंकी सभामें दिव्यध्वनिमें ऐसा कहते थे। आहाहा...! प्रभु ! तुझे मुक्ति और बंध व्यवहारनयसे है, क्योंकि द्रव्य निश्चय है और पर्याय व्यवहारनय है। मोक्ष और मोक्षका मार्ग पर्याय है। अतः व्यवहारनय है, अशुद्धनय है। समझमें आया ?

वह अशुद्धता है ऐसा नहीं। मोक्षमार्ग अशुद्ध है ऐसा नहीं, लेकिन मोक्षमार्गकी पर्यायको देखना वह भेद है। अतः अशुद्धनय है। पर्याय है न ! और त्रिकाली भगवान शुद्ध चिदानंद प्रभु शुद्धनयका विषय है। वह सम्यग्दर्शनका विषय कहो या शुद्धनयका विषय कहो। ११वीं गाथामें भूतार्थ आश्रित सम्यग्दर्शन कहा है। वह त्रिकाली द्रव्यके आश्रयसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा...! समझमें आया ? पकड़में आये उतना समझो। प्रभु ! मार्ग तो यह है, भाई ! अभी तो बहुत बदल गया है। आहाहा...! कहाँसे कहाँ....आहाहा...! पद्मावती देवी और फलाणा यक्ष और कहाँसे कहाँ बेचारे भटक रहे हैं !

यहाँ तो कहते हैं कि सच्चे देव-गुरु-शास्त्रकी श्रद्धा भी विकल्प है और राग है। आहाहा...! बंधमार्ग है। परद्रव्य आश्रित भाव होते हैं तो राग ही होता है, वह तो बंधमार्ग है। लेकिन यहाँ तो भगवान त्रिकाली आनंदका नाथ है उसमें सर्वस्व शक्ति भरी है। अनंत आनंद, अनंत शांति, अनंत स्वच्छता, अनंत ईश्वरता, अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य जिसके स्वभावकी मर्यादा नहीं है ! एक एक शक्तिकी मर्यादा नहीं ऐसी शक्ति और उस शक्तिमें अनंत अनंत सामर्थ्य ! ऐसी अनंत शक्तिरूप ध्रुव भगवान द्रव्य जो है वह पर्यायको स्पर्शता नहीं है। आहाहा...! (समयसारकी) ४९वीं गाथामें आया है। व्यक्त अव्यक्तको। व्यक्त नाम पर्याय और अव्यक्त नाम द्रव्य। दोनोंका एक साथ ज्ञान होने पर भी, व्यक्तको अव्यक्त स्पर्शता नहीं है। आहाहा...! व्यक्त-पर्याय है और अव्यक्त-द्रव्य दोनोंका एक साथ ज्ञान होने पर भी, आहाहा...! व्यक्तको अव्यक्त-द्रव्य स्पर्शता नहीं है। वह पाँचवा बोल है। बोल है न ! छह बोल ४९ गाथा। अव्यक्तके छह बोल है। समझमें आया ? आहाहा...!

अलिंगग्रहणमें है। प्रवचनसार १७२वीं गाथामें बीस बोल है। उसमें १८वाँ बोल है। अर्थावबोधरूप गुणविशेषको नहीं स्पर्शनेवाला वह भगवान आत्मा द्रव्य है, वह विशेषमें आता नहीं। आहाहा...! द्रव्य वह विशेषको स्पर्शता नहीं। पंडितजी ! ऐसा मार्ग है। प्रभु ! आहाहा...! आज तो हिन्दीमें चल रहा है। आहाहा...! उस व्यक्तको द्रव्य स्पर्शता नहीं, छूता नहीं। पर्याय पर्यायमें रहती है, द्रव्य द्रव्यमें रहता है और पर्याय द्रव्यको स्पर्शती नहीं। बीसवाँ बोल है और यह उन्नीसवाँ बोल है। अर्थावबोधरूप विशेष पर्याय द्रव्यको आलिंगन–स्पर्श करती नहीं। आहाहा...! देखो ! वीतरागका तत्त्व दर्शन, देखो ! आहाहा...! मोक्षमार्गकी पर्याय व्यक्त है वह अव्यक्त नाम द्रव्यको स्पर्शती नहीं। आहाहा...!

श्रोता :— आश्रय लेती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— आश्रय लेती ही नहीं। आश्रयका मतलब कि वह पर्याय द्रव्य

सन्मुख हुई उसे आश्रय लिया ऐसा कहनेमें आता है। पर्याय द्रव्यको स्पर्शती ही नहीं तो आश्रय कैसा ? आहाहा...! देखो ! यह तत्त्वज्ञानकी लहर....!

मोक्षमार्गकी आनंदकी अनुभव दशा, क्षायिक समकित, क्षायिक यथाख्यात पर्याय द्रव्यको स्पर्शती नहीं और वह पर्यायमें आता नहीं। द्रव्य उसे छूता नहीं, द्रव्य उसमें आता नहीं। पर्याय छूती नहीं, पर्याय द्रव्यमें जाती नहीं। आहाहा...! जाती नहीं कहा न ? समझमें आया ? यहाँ वह व्याख्या है। **'व्यवहारनयकर और मुक्ति भी व्यवहारनयकर है।''** बंध और मुक्ति व्यवहारनयकर है। पर्याय है न ? पर्याय वह व्यवहार है। आहाहा...!

'शुद्ध निश्चयनयकर न बंध है, न मोक्ष है...' है ? आहाहा...! शुद्धनिश्चय तो त्रिकाली वस्तु, द्रव्य वस्तु है। उसमें न तो बंध है और न ही मोक्ष है। आहाहा...! **'अशुद्धनयकर बंध है,' 'इसलिए बंधके नाशका यत्न भी अवश्य करना चाहिये।'** बंधके नाशका प्रयत्न व्यवहारनयके विषयमें आता है, होता है। शिष्यने ऐसा प्रश्न किया था कि निश्चयनयसे बंध और मोक्ष आत्मामें नहीं है, तो मोक्षका प्रयत्न करना व्यर्थ है, तो कहते हैं कि सुन तो सही, प्रभु ! बंध भी पर्यायमें है और मोक्ष भी पर्यायमें है। व्यवहारनयका विषय है। बंधका नाश करनेमें व्यवहारनयका विषय निश्चय मोक्षमार्ग आता है। समझमें आया ?

'परमार्थ वचनिका'में कहा है, नहीं ? 'बनारसीदास' 'परमार्थ वचनिका' है न ! मोक्षमार्ग प्रकाशकमें पीछे लिया है, अपनने लिया है। हिन्दीमें आया है ? हिन्दीमें ? 'मोक्षमार्गप्रकाशक'के पीछे तीन विषय लिये हैं–'रहस्यपूर्ण चिट्ठी', 'परमार्थ वचनिका' और 'उपादान-निमित्त' पीछे तीन विषय लिये हैं। उसमें भी ऐसा लिया है, द्रव्य है वह निष्क्रिय निश्चय है। मोक्षमार्ग-निश्चय साधना वह व्यवहार है। आहाहा...! समझमें आया ? क्षायिक समकित व्यवहारनयका विषय है, केवलज्ञान व्यवहारनयका विषय है। पर्याय है न ? यथाख्यात चारित्र व्यवहारनयका विषय है, मोक्ष व्यवहारनयका विषय है। पर्याय अरे ! मूल तत्त्वकी खबर नहीं बाहरसे ऐसा करो और वैसा करो।

यहाँ तो द्रव्य पर्यायको करता नहीं, पर्याय रागको करती नहीं, राग परद्रव्यकी पर्यायको करता नहीं। विकल्प है वह परकी पर्यायको, जड़की कोई पर्याय करता नहीं और निर्मल पर्यायको करता नहीं। आहाहा...! समझमें आये ऐसी बात है। लोजीकसे–न्यायसे तो कहनेमें आता है। यह वीतरागका मार्ग तो न्यायसे है। समझमें आया ?

'अशुद्धनयकर बंध है, इसलिए बंधके नाशका यत्न भी अवश्य करना चाहिये।'

बंधके नाशका मतलब मोक्षमार्ग। मोक्षमार्ग व्यवहार है। बंध भी असद्भुत व्यवहार है, यह (मोक्षमार्ग) सद्भूत व्यवहार है। आहाहा...! आहाहा...! लेकिन वो दोनों है तो अशुद्धनयका विषय।

श्रोता :— कभी तो आप शुद्धनयका विषय कहते हो ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह किस अपेक्षासे ? वह तो शुद्धताकी अपेक्षासे, लेकिन है तो अशुद्धनयका विषय। व्यवहारनयका कहो, पर्यायनयका कहो या अशुद्धका कहो। त्रिकाल है वह शुद्धनयका विषय है। आहाहा...! समझमें आया ? 'प्रवचनसार'में ऐसा लिया है। ४७ नय है न ! आखिरीमें ४७ नय है न ! आत्मद्रव्य अशुद्धनयसे घर और रामपात्रकी विशेष मिट्टी पात्रके जैसे सोपाधिक स्वभाववाला है। आहाहा...! आत्मद्रव्य शुद्धनयकर केवल मिट्टीमात्रके निरुपाधिक स्वभाववाला है। आहाहा...! आत्मद्रव्य सिर्फ त्रिकाली शुद्धनयकर मिट्टीपात्रके जैसे.... मिट्टीके पात्र सहित मिट्टीको देखना वह तो व्यवहारनय हो गया, अशुद्धनय हो गया। वैसे ही भगवान आत्माको निर्मल पर्याय सहित लक्षमें लेना वह तो व्यवहारनयका–अशुद्धनयका विषय है। आहाहा...! 'प्रवचनसार'में है, भाई ! ऐसी बात है।

यहाँ तो आत्मद्रव्य त्रिकाली और मोक्ष और मोक्षकी पर्याय ! वह त्रिकाली वह तो शुद्धनय या सम्यग्दर्शनका विषय है और मोक्ष तथा मोक्षका मार्ग वह व्यवहारनयका विषय जाननेलायक है। आहाहा...! वह मोक्षका मार्ग और मोक्ष वह आदर करने लायक नहीं।

श्रोता :— प्रगट करने योग्य है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— प्रगट करने योग्य है वह दूसरी बात है। वह तो पुरुषार्थसे अशुद्धनयकर-व्यवहारनयकर प्रगट होता है। मोक्ष प्रगट करनेयोग्य है ऐसा तो यहाँ 'मोक्षमार्गप्रकाशक'में कहा न ! मोक्ष है वह परम हितकर है, संवर है वह उपादेय है, निर्जरा है वह हितकर है, आश्रव हे वह अहितकर है। आहाहा...! वह तो ज्ञान कराया है।

यहाँ तो कहते हैं कि संवरको उपादेय कहा वह भी प्रगट करनेकी अपेक्षासे कहा है, नहीं तो त्रिकाली ध्रुव है वह उपादेय है। पंडितजी ! ऐसी बात है। आहाहा...! समझमें आया ? आत्मद्रव्य अशुद्धनय घट और रामपात्रकी मिट्टीके पात्र जैसे....घट और रामपात्रकी पर्यायकी विशेषता सहित मिट्टी वह अशुद्धनयका विषय है, वैसे भगवान आत्मा, उसकी निर्मल पर्याय सहित उसको देखना वह व्यवहारनयका विषय है, अशुद्धनयका विषय है। आहाहा...! भगवान आत्मा त्रिकाली जो पर्यायसे रहित वस्तु द्रव्य है वह उपादेय है, वह यहाँ कहेंगे। देखो ! आहाहा...!

'इसलिए बंधके नाशका यत्न भी अवश्य करना चाहिये। यहाँ यह अभिप्राय है...' देखो ! **'यहाँ यह अभिप्राय है कि सिद्ध समान यह अपना....'** सिद्ध समान मतलब पर्याय नहीं, त्रिकाली। समझमें आया ? **'सिद्ध समान यह शुद्धात्मा वीतराग निर्विकल्प समाधिमें लीन पुरुषोंको उपादेय है...'** आहाहा...! कहते हैं कि ऐसा भगवान पूर्णानंद स्वरूप ध्रुव किसको उपादेय है ?–कि जिसने शुद्धात्मानुभूतिमें द्रव्यको लक्षमें लिया है उसको उपादेय है। क्या कहा ? समझमें आया ?

शुद्ध अनुभूतिवालेको यह आत्मा उपादेय है। ऐसे ही उपादेय मानना वह तो धारणाका विषय हो गया। आहाहा...! समझमें आया ? त्रिकाली भगवान शुद्ध चैतन्यमूर्ति प्रभु जो कि शुद्धनयका विषय है, उसको उपादेय कब कहा जायेगा ? आहाहा...! उसके सन्मुखकी शुद्धात्मानुभूति होवे उस कालमें वह आत्मा उपादेय है। समझमें आया ? सम्यग्दृष्टिको ही वह उपादेय है। ऐसे ही उपादेय....उपादेय कहनेसे क्या होता है ! यह त्रिकाली उपादेय है ऐसा परिणमन हुआ उसे उपादेय है। आहाहा...! समझमें आया ? जिसको सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रका अंश निर्मल अनुभूति हुई उस अनुभूतिके कालमें उपादेय है। उसका आश्रय लिया और वह निर्मल अनुभूति हुई तब उस अनुभूतिमें वह उपादेय है। ऐसी बात है, भगवन् ! आहाहा...! अरेरे...! ऐसी बातको लोग निश्चय कहकर उडा देते हैं। अरे प्रभु ! मार्ग तो यह है ! तेरे हितका पंथ तो यह है, भाई ! दूसरी रीतसे करने जायेगा, प्रभु ! तो हाथमें नहीं आयेगा। आहाहा...! संसारमें भटकना पड़ेगा, भाई ! जन्म-मरण करते करते बेहाल हो गया है। नरक-निगोदके भव करके....आहाहा...! एक श्वासमें निगोदके अठारह भव.... बापू ! कितना दुःख होगा, भाई ! आहाहा...! तेरे आनंदके नाथके विरहमें ऐसे दुःख तूने सहे हैं। आहाहा...! झगड़ा करे कि इस नयसे ऐसा कहा है और इस नयसे ऐसा कहा है। सब है, सुन न ! आहाहा...!

यहाँ तात्पर्य–अभिप्राय यह है कि **'सिद्ध समान यह अपना शुद्धात्मा'** त्रिकाली, हाँ ! **'वीतराग निर्विकल्प समाधिमें लीन...'** आहाहा...! रागरहित होकरके स्वभाव सन्मुखकी वीतराग निर्विकल्प शांति, समाधि यानि शांति। वीतराग निर्विकल्प आनंदकी शांतिके कालमें वह उपादेय है। आहाहा...! उसने आत्माका आदर किया। आहाहा...! शुद्धात्मानुभूतिके कालमें उसने आत्माको उपादेय माना। आहाहा...! **'लीन पुरुषोंको उपादेय है, अन्य सब हेय है।'** आहाहा...! पर्याय आदि सब हेय है। यह ६८ गाथा पूरी हुई, लो ! तीन दिनसे अपने चल रही है, यह नये महेमान आये है न ! आखिरी लाईनमें इतना भरा है, माल भरा

है। पार न आवे ऐसी बात है, भाई ! वह गणधर पूरा कर सके, संतो पूरा कर सके ऐसी बात है।

वस्तु-वस्तु है न ! तत्त्व है न ! अस्ति पदार्थ है न, भगवन् ! त्रिकाली, हाँ ! अस्ति पदार्थका स्वभाव अस्तिरूप अनंत है। आहाहा...! ऐसा अनंत स्वभाव संपन्न भगवान सिद्ध समान द्रव्य, हाँ ! उसके सन्मुख होकरके शुद्धात्माकी अनुभूतिके कालमें यह आत्मा उपादेय हुआ। आहाहा...! ऐसे शास्त्रसे ख्यालमें लिया कि यह उपादेय है, लेकिन वह उपादेय हुआ तो नहीं।

श्रोता :— शास्त्र सुनकरके भी 'यह उपादेय है' ऐसा नहीं हुआ ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— ज्ञानकी पर्यायमें ऐसा हुआ लेकिन श्रद्धाकी पर्यायमें, अनुभूतिकी पर्यायमें यह उपादेय है ऐसा कहाँ आया ? अनंत पुरुषार्थ है। आहाहा...! करना तो यही करना है, बाकी सब हेय है। आहाहा...! समझमें आया ?

'समाधिरतो मुक्तजीवसदृशः' देखो, ऐसा लिया है न ? **'मुक्तजीवसदृशः'** ऐसा लिया है। इसलिए सिद्ध समान लिया। **'स्वशुद्धात्मोपादेय इति भावार्थः'** लो यह सिद्ध समान लिया न ! वह **'मुक्तजीवसदृशः'**की व्याख्याकी। यह ६८ गाथा हुई, अब ६९।

'आगे निश्चयनयकर जीवके जन्म, जरा, मरण, रोग, लिंग, वर्ण और संज्ञा नहीं है...' आहाहा...! **'आत्मा इन सब विकारोंसे रहित है....'** आहाहा...! वह तो निर्मलानंद प्रभु त्रिकाल विज्ञानघन प्रभु वह इन सब विकारोंसे रहित है। **'ऐसा कहते हैं'** विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❀ उत्पाद-व्ययसे रहित ध्रुव आत्मा ही वास्तविक आत्मा है। एक समयका ध्रुव ही सच्चा आत्मा है, वास्तविक आत्मा है। एक समयकी शुद्ध पर्याय वह वास्तविक आत्मा नहीं है इसलिये अवास्तविक हुआ। अवास्तविक ही परद्रव्य हुआ; इससे परभाव कहा, हेय कहा। ७०. –द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर पर्यायदृष्टि विनश्वर

२७ श्री कलशटीका, श्लोक—६१-६२, प्रवचन नं. ७८, दि. २७-०८-१९७७

'कलशटीका' 'कर्ता-कर्म अधिकार'। ६१ कलश चल रहा है न ! भावार्थ है न ! **'जीवद्रव्य अशुद्ध चैतनारूप परिणमता है, शुद्ध चेतनारूप परिणमता है'** क्या कहते हैं ? चाहे तो जीव-आत्मा शुद्ध सिद्धरूप ऐसे मोक्षमार्गरूप परिणमे या चाहे अशुद्धरूपसे परिणमे, लेकिन परका कर्ता तो वह है ही नहीं। समझमें आया ? 'कर्ता-कर्म अधिकार' है न ! अपने परिणाम शुद्ध चैतन्य सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपसे हो... यहाँ सिद्धरूपसे हो ऐसा लिया है। अपनी पर्याय सिद्धपर्यायरूपसे परिणमित हो वह (द्रव्य) सिद्धपर्यायका कर्ता और सिद्धपर्याय कर्म है। यह कर्ता-कर्म हैं, यह भी उपचारसे है। आहाहा...! वैसे आत्मा कर्ता और शुद्ध परिणति कार्य यह उपचार-व्यवहार है। आहाहा...! परमार्थसे तो शुद्ध परिणति ही कर्ता और वही कर्म है। समझमें आया ?

अपना आत्मा अपने स्वभावके आश्रयसे शुद्ध चेतनारूप परिणमित होता है। क्रमबद्धकी बड़ी तकरार है न ! 'प्रियंकरजी' लाये हैं कि हम क्रमबद्ध कबूल करते हैं। बात तो उनकी सत्य है इतना तो कहा। बादमें हमें प्रियंकरजीको बुलाना है न ! प्रवचनके बाद। मुझे उस व्यक्तिका कोई काम नहीं। क्रमबद्धका यदि निर्णय हो जाय तो चारों अनुयोगका सार वीतरागता है। समझमें आया ? चारों अनुयोगका सार, पंचास्तिकायकी १७२वीं गाथा, चारों अनुयोगका सार वीतरागता है। वह वीतरागताकी प्राप्ति होना उसका अर्थ यह हुआ कि स्वद्रव्यका आश्रय करे तो वीतरागता प्राप्त हो जाये। क्रमबद्धके निर्णयमें भी स्वद्रव्यका आश्रय करना यह उसका निर्णय है। आहाहा...!

तीस साल पहले यहाँ प्रवचन होलमें विद्वत परिषद हुई थी तब 'लालबहादुर'ने कबूल किया था कि क्रमबद्ध है। उस समय तक 'जगनमोहनलालजी' मना करते थे। उनको व्यवहारकी बात थी न ! उनको 'लालबहादुर'ने कहा, क्रमबद्ध बराबर है और वो भी कहते हैं कि क्रमबद्धका निर्णय यदि हम करें तो सोनगढ़की बात सच हो जायगी और अपनी बात झूठी होगी। अरे भगवन् ! यहाँ तो सत्य क्या है वह बात है। किसीकी बात रहे और किसी की बात न रहे उसका क्या काम है, प्रभु !

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मा जो शुद्ध परिणमन करता है... आहाहा...! उसका कर्ता

आत्मा है और शुद्ध परिणमन कार्य है। कर्मका अभाव हुआ वह शुद्ध परिणतिका कार्य है ऐसा नहीं है। कर्मका अभाव हुआ, कर्मका नाश हुआ तो यहाँ शुद्ध परिणति प्रगट हुई ऐसा नहीं है। शुद्ध परिणतिका कर्ता आत्मा और जो शुद्ध परिणमन-धर्मकी परिणति होती है वह उसका कार्य है, वह भी उपचारसे है। क्योंकि द्रव्य और पर्यायके बीचमें कर्ता-कर्म (सम्बन्ध) कहना वह उपचारसे है। आहाहा...!

शरीर, वाणी, परज्ञेयका कर्ता तो है ही नहीं। समझमें आया? वह तो अपने परिणम्यपरिणामकत्व शक्तिमें दोपहरको आ गया। परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति। उसका अर्थ यह है कि आत्मा परज्ञेयको जाननेके स्वभाववाला ग्रहण करनेवाला है। परद्रव्यमें चाहे तो अरिहंत हो और पंच परमेष्ठि हो या अनंत नीगोदके जीव हो, उसे अपने प्रमाणज्ञानमें ग्रहण करना स्वभाव है, जाननेका स्वभाव है। परद्रव्यके कर्ताका स्वभाव नहीं, परद्रव्यसे अपनेमें ज्ञान होता है उसका कर्ता परद्रव्य है ऐसा भी नहीं है। आहाहा...! अपना स्वभाव परज्ञेयको जाननेका है, वह प्रमाण है। परिणम्यपरिणामकत्व शक्ति दोपहरको चल रही है न! तो परिणम्यका अर्थ प्रमाण और परिणामकत्व याने प्रमेय। अपना स्वभाव परज्ञेयको जाननेका-ग्रहण करनेका है और अपना स्वभाव परज्ञानमें (अपनेको) ग्रहण करानेका है। आहाहा...! समझमें आया?

ज्ञानी परमात्मा या श्रुतज्ञानी या मतिज्ञानीमें अपना आत्मा प्रमेय होकर उसके प्रमाणज्ञानमें जानने लायक है, परको प्रमेयरूपसे ग्रहण कराने योग्य है और परको ग्रहण करने योग्य है। आहाहा...! समझमें आया? उसमें तो शुद्ध परिणति भी अपना कार्य है और अपना आत्मा कर्ता है वह भी उसका व्यवहार हुआ। परका कर्ता तो नहीं, परसे अपनेमें केवलज्ञान हो या शुद्ध परिणति हो ऐसा भी नहीं है। आहाहा...!

क्रमबद्धके निर्णयका सार वीतरागता है। क्रमबद्ध कहनेमें वीतरागता कहना है। वह वीतरागता कब होती है? स्वद्रव्यके आश्रयसे होती है। जिनकी आज्ञा तो यह है, भूतार्थ आश्रित सम्यग्दर्शन होता है। (समयसार) ११वीं गाथा। '**भूदत्थ मस्सिदो खलु**' जो सत्यार्थ भगवान पूर्णानंद प्रभु है उसका आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन होता है, उसका यह अर्थ हुआ। भगवानकी आज्ञा क्रमबद्धका निर्णय करानेकी है, उसमें वीतरागता दिखानी है और वह वीतरागता स्वद्रव्यके आश्रयसे प्रगट होती है। परद्रव्यके आश्रयसे प्रगट होती नहीं। परद्रव्य तो व्यवहार पराश्रित है। पराश्रितमें तो राग उत्पन्न होता है। आहाहा...!

निश्चय स्व आश्रित है, व्यवहार पराश्रित है। व्यवहार तो पंच परमेष्ठी हो या निगोदके

अनंत जीव हो, वह जो बताया है वह निगोदके जीवकी दया पालने योग्य है ऐसा कहनेके लिए नहीं बताया। आहाहा...! वह अनंत निगोदके जीव है उनको तेरे ज्ञानमें ग्रहण करनेका तेरा स्वभाव है यह बताना है। समझमें आया ? परकी दया पालनेके लिये बताया है ऐसा नहीं है। समझमें आया ? सिर्फ अपने ज्ञानमें–प्रमाण ज्ञानमें पर अनंत ज्ञेय परमेष्ठी आदि पदार्थका ज्ञान करनेका स्वभाव है। ग्रहण नाम ज्ञान करनेका स्वभाव है और अपना स्वभाव परके ज्ञानमें ग्रहण करानेका है अर्थात् प्रमाणरूप भी आत्मा है और प्रमेयरूप भी आत्मा है। यह एक शक्ति अपनी चल गई है।

यहाँ तो यह कहा कि शुद्ध परिणतिका कर्ता आत्मा नहीं है, ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा...! समझमें आया ? यहाँ तो सिद्ध किया है कि शुद्ध परिणतिरूपसे आत्मा परिणमे या अशुद्धरूपसे परिणमे लेकिन अपनी परिणतिका कर्ता है, परका कर्ता है ही नहीं, इतना सिद्ध करना है। आहाहा...! और अशुद्ध परिणतिरूपसे परिणमित होता है तो उतने प्रमाणमें सामने कर्मका बंध होता है। उतने ही प्रमाणमें जितना राग-द्वेष या अज्ञान हुआ है उतने ही प्रमाणसे सामने (कर्मबंध होता है)। फिर भी उस बंधकी पर्यायका कर्ता आत्मा नहीं है। आहाहा...! फिर शरीर या वाणी या देश या परकी क्रिया आत्मा कर सके ऐसा नहीं है। हाँ, परको ग्रहण करनेका–जाननेका स्वभाव है। परके कर्तापनेका या परसे अपनेमें कुछ हो ऐसा कोई स्वभाव नहीं है। आहाहा...! समझमें आया ?

यहाँपर भावार्थमें ऐसा कहा, **'जीव द्रव्य अशुद्ध चेतनारूपसे परिणमित होता है...'** विकाररूपसे परिणमित हो तो भी विकारका कर्ता और विकार उसका कर्म, वह भी पर्यायमें हैं। द्रव्य अशुद्धताका कर्ता और अशुद्धता द्रव्यका कार्य है ऐसा भी नहीं है। क्या कहा ? जो अशुद्ध परिणति है उसका कर्ता द्रव्य है और वह द्रव्यका कार्य है ऐसा नहीं है। क्यों ? द्रव्यमें कोई ऐसी शक्ति नहीं कि विकाररूपसे परिणमित होवे। अनंत शक्तियाँ हैं वह शद्ध हैं और शुद्धरूपसे परिणमित होना वह शक्तिका कार्य है। आहाहा...! समझमें आया ? सूक्ष्म बात है, भाई !

'अशुद्ध' परिणमन हो वह पर्यायमें षट्कारक रूप परिणमन है। यह बात तो वहाँ बीस साल पहले 'वर्णीजी'के साथ हुई थी। 'पंचास्तिकाय'की ६२वीं गाथा। अशुद्ध परिणमन, एक समयमें षट्कारकका परिणमन पर्यायमें पर्यायसे है, द्रव्य-गुणसे नहीं है, परसे तो है ही नहीं। समझमें आया ? यह कहते है। चाहे तो अशुद्ध परिणमन परिणमो या चाहे तो शुद्ध चेतनारूप परिणमो। आहाहा...! बहुत गम्भीर बात है। इतनी बात यहाँ करी है।

आत्मा परिणमित होता है यह भी व्यवहारसे है। द्रव्य परिणमता नहीं, पर्याय परिणमित होती है। समझमें आया? 'नंदकिशोरजी' ! सूक्ष्म बात है, भगवन् ! आहाहा...!

अशुद्ध परिणति–पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म, पर्याय करण–साधन भी वह, पर्याय संप्रदान, पर्याय अपादान, पर्याय अधिकरण। एक समयकी पर्यायमें षट्कारकका परिणमन होता है, जिसको (अपने) द्रव्य-गुणकी अपेक्षा तो नहीं, परकी भी अपेक्षा है नहीं। यह बड़ा झगड़ा है न ! भाई गये न ! 'सहारनपुर' वह कहते हैं कि कर्मसे विकार होता है, कर्मसे विकार होता है। आहाहा...! यहाँ मना करते है। अशुद्ध परिणति अपनेसे स्वयं होती है। समझमें आया? परसे नहीं। अपने द्रव्यसे होती है वह भी व्यवहार है। अशुद्ध परिणति पर्यायमें षट्कारकसे परिणमित होती है यह वस्तुका स्वतंत्र स्वभाव है। समझमें आया?

'शुद्ध चेतनारूपसे परिणमित होती है...' मोक्षमार्ग रूपसे परिणमित होती है वह ज्ञानचेतना है। यह अशुद्ध चेतना अशुद्धरूपसे परिणमित होना वह कर्म और कर्मफल चेतना है। समझमें आया? और यह शुद्ध चेतनारूप परिणमित होना वह ज्ञान चेतना है। अर्थात् ज्ञान कहनेसे भगवान आत्मा शुद्ध शक्ति और शुद्ध द्रव्यका शुद्ध परिणमन होवे वह तो शक्ति शुद्ध है तो परिणमन भी शुद्ध है, ऐसा मानना भी अभी व्यवहार है। आहाहा...! शुद्ध परिणतिका पर्यायमें षट्कारकके कारणसे शुद्ध परिणति कर्ता, शुद्ध परिणति कार्य, शुद्ध परिणति करण, शुद्ध परिणति अपादान, शुद्ध परिणति संप्रदान, शुद्ध परिणति आधार। आहाहा...! एक पर्यायमें षट्कारकके शुद्ध परिणमनमें आत्मा कर्ता है। आत्मा भिन्न है। आहाहा...!

श्रोता :—

पूज्य गुरुदेवश्री :— यहाँ कहा लेकिन यहाँ व्यवहारसे कहा है, सिर्फ परसे भिन्न करनेके लिये कहा।

श्रोता :—

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह दोनों यथार्थ है। यह माननेका फल क्या? अशुद्ध परिणति अपनेसे होती है, परसे नहीं उसका फल क्या? तात्पर्य क्या? अशुद्ध परिणति तेरेसे होती है ऐसा कथन आया तो वीतरागता तो ऐसा कहती है कि हमारे अनुयोगद्वारका सार तो वीतरागत है। फिर अशुद्ध परिणति तेरेसे हुई इसका क्या तात्पर्य?– कि अशुद्ध परिणतिकी दृष्टि छोड़ दे। आहाहा...! और शुद्ध चैतन्य स्वरूपकी दृष्टि कर। वह अशुद्ध परिणतिका परिणमन तेरेसे है उसका तात्पर्य यह है। समझमें आया? क्यों कि वह तो १७२वीं गाथामें

आ गया कि सर्व शास्त्रका तात्पर्य वीतरागता है। याहे तो करणानुयोग हो, चरणानुयोग हो, कथानुयोग हो या द्रव्यानुयोग हो उसका सार–तात्पर्य–रहस्य वीतरागता है। वह वीतरागता कैसे होवे ? क्या परलक्षसे होती है ? व्यवहार पराश्रितसे राग होता है। आहाहा...! वीतरागता स्वाश्रयसे होती है। फिर भी आश्रय लेती है ऐसा यहाँ नहीं लिना, सिर्फ स्वके उपर लक्ष्य जाता है। समझमें आया ? इस कारणसे उसे आश्रय कहा।

यह प्रश्न बहुत चला था। 'निहालचंदभाई सोगानी' 'द्रव्यदृष्टि प्रकाश' फिर वह प्रश्न बहुत चला था कि पर्यायको द्रव्यका आश्रय लेना यह तो पराधिनता हो गई। समझमें आया ? 'लालचंदभाई' ! मालूम है न ? वह प्रश्न चला था। उन्होंने यह छपवाया हैं न ! 'लालचंदभाई' और 'शशीभाई'ने उसमें यह चर्चा हुई थी। द्रव्यका आश्रय। पर्याय स्वतंत्र है वह आश्रय लेती है ? उसका अर्थ इतना है कि लक्ष पर तरफ है वह अंतरंगमें जाता है। समझमें आया ? पर्यायका लक्ष परके उपर है वह पर्याय तो वहाँ रही, वह पर्याय अंदरमें लक्ष नहीं कर सकेगी। जो पर्याय परलक्षी है वह अशुद्धता है वह वहीं रही। अब उसका तात्पर्य–अशुद्ध परिणमन करनेमें तू स्वतंत्र है–उसका तात्पर्य क्या ? कि बादकी पर्यायमें द्रव्यका आश्रय लेना और वीतरागता उत्पन्न करना यह उसका तात्पर्य है। आहाहा...!

श्रोता :— कल तो आपने समझाया था कि द्रव्य पर्यायको छूता ही नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह तो कहा था, अभी भी कहते हैं न ! कल अव्यक्तके छह बोल चले थे। ४९ गाथा। उसमें पाँचवें बोलमें तो ऐसा कहा कि व्यक्त-अव्यक्त, व्यक्त नाम पर्याय और अव्यक्त नाम द्रव्य, दोनोंका एक समयमें एक साथ मिश्रित ज्ञान होने पर भी व्यक्तको अव्यक्त स्पर्श नहीं करता। समझमें आया ? अब आपका रात्रिका प्रश्न था कि अलिंगग्रहणमेंसे कुछ कहना, तो उसके लिये यह है कि पर्याय द्रव्यको स्पर्श नहीं करती। वहाँ आया कि द्रव्य पर्यायको स्पर्श नहीं करता। छह बोलमेंसे पाँचवां बोल। भगवन् ! सूक्ष्म बात सरल भाषामें आ रही है। भाव भले ही गंभीर हो लेकिन भाषा संस्कृत या ऐसी कोई कठिन नहीं है। आहाहा...!

कहते हैं कि एक समयमें व्यक्त नाम पर्याय और अव्यक्त नाम द्रव्य, दोनों एक समयमें जाननेमें आते होने पर भी व्यक्तको अव्यक्त स्पर्श नहीं करता। द्रव्य पर्यायको स्पर्श नहीं करता। वह आया। वीतरागता स्वतंत्र हुई। अब अलिंगग्रहणका १८वाँ बोल। १८-१९-२०। अलिंगग्रहणके बीस बोलमेंसे १८वें बोलमें ऐसा आया कि गुण विशेषको ग्रहण नहीं करनेवाला अर्थावबोधरूप गुण, अर्थावबोधरूप गुण विशेषका आश्रय नहीं करनेवाला

ऐसा द्रव्य स्वभाव है, ऐसा द्रव्य है। समझमें आया ? क्या कहा ? गुणविशेषको–भेदको स्पर्श नहीं करनेवाला ऐसा द्रव्य है। आहाहा...! कल रातको शेठने पूछा था कि इसमेंसे थोड़ा कहना। समझमें आया ?

अर्थावबोधरूप गुणविशेष। सुनो, अर्थावबोध शब्द पडा है न, अवबोध, अर्थावबोध। अर्थ–पदार्थका, अवबोध–ज्ञान। अवबोध कहा तो वहाँ सिर्फ ज्ञान नहीं लेना, अर्थावबोध गुणविशेष ऐसा लेना, अर्थावबोध गुणविशेष। यहाँ पाठ तो इतना लिया है–अवबोध, लेकिन द्रव्यमें जितने गुण है वह गुणविशेष। अर्थावबोधरूप गुणविशेषको नहीं स्पर्शनेवाला ऐसा द्रव्य है। अरे ! वह द्रव्य ही ऐसा है कि गुणभेदको स्पर्श करता ही नहीं। समझमें आया ? उसे अलिंगग्रहण कहनेमें आता है। बीस बोलमेंसे १८वाँ बोल। आहाहा...! समझमें आया ? धीरे धीरे कहते हैं ताकि उसे विचार करनेका अवसर रहे।

अर्थावबोधरूप गुणविशेष जिसको स्पर्श नहीं करता ऐसा द्रव्य स्वभाव–द्रव्य है उसका अर्थ यह हुआ कि गुणी और गुणका भेद भी नहीं है। आहाहा...! गुणी द्रव्य और गुण शक्ति, ऐसी भेदकी दृष्टि भी नहीं है। आहाहा...! वह गुण गुणीको, गुणी गुणको ग्रहण करता है ऐसा नहीं है। गुणी तो द्रव्य स्वभाव है। भेदको—अर्थावबोधको ग्रहण नहीं करता। आहाहा...! समझमें आया ?

१९वाँ बोल : पर्यायविशेष, अर्थावबोधरूप पर्यायविशेषको नहीं स्पशनेवाला द्रव्य है। क्या कहा ? सूक्ष्म बात है। भाई ! 'प्रवचनसार' भगवानकी दिव्य वाणी। प्र–दिव्य वचन, दिव्यध्वनि। दिव्यध्वनि कहो, प्रवचन कहो। आहाहा...! उसका सार, दिव्यध्वनिका सार, प्रवचनसार, त्रिलोकनाथ परमात्माकी ॐ ध्वनिसार, आहाहा...! और वह ज्ञेय अधिकार है न ! १७२ गाथा ज्ञेय अधिकार है। ३०८ तक ज्ञेय अधिकार है। उस ज्ञेयका ऐसा स्वभाव यहाँ कहा है, वास्तविक आत्मज्ञेयका यह स्वभाव है। ज्ञेय अधिकार समकितका अधिकार है। पहला ज्ञान अधिकार ज्ञानका है, दूसरा ज्ञेय अधिकार समकितका है, तीसरा चरणानुयोग चारित्रकी क्रियाका अधिकार है। ज्ञेय अधिकारमें ज्ञेय ऐसा है। आहाहा...! समझमें आया ?

वह तो पहले ही कहा था कि 'ज्ञेय अधिकार'की १०२वीं गाथामें ऐसा लिया है कि ज्ञेय ऐसा है कि अपनी जन्मक्षण है। जो पर्यायका अपना काल है उस समयको उत्पन्न होती है, ऐसा ज्ञेयका स्वभाव है। क्या कहा ? ज्ञेय जो छह द्रव्य है... ज्ञेय जो छह द्रव्य उस ज्ञेयका ऐसा स्वभाव है कि जिस समय जो पर्याय उत्पन्न होनेवाली है वह उसका

जन्मक्षण है, वह पर्यायका उत्पन्न होनेका काल है। समझमें आया ? एक बात हुई। वह ज्ञेयका स्वरूप है।

दूसरी बात, ९९वीं गाथा। अपने अपने अवसर पर पर्याय है, वह ज्ञेयका अधिकार–ज्ञेयका स्वभाव है। आहाहा...! 'भाई' ! सूक्ष्म बात आई है। कलसेठने प्रश्न किया था। कल अव्यक्तके छह बोल चले थे, आज थोड़ा अलिंगग्रहणका लिया था। आहाहा...! क्या कहा ? कि ज्ञेय छह द्रव्यका स्वभाव, अपनी पर्यायके स्वकालमें ही पर्याय होती है वह ज्ञेयका स्वभाव है।

दूसरा, ज्ञेयका स्वभाव, अपने अपने अवसर पर पर्याय होती है, आगे पीछे नहीं होती वह ज्ञेयका स्वभाव है। तीसरा, ज्ञेयका स्वभाव, उत्पाद उत्पादसे है, व्ययसे नहीं; उत्पाद ध्रुवसे नहीं, ध्रुव उत्पादसे नहीं ऐसा ज्ञेयका स्वभाव है। समझमें आया ? उसको समकित अधिकार कहा है। 'जयसेन आचार्य'ने 'प्रवचनसार'के दूसरे अधिकार–'ज्ञेय अधिकार'को समकितका अधिकार कहा है। पंडितजी ! आहाहा...! उसमें क्रमबद्ध आ गया। अपने अपने अवसर पर होता है, उसकी उत्पत्तिका जन्मक्षण है और उस समयका उत्पाद उत्पादसे है। जैसे त्रिकाली वस्तु त्रिकालरूप है वैसे वर्तमान पर्यायका काल एक समयका जिस समयका काल है उस समय वह उत्पन्न होता है। आहाहा...! सूक्ष्म है लेकिन वस्तु ऐसी ही गम्भीर है। 'अलिंगग्रहण'मेंसे द्रव्य और गुणकी बातकी।

यहाँ समकितके अधिकारमें यह लिया, अपने अपने अवसर पर होता है, जन्मक्षण है, उत्पाद उत्पादसे है, एक बात हुई। 'कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में काललब्धिमें ऐसा लिया है कि छहों द्रव्यकी काललब्धि हैं। अपनी अपनी पर्यायके कालमें वह पर्याय उत्पन्न होती है वह काललब्धि है। आहाहा...! समझमें आया ? यहाँ भी क्रमबद्ध हुआ, लेकिन उसका तात्पर्य क्या ? समझमें आया ? वह अलिंगग्रहणमें कहा कि अर्थावबोधरूप पर्यायविशेषको नहीं ग्रहण करनेवाला ऐसा द्रव्य है। पर्यायको स्पर्श नहीं करता, द्रव्य पर्यायको छूता नहीं। आहाहा...!

अब तीसरा बोल गंभीर है, पर्याय द्रव्यको छूती नहीं। यह बीसवाँ बोल है। समझमें आया ? क्या कहा ? प्रत्यभिज्ञान, प्रत्यभिज्ञानका कारण ऐसा जो ध्रुवद्रव्य उसको पर्याय स्पर्शती नहीं। यह सामान्य जो है वह पर्यायको स्पर्शता नहीं। आहाहा...! और पर्याय द्रव्यको स्पर्शती नहीं। आहाहा...! ऐसा सत् अहेतुक है। तीनों सत् हैं न ! उत्पाद-व्यय-ध्रुव तीनों सत् है और 'ज्ञेय अधिकार'में उन तीनोंको स्वतंत्र सिद्ध किया है, तीनोंको स्वतंत्र सिद्ध किया

है और वह श्रद्धा-समकितका अधिकार है ऐसा कहा है। पंडितजी ! समकितका अधिकार कहा है।

वैसे तो समकितमें तो द्रव्यस्वभावका आश्रय हुआ वह समकित है, लेकिन यहाँ ज्ञान प्रधान अधिकार है न ! सर्वविशुद्धमें... पीछे ऐसा लिया कि ज्ञेय और ज्ञायककी श्रद्धा वह समकित दर्शन है, ऐसा लिया है। अकेले ज्ञायककी श्रद्धा ले वह तो दृष्टिकी अपेक्षासे कहा है, लेकिन जहाँ ज्ञानप्रधान सम्यग्दर्शनकी व्याख्या है (वहाँ ज्ञेय तथा ज्ञायककी श्रद्धा वह सम्यग्दर्शन है ऐसा कहते है)। आहाहा...! वहाँ सर्वविशुद्ध अधिकारमें लिया है। २४२वीं गाथा है, है यहाँ ?

'प्रवचनसार' २४२ गाथा है। ज्ञेयतत्त्व और ज्ञानतत्त्व यथाप्रकारे जैसी है वैसी यथार्थ प्रतीति जिसका लक्षण है वह सम्यग्दर्शन पर्याय है। ११वीं गाथामें ऐसा कहा है कि भूतार्थका आश्रय, सिर्फ स्व द्रव्य-भूतार्थके आश्रयसे सम्यग्दर्शन है यह दृष्टिप्रधान कथन है और ज्ञान प्रधान सम्यग्दर्शनके कथनमें... आहाहा...! ज्ञेय तत्त्व-जितना ज्ञेय है वह ज्ञेयतत्त्व और ज्ञातृतत्त्व अपना आत्मा, दोनोंकी यथाप्रकारे प्रतीति वह सम्यग्दर्शन पर्याय है, ऐसा लिया है। समझमें आया ? आहाहा...! ऐसा मार्ग देखो तो सही ! यह 'प्रवचनसार'में ज्ञान प्रधान कथन है और 'समयसार'में दृष्टिप्रधान कथन है। समझमें आया ? अत: 'समयसार'में ४७ शक्तियाँ लि हैं क्यों कि दृष्टिप्रधान कथनमें शक्ति और शक्तिवान आता है, पर्याय नहीं आती। समझमें आया ? और ज्ञान प्रधान कथनमें ज्ञेय और ज्ञायक दोनोंकी प्रतीति वह सम्यग्दर्शन पर्याय है। समझमें आया ? और तत्त्वार्थ श्रद्धानमें सम्यग्दर्शन कहा वह भी ज्ञानप्रधान सम्यग्दर्शन है, दो आये न ! संवर, निर्जरा सब उसमें आ गया; और यह दर्शनप्रधानमें सिर्फ '**भूदत्थम्**' सिर्फ भूतार्थ भगवान आत्मा त्रिकाल ! आहाहा...! उसका आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा...!

यहाँ कहते हैं कि जो शुद्ध परिणमन हो या अशुद्ध परिणमन हो, यहाँ इतना सिद्ध करना है कि, वह अपना कार्य है, परका कार्य आत्मा कर सकता नहीं। कर्मबंधन होता है, जितने प्रमाणमें अज्ञान और राग-द्वेष करता है उतने प्रमाणमें वहाँ ज्ञानावरणीय, मोहनीय आदि कर्म बंधते हैं; फिर भी उस कर्मकी पर्यायका कर्ता द्रव्यकी पर्याय नहीं है। अशुद्ध परिणमन-द्रव्यकी पर्याय कर्मबंधकी पर्यायका कर्ता नहीं। आहाहा...! और शुद्ध परिणतिका कर्ता आत्मा और वह उसका कर्म इतना सिद्ध करके शुद्ध परिणतिमें कर्मका अभाव होता है उसकी अपेक्षा उसको नहीं ऐसा कहते हैं। समझमें आया ? जैसे विकारका परिणमन

अपने षट्कारकसे स्वतंत्र है ऐसे ही मोक्षमार्गकी पर्यायका भी स्वतंत्र षट्कारकसे परिणमन है। आहाहा...! कर्मने मार्ग दिया, दर्शनमोहका अभाव हुआ तो यहाँ सम्यग्दर्शन होता है ऐसी अपेक्षा वहाँ नहीं।

श्रोता :— 'तत्त्वार्थसूत्र'में है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— 'तत्त्वार्थसूत्र'में कहा कि वह तो ज्ञानप्रधान कथन है, वहाँ ऐसा कहा ही नहीं है। 'तत्त्वार्थसूत्र'में कहा कि चार घातिकर्मके नाशसे केवलज्ञान होता है, ऐसा है।

श्रोता :—

पूज्य गुरुदेवश्री :— उसका जन्म हो गया है, वह किस अपेक्षासे कहा है ? चार कर्म जो कर्मरूप अवस्था है उसका नाश होकरके यह अकर्मरूप अवस्था होती है। उसका नाश होकरके केवलज्ञान उत्पन्न होता है ?

यहाँ तो मिथ्यात्वका नाश होकर सम्यक्त्व उत्पन्न होता है इतनी अपेक्षा लो तो भी अभी तो व्यवहार है। कर्मका नाश होकर समकित हुआ ऐसा नहीं लेकिन मिथ्यात्वका नाश होकर सम्यग्दर्शन हुआ यह भी पर अपेक्षित कथन है। आहाहा...! सम्यग्दर्शनकी पर्याय मिथ्यात्वका नाश हुआ इसलिए हुई ऐसा नहीं है। जिसके व्ययकी उत्पादको अपेक्षा नहीं है। आहाहा...! समझमें आया ? किस नयसे कहाँ कौन सा तत्त्व है ऐसी नय लगानी चाहिये न ! एक ही पकड़ लेना ऐसा नहीं, लेकिन किस नयका कथन है (यह देखना चाहिये)।

यहाँ कहते हैं कि '**जीव द्रव्य अशुद्ध चेतनारूप परिणमन करता है...**' आहाहा...! '**शुद्ध चेतनारूप परिणमन करता है, इसलिए जिस काल जो चेतनारूप परिणमता है उसकाल वही चेतनाके साथ व्याप्य-व्यापकरूप है....**' इतनी भाषा है। शुद्धरूपसे परिणमे तो वह व्याप्य और आत्मा व्यापक है, परसे भिन्न इतना सिद्ध करना है। शुद्ध चैतन्यरूपसे परिणमे-सम्यग्दर्शनरूपसे परिणमे वह पर्याय व्याप्य और आत्मा व्यापक। व्याप्य-व्यापक होकर अशुद्धरूपसे परिणमन हो तो आत्मा व्यापक, आत्मा शब्दसे वहाँ पर्याय लेना, द्रव्य व्यापक होकर अशुद्धरूपसे परिणमता है ऐसा व्यवहारसे कथन है।

श्रोता :— द्रव्य व्यापक बराबर है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— द्रव्य व्यापक नहीं ऐसा कहते हैं, द्रव्य तो शुद्ध है, शक्ति शुद्ध है, वह शक्ति व्यापक होती है ? समझमें आया ? सूक्ष्म बात है, भाई ! मार्ग तो सूक्ष्म

है। आहाहा...! वह शुद्ध परिणमनका कर्ता (पर्याय स्वयं है)। षट्कारक जो है वह कारक पर्यायके हैं, कारक द्रव्यके नहीं; द्रव्यके कारक, गुणके कारक तो ध्रुव हैं। कर्ता, कर्म, करण, संप्रदान, अपादान शक्तियाँ तो द्रव्यकी है वह तो ध्रुव है, उसका परिणमन नहीं और यहाँ तो परिणमनकी बात लेनी है। ध्रुव सदृश है, वह परिणमनमें आता नहीं। आहाहा...! परिणमनमें तो पर्याय परिणमति है तो पर्यायका कर्ता पर्यायके षकारक आदि... विकारका हो या अविकारका परिणमन हो, वह पर्याय अपने षट्कारकसे स्वतंत्र परिणमती है। आहाहा...! भाई ! कभी दरकारकी ही नहीं, ऐसे ही ऐसे चलता रहा। भगवान तो संपत्ति बहुत दे कर गये है। आहाहा...! यह तो मोक्षका मार्ग, वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर (द्वारा निरूपित हुआ है)। आहाहा...!

श्रोता :— हमारा सौभाग्य है कि आप मिले।

पूज्य गुरुदेवश्री :— ऐसी बात कहाँ है, प्रभु ! अरे ! समझमें आया ? अभी तो वीतरागका विरह है लेकिन शास्त्र वीतरागताकी प्राप्तिका निमित्त है।केवलज्ञानको शास्त्रने सिद्ध कर दिया है, जो समझे उसे। आहाहा...!

यहाँ कहते हैं कि '**चेतनाके साथ व्याप्य-व्यापकरूप है...**' इसमें विकारके साथ भी व्याप्य-व्यापक कहा, परसे भिन्न करना है न ! इतनी अपेक्षा है। और 'कर्ता-कर्म अधिकार'की ७५-७६ गाथामें ऐसा कहा है कि विकार व्याप्य है और कर्म व्यापक है क्योंकि वहाँ स्वभावकी सिद्धि करनी है। यहाँ तो उसकी परिणतिकी सिद्धि करनी है और ७५-७६ गाथामें तो ऐसा लिया कि भगवान आत्मा शुद्ध चैतन्य शक्ति और शुद्ध द्रव्यका व्याप्य शुद्ध होता है, व्यापक द्रव्य और शुद्ध पर्याय उसका व्यापक है। विकार है न ! विकार व्याप्य है और कर्म व्यापक है। आहाहा...! कहाँ यह कथन और कहाँ वह ! भाई ! कौनसी नयसे कथन है ? शास्त्रमें पाठ है कि नहीं ?

श्रोता :— खूंटेसे बांध दिया।

पूज्य गुरुदेवश्री :— यह खिलेसे बांधा न ! जिस नयसे जो कथन हो वहाँ वैसा ही समझना वह उसका खूंटा है। कहो भाई !

श्रोता :— हमें उसकी क्या जरूरत है ? हमें तो सम्यग्दर्शनकी बात करो न !

पूज्य गुरुदेवश्री :— यह सम्यग्दर्शनकी ही बात चल रही है न, भगवन् ! आहाहा...! अशुद्ध परिणति भी तेरेसे है ऐसा कहनेमें स्वतंत्र परिणति होती है तो ऐसा

कहनेका तात्पर्य तो वीतरागता प्रगट करना वह है। वह अशुद्ध परिणतिका लक्ष छोड़कर शुद्ध चैतन्य द्रव्यका आश्रय करनेसे वीतरागता उत्पन्न होती है। सर्व शास्त्रका तात्पर्य स्वका आश्रय करना वह है।

श्रोता :— हमें वीतरागता नहीं, सम्यग्दर्शन चाहिये।

पूज्य गुरुदेवश्री :— सम्यग्दर्शन कहो या वीतरागता कहो। सराग वह सम्यग्दर्शन है ही नहीं, यह अभी बड़ी चर्चा चल रही है न ! सराग समकित है वह तो रागके दोषके साथ बताया है, समकित तो वीतराग ही होता है। एक अनंतानुबंधीका अभाव और मिथ्यात्वका अभाव हुआ वह वीतराग पर्याय है। आहाहा...! सम्यग्दर्शन तो वीतरागी ही है। पंचाध्यायीमें बहुत स्पष्टीकरण किया है। शिष्यने प्रश्न किया है कि सराग समकित है न ? नहीं, नहीं, सराग समकित है ही नहीं। 'पंचाध्यायी' 'राजमलजी', बिलकुल नहीं। सम्यग्दर्शन वीतरागी पर्याय है, क्यों ?—कि 'जिन सो ही आत्मा, अन्य सो ही कर्म; यही वचनसे समझ ले जिन प्रवचनका मर्म।' जिन आत्मा जो वीतराग स्वरूप है उसका आश्रय करनेसे वीतरागता उत्पन्न होती है, वीतरागता कहो या सम्यग्दर्शन कहो। समझमें आया ? जघन्य आश्रय है तो दर्शन, ज्ञान आदि उत्पन्न होता है, विशेष आश्रय हो तो चारित्र उत्पन्न होता है, विशेष आश्रय हो तो केवलज्ञान उत्पन्न होता है।

श्रोता :— फिरसे कहो।

पूज्य गुरुदेवश्री :— ऐसा कहा कि भगवान पूर्णानंदका नाथ सच्चिदानंद प्रभु शुद्ध ध्रुव परमात्मस्वरूप जिनस्वरूप है, उसका थोड़ा आश्रय करनेसे–जघन्य आश्रय करनेसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-स्वरूपाचरण आदि होता है, विशेष आश्रय करनेसे चारित्र होता है और उससे भी उग्र आश्रय करनेसे केवलज्ञान होता है। बात तो यह है। समझमें आया ? 'प्रियंकरजी' ! यह प्रिय है और यह प्रिय करना है। भाई है न ! प्रिय नाम भगवान आत्मा शुद्ध चिदानंद, उसका आश्रय करना वह 'प्रियंकर' है। आहाहा ! यह तो रात्रिमें उनको थोड़ी बात कही थी, बादमें विचार आया कि सब सुने, भाई आये है न ! 'भाई' !... प्रवचनके बाद थोड़ा दस मिनिट बोलेंगे। टेप रेकोर्डिंगमें उतार लेना ! वह तो यहाँ दलाल होकर आये हैं न ! आहाहा...!

'जिस काल जो चेतनारूप परिणमता है उस काल वही चेतनाके साथ व्याप्य-व्यापकरूप है...' भाषा देखो ! यहाँ तो विकारी परिणाम, मिथ्यात्वके और राग-द्वेषके परिणाम होते हैं उसे व्याप्य कहा, अवस्था कही और आत्मा व्यापक–अवस्थायी कहा।

इतना यहाँ सिद्ध करना है; लेकिन जहाँ अंतरकी दृष्टि सिद्ध करनी है, स्वभाव (सिद्ध करना है)....। आहाहा...! स्वभावकी कोई शक्ति अनंत शक्तिमेंसे विकार करे ऐसी कोई शक्ति नहीं। दोपहरको यहाँ चलता है। अनंत शक्तिमेंसे ४७ शक्ति ही है। कोई शक्ति ऐसी नहीं कि विकार करे, शक्ति तो शुद्ध चिदानंद आत्मा है। आहाहा...! तो फिर शक्ति अशुद्धता करे ऐसी कोई शक्ति नहीं। लेकिन पर्यायके लक्षसे अशुद्धता उत्पन्न होती है, वह शक्ति और शक्तिवानके आश्रयसे नहीं। समझमें आया ? आहाहा...! 'थोड़ा लिखा बहुत करके समझना' आपके लग्नमें आता है न ! थोड़ा लिखा बहुत करके समझना। ऐसे यहाँ थोड़ा लिखा है बहुत करके समझना। आहाहा...!

यहाँ व्याप्य-व्यापक ऐसे कहा। शुद्ध चेतना भी व्याप्य और अशुद्ध चेतना भी व्याप्य, दोनोंमें व्यापक आत्मा है। दूसरी जगह ७५-७६-७७में ऐसा कहा, अब टीका आयेगी, कलश आयेगा, कि कर्ता कौन है ? आत्मा कर्ता नहीं तो कर्ता कौन है ?–कि वह १३ गुणस्थानका भाव विकार है वह कर्मका कर्ता है, आत्मा नहीं। इसमें जरा सूक्ष्म बात है। क्या कहते हैं ? कि नया कर्मका जो बंध होता है उसको वहाँ व्याप्य कहा और विकारी पर्यायको व्यापक कहा। वह १३ गुणस्थान, गुणस्थान आत्माके नहीं, गुणस्थान आत्मामें नहीं, आत्मा तो गुणस्थानसे रहित है। १३ गुणस्थान है वह नये कर्मके कर्ता है। वास्तवमें तो नये कर्मके परमाणु भिन्न है और यह १३ गुणस्थानकी पर्याय भिन्न है।

नये कर्मके आवरणका निमित्त जो १३ गुणस्थानकी विकारी पर्यायको व्यापक–कर्ता कहकर नये कर्मकी पर्यायको उसका कर्म है ऐसा कहा है। वैसे तो कर्म भिन्न है और यह वस्तु भिन्न है। समझमें आया ? थोड़ा सूक्ष्म है। लो, यह वकील जैसी बुद्धिवाले जीव भी ऐसा कहते हैं। इस तरहका अभ्यास नहीं है न, भगवन् ! परम सत्य तत्त्वज्ञानका अभ्यास होना चाहिये यह तो तत्त्वज्ञानकी बात है। समझमें आया ? यह तो कॉलेज है तो कहींसे थोड़ा भी जाननेमें आया हो तो उसको यह समझमें आये। कॉलेजका प्रोफेसर कोई पहेली कक्षाका थोड़ी ही बोलेगा ? समझमें आया ? यह तो वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर भगवान वह प्रोफेसर है, उनकी वाणी कहनेमें बीचमें आडतीया संत है। समझमें आया ? थोड़ा अभ्यास तो होना चाहिये न ! अरे ! दुनियामें एल.एल.बी. और एम.ए.के लिए....यह वकील एल.एल.बी. पढ़े हैं, उन्होंने दस साल नहीं निकाले होंगे ? अपने तो यह वकील देखो न ! वकीलने एल.एल.बी.के लिए कितने साल निकाले होंगे ? तब जाके वकीलात पास करते हे न ! भाई कहते हैं कि २२ साल तो वकीलात पढ़नेमें जाते हैं और यह समझनेमें एक

साल भी न जाय ! पापकी वकीलात और पापके अभ्यासमें २२ साल !

श्रोता :— न्यायकी कोर्टको मदद करने जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :— ऐसा कहते हैं कि वकील कोर्टमें मदद करने जाते हैं। धूल पैसेके लोभसे जाते है, आहाहा...! वह बड़े वकील थे, 'प्रियंकरजी' ! 'रामजीभाई' तीस साल पहले दो सो रूपये लेते थे, पांच घंटे कोर्टमें जाते थे, एक घंटा सलाह लेने आये तो १०० रूपये लेते थे, एक घंटा सलाह लेने आये तो....तीस सालसे छोड़ दिया है। इसमें क्या है ? हमारे यहाँ वढ़वाणमें एक वकील तो ऐसा कहते थे कि, ओहो ! 'रामजीभाई' ? 'रामजीभाई' तो उनके समयके एक ही वकील थे। ऐसी 'रामजीभाई'की प्रतिष्ठा थी। वकीलका नाम क्या कहा ? 'मंगळभाई'। 'मंगल वकील' प्रवचनमें आते है, वढ़वाण। 'रामजीभाई'का नाम आये वहाँ ऐसा हो जाय कि 'रामजीभाई' तो उनके समयमें वह एक ही वकील थे। आहाहा...!

'तो भी पुद्‌गल पिंडजरूप जो ज्ञानावरणादि कर्म है उसके साथ व्याप्य व्यापकरूप नहीं....' आहाहा...! अपनी शुद्ध या अशुद्ध पर्यायके साथ व्याप्य-व्यापक है। व्याप्य नाम अवस्था और व्यापक नाम द्रव्य, वह व्याप्य-व्यापक है। लेकिन कर्मका पुद्‌गल बंध है या आत्मा कर्म बांधता है ऐसा बिलकुल नहीं। आहाहा...! उस समय कर्मवर्गणाकी पर्याय कर्मरूपसे होनेकी योग्यतासे जन्मक्षण है इसलिए कर्म उत्पन्न होते हैं। उस परमाणुमें भी कर्म उत्पन्न होनेकी जन्मक्षण है। आहाहा...! यहाँ विकार किया तो वहाँ कर्मरूपसे परिणमना पड़ा ऐसा नहीं है। आहाहा...! **'इसलिए उसका कर्ता नहीं'**। **'अञ्जसा' 'समस्त रूपसे ऐसा अर्थ है।'** ऐसा तो कहते हैं, परमार्थसे कहते हैं, यथार्थरूपसे कहते हैं, समस्तरूपसे कहते हैं कि परका तो कर्ता है ही नहीं।

अब यह अपने श्लोक चल रहा है न वह ...यह श्लोक क्लासमें चल रहा है। पहले हमेशा बोलते हैं न !

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम।
परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्॥१७-६२॥

यहाँ परभाव शब्दसे विकार नहीं लेना, यहाँ परभाव शब्दसे परभव लेना। यह अपेक्षा यहाँ लेना है। **'आत्मा ज्ञानं' 'आत्मा अर्थात् चेतनद्रव्य चेतना मात्र परिणाम करता है'**। चेतनामात्र परिणाम, अपना चेतन। कर्मचेतना कहो, ज्ञानचेतना कहो वह सब चेतनके

परिणाम है। कर्मचेतना–रागादि कर्मचेतना और अरागी सम्यग्दर्शन आदि ज्ञानचेनता। वह चेतनामात्र परिणाम करता है, ऐसा लेना। चेतना अर्थात् सिर्फ ज्ञानपरिणाम ऐसा न लेना। चेतना अर्थात् रागके परिणाम और सम्यग्दर्शन-ज्ञानके परिणाम, इन दोनोंको चेतना मात्र परिणाम करते हैं।

'कैसा होनेसे ?' 'स्वयं ज्ञानं' 'क्योंकि आत्मा स्वयं चेतनापरिणाममात्र स्वरूप है'। 'ज्ञानादन्यत्करोति किम' 'चेतना परिणामसे भिन्न जो अचेतन पुद्गल परिणाम कर्म उसको करते हैं क्या ? अर्थात् नहीं करता....' फिर यह आपकी फर्श-आदिका कहाँ गया ? यह हमारे 'भाई' है न ! सत्तर लाखका बड़ा अस्पताल है। अब बेंच दिया। दवाई बनाते थे।

श्रोता :— एक ओर आप ऐसा कहते हो कि कुछ बनाते नहीं और दूसरी ओर ऐसा कहते हो कि दवाई बनाते हैं, हमें क्या समझना ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह मानते थे कि हम बनाते हैं। यहाँ तो कहते है कि कौन बनाये, प्रभु ! आहाहा...! वह दवाई हिलती है वह क्रिया क्या आत्मा कर सकता है ? आहाहा...!

यहाँ कहते हैं कि रोटीके दो टुकडे करते हैं वह क्या आत्मा कर सकता है ? आहाहा...! आत्मा अशुद्धरूपसे परिणमता है लेकिन रोटीके टुकड़े करे ऐसा आत्मामें है ही नहीं। दाल-चावल बनाये ऐसा कर सकता है या नहीं ? किसी स्त्रीके हाथ हलके होते हैं तो बहुत अच्छा बनाती है। पापड और वड़ी औरसेव.... लकड़ीकी पाट होती है न ! उस समय ऐसा लगता है कि हम उस पर बैठे हैं, अभिमानका पार नहीं ! 'भाई' ! खाट होती है न ! ऐसी बड़ी पाट रखते हैं, उस पर गेंहूकीसेव बनाते है। यह हाथकी क्रिया भी आत्मा कर सकता नहीं ऐसा कहते हैं। आहाहा...! अच्छी हुशियार बहिन हो तो पापड और वडी बहुत अच्छी बनाती है ऐसा लोग कहते हैं। पागल है, सुन तो सही ! हुशियार कहाँसे आई ? पूरी दुनिया पागल है ! पागलके गाँव भरे पड़े हैं। आहाहा...!

यहाँ कहते हैं, देखो ! **'चेतन परिणामसे भिन्न जो अचेचन पुद्गल परिणामरूप कर्म उसको करता है क्या ? अर्थात् नहीं करता, सर्वथा नहीं करता।'** देखो, कथंचित् नहीं लेकिन सर्वथा नहीं (ऐसा कहा है)। वीतरागका मार्ग तो कथंचित् है न ? वह तो नित्य-अनित्यमें कथंचित् नित्य और कथंचित् अनित्य है। परके लिए सर्वथा कर्ता नहीं। समझमें आया ?

'आत्मा परभावस्य कर्ता अयं व्यवहारिणां मोहः' 'चेतन द्रव्य ज्ञानावरण आदि कर्मको करता है ऐसा जानपना, ऐसा कहना....' 'व्यवहारिणां मोहः' 'मिथ्यादृष्टि जीवोंका अज्ञान है।'

श्रोता :— व्यवहारीका अर्थ ही मिथ्यादृष्टि किया !

पूज्य गुरुदेवश्री :— मिथ्यादृष्टि किया, व्यवहारीका अर्थ मिथ्यादृष्टि किया। आहाहा...! मिथ्यादृष्टि परद्रव्यका कर्ता होता है। मैं अपने बेटेको शिक्षा दे सकता हूँ, बड़ा कर सकता हूँ। माता-पिता बालकको बड़ा करते हैं न ! कौन करता है ? आहाहा...! सारी भ्रमणा है। आहाहा...! परद्रव्यकी पर्याय पर करे ऐसा तीन कालमें बनता नहीं। आहाहा...!

श्रोता : वह झूठी बातको सत्य मानता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— लोगोंमें यह झूठी बात घुस गई है। झूठा भूत घुस गया है। जहाँ हो वहाँ मैंने किया, मैंने किया, मैंने किया....बीज बराबर बोता है, गरासिया ठीकसे अनाज बोता है न ! ऐसे बाजरा.... क्या कहते हैं ? जुवार, गेहुं और तिल....ओहोहो...! बेटेने पानी ठीकसे डाला था इसलिए ऐसा हुआ, बहुत अच्छा हुआ। बिलकुल ऐसा नहीं, सुन तो सही ! दरबार ! यह तो वस्तु है। आहाहा...!

'मिथ्यादृष्टि जीवोंका अज्ञान है।' आहाहा...! **'भावार्थ यह है कि कहनेमें ऐसा आता है कि ज्ञानावरणादि कर्मका कर्ता जीव है, वह कहना भी झूठ है।'** आहाहा...! आत्माने कर्म बाँधे और आत्माने कर्म भोगे यह कथनमात्र है। वह सब व्यवहार निमित्तमात्र है। पंडितजीने बहुत लिया है कि 'तत्त्वार्थसूत्र'में ऐसा आया है कि चार कर्मका नाश हो तो केवलज्ञान होता है, चार कर्मका नाश हो तो यह पर्याय होती है ? आत्माकी पर्याय हो ? कर्मकी पर्यायका नाश हो तो अकर्मरूप पर्याय होती है न ! कर्मकी पर्यायका नाश हो तो व्यय हो और अकर्मरूपी पर्यायका उत्पाद हो, उससे केवलज्ञान होता है ? आहाहा...! 'फूलचंदजी'ने 'जैनतत्त्व मिमांसा'में लिखा है। 'फूलचंदजी' पंडित बहुत हुशियार थे। अब उनसे भी विशेष यह 'हुकमचंदजी' हुये हैं। कहो, समझमें आया ? आहाहा...! कहनेमें तो आता है कि ज्ञानावरणादि (कर्मका कर्ता जीव है), सब झूठ है। आहाहा...! कर्ता नहीं, कर्ता नहीं ऐसा कहते हो तो कर्मका कर्ता कौन है ? वह विशेष कहेंगे.....

(श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव !)

२८ श्री प्रवचनसार, गाथा—३७, प्रवचन नं. ३५, दि. १०-०१-१९७९

'प्रवचनसार', गाथा-३७। यहाँ १ अंक तक पहले आ गया है। क्या कहा है इसमें ? कि, आत्मा है सो सर्वज्ञस्वरूपी है। प्रत्येक आत्मा...! यानि कि शक्तिसे केवलज्ञानस्वरूपी ही है। उस (शक्ति)की जब प्रगटता–केवलज्ञान होता है; सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रके साधन द्वारा एक समयमें तीनकाल, तीनलोकको जाने वैसा केवलज्ञान होता (है), (तब) यह केवलज्ञान तीनकाल, तीनलोकके द्रव्य, गुण, पर्यायको जानता है। वर्तमान वर्तती पर्यायको तो जानता है परंतु भूतकाल-बीते कालकी जो पर्यायें नष्ट हो गई हैं उन्हें भी वर्तमानवत् जानता है !! आहाहा...! और भविष्यमें (होनेवाली) जो अनंत पर्याय होंगी, अभी तक नहीं हुई, उन्हें भी वर्तमानवत् जानता है !! आहाहा...! ऐसा चैतन्यका चमत्कारिक स्वभाव है !! आहा...!

वैसा केवलज्ञान जगतमें है और तीनकाल, तीनलोककी पर्यायें जानता है। तो उसका अर्थ ऐसा हुआ कि, वीतरागने जिस समयपर जो पर्याय, जिसकी (होनेवाली) देखी है, सो होगी। उसमें वीतराग(को) भी अपनी (जो) पर्याय जिस समय होगी सो होती है, उसे (स्वयं वीतराग) भी बदल सकते नहीं। तो दूसरोंकी पर्याय दूसरा बदल तो सकता नहीं परंतु वह दूसरा भी अपनी पर्यायको आगे-पीछे कर सके (या) फेरफार (कर सके) वैसा होता नहीं। अरे...! ऐसी बात। सूक्ष्म मार्ग है।

भगवानने जो देखा–'जे जे देखी वीतराग ने, ते ते होसी वीरा, अनहोनी कबहु न होसी, काहे होत अधीरा ?' ऐसी जिनकी दृष्टि होती है, उसकी दृष्टिका विषय सर्वज्ञप्रभु है। उस सर्वज्ञको (अर्थात्) अपने स्वभावको वह जानता और मानता है। आहाहा...! और सर्वज्ञरूपी प्रभु यानी कि ज्ञानस्वरूपी-पूर्ण ज्ञानस्वरूप को जो जानते हैं और स्वसन्मुख होकर उसकी प्रतीति करता है और स्वरूपमें रमणता करता है उसे केवलज्ञान होता है, आहाहा...! किसी क्रियाकांडके द्वारा केवलज्ञान होता है वैसा नहीं। क्योंकि उसका जाननेका स्वभाव है कि जिसके द्वारा केवलज्ञान तीनकाल, तीनलोककी पर्यायको जानता है।

वैसे नीचे श्रुतज्ञानी भी परोक्ष रीतिसे तीनकाल, तीनलोकके द्रव्य, गुण, पर्यायको जानते हैं। और जानते हुये उनकी दृष्टि स्वरूप पर होती है। धर्मीकी दृष्टि पर्यायको जानती

है, परंतु दृष्टि उसपर होती नहीं। अरे...! ऐसी बातें हैं। त्रिकाली ज्ञायकस्वरूप है उसपर उसकी दृष्टि होती है इसलिए उसे सम्यग्दर्शनमें श्रद्धा है कि जिस समय जड़की जिस चेतनकी जो पर्याय होती है सो होती है, ऐसी मान्यताके कारण वह परका भी बदलाव कर सकता नहीं; परका तो कर सकते नहीं परंतु अपनी पर्यायमें बदलाव कर सकता नहीं, आहाहा...!

श्रोता :—कर्ममें तो बदलाव होता है कि नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—कर्ममें भी कोई बदलाव (हो सकता नहीं)। क्रमबद्धपर्यायमें जो होनेवाली है सो होती है।

श्रोता :—उदीरणा क्यों कही जाती है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—उदीरणा तो नाममात्र कहलाता है। वैसे उस समयमें उदीरणा होने लायक है (अतः होती है)। ऐसा पाठ शास्त्रमें है। उदीरणा जिसकी होनेलायक है उसकी उदीरणा होती है। ऐसी बात है।

श्रोता :—जल्द उदय आ गया ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—नहीं...नहीं...उदीरणाका वह समय है। उस समय उस कर्मकी उदीरणाकी पर्याय होनेका अपना स्वकाल है। ऐसी बात है। सूक्ष्म बहुत...! समझमें आया ? वह प्रश्न हमारे संप्रदायमें भी बहुत चर्चित हुआ है कि, इस कर्मको तो बदल सके न ? परंतु कर्मके परमाणुमें भी जिस समयमें जो पर्याय कर्मकी होनेवाली है उसी समय होती है और जिस समय जानेवाली है उसी समय जाती है। आत्माने पुरुषार्थ किया इसलिए यह वहाँ जाती है (है, ऐसा नहीं है)। उसके पर्यायमें कर्मरूप नहीं होनेकी पर्यायकी लायकातकी थी इसलिए अकर्मरूप हुई है। कठिन काम बहुत !

जीवमें ही क्रमबद्ध है और जड़में नहीं, ऐसा नहीं है। प्रत्येक परमाणुमें भी जिस समयपर जो पर्यायकी उत्पत्तिका जन्मक्षण है, उसी समय वह पर्याय उत्पन्न होती है। आत्माके कारण नहीं और जिस समय पर पर्यायका व्यय होनेवाला है उसी समय होता है, वह आत्माके कारण नहीं। आहाहा...! वीतरागमार्ग सूक्ष्म बहुत, बापू !

यहाँपर तो यह सिद्ध करना है कि '(**तीनोंकालकी पर्यायोंका वर्तमान पर्यायोंकी भांति**...)' है १ अंकके ऊपर ? '**तीनोंकालके पर्यायोंका**'–पर्याय अर्थात् अवस्था। आहाहा...!

अभी यह बड़ा विवाद (चल) रहा है न ! पर्यायको आगे-पीछे बदल सकते हैं।

उसने पदार्थकी व्यवस्था जानी नहीं (और) केवलज्ञानमें जो जाना सो होता है, उसकी उसे श्रद्धा नहीं। आहाहा...! कठिन बात है।

'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में आता है न, भाई ! **'कालादि लब्धि देखते...'** (अर्थात्) जिस समय वह पर्यायकी काल प्राप्ति है उसी समयपर (वह पर्याय) होगी। जड़ में या चैतन्य में या छः द्रव्योंमें (सबमें यह सिद्धांत लागू होता है)। आहाहा...! कठिन काम, भाई ! अभी तो विपरीतता बहुत हो चुकी है।

उसकी दृष्टि ज्ञायक स्वरूप (ऊपर) है। और भगवान जिस प्रकार जानते हैं वैसे मैं भी एक जाननेवाला हूँ। भले ही अल्पज्ञान में (वैसे जानता है), परंतु जाननेवाला त्रिकाल है न ! उस त्रिकाली जाननेवालेपर जिसकी दृष्टि है, उसे जिस समय जो पर्याय होनेवाली है, उसका वह जाननेवाला रहेगा। आहाहा...! सूक्ष्म बहुत...!

वास्तवमें तो उसमें एक 'भाव' नामक गुण है। उस गुणके द्वारा उस समय पर्याय होती है। होनेवाली है सो (होती) है। अनंतगुण की (पर्याय) होगी। 'भाव' (गुणके) कारण (होगी) किन्तु 'भाव'का रूप सब गुणोंमें है न ! तो ज्ञानमें भी जिस समयकी जो पर्याय होनेवाली है, वैसा ज्ञानगुणमें भावगुणका रूप है। आहाहा...! कठिन काम बहुत, बापू ! वीतरागमार्ग (बहुत सूक्ष्म)। बनियेको फुरसत मिले नहीं और दो घड़ी सुनने जाय और जो कहे, उसमें हाँ (भर दे)....! आहाहा...!

सर्वज्ञ परमेश्वर एक समयमें तीनकालकी पर्यायको जानते हैं। आहाहा...! बीत चुकी है, है और होनेवाली। यह कहा न (यहाँपर) ? **'(तीनों कालकी पर्यायोंका...)'** पर्याय अर्थात् अवस्था। **'(...वर्तमान पर्यायोंकी भांति...)'** आहाहा...! वर्तमान अवस्था वर्त रही है उसकी भांति। तीनोंकालकी पर्याय उसकी (वर्तमान पर्यायकी) भांति **'(...ज्ञानमें ज्ञात होना) अयुक्त नहीं है;...'** आहाहा...!

जिस समयपर जो पर्याय जिसकी जो होनेवाली है सो सो द्रव्यकी होती है। और सो सो भगवानने देखा है, इसलिए ऐसी होगी वैसा भी नहीं। वहाँ होनेका काल है इसलिए वहाँ होती है, आहाहा...!

(यहाँपर) यह कहते हैं, **'(तीनोंकालकी पर्यायोंका वर्तमान पर्यायोंकी भाँति ज्ञानमें ज्ञात होना) अयुक्त नहीं है...'** यहाँ तक आया था। **'क्योंकि'**–अब न्याय देते हैं।

(१) **'उसका दृष्टिके साथ (जगतमें जो दिखाई देता है}अनुभवमें आता है उसके साथ) अविरोध है।'** (अर्थात् उसके साथ) बाधा नहीं आती। क्या ? **'(जगतमें) दिखाई**

देता है कि छद्मस्थ के भी, जैसे वर्तमान वस्तुका चिंतवन करते हुये ज्ञान उसके आकारका अवलंबन करता है उसी प्रकार...' आहाहा...! कल आटेका दृष्टांत दिया था न ?

आटा जो है, उसमेंसे इस तरह कटाई होती है, यह काटनेकी क्रिया तो उस समय होनेवाली थी, अंगुलीके द्वारा हुई नहीं। और उस समय आटेकी रोटी बनेगी, वह इसप्रकार होगी ऐसा ज्ञान तो उसी समय हो जाता है। वर्तमान आटेका लोया...'लोया' कहते हैं न ! क्या कहें उसे ? पिंड...! उसकी पर्यायका ज्ञान, भूत(काल)में गेहूँ स्वरूप थे, आटा हुआ और उस आटेका (पिंड) हुआ है। उस गेहूँके पर्यायका ज्ञान, आटेका ज्ञान और आगे रोटी बनेगी–इसे भी वर्तमानमें जानते है , आहाहा...! ऐसी बात...धर्मके नाम पर... ! बापू ! वीतरागधर्म बहुत सूक्ष्म है। लोगोंनें (जो) जैनधर्म माना है उससे विरुद्ध-न्यारा (है) आहाहा...!

जिस समय जो पर्याय होती है सो वस्तुका स्वभाव है। आगे ९९ (गाथामें) 'हार'का दृष्टांत आयेगा। हार है न हार ? उसमें जिस जगह मोती है उसी जगहमें (वह) है। आगे-पीछे स्थानमें नहीं। वैसे आत्मारूपी हार और परमाणुरूपी हार, उनकी जिस समयपर जो पर्याय होती है, उसी समयपर वह होगी। (हारमें मोतीका) क्षेत्र है (यहाँ पर आत्मा और परमाणुमें) काल (लेना) है। तत्त्वका स्वरूप ही ऐसा है। अब उसके स्वरूपकी जानकारी न हो और उसे धर्म हो जाय...(ऐसा कभी होता नहीं) । सम्यक्ज्ञान भी न हो, सम्यग्दर्शन न हो और उसे चारित्र-सामायिक और पौषध और प्रतिक्रमण और साधुपना हो जाय...!! (वैसा) तीनकालमें होता नहीं। आहाहा...!

(यहाँपर कहते हैं) **'(जगतमें) दिखाई देता है कि छद्मस्थ के भी...'** (अर्थात्) अल्पज्ञानीको भी, **'...जैसे वर्तमान वस्तुका चिंतवन करते हुये...'** आहाहा...! (दृष्टांतमें) यह गेहूँ लीजिये, इसप्रकार गेहूँ (हैं) । गेहूँ कहलाते हैं न ? पहले उसकी पर्याय धूलकी थी, अब गेहूँकी हुई और उन गेहूँका इसप्रकार आटा बनेगा। उसकी पर्याय ख्यालमें (आ जाती है)। (इसप्रकार) गेहूँका ख्याल आते ही भूत-वर्तमान-भविष्यका क्या ख्याल नहीं आता ? समझमें आया ? आहाहा...!

मान लीजिये, यह हाथ है ! उसकी यह वर्तमान पर्याय है। पहली पर्याय ऐसी थी और आगे इसप्रकार हुई तो यह पहली पर्यायका ज्ञान है, वर्तमानका ज्ञान है और आगेकी पर्याय भी इसप्रकार होगी–उसप्रकार होगी उनका भी उसे एक समयमें ज्ञान है। आत्मा करेगा सो होगा, यह प्रश्न नहीं। सूक्ष्म बहुत ऐसा।

वीतराग परमेश्वर केवलज्ञानी परमात्माने जो देखा है, आहाहा...! वह तीनोंकालकी पर्यायें वर्तमानवत् देखी है, (ऐसा) कहते हैं। वर्तमानमें पर्याय अभूतार्थ है तथापि केवलज्ञान तो भूतार्थरूप जानता है। समझमें आया ? ऐसी धर्मकी बातें ! संसारकी पढ़ाईमें एम.ए. जैसे में रुकना (पढ़ना) हो जो पाँच-दस वर्ष निकालते हैं, वीतराग कहते हैं यह तत्त्व क्या है उसे समझनेके लिए समय नहीं !! आहाहा...!

यहाँ पर कहते हैं कि '**(जगतमें) दिखाई देता है कि छद्मस्थके भी, जैसे वर्तमान वस्तुका चिंतवन करते हुये ज्ञान उसके आकारका अवलंबन करता है...**' जैसे एक शरीर है वह जीवरहित मुर्दा हुआ। तो पहले जीव भीतर था तो इसप्रकार हिलती अवस्था थी, अभी (मुर्दारूप) स्थिर अवस्था (है) और अभी इन परमाणुकी पर्याय राख होगी, (वैसा) ख्यालमें आता है कि नहीं ? आहाहा...! जगतके छद्मस्थ मनुष्य भी परपदार्थके चिंतवन करते समय उसके भूत और भविष्य-तीनोंका आकार उनके खयाल(में) आ जाता है। तो सर्वज्ञ परमात्माको तीनकाल, तीनलोकका खयाल आ जाये उसमें विशेषता है ? आहाहा...! कठिन काम है। है (अंदर) ?

'**...छद्मस्थके भी, जैसे वर्तमान वस्तुका चिंतवन करते हुये ज्ञान उसके आकारका अवलंबन करता है...**' अवलंबन (अर्थात्) ज्ञानमें वह निमित्तरूप ज्ञात हो, आहाहा...! '**...उसीप्रकार भूत और भविष्य वस्तुका चिंतवन करते हुये (भी) ज्ञान उसके आकारका अवलम्बन करता है।**' यानी कि उसके ज्ञानमें वह वस्तु ज्ञात होती है। आहाहा...!

दृष्टांत (लेंगे)। एक पेन्सिल है। पेन्सिल कहते हैं न ? अब यह (पेन्सिल) पहले अखंड थी, आगे इसप्रकार छुरी चली इसलिए अवस्था (ऐसी) हुई, अब पहले (जो पर्याय) थी उस पर्यायका भी खयाल है और यह वर्तमान हुई उसका खलाय है और वह टूट जायेगी-खंडित हो जायेगी तब इसप्रकार होगी, उसका भी खयाल है। अथवा (पेन्सिल द्वारा) इसप्रकार लिखाई होगी, उस लिखाईकी पर्यायका खयाल है। करेंगे तो लिखाई होगी ऐसा यहाँ नहीं (कहना)। आहाहा...! ऐसा है।

लौकी...! लौकी...! (होती है न)? लौकी ऐसी है यह खयालमें है। अब उसके टुकड़े होते हैं। होते हैं। होते हैं हाँ....! टुकड़े करता है (वैसा) नहीं। तो अखंड लौकीका खयाल है और टुकड़े हुये उसका खयाल है और यह अब आगे पकेगी तब नर्म हो जायेगी, उसका भी खयाल है। है कि नहीं ? आहाहा...!

छद्मस्थ भी जगतकी चीजका विकार करता होनेसे उनके भूत, वर्तमान और भविष्य

तीनोंकालका उसके ज्ञानमें खयाल आ जाता है। उसके वर्तमान, भूत और भविष्यको जानते हैं, आहाहा...! उसे मैं ऐसा करूँ, कलम इसप्रकार करूँ, पेन्सिल इसप्रकार करूँ–सो प्रश्न नहीं। यह कुछ भी आत्मा कर सकता नहीं, आहाहा...! ऐसा अब (कब समझेगा ?)...! भाई ! धर्म कैसे होता है हमें कहिये न ! परंतु वही यह बात है। तेरा ज्ञानस्वभाव धर्म ऐसा है कि एक समयमें तीनकालको जाने वैसा ताकातवाला तेरा स्वरूप है, आहाहा...! ऐसे सर्वज्ञस्वभावीकी दृष्टि कर और उसमें स्थित हो, उसका नाम धर्म है। ऐसी कठिन बातें।

(संप्रदायमें) तो कहते हैं, 'व्रत करो और उपवास करो और भक्ति करो या पूजा करो और यात्रा करो...। ये तो राग हैं और शरीर चले वह तो जड़की क्रिया है। 'गिरनार या शत्रुंजय'की यात्रामें जड़ शरीर चलता है सो तो जड़की क्रिया है और उस जड़की उस समय वह पर्याय होती है और यह पैर इसप्रकार होते हैं; यह खयालमें है। करता है नहीं (परंतु) खयालमें है। इसप्रकार होते बनते यह पैर ऐसे जायेंगे इसका भी खयाल है। आहाहा...! खयालमें है, हाँ...! आत्मा उसका कर्ता नहीं। यह तो अज्ञानी (ऐसा मानता है) कि, शरीरकी अवस्थाको मैं करता हूँ, पैरको उठाता हूँ और इसप्रकार रखता हूँ–उस परकी क्रियाका कर्ता मिथ्यादृष्टि है। उसे जैनधर्मकी खबर नहीं, आहाहा...! ऐसा काम है। पहला अंक (१) था (सो पूरा हुआ)।

'(२) **और ज्ञान चित्रपटके समान है। जैसे चित्रपटमें अतीत, अनागत और वर्तमान वस्तुओंके आलेख्याकार...**' जैसे पटियामें या स्तंभमें गतकालके तीर्थंकर, वर्तमानके तीर्थंकर और भविष्यके तीर्थंकर इसप्रकार चित्रित करें तो (उसका) एक समयमें खयाल आ जाता है। (श्री जयसेनाचार्यदेवने) 'बाहुबली'का दृष्टांत दिया है। 'बाहुबलीभरतादि...' किन्तु उन बाहुबलीको चित्रित किया हो (या) तीर्थंकरकी स्तंभमें कोरनी की हो, चौबीस तीर्थंकर–भूतकालमें हुये उन्हें वर्तमान और भविष्यकी (कोरनी की हो) तो यहाँ एक समयमें सब तीर्थंकर ज्ञात होते हैं। जाननेमें आते हैं या नहीं ? आहाहा...! भले ही छद्मस्थको थोड़ा क्रम लगे, यह वस्तु अलग है। समझमें आया ? किन्तु उसका स्वभाव तो एक समयमें जाननेका ही है। आहाहा...! किसी परका कुछ कर सकूँ यह वस्तु नहीं है। क्योंकि परवस्तुमें जिस समय जो पर्याय होनेवाली है सो होकर रहेगी, अब उसे दूसरा करे क्या ? आहा...! ऐसा है। सारे जगतसे उलटी बात है। उलटेमें से उलटी (बात) है। जगतकी बातें सभी उलटी और भगवानका मार्ग उससे भी उलटा आहाहा...!

यहाँ पर कहते हैं कि, छद्मस्थ अल्पज्ञानी भी किसी भी चीजको चिंतवन करते हुये

उसकी वर्तमान पर्याय बीत चुकी वह पर्याय और भविष्यकी पर्याय (उनके) खयालमें आ जाती है। आहाहा...!

चनेका आटा है, इसके पहले वह पूरा चना था, उस पर्यायका खयाल आ जाता है। हालमें यह (आटा) है और तुरंत इस समय सेकेंगे (यानी) पकौड़ी बनेगी। मैं सेकूँ और अग्निके द्वारा सेकनेकी क्रिया हो, यह प्रश्न यहाँ अभी नहीं। भजिया कहते हैं क्या कहते हैं (हिन्दीमें) ? 'पकोड़ा...' आहाहा...!

यह एनक है, देखो। पहली अवस्था ऐसी है (अभी) इसप्रकार होती है और आगे भी इसप्रकार उतारेंगे तब वैसा होगा, ऐसा एक समयमें खयाल आता है। उसे कर सकता है या कानपर लगा सकते हैं, यह प्रश्न यहाँपर है नहीं, आहाहा...!

कुरता लो कुरता...! क्या कहते हैं अभी उसको ? कमीज...कमीज...! यह कमीज़ अभी खुला है, (आगे) हाथ डाला, (उस समय) खयाल आयेगा कि इस कमीजकी (बाँह) ऐसी है, वह यहाँ (ऊपर) आ जायगी, होगी। (तो) पहली अवस्था, रहेगी वह अवस्था और आगे वापिस तुरंत अवस्था बदलेगी–ऐसी हो...वैसी हो...उसका भी खयाल है। उसकी अवस्था बदलेगी, हाँ....! आत्मा बदलवायेगा, ऐसा नहीं। आहाहा...!

यह तो तीनकाल, तीनलोकको भगवान जानते हैं, अतः क्रमबद्धपर्याय होती है, ऐसी समकितीको श्रद्धा होती है। आहाहा...! किसी भी समयकी पर्याय कोई बदल सके, दूसरा तो उसे कर नहीं सके परंतु वह स्वयं बदल सके, ऐसा नहीं। आता है न भाई ! 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षामें' ! तीनकाल, तीनलोककी जिस समय जो पर्याय होनेवाली है उन्हें जिनेन्द्र भी बदल सकते नहीं। (मात्र) देखते हैं। आहाहा...! यह बात अंतरसे (स्वीकार होना चाहिये)।

जाननेवाला मैं हूँ यह जाननेवाला जाननेका काम करता है। यहाँ तो परको जानता है इतनी अपेक्षा लेनी है न ! यह पर(पदार्थ) जिस स्थितिमें है और पहली स्थितिमें था और आगेकी स्थितिमें होगा उसे ज्ञान जानता है। परंतु ज्ञान परको बदल डाले या तीनकाल नहीं जाने, ऐसा नहीं। वर्तमान ही जाने और भूत-भविष्यको नहीं जाने, वैसा नहीं। आहाहा...! जब इसप्रकार जिसके ज्ञानमें इस बात (का) निर्णय हो जाय तब उस क्रमबद्धकी पर्यायको जाननेवाला होता है, करनेवाला नहीं, आहाहा...!

वस्तु है–उसका निर्णय जिस ज्ञानमें हुआ वह निर्णय (जो) हुआ, सो भी उसका समय है, आहाहा...! और वह निर्णय भी षट्कारकके परिणमनसे हुआ है। आहाहा...! मात्र

लक्ष है ज्ञायक पर। (भले ही) लक्ष है, लक्ष होने पर भी कर्ता होकर, अपना कर्म, करण और संप्रदान अपनेसे करता है, आहाहा...! समझमें आया ? वीतरागमार्ग बहुत सूक्ष्म, भाई ! यह तो वीतरागताकी कॉलेज है। आहाहा...! जिसे उस ज्ञानका भान नहीं और कर्ता होकर सारा दिन फिरता रहता है, उसका मिथ्यात्वका पोषण करके चार गतिमें भटनेका लक्षण है। ऐसी बात है, भाई ! आहाहा...! है ?

यह (ज्ञान) चित्रपट (समान) है। चित्रपट होता है न ऐसा ? (उसमें) तीनकालके तीर्थंकर चित्रित किये हों (तो) खयालमें आ जाता है या नहीं ? चित्रपटमें सिंह चित्रित किया हो, लो। बाघ चित्रित किया हो–गतकालमें ऐसा था, अभी ऐसा है और भविष्यमें मर गया—ऐसा चित्रित किया हो, (तो) खयालमें आ जाता है या नहीं ? आहाहा...!

जिस प्रकार 'महावीर भगवान'का आत्मा दसवें भवमें सिंह था, सिंह...। 'भगवान महावीर'का आत्मा दसवें भवमें सिंह (था)। (वह) हिरनको मारता था, उसी समय मुनिराज पधारे और मुनिने कहा कि, ''अरे...सिंह ! तू तो दसवें भवमें (होनेवाला) तीर्थंकर 'महावीर'का जीव (है) ! यह क्या करता है ?'' सिंहको भी खयालमें (है) कि, प्रथम अवस्था ऐसी थी, इसप्रकार हो गई और इसप्रकार रहेगी—यह खयालमें है या नहीं ? आहाहा...! परंतु इसमें धर्म क्या आया ? धर्म यह है कि, जिस समय जो पर्याय होती है उसका तू जाननेवाला है। उसे बदलनेवाला कर्ता तू नहीं। ऐसा जो सम्यग्दर्शन(रूपी) धर्म (सो) इसप्रकार होता है। आहाहा...! समझमें आया ?

(इसलिए) '....**ज्ञान चित्रपटके समान है। जैसे चित्रपटमें अतीत**...' अर्थात् बीता काल '...**अनागत**...' (अर्थात्) भविष्य, '...**और वर्तमान वस्तुओंके आलेख्याकार**...' है न ? आहाहा...! (नीचे अर्थ है) आलेख्य=आलेखन योग्य, चित्रित करने योग्य। '....**साक्षात् एक क्षणमें ही भासित होते हैं; उसी प्रकार ज्ञानरूपी भित्तिमें (-ज्ञानभूमिकामें, ज्ञानपटमें) भी अतीत, अनागत और वर्तमान पर्यायोंके ज्ञेयाकार साक्षात् एक क्षणमें ही भासित होते हैं।**' आहाहा...!

भगवान केवलज्ञानके द्वारा आत्माको जानते है, (ऐसा) आया था न ? (३३ गाथामें) आया था न ? आचार्य कहते (हैं) हम भी श्रुतज्ञानके द्वारा आत्मा ज्ञायक त्रिकाल है उसे हम जानते हैं, आहाहा...! हम भी 'श्रुतकेवली' हैं। आहाहा...! केवलज्ञानी परमात्मा केवलज्ञानके द्वारा आत्माको जानते हैं (और) हम श्रुतज्ञानके द्वारा जानते (हैं), भले ही क्रमशः (होती हुई) कुछ पर्याय (के द्वारा जानते हैं) परंतु उन पर्यायके द्वारा भगवान आत्माको ! आहाहा...! तो भूतकालमें हमारी यह अवस्था विपरीत थी उसे भी जाना,

वर्तमानमें सम्यक् हुई उसे भी जाना और आगे उसकी यह पर्याय रहेगी उसे भी जना, आहाहा...! ऐसा है।

जैनदर्शनमें तो आठ-आठ वर्षके बालक सम्यग्दर्शन प्राप्त करते हैं!! आहाहा...! भगवान आत्मा अंदर...आहाहा...! चैतन्यस्वरूप, आनंदस्वरूपको ग्रहणकर जब 'सम्यक्' निर्णय होता है तब उसे तीनकालके, तीनलोकके जो द्रव्य-पर्याय हैं, उनका उसे परोक्ष ज्ञान होता है, आहाहा...! मैं किसीका कर दूँ और मेरे में परके द्वारा कुछ परोक्षज्ञान होता है, आहाहा...! में किसीका कर दूँ और मेरेमें परके द्वारा कुछ हो-ऐसा सम्यग्दृष्टिको रहता नहीं, आहाहा...! इनमें व्रत करना और तप करना, यह कहाँ आया ? परंतु सम्यग्दर्शन रहित व्रत, तप आये कहाँसे तेरे ?

ज्ञानस्वभाव जाननेवाला ही है। रागका भी करनेवाला नहीं, परका भी करनेवाला नहीं। पर (पदार्थ) भी उसकी पर्यायके कारण (परिणमित हो रहे हैं)। राग भी क्रमशः आया हुआ आयेगा और उस समय ज्ञान भी उसे जाननेके क्रममें उसे और स्वको जानेगा। बात समझमें आती है ? आहाहा...!

ज्ञानपर्याय जो (होती) है वह भी क्रमबद्ध ज्ञानकी पर्याय है। और क्रमबद्धमें राग जिसप्रकारका आया वह है इसलिए यहाँ जानते हैं (ऐसा) नहीं। उसके ज्ञानके क्रममें स्वका और परका ज्ञान (करनेवाली) पर्याय (उसके) क्रममें आई इसलिए उसमें ज्ञात हुआ है। बहुत सूक्ष्म बापू ! यह आपके थोथे व्यापारमें कहीं भी हाथ लगनेवाला नहीं।

अरेरे ! उसके भटकनेमें समय निकाला। आहाहा...! परंतु मैं एक जाननेवाला (तत्त्व) हूँ (ऐसा निर्णय किया नहीं)। जैसे भगवान सब तीनकाल, तीनलोकको जानते हैं (परंतु) किसीके वे कर्ता नहीं। वैसे मैं भी एक जाननेवाला हूँ। जगतकी चीजें जिसप्रकार वर्तती है, वर्तेगी (और) वर्त चुकी, उसे मैं जाननेवाला हूँ। उनको मैं बदलनेवाला या बदल डालूँ, वैसा मैं नहीं, आहाहा...!

यह बड़े पथ्थरोंके कारखाने बनाते हैं (तो) कहते हैं कि, यह जगह पहले ऐसी थी ऐसा जाना, आगे वहाँ कारखाना होने जा रहा है, वह इसप्रकार होगा वह भी पहलेसे ही ज्ञात है।

कुम्हारने मिट्टी ली, मिट्टी...! मिट्टीका पिंड है उसका ज्ञान है और पिंड अवस्था पलटकर अभी घड़ा बनेगा। उस पिंडके समय भी घड़ाका ज्ञान, ज्ञानमें ज्ञात है, आहाहा...! समझमें आया ? कुम्हार घड़ा बनाता नहीं है परंतु घड़ेकी अवस्था पहले पिंडकी थी, आगे

घड़ेकी हुई और उसके पहले सामान्य मिट्टीकी थी–उसे जानता है। आत्माका स्वभाव जानता है। किसी चीजको बनाना और बदलना, यह आत्माका स्वभाव नहीं। अरे...! अपनी जो पर्याय होनेवाली है उसे भी बदलनेका सामर्थ्य नहीं। आहाहा...! यह वीतरागता है।

इसमें यह कहा '...**ज्ञानरूपी भित्तिमें (–ज्ञानभूमिकामें, ज्ञानपटमें)**...' तीनकालके चित्रित चित्र, '...**भी अतीत, अनागत और वर्तमान पर्यायोंके ज्ञेयाकार साक्षात् एक क्षण में ही भासित होते है।**' आहाहा...! (यह दूसरा हुआ)।

(३) '**और सर्व ज्ञेयाकारोंकी तात्कालिकता (वर्तमानता, साम्प्रदातिकता) अविरुद्ध है।**' क्या कहते हैं? जगतकी सभी चीजें-ज्ञेय हैं उनके पर्यायोंके आकार, (उनका तात्कालिकता (वर्तमानता, साम्प्रतिकता) अविरुद्ध है। '**जैसे नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंके आलेख्याकार वर्तमान** ही है...' आहाहा...! नीचे अर्थ है न? आलेख्य=(आलेखन योग्य, चित्रित करनेयोग्य)।

किसी भी चीजकी पर्याय बदली और **नष्ट** अनुत्पन्न (अर्थात्) वह वस्तु उत्पन्न हुई नहीं। उन वस्तुओंके आलेख्याकार खयालमें आ जाते हैं, आहा...! '...**वर्तमान** ही हैं,....' आहाहा...!

और कोई ऐसा भी कहता है कि, 'जो पर्याय उत्पन्न हुई नहीं उसे केवली जानते हैं वह तो असत्य हुआ। यह प्रश्न आता है। असत्य नहीं है, प्रभु ! उसे खबर नहीं। हुई है, (होती) है और होगी–वे (पर्याय जो) होगी उसका ज्ञान वर्तमान (जैसा दिखाई देता है) वैसा ही यहाँपर दिखाई देता है, आहाहा...! होगी तब ज्ञात होगी, ऐसा नहीं। (भविष्यमें जो) होगी वह वर्तमानमें ज्ञात होती है, आहाहा...! समझमें आया?

सर्व ज्ञेयाकारोंकी तात्कालिकता (अविरुद्ध है)। '**जैसे नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंके आलेख्याकार वर्तमान** ही हैं, **उसीप्रकार अतीत और अनागत पर्यायोंके ज्ञेयाकार वर्तमान** ही है।' आहाहा...! अनंत आत्मा और अनंत परमाणु जो ज्ञेय (है) और भविष्यमें होनेवाले उनके आकार भी वर्तमानवत् ही ज्ञानमें ज्ञात हैं। यह केवलज्ञान !! और ऐसा केवलज्ञान आत्माका स्वभाव ! यह केवलज्ञान तो एक समयकी पर्याय है परंतु ऐसी अनंत अनंत पर्याय होनेका ज्ञानगुणका स्वभाव (है)। उस ज्ञानगुणका धारण करनेवाला 'मैं (हूँ)' ! ऐसा ज्ञायकका अनुभव होना उसका नाम सम्यग्दर्शन है और यह सम्यग्दर्शन (होनेके) बाद स्वरूपमें स्थित होता है उसका नाम चारित्र है। चारित्र कोई नग्नपना या महाव्रतके परिणाम (का पालन करे) यह कोई चारित्र नहीं आहाहा...! सूक्ष्म बहुत!

क्रमबद्धमें जिस समय जो (पर्याय) होनेवाली है (वह होनेवाली ही है) ऐसा जिसके ज्ञानमें संमत हो, उसका ज्ञान सर्वज्ञस्वभावीके ऊपर ढल जाता है। यह तो कहा था न ! (संवत) ७२की सालमें संप्रदायमें बड़ा प्रश्न उपस्थित हुआ। तिरेसठ साल हुये। 'केवलज्ञानीने देखा होगा ऐसा होगा। होनेवाला होगा सो होगा, उसमें हम क्या कर सकते हैं ?' (इसप्रकार संप्रदायमें कहते थे)। (हमने कहा) 'होनेवाला (होगा) सो होगा, (यह) किसने देखा ? (तो उन्होंने कहा) 'केवलज्ञानीने।' (अतः हमने कहा) 'केवलज्ञानी जगतमें है ऐसा किसने निर्णय किया ?' यह तो ७२की बात है। कितने साल हुये ? तिरेसठ वर्ष पहलेकी बात है।

मनुष्यको ऐसा लगता है कि हम परका कुछ कर सकते (हैं)। परकी दयाका पालन कर सकते हैं, हिंसा कर सकते हैं, पैसोंकी कमाई कर सकते हैं, पैसे खर्च कर सकते हैं। 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में कहा है, भाई ! कि, 'तुझे पैसे मिले है तो दान करना ! उपकार करना ! ऐसा आता है, हाँ ! वाचनमें बात हो गई थी। यह मात्र शुभभाव (की बात है)। (अशुभभावकी) तीव्रता मिटानेकी बात की। समझमें आया ? 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में है। तुझे पूर्वके पुण्यके कारण पैसे मिले हैं, यह कोई तेरे प्रयत्नसे मिले नहीं। उसमें कुछ करना। हिस्सा देना ! दानमें, भक्तिमें, प्रभावनामें....आहाहा...! सुना है ? उसमें कहीं है। शुरूआतमें कहींपे है। कहाँ होगा क्या मालूम ! काललब्धि। (२३२ गाथा है)। 'जीव द्रव्य है वह अपने चेतनस्वरूपमें, अपने ही क्षेत्रमें, अपने ही द्रव्यमें तथा अपने ही परिणमनरूप समयमें रहकर ही अपने पर्यायस्वरूप कार्यको साधता है। आहाहा...! यह स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा ! 'समयसार'से भी (पुराना) ! दानका कहीं (आता) है। यहाँ (२२९ गाथामें) यह (कहते) हैं। तीनोंकालमें एक एक समयमें पूर्व-उत्तर परिणामोंका आश्रय कर जीवादिक वस्तुओंमें नये नये कार्यविशेष होते हैं अर्थात् नई नई पर्यायें उत्पन्न होती है। (अर्थात्) उसके कालमें उसी उसी समयमें पर्याय उत्पन्न होती है। यह 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' समयसारसे पुराना ग्रंथ है। 'श्रीमद्'को मिला तब बहुत प्रसन्न हुये थे) !

उसमें कहीं दानका है सही ! हाथमें आये तब मालूम पड़े न ! उसमें कुछ करना ऐसा (कहा है), उसमें दानकी बात है। हमारे यहाँ उसका वाचन हो गया है। जीवका राग घटानेकी बात की जाय तो उसीकी बात हो। 'पद्मनंदीपंचविंशति'में दान अधिकारमें आता है न ? कि भाई ! तुझे पूर्वके पुण्यसे यह लक्ष्मी प्राप्त हुई है। अब यदि लक्ष्मीमें कुछ हिस्सा रखा (अर्थात्) दानमें, पूजामें, भक्तिमें, प्रभावनामें (खर्च नहीं किया तो) कंजूस हो जायेगा। आहाहा...! ऐसी बात है। 'पद्मनंदीपंचविंशति'में भी है और इसमें ('स्वामी

कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में) भी है, हाँ। यहाँ तो वहाँ तक कहा (है) कि लोभ कम करनेके लिए दान करना। यह तो वास्तवमें तो समयपर होता है। परंतु उसे राग कम करनेको कहा जाय तब तो ऐसे स्थापित करे न ! समझमें आया ? तीव्र लोभ है उसे कुछ कम कर...कम कर। घटाओ ! वरना तीव्र लोभमें तो मनुष्य पापबंधनमें पड़ेगा और पापमें भव खराब करके कहींका कही चला जायेगा। है, उसमें कहीं दानका आता है।

यहाँ पर कहते हैं कि, सर्व ज्ञेयाकार तात्कालिकता से (ज्ञात है)। आहाहा...! यह पैसोंकी पर्याय यहाँ पर पैसोंके रूप आयी यह भी उसका समय था। आगे कहीं और जानेवाली है तब भी उसका वह समय था, आहाहा...! उसने पैसे दिये हैं इसलिए गये हैं (अथवा) अवस्था हुई है, ऐसा नहीं। आहाहा...! यह तो ज्ञानमें जाननेवाला है कि, यह पैसे यहाँपर थे और वहाँ गये। उन (पैसोंके) परमाणु जो है सो वहाँ जानेवाले थे। उसकी पर्याय वहाँ जानेकी थी वह हुई है। आत्मा तो उसका जाननेवाला है। (उसके बजाय) ऐसा माने कि 'मैंने दिया है, वह मेरी चीज थी और मैंने दी है' (तो वह तो) भ्रम है। अज्ञान है। ऐसा है, आहाहा...!

यहाँ पर (कहते हैं) **'जैसे नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंके आलेख्याकार वर्तमान ही है, उसीप्रकार अतीत और अनागत पर्यायोंके ज्ञेयाकार वर्तमान ही है'**। आहाहा...!

भावार्थ :— **'केवलज्ञान समस्त द्रव्योंकी तीनोंकालकी पर्यायोंको युगपद् जानता है।'** अभी (तो अज्ञानीको) केवलज्ञानके निर्णयकी खबर नहीं। (और क्रमबद्धकी बात संमत नहीं होती) क्योंकि (अज्ञानीको) करना...करना...और करनेकी बुद्धि है। दूसरोंका कर दूँ, दूसरोंका इसप्रकार कर दूँ। यहाँ कहते हैं कि, केवलज्ञान समस्त द्रव्योंकी तीनों कालकी पर्यायोंको–अवस्थाओंको एक समयमें जानता है।

'यहाँ यह प्रश्न हो सकता है कि ज्ञान नष्ट और अनुत्पन्न पर्यायोंको वर्तमानकालमें कैसे जान सकता है?' (अर्थात्) जो पर्याय हो गई (वह) अभी है नहीं–**नष्ट** हो गई है। जो होनेवाली है वह अभी हुई नहीं। आहाहा...! है? (ऐसी) ...**नष्ट** और अनुत्पन्न.. भूतकालकी (और) भविष्यकालकी अनुत्पन्न (ऐसी) **'पर्यायोंको ज्ञान वर्तमानकालमें कैसे जान सकता है?'**

'उसका समाधान–जगतमें भी देखा जाता है कि अल्पज्ञ जीवका ज्ञान भी नष्ट और अनुत्पन्न वस्तुओंका चिंतवन कर सकता है...' है न? आहाहा...! (अर्थात्) पहले बाल्यावस्था थी, आगे युवान हुई, आगे वृद्ध होगी–उन सब अवस्थाओंको क्या नहीं जानता ?

आहा...! (उन्हें) वर्तमानमें जानता है या नहीं ? शरीर बालक था, बादमें जवान हुआ, फिर वृद्ध हुआ और वृद्ध होनेके पश्चात् स्मशानकी राख होगा। आहाहा...! मरेगा और जलायेगा। यह प्रश्न यहाँपर है नहीं। यहाँ तो (इतना ही कहना है कि) होगा, हो रहा है और हो चुका उनको जाननेका ज्ञानस्वभाव है, भगवान आत्माका (स्वभाव है), आत्माका, हाँ...! भगवानका तो है और यह आत्माका भी वैसा स्वभाव है। आहाहा...! ऐसा है। '...**अनुमानके द्वारा जान सकता है, तदाकार हो सकता है....**' देखा ! जैसा सामने भूत-भविष्यका स्वरूप है उन आकार भी ख्यालमें आ सकते हैं, आहाहा...! तब फिर पूर्ण ज्ञान **नष्ट** और अनुत्पन्न पर्यायोंका क्यों न जान सकेगा ?

ज्ञानशक्ति ही ऐसी है कि वह चित्रपटकी भाँति...आहाहा...! ज्ञानस्वभाव ही ऐसा है कि, उसे कोई भूत और भविष्यकी बात जाननेमें नहीं आये वैसा(नहीं)। यह तो चैतन्य चमत्कारी वस्तु है। आहाहा...! और वहाँ 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में तो ऐसा भी कहा (है) कि, समय-समय पर जो तीनकालकी पर्याय होनेवाली है, जिनेन्द्र भगवानने देखी है उसीप्रकार माने तो सम्यग्दृष्टि है। उससे विरुद्ध मानकर कि 'मैं कुछ कर दूँ या इसका मैंने किया' (तो) वह मिथ्यादृष्टि है, आहाहा...! जिस समय, जिसप्रकार (पर्याय) होनेवाली है, हुई है और होगी उसे ज्ञान जानता है। परंतु परका कर दूँ, और मैंने कहा इसलिए उसे ऐसा हुआ, मैंने पैसोंके बारमें उपदेश दिया इसलिए उसने दान दिया, प्यासेको पानी पिलाओ, रोगीको दवा दो–यह सब बातें जिस समय होनेवाली है तब होगी। उसे 'मैं दूँ और करूँ', यह बात वस्तुमें नहीं। भगवानका स्वभाव तो जानना है, बस भगवान यानी आत्मा हूँ....! केवलीका जाननेका (स्वभाव है) उसप्रकार भगवान आत्माका जाननेका स्वभाव (है)। हुआ, हो रहा है और होगा, उसे उसी समय वर्तमानवत् जानते हैं। आहाहा...!

और '**ज्ञानशक्ति ही ऐसी है कि वह चित्रपटकी भाँति, अतीत और अनागत पर्यायोंको भी...**' ऐसे। 'भी' क्यों कहा ? (क्योंकि) वर्तमान तो जानते हैं परंतु (अतीत और अनागतको) भी जान सकती है। और आलेख्यत्वशक्तिकी भाँति (अर्थात्) चित्रित किये गये चित्र जिसप्रकार देखनेमें आते हैं यानी यह सब पूर्वभव था, यह वर्तमान है और यह भविष्यका भव है। चित्रको इसप्रकार रखते हैं न ? भगवानका पूर्वभव सिंहका भव था, आगे यह भव था और अब भगवान हैं। इसप्रकार एकसाथ दिखाई देता हैं न ! आहाहा...!

'**और आलेख्यत्वशक्तिकी भाँति, द्रव्योंकी ज्ञेयत्वशक्ति ऐसी है....**' (अर्थात्) वस्तुकी ज्ञातव्यशक्ति ऐसी है '...**कि उनकी अतीत और अनागत पर्यायें भी ज्ञानमें एकरूप होती हैं–ज्ञात होती है।**' जाननेवाला तो जानता है परंतु उस ज्ञेयका ऐसा स्वभाव

है कि भूत-भविष्यका जिस समय जो ज्ञान हुआ वह जाननेमें आता है। यह ज्ञेयका स्वभाव है। आहाहा...! ऐसा है।

'इसप्रकार आत्माकी अद्‌भुत ज्ञानशक्ति...' आहाहा...! जाननेवाला...जाननेवाला ...जाननेवाला ...जानता है....जानता है...जानता है...। गत अवस्था, वर्तमान और भविष्य(को) जाननेवाली ऐसी आत्माकी अद्‌भुत शक्ति **'और द्रव्योंकी अद्‌भुत ज्ञेयत्वशक्ति...'** आहाहा...! उन ज्ञेयोंकी भी जो अवस्था हुई नहीं सो यहाँपर ज्ञात होता है ऐसी ज्ञेयकी शक्ति !! ज्ञानकी तो शक्ति है, परंतु ज्ञेय भी वैसा है। आहाहा...!

इसप्रकार आत्माकी अद्‌भुत ज्ञानशक्ति और द्रव्योंकी अद्‌भुत ज्ञेयत्वशक्तिके कारण केवलज्ञानमें समस्त द्रव्योंकी तीनों कालकी पर्यायोंका एक ही समयमें भासित होना अविरुद्ध है।' एक समयमें (सब) भासित हो। आहाहा...! समझमें कठिन पड़े भाई ! अभिमान है न कि 'उसे मैं कर दूँ !! मेरे कारण यह हुआ। मैंने जगत पर उपकार किया !!' कौन करे ? आहाहा...! उसकी जो पर्याय वहाँ होनेवाली थी वह उसके कारण हुई (है) आहाहा...! मैंने दवाई दी इसलिए उसका रोग अच्छा हो गया। यह भी अभिमान-अज्ञान है। उस समय पर्याय क्रमशः अच्छी होनेकी थी, सो अच्छी हुई (है), दवाईके द्वारा अच्छा हुआ नहीं, आहाहा...!

श्रोता :—उसे (अज्ञानीको) ऐसा लगता है कि उसमें पुरुषार्थका नाश हो जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :—उसमें ही पुरुषार्थ है। 'मैं जाननेवाला हूँ-(ऐसा परिणमन होना)' यह पुरुषार्थ है। 'परका करनेवाला हूँ'-यह बात तीनकालमें नहीं, यह पुरुषार्थ (है) वह तो विपरीत मान्यता है। आहाहा...! (इस तरह) **'...तीनों कालकी पर्यायोंका एक ही समयमें भासित होना अविरुद्ध है।'** यह ३७ (गाथा पूर्ण) हुई।

अब विद्यमान पर्यायोंकी (भी) (-किसी प्रकारसे; किसी अपेक्षासे) विद्यमानता बतलाते हैं :— .... यह बात विशेष कहेंगे।

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

२१ श्री समयसार, गाथा-७५, प्रवचन नं. १६०, दि. ०४-०१-१९७६

'समयसार' ७५ गाथा। यहाँ है। '**पुद्गलद्रव्य स्वतंत्र व्यापक होनेसे**...' है न ? क्या कहते हैं ? कर्म और नोकर्म जो पुद्गल है वह स्वतंत्ररूपसे व्यापक कर्ता होनेसे, स्वतंत्ररूपसे व्यापक अर्थात् कर्ता होनेसे '**पुद्गल परिणामका कर्ता है**...' उन रागादिका कर्ता पुद्गल है। आहाहा...! यहाँ तो यह सिद्ध करना है। वैसे तो रागादि है वह आत्माकी पर्यायमें है, आत्माकी पर्यायके षट्कारकके परिणमनसे होते हैं। वह तो उसकी पर्यायको सिद्ध करना हो तब और उस समय वह होना है ऐसा जब सिद्ध करना हो तब भी वह विकार उस समय आत्माकी पर्यायमें, आत्मामें होता है। इतना सिद्ध करके अब आत्मा ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव है, वह वीतराग स्वरूप है। वह वीतराग स्वरूपका व्यापक होकर व्याप्य है, राग उसका व्याप्य-कार्य नहीं हो सकता। समझमें आया ?

यह एक, दो बात कही उस बातको रखकर (यह) बात कही है। लेकिन यहाँ अब आत्मा वीतराग स्वरूप है, जिनस्वरूप है अर्थात् ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव स्वरूप है उसका व्यापक अर्थात् प्रसरके व्याप्य जो हो, वह विकार नहीं होता। ज्ञातादृष्टा स्वभाव वह कर्ता होकर अथवा व्यापक होकर कार्य हो तो वह जानने-देखनेके और आनंदके परिणामकाकार्य हो। समझमें आया ? आहाहा...! ऐसी बात है।

यहाँ कहते है कि विकार परिणाम जो होता है और जो शरीरकी यह पर्याय होती है वह पुद्गल परिणामको, '**पुद्गल द्रव्य स्वतंत्र व्यापक होनेसे पुद्गल परिणामको करता है**...' कर्ता स्वतंत्ररूपसे करे ऐसा यहाँ कहते है। कर्म स्वयं स्वतंत्र होकर विकारके परिणामका कर्ता होता है। यहाँ आत्माका जो स्वभाव है वह तो जिनस्वरूपी, वीतरागस्वरूपी प्रभु है। वीतराग स्वरूपी प्रभुके परिणाम तो वीतरागी ही होते हैं। आहाहा...! ऐसे स्वभावकी दृष्टि रखके जो स्वभाव वीतरागीरूपसे परिणमे वह स्वभाव रागरूपसे न परिणमे ऐसा सिद्ध करना है। आहाहा...! इसलिए पर्यायदृष्टिमें जो रागादि होते हैं वह स्वतंत्ररूपसे पुद्गलके निमित्तके सम्बन्धसे होते हैं, इसलिए वह पुद्गल कर्म वह कर्ता-व्यापक और विकारी परिणाम उसका कार्य अर्थात् उसका व्याप्य, ऐसा है। कितने प्रकारसे उसमें बात आती है। अपेक्षा न समझे और उपादानकी जहाँ बात हो वहाँ आत्मा अशुद्ध उपादानरूपसे अर्थात्

व्यवहाररूपसे, पर्यायरूपसे, विकाररूपसे परिणमता है वह स्वयं। कर्म तो निमित्तमात्र है, कर्मको तो विकार छूता भी नहीं। वैसे ही कर्मका उदय है वह रागको छूता भी नहीं। आहाहा...! तब वह रागके परिणाम उसकी पर्यायमें स्वतंत्र षट्कारकके परिणमनसे होते हैं ऐसे उसकी पर्याय स्वयंसे है ऐसा सिद्ध करना है। लेकिन यहाँ तो वह उसका स्वभाव नहीं (ऐसा सिद्ध करना है)। आहाहा...!

स्वभाव जो आत्मा है वह तो जिनस्वरूपी, वीतराग स्वरूपी है। आहाहा...! जिनस्वरूप प्रभु उसके परिणाम सम्यग्दर्शनकी भी वीतरागी पर्याय होती है। कोई कहता है कि सम्यग्दर्शन सरागी होता है। वह तो दूसरी अपेक्षा है। वीतराग जिनस्वरूपी प्रभु वीतराग स्वरूपकी पर्याय वीतराग हो तो सम्यग्दर्शन भी वीतरागी पर्याय है और आगे चलकर चारित्र होता है वह भी वीतरागी पर्याय है। आहाहा...! वह वीतराग स्वभावका कार्य, वीतराग स्वभाव व्यापक और अविकारी पर्याय व्याप्य इतना भेद करके कथन करना वह भी उपचारसे है। आहाहा...! वह अविकारी परिणामका कर्ता और कर्म परिणाममें है। आत्मा उसका व्यापक अर्थात् प्रसरके होता है वह भी एक भेदनयका कथन है। विकारी परिणामका कर्ता आत्मा और विकारी परिणाम कार्य वह भी उपचारसे कथन है। आहाहा...!

जैसे द्रव्य कर्म और परका कर्ता तो उपचारसे भी नहीं वैसे कर्म और शरीर या आत्माके विकारी परिणामका कर्ता उपचारसे भी नहीं है। आहाहा...! लेकिन यहाँ स्वभावदृष्टिसे कथन करना है। आहाहा...! भगवान आत्मामें अनंत गुण है, उसमें एक भी गुण ऐसा नहीं कि जो विकाररूपसे परिणमित हो। अतः वह स्वभावी वस्तु स्वभावके परिणाम रूपसे परिणमित हो और उसका वह कार्य व्याप्य है ऐसा कहा जाता है, लेकिन विकारी परिणामका कार्य स्वभाव दृष्टिसे आत्माका है ऐसा नहीं है। आहाहा...! अब इतनी सारी अपेक्षाएँ रखके बात समझनी चाहिये।

यहाँ पुद्गल द्रव्य स्वतंत्ररूपसे व्यापक अर्थात् कर्ता होकर स्वतंत्र कर्ता है। स्वतंत्ररूपसे कर्ता होकर पुद्गल परिणामका अर्थात् राग-द्वेष, पुण्य-पापके भावका कर्ता है, इस दृष्टिसे। समझमें आया ? **'और पुद्गल परिणाम उस व्यापक द्वारा....'** वह राग और द्वेष और पुण्य-पापके भाव वह पुद्गल परिणामको उस व्यापक द्वारा अर्थात् कर्मके व्यापक द्वारा **'स्वयं व्याप्त होनेसे...'** स्वयं होनेसे, स्वयं कार्य होता होनेसे वह पुद्गल परिणाम उस द्रव्यका कार्य है। आहाहा...! ऐसी बात है। किस अपेक्षासे कथन है वह जानकर एक ही पकड़े कि बस....! कर्मसे विकार होता है, कर्मसे विकार होता है। भाई !

परद्रव्यसे हो ऐसा तीन कालमें न हो। पर्याय तो स्वतंत्र उस समयकी स्वयंसे होती है लेकिन वह गुण और स्वभाव नहीं। इसलिए गुण और स्वभावकी जहाँ दृष्टि हुई तब उस विकारके परिणामका कार्य वह स्वभाव नहीं है। तब उसके कार्यका कर्ता कर्म है ऐसा कहकर परसे भिन्न कर दिया है। स्वसे जुदा कर दिया है।

श्रोता :— कर्ता नहीं, ज्ञाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— ज्ञाता है; और परिणामरूपसे भले कर्ता कहो लेकिन कर्तारूपसे करने लायक है ऐसी बुद्धिरूपसे कर्ता नहीं। आहाहा...! कितनी अपेक्षा। ४७ नयमें ऐसा कहा है कि परिणमनकी अपेक्षासे ज्ञानी कर्ता है, उसका अधिष्ठाता है। किस अपेक्षासे ? यह 'प्रवचनसार' नय अधिकार...आहाहा...! वह ज्ञानपरिणमन उसका है इतना बतानेके लिए कर्ता, वह परिणमता है वह कर्ता ऐसा कहा है, लेकिन यहाँ तो स्वभावकी दृष्टिमें उसका स्वभावरूप परिणमन होता है। उसका परिणमन विकृत है वह कर्मका कार्य है ऐसा कहकर स्वभावके परिणमनसे उसे जुदा कर दिया है। इतना सब याद रखना।

यहाँ तो भगवान शुद्ध निश्चय-स्वभावकी दृष्टिसे ऐसा कहते हैं कि जो भगवान आत्मा है उसका स्वभाव तो वीतराग है न ! अकषाय स्वभाव है न ! शुद्ध स्वभाव प्रत्येक गुण शुद्ध है न ! वह शुद्ध व्यापक होकर विकारी पर्याय व्याप्य हो ऐसा नहीं है। इतना सिद्ध करनेके लिए उस विकारी परिणामका व्यापक कर्म है और विकारी परिणाम उसका व्याप्य नाम कार्य है। आहाहा...! ऐसा कहाँ है ? अभी तो आगे पुद्गल कह देंगे, पुद्गल परिणामको पुद्गल कहेंगे। कहा था न ! पुद्गलको और आत्माको ज्ञेय-ज्ञायक... आखिरी शब्द है। वह पुद्गल ही है, जीव द्रव्य नहीं। आहाहा...! भगवानकी भक्ति और स्तुतिका राग है उसका भी कर्ता कर्म है ऐसा यहाँ कहते हैं। आहाहा...!

श्रोता :— कर्ता ज्ञानी कैसे हो सकता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— ज्ञान स्वरूपमें विकारका परिणमन कहाँ है ? उसके अनंत अनंत गुण है, लेकिन कोई भी गुण विकाररूपसे परिणमे ऐसा नहीं। पर्यायमें होता है इसलिए परके लक्ष्यसे हुआ है इसलिए वह व्यापक और वह उसका व्याप्य ऐसा कहा। आहाहा...! भगवान आत्मा निर्मल अनंत गुण व्यापक अर्थात् कर्ता और विकारी पर्याय व्याप्य अर्थात् कार्य ऐसा नहीं, इस बातमें सुमेल नहीं है। आहाहा...! यह सब अपेक्षाएँ और यह सब... आहाहा...!

श्रोता :— गुरुगमसे जाननेमें आता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— गुरुगम चाहिये, बात सही है। आहाहा...!

'स्वयं व्याप्त होनेसे...' अर्थात् स्वयं होता, स्वयं कार्य होता होनेसे... कर्मकी वजहसे वह पुण्य-पापके भाव, भक्ति आदिके भाव... आहाहा...! भगवानकी स्तुति आदिके भाव वह कर्म व्यापक होकर कार्य होता होनेसे वह पुद्गलका कार्य है। आहाहा...! ऐसी गम्भीर वस्तु है, बापू ! आहाहा...!

'इसलिए पुद्गल द्रव्य द्वारा कर्ता होकर' देखा ? पुद्गल कर्म द्वारा कर्ता होकर वह **'कर्मरूपसे करनेमें आता जो समस्त कर्म-नोकर्मरूप पुद्गल परिणाम....'** वह कर्मके परिणाम और नोकर्म शरीर आदिके, भाषा आदिके वह पुद्गल परिणाम, **'उसको जो आत्मा, पुद्गल परिणामको और आत्माको घट और कुम्भारकी तरह....'** आहाहा ! दृष्टांत देखो ! **'पुद्गल परिणाम और आत्माको'** वह रागके, द्वेषके परिणामको और आत्माको **'घट और कुम्हारके जैसे...'** कुम्हार व्यापक और घट उसका व्याप्य ऐसा नहीं है। आहाहा...! यह घड़ा होता है न ! वह कुम्हारसे नहीं होता, मिट्टिसे होता है। बापू ! परद्रव्यके साथ क्या सम्बन्ध है ! परद्रव्य निमित्तमात्र हो लेकिन उससे इसका कार्य वह कैसे करे ? आहाहा...!

'घट और कुम्हारके जैसे' मतलब ? राग-द्वेषके परिणाम और आत्माको **'घट और कुम्हार जैसे व्याप्य-व्यापकभावके अभावके कारण'** आहाहा....! बहुत गंभीर टीका है। ओहो हो....! क्या कहा ? कि दया, दान, व्रत आदिके या भगवानकी स्तुतिके जो परिणाम है वह परिणामको और आत्माको, 'घट और कुम्हारकी तरह' घट व्याप्य और कुम्हार व्यापक ऐसा नहीं है। अतः यह परिणाम व्याप्य और आत्मा व्यापक ऐसा नहीं है। घट-कुम्हारकी तरह 'व्याप्य-व्यापकभावके अभावके कारण' आहाहा....! कुम्हार व्यापक होकरके प्रसरके घटका कार्य करे-ऐसे भावका अभाव है, वैसे आत्मा व्यापक होकरके प्रसरके विकारका परिणाम करे ऐसे भावका अभाव है। आहाहा....!

श्रोता :— ऐसा तो ज्ञानीको है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— यहाँ स्वभावकी बात कही न ! वस्तु स्वभावकी दृष्टि हुई है, स्वभावकी दृष्टि होनेसे स्वभावका जो परिणमन वह विकारी परिणमन नहीं हो सकता-वह बात यहाँ लेनी है। आगे तो कहेंगे कि मिथ्यात्व, अव्रत और प्रमादके परिणाम है वह जीवके भी है और जड़के भी है, दोनों अलग है। आगे लेंगे....आहाहा....!

यहाँ तो यह कहा है कि वस्तुका स्वभाव चैतन्यमूर्ति भगवानका रागके परिणामसे भिन्न प्रभुका स्वभाव है ऐसा जहाँ अंतरमें भान हुआ उस ज्ञानीके राग उनका व्याप्य और आत्मा व्यापक ऐसा नहीं है। किसके जैसा ? घट और कुम्हारके जैसे। कुम्हार व्यापक और घट उसका व्याप्य–कार्य नहीं है, वैसे ही आत्मा व्यापक और विकारी परिणाम व्याप्य, ऐसा नहीं है। आहाहा....! कितना याद रखें ? आहाहा....!

चैतन्य स्वभाव जिसका है वह महाप्रभु है। आहाहा....! पर्यायका अंश विकृत है वह वस्तु भिन्न कर दी है। भगवान आत्मा.....आहाहा....! घट और कुम्हारकी तरह अर्थात् कुम्हार कर्ता और घट कर्म—कुम्हार व्यापक और घट व्याप्य ऐसा नहीं है, वैसे ही आत्मा व्यापक और विकारी परिणाम व्याप्य ऐसा नहीं है। आहाहा....! ऐसा मार्ग है। वस्तुका स्वरूप ऐसा है।

'घट और कुम्हारकी तरह व्याप्य-व्यापकभावका अभाव होनेसे कर्ता-कर्मपनेकी असिद्धि होनेसे...' घटका कर्ता कुम्हारकी असिद्धि होनेसे....वैसे विकारी परिणामका कर्ता आत्मा–इसकी असिद्धि है। आहाहा....! **'परमार्थसे करता नहीं'** जैसे कुम्हार घटको परमार्थसे करता नहीं, वैसे ही विकारी परिणामको आत्मा स्वभावसे–परमार्थसे करता नहीं। आहाहा....! भाषा तो सरल लेकिन भाव तो जो है सो है, बापू ! आहाहा....!

'परंतु सिर्फ पुद्‌गल परिणामके ज्ञानको....' आहाहा....! रागादि, भक्ति आदि, स्तुति आदिका विकल्प होता है लेकिन उसके ज्ञानको–पुद्‌गल परिणामके ज्ञानको....यह भी निमित्तका कथन है। जो परिणाम हुये उसके ज्ञानको....उसको जाननेवाली ज्ञानकी पर्याय, उस समयकी ज्ञानकी पर्यायके षट्कारकसे परिणमती हुई प्रगट होती है। आहाहा....! उस **'परिणामके ज्ञानको'** ऐसी भाषा है। लेकिन वास्तवमें तो वह ज्ञानकी पर्याय स्वयंसे षट्कारकसे परिणमन करती है, जिसको **'रागके परिणामका ज्ञान'** ऐसी अपेक्षा भी नहीं है। भाई ! आहाहा....! लेकिन यहाँ थोड़ा उसको समझाना है। पुद्‌गल परिणामके ज्ञानको अर्थात् जो कोई दया, दान, भक्ति, स्तुति आदिका विकल्प हुआ उस समय यहाँ ज्ञान स्व-परप्रकाशकसे अपनेरूपसे अपनेसे परिणमित होता है उसको यहाँ रागके परिणामको ज्ञानको–रागके भावके ज्ञानको–वह ज्ञानके परिणामको आत्मा....आहाहा....! रागके परिणामके ज्ञानको कर्मरूपसे करता....आहाहा....! यह भी उपचारसे है, भाई ! 'कलशटीका' कलश ४९में है।

ज्ञानकी पर्यायका कर्ता और आत्मा कर्म यह भी उपचारसे है, भेद है न !

आहाहा....! 'कलशटीका'में है, भाई ! परका उपचारसे भी कर्ता नहीं है, रागका उपचारसे भी स्वभावदृष्टिसे आत्मा कर्ता नहीं है, लेकिन रागका जो ज्ञान कहनेमें आता है वह भी अपेक्षित समझानेके लिये (कहनेमें) आता है। उस समयमें ज्ञानकी पर्यायका स्व-परप्रकाशकरूपसे स्वतः परिणमनेका स्वभाव है, अतः षट्कारकरूपसे वह ज्ञानपरिणाम परिणमित होता है। वह ज्ञानपरिणामको पुद्गल-परिणामके ज्ञानको ऐसा कहा है। समझमें आया ? बहुत गंभीर वस्तु है, बापू ! आहाहा....!

उस '**पुद्गल परिणामके ज्ञानको (आत्माके) कर्मरूपसे...**' आत्मा ज्ञानके कार्यरूपसे परिणमता है। ज्ञानका कार्य उसरूपसे परिणमता है, रागका कार्य उसरूपसे परिणमता नहीं। आहाहा....! समझमें आया ? भाषा तो बहुत सरल लेकिन भाव तो जो है सो है न, भाई ! आहाहा....! यहाँ तो प्रभुकी प्रभुताका वर्णन है। पामरता जो होती है वह प्रभुताका कार्य नहीं ऐसा बताना है। आहाहा....! आहाहा....!

प्रभु ! प्रभुत्वगुणसे भरा भगवान–अनंत गुणके प्रभुत्वसे भरा प्रभु स्वयं रागके परिणामको कर्ता होकर करे ऐसा कैसे हो सकता है ? आहाहा....! क्योंकि उसके द्रव्यमें नहीं, उसके गुणमें नहीं। आहाहा....! समझमें आया ? आहाहा....!

वह '**पुद्गल परिणामके ज्ञानको...**' आहाहा....! ऐसी भाषा ! वास्तवमें तो वह ज्ञान जो है वह पुद्गल परिणामका ज्ञान है ऐसा कहना व्यवहार है। वह ज्ञानकी पर्याय उस समय षट्कारकसे स्वतंत्र परिणमता है जिसको परकी तो अपेक्षा नहीं लेकिन (स्व) द्रव्य-गुणकी भी अपेक्षा नहीं है। आहाहा....! आरेरे....! ऐसे तत्त्वको लोग अलग अलग दृष्टिसे बिखेर देते हैं। अपनी दृष्टिसे बिखेर देते है। आहाहा....!

कलशमें लिया है। इसमें ४९वें कलशमें आयेगा कि अपने ज्ञानके परिणामको करे वह भी उपचार है। भेद हुआना, इतना ! परिणाम परिणामको करे वह यथार्थ है। आहाहा....! वह क्या कहा ? रागका ज्ञान वह तो निमित्तका कथन हुआ, ज्ञानके परिणामको आत्मा करे वह भी भेदसे-उपचारसे कहा है। वास्तवमें ज्ञानके परिणामको परिणाम षट्कारकरूपसे स्वयं पर्याय करती है–यह निश्चय है। आहाहा....! कहो, पंडितजी ! समझमें आया ? बात समझमें आये ऐसी सरल भाषा है। भगवन् ! तेरे माहात्म्यकी क्या बात करनी ! आहाहा....! प्रभुत्व गुणसे भरा भगवान वह पामर रागके परिणाममें कैसे व्याप्त होवे ? आहाहा....! ऐसा कहते हैं। रागके परिणामका ज्ञान वह आत्माका कार्य–वह भी भेदसे कथन है। परिणाम परिणामका कर्ता, परिणाम कारण और परिणाम कार्य–वहके वह

परिणाम ! कर्ता कहो या कारण कहो या कर्म कहो ! आहाहा....!

श्रोता :— तब ही तो स्वतंत्रता रहेगी न !

पूज्य गुरुदेवश्री :— स्वतंत्र ही है। प्रत्येक समयकी पर्याय सत् है जिसका कोई हेतु नहीं होता। आहाहा....! 'है' उसका हेतु क्या ? 'है' वह स्वयंसे है, उसे परसे कैसे कहना ? आहाहा....! रागका ज्ञान हुआ ऐसा कहना व्यवहार है और उस ज्ञानके परिणामको आत्मा करता है ऐसा कहना वह भी व्यवहार है। आहाहा....! और ज्ञानके परिणामको आत्मा करता है–यह व्यवहार है। परिणाम परिणामको करता है। रागकी और द्रव्य-गुणकी अपेक्षा बिना ! आहाहा....!

अत: उसमें कलशकारने ४९वें कलशमें लिया है कि द्रव्य परिणामी अपने परिणामका कर्ता–व्याप्य (और) परिणाम कार्य ! ऐसा भेद करो तो होवे और न करो तो न होवे। आहाहा....! जीव तत्त्वसे पुद्‌गल द्रव्यका तत्त्व भिन्न है।....व्यापक, व्यापकका नहीं। भावार्थ ऐसा है कि उपचारमात्रसे जीव अपने परिणामोंका कर्ता है। आहाहा....! समझमें आता है ? सूक्ष्म है बहुत !

श्रोता :— द्रव्य-गुण दोनों हेतु नहीं है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— नहीं, कहा न ! उपचार मात्रसे द्रव्य अपने परिणामका–ज्ञानके परिणामका कर्ता है। द्रव्यसे हुआ परिणाम परद्रव्यका कर्ता तो उपचारसे भी नहीं है। रागके परिणामका यहाँ ज्ञान हुआ, वह तो ज्ञानका ज्ञान हुआ है। रागके परिणामका (ज्ञान) नहीं है। फिर भी उसे समझना है इसलिए यह भगवानकी स्तुति आदिका राग हुआ उस रागका यहाँ ज्ञान हुआ ऐसे निमित्तका कथन है। वास्तवमें ज्ञान ज्ञानसे हुआ है, रागसे नहीं और द्रव्य-गुणसे भी नहीं। आहाहा....! ऐसे ज्ञानपरिणामका स्वतंत्ररूपसे षट्‌कारकसे पर्याय परिणमित होता है। द्रव्यको उसका कर्ता कहना–द्रव्य स्वभावको कर्ता कहना वह भी उपचार और व्यवहार है। आहाहा....! उसकी दृष्टिसे मिलान नहीं होता था। फिर क्या बदले ? तू स्वयं ही बदल जा न अब ! आहाहा....! समझमें आए ऐसा है। सूक्ष्म है इसलिए समझमें न आये ऐसा नहीं है। हमारा 'जीतु' (आत्मधर्ममें) अंदर लिख रहा है न ! आहाहा....!

'लेकिन पुद्‌गल परिणामके ज्ञानको...' वास्तवमें तो वह ज्ञानपरिणाम आत्माके भी नहीं है, परिणाम परिणामके है। आहाहा....! लेकिन यहाँ समझाना है तो कैसे समझाये

उसे ? रागका कर्ता नहीं ऐसा समझाना है। कौन किसका कर्ता है ?–कि राग संबंधीका जो ज्ञान अपनेसे अपनेमें हुआ उसका वह कर्ता कहा जाता है, वह भी भेदसे ! आहाहा....! गजब बात है ! ऐसी बात सर्वज्ञके सिवा, वीतरागी संतोंके अलावा और कहीं हो सकती नहीं। आहाहा....!

'पुद्गल परिणामके ज्ञानको (आत्माके) कर्मरूपसे करता ऐसे अपने आत्माको जानते हैं...' देखा ! पहले रागको जानता है ऐसा नहीं कहा। रागके (-ज्ञानको) परिणामको करता आत्मा परिणामको (आत्माको) जानता है, रागको जानता है ऐसा नहीं। आहाहा...! व्यवहार जाना हुआ प्रयोजनवान आता है न ! उसको यहाँ उड़ा दिया है। आहाहा...! बापू ! यह तो एक एक अक्षर सर्वज्ञकी बात है। आहा...! सर्वज्ञके मार्ग पर चलनेवाले संतों की बातें है, बापू ! यह कोई कथा-वार्ता नहीं है। आहाहा...!

'ऐसे अपने आत्माको जानता है...' देखा ! प्रथम परिणामको जानता है ऐसा कहा, रागको जानता है ऐसा नहीं कहा। व्यवहार रत्नत्रयका विकल्प आया....आहाहा....! उसका यहाँ ज्ञातारूपसे पर्यायमें ज्ञान करता है वह भी व्यवहार कहा और वह परिणाम अपने आत्माको जानता है वह परिणाम अपना है, रागका नहीं, रागसे हुआ नहीं। वह रागको जानता नहीं, वह परिणामको जानता है। आहाहा....! समझमें आया ? **'ऐसे अपने आत्माको जानता है'** वह पर्यायको जानता है, आत्माको जानता है, न कि रागको जानता है।

'वह आत्मा (कर्म-नोकर्मसे) अत्यंत भिन्न'–राग और शरीरके परिणामसे अत्यंत भिन्न है। **'ज्ञानस्वरूप होता हुआ'** ज्ञान-स्वरूप होता हुआ–जाननेके स्वभावरूपसे होता हुआ **'ज्ञानी'** है' आहाहा....! यह अपने आप पढ़े तो कुछ समझमें न आवे ऐसा है, कुछका कुछ समझ लेना। आहाहा....! ऐसी बात है।

श्रोता :— ज्ञानी ज्ञानपरिणामको जानता है कि आत्माको जानता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह ज्ञान-परिणामको जानता है, आत्माको जानता है; वह आत्माके परिणाम है इसलिए आत्माको जानता है ऐसा यहाँ कहते हैं। यहाँ तो रागको जानता नहीं ऐसा बतानेके लिए आत्मा अपने परिणामको जानता है, आत्मा आत्माको जानता है ऐसा कहा है। वह उसके परिणाम हुये न ! **'अपने आत्माको जानता है'** आहाहा....! क्यों कि वह ज्ञानके परिणाम स्वज्ञेयको जानता है और परज्ञेयको जानता है ऐसा न कहकरके वह परिणाम स्वज्ञेयको जानता है और परिणाम परिणामको जानता है, इसलिए आत्मा जानता

है ऐसा कहा है। क्या कहा ? वह परिणाम स्वज्ञेयको जानता है और वह परिणाम परिणाम को जानता है इसलिए आत्मा को जानता है ऐसा कहनेमें आता है। आहाहा....! गंभीर बात है ! गाथा ही अलौकिक है। हिन्दीमें समझमें आता है या नहीं ? आहाहा....!

'**अत्यंत भिन्न ज्ञानस्वरूप होता हुआ ज्ञान है...**' आहाहा....! रागसे भिन्न लेकिन रागका जो ज्ञानपरिणाम हुआ वह स्वयंसे हुआ है। आहाहा....! ऐसा ज्ञानी होता हुआ आत्मा, वह ज्ञानी है। आहाहा....! समझमें आया ? टीका बहुत गंभीर है, बहुत गंभीर है, बहुत गंभीर ! ओहो...हो...!

'**पुद्गलपरिणामका ज्ञान आत्माका कर्म कैसे है....**' रागका ज्ञान हुआ वह है तो ज्ञानका ज्ञान, लेकिन यहाँ समझाना है न ! आहाहा....! पुद्गलपरिणामका ज्ञान अर्थात् दया, दान, व्रत, भक्ति, स्तुतिका जो विकल्प उत्पन्न हुआ उसका ज्ञान। यह निमित्तका ज्ञान उसे यहाँ होता है न ! इसलिए है तो स्वयंसे स्व-परप्रकाशक लेकिन यह (पुद्गलपरिणाम) है ऐसा कहा। '**लोकालोकका ज्ञान**' ऐसा कहा न ! वह लोकालोकका ज्ञान नहीं, वास्तवमें तो वह ज्ञानका ज्ञान है। समझमें आया ?

श्रोता :— परप्रकाशमें तो ऐसे....

पूज्य गुरुदेवश्री :— परप्रकाशक भी अपना स्वभाव है, परकी वजहसे प्रकाशक है ऐसा नहीं है।

श्रोता :— पर संबंधीका ज्ञान.....

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह परसंबंधीका भी अपना ही परसंबंधीका ज्ञान है। सर्वज्ञ शक्तिमें वहाँ 'आत्मज्ञ' कहा है। शक्तिमें लिया है, भाई ! सर्वज्ञ वह आत्मज्ञ है, पर ही नहीं है। आहाहा....! वह सर्वज्ञ स्वभाव ही स्वका स्वतः है। उस पर्यायमें सर्वज्ञपना आया वह सर्व अर्थात् पर है ऐसा नहीं, वह आत्मज्ञ है। सर्वज्ञको आत्मज्ञ कहनेमें आता है। आहाहा....! अब ऐसी बात कहाँ (सुनने मिले) ?

'**पुद्गलपरिणामका ज्ञान**' अर्थात् दया, दान, व्रत, भक्ति आदिके परिणामका ज्ञान। क्योंकि ज्ञान ज्ञानका है न ! ज्ञान रागका-परका नहीं है, फिर भी परका ज्ञान कहा वह उसको समझाते हुये कहा कि उस परिणामका ज्ञान। ज्ञानपरिणामका नहीं है, ज्ञान तो ज्ञानका है, लेकिन उस संबंधी लोकालोक जाननेमें आया, इसलिए लोकालोकका ज्ञान कहा, लेकिन (ज्ञान) लोकालोकका नहीं है, ज्ञान ज्ञानका ही है। आहाहा....!

'पुद्‌गलपरिणामका ज्ञान आत्माका किस प्रकार है वह समझाते हैं...' आहाहा....! **'परमार्थसे पुद्‌गलपरिणामके ज्ञानको और पुद्‌गलको घट और कुंभारके जैसे व्याप्य-व्यापकभावका अभाव होनेसे...'** आहाहा....! **'पुद्‌गलपरिणामके ज्ञानको'** अर्थात् रागका यहाँ जो ज्ञान हुआ उसे **'और पुद्‌गलको' 'घट और कुम्हारकी तरह व्याप्य-व्यापकभावका अभाव'** है। आहाहा....! कुम्हार व्यापक और घट व्याप्य नहीं है वैसे ही रागका ज्ञान वह आत्माका व्यापक है, लेकिन वह पुद्‌गल और रागका ज्ञान है इसलिए राग व्यापक है और ज्ञान -परिणाम व्याप्य हुआ ऐसा नहीं है। राग कहो या कर्म कहो, वह कर्म व्यापक हुआ इसलिए यहाँ ज्ञान व्याप्य हुआ ऐसा नहीं है। आहाहा....!

'परमार्थसे पुद्‌गल परिणामके ज्ञानको और पुद्‌गलको...' आहाहा....! **'घट और कुम्हारकी तरह व्याप्य-व्यापकभावका अभाव होनेसे कर्ता-कर्मपनेकी असिद्धि है।'** आहाहा....! जैसे कुम्हार घटका कर्ता नहीं, वैसे ही आत्मा रागके परिणामका कर्ता नहीं है। आहाहा....! व्यवहार रत्नत्रयके रागका कर्ता आत्मा नहीं है। आहाहा....! कथनमें व्यवहारसे कहा।

'नियमसार'में कहा है कि आत्मा स्वको जानता है और लोकालोकको जानता नहीं– ऐसा कहे तो क्या आपत्ति ? ऐसा आता है न ! व्यवहारसे ऐसा कहा कि व्यवहारसे परको जाने और व्यवहारसे स्वको न जाने, लेकिन व्यवहारसे तन्मय होकर स्वको भी न जाने ! आहाहा....! ऐसी बात है, बापू ! 'समयसार' तो 'समयसार' है ! ऐसी बात और कहीं है नहीं। आहाहा....!

'परमार्थसे पुद्‌गलपरिणामके ज्ञानको और पुद्‌गलको...' आहाहा....! यह रागको और ज्ञानको **'घट और कुम्हारकी तरह व्याप्य-व्यापकभावका अभाव होनेसे....'** आहाहा....! **'कर्ताकर्मपनेकी असिद्धि है...'** कर्म कर्ता और ज्ञानके परिणाम उसका कार्य– उसका अभाव है। पुद्‌गल कर्म कर्ता, राग कर्ता और रागका (ज्ञान) परिणाम उसका कार्य– उसका अभाव है। आहाहा....! आज बहुत ज्यादा सूक्ष्म विषय है। आहाहा....! ऐसा है। शांतिसे पकड़में आये ऐसी यह बात है।

'आत्मपरिणामको और आत्माको व्याप्य-व्यापकभावका सद्‌भाव होनेसे...' देखा ! आत्माके परिणामको अर्थात् जो ज्ञानके परिणाम हुये उसे और आत्माके **'व्याप्य-व्यापकभावका सद्‌भाव होनेसे'** आत्मा व्यापक है और ज्ञानके, आनंदके, दर्शनके परिणाम है वह उसका व्याप्य है—इसका सद्‌भाव है। आहाहा....! **'कर्ताकर्मपना है...'** इसलिए

सिद्ध किया। आत्मा कर्ता और ज्ञानके परिणामका कार्य उसका व्यापक है, भेदसे। आहाहा....!

'आत्मद्रव्य स्वतंत्र व्यापक होनेसे...' भगवान आत्मा कर्ता अर्थात् स्वतंत्ररूपसे व्यापक अर्थात् प्रसरता होनेसे....व्यापक अर्थात् कर्ता होनेसे....**'आत्म परिणामका अर्थात्....'** आत्मपरिणामका अर्थात् **'पुद्गलपरिणामके ज्ञानका कर्ता है...'** आहाहा....! समझानेमें क्या शैली आयी है। आहाहा....! **'आत्मद्रव्य स्वतंत्र व्यापक होनेसे आत्मपरिणाम...'** अर्थात् वीतरागी परिणाम ज्ञानके परिणाम, श्रद्धाके परिणाम, शांतिके परिणाम, आनंदके परिणाम–ज्ञानके परिणाम अर्थात् यह सब परिणाम।

'अर्थात् पुद्गलपरिणामके ज्ञानका कर्ता है...' आहाहा....! वह रागके ज्ञानका आत्मा कर्ता है, रागके ज्ञानका आत्मा कर्ता है। आहाहा....! रागका (कर्ता) नहीं। **'और पुद्गलपरिणामका ज्ञान...'** अर्थात् रागका ज्ञान समझाना है न ! **'वह व्यापक द्वारा स्वयं व्याप्त होता होनेसे...'** आहाहा....! **'कर्म है....!'** वह आत्माका कार्य है। पुद्गलपरिणामका ज्ञान अर्थात् भगवानकी स्तुति आदिके रागका ज्ञान **'वह व्यापक द्वारा स्वयं व्याप्त होता होनेसे...'** वह आत्मा द्वारा स्वयं कर्ता होनेसे **'व्याप्तरूप होता होनेसे'** अर्थात् कार्यरूप होता होनेसे कार्य है। कार्यरूप होनेसे कार्य है। **'कर्म है'** ऐसा है। आज तो बहुत ही सूक्ष्म आया, भाई !

श्रोता :— दुबारा लिजीये।

पूज्य गुरुदेवश्री :— यह आता है वह शब्द-शब्दका भाव आता है। आहाहा....! ऐसा है। **'इसप्रकार (ज्ञाता पुद्गलपरिणामका ज्ञान करता है...)'** आहाहा....! भगवान आत्मा रागका ज्ञान करता है इसलिए **'ऐसा भी नहीं है कि पुद्गलपरिणाम ज्ञाताका व्याप्य है...'** वह रागका ज्ञान करता है इसलिए राग-पुद्गलपरिणाम जो राग वह ज्ञाताका व्याप्य ऐसा नहीं है। आहाहा....!

फिरसे....**'इसप्रकार (ज्ञाता पुद्गलपरिणामका ज्ञान करता है इसलिए) ऐसा भी नहीं है कि पुद्गल परिणाम ज्ञाताका व्याप्य है...'** रागका ज्ञान करता है इसलिए राग आत्माका व्याप्य है–ऐसा नहीं है। रागका यहाँ ज्ञान करता है इसलिए राग आत्माका व्याप्य है, आत्मा व्यापक है और यह ज्ञान उसका व्याप्य है ऐसा नहीं है। राग व्यापक है, कर्म व्यापक है और ज्ञानके परिणाम व्याप्य है ऐसा नहीं है। आहाहा....! यह 'समयसार' !

व्याप्यरूप होता होनेसे, इसप्रकार ज्ञाता-आत्मा पुद्‌गलपरिणामका अर्थात् रागका ज्ञान करता है इसलिए ऐसा भी नहीं, रागका ज्ञान करता है इसलिए पुद्‌गलपरिणाम आत्माका व्याप्य (अथवा) रागका ज्ञान करता है इसलिए राग आत्माका परिणाम व्याप्य है ऐसा नहीं है। रागका ज्ञान करता है इसलिए राग आत्माका कार्य-व्याप्य है ऐसा नहीं है। आहाहा....! ऐसा सूक्ष्म है। भाई ! आहाहा....! 'समयसार', 'समयसार' !!

'इसप्रकार' आत्मा रागका ज्ञान करता है इसलिए ऐसा भी नहीं है कि राग जो पुद्‌गलपरिणाम वह ज्ञाताका व्याप्य है, आहाहा....! ज्ञाताका व्याप्य तो ज्ञानके परिणाम है, रागका ज्ञान हुआ इसलिए वह (राग) ज्ञाताका व्यापक है ऐसा नहीं आहाहा....!

श्रोता :— राग तो पुद्‌गल परिणाम है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह तो पुद्‌गल कहा। पुद्‌गल परिणाम....परिणाम अभी तक कहा लेकिन अब छोटा करके उसे पुद्‌गल द्रव्य कह देंगे। आहाहा....!

श्रोता :— राग..... ही नहीं है तो व्याप्य कैसे होवे ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— नहीं है, कार्य ही नहीं है, यहाँ तो रागका ज्ञान करते हैं न ! ऐसा कहा है न ? रागका ज्ञान है न ? रागका ज्ञान है न ? तो राग उसका व्याप्य हुआ कि नहीं ?-नहीं। आहाहा....! ये सब 'नाईरोबी'में कहाँ सुनने मिले ऐसा है ! आहाहा....!

'पुद्‌गलपरिणाम ज्ञाताका व्याप्य है; क्यों कि...' **'ऐसा भी नहीं कि पुद्‌गलपरिणाम ज्ञाताका व्याप्य है'** समझमें आया...? अब तक पुद्‌गल परिणाम कहते थे, अब उसे पुद्‌गल कह दिया। आहाहा....! भगवानकी भक्ति और स्तुतिका भाव पुद्‌गल है। आहाहा....! पुद्‌गलके परिणाम वह पुद्‌गल है ऐसे अभेद कर दिया, अभेद कर दिया। **'क्योंकि पुद्‌गलको और आत्माको'** अर्थात् पुद्‌गलके परिणाम वह पुद्‌गल, उसे पुद्‌गल कहा। **'और आत्माको ज्ञेय ज्ञायक संबंधका व्यवहार मात्र होने पर भी...'** आहाहा....! रागको अर्थात् पुद्‌गलको और आत्माको ज्ञेय, राग ज्ञेय है और आत्मा ज्ञायक है, ऐसे संबंधका व्यवहारमात्र होने पर भी....आहाहा....! **'लेकिन पुद्‌गल परिणाम जिसका निमित्त है'** किसका (निमित्त) ?-ज्ञानका। ज्ञान होता है उसमें निमित्त है। **'ऐसा जो ज्ञान'** **'पुद्‌गल परिणाम जिसका निमित्त है ऐसा जो ज्ञान...'** आहाहा....! राग वह पुद्‌गल, वह ज्ञानके परिणामको निमित्त है। ऐसा जो ज्ञान वही ज्ञाताका व्याप्त है। वही ज्ञाताका कार्य और व्याप्य है। आहाहा....! वह उसकी पर्याय है, वह उसका कार्य है, वह उसका व्याप्य है।

आहाहा....! इसलिए ज्ञान ही ज्ञाताका कर्म। लो ! बहुत सूक्ष्म आया ! आहाहा....! इसलिए ज्ञान ही ज्ञाताका कर्म लो ! बहुत सूक्ष्म आया ! आहाहा....! क्या कहा वो समझमें आया ?

आत्मा ज्ञाता है और रागका ज्ञान है इसलिए राग व्यापक और ज्ञान-पर्याय व्याप्य ऐसा नहीं है। रागको जानता है ऐसा कहा न ! इसलिए राग व्यापक है और यहाँ जाननेका कार्य व्याप्य है ऐसा नहीं है। आत्माका व्याप्य तो ज्ञाताके परिणाम है, वह आत्माका व्याप्य है, वह उसका व्यापक है, वह भी भेदसे। वास्तवमें तो ज्ञाताके जो परिणाम है वह रागके नहीं वैसे ही द्रव्य-गुणके भी नहीं है। आहाहा....! वह परिणाम परिणामीके हैं। फिर भी ज्ञाताका वह व्याप्य है ऐसा कहना वह व्यवहार है। आहाहा....! राग उसका व्याप्य है ऐसा तो है ही नहीं। ओहो...! बहुत अच्छी बात है। आहाहा....! टीका तो टीका है न ! 'अमृतचंद्राचार्य' ओहोहो....! वस्तुकी स्थिति ऐसी ! वस्तुकी मर्यादा ! मर्यादा पुरुषोत्तम पुरुष आत्मा ! आहाहा....!

वह अपने ज्ञानपरिणामका कर्ता। रागका ज्ञान (हुआ) इसलिए रागका व्याप्य ज्ञान, ऐसा कहा न ! व्यवहार रत्नत्रयका ज्ञान कहा न ! इसलिए राग व्यापक और ज्ञानपरिणाम व्याप्य ऐसा नहीं है। आहाहा....! वह तो ज्ञानपरिणाम व्याप्य और आत्मा व्यापक ! इसप्रकारसे सिर्फ व्यवहारसे सिद्ध करते हैं। आहाहा....! वो तो व्यवहारसे भी नहीं। आहाहा....! विशेष कहेंगे।

(श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❀ तू चैतन्यमूर्ति ज्ञाता-द्रष्टा आनन्दकन्दमूर्ति है ऐसा भगवानने देखा है; तू रागवाला है ऐसा भगवानने तुझे नहीं देखा। परन्तु मैं ज्ञाता-द्रष्टा हूँ ऐसा तूने अपनेको न देखकर परको जानते हुए तुझमें जो रागादि होते हैं वे स्वभावके कारण नहीं हुए है या परको जाननेसे नहीं हुए है तथापि परवस्तुको जानते हुए यह वस्तु मुझे अच्छी लगती है और यह बुरी लगती है ऐसी मिथ्याभ्रान्ति तूने स्वयं पैदा की है। ११३.

—द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर पर्यायदृष्टि विनश्वर

३० श्री समयसार, गाथा—६१-६२, प्रवचन नं. १३५, दि. १३-११-१९७८

'समयसार' ६१वीं गाथाका भावार्थ है, क्या कहते हैं? सुनो! **'द्रव्य की सर्व अवस्थामें द्रव्यमें जो भाव व्याप्त होते हैं उन भावोंके साथ द्रव्यका तादात्म्यसंबंध कहलाता है।'** क्या कहा? द्रव्य नाम वस्तु-पदार्थ, उस द्रव्यके साथ सर्व अवस्थाओंमें, अनादि अनंत जितनी अवस्था है उन सब अवस्थाओंमें जो भाव व्याप्त होता है, उस भावके साथ द्रव्यका तादात्म्यसंबंध-तद्रूप संबंध है।

जैसे कि आत्माकी प्रत्येक अवस्थामें ज्ञान, आनंदादि रहते हैं, तो ज्ञान और आनंदादिके साथ (जिसका) तादात्म्यसंबंध है, उसे आत्मा कहते हैं। राग—दया, दानादि भाव आत्माकी प्रत्येक अवस्थामें नहीं है, इसलिए वह पुद्‌गल अवस्थामें गिने जाते हैं। पुद्‌गलके साथ तादात्म्यसंबंध है। आहाहा....!

प्रथम सिद्धांत तो यह कहा कि कोई भी द्रव्य-वस्तु जो है उसकी सर्व अवस्थाओंमें जो रहे और व्याप्त होवे तो उस द्रव्यके साथ उस भावको तादात्म्य कहते हैं; लेकिन कभी हो और कभी न हो तो उस द्रव्यके भावको तादात्म्यसंबंध नहीं है। दया, दान, व्रत, भक्ति आदिके रागादिभाव जो है वह आत्माकी प्रत्येक अवस्थामें रहते नहीं; संसार अवस्थामें है लेकिन मोक्ष अवस्थामें नहीं है, इसलिए रागका आत्माके साथ तादात्म्य-तद्रूप संबंध नहीं है। आहाहा....! उस रागका पुद्‌गलके साथ तादात्म्यसंबंध है। आहाहा....! ऐसी बात है। सूक्ष्म बात है। भाई!

'पुद्‌गलकी सर्व अवस्थाओंमें पुद्‌गलमें वर्णादिभाव....' वर्ण अर्थात् रंग, गंध, रस, स्पर्श, शुभभाव, अध्यवसाय गुणस्थान आदि **'व्याप्त है....'** यहाँ तो पुद्‌गलमें व्याप्त है ऐसा कहा है। आहाहा....! शरीर, वाणी, मन, कर्म वह जड़ पर्याय पुद्‌गल है। यहाँ कर्म जो पुद्‌गल है उसके साथ वह पुण्य आदि परिणाम-शुभभाव (व्याप्त है)। जहाँ जहाँ कर्म है, वहाँ वहाँ राग है, जहाँ राग है वहाँ कर्म है। ऐसे कर्मके साथ रागका तादात्म्यसंबंध है। आहाहा....! ऐसी बात है। अब यहाँ तो वह दया, दान, व्रत, भक्ति आदिके भाव धर्म है और धर्मका कारण है ऐसा मानते हैं उनकी दृष्टि विपरीत-मिथ्या है। आहाहा....! समझमें आया?

'पुद्‌गलकी सर्व अवस्थाओंमें...' उसका मतलब यही की अंदर में जो भेद पड़

रहे है न ! गुणकी पर्यायमें भेद पडता है–लब्धिस्थान, संयम आदि लिये न ! भेद भी अभेद आत्माके साथ व्यापक नहीं। किसी समय हो और किसी समय न हो, वह आत्माके साथ व्यापक नहीं है। शरीर, वाणी, मन, वर्ण, गंध, रस, स्पर्शको पुद्गलके साथ तादात्म्यसंबंध है, वैसे ही शुभराग—दया, दानके भावको पुद्गलके साथ संबंध है। साधकको संयमकी पर्याय, लब्धिस्थान भिन्न अवस्था होनेसे पुद्गलके साथ संबंध है, अभेद आत्माके साथ संबंध नहीं है। आहाहा....! ऐसी बात है। अरे...! सम्यग्दर्शन आदि जो पर्याय है वह भेदरूप है, अंतर त्रिकाली ज्ञानके साथ वह अभेद नहीं है। आहाहा....! कठिन बात है। चौदह प्रकारकी जो मार्गणा, ज्ञानके भेद, दर्शनके भेद, चारित्र के भेद—यह सब भेद पुद्गलके साथ संबंध रखते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा....! सुननेवालेको भी (गंभीरता रखनी चाहिये)। आहाहा....! क्या कहा समझमें आया ? उसे (सुननेवालेको) ध्यान रखना चाहिये। यह तो वीतरागकी वाणी है। आहाहा....! यह तो सर्वज्ञ परमात्माका कथन है, वह संत-दिगम्बर संत कह रहे हैं। आहाहा....!

यहाँ कहते हैं कि '**द्रव्यकी सर्व अवस्थाओंमें द्रव्यमें जो भाव व्याप्त होते हैं उन भावोंके साथ द्रव्यका तादात्म्य(–तद्रूप)संबंध कहलाता है।**' कैसी बात...! अब इतनी बात करते कहते हैं कि '**पुद्गलकी सर्व अवस्थाओंमें**' आहाहा....! कर्म जो जड़-पुद्गल है उसकी सर्व अवस्थाओंमें रंग, गंध, शुभभाव, गुणस्थानभेद आदि भाव (व्याप्त है)। '**व्याप्त होते हैं इसलिए वर्णादिभावोंके साथ पुद्गलका तादात्म्यसंबंध है।**' आहाहा....! पुद्गलके साथ (संबंध है)। भेद, राग और जड़की पर्याय–इन सबका पुद्गलके साथ तादात्म्यसंबंध है। आहाहा....! '**जीव-अजीव अधिकार**' है न !

श्रोता :— उसमेंसे नीकल जाते हैं इसलिए उसके नहीं है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— उसमें है ही नहीं। अभेदके साथ तादात्म्यसंबंध है। भेद पडा वह तादात्म्यसंबंध नहीं। भेद तो थोडे काल रहता है, बादमें नहीं रहता। उसकी प्रत्येक अवस्थामें भेददशा रहती नहीं है, इसलिए भेद अवस्था पुद्गलकी है। राग पुद्गलका है। आहाहा....! सूक्ष्म बात है, भाई ! परमात्माने कहा हुआ जैन दर्शन समझना सूक्ष्म है, सूक्ष्म है। यहाँ जीव-अजीव अधिकार है।

यहाँ तो कहते हैं कि आत्मामें जो दया, दान, आदि राग होता है और पर्यायमें जो भेद पड़ता है वह आत्माकी प्रत्येक अवस्थामें नहीं रहते। इसलिए सर्व अवस्थामें रहनेवाले पुद्गलके साथ उनका संबंध है। आहाहा....! समझमें आता है ? सूक्ष्म बात है, भाई !

'संसार अवस्थामें जीवमें...' भेद, राग, रंग आदि भाव **'किसी प्रकारसे...'** पर्यायनयसे–व्यवहारनयसे समयकी स्थिति देखकरके व्यवहारसे कहनेमें आते हैं। **'लेकिन मोक्ष अवस्थामें जीवमें वर्णादिभावो...'** गुणस्थान, भेद, दया, दान, आदि रागभाव मोक्ष अवस्थामें **'सर्वथा नहीं होनेसे वर्णादिभावोंके साथ जीवका तादात्म्यसंबंध नहीं है...'** आहाहा....! जैसे अग्नि और उष्णताको तादात्म्यसंबंध है, वैसे भगवान आत्माके साथ दया, दान, राग और गुणस्थान भेदका तादात्म्यसंबंध नहीं है। आहाहा....! ऐसी बात है।

'वर्णादिभावोंके साथ जीवका तादात्म्यसंबंध नहीं है यह न्याय है'। यह बात न्यायसे सिद्ध की है। आहाहा....! जिसको आत्मद्रव्य दृष्टिमें लेना हो उसे अभेदकी दृष्टि करनी होगी। आहाहा....! जिसको सम्यग्दर्शन प्राप्त करना हो–धर्मकी पहली सीढ़ी चढ़ना हो उसे आत्मद्रव्य अभेद–पूर्ण गुणका अभेद आत्मद्रव्य दृष्टिमें लेना होगा। ३७६में आ गया। पूर्ण गुणका अभेद पूर्ण द्रव्य, आहाहा....! उसे दृष्टिमें लेना (होगा)। सम्यग्दर्शनका विषय पूर्ण गुणसे पूर्ण भरा हुआ द्रव्यस्वभाव है, वह सम्यग्दर्शनका विषय है। आहाहा....!

सम्यग्दर्शनका विषय वर्तमान राग भी नहीं। भेद भी नहीं, मनुष्यपना आदि संहनन, संस्थान भी नहीं। आहाहा....! अभेद चिदानंद भगवान पूर्ण स्वरूप जिसके साथ अनंत गुणोंका तादात्म्यसंबंध है, भगवान आत्माके साथ अनंत ज्ञानादि गुणोंका तद्रूप–तादात्म्यस्वरूप है जिसके उपर दृष्टि करनेसे सम्यग्दर्शन होता है। आहाहा....! अभी तो धर्मकी पहली सीढ़ीकी बात है। चारित्रकी बात तो अभी बहुत दूर है, बापू ! आहाहा....! ६१वीं गाथाका भावार्थ हो गया। अब ६३वीं गाथा।

अब **'ऐसा मिथ्या अभिप्राय कोई करे...'** कोई ऐसी मिथ्याश्रद्धा–अभिप्राय प्रगट करे कि **'जीवका वर्णादिके साथ तादात्म्य है...'** आत्माका रंग और रागके साथ तादात्म्य है ऐसा कोई मिथ्या अभिप्राय करे तो **'उसमें दोष आता है ऐसा गाथामें बताया है।'** कोई ऐसा कहे कि भगवान आत्मा ज्ञायकस्वभावके साथ दया-दान आदि राग, गुणस्थान आदि भाव और पर्यायके भेदका तादात्म्यसंबंध है, ऐसा कोई भ्रम करे तो उसमें यहाँ दोष दिखाते हैं। आहाहा....! ६२वीं (गाथा)

जीवो चेव हि एदे सव्वे भाव त्ति मण्णसे जदि हि।
जीवस्साजीवस्स य णत्थि विसेसो दु दे कोई।।६२।।

यह भाव सब है जीव जो, ऐसा ही तू माने कभी;
तो जीव और अजीव में कुछ, भेद तुझ रहेता नहीं।।६२।।

वह रागादि और पुद्गलादिके परिणाम तेरे हैं ऐसा माने....आहाहा....! सूक्ष्म गाथायें हैं। पूरा 'समयसार' ही सूक्ष्म है। सूक्ष्ममें सूक्ष्म भगवान आत्मा है। आहाहा....! चैतन्य भगवान अनंत गुणोंसे तादात्म्यस्वरूप प्रभुके उपर दृष्टि देनेसे धर्मकी सम्यग्दर्शनकी प्रथम शरूआत होती है। दूसरे लाख-करोड़-अनंत दया, दान, व्रत, भक्ति, पूजा, यात्रा करे उससे सम्यग्दर्शन होता नहीं, वह तो राग है। आहाहा....! वह तो पुद्गलके परिणामके साथ तादात्म्य है। जहाँ जहाँ पुद्गल वहाँ वहाँ भेद और राग है ऐसा कहते हैं। जहाँ जहाँ भगवान आत्मा, वहाँ वहाँ राग और पुद्गल, भेद नहीं। आहाहा....! ऐसा तो अभी सुनना भी मुश्केल लगे ! वीतराग जिनेश्वर परमेश्वर त्रिलोकीनाथ दिव्यध्वनिमें ऐसा कहते थे वह बात यह 'कुंदकुंदाचार्य', 'अमृतचंद्राचार्य' दिगम्बर संत जगतके सामने एलान कर रहे हैं। आहाहा....! आहाहा....! ऐसी बात और कहीं नहीं। आहाहा....! ओहोहो....! अलौकिक बात है, प्रभु ! शांतिसे समझना !

'जैसे वर्णादि' रंग, गंध, रागादिभाव **'क्रमसे आविर्भाव (प्रगट होना, उपजना) और तिरोभाव (छिप जाना, नाश होना)को प्राप्त होती हुई ऐसी उन उन व्यक्तियोंके द्वारा (अर्थात् पर्यायोंके द्वारा) पुद्गलद्रव्यके साथ ही साथ घूमते हुये...'** आहाहा....! वह तो कल सुबह कहा था न कि निमित्तसे हुआ वह वास्तवमें तो अपनेसे हुआ है। उस समय गुणस्थानभेद-राग उत्पन्न होनेका जन्मक्षण है तो उसमें उत्पन्न हुये हैं, लेकिन वह जो उत्पन्न हुये हैं वह आत्मामें त्रिकाल व्याप्त नहीं है। इस कारणसे रंग, गंध और दया, दानके साथ पुद्गलके साथ, पुद्गल जहाँ व्यक्त होता है वहां होता है और उसमें व्याप्त होते हैं। आहाहा....! ऐसा काम....!

एक ओर ऐसा कहना कि पुण्य और पापके भाव पर्यायमें होते हैं और उसका कर्ता-भोक्ता जीव है, यह ज्ञान-प्रधान कथन है। यहाँ दृष्टिप्रधान कथनमें...आहाहा....! चाहे तो दया, दान, व्रत, भक्ति, पंचमहाव्रतके भाव हो (वह सब पुद्गलके साथ व्याप्त हैं), प्रभु ! प्रभु कहते हैं वह बात दिगंबर संत कहते हैं। वह केवलीके मार्ग पर चलनेवाले हैं। केवली परमात्माने जो कहा उसकी साक्षीमें कहते हैं। आहाहा....! प्रभु तू एकबार सुन ! वह राग और पुण्य और पापके भाव आदिकी प्रगटता होती है....आहाहा....! उपजता है और नाश होता है वह सब पुद्गलके साथ है। आहाहा....! वह उत्पाद और व्यय तेरे साथ (व्याप्त) नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा....! समझमें आया ? ऐसा सूक्ष्म तत्त्व !

दया, दान, व्रत, शुभ स्वाध्याय आदि करना–उसका राग होना, श्रवणका जो राग

आता है वह पुद्गलके साथ उत्पन्न होता है और पुद्गलमें व्यय होता है, वह आत्माके उत्पाद-व्यय नहीं है। आहाहा....! समझमें आया ? यहाँ द्रव्यस्वभावका वर्णन है न ! और जीवद्रव्यका वर्णन है उसमें अजीवके भेद नहीं। इसलिए वह भेद और राग भी अजीव है। आहाहा....! देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धा, शास्त्रका ज्ञान, विकल्प, नव तत्त्वकी श्रद्धाका राग, छ कायकी दयाका राग वह सब कहते हैं कि पुद्गलके साथ उत्पन्न होता है और पुद्गलमें ही नष्ट होते हैं, अपने साथ नहीं। भाई ! ऐसी बात दिगम्बर संतके सिवा कहीं नहीं। आहाहा....! समझमें आया ? गजब बात है ! आहाहा....! कितना स्पष्ट कर दिया है !

उत्पाद-व्यय है लेकिन वह द्रव्य-स्वभावमें नहीं है। इसलिए रागकी उत्पत्ति और रागका नाश पुद्गलके साथ संबंध रखता है। आविर्भाव और तिरोभाव, क्या कहा ? आया न ! रागादिका उत्पन्न होना–आविर्भाव और रागादिका तिरोभाव-नाश होना **'ऐसी उन उन व्यक्ति द्वारा (अर्थात् पर्यायों द्वारा) पुद्गल द्रव्य के साथ-साथ रहते हुये....'** आहाहा....! शुभ-अशुभ राग जो उत्पन्न होता है और व्यय-नाश होता है, कहते हैं कि पुद्गलके साथ उसकी उत्पत्ति है। आहाहा....! आविर्भाव और तिरोभाव–प्रगट होना और नष्ट होना वह सब पुद्गलके साथ है। आहाहा....!

'उन उन व्यक्तियोंके द्वारा जीवके साथ ही साथ रहते हुये, जीवका वर्णादिके साथ तादात्म्य प्रसिद्ध करते हैं...' वह पुद्गलके साथ तादात्म्य प्रसिद्ध करता है, प्रसिद्ध करता है, वह पुद्गलका विस्तार है। आहाहा....! भगवान सच्चिदानंद प्रभुका वह विस्तार नहीं है, स्वभावका विस्तार नहीं है, यहाँ यह लेना है। भगवान चिदानंद प्रभु अखंडानंद जिनस्वरूपी प्रभु ! उन जिनस्वभावी भगवानका वह रागादि विस्तार नहीं है। आहाहा....! रागादिकी प्रसिद्धि वह जिनस्वरूप भगवान आत्माकी प्रसिद्धि नहीं है। आहाहा....! देखो यह संत ! जो सर्वज्ञ कहते हैं, वही दिगंबर संत कहते हैं। आहाहा....! और वह भी पंचमकालके जीवको कह रहे हैं। यह कोई चोथे कालके साधु नहीं है और चोथे कालके (जीवको) नहीं समझा रहे। आहाहा....! पंचमकालके जीवको पंचमकालके संत (समझा रहे हैं)। आहाहा....! कोई ऐसा कहे कि यह बात तो चोथेकालकी है और चोथेकालमें समझनेकी है, तो ऐसा नहीं है, प्रभु ! सुन तो सही पंचमकाल में भी तू आत्मा है कि नहीं ? आत्मा क्या है ? अपने गुणोंसे अभेद वह आत्मा है। अभी ऐसा है !

यहाँ कहते हैं कि जिसे अभेद आत्माकी दृष्टि करनी हो उसे यह रागादि परिणाम अजीवके परिणाम है (ऐसा समझना)। आहाहा....! अब यहाँ ऐसा कह रहे हैं कि अभी

शुभयोग ही होता है, धर्म नहीं होता ! अर...र...र...! और शुभयोग ही अभी धर्मका कारण है ! अरे प्रभु ! यह तू क्या कर रहा है, प्रभु !

वह पुद्गलमें व्याप्त होनेवाले भाव अपने हैं और उसमें लाभ मानना वह तो महामिथ्यात्व-अज्ञान है। आहाहा....! अंदर है या नहीं ? क्या सुन रहे हो ? वह कहते थे न...ऐसा मार्ग है। बापू ! आहाहा....! यह 'कुंदकुंदाचार्यदेव' कह रहे हैं, भगवानके पास गये थे। 'सीमंधर' परमात्मा त्रिलोकनाथ महाविदेहमें विराजमान है, उनके पास गये थे। ओ...हो...हो...! आठ दिन रहे थे। वहाँसे आनेके बाद शास्त्र बनाये थे और उनके एक हजार वर्ष बाद 'अमृतचंद्रदेव' (हुये)। यह 'कुंदकुंदाचार्यदेव' है और यह 'अमृतचंद्राचार्यदेव' है। जिन्होंने यह टीका बनायी है। आहाहा....!

यहाँ तो कहते हैं कि प्रभु ! शांतिसे सुन ! आहाहा....! वह शुभ-अशुभ रागकी उत्पत्ति और व्यय पुद्गलके साथ संबंध रखता है, भगवान आत्माके साथ उसका संबंध नहीं है। वह संबंध हो तो (आत्माके साथ) त्रिकाल रहने चाहिये। रागकी उत्पत्ति और रागका व्यय आत्माके साथ त्रिकाल रहना चाहिये, (लेकिन वह त्रिकाल रहते नहीं) इसलिए वह आत्माकी चीज नहीं। पैसै, शरीर, धूल, लक्ष्मी, आदि पर तो कहीं रह गये, वह पुद्गल तो पर रह गये, उसके साथ यहाँ कोई संबंध नहीं है। आहाहा....! शरीर, मिट्टी, धूल वह तो अंदर आ गया। वज्रनाराचसंहनन, औदारिक, वैक्रियक शरीर आ गया है। आहाहा....! वह सब तो पुद्गलके साथ (है)। वह पर्याय उत्पन्न होती है और व्यय होती है वह पुद्गलके साथ है। यहाँ तो (कहते हैं कि) राग उत्पन्न होता है और रागका व्यय होता है उसका संबंध भगवान आत्माके साथ नहीं है। जो आत्माके साथ संबंध हो तो हमेशा रहना चाहिये। आहाहा....!

अरे ! यह सुनने मीले नहीं और मनुष्यपना चला जा रहा है। कहाँ जा करके अवतार लेंगे ? आहाहा....! यह संस्कार अगर अंतरमें नहीं पडेगा तो चोरासीके अवतार में कहाँ जन्म होगा ? भाई ! आहाहा....! भगवान तो अनादि-अनंत नित्य रहनेवाला है इसलिए यह भव बदलके कहीं जायेगा तो सही ! आहाहा....! तो जिसने, राग मेरा है और रागसे मुझे लाभ होगा (ऐसा माना है ऐसे) मिथ्यादृष्टि कहाँ जायेंगे ? मिथ्यात्वके (उदयमें) नरक और निगोदके जन्म करेगा ! आहाहा....!

यहाँ तो कहते हैं, प्रभु ! आहाहा....! जिस कारणसे तीर्थंकर गोत्रका बंध हो वह भाव राग है, प्रभु ! सुनो ! आहाहा....! वह पुद्गलके साथ संबंध रखता है। उसमें है कि

नहीं ? आहाहा....! जिस भावसे तीर्थंकर गोत्रका बंध हो वह भाव शुभराग है। बंधका कारण कोई धर्म नहीं है। है तो वह राग ही ! षोडशकारण भावना...आहाहा....! वह राग अजीव है। जिसके फलमें अजीवका बंध हो वह राग पुद्गलके साथ संबंध रखता है। उसके उत्पाद-व्ययके साथ पुद्गलद्रव्यका संबंध है। आहाहा....! भाई ! ऐसी सूक्ष्म बात है ! लोगोंको ऐसा लगे कि यह 'सोनगढ'का है, लेकिन यह 'सोनगढ'का है या भगवानका है ? आहाहा....!

प्रभु तेरे घरको देखनेकी बात कर रहे हैं, घरको देख ! उसमें रागकी और द्वेषकी उत्पत्ति और व्यय नहीं है। आहाहा....! तेरा नाथ भगवान है, वहाँ तो आनंदकी उत्पत्ति और आनंदका व्यय है। उसके साथ भगवानको तो संबंध है। आहाहा....! भाई ! चाहे तो पंचमहाव्रतके विकल्पका राग हो, चाहे तो दया, दान, भक्तिका राग हो....आहाहा....! उस रागका उपजना–प्रगट होना, व्यय होना–नाश होना ऐसा उत्पाद-व्ययका संबंध, आविर्भाव-तिरोभाव पुद्गलके साथ संबंध रखता है। आहाहा....! ऐसा अंतरमें उतरना जगतको दुष्कर लगे !

श्रोता :— आचार्यको भय नहीं लगा कि कोई निश्चयाभासी हो जायेगा ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— दुनिया दुनियाका जाने ! नग्न है वह बादशाहसे दूर है, उनको दुनियाकी क्या पड़ी है ! मार्ग यह है, वह तो एक भव करके मोक्ष चले जानेवाले हैं। दिगम्बर संत 'कुंदकुंदाचार्यदेव' उनको जगतकी कुछ पड़ी नहीं। समाज समतोल रहेगा या नहीं ? (उसकी दरकार उनको नहीं) आहाहा....!

तीनलोकके नाथ सर्वज्ञ परमात्माने कहा वह यह संत जगतको कहते हैं। आहाहा....! ऐसी वाणी और ऐसा भाव दिगम्बर शास्त्रके अलावा कहीं नहीं, प्रभु ! लेकिन उनमें रहेनेवालोंको भी उनकी मालूम नहीं। आहाहा....! भगवान 'अमृतचंद्राचार्यदेव', 'कुंदकुंदाचार्यदेव'की पुकार है प्रभु ! तेरी प्रसिद्धि रागसे हो सकती है ? आहाहा....! रागकी प्रसिद्धि तो पुद्गलकी प्रसिद्धि है ऐसा कहते हैं। आहाहा....! गजब बात करते हैं न ! ज्ञान और आनंदकी पर्यायसे तेरी प्रसिद्धि होती है। प्रभु ! द्रव्यस्वभावके अभेद पर दृष्टि होनेसे जो शांति और आनंदकी पर्याय उत्पाद-व्यय होती है वह तेरी प्रसिद्धि है। इस टीकाका नाम आत्मख्याति है न ! इस टीकाका नाम आत्मख्याति है। यह तो अलौकिक बात है, भाई ! 'समयसार' अर्थात् जगत्चक्षु ! अजोड़चक्षु ! आहाहा....! पंचमकालके संत और यह टीकाकार भी अभी एक हजार साल पहले ही हुये हैं। 'कुंदकुंदाचार्यदेव' तो दो हजार साल

पहले हुये और यह टीकाकार एक हजार साल पगले हुये। आहाहा....! जगतकी दरकार न करके 'सत् यह है' ऐसे सत्यके डंके बजाये हैं। आहाहा....!

प्रभु ! एकबार यह आया था न ! 'प्रभुता तारी तो खरी, मुजरो मुज रोग ले हरि !' प्रभु ! तेरी प्रभुता तो तब कहें कि निर्मल पर्यायकी उत्पत्ति और व्यय हो वह तेरी प्रभुता है। रागकी उत्पत्ति और व्यय होना तेरी प्रभुता नहीं, नाथ ! आहाहा ! वह तो दूसरा कहा था। आहाहा....! 'प्रभुता प्रभु तारी तो खरी' हे नाथ ! तेरी प्रभुता तो तब कही जाये कि जब 'मुझरो मुझ रोग ले हरी' रागकी उत्पत्ति मेरेमें नहीं (ऐसा विश्वास हो)। रागकी उत्पत्ति और व्यय मेरेमें नहीं है , आहाहा....! भाई ! यह बच्चेको उत्पन्न करना और पैसे उत्पन्न करना, यह सब क्या है ? यह भ्रमणा कैसी है ? आहाहा....! अरेरे....! उसे कहाँ जाना है ? आहाहा....! ऐसी बात है, भाई ! आहाहा....!

वह तो उसका (-पुद्‌गलका) विस्तार है ऐसा कहते हैं। क्या कहते हैं ? शुभ-अशुभ-दया, दान, व्रत, भक्ति आदिके भाव तो पुद्‌गलका विस्तार है। पुद्‌गलकी प्रसिद्धि है, पुद्‌गल प्रसिद्ध होता है। उसमें भगवान प्रसिद्ध होता नहीं। आहाहा....! क्या उसकी गंभीरता ! कैसा उस टीकाका मर्म ! आहाहा....! 'अमृतचंद्राचार्यदेव'की अमृतवाणी है ! दिगम्बर संत अर्थात्....आहाहा....! भगवानको १००८ नाम दिये हैं न ! 'आदिपुराण' के रचयिता 'जिनसेनाचार्य'ने भगवानको १००८ नाम दिये हैं। वहाँ प्रभुको ऐसा कहा कि प्रभु ! आहाहा....! आप तो मुमुक्षु हो ! प्रभु ! आप मनीष हो ! मनीष अर्थात् प्रभु ! आप ज्ञानके ईश्वर हो ! प्रभु ! आपके गुणानुवाद कैसे करें ! आहाहा....! ऐसी बात प्रभु ! आहाहा....! जिसकी पर्यायमें अनंतज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत वीर्य आदि गुण प्रगट हो चुके हैं....आहाहा....! परमात्मा हजार पंखसे प्रगट हो चुके हैं। गुलाब जैसे हजार पंखसे खिलता है, वैसे भगवान अनंत पंख-गुणोंसे खीला-प्रगट हुआ है, वह उसकी प्रसिद्धि है। अनंत आनंद, अनंत ज्ञानगुण, उत्पाद-व्यय होना, गुणके आश्रयसे (उत्पाद-व्यय) होना वह आत्माका स्वभाव है। परके आश्रयसे जो रागादि हो वह आत्माका स्वभाव नहीं। आहाहा....! ऐसा दुष्कर लगे लेकिन क्या हो भाई ! मार्ग तो यही है।

त्रिलोकनाथ जिनेश्वरदेव परमेश्वर इन्द्रों और गणधरोंके बीच बता रहे थे वह यह संत कह रहे हैं। आहाहा....! भगवान महाविदेहमें विरामजान है वहाँ यह बात बता रहे थे, वही बात 'कुंदकुंदाचार्यदेव', 'अमृतचंद्राचार्य' यहाँ बता रहे हैं। 'कुंदकुंदाचार्यदेव' तो वहाँ गये थे, लेकिन 'अमृतचंद्राचार्यदेव' नहीं गये थे फिर भी अंतरके भगवानके पास गये थे। इसलिए यह प्रसिद्धि करी है। आहाहा....!

हम आत्मा है वह कौन ? आहाहा...! हम आत्मा आनंदका नाथ प्रभु ! अनंत अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, अनंत आनंद, अनंत शांति, अनंत स्वच्छता, अनंत प्रभुता ऐसी एक एक गुणकी पूर्णता ऐसे अनंत गुणकी पूर्णताका प्रभु आत्मा हूँ। आहाहा...! उसकी उत्पत्ति तो निर्मल पर्याय हो और निर्मल पर्यायका व्यय हो वह उसका स्वभाव है। आहाहा...! समझमें आया ? अरेरे...! प्रभु ! क्या करे ? कोई इस व्रत, तप और भक्तिसे धर्म मानता है तो कोई देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति करनेसे धर्म मानता है, सब एक ही प्रकारके हैं। आहाहा....! देव-गुरु-शास्त्रकी भक्ति तो राग है और कहते हैं कि राग तो पुद्‌गलके साथ संबंध रखता है। अर..र...! आत्माके साथ संबंध रखता हो तो जहाँ जहाँ आत्मा है वहाँ सब जगह (राग) होना चाहिये। आहाहा...! भगवान आत्मा तो निर्मलानंद जब होता है तब वह (राग) होता नहीं है। इसलिए वह रागकी उत्पत्ति और व्यय भगवान आत्माके साथ संबंध नहीं रखते। आहाहा...!

श्रोता :— दुनियासे एकदम अलग बात है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— वो सब दुनियाकी पागलोंकी बातें हैं। पुण्य किसे कहना, पाप किसे कहना उसकी खबर नहीं। शुभभाव और पाप बुरा है ऐसा माने उसे 'कुंदकुंदाचार्यदेव' 'प्रवचनसार'में ७७वीं गाथामें कहते हैं की **'घोर हिडंति संसार मोह संछणो'** मिथ्यात्वसे ढंका हुआ घोर संसारमें रुलेगा। भाई ! यहाँ कुछ भी चले ऐसा नहीं है।

श्रोता :— दुनियामें चलता है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— वहाँ चले (तो चलने दो) आहाहा....! २७वीं गाथामें 'कुंदकुंदाचार्यदेव'ने 'प्रवचनसार'में ऐसा कहा है कि जो कोई शुभ-अशुभभाव है उसमें भेद माने कि शुभभाव ठीक है और अशुभभाव अठीक है तो दोनोंमें विशेष-भेद माननेवाला मोहसे–मिथ्यात्वसे ढंका हुआ घोर संसारमें भटकेगा। **'मोह संछणो'** ऐसा पाठ है। भाई ! दिगंबर धर्म समझना यह कोई अलौकिक बात है। संप्रदाय मिल गया इसलिए दिगम्बर हो गया ऐसा नहीं है। आहाहा....! दिगम्बर धर्म कोई पंथ या पक्ष नहीं है, वह तो वस्तुका स्वभाव है। आहाहा....! वस्तुका स्वभाव है कि जिसमें दया, दान और तीर्थंकर (गोत्र) बंधे ऐसा भाव भी आत्मामें नहीं है–वह(भाव) आत्माके साथ संबंध रखता नहीं है—ऐसा यह मार्ग है।

'वर्णादिक भाव, क्रमशः आविर्भाव और तिरोभावको प्राप होती हुई ऐसी उन उन व्यक्तियोंके द्वारा जीवके साथ ही रहते हुये...' क्या कहते हैं ? पहले ऐसा कहा कि पुद्‌गलके साथ आविर्भाव-तिरोभाव, उत्पन्न और व्यय होता है। ऐसे ही आत्माके साथ भी

उत्पन्न और व्यय...। आहाहा....! **'जीवके साथ रहते हुये, जीवका वर्णादिकके साथ तादातम्य प्रसिद्ध करता है...'** प्रसिद्ध करता है ऐसा मानता है **'ऐसा जिसका अभिप्राय है उसके मतमें, अन्य शेष द्रव्योंसे असाधारण ऐसी वर्णादि स्वरूपता}कि जो पुद्‌गलद्रव्यका लक्षण है}उसका जीवके द्वारा अंगीकार किया जाता है इसलिए'** जो पुद्‌गलका स्वरूप है वह जीवके द्वारा अंगीकार करनेमें आता होनेसे...आहाहा....! **'जीव-पुद्‌गलके अविशेषका प्रसंग आता है'** जीव और पुद्‌गल दोनों एक है ऐसा प्रसंग आता है। आहाहा....!

जैसे पुद्‌गल जड़कर्म अजीवके साथ रागादि अजीव उत्पन्न होते हैं और व्यय होता है, उसके साथ तादात्म्यसंबंध है। वैसे ही, कोई ऐसा अभिप्राय रखे कि जीवके साथ रागका, अजीवका उत्पन्न होना और व्यय होना संबंध रखता है, तो उसने पुद्‌गलको ही जीव माना है। आहाहा....! जीवद्रव्य भिन्न है ऐसा नहीं माना। आहाहा....! ऐसी बात वीतरागका मार्ग है। बापू ! और जो वीतरागमार्ग समझे–एक क्षणके लिये भी समझमें आ जावे तो भवका अंत आ जाये ! आहाहा....! ऐसी बात है। आहाहा....!

क्या कहते हैं ?–कि जैसे पुद्‌गलके साथ–जड़कर्मके साथ राग-द्वेष उत्पन्न होते हैं और व्यय होते हैं, उसके साथ संबंध रखते हैं, वैसे ही यही आत्माके साथ राग और द्वेष उत्पत्तिका संबंध रखे तो आत्मा पुद्‌गल हो जाय–जीवद्रव्य रहे ही नहीं। आहाहा....! जो पुण्य-पापका आत्माके साथ संबंध मानता है, उसे जीवद्रव्य रहा नहीं, पुद्‌गल हो गया ऐसा कहते हैं। सूक्ष्म बात है, भाई !

जिस आत्माने ऐसा अभिप्राय किया कि मेरे साथ रागकी उत्पत्ति और व्यय होता है तो उसने पुद्‌गलको ही अपना माना है। आत्मा भिन्न है ऐसा माना नहीं। आहाहा....! ऐसी बात है। 'श्रीमद्'में 'अगास'में रात्रिको एक घंटा प्रवचन हुआ। थोड़े प्रश्न हुये। यह बात सही लेकिन उसका साधन क्या ? भक्ति आदि करना वह साधन (ऐसा वो मानते हैं)। अरेरे प्रभु ! आहाहा....! भगवानकी और गुणकी और शास्त्रकी भक्ति वह तो राग है। रागकी उत्पत्ति और व्ययका संबंध निश्चयसे तो पुद्‌गलके साथ है। व्यवहारसे एक समयकी पर्यायमें संसार हो, लेकिन तादात्म्यसंबंध नहीं है।

श्रोता :— ऐसा व्यवहारसे कहा जाता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह व्यवहारसे एक समयकी पर्यायकी अपेक्षासे कहा लेकिन तादात्म्यसंबंध नहीं है। कायम नहीं रहते इसलिए संबंध नहीं है। आहाहा....! आगेकी

गाथाओंमें कहेंगे। आहाहा....! आगेकी गाथामें आयेगा। संसारमें हैं उसे भी, वह ऐसा माने कि यह मेरा है, तो वह पुद्‌गल हो गया और पुद्‌गलकी मुक्ति हो गई। आहाहा....! क्या यह बात श्वेताम्बरके ४५-३२ सूत्र भी पढ़े तो भी यह बात वहाँसे नीकलनेवाली नहीं...आहाहा....!

यह तो भगवान त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेवके पास गये थे अंतरमें उनकी यह वाणी है...आहाहा....! हमारा प्रभु जो आत्मा शुद्ध चिदानंद वहाँ हम गये तो वहाँ तो राग, द्वेष, संसार है ही नहीं। उन राग-द्वेषका संबंध आत्माके साथ है ही नहीं। आहाहा....! यह तो 'अमृतचंद्राचार्यदेव', 'कुंदकुंदाचार्यदेव'के बाद एक हजार साल बाद हुये थे और वह तो भगवानके पास गये भी नहीं थे। वह तो यहाँ (अंतर)में गये थे ! आहाहा....! वाणी सुनना दुष्कर हो जाये ऐसी बात है !

एक तरफ ऐसा कहते हैं कि पुण्य, पाप और राग जीवकी पर्यायमें होते हैं, जीव उसका कर्ता-भोक्ता है। वह ज्ञानकी अपेक्षासे कहा है। एक तरफ दृष्टिकी अपेक्षासे कहते हैं कि राग और द्वेषकी उत्पत्तिको पुद्‌गलके साथ संबंध है, स्वभावकी दृष्टिसे देखे तो वह परके हैं। आहाहा....! ऐसी बात है।

वह पुण्य और पापके भाव, दया-दान आदिके भाव पुद्‌गलके साथ उत्पाद-व्यय धारण करते-व्याप्त होते दिखते हैं, वैसे ही यदि आत्माके साथ भी वह दीखे तो (आत्मा भी) पुद्‌गल हुआ, आत्मा पुद्‌गल हुआ, जीव रहा नहीं। रागरहित अखंडानंद प्रभु जीवद्रव्यका तो नाश हुआ और पुद्‌गलद्रव्यकी प्रसिद्धि हुई। आहाहा....! आहाहा....! भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनंद और अतीन्द्रिय ज्ञानका सागर प्रभु विराजमान है न, प्रभु ! नाथ ! आहाहा....! उसे तू रागसहित माने तो तो वह पुद्‌गलमय हो गया ! वहाँ वह जीव न रहा, प्रभु ! आहाहा....! अरे...! रागके शुभभावको तू धर्म मान और वह राग मेरा है ऐसा माने, प्रभु ! वहाँ आत्मा न रहा ! आहाहा....! वह तो पुद्‌गलकी प्रसिद्धि हुई। आहाहा....! इसमें नहीं उलझने जैसा है। आहाहा....! यह तो धीरजवानका कार्य है, बापू ! आहाहा....! संतोंने गजब कार्य किया है।

'न्यायप्राप्त' शब्द आया न ! आहाहा....! वहाँ पहले आया था न ! '**वह न्याय है**'। भावार्थमें आखिरी शब्द है। लोजीकसे–न्यायसे यह मार्ग प्राप्त है। आहाहा....! भगवंत ! तेरे स्वरूपमें राग-द्वेषकी उत्पत्ति यदि तेरेसे हो तो तो तू पुद्‌गल हो गया, आत्मा रहा नहीं। आहाहा....! क्योंकि वह राग-द्वेषकी जो उत्पत्ति होती है वह राग-द्वेष तो अजीव है। समझमें

आया ? दया दान, व्रत, भक्तिके परिणाम अजीव है। अगर वह अजीव तेरेसे उत्पन्न हो जाये तो तू जीव रहा नहीं। यह जीव-अजीव अधिकार है। आहाहा....! वहाँ 'धनबाद'में मिले ऐसा नहीं है।

श्रोता :— इसलिए तो यहाँ आते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :— इसलिए आते हैं, ऐसा कहते हैं। आहाहा....! ऐसी बात, भाई ! क्या करे ? अभी तो बहुत गड़बड़ कर दी है। पंडित लोग और साधु ऐसी प्ररूपणा कर रहे हैं कि यह व्रत, तप, भक्ति करोगे तो धर्म होगा। प्रभु...प्रभु...प्रभु...! पंचमकालमें दूसरा नहीं हो सकता, शुभभाव ही होता है, ऐसा कहते हैं। अररर...! लेकिन आत्मामें शुभभाव है ही नहीं। शुभभाव तो पुद्गलके साथ संबंध रखता है।

श्रोता :— आप अकेले हो गये !

पूज्य गुरुदेवश्री :— अकेला कौन और साथमें कौन ? भगवन् ! यहाँ तो जो है सो है। आहाहा....! संत दिगंबर मुनियोंने गजब कार्य किये हैं, प्रभु ! आहाहा....! केवलज्ञानीका विरह भुलाया है संतोंने ! आहाहा....! भाई ! तू ऐसा कहे कि शुभरागसे मुजे लाभ हो, शुभराग मेरा....आहाहा....! भाई ! वह तो पुद्गलकी प्रसिद्धि हुई, नाथ ! उसमें तेरी प्रसिद्धि नहीं हुई। आहाहा....! तूने तो रागको प्रधानपद दे दिया। राग तो पुद्गलके साथ संबंध रखता है। तादात्म्यसंबंध कहा है। जहाँ जहाँ कर्म, वहाँ वहाँ राग !

'आत्मावलोकन'में एक बात आई है, भाई ! जहाँ तक निमित्त है वहाँ तक राग है। ऐसा क्युं कहा ? दोनोंका संबंध दिखाना है। 'आत्मावलोकन'में ऐसा कहा है। जब तक कर्म है, तब तक राग है, कर्म न हो तो राग नहीं होता। ऐसा बताकर अनित्यता स्थापित करनी है और पुद्गलके संबंधके लक्षसे होता है इसलिए वह आत्माका स्वरूप नहीं है। आहाहा....! 'आत्मावलोकन'में है। उस दिन पढ़ा तब चिह्न किया था। कल देखा था। भाई लाया था। आहाहा....!

भगवान आत्मा तो अनंत अनंत ज्ञान, अनंत आनंद, अनंत शांति, अनंत वीतरागताका भंडार भगवान है। उस भंडारमेंसे नीकले तो राग नीकलेगा क्या ? रागको उत्पन्न करे ऐसा कोई गुण है ही नहीं न ! आहाहा....! ऐसा जो भगवान अनंत गुणका पिंड प्रभु, उसका जैसे ही स्वीकार होता है वैसे ही पर्यायमें अनंत आनंद, शांति आदिकी पर्याय प्रगट हो जाती है। उस उत्पाद-व्ययका संबंध द्रव्यके साथ है। आहाहा....! कि जो उत्पाद और व्यय सिद्धमें भी रहते हैं। आहाहा....!

एकबार विचार आया था, प्रभु ! तुने मुजे यहाँ कहाँ भेजा ? ऐसा आया था। उसका मतलब कि प्रभु ! तेरे ज्ञानमें यहाँ आया ऐसा कैसे आया ? प्रभु ! तेरे ज्ञानमें ऐसा आया कि मैं यहाँ आउँगा। इसीको तुने मुझे भेजा। भाई ! समझमें आया ? आहाहा....! उसका मतलब यह कि प्रभु ! तेरे ज्ञानमें ऐसा था कि (मैं) यहाँ आऊँ। आहाहा....! इस अपेक्षासे... ऐसी बात है। आहाहा....! 'अमृतचंद्राचार्य'ने अमृत परोसा है।

यहाँ कहते हैं, प्रभु ! एकबार सुन ! चाहे तो भक्तिका राग, परमात्माके स्मरणका, पंच परमेष्ठीके स्मरणका (राग हो)....एकबार किसीने कहा था कि भगवानका स्मरण करनेमें क्या कषाय ? लेकिन स्मरण करना वही विकल्प–राग है। वह परद्रव्यके गुणोंका स्मरण करनेसे विकल्प होता है, भाई ! आहाहा....! ऐसा कहते हैं कि कहाँ कषाय आया (उसमें) ? बापू ! वह स्वयं कषाय है, भाई ! और वह कषायकी उत्पत्ति और व्यय पुद्गलके साथ संबंध रखता है, प्रभु ! आहाहा....! गजब बात है, भाई !

भगवान तीनलोकके नाथ दिव्यध्वनि द्वारा यह अर्थ करते होंगे तब...आहाहा....! और गणधर और एकावतारी इन्द्रों जहाँ होंगे....गणधर उसी भवसे मोक्ष जायेंगे और इन्द्र एकावतारी है। उनको भी जहाँ विस्मय लगता है वह कैसी बात होगी ??

यहाँ कहते हैं '**कि जो पुद्गल द्रव्यका लक्षण है**' द्रव्योंसे असाधारण है न ? '**ऐसा जिसका अभिप्राय है उसके मतमें, अन्य बाकीके द्रव्योंसे असाधारण ऐसा वर्णादि स्वरूपपना कि जो पुद्गल द्रव्यका लक्षण है....**' रागादि '**उसका जीव द्वारा अंगीकार करनेमें आता होनेसे...**' उस पुद्गलके स्वभावको जीवके साथ अंगीकार किया उसने '**जीव-पुद्गलके अभेद...**' जीव और पुद्गलकी भिन्नता रही नहीं, एकरूपताका प्रसंग आया। आहाहा....! शुभरागसे आत्माको धर्म होता है ऐसा माननेवालेको कहते हैं कि तूने पुद्गलको आत्मा माना। आहाहा....! '**जीवका जहाँ अभाव होता है।**' आहाहा....! वह रागका जो विकल्प है वह आत्माके साथ संबंध रखता है ऐसा जो माने तो वो तो पुद्गलका–अजीवका लक्षण है। वह तो अजीवके साथ तादात्म्य है और अजीवका लक्षण है। आहाहा....! क्योंकि राग स्वयं अजीव है। आहाहा....! वह जीव स्वरूप नहीं है। आहाहा....! और जीवस्वरूप न होनेपर भी उसका संबंध अपनेमें मान तो आत्मा पुद्गल हो गया, जीव तो भिन्न रहा नहीं। आहाहा....! '**जीवका जरूर अभाव होता है।**' लो ! बहुत ही अच्छी टीका आ गई ! विशेष कहेंगे.... (श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

३१ श्री परमात्मप्रकाश, गाथा—५१-५२, प्रवचन नं. ३३, दि. १३-७-१९७६

'परमात्मप्रकाश' ५१ गाथा है, भावार्थ....

श्रोता :— ५२

पूज्य गुरुदेवश्री :— ५१, ५१, ५१ बाकी है। यह आत्मा **'व्यवहारनयसे केवलज्ञानरूपकर लोक-अलोकको जानता है...'** लोकालोकको व्यवहारनयसे जानता है, निश्चयसे नहीं अर्थात् तन्मय होकरके नहीं जानता इसलिए व्यवहारसे जानता है ऐसा कहा। अपने ज्ञानको जानता है वह तो तन्मय होकरके जानता है कि जिससे सुख-आनंदका वेदन (होता है)। स्वयंको तन्मय होकरके जानता है इसलिए आनंदका वेदन स्वयंमें है। परको तन्मय होकरके जाने तो उसके सुख-दुःखका वेदन यहाँ आ जाय। समझमें आया? यह 'समयसार'में 'सर्वविशुद्ध अधिकार'में आया है। 'जयसेनाचार्य'की संस्कृत टीकामें लिखा है।

'व्यवहारनयसे केवलज्ञानकर लोक-अलोकको जानता है। शरीरमें रहने पर भी निश्चयनयसे अपने स्वरूपको जानता है...' ज्ञान ज्ञानको जानता है। 'समयसार' १७-१८ गाथामें आया न कि ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञायक ही जाननेमें आ रहा है। क्या कहा? ज्ञानकी पर्यायमें द्रव्य ही जाननेमें आ रहा है, लेकिन अज्ञानीकी दृष्टि उस द्रव्यके उपर नहीं है इसलिए ज्ञानमें यह जाननेवाला आत्मा ही पर्यायमें आ रहा है, पर नहीं (यह ख्यालमें नहीं आ रहा)। १७-१८ (गाथा), सबको (जाननेमें आ रहा है) ऐसा वहाँ कहा है। सदाय सर्व जीवको...आहाहा...! भगवान आत्मा उसकी ज्ञानकी पर्यायमें (जाननेमें आ रहा है) क्योंकि उस पर्यायका स्व-परप्रकाशक स्वभाव होनेसे वह स्व-जाननेवालेको ही जानता है; फिर भी अज्ञानीकी दृष्टि, **'उस ज्ञानकी पर्यायमें जाननेवाला ही जाननेमें आ रहा है'**, उस पर नहीं होनेसे उसको ऐसा लगता है कि यह रागको जान रहा है। समझमें आया? क्या कहा?

ज्ञानकी पर्यायका त्रिकाल-सदाय स्व-परप्रकाशक स्वभाव ही है। वास्तवमें तो ज्ञानकी पर्याय द्रव्यमें जो है उसको जानती है और उसमें परप्रकाशकपना साथमें आ जाता है। स्वको जानते हुये रागको जाने ऐसा स्वतः स्वपरप्रकाशकपना आ जाता है, लेकिन अज्ञानीको 'ज्ञानकी पर्यायमें स्वप्रकाशक सामर्थ्यसे जाननहारा जाननेंमें आ रहा है' ऐसे

उसका लक्ष नहीं। इसलिए उसे राग और परप्रकाशक है, सिर्फ परप्रकाशक है ऐसा मिथ्यादृष्टिको आभास होता है। समझमें आया ? आहाहा...! इसमें कुछ समझमें आया ? भाई ! यह सूक्ष्म बात है। आहाहा...!

१७-१८में कहा कि सदाय सबको जानता होने पर भी उसका उसे लक्ष न होनेसे उसे ज्ञानमें-पर्यायमें राग और परज्ञेय जाननेमें आते हैं। सिर्फ परप्रकाशक (है ऐसा) अज्ञानीको आभास होता है। समझमें आया ? मार्ग तो सूक्ष्म है, बापू ! समझमें आया ? एकबार कहा था न ! लड्डु मैंने खाया, यह मैंने छोडा... वह जब तन्मय हुआ ही नहीं तो छोडे क्या ? यह मकान बनाया ऐसा व्यवहारसे बोलनेमें आता है। उसमें (मकानमें) तन्मय होकर बनाया है ? 'लड्डु खाया' (तो क्या) लड्डुके परमाणुको खाता है ? वह तो रागको खाता है, व्यवहारसे ऐसा कहते हैं कि लड्डु खाया, रोटी खाई, मैसुब खाया। समझमें आया ?

वैसे ही मकान बनाया (तो क्या) उसने बनाया है ? रागको बनाया है। (मकान) कौन बनाये ? वह तो परमाणुकी पर्याय बनाती है। परमाणुमें कर्ता और करण नामके गुण है या नहीं ? उसके द्वारा यह (मकानकी) पर्याय होती है। लेकिन कहते हैं कि 'यह मैंने किया' ऐसा कहना व्यवहार है ऐसा कहना है। इसके साथ मिलान करना है न !

लोकालोकको आत्मा जानता है वह व्यवहार है क्योंकि परको जानते समय परके साथ एकमेक होकर नहीं जानता और स्वयंको जानते समय तन्मय होकर उसकी पर्यायको जानता है। आपका प्रश्न है इसलिए कहा। पर्यायको जानते समय पर्यायमें तन्मय होकर पर्यायको जानता है। परको जानते समय परमें तन्मय होकर जानता नहीं, इसलिए व्यवहारसे जानता है ऐसा कहनेमें आता है। भाई ! इसमें बहुत लंबा है। आहाहा...!

श्रोता :— परको जानना झूठा है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— हाँ, है तो ऐसा ही; परको जानना, झूठा ! अभी कहेंगे, इसमें भी कहा है। तो फिर व्यवहारसे सर्वज्ञ है न ? ऐसा पूछा है। व्यवहारसे सर्वज्ञ है न ? आहा...! लड्डु, रोटी, दाल, सब्जी, चावल, आदि भोक्ता हूँ वह तो व्यवहार है, उसका कहाँ भोग करता है ? 'यह छोडा' (लेकिन) उसने कहाँ छोड़ा है ? वास्तवमें तो उसने रागको किया और रागको भोगा है। लड्डु खाया और घर-मकान बनाया ऐसा है ही नहीं। इत्यादि अनेक पर्याय...निश्चय-व्यवहारको जानना। तब प्रश्न आया था। 'परमात्मप्रकाश'....

क्या कहा ? निश्चयसे सर्वज्ञ इन सबके जाननहार नहीं है। व्यवहारसे परको

जाननेवाले हुये तो निश्चयसे सर्वज्ञ नहीं हुये। जैसे अपने आनंद और ज्ञानमें तन्मय होकर जानते हैं वैसे ही परद्रव्य न जानाति ! आहाहा...! जानता तो है बराबर...परको तन्मय होकर जाने तो परके जो काल्पनिक सुख-दुःख है उसके साथ इसका तन्मयपना हो जाये और उसके सुख-दुःखका यहाँ वेदन होने लगे ! देखो !

'निश्चयनयसे अपने स्वरूपको जानता है...' ज्ञान ज्ञानको जानता है। वह अपने (२७१ कलशमें) आया है न ! स्वयं ज्ञेय, स्वयं ज्ञाता और स्वयं ज्ञान। यह ज्ञान और यह परज्ञेय–ऐसा नहीं है। परज्ञेयको जानता है वह तो व्यवहार हुआ और उसको जाननेवाला जो ज्ञान हुआ अपनेमें हुआ उसे ज्ञेय करके जानता है वह निश्चय हुआ, आहाहा...! **'इस कारण ज्ञानकी अपेक्षा तो व्यवहारनयसे सर्वगत है...'** इस अपेक्षासे, **'प्रदेशोंकी अपेक्षासे नहीं...'** परके क्षेत्रमें ज्ञान जाता है ऐसा नहीं है, अपने प्रदेशमें रहकरके जानता है। दृष्टांत दिया है।

'जैसे रूपवाले पदार्थोंको नेत्र देखते हैं...' नेत्र रूपको देखता है, रूपमें तन्मय होकर देखता है क्या ? **'परंतु उन पदार्थोंसे तन्मय नहीं होते...'** आंख परको जाने, अग्निको जाने, बरफको जाने....अग्निमें तन्मय होकर जानती है क्या ? (तन्मय होकर जाने) तो तो आंख जल जाये लेकिन आंख जलती नहीं है। आंखमें गरमीका ज्ञान अपना है, वह होता है। अग्नि ज्ञात होने पर अग्नि संबंधीका स्व जो अपना ज्ञान है वह जाननेमें आता है। अग्नि जाननेमें आती है ऐसा कहनेसे तो अग्निके साथ एकमेक हो जावे (लेकिन) ऐसा तो नहीं है। आहाहा...! **'उसरूप नहीं होते हैं'**।

'यहाँ कोई प्रश्न करता है कि जो व्यवहारनयसे लोकालोकको जानता है और निश्चयनयसे नहीं, तो व्यवहारसे सर्वज्ञपना हुआ...' वहाँ ऐसा कहा था। व्यवहारनयसे सर्वज्ञ हुये। **'निश्चयनयसे नहीं हुये ? उसका समाधान करते हैं—जैसे अपनी आत्माको तन्मय होकर जानता है उसप्रकार परद्रव्यको तन्मयीपनेसे नहीं जानता...'** इस अपेक्षासे व्यवहारनय कहा। अपना और परका अपनेमें जो जानना हुआ वह तो तन्मय है, समझमें आया ? **'परद्रव्यको तन्मयीपनेसे नहीं जानता, भिन्नस्वरूप जानता हैं...'** वह मेरेसे भिन्न है ऐसा जानते हैं। अग्निको जानने पर ज्ञान जानता है कि अग्नि भिन्न है। लोकालोकको जानने पर ज्ञान जानता है कि लोकालोक भिन्न है। समझमें आया ? आहाहा...!

'व्यवहारनयसे कहा, कुछ ज्ञानके अभावसे नहीं कहा ...' क्या कहा ? परके ज्ञानका यहाँ अभाव है इसलिए उसे व्यवहारसे परको जानता है ऐसा कहा है, ऐसा नहीं है। उसमें तन्मय होकर नहीं जानता है इसलिए नहीं जानता (ऐसा कहा है), लेकिन

तन्मयीपने जानना तो अपनेमें है। स्व-परप्रकाशकका ४७ शक्तियोंमें आता है न ? सर्वज्ञ है वह आत्मज्ञ है। वह तो सर्वज्ञपना ही–आत्मज्ञपनेका ही इतना सामर्थ्य है। उसको (सर्वको) जानता है ऐसा कहना वह तो व्यवहार है। सर्वज्ञपनेकी जो पर्याय है वह तो स्वयंको–सर्वज्ञपदको स्वयं जानती है, स्व और परको पूर्ण जानती है, वह आमत्मज्ञ है, सर्वज्ञ नहीं, आहाहा...! भिन्नता दिखा रहे हैं।

भिन्नताका ज्ञान होने पर भी (वह ज्ञान) भिन्नताके कारण नहीं है। समझमें आया ? भिन्न पदार्थका ज्ञान यहाँ होता है वह भिन्न पदार्थ है इसलिए होता है ऐसा नहीं है और भिन्नको जानता है वह उसमें तन्मय होकर जानता है ऐसा नहीं। वह भिन्न संबंधीका जो ज्ञान (होता है) वह अपने सामर्थ्यसे हुआ अपनेमें होकर जानता है और अपनेमें रहेगा। आहाहा...! ऐसी सूक्ष्म बात !

'भिन्न स्वरूप जानता है, इस कारण व्यवहारनयसे कहा, ज्ञानके अभावसे नहीं कहा।' परके ज्ञानका यहाँ अभाव है इसलिए परको जाने उसे व्यवहार कहा ऐसा नहीं है। पर संबंधके ज्ञानका तो अपनेमें सद्भाव है लेकिन **'परको जानता हूँ'** ऐसा जो कहना है वह व्यवहार है। समझमें आया ? सर्वज्ञ अर्थात् सर्वको जाने ऐसा कहना वह तो व्यवहार है, क्योंकि सर्वको जानते सर्व वस्तुमें वह ज्ञान स्पर्शके, प्रवेश करके जानता है ऐसा नहीं है। आहाहा...! इस लकडीको ऐसे जानता है, उस लकडीमें ज्ञान प्रवेश करके जानता है ?—(नहीं), फिर उस (लकड़ी) संबंधीका ज्ञान यहाँ होता है वह तो अपने स्व-पर(प्रकाशक) सामर्थ्यकी वजहसे हुआ है; इसकी वजहसे हुआ है, उसमें प्रवेश करके हुआ है ऐसा नहीं है। आहाहा...!

श्रोता :—....

पूज्य गुरुदेवश्री :—प्रवेश तो है, पर्यायमें प्रवेश नहीं है क्या ? वह दूसरी बात है, वह प्रश्न दूसरा है। वह पता है इसलिए तो पहलेसे –शुरुसे बात कर रहे हैं। द्रव्यमें वह (पर्याय) तन्मय होकर जानती है उसका मतलब कि (द्रव्यके) और पर्यायके प्रदेश एक है ऐसा मानकरके (कहा है)। वास्तवमें तो पर्याय द्रव्यमें तन्मय होकर जानती है ऐसा नहीं है। यहाँ वह बात नहीं करनी। यहाँ तो परको जाननेमें परमें उसका स्पर्श हुआ नहीं है, इसलिए उसे व्यवहारसे जानता है ऐसा कहा है; लेकिन परसंबंधी ज्ञान और स्वसंबंधके ज्ञानका उसमें अभाव है ऐसा नहीं। ज्ञान तो स्व-परप्रकाशक अपने सामर्थ्यसे हुआ है। समझमें आया ? अरे ! अरे...! ऐसा है। सर्वज्ञको सिद्ध करनेके लिये भी...आहाहा...!

सर्वज्ञ सर्वको जाने, सर्वज्ञ सर्वको जाने इसलिए सर्वज्ञ है ऐसा नहीं है। सर्वको जानते हुये सर्वज्ञकी पर्याय परमें चली गई नहीं, परको स्पर्शी नहीं है। लेकिन परका ज्ञान यहाँ अपनेसे अपने द्वारा हुआ है इसलिए तन्मय होकर जानता है ऐसा कहकर निश्चय कहा। परमें तन्मय होकर जानता नहीं है इसलिए व्यवहार कहा। समझमें आया ? यहाँ वह बात न लेना। वह तो पहलेसे ही दिमागमें था। ज्ञानकी पर्याय द्रव्यको जानती है तब तन्मय होकर जानती है। वह अभी नहीं लेना है। समझमें आया ? आहाहा...!

श्रोता :— ....

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह पर्याय पर्यायमें रहकर द्रव्यको जानती है, (पर्याय पर्यायमें) रहकर द्रव्यको जानती है।

श्रोता :—

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह व्यवहार नहीं। व्यवहारका अर्थ कि वो दोनों भिन्न है। यह और यह दोनों भिन्न वस्तु है न ? उस अपेक्षासे उसको जानती है तो तन्मय होकर, अपने असंख्य प्रदेशमें है इसलिए। वास्तवमें तो पर्याय द्रव्यमें एक होती नहीं। यह तो कल बहुत बात हो गई है। समझमें आया ? वह प्रश्न अभी नहीं है। अभी तो, परको जाने वह व्यवहार और स्वको जाने वह निश्चय इतना सिद्ध करना है। बस इतना, इस कारणसे...आहाहा...!

अपनेमें द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों आ गये। समझमें आया ? लेकिन बादमें जब दोनोंका भेद करना हो तब एक समयकी पर्याय जो है वह पूर्ण द्रव्यको जानती है। वह तो कल बहुत बात हो गई है। वहाँ ('समयसार') १७-१८में कहा न कि (आबाल-गोपाल) सबको पर्यायमें स्वद्रव्य ही जाननेमें आता है, क्योंकि पर्यायके स्वयंके स्व-परप्रकाशक स्वभावका सामर्थ्य है, वह द्रव्यकी वजहसे नहीं। समझमें आया ? वह पर्यायका–एक समयकी पर्यायका सामर्थ्य है। स्व और परको अपनेमें रहकर जानना ऐसी उसकी (पर्यायकी) ताकात है। आहाहा...! ऐसा सूक्ष्म मार्ग है, भाई !

अभी तो सिर्फ परको जानता है इसलिए व्यवहार कहा, इसलिए परका ज्ञान यहाँ नहीं ऐसा नहीं है। परका ज्ञान वह अपना ज्ञान है। स्वका ज्ञान और परका ज्ञान यह (दोनों) स्वका ज्ञान है। सर्वज्ञपनेका अभाव नहीं है। परसंबंधी ज्ञान और स्वसंबंधी ज्ञानका अभाव नहीं है। सिर्फ परको तन्मय होकर नहीं जानता इसलिए व्यवहार कहा, लेकिन सर्वज्ञपना जो है वह व्यवहार है ऐसा नहीं है। समझमें आया ? भाई ! ऐसी बात है यह सब। आहाहा...! जैन परमेश्वरका कथन अलौकिक है, ऐसा और कहीं नहीं है। आहाहा...!

'व्यवहारनयसे कहा, कुछ ज्ञानके अभावसे नहीं कहा।' देखा ! क्या कहा ? कि सर्वको जानता है ऐसा कहना तो व्यवहार है, तो क्या यहाँ सर्वका ज्ञान नहीं है ?–कि सर्वका ज्ञान वह यहाँ अपना ज्ञान है। सर्वका ज्ञान....वह तो निमित्त है लेकिन परसंबंधीका–स्वसंबंधीका ज्ञान पर्यायमें अपनेसे है। ज्ञानके स्व-परप्रकाशक ज्ञानका अभाव नहीं है। परप्रकाशक ज्ञानका अभाव नहीं है, परवस्तुका अभाव है। समझमें आया ? आहाहा...! इतना एक समयकी पर्यायका सामर्थ्य कहते हैं। आहाहा...!

कल रह गया था। अलिंगग्रहणका २०वाँ बोल, भाई ! आत्मा अपने द्रव्यको छूता नहीं है। २०वाँ बोल। प्रत्यभिज्ञानका कारण ऐसी जो वस्तु, प्रत्यभिज्ञानका कारण ऐसा जो द्रव्यस्वभाव उसको आत्मा छूता नहीं है, आलिंगन नहीं करता, वर्तमान पर्यायके वेदन जितना ही आत्मा है। भाईने कहा था न ! पीछली बार दर्शन करने आये थे न ! आहाहा...! महाराज...! 'लोटिया वोरा' ९३-९४ वर्षकी आयुका मुसलमान घर पर पढे (और) पढ़कर दर्शन करने आये। शरीरमें कंपन था इसलिए प्रवचनमें नहीं आये थे। शेठ ! भाई (अलिंगग्रहण) १८, १९, २० बोलका स्वाध्याय करके आये और कहा कि १८, १९, २० बोलने तो कमाल कर दिया है ! आहाहा...!

क्या है १८वें बोलमें ?–कि **'आत्मा गुण विशेषको स्पर्शता नहीं, भेदको स्पर्शता नहीं'**। ऐसा १८वाँ बोल है। ऐसा घरसे पढकर आया और ऐसा खुशी हुआ...ऐसा खुशी हुआ...आहाहा...! यह वस्तु !! हमने प्राप्त कर लिया है, हमारा तो मोक्ष होना है ऐसा कहते थे। १८वाँ बोल ऐसा था। अलिंगग्रहण अर्थात् अर्थावबोधरूप गुणविशेष...ऐसा पाठ है। अर्थावबोधरूप गुणविशेषको आलिंगन नहीं करता। ऐसा वह आत्मा शुद्धात्मा है। अर्थात् गुणी, गुणके भेदको नहीं स्पर्श करता, अभेद है; भेद करना वह तो व्यवहार हो गया। आहाहा...! सूक्ष्म बात है।

अर्थावबोधरूप गुणविशेषको नहीं आलिंगन करता ऐसा आत्मा शुद्ध है ऐसा पाठ है। अर्थात् आत्मा गुणी वह गुणभेदमें नहीं आता। शेठ ! घरपर स्वाध्याय करके वह वोरा ऐसा लेकरके आये थे। अभी भी है, अभी भी आये थे। इसबार व्यवहारका दूसरा लाये थे। आत्मामें दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन (भेद) नहीं है। आज लाये थे, (समयसार) ७वीं गाथामें आता है। फिर जंगलमें ध्यान करने चले जाते थे। मुसलमान भी आत्मा है कि नहीं ?

पहेले (१८वाँ) बोल यह हुआ कि अर्थावबोधरूप गुणविशेषको आत्मा आलिंगन नहीं करता ऐसा वह शुद्ध आत्मा अभेद है। १९वाँ, अर्थावबोधरूप पर्यायविशेष...अब

पर्यायकी बात है...उसको नहीं आलिंगन करता ऐसा आत्मा शुद्धात्मा है। आहाहा...! फिर तीसरा (२०वाँ)। प्रत्यभिज्ञानका कारण यह है...है...है... है...है...है... आत्मा ध्रुव है। प्रत्यभिज्ञानका कारण वह है...है...है... उसको आत्मा नहीं आलिंगन करता हुआ पर्यायमात्र है। अनुभवमें पर्याय आती है, द्रव्य अनुभवमें नहीं आता, वेदनमें तो पर्याय आती है। आहाहा...! उसकी दृष्टि द्रव्य पर है, लेकिन वेदनमें तो पर्याय है। अनुभव है वह द्रव्य, गुण-ध्रुवका नहीं हो सकता। समझमें आया ? वेदनमें तो पर्याय ही आती है। केवलीको भी पर्यायका वेदन है, द्रव्य-गुणका (वेदन) नहीं होता। द्रव्य-गुणका ज्ञान होता है लेकिन वेदन द्रव्य-गुणका नहीं होता। आहाहा...! एक एक न्याय तो देखो !

आनंदके अनुभवमें वेदन पर्यायका है फिर भी उस ज्ञानकी पर्यायमें द्रव्य और गुणका ज्ञान है। लेकिन द्रव्य-गुणका वेदन नहीं है। आहाहा...! समझमें आया ? आहाहा...! एक समयकी पर्यायमें संपूर्ण द्रव्यका–अनंत गुणोंके पिंड वस्तुका उसमें ज्ञान है, लेकिन उस पर्यायमें द्रव्य-गुणका वेदन नहीं है। आहाहा...!

भगवान आत्मा एक समयकी ज्ञानकी पर्यायका सामर्थ्य संपूर्ण द्रव्यको जाने, संपूर्ण लोकालोकको जाने ! स्वप्रकाशकरूपसे जाने और परप्रकाशकरूपसे लोकालोकको (जाने)। वह स्व-परप्रकाशकका सामर्थ्य अपना है, परसे नहीं है। वह परका ज्ञान हुआ इसलिए परकी वजहसे (ज्ञान) हुआ है ऐसा नहीं है। समझमें आया ? ऐसा मार्ग है लेकिन लोगोंको नक्की करनेके लिए समय-फुरसत कहाँ है ? आहाहा...! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर त्रिलोकनाथ...आहाहा...! जिसको इन्द्र-गणधर सुनते हैं...! आहाहा...! चौद पूर्व और बारह अंगकी रचना गणधरने अंतर्मुहूर्तमें करी वह गणधर भी सुनने बेठते हैं। समझमें आया ?

यहाँ वह कहते हैं '**यहाँ कोई प्रश्न करता है कि व्यवहारनयसे लोकालोकको जानता है और निश्चयसे नहीं, तो व्यवहारमें सर्वज्ञपना हुआ, निश्चयनयकर नहीं हुआ ? उसका समाधान करते हैं}जैसे अपनी आत्माको तन्मयी होकर जानता है, उस तरह परद्रव्यको तन्मयी होकर जानता है, उस तरह परद्रव्यको तन्मयीपनेसे नहीं जानता...**' इतना सिद्ध करना है। '**भिन्न स्वरूप जानता है इस कारण व्यवहारनयसे कहा, कुछ ज्ञानके अभावसे नहीं कहा।**' परको (जाननेवाले) अपने ज्ञानका जहाँ अभाव है, स्वका ही ज्ञान है और परका ज्ञान नहीं ऐसा नहीं है। आत्माको स्वका ही ज्ञान है और परका नहीं है ऐसा नहीं है। '**कुछ ज्ञानके अभावसे नहीं कहा...**' समझमें आया ? आहाहा...!

'**ज्ञानकर जानना तो निज और परका समान है।**' देखा ! आहाहा...! ज्ञानकी

पर्यायमें निज संपूर्ण द्रव्य-गुण-पर्याय और पर-लोकालोक–यह पूरा अस्तित्व है। **'निज और परका समान** है।' अर्थात् निजका ज्ञान भी अपनेमें है और परका ज्ञान भी अपनेसे हुआ अपनेमें है, समान है। निजका ज्ञान और परसंबंधीका अपना ज्ञान दोनों समान है। वह तो परमें घुसता नहीं इसलिए परको जानता नहीं–परको जानता है वह व्यवहार कहा है; परमें जाता नहीं, स्पर्शता नहीं। आहाहा...! और वास्तवमें तो लोकालोककी हयाती है इसलिए ज्ञानकी पर्यायमें परप्रकाशकपनेका ज्ञान आया ऐसा भी नहीं है। आहाहा...!

वह तो (संवत) १९८३में 'दामनगर'में चर्चा हो गई थी। शेठने कहा कि लोकालोक है तो यहाँ उसे जाननेकी पर्याय हुई, (लेकिन) ऐसा नहीं है। ज्ञानकी पर्यायका सामर्थ्य ऐसा है। स्व और परको जाननेका समान सामर्थ्य है ऐसा कहा न ! परको जाननेके लिये परकी उपस्थिति है इसलिए जानता है (ऐसा नहीं है) अरे...! द्रव्यको जाननेके लिए द्रव्यकी उपस्थिति है इसलिए पर्याय (द्रव्यको) जानती है ऐसा भी नहीं है। पर्यायका ही इतना सामर्थ्य है, स्वको जानना और परको जानना दोनों समान अपनेसे है। आहाहा...! भाई ! यह सब विचार भी कभी कहाँ किया है ! ऐसे ही संसारकी मजूरी करी है ! एक तो शेठ और उपरसे कार्यकर्ता ! फँस गये अंदर !

श्रोता :— कीचड़....कीचड़ है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— कीचड़ है, सही बात है। फिर भी सब भाग्यशाली है। आहाहा...! क्या कहा ? देखो ! **'निज और परका समान है'** वह क्या कहा ?–कि अपना ज्ञान और परका ज्ञान वह स्वयंसे समान है। ऐसा नहीं है कि पर है तो ज्ञान होता है। वह अपना और परका ज्ञान अपनेमें अपने सामर्थ्यसे होता है। आहाहा...!

यहाँ कहते हैं...आहाहा...! **'ज्ञानकर निज और परका जानपना समान है'**। आहाहा...! अर्थात् स्वयं अपने ज्ञानमें तन्मय होकर (स्वयंको) जानता है वैसे ही यहाँ जो परसंबंधीका ज्ञान है, उसमें वह तन्मय होकर जानता है, परमें तन्मय होकर नहीं। आहाहा...! क्या कहा ? वीतराग मार्ग...बापू ! **'ज्ञानकर जानपना'** निज और परका समान है। इतने शब्दोंमें कितना समा दिया है, देखा ! स्वयं तो द्रव्य-गुण-पर्याय है उनको जानता है वैसे ही परके–लोकालोकके द्रव्य-गुण-पर्याय त्रिकाल है उसको जानता है, यह जानना तो समान ही है। स्वका और परका जानना अपनेमें समान है। परको जानना ऐसा कहना व्यवहार है। इसलिए परसंबंधीका अपना जो ज्ञान है उसका अभाव नहीं है। आहाहा...! सर्वज्ञपना है वह आत्मज्ञपना है ऐसा सिद्ध करना है। समझमें आया ? सर्वज्ञपना है वह आत्मज्ञपना

ऐसा सिद्ध करना है। समझमें आया ? आत्मज्ञ ही ऐसी स्थिति है कि स्वको और परको जाननेकी स्थितिवाला आत्मज्ञपना सामर्थ्य है। आहाहा...! समझमें आया ? आहाहा...! खुलासा कैसा है ? देखा !

'ज्ञानकर जानना तो निज और परका समान है। जैसे अपने को संदेह रहित जानता है वैसे ही परको (संदेहरहित) जानता है...' परसंबंधीका ज्ञान निःसंदेह अपनेमें है ऐसा कहते हैं। **'परको भी जानता है, इसमें संदेह नहीं समझना...'** परको जानना वह व्यवहार कहा इसलिए यहाँ पर संबंधीका ज्ञान नहीं ऐसा नहीं है। वह परसंबंधीका ज्ञान वह यहाँ अपना ज्ञान है। आहाहा...! समझमें आया ? ऐसा सूक्ष्म है, बापू ! वस्तुका स्वरूप ऐसा है, आहाहा...!

इसलिए रागको ज्ञान जाने उसे उपचरित सद्भूत व्यवहारनय कहा। चार नय कही है न ! सद्भूत उपचारनय, सद्भूत अनुपचारनय, असद्भूत उपचारनय, असद्भूत अनुपचार नय। राग है वह ख्यालमें आवे उतना राग असद्भूत उपचार कहा और उस समय रागका भाग जो पकड़में आया, उसके पीछे (जो राग) पकड़में नहीं आया उसे असद्भूत अनुपचार कहा, लेकिन उस (राग) संबंधीका ज्ञान हुआ है। इसका ज्ञान, उसका ज्ञान वह सब असद्भूत लेकिन उस संबंधीका ज्ञान अपनेमें हुआ है वह तो अपनेसे हुआ है। समझमें आया ? आहाहा...! दो (नय) हुये।

तीसरा...रागको ज्ञान जाने ऐसा जो सद्भूत उपचार प्रमाण, उस प्रमाणको भी सद्भूत उपचार कहा। रागको जाने वह सद्भूत उपचार और ज्ञान वह आत्मा वह सद्भूत अनुपचार। उसे उपचार कहा लेकिन जाननेकी जो पर्याय हुई है रागको जाननेकी, अनुपचार जाननेकी, उपचारको (जाननेकी) वह पर्याय अपनेसे हुई है, आहाहा...! वह चैतन्य-सूर्य भगवानका चैतन्य-तेज उसका है, जिसमें चैतन्यके नूरका, तेजका प्रकाश पूरा भरा है। आहाहा...! पर्यायमें स्व और परका भास हुआ वह अपनी चीज है ऐसा कहते हैं, वह परसे नहीं है। समझमें आया ? शेठ ! यह समझमें आये वैसा है। भाषा तो सरल है, भाव भले ही ऊँचे हो ! उनको ज्यादा रुचि है, निवृत्ति लेते हैं। बापू ! यह करने जैसा है। बाकी और क्या है उसकी खबर नहीं है क्या ? आहाहा...! ओहोहो...!

कहते हैं, **'जैसे अपनेको संदेह रहित जानता है, वैसा ही परको भी जानता है, इसमें संदेह नहीं'**... परको जानना ऐसा कहना वह व्यवहार है लेकिन परसंबंधीका ज्ञान है उसमें संदेह नहीं, वह अपना ज्ञान है। आहाहा...! भाई ! विषय थोडा सूक्ष्म आ गया है।

ऐसी बात है। जितना उसका अस्तित्व, सामर्थ्य है उतना उसे ख्यालमें आना चाहिये न ! क्या कहा समझमें आया ? ज्ञानकी पर्यायके अस्तित्वका सामर्थ्य इतना है कि स्व और परको जानना अपनेसे अपनी वजहसे है, ऐसा उस पर्यायका सामर्थ्य है। उस पर्यायको माना तब कहा जाये कि जितना उसका सामर्थ्य है उतना माने ! समझमें आया ? सम्यग्दर्शन उसे कहा न ? सम्यक् अर्थात् जैसा सत्का स्वरूप द्रव्य-गुण-पर्यायका है उस प्रकारसे सम्यक् प्रतीति होवे ! जिस प्रकार है वैसी प्रतीति होवे तो वह सम्यग्दर्शन है। आहाहा...!

'लेकिन निज स्वरूपसे तो तन्मयी है और परसे तन्मयी नहीं; जिस तरह निजको तन्मयी होकर निश्चयसे जानता है...' यही खुलासा वहाँ किया। **'उसी तरह यदि परको भी तन्मय होकर जाने तो परके सुख, दुःख, राग, द्वेषके ज्ञान होने पर सुखी, दुःखी, रागी, द्वेषी हो...'** ज्ञानकी पर्याय परके सुख-दुःखमें तन्मय होकर जाने तो यहाँ (सुखी, दुःखी हो जाय)। सुख अर्थात् संसारिक सुख ! इन्द्रियके सुखकी बात है। इन्द्रियके सुख-दुःखको तन्मय होकर जाने तो यहाँ इन्द्रियका सुख-दुःख आ जाय ! समझमें आया ? तो यहाँ राग-द्वेषको तन्मय होकर जाने तो राग-द्वेष यहाँ आ जाय आहाहा...! अग्निमें तन्मय होकर जाने तो ज्ञान गरम हो जाय, बरफको तन्मय होकर जाने तो ज्ञान ठंडा हो जाय; (लेकिन) गरम-ठंडी तो जड़की अवस्था है, स्पर्शकी अवस्था है। आहाहा...! समझमें आया ? ऐसा मार्ग है, भाई !

'इसप्रकार कभी नहीं हो सकता'। ज्ञान परको जानते हुये परमें तन्मय हो जाय तो ज्ञानमें सुख-दुःख और राग-द्वेष हो जाय, लेकिन ऐसा नहीं। आहाहा...! पापीके परिणाम ज्ञान जाने लेकिन वह (ज्ञान) पापीके परिणाम है इसलिए उसे जाने ऐसा नहीं है, वह अपने सामर्थ्यसे जानता है, उसको (परको) स्पर्श किये बिना उसकी हयाती है, इसलिए जानता है ऐसा भी नहीं है। आहाहा...! ऐसी उसकी (ज्ञानकी) उपस्थतिका सामर्थ्य है। सत्...सत्...सत्...समझमें आया ?

'सो इसप्रकार कभी नहीं हो सकता। यहाँ जिस ज्ञानसे सर्वव्यापक कहा, वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रिय सुखसे अभिन्न है...' आहाहा...! जो ज्ञान उपादेय सर्वव्यापक कहकर सर्व अर्थात् सर्वको जानना, ऐसा व्यापकका अर्थ...जो ज्ञान सर्वको जाने ऐसा कहा...व्यापकका अर्थ वह... **'वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रिय सुखसे अभिन्न है...'** आहाहा...! उस ज्ञानको उपादेय जाननेसे अतीन्द्रिय आनंद आये बिना रहता नहीं। ऐसा कहते हैं। आहाहा...! समझमें आया ? जो सर्वव्यापक अर्थात् स्वको, परको जाननेका जो पर्यायधर्म ऐसा जो ज्ञान उसको जाननेपर वह उपादेय है। वह उपादेय अर्थात् उसके सन्मुख

होकर अतीन्द्रिय ज्ञानके द्वारा, अतीन्द्रिय आनंद द्वारा उसको उपादेय किया तब उपादेय हुआ, तब अतीन्द्रिय आनंद साथमें है। समझमें आया ? आहाहा...!

ऐसा क्यों कहा ?–कि भाई ! ऐसे स्व-परप्रकाशक आत्माको उपादेय किया। उपादेय कब होता है ?–जब वह अंतरमें शुद्धस्वरूपसे परिणमन करे तब (उपादेय है)। तब साथमें आनंद आता ही है, ऐसा कहते हैं। आहाहा...! धारणामें उपादेय किया वह अलग बात है और उपादेयरूपसे परिणमन किया वह अलग बात है। समझमें आया ? आहाहा...! उपादेयरूपसे परिणमन हो तब अतीन्द्रिय आनंदका स्वाद भी साथमें आता है ऐसा कहते हैं। आहाहा...! क्योंकि वहाँ स्वभावमें ज्ञानके साथ अतीन्द्रिय आनंद साथ है। इसलिए जैसे ही उस ज्ञानमें उपादेयरूपसे परिणमन हुआ कि वहाँ साथमें ही अतीन्द्रिय आनंद आया। आहाहा...! समझमें आया ?

'**वही ज्ञान उपादेय अतीन्द्रिय सुखसे अभिन्न है, सुखरूप है, ज्ञान...**' आहाहा...! सुखरूप वह ज्ञान है ऐसा कहा न ! कौन सा ज्ञान ? निजपरकी परिणतीका ज्ञान ! अपना ज्ञान उसे ही उपादेय करने जाता है तब उसे, अतीन्द्रिय सुखसे अभिन्न होनेसे, वह ज्ञान सुखरूप परिणमता है, वह ज्ञान आनंदरूपसे परिणमता है ऐसा कहते हैं। आहाहा...! समझमें आया ? '**ज्ञान और आनंदमें भेद नहीं** '**है**'। क्योंकि अंतरमें ज्ञान और आनंद अभिन्न है, तो अंतरमें निर्मल परिणति द्वारा जैसे ही उस ज्ञानका आदर किया वैसे ही उस ज्ञानके साथ ही आनंद भी आता है। आहाहा...! समझमें आया ?

कल कहा था न ! २९वाँ कलश। अशुद्ध परिणतिका अभाव, वहाँ शुद्ध परिणतिका सद्भाव ! शुद्ध परिणति भी हो और अशुद्ध परिणति भी साथमें हो (ऐसा नहीं है)। जैसा अशुद्धपना अनादिसे है वह वैसा का वैसा रहे और शुद्ध परिणति होवे ऐसा नहीं है। आहाहा...! २९वें कलशमें (आया है), २८वें कलशमें मरण-प्राप्त (आया है)। आहाहा...! अर्थात् सिर्फ पुण्य-पापके रागादिके अस्तित्वको स्वीकारनेवाला संपूर्ण तत्त्वको मार डालता है, अनादर करता है। पुण्यका–दया, दानके, व्रतके परिणाम शुभ है। इतना अस्तित्वका स्वीकार करनेवाला, त्रिकाली आनंदका नाथ है उसका अस्वीकार करता है। अर्थात् मरणतुल्य कर देता है। आहाहा...! ऐसा है। यह २८में आया, वह २९में आया।

अनंत आनंद आदि उसका जो स्वभाव है उसका जो आदर करे तब उसकी शुद्ध परिणति हुये बिना रहे ही नहीं। उस समय अशुद्ध परिणति रहे ही नहीं। अस्थिरता रहे उसकी बात यहाँ नहीं है। शुद्ध परिणतिमें, जो मिथ्यात्व सहित अशुद्ध परिणति है वह (नहीं हो सकती) आहाहा...! समझमें आया ?

'ज्ञान और आनंदमें भेद नहीं है, वही ज्ञान उपादेय है...' आहाहा...! जिस ज्ञानमें निज और परका जानपना समानरूपसे अपनेसे हुआ है...आहाहा...! ऐसे ज्ञानका आदर करनेवाला उस आनंदसे खाली नहीं होता। क्योंकि ज्ञान और आनंद अभिन्न है। ऐसी बात है यह ! वह तो कहते हैं कि एकेन्द्रियकी दया पालो और यह करो... आहाहा...! परकी दया, पूजा वह सब शुभराग है, वह कोई धर्म नहीं है, वह तो नुकशान करनेवाला है।

श्रोता :— अचेतन है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— हां, अचेतन है। आप दया, दानके परिणामको राग होनेसे अचेतन कहते हो, अचेतन कहते हो तो दुनियाको डुबा दोगे (ऐसा कहते हैं)। वास्तवमें तो श्वेताम्बर और स्थानकवासी अन्यमती है, जैनमति नहीं है। 'टोडरमलजी'ने कहा है।

श्रोता :— 'टोडरमलजी'ने कहा है इसलिए ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— नहीं, वस्तुस्थिति ही ऐसी है इसलिए ! 'कुंदकुंदाचार्य'ने कहा कि वस्त्रका टूकडा जिसके नहीं है और जिसके तीन कषायके अभावकी दशा प्रगट हुई है ऐसे नग्नका मोक्ष है, इसके अलावा अन्य सब उन्मार्ग है। श्वेताम्बर और स्थानवासी मार्ग नहीं है, उन्मार्ग है—ऐसा कहा है। 'कुंदकुंदाचार्य'की पुकार है। समझमें आया ? आहाहा...!

'यह अभिप्राय जानना' लो, यह सब कहनेका अभिप्राय यह है कि जिसके ज्ञानमें स्व और परको, परके संबंध बिना, जानना-परके अस्तित्वके स्वीकार बिना अपने ही अस्तित्वका स्वीकार है वह ज्ञान आदरणीय है। समझमें आया ? थोड़ा सूक्ष्म है, भाई ! मार्ग यह है, बापू ! वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर....आहाहा...!

'इस दोहामें जीवको ज्ञानकी अपेक्षा सर्वगत कहा है।' लो यह सिद्ध किया। ज्ञानकी अपेक्षासे, जाननेकी अपेक्षासे सर्वगत कहा, लेकिन प्रसारकी अपेक्षासे-विस्तारकी अपेक्षासे सर्वगत नहीं कहा। समय हो गया।

(श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव !)

३२ श्री परमात्मप्रकाश, गाथा—६७-६८, प्रवचन नं. ४४, दि. २५-७-१९७६

'शुद्धात्मा तो केवल ज्ञानादि स्वभाव है...' त्रिकाली शुद्ध आत्मा वस्तु वह तो केवल ज्ञान, आनंद आदि स्वभाव स्वरूप है। केवल अर्थात् सिर्फ, केवल(-ज्ञानकी) पर्याय नहीं। केवल दर्शन, केवल आनंद ऐसा शुद्धात्माका स्वभाव है। **'जड़रूप नहीं है...'** वह शरीररूप नहीं है, रागरूप नहीं है। वह आत्मा उपादेय-दृष्टिमें ग्रहण करनेलायक है ऐसा कहना है। ऐसी बात है। **'उपाधिरूप नहीं..'** भगवान आत्माका द्रव्यस्वभाव, नित्यस्वभाव ज्ञान और आनंद है। उसका स्वरूप-स्वभाव है, वह कभी रागरूप हुआ नहीं। शरीररूप तो कभी हुआ नहीं लेकिन रागरूप भी वह वस्तु नहीं हुई। आहाहा...!

'उपाधिरूप नहीं है....' चैतन्यबिंब प्रभु जो सम्यग्दर्शनका विषय पर्यायमें उपादेय करनेलायक ऐसा जो शुद्धात्मा वह रागरूप हुआ नहीं। **'शुद्धात्मस्वरूप ही है...'** वह तो शुद्ध चैतन्यघन निर्मलानंद प्रभु (है)। **'पर जो काम-क्रोधादि परवस्तु भावकर्म-द्रव्यकर्म-नोकर्म है वे पर ही है...'** इच्छा, क्रोध, राग, द्वेष, दया, दानके भाव, जड़कर्म और शरीर वह सब पर है। **'अपने नहीं है...'** वह स्वरूपमें नहीं, स्वरूपके नहीं ! आहाहा...! समझमें आया ?

'जो यह आत्मा...' तब कहते हैं कि है न पर्यायमें ? **'संसार-अवस्थामें यद्यपि अशुद्धनयकर...'** पर्यायमें अशुद्धता है वह **'अशुद्ध निश्चयनयकर काम-क्रोधादिरूप हो गया है...'** पर्यायमें अशुद्धनिश्चयसे (है), शुद्धनिश्चय तो त्रिकाल शुद्ध है। आहाहा...! वही आदरणीय है, लेकिन उसकी पर्यायमें अशुद्धनिश्चयसे काम-क्रोधादिरूप हुआ है। **'तो भी परमभावके ग्राहक शुद्धनिश्चयनयकर..'** आहाहा...! तो भी त्रिकाली उसका जो स्वभाव है उस दृष्टिसे उसको देखे तो...परमभाव ग्राहक (अर्थात्) त्रिकाली स्वभावको जाननेवाला-ग्रहण करनेवाला ऐसा जो शुद्धनिश्चयनय है... **'अपने ज्ञानादि एक स्वभावको छोड़कर...'** एक शब्द रह गया है, अंदर संस्कृतमें है। **'शुद्धनिश्चयकर अपने ज्ञानादि एक निजस्वभाव...'** एक निजस्वभाव... एकरूप जो त्रिकाल स्वभाव है...समझमें आया ? आहाहा...! चिद्घन प्रभु ज्ञान-स्वभावी वह वस्तु उसको शुद्धनिश्चयसे देखे तो एक स्वभावी ज्ञानस्वरूप त्रिकाल है। उसने कभी अपने निजस्वभावको छोड़ा नहीं है।

वस्तु है उसका ज्ञान-आनंद आदि स्वभाव (है वह) शुद्धनिश्चयसे देखो तो उसने कभी छोड़ा ही नहीं है और रागको और काम-क्रोधके विकल्पको कभी ग्रहा नहीं है। आहाहा...! ऐसी बात है। **'काम-क्रोधादिरूप नहीं होता अर्थात् निजभावरूप ही है।'** शुद्ध चैतन्यकी दृष्टिसे देखें तो निजभावरूप शुद्ध एकरूप त्रिकाल स्वभाव है और वही उपादेय है। पर्यायमें उपादेय (अर्थात्) उसके सन्मुख होकर उसका ही आदर करने जैसा है। आहाहा...! यह धर्मकी रीत है। यहाँ तो कहते हैं कि दया, दान, व्रत, व्यवहार रत्नत्रय जो है उसरूप निजस्वभाव कभी हुआ ही नहीं है। क्या है ?

श्रोता :— काम-क्रोधादि...

पूज्य गुरुदेवश्री :— काम-क्रोधादि विकार है। विकार आया न ! व्यवहार रत्नत्रय विकार है। शुभराग है। यद्यपि पर्यायमें अशुद्धनिश्चयसे है लेकिन वह तो पर्यायमें अशुद्ध है, वस्तुमें नहीं है। आहाहा...! ऐसा वीतरागका मार्ग ! रागादिरूप नहीं होता ! यह आया कि नहीं ?

'निजभावरूप ही है। ये रागादि विभावपरिणाम उपाधिक है...' क्या आया ? आया कि नहीं ? आहाहा...! भगवान त्रिकाल नित्यानंद प्रभु रागकी उपाधिसे रहित है, एकरूप स्वभावसे भरा वह तत्त्व है। वीतरागमार्ग सूक्ष्म है, बापू ? लोगोंने बहारसे मानकर मनाया है, वह वीतराग मार्ग नहीं है। आहाहा...!

श्रोता :— माना-मनाया तो है न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— यह रागसे धर्म मनाया है और पुण्यसे, व्यवहारसे और शुभरागसे (धर्म है ऐसा माना है)। सबकी यही तकलीफ है न ! शुभ उपयोग ही अभी सबको करने जैसा है (ऐसा मनाया है) आहाहा...! भाई ! वह तो अनंतकालसे कर रहा है। जो स्वभावमें नहीं है ऐसी पर्यायमें शुभभाव तो अशुद्धनिश्चयसे अनादिसे कर रहा है, वह कोई नई बात नहीं है। नई बात तो यह है कि शुद्धभावसे, शुभसे भिन्न भगवान पूर्णानंदके नाथ वीतरागमूर्ति प्रभुको उपादेय करना उसका नाम धर्म है।

श्रोता :— वीतरागमूर्ति तो वहाँ (मंदिरमें) है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— यहाँ है; वह तो स्थापना निक्षेप है, यह भाव निक्षेप है। वह तो स्थापना है, भाव स्वरूप तो यहाँ है। वीतराग स्वरूपी शुद्धात्मा केवल ज्ञान स्वरूप, वीतराग स्वरूप, अकषाय स्वरूप ऐसा भगवान नित्यानंद प्रभु पर्यायमें उपादेय है। वह तो

जो है सो है। आहाहा...! उस तरफकी दृष्टि करना वही उसका उपादेयपना है। समझमें आया ? ऐसा मार्ग है। भाई !

'ऐसा योगीश्वर कहते हैं...' मुनिगण ऐसा कहते हैं कि त्रिकाली स्वभाव भगवान आत्मा कभी भी रागरूप, व्यवहाररूप हुआ ही नहीं और पर्यायमें हुआ है वह तो अशुद्धनयका विषय है अर्थात् वह व्यवहारनयका विषय है, वह वस्तु नहीं है। आहाहा...! जिसमें जन्म-मरण और जन्म-मरणके भाव नहीं है, लेकिन उसके भाव बिनाका स्वभाव जिसमें है उसका आश्रय करनेसे जन्म-मरण मिटे ऐसा है। यह ८४के अवतार ! एक एक भवके दुःखका वर्णन शास्त्रमें (आता है)। निगोदके जीव एक श्वासमें अठारह भव करे उस दुःखकी क्या पराकाष्टा ! आहाहा...! भगवान आत्मा पूर्णानंदके नाथका आश्रय लिया नहीं, उसका स्वीकार किया नहीं कि मैं पूर्णानंद स्वरूप हूँ। इस वजहसे अशुद्ध परिणतिमें पुण्य और पाप भावमें अटका और उसमे परिभ्रमण किये ! समझमें आया ?

'यहाँ उपादेयरूप मोक्ष-सुखसे तन्मय...' अर्थात् भगवान आत्मा अतीन्द्रिय सुखसे अभिन्न है। मूल शब्द **'अभिन्न'** है, उसका अर्थ 'तन्मय' किया है। टीकामें **'मोक्षसुखादुपादेयभूताभिन्नः'** भाई ! पहले रागादिको भिन्न कहना है इसलिए मोक्षके सुखको अभिन्न कहा है। संस्कृतमें है नीचेसे दूसरी लाईन। आहाहा...! **'मोक्षसुखादुपादेय भूतादभिन्नः'** आहाहा...! ऐसा शुद्धात्मा ! आहाहा...! परमानंदका नाथ प्रभु मोक्षके सुखसे वह अभिन्न है और काम-क्रोधादिके व्यवहार विकल्पसे भिन्न है। आहाहा...! समझमें आया ? ऐसा मार्ग है। कल किसीका पत्र आया था कि मैं समझने आया था लेकिन कुछ समझमें आया नहीं।

श्रोता :— दिव्यध्वनि जैसा लग रहा है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह बोले थे कि आप हसते-हसते कुछ बात कर रहे थे जिससे ऐसा लग रहा था जैसे दिव्यध्वनि हो ! लेकिन क्या कह रहे थे वो (समझमें नहीं आया)। बात तो ऐसी लग रही थी जैसे कि हसते-हसते दिव्यध्वनि खीर रही हो ! ऐसा लिखा है। लेकिन कुछ समझा नहीं हूँ, अब समझनेकी जिज्ञासा है। शास्त्र भेजें ऐसा कहा है। आहाहा...!

प्रभु ! तू अनादिसे अनजान रहा ! शुद्ध चैतन्य वस्तु है वह अनादिसे अनजान रही और शुभाशुभभावका परिचय किया। आहाहा...! वह शुभभाव कोई नवीन वस्तु नहीं है।

ऐसा कहते हैं कि अब आप शुभभावका कुछ कहो, कुछ सुधार करो। शुभभावको हेय बताते हो उसमें सुधार लाओ ऐसा कहते हैं। अरे...! भगवन् !

श्रोता :— व्यवहार रत्नत्रय है न !

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह तो अनादिसे है, वह नई बात कहाँ है ? वह तो शुद्ध चैतन्यके स्वभावका भाव-दशा हो उसे व्यवहार रत्नत्रयका आरोप शुभभावसे देते हैं। लो ! इतना आता है ! जिसने भगवान आत्मा वीतराग आनंदका नाथ प्रभु पूर्ण स्वरूप है, उसको उपादेय करके निश्चयमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान प्रगट किया है, उसको जो रागादि है उसे व्यवहार रत्नत्रय और परंपरा मोक्षका कारण है ऐसे आरोप करके कहनेमें आता है। समझमें आया ? है, वस्तु नहीं लेकिन बंधका कारण है, उसको आरोप करके मोक्षका कारण कहा है। वह कहा न ! आहाहा...! ऐसी बात है, बापू ! उसने कभी निजस्वभावका अवलंबन लिया नहीं (और) यह रागका आधार-अवलंबन लेकर पड़ा है। उसमें उसे मजा आती है, वह भटकनेके रास्ते हैं। आहाहा...! वह आरोपित वस्तु है।

श्रोता :— लोग भ्रममें पड़ जाते हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :— लोग भ्रममें पड़ जाय वह... न समझे वह तो भ्रममें पड़े ही है। आत्मा शुद्ध चैतन्य भगवान आनंद स्वरूप उसकी श्रद्धा उपादेय करके निश्चय सम्यग्दर्शन हुआ, उसके साथ देव-शास्त्र-गुरुकी श्रद्धाका विकल्प जो है उसे सहज निमित्तरूपसे देखकर-सहचर देखकर उपचारसे-व्यवहारसे उसे समकित कहा है। 'मोक्षमार्गप्रकाशक' सातवें अधिकारमें (आता है)। आहाहा...!

सीधा ही कहा है कि बंधका कारण है, लेकिन यहाँ यह (निश्चय) है उसका आरोप देकरके-सहचर देखकरके व्यवहार कहा है। 'मोक्षमार्गप्रकाशक'में है। आहाहा...! बहुत अच्छी बात ! और उन्होंने यहाँ तक कहा कि यह लक्षण जो बता रहा हूँ वह निश्चय और व्यवहारका लक्षण सर्वत्र जानना। आहाहा...! जहाँ कहीं भी रागको साधक कहा हो वहाँ भी उसे उपचारसे-व्यवहारसे आरोप देकर साधन कहा है। सच्चा साधन तो, भगवान आत्मा रागसे भिन्न होकर अनुभवकी क्रिया करे, प्रज्ञाछैनीसे छेदकर रागसे भिन्न करे, वह साधन है। आहाहा...!

श्रोता :— अनुभवकी रीत बताईये।

पूज्य गुरुदेवश्री :— यह रीत है। आहाहा...! और जिसमें आनंद आये उसे साधकपना कहते हैं। रागमें तो दुःख आता है। व्यवहार रत्नत्रयका राग है वह तो दुःख

है। दुःखको मोक्षका उपाय कहना वह तो आरोपित कथन है, निरुपण करनेकी शैली है, वस्तुस्थिति वैसी नहीं है। आहाहा...!

अरे भगवन् ! ऐसा समय मिला है, भाई ! जगतको ऐसे देखते हैं। आहाहा...! कितने जीव पड़े हैं थर के थर (एकेन्द्रियके) ! वह नीम देखो ! ओहोहो...! पत्तेके एक टुकड़ेमें असंख्य जीव पड़े हैं। बेचारे कब मनुष्य होंगे ? तिरनेका उपाय सुनने कब मिलेगा उसे ? आहाहा...! ऐसी दुर्लभ वस्तु है उसे समझ ले। ऐसा कहते हैं। आहाहा...! दुर्लभ कहा है। कल ८५वीं गाथामें आया था न ! **'कालु लहेविणु जोइया'** उसके अर्थमें लिया है कि एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय और तीन इन्द्रिय करते...करते...करते... ऐसा लिया है। ८५ गाथामें। कल याद आई थी।

'कालु लहेविणु जोइया' ८५ (गाथा) वह काललब्धिको प्राप्त करके हे योगी ! **'जिमु जीमु मोहु गलेइ तिमु तिमु दंसणु लहइ जिउ णियमें अप्पु मुणेइ'** आहाहा...! इसके बाद उसमें बहुत खुलासा किया है। **'एकेन्द्रियसे विकलत्रय दुर्लभ है, विकलत्रयसे पंचेन्द्रिय, पंचेन्द्रियसे सैनी पर्याप्त, उसमें मनुष्य होना कठिन है। मनुष्यमें भी आर्यक्षेत्र, उत्तमकुल, शुद्धात्माका उपदेश आदि मिलना...'** आहाहा...! जैनमें जन्म हो और उपरसे शुद्धात्माका उपदेश मिलना ! आहाहा...! **'दुर्लभ सामग्री मिलने पर भी जैन-शास्त्रोक्त मार्गसे मिथ्यात्वादिके दूर हो जानेसे आत्मस्वरूपकी प्राप्ति होते हुये, जैसे जैसा मोह क्षीण होता जाता है वैसा वैसा शुद्धात्मा ही उपादेय है ऐसा रुचिरूप सम्यक्त्व होता है।'** आहाहा...!

कितना दुर्लभ है ! अरे ! उसे भूल नहीं, भाई ! बहारके रसके प्रेममें काल चला जायेगा तो वह तो जो अनंतकालमें किया वही है। भगवान अनंत आनंदका नाथ प्रभु है न ! आनंदकी निधि है, ज्ञानकी निधि है, श्रद्धाकी निधि है, शांतिकी निधि है। आहाहा...! ईश्वर शक्तिओंकी वह निधि है। उसे तू साधारण न समझ, भाई ! वह शुभ उपयोगसे होगा। वह तो स्वरूपसे विरुद्ध बात है, भाई ! विरुद्धभावसे स्वभावभाव होता है ?

श्रोता :—अशुभसे तो बचेगा न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—वह कौन बचेगा ?—जो समकिती होगा वह ! जिसे शुद्ध चैतन्यका भान हुआ है उसको शुभरागमें अशुभसे बचना होता है। मिथ्यादृष्टिकी तो दृष्टि ही वहाँ पड़ी है, वह कहाँ अशुभसे बचता है ! भाई ! भगवन् ! ऐसा तेरा स्वरूप है न ! उसको पामरमें मत डाल ! आहाहा...! भाई ! तुझे उसमें नुकशान है, दुनिया खुश होगी और

तू खुश होगा। आहाहा...! शुभभाव तो होता है न....शुभभाव तो होता है न....भाई ! वह शुभभाव तो निगोदमें भी अनंतबार किया है। निगोदमें भी अनंतबार शुभभाव किया है, (लेकिन) वह कोई वस्तु नहीं है। आहाहा...! भगवन् ! शुभभावके पीछे महाप्रभु पड़ा है न ! आहाहा...! जो स्वयं कभी शुभरागरूप हुआ ही नहीं है। आहाहा...! और राग भी कभी शुद्धात्मारूप हुआ ही नहीं है। आहाहा...!

श्रोता :— शुद्धात्माकी पर्यायबुद्धिमें राग है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह अब आयेगा, यहाँ तो अभी ६७ (गाथा) तक लिया। अब ६८(गाथामें) आगे आयेगा। गाथा आगे बढ़ती जाती है न ! आहाहा...!

'**उपादेयरूप मोक्षसुखसे तन्मय...**' अभिन्न। भगवान आत्मा अतीन्द्रिय आनंदसे तन्मय है। अंदर स्वभावमें अतीन्द्रिय आनंदसे तन्मय है। आहाहा...! '**काम-क्रोधादिसे भिन्न है। जो शुद्धात्मा है वही उपादेय है, ऐसा अभिप्राय है।**' लो, अब आगे बढ़ते हैं। यह ६८वीं गाथा तो बहुत ऊंची है। 'जयसेनाचार्य'की ३२०वीं गाथामें भी यह लिया है। ३२० गाथा अभी मुंबईमें पढ़ी है। हजारों (लोगोंके बीचमें), दस-दस हजार, पंदर-पंदर हजार लोग (थे)। 'जयसेनाचार्य'की ३२० गाथा जैसी यह गाथा है। अब तो लोग सुनते हैं...सुनते हैं, बापू ! सुनो भाई ! अरे भगवन् ! पक्षको छोड़ दो। फलाना ऐसा कहेगा और ढिकना वैसा कहेगा—वह कहने दे, बापू ! तीनलोकके नाथ जिनेश्वरदेव क्या कहते हैं उसको देख न तू ! आहाहा...!

परमात्मा तो ऐसा कहते हैं कि त्रिकाली शुद्ध आत्मा जो है वह रागरूप हुआ नहीं है। आहाहा...! और राग है वह शुद्धात्मारूप हुआ नहीं है। यहाँ तक ६७ गाथाकी बात करी। अब ६८ गाथामें आगे ले जाते हैं। अलौकिक बात है, बापू ! आज रविवार होनेसे 'भावनगरवाले' सब हमारे भाई आये हैं।

श्रोता :—हम आपके हैं कि नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—यहाँ कोई किसीका नहीं है। आहाहा...! भाई ! यह समझमें आता है ? अशुद्धनय, भाईने पूछा था।

शुद्धनिश्चय वह वस्तु। वस्तुको शुद्धनिश्चय कहा, परम शुद्धनिश्चय, त्रिकाल और पर्यायमें अशुद्धता...अरे...! शुद्धता हो फिर भी उसे अशुद्धनय कहते हैं। पर्यायमें शुद्धता... 'प्रवचनसार'में ४७ नय आते हैं न ! ४६, ४७ आखिरी नय ! मिट्टीको सिर्फ मिट्टीके रूपमें देखो वह शुद्ध है, वैसे ही भगवानको उनकी निर्मल पर्यायसे भी नहीं देखना और केवल

द्रव्यको देखना वह शुद्ध है। ४६, ४७ अशुद्धनय और शुद्धनय है न ! आहाहा...! अरे....! दिगंबर संतोंने तो जगतको निहाल कर दिया है। आहाहा...! केवलज्ञानके पथिक ! सिर्फ माल परोसा है। ऐसी बात कहीं नहीं है, भाई ! समझमें आया ? आगे ले जाते हैं।

'**शुद्धनिश्चयनयकर आत्मा जन्म**' अर्थात् (आत्मामें) उत्पाद-पर्याय नहीं है, मृत्यु अर्थात् व्यय उसमें नहीं है, उसे बंध नहीं और मोक्षको करता नहीं। वह (आत्मा) उत्पादको करता नहीं, व्ययको करता नहीं, बंधको करता नहीं और मोक्षको करता नहीं। आहाहा...! क्या पाठ है ?

ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थँ जोइया जिणवरु एउँ भणेइ॥६८॥

तीनलोकके नाथ ऐसा कहते हैं...आहाहा...! हम जिसे जीव कहते हैं...आहाहा...! वह जीव उत्पन्न नहीं होता, पर्यायमें नहीं आता, पर्यायको व्यय नहीं करता। हम उसे जीव कहते हैं कि जो बंधको करता नहीं। आहाहा...! समझमें आया ? ऐसा प्रभु एक समयमें चैतन्यधातुसे धारण किया हुआ, धातु अर्थात् स्वभावसे धारण किया हुआ ऐसा जो त्रिकाली तत्त्व, उसे जिनवर ऐसा कहते हैं कि यह जीव है। आहाहा...! भाई ! आहाहा...!

ऐसा जो जीव त्रिकाली ध्रुव स्वरूप परमात्मा, स्वयं मोक्षके मार्गको करता नहीं है। आहाहा...! मोक्षको करता नहीं और बंध और बंधके मार्गको भी करता नहीं। वह उत्पादकी पर्यायमें आता नहीं और वह व्यय-पर्यायमें आता नहीं। आहाहा...! ऐसे जीवको जिनवर जीव कहते हैं। आहाहा...! 'समयसार'की ३२०वीं गाथाकी टीकामें यह गाथा ली है।

ण वि उप्पज्जइ ण वि मरइ बंधु ण मोक्खु करेइ।
जिउ परमत्थँ जोइया जिणवरु एउँ भणेइ॥६९॥

तीनलोकके नाथ इसको जीव कहते हैं। आहाहा...! समझमें आया ? सम्यग्दर्शनका विषय जो जीव है वह मोक्षकी पर्यायको नहीं करता। आहाहा...! मोक्षमार्गको नहीं करता। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी पर्यायको जीव नहीं करता। आहाहा...! उस पर्यायको पर्याय करती है, समझमें आया ?

सम्यग्दर्शनकी पर्यायको जीव करता नहीं। क्यों ?–कि उस पर्यायमें षट्कारकरूपसे परिणमन करनेकी शक्तिसे वह पर्याय परिणमित होती है। सम्यग्दर्शनकी पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म, पर्याय साधन....आहाहा...! पर्याय अपादान, पर्याय संप्रदान, पर्याय करके (अपनेमें)

पर्याय रखती है, पर्यायका आधार पर्याय। वह एक समयकी सम्यग्दर्शनकी पर्याय षट्कारकरूपसे परिणमित होती हुई (उत्पन्न होती है)। वह द्रव्य उसरूप परिणमित नहीं होता (और) वह द्रव्य उस समकितको करता नहीं है। आहाहा...! शेठ ! ऐसी बात है, बापू ! अरेरे...! ऐसा वास्तविक सत्य...भाई ! अच्छा किया कि धंधा छोड़कर यहाँ समझने आये हो। यह तो समझने जैसा है, बापू ! क्या करे ? अरेरे...! दुनियाने मार्गमें गड़बड़ी कर दी इसलिए मार्ग नहीं बदलेगा, मार्ग तो जो है वही रहेगा, भाई ! आहाहा...!

यहाँ परमात्मा ऐसा कहते हैं, '**जिणवरु एउँ भणेइ**' जिनवर त्रिलोकीनाथ तीर्थंकर इन्द्रों और गणधरोंकी सभामें ऐसा कहते थे। आहाहा...! ऐसा संत कहते हैं। आहाहा...! वह वीतरागी संत वीतरागके मालके आडतिया (दूत) है। वह कहते हैं कि जिनवर ऐसा कहते हैं। लेकिन प्रभु ! आप भी मुनि हो और कहो तो वह भी व्याजबी है। लेकिन वह तो (कहते हैं कि) जिनवर ऐसा कहते हैं। आहाहा...! भाई ! यह वाद-विवादकी वस्तु नहीं है। यह तो अंतरमें समानेकी वस्तु है। आहाहा...! जहाँ वस्तु है वहाँ जानेके लिये (यह बात) है, वह जानेकी पर्यायको भी वह करता नहीं है, ऐसा कहते हैं। आहाहा...! वह ध्रुव भगवान उत्पाद-व्ययकी पर्यायको–निर्मल (पर्याय)को–मोक्षमार्गकी पर्यायको करता नहीं। पंडितजी ! आहाहा...! ऐसी बात है, भाई ! आचार्यने तो वहाँतक कहा, 'जिणवरु एउँ भणेइ' क्या कहा ?–उसे जीव कहते हैं। ऐसे जीवको भगवानने ऐसा कहै कि वह जीव है कि जो बंध और मोक्षकी पर्यायको करता नहीं, उस जीवको हम जीव कहते हैं। आहाहा...!

श्रोता :—.......

पूज्य गुरुदेवश्री :—जुदा ही है। पर्याय और द्रव्य दोनों एक है ही नहीं। आहाहा...! पर्यायमें द्रव्यका ज्ञान आता है लेकिन पर्यायमें द्रव्य नहीं आता। आहाहा...! परमभाव स्वभावभाव भगवान नित्यानंद प्रभु ऐसा जो जीव, वह एक समयकी ज्ञानकी पर्यायमें जैसा है वैसा उसका यहाँ ज्ञान आता है लेकिन वह द्रव्य नहीं आता। आहाहा...! देखो। वीतरागमार्गकी बलिहारी ! आहाहा...! एक समयकी पर्यायमें लोकालोकका ज्ञान आता है, लोकालोक नहीं आता। एक पर्यायमें संपूर्ण द्रव्यका ज्ञान आता है, यह वस्तु ऐसी है ऐसा ज्ञान होता है, वस्तु नहीं आती। आहाहा...! अरे ! ऐसा तत्त्व है, भाई !

तू रागकी एकतामें दब गया है, प्रभु ! दबावमें आ गया है। पर्याय दबावमें आई है। द्रव्य तो द्रव्यरूपसे सदाय एकरूप रहा है। वह रागके दबावमें नहीं आता, वह

मोक्षमार्गकी पर्यायमें भी नहीं आता। आहाहा...! रागके दबावमेंसे छुटा तो उस पर्यायमें द्रव्य नहीं आता। आहाहा...! ऐसी वस्तु है। कहाँ है, बापू ? आहाहा...! जिनवर त्रिलोकीनाथ....उसमें भी दिगम्बर धर्म और सनातन जैनदर्शन....आहाहा...!

श्रोता :—पर्याय बिनाका द्रव्य तो....

पूज्य गुरुदेवश्री :—वह तो परकी अपेक्षासे पर्याय सहितका द्रव्य है, स्वकी अपेक्षासे तो पर्याय बिनाका द्रव्य है। दो है कि नहीं ? कि एक है ? पर्याय और द्रव्य दो वाचक है न ! तो वाच्य भी दो है, तो दो भिन्न वस्तु है। वास्तवमें तो द्रव्य पर्यायको छुआ ही नहीं। आहाहा...! वो आता है न ! ४९वीं (गाथा)में...पर्यायको द्रव्य छूता नहीं। आहाहा...! ४९वीं गाथामें आता है, व्यक्त-अव्यक्तका एक साथ ज्ञान होने पर भी व्यक्तको प्रभु स्पर्श नहीं करता। आहाहा...! पर्यायको आत्मा छूता नहीं। आहाहा...! देखो, यह जिनवरकी (कथनी) ! आहाहा...!

भाई ! तेरी स्थिति ऐसी है। आहाहा...! उसको तू लक्षमें तो ले ! भगवान आत्मा (उसे) लक्षमें लेनेवाली पर्यायमें आता नहीं। आहाहा...! ऐसा है, बापू ! यह तो वीतराग स्वरूपकी बात है, भगवन् ! इसमें रागमें खुश होना और होंश आदि, बापू ! वह तो उन्मत्त-उन्मादता है। यहाँ तो परमात्मा स्वयं जिनवर ऐसा कहते हैं कि उसे हम जीव कहते हैं कि जो जीव बंध और मोक्षकी पर्यायमें आता नहीं, उसे करता नहीं। उसे हम जीव कहते हैं कि जो उत्पाद-व्ययकी दशामें आता नहीं। आहाहा...! समझमें आया ? ऐसा उपदेश अब लोगोंको कठोर लगता है। वह बेचारा कह रहा था कि मैं कुछ समझा नहीं। कभी सुना ही न हो इसलिए (बेचारा) (ऐसा कहे), क्या हो बापू ! तेरे घरकी बात है, भाई ! आहाहा...!

पर्यायमें जो आता नहीं, मोक्षकी पर्यायमें आता नहीं ऐसा आत्मा दृष्टिमें लेना, फिर भी उस दृष्टिमें वह वस्तु आती नहीं। आहाहा...! श्रद्धाकी पर्यायमें वह वस्तु है ऐसी श्रद्धा आती है। वह वस्तु जितनी और जैसी है ऐसी श्रद्धा होती है, लेकिन वह वस्तु पर्यायमें नहीं आती। आहाहा...! यह शराफी धंधा है। अपने शेठ शराफ है न ! आहाहा...! शराफी धंधा है, बापू ! आहाहा...! भाई ! उसको वाद-विवादमें मत ड़ाल ! समझमें आया ? उसको जैसा है वैसे रहने दे ! आहाहा...! भाषा तो देखो ! आहाहा...!

'जिणवरु एउँ भणेइ' जिनवर ऐसा कहते हैं। हम उसको जीव कहते हैं कि जो जीव मोक्षकी पर्यायमें मोक्षमें नहीं आता, मोक्षकी पर्यायको करता नहीं है, उसे हम जीव

कहते हैं। यह गजब बात है। आहाहा...! गाथा तो गाथा है न ! अमृत भरा है ! अमृत भरा है ! आहाहा...! **'ण वि उप्पज्जइ'** वह जीव उत्पाद-पर्यायमें आता नहीं, गजब बात ! प्रभु ! आत्मा तो उत्पाद-व्यय-ध्रुवयुक्तम् सत् है न ! वह तो प्रमाणके विषयका सत् है। समझमें आया ? **'शुद्धनिश्चयनयकर'** अर्थात् त्रिकाली वस्तुको देखनेवाली नयसे देखे तो **'आत्मा...'** पाठमें जीव है, यहाँ **'आत्मा'** शब्द लिया है। कोई ऐसा कहे कि जीव और आत्मा दो अलग है। यह वेदांतवाले ऐसा कहते हैं न ! अंतःकरण विशिष्ट वह 'जीव' और निर्मल तद्दन त्रिकाली वह 'आत्मा' ! (लेकिन) ऐसा नहीं है। आहाहा...!

'शुद्धनिश्चयनकर...' भगवान आत्मा ध्रुव जो है उसे यहाँ आत्मा कहा है। आहाहा...! नित्यानंद स्वभावको यहाँ आत्मा कहा। वह आत्मा जन्म नहीं लेता अर्थात् उत्पादमें नहीं आता, मरता नहीं (अर्थात्) व्ययमें नहीं आता। आहाहा...! उत्पादव्ययध्रुवयुक्तम् सत् है न ! वह तो संपूर्ण द्रव्यकी बात कही, लेकिन मूल द्रव्य जो ध्रुव है उसकी बातमें यह बात है। समझमें आया ?

'जैसा है वैसा ही है...' आहाहा...! वह तो भगवान जैसा है वैसेका वैसा एकरूप है। एकेन्द्रियकी पर्याय, सिद्धकी पर्याय या मोक्षमार्गकी पर्याय (हो), सब जगह वह तो जो है सो है। आहाहा...! समझमें आया ? आज रविवार आया और यह गाथा भी आ गई। भाई ! आहाहा...! अरे भगवन् ! तू कितना और कहाँ है उसकी प्रभु बात कर रहे हैं। कितना–कहाँ है ? उसको हम आत्मा कहते हैं। वह कहाँ है ? कितना है ? आहाहा...! तीनलोकके नाथ जिनेश्वरदेव दिव्यध्वनि द्वारा ऐसा फरमाते हैं। जीव बंध और मोक्षकी पर्यायको करता नहीं ऐसा हम कहते हैं। उसे जीव कहते हैं। आहाहा...! समझमें आया ?

सम्यग्दर्शनका विषय ध्रुव है, पर्याय नहीं। सम्यग्दर्शन पर्याय है...आहाहा...! लेकिन उसका विषय है वह त्रिकाली वस्तु है। उस पर्यायमें संपूर्ण वस्तु है उसकी श्रद्धा आती है लेकिन श्रद्धाकी पर्यायमें वह वस्तु नहीं आती। समझमें आया ? श्रद्धाकी पर्यायमें उसकी पाचक शक्ति है। अग्नि जैसे पका देती है न ! कैसा भी अनाज हो उसे (पका देती है), वैसे ही सम्यग्दर्शनकी पर्यायमें जो पाचक शक्ति है उससे, संपूर्ण प्रभु है उसका पाचन (डाईजेस्ट) कर लेती है। समझमें आया ? वह श्रद्धामें संपूर्ण पूर्णानंदको लेता है। उस प्रतीतिमें पूर्णानंदकी श्रद्धा आई लेकिन पूर्णानंदका नाथ श्रद्धाकी पर्यायमें नहीं आया। आहाहा...! भाई ! ऐसी वस्तु है, बापू ! अभी तो बहुत गड़बड़ी कर दी है।

यहाँ आया था न—भेदाभेद रत्नत्रयकी भावना ! पाठमें तो इतना है–भेदाभेद भावना,

उसका अर्थ वह है। ६२वीं गाथामें आया था न, भाई !–कि आगे भेदाभेद रत्नत्रयकी भावनासे नौ सूत्र कहेंगे। उसमेंसे यह एक है न ! पाठमें भेदाभेदकी भावना है, खुलासा भेदाभेद रत्नत्रय। वह भी कथन है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र जो निश्चय है आनंददाता वह पर्यायको अभेद कहता है तब साथमें रागका भाग आता है। व्यवहारसे श्रद्धाका, ज्ञानका, महाव्रतका विकल्प और निमित्तपना देखकर और सहचारी है इसलिए उपचारसे उसे व्यवहार रत्नत्रयका आराधन कहा है। आहाहा...! समझमें आया ?

अभेद रत्नत्रयके परिणाम जिसमें नहीं है। आहाहा...! और अभेद रत्नत्रयके परिणाममें आत्मा नहीं है। वह भेद रत्नत्रयके परिणाममें कैसे आया ? आहाहा...! मार्ग ऐसा है, बापू ! वह देह छूट जायेगा, भाई ! और कोई साथ नहीं आयेगा ! बहारकी अनुकूलता लोग खुश हुये होंगे, लोगोंको खुश रखना...आहाहा...! वह कोई मदद नहीं करेगा, बापू ! आहाहा...! जिसकी शरणमें जाना है वह तीनलोकका नाथ है। आहाहा...! वह शरणमें जानेवाली पर्याय भी जिसमें नहीं और जिसमें वह नहीं आता। आहाहा...!

'केवली पण्णत्तो धम्मो शरणं' मोक्षका मार्ग है, निश्चयसे वह शरण है। वह शरणकी पर्यायमें ध्रुव आता नहीं है। आहाहा...! ऐसा आत्माका शरण है। समझमें आया ? कितनोंने तो यह बात सुनी भी नहीं होगी। यह दया पालो, व्रत करो, अपवास करो, त्याग करो– ऐसी बातें साधुलोग करे इसलिए सरल लगता है, हमें समझमें आता है। (लेकिन) आपकी बात समझमें नहीं आ रही। कुछ है तो सही ऐसा कहा, लेकिन कुछ समझमें नहीं आया, ऐसा पत्र आया था।

अब यहाँ ऐसा कहे कि निश्चय मोक्षमार्ग जो है वह स्वके आश्रयसे प्रगट हुआ। आश्रयसे प्रगटाका अर्थ ? द्रव्यमेंसे आया ? द्रव्य तो द्रव्य है ऐसा कहते हैं। आहाहा...! भाषा तो ऐसी ही आयेगी। वस्तुस्थिति तो संपूर्ण पड़ी है न ! उसमेंसे निर्मल परिणति आती है न ! भेद हुआ, ऐसा भेदसे कहा, भेदसे ऐसा कहते हैं; वस्तु है वह वस्तु है, पर्याय पर्यायमेंसे होती है, पर्याय पर्यायसे होती है। आहाहा...! पर्याय द्रव्यसे भी नहीं। आहाहा...! ऐसा वीतरागमार्ग ! जिनवरदेवकी....आहाहा...! परम निधानको, 'परम निधान प्रगट मुख आगळे, परम निधान प्रगट मुख आगळे, जगत उल्लंघी जाय जिनेश्वर' वह परमात्मा परम निधान पड़ा है न ! उसे पार करके पर्याय और रागमें चीपका है। 'परम निधान प्रगट मुख आगळे, जगत उल्लंघी जाय।' आहाहा...!

श्रोता :— पर्याय ध्रुव... पर्यायकी एकता करे या नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— तीनकालमें एकता नहीं करती। एकता कहनेका मतलब यह कि उस तरफ झुकी है इसलिए एकता (करी ऐसा कहा)। पर्याय और द्रव्यकी एकता तीनकालमें कभी नहीं होती ! सामान्य-विशेषमें न आवे और विशेष सामान्यरूप न हो ! दो धर्म भिन्न है। आहाहा...! यह तो गाथा ऐसी है। ऐसी बात है, भाई ! ध्रुव तो सदृशरूप त्रिकाल एकरूप है। कूटस्थ है, बदलता नहीं है।

कहीं ऐसा हो तो 'पंचाध्यायी'में ऐसा भी कहा है कि गुण है वह पर्याय होती है तो बदलता है, गुण भी बदलता है। पर्याय आये और जाये उस अपेक्षासे (कहा) लेकिन गुण और द्रव्य त्रिकाल सदृश है। 'पंचाध्यायी'में है कि पर्याय पलटती है वैसे गुण भी पलटता है कि नहीं ? गुण भी पलटता है। बदलता है न ! पर्याय आये और जाय, नई आये और पुरानी जाय, इस अपेक्षासे गुणको पर्यायनयसे पलटता है ऐसा कहा। द्रव्यनयसे देखो तो...आहाहा...! एकरूप परमात्मा विराजमान है। उसे जन्म भी नहीं, मृत्यु भी नहीं, बंध भी नहीं, मोक्ष भी नहीं !

'**जैसा है वैसा ही है, ऐसा निरूपण करते हैं–हे योगीश्वर!**' हे संत ! आहाहा...! 'प्रभाकर भट्ट'को कहते हैं न ! '**निश्चयनयकर** विचारा जावे...' यह द्रव्यसंग्रहमें है। पृष्ठ नं. २०८ 'द्रव्यसंग्रह'में भी यह बात आयी है। ध्यान विनश्वर है। हे संत ! '**निश्चयनयकर**....' परमार्थ निश्चयसे देखे...परमार्थ शब्द है न ! परमार्थसे देखे तो... आहाहा...! '**यह जीव न तो उत्पन्न होता है, न मरता है और न बंध-मोक्षको करता है, वह शुद्धनिश्चयनयसे बंध-मोक्षसे रहित है**...,' भगवान वस्तु है वह निश्चयसे बंध हो तो, कभी छूटे ही नहीं। बंध हो तो उसका अभाव हो जाता है। '**शुद्धनिश्चयसे बंध-मोक्षसे रहित है ऐसा जिनेन्द्रदेव कहते हैं**...' आहाहा...! विशेष कहेंगे....

(श्रोता : प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❀ विकल्पका भाग भी क्रमानुसार होता है, परन्तु जहाँ उसके कालक्रमसे निकलता है तब मैंने किया ऐसा भ्रम उसे हो जाता है। २६१.

–द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर - पर्यायदृष्टि विनश्वर

३३ श्री परमात्मप्रकाश, गाथा—८८-८९, प्रवचन नं. ६७, दि. २०-८-१९७६

'परमात्मप्रकाश' ८८वीं गाथा, भावार्थ फिरसे। भाईने फिरसे लेनेके लिये बोला है। **'यद्यपि व्यवहारनयकर यह आत्मा..'** दिगम्बर, श्वेताम्बर, बौद्धके आचार्य (आदि) **'अनेक भेखोंको धरता है...'** व्यवहारसे भेख धरता है ऐसा कहनमें आता है। **'तो भी निश्चयनयकर कोई भी भेष जीवको नहीं है...'** वह अट्ठाईस मूलगुण–रागादि या नग्न देह यह सब देहके धर्म है। आहाहा...! **'देहके हैं...'** आहाहा...!

'यहाँ देहके आश्रयसे जो द्रव्यलिंग है, वह उपरचितासद्भूत व्यवहारनयकर जीवका स्वरूप कहा जाता है....' उपचारसे–झूठी व्यवहारनयसे कहा जाता है। आहाहा...! असद्भूत कहा न ! उपचरित कहा क्योंकि बाह्य भेष है न ! **'असद्भूत व्यवहारनयकर जीवका स्वरूप कहा जाता है, तो भी निश्चयनयकर जीवका स्वरूप नही है।'** वह लिंग आदि जीवका स्वरूप ही नहीं है। आहाहा...! अठ्ठाईस मूलगुणका विकल्प है वह भी जीवका स्वरूप नहीं है, वह असद्भूत व्यवहारनयसे है। आहाहा...!

'क्योंकि जीव देह ही जीवका नहीं है, तो भेष कैसे हो सकता है?' जब देह ही आत्मा नहीं है, तो देहके भेषको आत्माका कैसे कहा जावे ? **'इसलिए द्रव्यलिंग तो सर्वथा ही नहीं है...'** अब भावलिंगको उपचारसे कहना है न (इसलिए यह द्रव्यलिंग) सर्वथा नहीं ऐसा कहा है। आहाहा...! नग्नपना या भेष है वह सर्वथा आत्माका नहीं है। कथंचित् आत्माका और कथंचित् (देहका) ऐसा नहीं है। आत्माकी पर्यायसे तो वह सर्वथा भिन्न वस्तु है। **'द्रव्यलिंग तो सर्वथा ही नहीं है और वीतराग निर्विकल्प समाधिरूप भावलिंग...'** आहाहा...! देखो, मोक्षका मार्ग ! जो जैन शासन...आहाहा...! जो अपना अबद्धस्पृष्टकर स्वरूप है उसे देखनेवाली नय अथवा देखनेवाला भाव वह जैनशासन भावलिंग है। आहाहा...! समझमें आया ? जो अपनेको अबद्धस्पृष्ट जाने, माने वह पर्याय जिसको यहाँ जैनशासन कहा है, वह भावलिंग निर्विकल्प दशा है। आहाहा...!

'यद्यपि शुद्धात्मस्वरूपका साधक है...' क्या कहते हैं ? वह शुद्ध पूर्णानंदकी प्राप्तिमें निश्चय मोक्षमार्ग निर्विकल्प श्रद्धा, ज्ञान, शांति वह मोक्षमार्गमें साधक होनेसे **'उपचारनयकर जीवका स्वरूप कहा जाता है...'** साधक है उस अपेक्षासे... मोक्षका साधक

है....आहाहा...! उस वीतरागी जैनशासनकी पर्याय भी मोक्षकी साधक होनेसे 'उपचारनयकर जीवका स्वरूप कहा जाता है...' आहाहा...! समझमें आया ? यहाँ तो (अभी) व्यवहारके विकल्प और व्यवहारकी क्रियासे मुझे धर्म होगा (ऐसा मानते हैं)। आहाहा...!

यहाँ तो वहाँ तक कहते हैं कि निमित्तका लक्ष तो छोड, रागका लक्ष छोड़ और पर्यायका लक्ष भी छोड़ ! आहाहा...! समझमें आया ? मार्ग बहुत (सूक्ष्म है) भाई ! यह लोग ऐसा कहते हैं न कि भक्तिसे मोक्ष होता है, भगवानकी भक्तिसे (मुक्ति) होती है.... अरे प्रभु ! भगवानकी भक्ति तो शुभराग है। 'परदव्वादो दुग्गई' ऐसा पाठ है। परद्रव्यके लक्षसे यह राग होता है वह आत्माकी गति नहीं है। वह तो दुर्गति है, चार गतिका कारण है। चाहे स्वर्गका कारण कहो (लेकिन) स्वर्ग और मनुष्यगतिका कारण वह तो दुर्गति है, दु:ख है। आहाहा...! बहुत सूक्ष्म बात, भाई ! लोगोंको स्थूल मिला इसलिए लोगोंको यह बात एकांत जैसी लगती है। अरे ! एकांत ही है, सम्यक् एकांत ! अनेकांतका नय है वह सम्यक् एकांत है। अनेकांतमें सम्यक् नय है वह एकांत है। आहाहा...! समझमें आया ? भाई ! मार्ग बहुत सूक्ष्म है, आहाहा...!

कहते हैं, '**शुद्धस्वरूपका साधक है...**' कौन ? निर्विकल्प निश्चय सम्यग्दर्शन, ज्ञान और चारित्र, स्वसंवेदन ज्ञान; शास्त्रज्ञान आदि नहीं और स्वरूपकी रमणता वह भावलिंग, शुद्धात्मस्वरूप, पूर्ण मुक्तिकी प्राप्ति शुद्धात्मस्वरूपकी (प्राप्तिका) साधक होनेसे शुद्धात्म पर्यायकी प्राप्ति साधक होनेसे '**उपचारनयकर जीवका स्वरूप कहा जाता है।**' आहाहा...! उसको उपचारसे कहा वो सिद्धांत है। वह बराबर देखा नहीं....कल रात्रिमें याद आया था। 'आलापपद्धति'में है। उपचार कर कहें कि मुख्यका उसमें अभाव है। आहाहा...! अखंडानंद प्रभु मुख्य वस्तु है, उस मुख्य (वस्तुका) पर्यायमें अभाव है। निर्मल वीतरागी मोक्षमार्गमें....! रागकी तो यहाँ बात ही कहाँ है ? वीतरागी पर्याय जो मोक्षका मार्ग वीतरागस्वरूप भगवानके आश्रयसे पर्यायमें उत्पन्न हुआ, वीतरागी दशा–निर्विकल्प आनंदकी दशा (प्रगटी), वह वीतरागी दशा–भावलिंगी मोक्षकी, शुद्धात्मस्वरूपकी प्राप्ति अर्थात् मोक्षकी साधक होनेसे उपचारसे जीवका स्वरूप कहनेमें आया है....आहाहा...! समझमें आया ? ऐसा मार्ग है, भाई ! सूक्ष्म तो है लेकिन क्या करे ? लोग अभी भी बहारसे चिल्लाते हैं कि व्यवहार करते करते होता है। व्यवहार तो राग है। यहाँ तो कहते हैं कि निर्विकल्पदशा शुद्धात्मस्वरूपकी साधक होनेसे उपचारसे जीवका स्वरूप कहा जाता है। व्यवहारमें (कहा जाता है) क्योंकि वह पर्याय है। आहाहा...! भगवन् ! अब आगेकी लाईन....

'**वो भी...**' ऐसा कहा फिर भी '**परमसूक्ष्म शुद्धनिश्चयनयकर भावलिंग भी जीवका**

नहीं है।' आहाहा...! निश्चय मोक्षमार्ग जो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र, निश्चय वीतरागी पर्याय, जैनशासन (वह भी जीवका स्वरूप नहीं है)। आहाहा...! १५वीं गाथामें कहा न कि **'जो पस्सइ अप्पाणं'** आत्मा देखे, श्रद्धा करे उस पर्यायको जैनशासन कहनेमें आता है। पर्यायको कहते हैं न ! आहाहा...! जो भगवानको देखता है, अपने भगवानको ! पर भगवानको और गुरुको देखनेंमें तो राग होगा। आहाहा...! समझमें आया ?

आचार्य तो ऐसा कहते हैं, भगवान ऐसा कहते हैं कि प्रभु ! तू हमारे सामने देखता है तो एकबार अपनी ओर देख न ! जहाँ तेरा निधान है वहाँ देख न ! तेरा निधान हमारे पास कहाँ है, जो हमें देख रहा है ! आहाहा...! समझमें आया ? त्रिलोकीनाथ वीतरागकी दिव्यध्वनिमें ऐसा आता है। आहाहा...! हमारे सामने देखनेसे तुझे राग होगा, प्रभु ! राग तो बंधका कारण है। आहाहा...! अपने सामने देख ! तेरा निधान अंदर पडा है, नाथ ! तू निर्विकल्प आनंदका कंद है न ! जो पर्यायमें आता नहीं और पर्याय वहाँ जाती नहीं। समझमें आया ? ऐसा मार्ग है। अरे...! पिताजी कुछ निधान छोड़ जाये तो वारसाई लेने तुरंत तपास करता है। प्रभु कहते हैं कि तेरे पास निधान पड़ा है वह भी जीवका व्यवहार स्वरूप है, वह वास्तविक जीव नहीं। आहाहा...! वह औपचारिक जीव है। आहाहा...! भाई ! समझमें आया ? आहाहा...!

प्रभु ! तेरा मार्ग... वीतराग त्रिलोकीनाथ सर्वज्ञकी वाणीमें ऐसा आया, प्रभु ! तू हमारे सामने—देव-गुरु-शास्त्रके सामने देखता है, तो तुझे राग होगा, **'पस्सइ अप्पाणं'** आहाहा...! तेरा नाथ तो तेरे पास अंदर पड़ा है न ! वहाँ निधानके उपर दृष्टि करनेसे तुझे आनंद आयेगा। हमारे उपर दृष्टि करनेसे तुझे दुःख होगा, प्रभु ! भाई ! ऐसा मार्ग सुनने मिलता नहीं। ऐसे ही जिन्दगी चली जा रही है धूलमें ! यह पूजा और भक्ति और यात्रा करो और हो गया धर्म ! भाई ! वह तो राग है, वह धर्म तो नहीं लेकिन धर्मका कारण भी नही; लेकिन जो वीतरागी निर्विकल्प मोक्षमार्ग है उसका व्यवहार कारण भी नहीं। निश्चय मोक्षमार्गका कारण द्रव्य स्वभाव है। समझमें आया ? और वह द्रव्यस्वभाव त्रिकाली है उसकी यह मोक्षपर्याय है ?–तो कहते हैं कि नहीं, वह उपचार है। आहाहा...! गजब बात है। समझमें आया ? यह बात तो शास्त्र चलता हो तब कही जाती है, उपर उपरसे कहने पर पकडमें नहीं आती। यह अधिकार चल रहा है और सामने गाथा है। आहाहा...! समझमें आया ?

'उपचारकर जीवका स्वरूप' गजब बात है, प्रभु ! राग तो उसका स्वरूप नहीं, देह उसका स्वरूप नहीं लेकिन मोक्षका मार्ग भी जीवका स्वरूप उपचारसे है। आहाहा...! गजब

बात है। क्यों ?–कि वो पर्याय है। वह पर्याय उपचारसे द्रव्यकी है। आहाहा...! द्रव्यमें पर्याय नहीं है। समझमें आया ? आहाहा...! ऐसा मार्ग है। लोगोंको ऐसा लगे....बीच बीचमें यह बात नहीं थी न ! भगवन् ! आहाहा...! निश्चयाभासी एकांती है, ऐसा कहते हैं। बापू ! उसे पता नहीं है, परमात्मा तो ऐसा कहते हैं।

त्रिलोकीनाथ जिनेश्वरदेव, गणधरदेव और इन्द्रोंके बिचमें यह कहते थे, वह संत कह रहे हैं। दिगम्बर संत वह कह रहे हैं जो सर्वज्ञने कहा है। समझमें आया ? श्वेताम्बर जैसा नहीं है कि भगवानने कहे हुये शास्त्र हम कहते हैं। यह तो हम अपने वैभवसे भगवानने कहा वह कह रहे हैं। आहाहा...! गजब बात है, भाई ! यह सत्य बात कानमें पहुँचनेके लिये भाग्य चाहिये ! यह पैसेका भाग्य नहीं। आहाहा...! वह तो जड़ कंकर है। वह तो जड़ कंकर परमाणु है, वह तेरे कहाँसे ? यहाँ तो कहते हैं कि राग तेरा नहीं और निर्विकल्प मोक्षका मार्ग भी उपचारसे तेरा है, गजब बात है ! समझमें आया ? आहाहा...!

गजब बात कही है ! यह यहाँ कहते हैं कि पूर्ण शुद्धात्माका स्वरूप प्राप्त हो उसका साधक मोक्षमार्ग होनेसे उपचारसे जीवका (स्वरूप) है ऐसा कहते हैं। आहाहा...! यहाँ तो शुद्धात्माकी पर्याय प्राप्त हो उसका साधक सिद्ध करना है। वह शुद्धात्माकी पर्याय पूर्ण प्राप्त हो उसका साधक होनेसे जीवका (स्वरूप) उपचारसे है ऐसा कहते हैं। समझमें आया ? आहाहा...! यह सब व्यवहारके और निमित्तके और क्रमबद्धके झगड़े ! यह तीनों सोनगढ़के नामसे (चलते हैं)।

क्रमबद्ध–एकके बाद एक क्रमबद्ध होता है, तो (लोग) कहते हैं कि नहीं। अरे भगवन् ! फिर तो सर्वज्ञ ही नहीं रहे। जिस समय जो पर्याय होनी है वह सर्वज्ञने पहलेसे देखी है। समझमें आया ? आहाहा...! सोनगढका है या भगवानके घरका ? अरे....! वह 'सम्यग्ज्ञान दीपिका' ब्रह्मचारी क्षुल्लकजीका है, उन्होंने थोड़े सिद्धांत सिद्ध किये हैं, उनकी वह बात झूठ नहीं है। अब वह (बात) सोनगढ़के नामसे चलाकर कहते हैं कि सोनगढवाले ऐसे कहते हैं। अरे भगवन् ! भाई ! ऐसा न चले। यहाँ वीतरागका विरह हुआ तब ऐसा अन्याय ना चले। समझमें आया ? आहाहा...! भाषा तो देखो ! ऐसी (भाषा) सुनने मिलना दुष्कर है। जिंदगी ऐसे ही अज्ञानमें चली जा रही है। आहाहा...! अंतमें चार गतिमें भटकना ! आहाहा...!

परिभ्रमणका अंत लानेके लिए मोक्षका मार्ग है। वह मोक्षका मार्ग भी पर्याय है, अतः उपचार है। आहाहा...! वास्तविक जीव स्वरूपमें वह नहीं है। त्रिकाली भगवान

आनंदका नाथ प्रभु ध्रुव...ध्रुव स्वरूप...आहाहा...! आहाहा...! **'परम शुद्धनिश्चयकर भावलिंग भी जीवका नहीं है।'** द्रव्यलिंग तो नहीं, भावलिंग भी नहीं। प्रभु ! तू तो साक्षात् परमात्म स्वरूप है न ! आहाहा...! वीतरागमूर्ति तेरी चीज है। अकषायरस तेरा स्वरूप है। अनंत शक्तिका संग्रहालय, गुणोंका धाम-गोदाम तू है, उसमें यह पर्याय नहीं ! समझमें आया ?

दृष्टिका विषय दिखाते हैं। मोक्षमार्गकी पर्याय भी दृष्टिका विषय नहीं, दृष्टिका विषय दृष्टि नहीं है। गजब बात है। समझमें आया ? सम्यग्दृष्टिका विषय सम्यग्दृष्टि नहीं है। आहाहा...! फिर तो सम्यग्दर्शनका विषय व्यवहार रत्नत्रय तो कहीं दूर रह गया ! सम्यग्दर्शनका विषय मोक्षका मार्ग नहीं। आहाहा...! समझमें आया ? ऐसा मार्ग है। देहादि तो नहीं, रागादि तो नहीं, व्यवहार रत्नत्रय भी जीवका स्वरूप नहीं है। आहाहा...! असद्भूत व्यवहारनयसे कहो, झूठी नयसे कहो...आहाहा...! और यह जो मोक्षका मार्ग निर्विकल्प भावलिंग वह सद्भूत व्यवहारनयका विषय है। सद्भूत व्यवहारनयका विषय होनेसे उपचारसे जीवका (स्वरूप) कहनेमें आता है। आहाहा...! यह मार्ग ऐसा है, क्या करे ! पहले उसका पक्ष तो करना चाहिये (कि) मार्ग ऐसा है। यह कोई घरकी बात नहीं है। यह तो तीनलोकके नाथके घरकी बात है, प्रभु ! परमेश्वरकी पर्याय जितना तू नहीं है। मोक्षमार्गकी पर्याय जितना नहीं, सिद्धकी पर्याय, परमात्माकी पर्याय जितना नहीं। परमात्मा सिद्धकी पर्याय भी सद्भूत व्यवहारनयका विषय है। केवलज्ञान सद्भूत व्यवहारनयका विषय है। निश्चयका विषय नहीं। समझमें आया ? आहाहा...! पर्याय है न ! द्रव्यमेंसे भेद पड़ा न ! भेद पड़ा इसलिए (व्यवहार) और उसकी है इसलिए सद्भूत। केवलज्ञान सद्भूत व्यवहारनका विषय है। गजब बात है, प्रभु ! आहाहा...! उसका साधक है ऐसा उपचारसे कहनेमें आता है। आहाहा...!

ऐसी बात भी कहाँ है प्रभु ! आहाहा...! जीवन चला जा रहा है। समय समय मृत्यु समीप जा रहे हैं। जो समय गया वह लौटकर नहीं आयेगा। आहाहा...! जीवनका अंत आनेकी तैयारी है। देह छूट जायेगा, भगवन् ! जो आत्माका शरण नहीं लीया तो कुछ नहीं कीया ! तूने कुछ नहीं किया !

श्रोता :— उस समय याद तो आयेगा न !

पूज्य गुरुदेवश्री :— याद किया हो तो याद आये न ! याद क्या आयेगा ? याद आये उसमें क्या है ! याद आये वह तो धारणा हुई। अंतरमें आत्माकी दृष्टि हुई हो तो मृत्यु समय पर वह दृष्टि आयेगी। समझमें आया ? याद आये उसमें क्या हुआ ? वह तो धारणा

हुई। सूक्ष्म बात है, भाई ! वीतरागका मार्ग ऐसा है। जन्म-मरणका अंत लाये ऐसी बात है। चौरासीका सिंधु-दरिया (उसका अंत लानेकी बात है)। शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है ! यह भवसिंधु मेरा रूप नहीं है ! भवसिंधुका कारण राग भी मेरा रूप नहीं है। आहाहा...! 'कहे विचक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ, अपने रससो भर्यो अनादि टेक हूँ।' मेरी चीज अनादि आनंदकंद शुद्ध चैतन्य घन निर्विकल्प आनंद सामान्य ध्रुव स्वरूप त्रिकाल है। 'कहे विचक्षण पुरुष सदा मैं एक हूँ, अपने रससो भर्यो अनादि टेक हूँ, मोहकर्म मम नहीं, नाहीं भ्रमकूप है।' वह भ्रमका कुआ है और शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है, शुद्ध चेतना सिंधु हमारो रूप है। आहाहा...! जिसमें पर्याय भी नहीं है। ऐसी बात है, प्रभु ! आहाहा...! भाईने कहा कि फिरसे पढ़ना, इसलिए फिरसे लिया। अरे भाई ! यह बात कहाँ है ? बापू ! मान-सम्मान आदि सब शून्य है-धूल है। भरा हुआ भगवान गुणका सागर तो यहाँ अंदर है। वह रागसे खाली, पर्यायसे खाली है। आहाहा...! वह दृष्टिका विषय है। सम्यग्दर्शनका आधार-विषय यह है। ऐसे तो निश्चयसे मोक्षमार्गकी जो पर्याय है वह पर्याय कर्ता, पर्याय कर्म, पर्यायका आधार पर्याय, पर्याय पर्यायको रखती है और पर्यायमेंसे पर्याय आती है। आहाहा...!

निश्चय मोक्षमार्ग जो है वह भी पर्याय है और पर्यायके कर्ता-कर्म षट्कारक पर्यायमें है। उसे आत्माका कहना वह उपचारसे ऐसा कहते हैं। आहाहा...! जिस भगवानमें कर्ता, कर्म, करण, गुण त्रिकाल पड़े हैं। यह तो एक समयकी पर्यायके कर्ता-कर्म हुये। समझमें आया ? आहाहा...! वस्तुमें तो त्रिकाली कर्ता, त्रिकाली कर्म, गुण-शक्ति करण, संप्रदानस अपादानस अधिकरण, स्वच्छता, प्रभुता, जीवत्व आदि अनंत शक्तियोंका संग्रह-अनंत शक्तिका पिंड प्रभु है ! यह व्यवहार उपचारसे भावलिंग कहा वह जीवका (स्वरूप) नहीं है। अरेरे...! स्त्री, पुत्र और पैसे कहाँ गये ? भाई ! यह मेरा पुत्र और यह मेरी वो और यह मेरा और यह मेरा....आहाहा...!

श्रोता :— ....

पूज्य गुरुदेवश्री :— ...उड़ ही गया है, उसमें था ही कब ! उसमें है ही कहाँ ? आहाहा...! एक द्रव्य दूसरे द्रव्यके उपर ही उपर तैरता है। 'बहिर्लूटंती' शब्द संस्कृतमें है। एक द्रव्य (दूसरे द्रव्यपर) तैरता है, कलश है। समझमें आया ? उपर ही उपर पूरा द्रव्य रहता है। 'बहिर्लूंटंति' ऐसा शास्त्रमें पाठ है। शरीर, कर्म, वाणी, मन, स्त्री, कुटुंब, परिवार सब 'बहिर्लूंटति' ! तेरा और उसका क्या संबंध है ?

यहाँ तो कहते हैं कि तेरे तो रागके साथ संबंध नहीं है। अरे...! निर्विकल्प पर्यायका संबंध तेरे साथ कहना वह भी व्यवहार है। आहाहा...! भाई ! ऐसी बात है, प्रभु ! भाईने फिरसे पढ़नेको कहा इसलिए फिरसे पढ़ा। आहाहा...! भगवान आत्मा है न ! भाई ! उस भगवान आत्मामें भावलिंगपना भी नहीं है। आहाहा...! क्योंकि पलटती दशा है। मोक्षमार्ग तो एक समयकी दशा है। भावलिंग है वह तो एक समयकी दशा है और वस्तु त्रिकाल है। समझमें आया ? क्या कहते हैं ? अंदरमें समझना वह करना है। आहाहा...!

भगवान आत्मा वस्तु कि जो चिद्घन स्वरूप आनंदकंद नित्यानंद है उसमें तो भावलिंगकी परिणति भी नहीं है अथवा वह भावलिंग जीवका स्वरूप नहीं है, वह तो पर्यायका स्वरूप है। समझमें आया ? अब इतना स्पष्ट कथन है। यह 'परमात्मप्रकाश' है न ! तो कहते हैं कि भावलिंग है वह परमात्मप्रकाश वस्तुमें नहीं है। परमात्म पर्याय जो प्रगट हुई वह परमात्मस्वभावमें नहीं है। आहाहा...! परमात्मस्वभाव तो ध्रुव त्रिकाल आनंदकंद है। ऐसी परमात्मप्रकाशकी अनंती अनंती पर्यायका पिंड तो है। समझमें आया ? अरे....! उसने आत्माको सुना नहीं है। आहाहा...!

'पद्मनंदी-पंचविंशति'में बारह-तेरह बोल लिखे है : आत्माको सुनना, आत्माको पूछना, आत्माके प्रश्न करना, आत्माके विचार करना, आत्माका चिंतवन करना, आत्माका मनन करना,....ऐसे तेरह बोल लीये है। 'पद्मनंदी पंचविंशति'में यह लिया है। २६ अधिकार है लेकिन २५ नाम दिया है, अधिकार २६ है, 'पद्मनंदि पंचविंशति'में सब देखा है न ! सब शास्त्र (देखे हैं)। उसमें २६ अधिकार है, लेकिन नाम २५ दिया है। 'पद्मनंदि पंचविंशति' बनाया है न ! उसमें यह लेख है। प्रभु ! तुजे आत्मा सुनना, आत्मा विचारना, चिंतवन करना, पूछना (इत्यादि)। आत्मा कैसा है वह पूछना। दूसरी बात छोड़ दे, तू यह कर ! 'पद्मनंदी पंचविंशति'में यह तेरह बोल है। २६ अधिकार है लेकिन नाम 'पंचविंशति' दिया है। उसमें बीचमें है, शायद 'निश्चय अधिकार'में है। 'निश्चय अधिकार' है न ! सब पढ़ा है, प्रवचनमें पढा है। प्रवचन हो गये हैं। वह अधिकार पढ़ा है। ४२वाँ चोमासा चल रहा है, यहाँ ४२वाँ चोमासा चल रहा है। आहाहा...!

'भावलिंग भी जीवका नहीं है। भावलिंग साधनरूप है...' वह तो पर्यायरूप साधन है ऐसा कहते है। आहाहा...! **'यह भी परम अवस्थाका साधक नहीं है।'** अर्थात् द्रव्यको सिद्ध करनेमें वह पर्याय साधन है लेकिन द्रव्यमें वह पर्याय साधन नहीं है। समझमें आया ? पर्याय जो साधनरूप है वह द्रव्यमें नहीं है। द्रव्यमें यह है उसे सिद्ध नहीं कर सकती। द्रव्यमें यह है ऐसा पर्याय सिद्ध नहीं कर सकती। द्रव्य तो द्रव्य है ! आहाहा...!

ऐसा द्रव्य भगवान साक्षात् परमात्म स्वरूप है। ८८=आठ कर्मका अभाव, भावलिंगका अभाव। आहाहा...!

'आगे, यह गुरु-शिष्यादि भी नहीं है...' देखो ! यह गुरु मेरे और यह देव मेरे– ऐसा नहीं है। ऐसा कहते हैं। आहाहा...! ८९।

अप्पा गुरु णवि सिस्सु णवि सामिउ णवि भिच्चु।
सूरउ कायरु होइ णवि णवि उत्तमु णवि णिच्चु॥८९॥

भगवान आत्मा गुरु नहीं है। आहाहा...! यहाँ तो कहते हैं कि गुरु मेरे नहीं है, शिष्य भी मेरे नहीं है, स्वामी भी नहीं और नोकर भी नहीं। गुरु नहीं, शिष्य नहीं, स्वामी नहीं, भृत अर्थात् सेवक भी नहीं। भृत अर्थात् सेवक-नोकर। **'शूरः कातरः नैव'** भगवान आत्मा शूरवीर नहीं। पर्यायके शूरवीर, हाँ ! और परमात्मा कायर भी नहीं है। आहाहा...! वह शूरवीर और कायर तो पर्यायकी बात है। समझमें आया ? उत्तम और नीच नहीं। उंच कूलवाले हम हैं (ऐसा नहीं है)। नीच कुल भी नहीं, वह सब गुरु, शिष्य, स्वामी, सेवक आदि संबंध नहीं है। आहाहा...! वह तो व्यवहारसे कहनेमें आता है, ऐसा कहते हैं। गुरु ऐसा कहते हैं कि हम तेरे नहीं है, तू हमारा शिष्य नहीं है। सब जगह गड़बड़ है न ! पता है न, भाई !

यहाँ तो शरीरको ८७वाँ वर्ष चल रहा है। १९६५से शास्त्र अभ्यास है। 'पालेज'में पिताजीकी दुकानमें भी शास्त्र पढ़ते थे। पूर्वके संस्कार थे (इसलिए यह धर्म मिल गया), लेकिन यहाँ तो श्वेताम्बर थे न !....वह सब बहुत पढ़ा लेकिन यह जैनदर्शनकी बात कहीं नहीं है। कोई कहे कि बौद्ध मिथ्यादृष्टि और भगवान महावीर दोनों मोक्ष गये हैं। स्थानकवासी जैन होकर ऐसी बात! गजब बात है न ! कहाँ बौद्ध गृहीत मिथ्यादृष्टि और कहाँ भगवान केवलज्ञानी ! आहाहा...! अभी तो सब ऐसे ही अंधाधूंध चल रहा है। स्थानकवासीमें कोई ऐसा विचार करनेवाला भी नहीं है कि क्या चल रहा है और यह क्या बोल रहे हैं !

श्रोता :— गहरे उतरकर....

पूज्य गुरुदेवश्री :— लेकिन इसमें गहरा कहाँ है ? कहाँ बौद्ध और कहाँ परमात्मा ! निश्चय-व्यवहारकी बात हो तो सूक्ष्म लगे लेकिन कहाँ वह बौद्ध और कहाँ भगवान तीनलोकके नाथ और कहाँ गृहीत मिथ्यादृष्टि क्षणिकवादी ! बेचारा वैरागी राजा था लेकिन क्षणिकवादी ! दुःखसे वैराग्य (आया था) लेकिन वस्तु त्रिकाल क्या है (उसकी समझ नहीं

थी) ! वह बौद्ध नित्यको मानता ही नहीं था। 'श्रीमद्'में भी पीछे आता है। २७ प्रश्नोत्तर है, उसमें किसीने प्रश्न किया है–बौद्ध है ? उसके शास्त्रसे देखें तो बौद्ध धर्मको प्राप्त हुआ ही नहीं है, ऐसा लिखा है। 'श्रीमद्'की दृष्टि निर्मल थी। एक यह श्वेताम्बर-दिगम्बरकी भिन्नता पहलेसे नहीं हुई थी, बादमें (भिन्नता) करी लेकिन उनके भक्त अब मानते नहीं। बादमें स्पष्ट कर दिया है। सत्श्रुतमें १९ नाम दिगंबरके (शास्त्रोंके) दिये हैं। लोगोंको वह पकड़ होती है इसलिए आग्रह (छूटता नहीं)।

श्रोता :— ...

पूज्य गुरुदेवश्री :— नहीं, वस्तु उसमें नहीं है। मूल तो गृहीत मिथ्यादृष्टि होनेके बाद शास्त्र रचे हैं। कहीं नहीं है; थोड़ा निकाला है लेकिन वह भी समयसारमेंसे लेकर डाला है, अभी नया बनाया है यह वस्तु, बापू ! यह तो सनातन सत्य है। आहाहा...! सनातन सत्यका प्रवाह बह रहा है। ऐसा मार्ग है, बापू ! यह भगवानका कहा हुआ है। आहाहा...!

श्रोता :— 'समयसार'को भी नहीं मानते ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— नहीं, वह नहीं मानते। दिगम्बरका ग्रंथ क्युं माने ? 'समयसार'को माने तो श्वेताम्बर धर्म पूरा गलत हो जाये, उसको क्युं मानेंगे ? आहाहा...!

यहाँ तो दूसरा लेना है कि गुरु और शिष्य भी व्यवहारनयसे कहनेमें आते हैं। आहाहा...! यह मेरे गुरु और यह मेरा शिष्य, वह तो व्यवहारसे कथन है। गुरु-शिष्य कैसे ? भगवान आत्मामें द्वैत कैसा ? आहाहा...! विकल्पका द्वैत जिसमें नहीं। अरे ! निर्मल पर्यायका द्वैत जिसमें नहीं, उसमें गुरु-शिष्य कहाँसे आये ? अद्वैत भगवान...अन्यमतवाले–वेदांतवाले अद्वैत कहते हैं वैसा नहीं। यह अद्वेत अर्थात् एकरूप वस्तु कि जिसमें पर्यायकी द्वैतता नहीं। पंच परमेष्ठिमें आता है–मैं द्वैत भी नहीं, मैं अद्वैत भी नहीं। मैं तो जैसा हूँ वैसा हूँ, ऐसा आता है। द्वैत अर्थात् द्रव्य-पर्याय, 'पद्मनंदि-पंचविंशति'में श्लोक आता है। 'नियमसार'में उसका आधार लिया है। आहाहा...! द्रव्य और पर्याय—ऐसा द्वैत भी नहीं और 'मैं द्रव्य हूँ' ऐसा अद्वैतका विकल्प भी नहीं आहाहा...! ऐसा मार्ग है। प्रभु ! सम्यग्दर्शनका विषय अलौकिक वस्तु है। लोग ऐसा मान लेते हैं कि हम सम्यग्दृष्टि है और अब पड़िमा ले लो और व्रत ले लो ! अभी तो सम्यग्दर्शन कैसे हो (उसकी खबर नहीं)। आहाहा...!

अरे ! सम्यग्दर्शन हुआ तो वस्तु है वह मोक्षस्वरूप है (ऐसा भान हुआ)। सम्यग्दर्शनमें मोक्षस्वरूपका भान है तो अंदर मोक्ष हो गया। पर्यायमें मोक्ष होना है, द्रव्य

मोक्ष तो अंदर हो गया, अबद्ध कहो या मोक्ष कहो। आहाहा...! ऐसी वस्तुमें गुरु-सेवकादि तो व्यवहारसे है। आहाहा...! यहाँ तो (ऐसा कहते हैं कि) हमारे गुरुको हम माने तो मोक्ष होता है। गुरुको माने वह तो विकल्प है। वह मार्ग तो वीतराग है। मुँहके सामने खाना रखो तो किसे पसंद ना आये ! यह (वीतराग) तो मना करते हैं कि हमारे सामने देखोगे तो राग होगा। यह वीतरागमार्ग है, भाई !

देखो, यहाँ कहते हैं कि गुरु और शिष्य व्यवहारसे हैं। '**शुद्ध-निश्चयनयसे शुद्ध आत्मासे जुदे हैं**...' गुरु कौन ? उसका आत्मा भिन्न, तेरा आत्मा भिन्न, शिष्यका आत्मा भिन्न। तुझे ऐसा क्युं लगता है ? समझमें आया ? कोई कहता है कि गुरुकी भक्ति करते करते मोक्ष होगा। भाई कल कह रहे थे कि लोग ऐसा कहते हैं कि गुरुकी भक्ति करेंगे तो मुक्ति होगी। 'श्रीमद्'में बहुतको यह शल्य घुस गया है, पता है। किसी भाईने एकबार प्रश्न किया था कि महाराज ! देव-शास्त्र-गुरु तो शुद्ध है, वह परद्रव्य ? वह 'श्रीमद्'में जानेवाले और 'अगास'में पढ़नेवाले थे, ऐसा मानते थे कि गुरुकी भक्ति करो, बस ! मुक्ति हो जायेगी। भाई ! गुरुकी भक्ति तो राग है। भगवान तो वहाँ तक कहते हैं, आगे आयेगा....राग है, शुभ (राग) है।

अनंतबार समवसरणमें साक्षात् जाकरके तीनलोकके नाथकी हीरेके थाल, मणिरत्नके दीपक, कल्पवृक्षके फूलसे (पूजा करी)। 'मोक्षमार्गप्रकाशक'में आता है, 'सम्यग्ज्ञान दीपिका'में भी आता है। 'सम्यक्ज्ञान दीपिका'में भी आता है। 'सम्यक्ज्ञान दीपिका'में विशेष स्पष्ट कर दिया है। अनंतबार पूजा करी (लेकिन) क्या हुआ ? वह तो शुभभाव है। साक्षात् तीनलोकके नाथ समवसरणमें (विराजमान है)। सिद्धकी तो परोक्ष भक्ति करते हैं। वर्तमानमें नहीं है न ! तो सिद्धकी परोक्ष भक्ति करते हैं और यह (अरिहंत) भगवान तो समवसरणमें विराजमान है। समवसरणमें ऐसी भक्ति करी। वह क्या है ? वह तो राग है, उससे बंध होता है। यह गजब बात है, भाई ! 'मोक्षपाहुड'में तो यहाँतक कहा है, 'परदव्वादो दुग्गई' १६वीं गाथा। परद्रव्यके उपर लक्ष जायेगा तो तुझे राग उत्पन्न होगा ही ! तेरी चैतन्यकी गति नहीं रहेगी ! आहाहा...! ऐसी बात...! दिगंबर मुनि 'नागा ए बादशाहथी आघा'...! उनको जगतकी कहाँ परवाह है। कैसे माने या न माने, वो जाने ! मार्ग ऐसा है ? आहाहा...!

'समंतभद्र आचार्य'की स्तुतिमें आता है न ! भगवानने उपदेश दिया लेकिन उसका फल... वह तो केवली है। चोबीस (तीर्थंकर स्तुति)में आता है। 'स्वयंभूस्तोत्र' ! भगवानने मार्ग कह दिया। शायद तक 'धर्मनाथ'की स्तुतिमें आता है। चोबीस (तीर्थंकरकी) स्तुति है न ! 'समंतभद्र आचार्य'का 'स्वयंभूस्तोत्र', भगवानने धर्म बता दिया अब उसका फल

आया नहीं वह कौन देखे ? वह तो केवलज्ञानी है। वैसे ही धर्मात्मा मुनियोंने सत्य बात करी ! किसको समझमें आयी नहीं उससे क्या काम है ? आहाहा...! समझमें आया ?

देखो, यहाँ (कहते हैं कि) गुरु-शिष्य नहीं है। गुरुका आत्मा भिन्न, तेरा आत्मा भिन्न ! देवका आत्मा भिन्न, तेरा आत्मा भिन्न ! भवोभव पूजा करी है। दूसरे भागकी गाथा १४३में हैं। 'भवे भवे जिन पूजिओं' ऐसा शास्त्रका कथन है अर्थात् भवोभव इस जीवने जिनवरको पूजा और गुरुको वंदन किया, अनंतबार जिनवरकी पूजा की है। दो भाग है, दूसरे भागकी १४३वीं गाथाके भावार्थकी ९-१० लाईन बाद–भवे भवे जिन पूजियो ! आहाहा...! समकित बिना भावभक्तिके अभावसे जिनस्वामी नहीं मिले ! कहते हैं, जिनस्वामी ही नहीं मिले ! अर्थात् बिना सम्यग्दर्शन जिनस्वामी (मिले ऐसा) कहनेमें नहीं आता। आहाहा...! बहुत अच्छा अर्थ किया है। १४३ है। दो को प्राप्त नहीं किया–जिनस्वामी और समकित ! जिनस्वामी मिले ऐसा कब कहलायेगा ?–कि जो सम्यग्दर्शन प्राप्त करेगा उसे जिनस्वामी (मिले) कहलायेगा। दूसरे भागमें 'परमात्मप्रकाश'की गाथा बहुत अच्छी है। आहाहा...!

शुद्धनिश्चयसे गुरु और शिष्य जुदा है। शूरवीर और स्वामी, कायर और नीचता–सब आत्मासे भिन्न है। '**आत्माके नहीं है, त्यागनेयोग्य है...**' '**हेयभूतान**' संस्कृतमें '**हेय**' है। वह गुरु आदि त्यागने योग्य है, ऐसा कहते हैं। (क्योंकि) दृष्टिका विषय नहीं है न ! सूक्ष्म बात है, बापू ! जब तक परके उपर लक्ष रहेगा तब तक राग-विकल्प होगा। आहाहा...! ऐसा मार्ग है ! '**इन भेदोंको वीतराग परमानंद, निज शुद्धात्माकी प्राप्तिसे रहित बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव अपने समझता है...**' भाषा देखो ! वह मेरे गुरु और यह मेरा शिष्य—बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि अपने मानता है। शेठ ! देखा ? ८९ गाथा, हिन्दीमें चल गया फिर भी यह हिन्दी चल रहा है, यह तो हिन्दी पुस्तक है न !

'**वीतराग परमानंद शुद्धात्माकी प्राप्ति...**' भाषा देखो ! '**वीतराग परमानंद निज शुद्धात्माकी प्राप्तिसे रहित बहिरात्मा मिथ्यादृष्टि जीव अपने समझता है...**' यह मेरे गुरु और यह मेरा शिष्य—ऐसा अंतरमें निश्चयसे माने वह तो बहिरात्मा है। आहाहा...! परद्रव्य मेरे ! फिर यह 'मेरा बेटा' वह कहाँ रहा ! भाई इटलीसे मशीन लाये हैं। साडे तीन लाख अक्षर (लिखे हैं)। चारों ओर जिनवाणी माता ! आता है न 'सुधा धर्मसाधनी धर्मशाला' ! आहाहा...! उसमें आता है, 'क्षुधा मोहतापनी नाशनी...मोक्षदानी...' आहाहा...! जिनवाणीका बहुमान तो आता है न ! सर्वज्ञकी बातका बहुमान आता है। विकल्प है न ! आता है। आहाहा...! लेकिन उतनेसे ऐसा मान ले कि कल्याण हो जायेगा (तो ऐसा नहीं है),

मिथ्यादृष्टि ऐसा समझता है। गुरु मेरे और शिष्य मेरा–ऐसा मिथ्यादृष्टि मानता है, ऐसा कहते हैं। आहाहा...! यह मेरे शिष्य है। किसके शिष्य ? बापू ! परवस्तु भिन्न है, तेरे पास आई नहीं, तेरी परिणति जो शुद्ध है वह भी तेरी वस्तुमें नहीं है तो फिर यह वस्तु अंदरमें कहाँसे आई ? आहाहा...!

'और इन्हीं भेदोंको वीतराग निर्विकल्प समाधिमें रहता हुआ अंतरात्मा सम्यग्दृष्टि जीव पररूप (दूसरे) जानता है।' लेकिन पररूप कब जानता है ?–वीतराग निर्विकल्प समाधिमें रहता हुआ ! अंतरमें वीतरागी निर्विकल्प शुद्धतामें रमता हुआ अंतरात्मा सदाय उस परको जुदा मानता है, ऐसा कहते हैं। शुद्ध वीतरागी आनंद प्रभु (हूँ)—ऐसी दृष्टि करनेवाला अंतरात्मा सदाय उस वस्तुको जुदा जानता है। जुदा हुआ है वह जुदा जानता है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❀ व्रत, नियम और तपके—शुभरागके—अभ्याससे आत्मा जाननेमें नहीं आता। मैं तो मात्र ज्ञाता-द्रष्टा हूँ—ऐसा बारम्बार अभ्यास करनेसे, ज्ञायककी ओर उन्मुख होनेसे, अंतरमें ज्ञातृत्व प्रगट होनेसे आत्मा ज्ञात होता है और परका तथा रागका कर्तृत्व छूटता है। यह सम्यग्दर्शन करनेकी विधि है। मैं मात्र ज्ञाता-द्रष्टा हूँ—ऐसा अंतर्मुख अभ्यास बारम्बार करनेसे पर्यायमें ज्ञातापना प्रगट होता है और तब परका कर्तापना छूटता है; रागके विकल्पका भी कर्तापना तभी छूटता है। अज्ञानी अपने ज्ञातास्वभावसे अनभिज्ञ है। वह शरीरादि परकी क्रिया तो नहीं कर सकता, परन्तु वह ज्ञातापनेके अभ्याससे रहित है, इसलिये व्रत, तप, पूजा, भक्ति आदि बाह्य क्रियाओंका तथा पुण्य-पापके भाव जो अपना स्वभाव नहीं है उनका वह कर्ता होता है। अकेले शास्त्रज्ञानके अभ्याससे ज्ञातापना प्रगट नहीं होता और व्रत, नियम, भक्तिके ढेर लगाये तब भी उसे आत्माका ज्ञाताद्रष्टापना प्रगट नहीं होता। अहा! ऐसी बात है प्रभु! ५००.

–द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर - पर्यायदृष्टि विनश्वर

३४ श्री समयसार, गाथा-३२०J, प्रवचन नं. ६, दि. १७-८-१९७०

'समयसार' ३२०वीं गाथा, 'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकार' आचार्यकी टीका चल रही है। तीसरे पेईजका तीसरा पेरेग्राफ हो गया। बराबर है ? तीसरेमें क्या कहा ? इसलिए यह सिद्ध हुआ...सिर्फ मख्खन है। जिसको धर्म करना हो उसे, मोक्ष स्वभाव जो त्रिकाल स्वरूप ध्रुव है उसकी दृष्टि करनेसे ही सम्यग्दर्शन होगा, दूसरा और कोई उपाय नहीं है। तो कहते हैं कि इसलिए ऐसा सिद्ध हुआ कि शुद्ध पारिणामिकभाव विषय, वह द्रव्यनयका विषय हुआ। ऐसे चार बोल पहले आये थे, यह पांचवाँ बोल आया।

शुद्ध पारिणामिकभाव विषय, स्वयंका जो सहज ध्रुव ज्ञायक अभेद सामान्य नित्य एकरूप ऐसा जो तत्त्व है, उस तत्त्वको विषय करनेवाली, उस तत्त्वको ध्येय करनेवाली ऐसी भावना। समझमें आया ? वह भावना। उसरूप जो उपशम आदि तीन भाव है, उसरूप पारिणामिकभाव त्रिकाल वह तो ध्रुव भाव है वह तो ध्येय, विषय, लक्ष करने योग्य है। जिसको धर्म करना हो, सुखके पंथ पर चलना हो....समझमें आया ? दुःखका नाश करना वह भी नास्तिसे बात है, सुखके पंथ पर आना हो....अनादिसे दुःखी है। समझमें आया ? अपने अकषाय ज्ञायक स्वभावको भूलकरके रागादि विकल्प आदि मेरे हैं—यही संसारका बीज–मिथ्यात्वभाव है। समझमें आया ? रागादि पुण्यादि विकल्प मेरे है–यह मिथ्यात्वभाव है, उससे रहित पारिणामिकभाव मेरा है–यह सम्यक्‌भाव है।

भगवान आत्मा अपना ज्ञायकभाव पूर्ण ध्रुव स्वरूप अविनाशी पद उसे भूल रागादि विकल्प, चाहे तो महाव्रतका विकल्प हो या दया, दान, भक्ति, पूजाका (विकल्प हो), लेकिन वह विकल्प अन्य तत्त्व है। अन्य तत्त्व सहित स्व-तत्त्व है ऐसी मान्यता मिथ्यात्व है, वह संसारका बीज है। उस मान्यताका नाश करना नहीं है। भगवान आत्मा पारिणामिकभाव है उस तरफका झुकाव, ऐसी जो भावना, ऐसा जो मोक्षका मार्ग उसका विषय–ध्येय तो द्रव्य है। बात तो ऐसी है। लोगोंको बाहरमें....अंतरमें वस्तु पातालमें महा भगवान पूर्णानंद पड़ा है। समझमें आया ? अंतर अंतर पातालमें पर्यायबुद्धि छोडकर जाय, यह पर्यायबुद्धि छोडकर....समझमें आया ?

एकसमयकी पर्याय-अवस्था या राग या पर वह सब तो बहुत दूर रह गया, उसकी रुचिमें पड़े हैं वह मिथ्यात्वभाव है, निगोदके रास्तेमें जानेका वह रास्ता है। समझमें आया ? पन्ना है कि नहीं ? 'भाई' ! दो है न ? दो कहाँसे आये ? न हो तो वहाँसे ले जाना। पढ़े, सुने तो सही। 'पालेज'में ऐसा पढ़नेमें नहीं आता।

यहाँ कहते हैं, परम स्वभाव भगवान पूर्ण ध्रुवको विषय करनेवाली भावना, उसरूप उपशमिक आदि तीन भाव। आगे ज्ञानप्रधान शैलीसे क्षयोपशमभाव एक लेंगे, भाई ! यहाँ दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनोंकी अपेक्षा लेकरके त्रिकाल वस्तुका विषय दर्शनने किया, ज्ञानने किया और उसमें लीन हुआ ऐसा जो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिकभाव-यह तीन भाव समस्त रागादिसे रहित होनेकी वजहसे....देखो ! लोगोंको ऐसा लगता है कि समस्त रागादिसे रहित तो तेरवें-बारहवें (गुणस्थानमें) होते हैं। अरे ! वह तो दूसरी बात है। वह तो ज्ञानमें-पर्यायमें रागके साथ जो निमित्त-नैमित्तिक संबंध था वह बारहवेंमें छूट जाता है। यहाँ तो दृष्टिमें रागादि सब छूट गया (उसकी बात है)। समझमें आया ?

यहाँ पहले कहा न ! दो बात तो पहले कह दी कि विकल्प राग है, पुण्यसे सहित मैं हूँ वह तो मिथ्यात्वभाव है। 'पुरुषार्थसिद्धि-उपाय'की १४वीं गाथा। समझमें आया ? भगवान चैतन्यतत्त्व निर्मल ज्ञान भगवान, ज्ञानका भंडार परमात्मा वह तो मोक्ष स्वरूप ही है। आयेगा...देखो ! शक्तिके बाद आयेगा। ऐसी दृष्टि बिना एक सूक्ष्मसे सूक्ष्म विकल्प जो राग है, गुण-गुणीका भेद, गुणी भगवान आत्मा द्रव्य और उसमें रहनेवाला ज्ञायकभाव— ऐसा भेदरूप जो विकल्प है, वह विकल्प नाम राग है। राग सहित आत्माको मानना वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा....! गजब बात !

त्रिकाल शुद्धतामें अशुद्धता सहित मानना....दूसरी भाषासे कहें तो...आहाहा....! शांतिसे समझनेकी चीज है। यह तो कभी भी पढ़ सकते हैं, यहाँ तो क्लासके समय पढ़नेका विकल्प था तो क्लासके समय आ गया। बात तो ऐसी है। ऐसी वाणी ! ऐसा वीतरागका भाव कभी कभी निकलता है ! समझमें आया ?

श्रोता :— वाणी क्रमबद्धपर्याय....

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह तो उसकी वजहसे है। कभी वह भी ऐसा होता है। यहाँ तो भगवान आचार्य महाराज परमेश्वरके जो भाव है उसको सामने रखते हैं। मर्म-रहस्य (बताया है), तेरी चीज जो पूर्ण है उसको विषय करनेवाली भावना तीनरूप है—उपशम, क्षयोपशम और क्षायिक। यहाँ तीन कहते हैं , बादमें ज्ञानप्रधान कथनमें क्षयोपशमज्ञान

(लेंगे)। यह साधककी बात है न ! यह क्षायिकभाव उपरके (गुणस्थानकी) बात नहीं है। केवलीके क्षायिकभावकी वह बात नहीं है। यहाँ तो साधकभावमें जो उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक है उसकी बात है। क्या कहा ? समझमें आया ?

यह उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक जो तीन भाव कहे हैं, वह क्षायिक वह केवलीके क्षायिककी बात नहीं है। समझमें आया ? यहाँ जो नीचेके गुणस्थानमें जो सम्यग्दर्शन स्वरूप परमात्मा आनंदका धाम हूँ ऐसी दृष्टि हुई, उस दृष्टिको उपशमभाव कहते हैं, क्षयोपशमभाव कहते हैं और क्षायिकभाव कहते हैं। यहाँ तो नीचेके (गुणस्थानकी बात है)। क्यों कि उसके तीनों बोलमें ज्ञानकी कथनशैली आयेगी। तो उन तीनोंमें क्षयोपशमज्ञानरूप पर्याय स्वसंवेदन है ऐसा कहेंगे। समझमें आया ?

कहते हैं कि तीन भाव समस्त रागादिसे रहित है। सूक्ष्ममें सूक्ष्म विकल्प आता है, उससे भी भगवान पर्यायमें तद्दन भिन्न है। द्रव्य तो भिन्न है ही। समझमें आया ? द्रव्य तो पर्याय रहित है, लेकिन यह तो पर्याय रागरहित हो गई। समझमें आया ? आहाहा....! गजब बात, भाई ! मार्ग तो थोड़ेमें बहुत है लेकिन लंबी लंबी बात कर दी है, इसलिए कहीं हाथमें नहीं आ रहा।

त्रिकाल ज्ञायकभावको विषय करके, ध्येय करके जो पर्याय उत्पन्न हुई है कि द्रव्यमें तो पर्याय ही नहीं है। लेकिन वह मोक्षमार्गकी पर्याय जो सम्यग्दर्शन आदि प्रगट हुआ उस पर्यायमें राग नहीं। 'भाई' पेईज रखा है न ! बादमें ले जाना, वहाँ बराबर विचार करना। आहाहा....!

कहते हैं, ऐसे रागादिरहित होनेके कारण...देखो, कारण तो सिद्ध करना है, भाई ! लेकिन रागादि रहित वह चीज है। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और स्वरूपकी ओर आचरणकी दशा–वह तीनों पर्याय विकल्प नाम अशुद्धतासे रहित है। समझमें आया ? ऐसा होनेसे उसको क्या नाम दिया ? देखो, शुद्ध उपादान कारणभूत ! यह पर्यायकी बात है। समझमें आया ? शुद्ध उपादान कारणभूत ! यह पर्यायकी बात है। समझमें आया ? शुद्ध उपादान कारणभूत, ऐसा लिया है न ! यह पर्यायका शुद्ध उपादान, द्रव्यका त्रिकाली शुद्ध उपादान पहले आ गया। यहाँ तो त्रिकाली भगवान आत्मा, परमात्माका मूल मार्ग, द्रव्यको ध्येय बनाकरके जो पर्याय उत्पन्न हुई है वह पर्याय शुद्ध उपादान कारणभूत होनेसे, शुद्ध उपादान, वह अशुद्ध निकाल दिया न ! भाई ! अशुद्धता जो व्यवहार रत्नत्रयका विकल्प है वह तो निकाल दिया। समझमें आया ? आहाहा....!

भगवान आत्मा अपने ध्रुव ध्येयके उपर दृष्टि होते ही और ज्ञानकी वर्तमान पर्याय ध्रुवको ज्ञेय करते ही और स्वरूपमें एकाकार चारित्रकी पर्याय उत्पन्न होते ही रागका अभाव (हो जाता है)। समझमें आया ? वह विकल्प–व्यवहार रत्नत्रय कहते हैं न ! व्यवहार मोक्षमार्ग, मोक्षमार्ग। वह व्यवहार मोक्षमार्ग उसमें है ही नहीं ऐसा कहते हैं।

श्रोता :— तो फिर वह क्या है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह राग है वह बंधका कारण है। बंधके कारणमें पर्यायका अभाव है। क्योंकि आत्मा अबंध स्वरूप है, मोक्ष स्वरूप ही है, लो !

'श्रीमद्'में आता है न ! भाई ! दिगम्बरके आचार्योंने ऐसा माना है कि....आता है ? एक बार आया था, वह 'आत्मधर्म'में आ गया है। 'मोक्ष समझमें आता है,' देखो ! श्वेताम्बरके आचार्यकी बात कहीं नहीं ली, क्योंकि उसमें यह है नहीं। समझमें आया ? कौन सी साल ? ३२में आता है न ? ४९८ पेज। कोई आचार्य ऐसा कहते हैं....देखो, 'श्रीमद्'को भी वह खयाल आ गया। श्वेताम्बरकी शैलीका खयाल वहाँ छोड़ दिया। कोई आचार्य ऐसा ऐसा कहते हैं कि दिगम्बरके आचार्योंने ऐसा स्वीकार किया है कि–दिगम्बर संतों आचार्योंने ऐसा स्वीकार किया है कि....दिगम्बरके आचार्योंने....बहुवचन है न ! देखो, दिगम्बर संतो सनातन मार्गके साधु ऐसे मुनि, 'कुंदकुंदाचार्य' आदि सब दिगम्बर आचार्योंने ऐसा स्वीकार किया है कि जीवका मोक्ष होता नहीं। जीवका मोक्ष होता नहीं।

जरा बात सुनो ! त्रिकाली भगवान आत्मा मुक्त स्वरूप ही है। बंध वस्तुमें कैसा ? बंध तो पर्यायका है। बंधपर्याय तो उसमें है नहीं। बंध सहित द्रव्य मानना तो मिथ्यात्वमें लिया है। समझमें आया ? बंधसहित कहो या अशुद्धता सहित कहो या अबंधस्वरूप कहो ! अबंध तो निषेधसे कहा। मोक्ष स्वरूप कहो, वह तो मोक्षस्वरूप ही है। भगवान मोक्षस्वरूप परमात्मा है। ऐसा आचार्योंने स्वीकारा है कि जीवका मोक्ष होता नहीं। गजब बात ?

देखो ! यहाँ दिगम्बरकी बात सनातन सत्य है उसको यहाँ प्रसिद्ध करते हैं। समझमें आया ? लेकिन मोक्ष समझमें आता है। समझमें आता है। विकल्प सहित मैं हूँ माना था वह मान्यता, बंध सहितकी जो मान्यता थी वह छूट गई। यह कभी वहाँ सुना भी न होगा। इतने साल संप्रदायमें निकाल दिये। अब तो उनको उत्साह आता है न ! आहाहा....! संप्रदायमें निकाल दिये। अब तो उनको उत्साह आता है न ! आहाहा....!

भगवन् ! यहाँ तो कहते हैं, देखो ! सीधी बात है, बहुत सीधी है कि जो विकल्प-राग है वह भावबंध है, द्रव्यबंधकी बात छोड़ दें, कर्मका बंध उसमें है ही नहीं, वह तो

पर है, विकल्प जो राग है वह भावबंध है। भावबंध क्यों माना ?–कि मैं मुक्त नहीं, बंध हूँ–ऐसी मान्यतामें वह रागमें खड़ा था। मैं रागसे सहित, भावबंधसे सहित हूँ–ऐसी मान्यताकी थी। समझमें आया ?

यहाँ कहते हैं कि मोक्ष समझमें आता है, मोक्ष होता नहीं। समझमें आया ? वह ऐसे कि जीव शुद्ध स्वरूपी है। भगवान आत्मा तो परम शुद्ध स्वभावरूप है, शुद्ध स्वरूपी है, अशुद्ध स्वरूपी है (वह) तो मान्यतामें किया था। आहाहा....! त्रिकाल वस्तु तो शुद्ध स्वरूप ही है। जीव शुद्धस्वरूप है, उसे बंध होता नहीं। शुद्ध स्वरूपमें अशुद्धता आती ही नहीं। बंधका मतलब यह कि शुद्धस्वरूपी भगवानने भावबंध–अशुद्धता होती ही नहीं। आहाहा....! देखो ! कैसी बातकी है ! दिगम्बर आचार्योंने ऐसा माना है ऐसा कहकरके संतोंकी सत्य बातकी परम प्रसिद्धिकी है। समझमें आया ? ऐसी बात और कहीं होती नहीं।

कहते हैं कि शुद्ध स्वरूपी है उसे बंध हुआ नहीं है, तो फिर मोक्ष होना कहाँ रहा ? जहां बंध ही नहीं हुआ वहा मोक्ष कहाँसे आया ? आहाहा....! समझमें आया ? मार्ग यह है। आहाहा....! कहते हैं कि शुद्ध स्वरूपी है उसे अशुद्धता हुई ही नहीं उसका मतलब क्या ?–कि अशुद्धता है ही नहीं, अशुद्धता हुई ही नहीं है...आहाहा....! तो फिर मोक्ष होना कहाँ रहा ?

लेकिन उसने माना है। देखो ? भगवान आत्मा शुद्ध स्वरूपी बंधमें है ही नहीं। शुद्ध है वह अशुद्ध हुआ ही नहीं। ऐसा कहते हैं। फिर भी मान रखा है कि मैं बंधा हूँ। मान्यतामें बंधा हुआ है ऐसा माना है; क्योंकि वस्तु तो शुद्ध त्रिकाली ज्ञायकभाव है। उसने मान रखा है कि रागसहित हूँ, रागसहित हँ, बंधसहित हूँ–ऐसी मान्यता थी। आहाहा....! 'भाई' ! समझमें आता है ? 'समझाय छे' यह हमारी गुजराती भाषा है। समझमें आया ?

माना है कि मैं बंधा हूँ, भाषा देखो ! माना है कि मैं अशुद्ध हूँ। अशुद्ध हूँ या बंधा हूँ, एक ही बात है, समझमें आया ? वह मान्यता विचारनेसे समझमें आती है, ऐसा माना था। भगवान शुद्ध स्वरूपी प्रभु ! वह शुद्ध वस्तु वह अशुद्ध हुई ही नहीं लेकिन मान्यतामें माना है कि मैं अशुद्ध हूँ। ऐसी मान्यतामें मैं बंध (स्वरूप हूँ ऐसा माना था)। अशुद्ध कहो या बंध कहो, एक ही बात है। मैं बंधसहित हूँ ऐसा माना था वह मान्यता विचार करनेसे समझमें आती है। दूसरे कोई क्रियाकांड नहीं कि यह व्यवहार–कषायकी मंदता, व्रतकी क्रियाकी उससे यह हुआ, ऐसा नहीं है,सेठ ! यह आपका दान... शेठ लोग सब दस-बीस हजार दान देते हैं; लाख-दो लाख-पांच लाख इतना ज्यादा नहीं देते, दस-बीस

हजार खर्चा करते हैं। समझमें आया ? पचास-साठ लाखवाले पचास लाख थोड़ी न दे देंगे ?

यहाँ तो कहते हैं कि (पैसे) मेरे हैं यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा....! समझमें आया ? वह तो ठीक लेकिन उसमें जो राग है उस रागसहित मैं हूँ, रागसहित हूँ, मैं बंधा हूँ ऐसी मान्यता मिथ्यात्वमें हैं। वह विचार द्वारा समझमें आती है। आहाहा....! इस वस्तुमें बंध है ही नहीं, उसमें अशुद्धता है ही नहीं। समझमें आया ? कल्पना थी, मान्यता थी। आहाहा....! समझमें आया ? मिथ्या मान्यता थी। बंधसहित हूँ....वास्तवमें वह उसका विषय हुआ ही नहीं। समझमें आया ? मिथ्या मान्यताका वह विषय हुआ ही नहीं। आहाहा....! माना था कि अशुद्ध हूँ, मैं बंध हूँ...आहाहा....! यह मिथ्यात्व विचार द्वारा समझमें आता है कि मैं बंध नहीं। देखो ? अभी तो सम्यग्दर्शन–सम्यग्ज्ञानकी बात चल रही है, चौथे गुणस्थानकी बात चल रही है।

श्रोता :— गुरुके ज्ञान द्वारा ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— आत्माके द्वारा। आत्मा ही गुरु। आत्मा ही तीर्थ, आत्मा ही देव और आत्मा ही धर्म। समझमें आया ? ऐसी बात है। हैकी नहीं ? पेईज हैकी नहीं ? वह समझमें आता है कि मुजे बंधन नहीं है। आहाहा....! देखो ! उस वस्तु को देखो ! अशुद्ध–अशुद्ध मैं हूँ ऐसी मिथ्यात्वकी मान्यता थी। आहाहा....! कौन सी शैली यह देखो तो सही ! स्वतंत्र वस्तु ऐसी है, उस तत्त्वमें अशुद्धता कैसी ? भावबंध कैसा ? भावबंध मैं हूँ ऐसी मान्यता खडीकी थी, (वस्तुमें) नहीं है। समझमें आया ? ऐसी मान्यता खड़ीकी थी। आहाहा....! बनावट....शाहुकार भेष करता है कि नहीं ? बनावटी भेष अज्ञानीने खड़ा किया है। आहाहा....! उसका स्वरूप तो मुक्त है, राग और विकल्पके बंधसे रहित है। आहाहा....! समझमें आया ? यह आपके राजकुमारको ऐसा समझमें आता है या नहीं ? वहाँ पालेजमें कुछ मिलनेवाला नहीं।

श्रोता :—अब यहाँ लेने आये है न।

पूज्य गुरुदेवश्री :— वह तो 'भाई' बहुत कहते हैं।

श्रोता :— एक बार माल चख ले तो बार बार आवे।

पूज्य गुरुदेवश्री :— उनको जिज्ञासा हुई तब आये न ? आहाहा....! क्या बात है ! अंदरमें समुद्र उछल रहा है ! आनंदकंद प्रभु है। ऐसी ज्ञानसे मान्यता हुई कि मुझे बंध नहीं

है। क्योंकि बंध और अशुद्धता तो अंदर भिन्न तत्त्व है, द्रव्यके साथ उनकी एकता नहीं है। समझमें आया ? वह बंधन मुझे नहीं। अर्थात् मुझमें अशुद्धता नहीं है। आहाहा....!

दिगम्बर आचार्योंका तो ऐसा मानना है कि जीवका मोक्ष होता नहीं। आहाहा....! क्यों कि उसमें अशुद्धभावरूपी बंधभाव नहीं है। मान्यतामें माना था कि मैं अशुद्ध हूँ और भावबंधरूप हूँ, वह ज्ञान द्वारा समझमें आया कि मैं राग नहीं हूँ, मैं अशुद्ध नहीं हूँ। मैं तो त्रिकाली आनंदकंद हूँ यह तो समझमें आवे ऐसा है। भाषा सरल है, भले ही भाव गंभीर हो। आहाहा....!

मुझे बंधन नहीं है। धर्मीको जैसे ही स्वभावकी दृष्टि हुई कि वैसे ही वह मुक्त स्वरूप ही है। मुझे बंधन है ही नहीं। आहाहा....! अशुद्धता है ही नहीं। बंधन कहो या अशुद्धता कहो, एक ही बात है न ? अशुद्धता कहो या बंधभाव कहो, दोनों एक ही बात है या अलग है ? भाई ! आश्रव सहित हूँ ऐसा कहो, बंध सहित हूँ ऐसा कहो ! मैं बंधा हूँ, मैं अशुद्धता सहित हूँ वह मान्यता थी। आहाहा....! समझमें आया ? वह मान्यता शुद्ध स्वरूप समझमें आने पर रहती नहीं। शुद्ध स्वरूप भगवान आत्मा जाननेमें आया तो अशुद्ध हूँ, भावबंध हूँ–ऐसी मान्यता रहती ही नहीं। समझमें आया ? देखो ! सम्यग्दृष्टिकी ध्येय वस्तु बन्धरहित है। आहाहा....! समझमें आया ?

इसमें ऐसा लिया है 'शुद्धस्वरूप समझनेसे' लेकिन 'समझानेसे' ऐसा होना चाहिये। दूसरी जगह मूल शब्द ऐसा था। मैं अशुद्ध हूँ वह तो मान्यता थी, मिथ्यात्वकी गांठ थी। अशुद्ध तत्त्व तो भिन्न है, लेकिन मान्यतासे ज्ञायकके साथ अशुद्धता मिला दी, आहाहा ! समझमें आया ? मानता था, लेकिन वह मान्यता, शुद्ध स्वरूप समझमें आनेसे, रहती नहीं है अर्थात् मोक्ष समझमें आता है, मोक्ष समझमें आता है, मोक्ष समझमें आता है, मोक्ष होता नहीं। समझमें आया ?

यह शुद्धनयकी बात निश्चयनयकी है, वास्तविक तत्त्वदृष्टिका विषय है। पर्यायार्थिकनयवाले उसको लिपटकर आचरण करे तो भटक जायेंगे ! रागके उपर लक्ष है, परके उपर लक्ष है और फिर कहे कि हम शुद्ध है....शुद्ध है... ऐसा कहेगा तो मर जायेगा....चार गतिमें भटक जायेगा....ऐसा कहते हैं। यह तो 'श्रीमद् राजचंद्र' पेईज ४९८ पर, ३२वें सालमें है। समझमें आया ? आहाहा....!

एक तत्त्वमें दूसरे तत्त्वको माना ऐसा कहते हैं। एक तत्त्वमें दूसरा तत्त्व मेरा है ऐसा माना था, लेकिन हुआ नहीं ऐसा कहते हैं। ज्ञायक तो त्रिकाल ज्ञायक ही रहा है।

'प्रवचनसार'में आता है न। भाई ! 'प्रवचनसार'में २००वीं गाथा, आखिरमें आता हैं, भगवान आत्मा ज्ञायक शुद्ध वह तो शुद्ध ही रहा है, ज्ञायक तो ज्ञायक ही रहा है, अन्य रीतसे अध्यवसित हुआ है। वह बात यहाँ है। आहाहा....! यह तो अभी खयालमें आया। देखो २००वीं गाथा।

शुद्धात्मा सहज अनंत शक्तिमय ज्ञायकभावके द्वारा एकरूपताको छोड़ता नहीं। अनादि संसारसे यही स्थितिसे ज्ञायकभावरूपसे रहा है। टीका 'अमृतचंद्राचार्यदेव'की है, 'प्रवचनसार' २००वीं गाथाकी टीका। क्या कहा ? मैं तो अनादि संसारसे ज्ञायकभावरूपसे ही आत्मा रहा हूँ। समझमें आया ? और ऐसा होने पर भी मोह द्वारा अन्यथा अध्यवसित होता है। लो भाई ! यह तो बराबर आया, समझमें आया ? दिगम्बर आचार्यने यह बातकी है। कहाँसे कहाँ आया ! यह तो मालूम नहीं...आचार्यने कहा कि आत्मा तो ज्ञायकभाव ही रहा है, वह अनादिसे ज्ञायकभाव मिटकर अन्यथा हुआ नहीं है। लेकिन मोह-मिथ्यात्व द्वारा...आहाहा....! देखो ! अचानकसे कहाँसे कहाँ मील गया ! मोह-मिथ्यात्व द्वारा अन्यथा अध्यवसित होता है। मिथ्यात्वसे अन्यरूपसे जाननेमें आता है। कल्पना। समझमें आया ? देखो ! यह संतोंकी टीका ! दिगम्बर संतोंने ऐसा कहा कि ज्ञायक तो ज्ञायक ही रहा है। समझमें आया ? लेकिन मिथ्यात्व द्वारा अन्यथा अध्यवसित–अज्ञानीने अन्यथा निर्णय किया है, (लेकिन) ऐसा है नहीं। भाई ! ऐसी बात है। आहाहा....! दिगम्बर संतोंने केवलज्ञानका मर्म खोलके रखा है। फिर भी उसकी दृष्टि बदलती नहीं और यह बात अंदर उतरती नहीं है। अंदर खटक...खटक.. (रहा करती है कि) मैं अशुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ। समझमें आया ?

श्रोता :— गुरु मिलेंगे तब समझमें आयेगा।

पूज्य गुरुदेवश्री :— आत्मा अंतरमें ध्यान करेगा तो समझमें आयेगा। तब गुरु मीले ऐसा व्यवहारसे आरोप करनेमें आता है। निश्चय (प्रगट) हुआ तब व्यवहारमें आरोप करनेमें आता है। समझमें आया ?

देखो ! अध्यवसाय करता है कि मैं अपनी मान्यतामें जो था कि, मैं अशुद्ध हूँ ऐसे उस मोहको मैं निकाल फेंकता हूँ , उस मोहको मैं छोड़ता हूँ, मैं अशुद्ध नहीं हूँ। ए भाई ! देखो ! इस बातकी साक्षी ही है। आचार्योंने कहाँ कहा है ? यहाँ २०० गाथामें कहा है। समझमें आया ? यहाँ साक्षी-सबूत मिल गया। ओहो...! अन्यरूपसे अध्यवसित होता है, ऐसा हुआ नहीं है। है तो ज्ञायकरूपी ज्ञायकभाव ही, मिथ्यात्वसे अन्य अध्यवसाय–निर्णय

किया है, उस मोहका निर्णय छोड़ दे। जो है सो है। समझमें आया ?

हम यहाँ पहुंचे हैं। देखो, यहाँ रागादि रहित कहा है, उसमें सब आ गया। समस्त रागादिसे रहित...कोई ऐसा कहे कि वह रागादि....अरे ! सुन तो सही, त्रिकाल रागादिसे रहित ही है। समझमें आया ? भगवान आत्मा चैतन्य ज्ञायकभाव तो त्रिकाल वैसाका वैसा ही रहा है। मोह द्वारा–मिथ्यात्व द्वारा जो अन्यथा निर्णय किया था कि मैं अशुद्ध हूँ, मैं अशुद्ध हूँ, मैं भावबंध हूँ–ऐसा निर्णय किया था वह छोड़ दिया। वह समस्त रागादिसे रहित होनेसे, शुद्ध उपादान कारणभूत होनेसे...वह पर्याय...पर्यायमें मैं अशुद्ध हूँ–ऐसी जो दृष्टि थी वह छूट गई। त्रिकाली स्वभावकी ओरका ध्येय-विषय करनेसे, उसको ध्येय जाननेसे छूटता है। छोड़ता नहीं है, छूट जाता है। आहाहा....! भ्रांति-भ्रम जो है कि मैं अशुद्ध हूँ, बंध हूँ–उसकी जो उत्पत्ति हुई है उस उत्पत्तिका नाश दूसरे समयमें सहज होता ही है, करना पडता नहीं, उसमें निमित्तपना भी नहीं है। क्या कहा ? फीरसे...

जिस मोहसे एकता मानी थी ऐसी जो एक समयकी पर्याय उसका दूसरे समयमें नाश होगा, होगा और होगा ही ! उसमें किसीने आत्माका पुरुषार्थ किया तो निमित्त हुआ और नाश हुआ ऐसा है नहीं। क्षणिकके अर्थमें थोडा मर्म है कि यह मोह अध्यवसाय जो निश्चित किया था वह भाव तो भाव है। अब, वह पर्याय है तो उसका दूसरे समयमें नाश होता है, तब उस पर्यायमें अपने शुद्ध ध्येयका परिणमन होकरके जो मिथ्यात्वकी उत्पत्ति होनेवाली थी वह नहीं हुई, उसे मिथ्यात्वका नाश किया ऐसा कहनेमें आता है। यह मर्म है। ए भाई ! समझमें आया ?

शुद्ध उपादान पर्यायने ध्रुवको ध्येयमें लिया कि मैं तो शुद्ध त्रिकाली ज्ञायकभाव हूँ, ऐसा लिया तो मिथ्यात्वकी उत्पत्ति ही नहीं हुई। पहले जो मिथ्यात्व था वह तो अपने आप नष्ट होता ही है। वह तो पर्यायका धर्म है कि दूसरे समयमें न रहे। समझमें आया ? लेकिन जो मिथ्यात्वका निर्णय था वह (पर्याय) ज्ञायकभावके निर्णय सन्मुख हुई कि मिथ्यात्वकी उत्पत्ति नहीं हुई, उसे मिथ्यात्वका नाश किया ऐसा कहनेमें आता है। आहाहा....! नाश किसका करे ? भगवान आत्मा किसीका नाश करे ऐसा तो आत्मामें कुछ है ही नहीं। रागके नाशका कर्तापना आत्मामें नहीं, नाशका कर्तापना उसमें नहीं है। ऐसी वस्तु है। समझमें आया ? बहुत बात करी।

पहले बोलमें ऐसा लिया, शरूआतमें लिया, कि कर्ता-भोक्ता नहीं है, भाई ! पहले शरूआतमें आया न ! अकर्तृत्व, अभोक्तृत्व पहले (आ गया)। उसमें ऐसा लिया कि जैसे

यहाँ अध्यवसानसे माना था, वैसे भगवान आत्मा त्रिकाली शुद्ध है वह परका कर्ता तो नहीं लेकिन रागका कर्ता भी नहीं है। समझमें आया ? यदि रागका कर्ता द्रव्य हो, तो त्रिकाल राग करनेमें ही उसीकी दृष्टि हो जाय, कभी सम्यग्दर्शन हो ही नहीं। समझमें आया ?

वहीं आया कि अशुद्धता-विकार जो है वह तो मान रखा था कि मेरा है, वह दृष्टि छूट गई तो आत्मा रागका कर्ता तो नहीं, लेकिन रागका नाशकर्ता भी नहीं। क्योंकि रागके नाशकर्तामें भी आत्मा निमित्त है ऐसा नहीं। कर्तापनेमें निमित्त नहीं, तो नाशकर्तामें भी निमित्त नहीं। आहाहा....! समझमें आया ?

रागका कर्ता अज्ञानपनेमें माना था। परद्रव्यकी पर्यायका तो कर्ता नहीं लेकिन परद्रव्यकी पर्यायमें जो राग और कंपन निमित्त होते हैं उसका भी कर्ता ज्ञानी नहीं है। अज्ञानी मानता है कि राग और कंपन मेरा है। ऐसी मान्यतावाले जीवकी पर्याय दूसरे द्रव्यकी पर्यायके कालमें निमित्त होती है, निमित्त कहनेमें आती है। आहाहा....! समझमें आया ? यह तो वही बात खड़ी हुई।

राग और कंपन है वह अशुद्धता है, लो। बराबर है ? अशुद्धता सहित हूँ–ऐसी जिनकी मान्यता है उस मिथ्यादृष्टिका राग और कंपन–अशुद्ध पर्यायको, दृष्टि वहाँ है उस वजहसे, जड़की पर्याय होती है उसमें निमित्तकर्ताका आरोप आता है। ज्ञानी तो निमित्तकर्ता भी नहीं। आहाहा....! क्योंकि राग और कंपनसे भिन्न है वह अशुद्धभाव है न ! भावबंध है न ! जो भावबंध माना था वह मान्यता छूट गई, मैं तो ज्ञायक शुद्ध चैतन्य द्रव्य हूँ–ऐसी दृष्टि हुई तो कंपन और रागसे मुक्त हुआ। वह रागका कर्ता भी नहीं और रागका नाशकर्ता भी नहीं। समझमें आया ? आहाहा....! गजब बात, भाई ! आहाहा....!

कहते हैं कि शुद्ध उपादान होनेसे बंधका कारण है, कौन ? जो तीन भावरूप मोक्षमार्ग है वह अंतर ध्रुव स्वभावका अवलंबन लेकरके मिथ्यात्वकी पर्यायका नाश हो गया, उत्पन्न न हुआ। सम्यग्दर्शन-ज्ञानकी शांतीकी पर्याय उत्पन्न हुई वह तीन भावरूप है, वह शुद्ध उपादान कारणभूत पर्याय है, मोक्षका कारण वह है, मोक्षका कारण है, देखो ! रागादि विकल्प वह मोक्षका कारण नहीं है। मोक्षके कारण है ऐसा नहीं है, ऐसा यहाँ लिया है। मोक्षका कारण एक ही है, दूसरा मोक्षका कारण नहीं है। आहाहा....! कैसी सब गड़बड़ चला रखी है। (व्यवहारको) मोक्षका कारण कहा है ! अरे...! सुन तो सही ! वह तो कथन शैली है। निरूपण दो प्रकारसे है, वस्तु दो प्रकारसे नहीं है, क्या कहते हैं ? देखो, व्यवहार रत्नत्रय तो उदयभाव है। समझमें आया ? उदयभावसहित हूँ ऐसा जब तक मानता है तब

तक तो मिथ्यादृष्टि है। आहाहा....! समझमें आया ?

यहाँ तो उदयभाव तो नहीं लेकिन यह एक समयकी शुद्ध पर्याय हुई उससे भी रहित मेरी वस्तु है —ऐसी दृष्टि हुई तो निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई। मलिन पर्याय उत्पन्न न हुई और निर्मल पर्याय उत्पन्न हुई, उस मोक्षका कारण निर्मल पर्याय है। निश्चय मोक्षमार्ग, उपशम, क्षयोपशम, क्षायिक पर्याय वही मोक्षका कारण है; व्यवहार रत्नत्रय मोक्षका कारण नहीं। ऐसा यहाँ सिद्ध किया है। उसमें है कि नहीं ? आहाहा....!

श्रोता :— है वह तो हमको दिखा नहीं ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— अब देखो, देखनेवाला देखेगा, दूसरा कौन देखेगा ? समझमें आया ?

श्रोता :— इसलिए आपके पास आये हैं।

पूज्य गुरुदेवश्री :— अपने पास–समीप जाना है, उसे 'पास' कहते है। आहाहा....! समझमें आया ? मोक्षके कार्यका कारण–पारिणामिक ध्रुव वस्तुकी दृष्टि, ज्ञान और रमणता जिसको यहाँ तीन भाव कहा वह मोक्षका कारण है। व्यवहार मोक्षका कारण नहीं है, द्रव्य मोक्षका कारण नहीं है। क्या कहा ? व्यवहार कारण नहीं। वह तो 'रागादि रहित'में बात आ गई। अब शुद्ध पारिणामिक नहीं उसमें द्रव्य आ गया। समझमें आया ? गजबकी अलौकिक गाथा रखी है ! वस्तुके स्वरूपके आधार पर जंगलमें रहकर...आहाहा....! खजाना खोल दिया है ! आहाहा....!

वह शुद्ध पारिणामिक नहीं....क्या नहीं ? वह मोक्षका कारण नहीं। कौन ? त्रिकाली द्रव्य स्वभाव मोक्षका कारण नहीं है। वह तो त्रिकाल मोक्ष स्वरूप ही है। समझमें आया ? आहाहा....! जो शक्तिरूप मोक्ष है....आहाहा....! शक्ति अर्थात् पूर्ण मुक्तस्वरूप ध्रुव है वह तो पहलेसे है। अनादिसे वह तो शुद्ध पारिणामिक है। शक्तिरूप मोक्ष जो त्रिकाल है वह यहाँ कहा कि आत्माकी मुक्ति होती नहीं है। मुक्त हूँ ऐसे समझमें आता है। रागसे बंधा नहीं, मान्यतामें था कि रागसे बंधा हूँ अशुद्धतासे बंधा हूँ, आहाहा....! देखो ! दृष्टिके विषयमें कहाँ जोर जाता है ? और वहाँ पर्याय पर जोर जाता है उसका उसे पता नहीं चलता ! सूक्ष्म भाव है !

शास्त्रसे चर्चा करते करते तो दोष देखें। अब सुन तो सही ! आहाहा....! जो आये वह जनीज जाता है....उसका जोर क्या ? जाननेमें आता है इसलिए दोषका नाश होता है ?

स्वभावका आश्रय लेनेसे दोष उत्पन्न होता ही नहीं। समझमें आया ? वह तो व्यवहारके कथन ऐसे आते हैं। किसके आश्रयसे दोषकी उत्पत्ति न हो ? भगवान चिदानंद प्रभु शुद्ध ध्रुवका माहात्म्य आया और उस पर दृष्टि हुई तो (दोष) उत्पन्न होता ही नहीं। जितने अंशमें अंतरमें एकाग्रता होती है उतने अंशमें अंतरमें अशुद्धता उत्पन्न नहीं होती। अशुद्धताके नाशका उपाय यह आत्मद्रव्य है। समझमें आया ?

कहते हैं कि जो शक्तिरूप मोक्ष है... यह तो मोक्षका कारण कहा न ? तो मोक्ष क्या ? जो पर्यायमें मोक्ष होता है उसकी बात चली। शक्तिरूप जो त्रिकाल मोक्ष है, पहेले जो कहा कि मोक्षरूप ही पारिणामिक स्वभाव है, वह तो त्रिकाल मोक्षस्वरूप ही है, वह तो शुद्ध पारिणामिक ही है। वह तो प्रथमसे ही विद्यमान है, वह मोक्ष तो पहेलेसे ही त्रिकाल विद्यमान है। आहाहा....! अनादिसे है। समझमें आया ? आहाहा....! हमारे 'भाई' बहुत खुश हो रहे हैं, देखो !

पहलेसे विद्यमान है, क्या कहते हैं ? मोक्ष तो पहलेसे ही है, शक्तिरूप मोक्ष तो पहलेसे ही है। आहाहा....! समझमें आया ? वह तो अनादिकी भूल हो तो क्या है ! यहाँ तो कहते हैं कि मेरेमें भूल है ही नहीं। समझमें आया ? भूल ही नहीं है, भगवानमें भूल कैसी ? भगवानको भूलसहित मानना वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा....! समझमें आया ?

श्रोता :— आप क्या कह रहे हो वह कुछ समझमें नहीं आ रहा !

पूज्य गुरुदेवश्री :— हम कह रहे हैं कि भगवान शुद्ध स्वरूप प्रभुको अशुद्ध कहना, भूल सहित कहना, भूलसहित द्रव्य कहना वह मिथ्यात्वभाव है। आहाहा....! अशुद्धता रहितको अशुद्धता माननी या भूलरहितको भूलसहित मानना–वह दोनों एक ही बात है। यह तो दूसरी रीतसे कथन हुआ। आहाहा....! कहते हैं कि ऐसा मोक्षका मार्ग–ऐसी बात होगी ?

श्रोता :— 'कुंदकुंदाचार्यदेवने तो पांचवी गाथामें प्रतिज्ञाकी है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— मैं तो शुद्ध स्वरूप कहूँगा। कैसा है शुद्ध स्वरूप :— कि जिसमें प्रमत्त-अप्रमत्त पर्याय नहीं है ऐसा वह शुद्ध है। वह बात छठवीं गाथासे शुरू कर दी है। कैसा शुद्ध कि जिसको जानना चाहिये ? भगवान 'कुंदकुंदाचार्यदेव' उत्तर देते हैं, परमेश्वर है न ! आचार्यपदमें है न ? पंचपरमेष्ठीमें है। आहाहा....! हम उसे शुद्ध कहते हैं कि जिसमें प्रमत्त और अप्रमत्त, निर्मल पर्याय और मलिन पर्याय जिसमें नहीं है, उसे हम शुद्ध कहते हैं। उस शुद्धकी सेवा करनेसे निमित्तका लक्ष और परका लक्ष छोड करके द्रव्यके लक्षमें जो आया वह शुद्ध है। समझमें आया ? फिर भी यह शुद्ध है ऐसी पर्याय

भी द्रव्यमें नहीं। आहाहा....! उसमें बहुत स्पष्टीकरण आ गया है। समझमें आया ? पहलेसे ही विद्यमान है; 'ही' कहा न, भगवान ? तेरी मुक्ति तो पहलेसे अनादिसे है।

श्रोता :— जैनदर्शनमें 'ही' नहीं चलता महाराज !

पूज्य गुरुदेवश्री :— यह 'ही' है न, देखो ! यह क्षुल्लकजीने कहा कि इसमें 'ही' आया है, जोरदार आया ! 'ही' आया है न, 'ही' ! नित्य है तो नित्य ही है। नित्य है तो अनित्य भी है–ऐसा है ? शुद्ध ध्रुव वह ध्रुव ही है। अशुद्ध भी है ऐसा नहीं, यह सम्यक् एकांत ! मार्ग ऐसा है, भगवन् ! समझमें तो लो, बात ज्ञानमें तो लो ! उसको खयालमें तो लो कि मार्ग (ऐसा है) आहाहा....! अलौकिक मार्ग लौकिकमें कहीं नहीं मिलता, संप्रदायमें भी दिगम्बर संप्रदायके अलावा (यह बात) कहीं नहीं। दिगम्बर संप्रदायमें भी अब संप्रदायके नामसे क्या होता है ? शरीरकी क्रियासे धर्म होता है ?–ऐसे तो प्रश्न चलते हैं, गजब बात है, प्रभु ! जैन दर्शनमें ऐसी बात कलंक है। आहाहा....! शरीरकी क्रियासे धर्म होता है। अरे भगवन् ! क्या कह रहे हो, प्रभु ! आहाहा....! अशुद्धता—दया, दान, व्रत, भक्तिके परिणामसे धर्म होता है—वह भी वस्तुमें नहीं है। आहाहा....! और वह अशुद्धता वस्तुमें नहीं है। अशुद्धतासे धर्म होता है ऐसा तो नहीं लेकिन वह अशुद्धता वस्तुमें नहीं है, आहाहा....! ऐसी वस्तुकी दृष्टि, ज्ञान और स्थिरता मोक्षका कारण है, परम स्वभाव नहीं। क्योंकि वह मोक्ष तो त्रिकाल है। यह तो व्यक्तिरूप मोक्षका विचार चल रहा है, प्रगटरूप दशाकी बात चल रही है। विशेष कहेंगे....

(श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❀ **नग्नता–द्रव्यलिंग तो सर्वथा आत्माके नहीं हैं परंतु जो मोक्षमार्ग है, जो जिनशासन है वह भावलिंग दशा जो कि पूर्णानन्दकी प्राप्तिमें साधन है उसे भी उपचारसे आत्माका स्वरूप कहा जाता है। ऐसा कहकर निमित्तका लक्ष छुड़ाया है, रागका लक्ष छुड़ाया है। अरे! निर्विकल्प मोक्षमार्गकी पर्यायका भी लक्ष छुड़ाया है। १०६.**

–द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर - पर्यायदृष्टि विनश्वर

३५ श्री प्रवचनसार, गाथा—३८, प्रवचन नं. ३६, दिनांक ११-२-१९७९,

(प्रवचनसार) ३८ (गाथाका) शीर्षक। (यहाँपर) केवलज्ञानको सिद्ध करते हैं। 'तत्त्वार्थसूत्र'में (२९वें सूत्रमें आता) है न? **'सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य'**। यह तो 'तत्त्वार्थसूत्र'में (आता) है। सर्वद्रव्य और त्रिकाल पर्याय केवलज्ञानमें (ज्ञात होती है)। वह यहाँपर कहते हैं, देखिये।

'अब अविद्यमान पर्यायोंकी...' है? (अर्थात्) द्रव्यमें भूतकालकी और भविष्यकी अविद्यमान (पर्यायें)। क्या कहते हैं? जैनदर्शनका बहुत ही तात्त्विक विषय (आया) है। 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'के 'धर्मानुप्रेक्षा'में आया है न! (वहाँ) 'धर्मानुप्रेक्षा'में (ऐसा कहा कि) धर्मके मूल कहनेवाले वक्ता 'सर्वज्ञ' हैं। (वैसा) धर्मानुप्रेक्षामें आया है, 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'। जिसे सर्वज्ञका जहाँतक निर्णय नहीं उसे तो जिनशासनकी किसी वस्तुका निर्णय नहीं, आहाहा...! वैसा 'धर्मानुप्रेक्षा'में आया है यह बात हम ले चुके हैं। जैनधर्मका मूल तो सर्वज्ञ हैं।

अन्य प्रकारसे कहें तो जीवका स्वभाव ही सर्वज्ञ है। 'सर्वज्ञशक्ति' है कि नहीं? 'सर्वदर्शी, सर्वज्ञ(शक्ति)। आहा...! चिति, दृशि, ज्ञान इत्यादि (शक्ति) लो। ये शक्ति पूर्ण है। स्वभाव परमात्मस्वरूप ही है। सर्वज्ञ स्वरूपी, अनंत अमृतरूप विज्ञानघनरूपी। अनंत प्रभुत्वरूपी। आहाहा...! 'बेहद' आया था न? आहाहा...! ऐसा उसका स्वभाव ही (है)। सर्वज्ञप्रभुका-प्रत्येक आत्माका (ऐसा स्वभाव) है। अभव्यका स्वभाव भी सर्वज्ञ है। आहाहा...!

यह प्रश्न (संवत) ८५(की सालमें) हुआ था। कितने वर्ष हुये? पचास! उस समय प्रश्न हुआ था कि जीवको अनादि(से) मिथ्यात्व, मिश्र और समकित यह तीन प्रकृति होती है, वैसा (एक आदमीने) कहा। भले ही समकितमोहनीय न हो किन्तु दो तो होती ही है (मिथ्यात्वमोहनीय) और मिश्र (मोहनी)। अर्थात् भव्यजीवको अट्ठाईस प्रकृति होती है। (वैसे तो) अभव्यको भी अट्ठाईस होती है। बात समझमें आती है? (उसमें कहा कि) भवी है वह समकित पानेवाला है। इसलिए उसे समकितमोहनीय, मिश्रमोहनीय (और मिथ्यात्वमोहनीय) ऐसी अट्ठाईस प्रकृति होती है। (और) अभव्यको छब्बीस (प्रकृति) है।

(मैंने कहा) वैसा नहीं। यह तो ८५में चर्चा (हुई थी)।

मिथ्यादृष्टिको अनादिसे छब्बीस ही प्रकृति होती है। सत्ताईस और अट्ठाईस प्रकृति होती है सो समकित होनेके पश्चात्। उसका ऐसा कहना था कि (जो) समकित प्राप्तकरते हैं और केवलज्ञान प्राप्त करते हैं उन्हें केवलज्ञानावरणीय होता है। परंतु जो केवलज्ञान प्राप्त नहीं करते उन्हें केवलज्ञानावरणीय होता नहीं। इसमें क्या कहा कुछ समझमें आया ? भाई ! उसमे ऐसा प्रश्न रखा...उसने मुझे ८०में पुस्तिका भेजी थी। पश्चात् ९५में मिले तब बात कही कि 'आपकी बात गलत है।' मैं जब होता हूँ तब कोई व्याख्यान देता नहीं। सब बैठकर सुनते हैं। (उन्होंने) कहा कि, केवलज्ञानावरणीय अभव्यको होता नहीं। क्यो (नहीं होता) ? (क्योंकि) उसको केवलज्ञान होता नहीं। मैंने कहा 'गलत बात है'। (फिर मैंने पूछा कि) 'तो अभव्यको कितनी प्रकृति होती हैं ?' तो कहे, 'तीन (होती हैं)। मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय (ऐसी) तीन होती हैं। (मनःपर्यय और केवलज्ञानावरणीय) दो नहीं होती। सुना भाई ? मैंने कहा 'अभव्यको भी पाँच प्रकृति होती है क्योंकि अंदर उसका केवलज्ञानस्वरूप है। इसलिए केवलज्ञानस्वरूप और केवलज्ञानावरणीय प्रकृति अभव्यको भी है। भाई ! सूक्ष्म बात है, बापू ! यह तो अंदर पूर्वके संस्कार थे अतः अंतरसे आता था। यह तो पचास वर्ष पहलेकी बात है।

वह कहता है कि, जिसे केवलज्ञान होता नहीं उसे केवलज्ञानावरणीय होता नहीं। क्योंकि उसे अंदर केवलज्ञान कहाँ है। मैंने कहा (कि) गलत बात है। अभव्यको भी पाँच आवरण हैं। मति आवरण, श्रुत आवरण, अवधि, मनःपर्यय और केवल(ज्ञान आवरण)। (अभव्यको केवलज्ञान) होता नहीं, यह अलग बात है परंतु आवरण पांच हैं। और भीतर केवलज्ञान(स्वरूप) है। यह तो ८५ और ७१ की सब पुरानी बातें पहले भी कह चुके हैं। आहाहा...! आगे सामने बोले नहीं। दूसरे भाईने कहा 'कानजीमुनि क्या कहते हैं, सुनो ! वरना लोग आपका नहीं मानेंगे व उसका मानेंगे। उनकी प्रसिद्धि है।' यह तो '८५की बात है। पंद्रह-सोलह सालकी दीक्षा। आहाहा...! मैंने कहा, वैसा नहीं, अभव्यको भी केवलज्ञानावरणीय है। हमें इसमें क्या सिद्ध करना है यह समझमें आता है ? (कि), केवलज्ञान है, सर्वज्ञपना है उसमें। अतः केवलज्ञानावरणीय है, आहाहा...! मनःपर्ययज्ञान होता नहीं इसलिए मनःपर्ययज्ञानावरणीय होता नहीं (परंतु ऐसा नहीं)। पाँचों हैं। अभव्यको भी पाँचों हैं और भव्यको (भी पाँचों हैं)। (वे) आगे बोले नहीं। पुस्तक छपाया था उसमें छाप डाला कि, अभवीको तीन प्रकृति होती है और दो नहीं होती। अनादिसे भवीको सत्ताईस होती है और अभवीको छब्बीस होती है। मैंने कहा सत्ताईस

होती नहीं। अनादिसे छब्बीस ही है। (उनका ऐसा कहना था कि) मिश्र और समकित(मोहनीय) दोनों हो तो वह समकित पा सकता है। मैंने कहा, यह प्रश्न गलत है। इसमें न्याय समझमें आता है कुछ ? आहाहा...! अभव्य और भव्य–सब जीव सर्वज्ञस्वरूपी ही है, आहाहा...!

लोगोंको निर्णय करना नहीं। सत्य वस्तु क्या है ? भगवान क्या कहते हैं ? और वस्तुका स्वभाव भी क्या है ? (उसका) उसे तटस्थ (होकर), मध्यस्थ (होकर) निर्णय करना चाहिये। बापू ! ऐसा समय कब मिलेगा ? आहाहा...! अभव्यको आप छब्बीस प्रकृति कहते हो और भव्यको सत्ताईस (प्रकृति) कहते हो, यह भी गलत (है) और अभव्यको तीन आवरण है और भव्यको पाँच आवरण है, यह भी गलत। बात समझमें आती है ? क्यों (सभी जीवोंको पाँच आवरण हैं ?) (क्योंकि) जब केवलज्ञानावरणीय है तो अंदर केवलज्ञानशक्ति–सर्वज्ञशक्ति है, इसलिए उसे आवरण है। निश्चयसे तो अपनी ही हीन हालत वह आवरण है। परंतु केवलज्ञानावरणीय निमित्तसे आवरण कहलाता है, भाई !

हमारे यहाँ पर यह प्रश्न उपस्थित हुआ था। 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में (आता) है न कि, **'अपूर्व पुद्गलकी शक्ति कि जिस केवलज्ञानावरणीयने केवलज्ञानको रोका'**। ऐसा पाठ है। पुस्तक हो तो बतायेंगे। 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा' है। (उसमें) ऐसा पाठ है, (तो किसीने कहा था कि) 'देखिये, यह पुद्गलकी (शक्ति)। (हमने कहा) पुद्गलकी शक्ति अर्थात् आवरण है, वैसा यहाँपर कहनेका नहीं। यहाँपर तो कहना है कि परमाणुमें निमित्तरूप केवलज्ञानावरणीय(रूप) परमाणु परिणमनको प्राप्त है, ऐसी पर्याय उसे ही होती है। वैसी पर्याय पुद्गलमें और होती नहीं। क्या कहा इसमें कुछ समझमें आया ? ऐसा ही (समझे)....। **'पुद्गलकी अपूर्व केवलज्ञानावरणीय शक्ति कि जो केवलज्ञानका आवरण हो।'** ऐसा पाठ है। उसका अर्थ कि, निमित्तसे कथन है। वह केवलज्ञानावरणीय निमित्त है और अंदर स्वयं हीन भावरूप परिणमित होता है, ऐसा भावकर्म है, तब उस (कर्मको) निमित्त (कहनेमें आता) है। किन्तु ऐसा विस्तार नहीं करते हुये, वैसा कहनेमें आता है। एक बात (हुई)।

दूसरी बात कि, जगतमें कई प्रकारसे परमाणु परिणमित होते हैं, उनमें जो केवलज्ञानावरणीयरूप परिणमित होते हैं वे कोई अलौकिक रीतिसे (परिणमित होते) हैं। समझमें आया ? अन्य परमाणु किसी और प्रकारसे परिणमित हो–मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, साता-असाता(रूप परिणमित हो) परंतु परमाणुमें केवलज्ञानावरणीय(रूप) जो पर्यायें होती हैं, वे वैसी कोई परमाणु(की) पर्यायमें शक्ति (है) आहाहा...! कि, यहाँ

केवलज्ञान है उसके आवरणमें निमित्त कहलाता है। आहाहा...! ऐसी लंबी बातें ! बड़ी चर्चा हुई थी।

यहाँ पर तो ऐसा सिद्ध करना है कि, भगवान केवलज्ञानके द्वारा भूत और भविष्यकी पर्यायें अविद्यमान होते हुये उनको जानते हैं, अतः (वे पर्यायें) अविद्यमान होनेपर भी जाननेकी अपेक्षासे वे विद्यमान हैं वैसा कहनेमें आता है। आहाहा...! समझमें आया ? इसलिए तो ऐसा कहा कि, यह न्याय है कि, यह आत्मा और परमाणु आदि छः द्रव्य हैं। उनकी अनंत पर्यायें बीत चुकी, उनका अस्तित्व अभी नहीं। वर्तमान एक समयकी अनंत (पर्यायें) हैं। एक समयकी एक (पर्याय) है, परंतु एक गुणकी एक है, तो अनंतगुणकी अनंत है। अनंत वैसी पर्यायें बीत गई, नष्ट हो गई और अभी तक अनंत पर्यायें अनुत्पन्न हैं। भविष्यकी पर्याय उत्पन्न हुई नहीं। फिर भी यह अपेक्षासे उसे असद्‌भूत, अभूतार्थ वैसा कहनेमें आता है। तथापि यह ज्ञानका वैसा स्वभाव है (यानि कि) केवलज्ञानका वैसा स्वभाव है...आहाहा...! कि, उन अविद्यमानको भी वर्तमान भूतार्थकी तरह जानता (है)। 'है' वैसा वह जानता है, आहाहा...! समझमें आया ? अरे...! ऐसा निर्णय करे तब तो उसे सर्वज्ञस्वभावी (अपने आत्माका) निर्णय हो जाता है। बात भी लोगोंको रुचना (कठिन है)। मूल तो यह है। जैनदर्शनका मूल तो यह है।

(एक लेखमें) लिखा है न ! (उसमें) 'दार्शनिक' शब्द है, हाँ। वास्तविक दर्शन-जैनदर्शनकी दार्शनिक उपलब्धिकी प्राप्ति है। 'क्रमबद्ध' यह तो जैनदर्शनकी दार्शनिक प्राप्ति है। उसमें तो केवलदर्शन, केवलज्ञान और पदार्थकी व्यवस्थित सिद्धि होती है। आहाहा...! तीन बोल रखे हैं। 'इस महान दार्शनिक उपलब्धिको व्यर्थ वादविवादने सामाजिक व राजनीतिका विषय बना लिया है। यह एक शुद्ध दार्शनिक विषय है। यह वादविवाद एवं हँसी-मजाकका विषय नहीं है।' (अर्थात्) आप तो जो होनेवाला है सो होगा...! वैसे माननेवाले हो। ऐसा कहकर मजाक उड़ाते हैं। 'इस पर विशुद्ध दार्शनिक एवं आध्यात्मिक दृष्टिकोणसे विचार किया जाना चाहिये।' विचार करना चाहिये। वैसा ही वैसा पंडितोंको मान लेना, वैसा नहीं है। जैनदर्शन यह कोई संप्रदाय नहीं। जैनदर्शन यह वस्तुका दर्शन है। विश्व जैसा है, (जैसा उसका) स्वरूप है, उसे जाना है, वैसा उन्होंने कहा है और उस तरह मार्गको साधना, क्योंकि भूतार्थ त्रिकाल वस्तु जो है उसका आश्रय लेना यह जैनदर्शनका तात्पर्य है। 'क्रमबद्ध' (का) निर्णय करनेमें भी भूतार्थका आश्रय करनेपर 'क्रमबद्ध'का निर्णय होता है। भाई ! आहाहा...! ग्यारहवीं गाथा (समयसार)। **'भूदत्थमस्सिदो खलु'** आहाहा...! एक समयमें भूतार्थ (वस्तु है)। भूत...भूत...अर्थात् भूत

लगा है, यह नहीं। यह 'भूत' अर्थात् विद्यमान वस्तु, आहाहा...! विद्यमान पदार्थ। सकल निवारण अखंड एक प्रभु आत्मा। आहाहा...! यह जैनदर्शनका रहस्य और तत्त्व है। आहाहा...!

एक विद्वानने एक जगह लिखा है कि, 'क्रमबद्धपर्याय'की बात पहले हमारे ध्यानमें नहीं आयी। अबतक यह शब्द ही (ध्यानमें) आया नहीं था। **'और वह इस युगमें एक ऐसे व्यक्तिके माध्यमसे प्रस्तुत हुई....'** (अर्थात्) यहाँसे (पूज्य गुरुदेवश्रीसे)। **'...इस युगके ऐसे व्यक्तिके माध्यमसे प्रस्तुत हुई जिसे हम किसी कारणवश पसंद नहीं करते...**(यानी कि) स्थानकवासीमेंसे निकले हुये....और इस व्यक्तिने क्रमबद्ध निकाला। और न थे पंडित, नहीं विद्वान या संस्कृत व्याकरणके पाठी....! **'...तो इसका मतलब यह तो नहीं होना चाहिये कि हम सर्वज्ञकी भविष्यज्ञतासे भी इन्कार कर अपने पैरों पर ही कुल्हाडी मार लें।'** भविष्यकी जिस समय जो पर्याय होनेवाली है उसको भगवान अभी भी जानते हैं। यदि तू भविष्यकी (जिस) प्रकार (पर्याय होनेवाली) है उसी प्रकार होती है, वैसा न माने तो सर्वज्ञके ऊपर कुल्हाड़ी पड़ती है। समझमें आया ? आहाहा...! सूक्ष्म बातें बहुत हैं, बापू ! लोग जैनदर्शन क्या है ? (यह) कुछ समझते नहीं और वैसे ही वैसे (चलते रहते हैं) जिस संप्रदायमें पैदा हुये (वैसी मान्यता कर ली)। जिस कुलमें पैदा हुये और जिसकी संगत (हुई) उसे माना, हो गई छुट्टी....। व्यर्थ जिंदगी गवाँई !! आहा...!

यहाँ ऐसा कहा **'...इन्कार कर अपने पैरों पर ही कुल्हाडी मार लें। इस आत्मघाती कदम उठानेके पूर्व...'** यह आत्मघाती कदम है। क्रमबद्धका निषेध करनेवाला सर्वज्ञका निषेध करता है। केवलज्ञानी तीनकालको जानते हैं उनका निषेध करते हैं। आहाहा...! **'...यह आत्मघाती कदम उठानेके पूर्व चिंतकवर्गसे एकबार पुनः विचार कर लेनेका सानुरोध आग्रह है।'** विचार किजिये। एकबार विचार किजिये। विचार किजिये...!! वैसाका वैसा न मानो। एक व्यक्तिने कहा इसलिए हमें मान लेना ? हमारे इतने-इतने साधु हो गये (और) अब कोई कहते नहीं है और (उनका मान लिया जाय ?) आहाहा...! बहुत अच्छा लिखा है।

आहाहा...! यहाँ कहते हैं, **'अब अविद्यमान पर्यायों...'** है न ऊपर ? **'अविद्यमान अर्थात् भूतकालीन जो अभी है नहीं, भविष्यकी उत्पन्न हुई नहीं है, उन्हें '**...(भी) कथंचित् (किसी प्रकारसे, किसी अपेक्षासे)....अर्थात् कि, वहाँ भूत(कालकी पर्याय) हालमें नहीं है और भविष्यकी है नहीं, परंतु ज्ञानका ऐसा कोई स्वभाव है कि जो इसप्रकार होगा, जो हो (गई) जिस समय, वैसा ही यहाँ जानते हैं। इस अपेक्षासे (अर्थात्) ज्ञानकी

अपेक्षासे उसे 'भूतार्थ' कहनेमें आता है। आहाहा...! समझमें आया ? लोजिक-न्याय बहुत सूक्ष्म है, भाई ! जैनदर्शन कोई अपूर्व चीज है !! जगतमें कोई दूसरा है नहीं। जैनदर्शनके अलावा कोई धर्म तीनकालमें सत्य है नहीं। समझमें आया ?

यह यहाँ कहते हैं। ऊपर शीर्षक चल रहा है। **'अविद्यमान पर्यायों...'** **'अविद्यमान'** अर्थात् **'नहीं'**। भूत(काल)की नहीं भूत (अर्थात्) गत समयकी, भविष्यकी नहीं। उसका भी...ऐसा है न? देखिये न! (संस्कृतमें है) **'अथासद्भूतपर्यायाणां कथंचित्सद्भूतत्वं विदघाति'** (अर्थात्) किसी अपेक्षासे यानी कि 'है' ऐसा कहते हैं। (किसी) अपेक्षासे अर्थात् ज्ञान वैसा जानता (है), सबकुछ प्रत्यक्ष जानता है। इसलिए 'नहीं' उसे हम 'है' वैसा कहते हैं। आहाहा...!

(अब) ३८ **गाथा :—**

जे णेव हि संजाया जे खलु णट्ठा भवीय पज्ञाया।
ते होंति असब्भूदा पज्ञाया णाणपच्चक्खा॥३८॥

आहाहा...! क्या गाथा है। जैनदर्शनका प्राण है।

हरिगीत : **जे पर्ययो अणजाण छे, वली जन्मीने प्रविनष्ट जे;**
ते सौ असद्भूत पर्ययो पण ज्ञानमां प्रत्यक्ष छे. ३८

आहाहा...! भगवान परमेश्वरके महामंत्र है। आहाहा...! हम ऐसा करें व हम वैसा करके वैसा कर दें और किसीका कर दें एवम् मेरी पर्याय भी बदल दूँ और... आहाहा...! ये सब अभिमानके जहर उतारनेके मंत्र हैं। सर्पके जहरको उतारनेके लिए मंत्र होते हैं न ! वैसे ये मिथ्यात्वके जहर उतारनेके मंत्र हैं। आहाहा...!

टीका :— 'जो (पर्यायें)...' 'पर्याय समझमें आती है ? (पर्याय अर्थात्) अवस्था। प्रत्येक द्रव्य और गुण त्रिकाल रहते हैं और अवस्था क्षण...क्षण...क्षण...में पलटती है। क्रमसर पलटती है। एकके बाद एक...एक...एकके बाद एक...लोग गतकालकी (पर्यायोंको केवलज्ञान जानता है) वैसा मानते हैं। गतकालकी प्रत्येक समयपर हुई है यह बराबर है। इसलिए उसे मानते हैं। परंतु भविष्यकी हुई नहीं, जिस समय (होनेवाली) उसी समय होगी, वैसा मानना कठिन पड़ता है। क्योंकि गतकालकी जो पर्यायें हो गई है वे तो उसी समय हुई थी (तो) उसी समय (ही) होनेवाली थी। इसलिए उन्होंने कहा ठीक (है कि) क्रमबद्ध मान लेते हैं। परंतु भविष्यकी जिस समय होगी उसी समय होगी, आगे पीछे

नहीं, आहाहा...! ऐसा जो मानना यह लोगोंको कठिन पड़ता है। इसलिए वे सर्वज्ञको भी उड़ाते हैं। क्योंकि सर्वज्ञ ही भविष्यकी सभी पर्यायें (वर्तमानमें) नहीं है, तथापि ज्ञानमें प्रत्यक्ष (जानते) हैं, आहाहा...! यह ज्ञानका-केवलज्ञानकी पर्यायका कोई अलौकिक चैतन्यस्वभाव (है) कि, एक समयकी पर्यायके अलावा अनंतकाल(की) भविष्यकी, कोई पर्याय वर्तमानमें नहीं है तथापि भगवानके ज्ञानमें ये वर्तमान हैं वैसे जानते हैं। तब (अतिरिक्त) प्रश्न यह आया था कि, '(जो पर्याय) नहीं है उसे (प्रत्यक्ष) जाने यह तो विपरीत हुआ।' अरे...! परंतु सुन तो सही। यह तो वहाँ उत्पन्न नहीं हुई है, उस अपेक्षासे नहीं है। परंतु ज्ञानमें तो, जिस समय उत्पन्न होगी वैसा ही यहाँ ज्ञान हुआ है, आहाहा...! ऐसी बातें हैं। बहुत कठिन काम ! आहाहा...! भविष्यकी जिस समय जो पर्याय होगी उस समय होगी, यह मानना लोगोंको (कठिन पड़ता है)। परंतु उसका मतलब ऐसा है, प्रभु ! देखिये ! (यहाँ क्या कहते हैं ?)

'जो (पर्यायें) अभीतक भी नहीं हुई है...' है न ? भविष्यकी...! भविष्यकी पर्यायें वर्तमानमें नहीं–अनुत्पन्न हैं। कल जो पर्याय होगी वह अभी उत्पन्न नहीं हुई है। अर्थात् कि ये पर्यायें, अब तक भी उत्पन्न हुई नहीं है **'...और जो उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं,...'** पर्यायें उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं, आहाहा...! विलय हुई हैं वे वर्तमानमें नहीं, उस अपेक्षासे (कहा है)। शेष (जो) पर्याय विलय हुई हैं सो गई हैं द्रव्यमें। आहाहा...! परंतु वर्तमान विलय है न (इसलिए विलय हो गई, वैसा कहा है)। गतकालकी पर्याय वर्तमान नहीं। वे विलय हो गई हैं। और वे (भविष्यकी) उत्पन्न हुई नहीं हैं।

'...वे (पर्यायें) वास्तवमें अविद्यमान होने पर भी,...' भाषा फिर ऐसी देखो। यथार्थमें अभूतार्थ होने पर भी, आहाहा...! वास्तवमें 'नहीं' वैसा होने पर भी–अविद्यमान (होने) पर भी **'...ज्ञानके प्रति नियत होनेसे...'** आहाहा...! यह तो कोई बात (है) !! परंतु केवलज्ञानकी पर्यायमें तो प्रत्यक्ष...प्रत्यक्ष... जिस प्रकार वर्तमान है उसी तरह भूत और भविष्यकी (पर्यायोंको) वर्तमान देखता है। आहाहा...! यह तो कोई (बात है) !! यह चैतन्यकी चमत्कारी पर्यायका सामर्थ्य है। आहाहा...! जो पर्यायें उत्पन्न हुई नहीं और उत्पन्न होनेपर भी द्रव्यमें तो जितनी शक्ति है उतनी नित्य रहती है !! पर्याय उत्पन्न हुई इसलिए पूर्ण (स्वरूप) है उसमें कोई कमी आयी है, (वैसा नहीं)। यह भी कोई अचिंत्य बात है न !!

यहाँपर तो कहते हैं, प्रभु ! मार्ग प्रभुका ऐसा है...। आहाहा...! जड़ और चैतन्य छ द्रव्यकी भूतकालकी अवस्थाएँ और छ द्रव्यकी भविष्यकी अवस्थाएँ–अनुत्पन्न और विनष्ट (ऐसी पर्यायें) इस अपेक्षासे असद्भूत होनेपर भी... आहाहा...! (उनको प्रत्यक्ष

जानते हैं) ! प्रभु ! परंतु तेरी शक्ति ऐसी है न ! आहाहा...! द्रव्यकी शक्ति वैसी है। आहाहा...! द्रव्यकी शक्ति हो तो पर्यायकी शक्तिमें आये न ! आहाहा...!

ज्ञानकी एक समयकी पर्याय विनष्ट-अवस्थाएँ हो गई और उत्पन्न हुई नहीं, उस अपेक्षासे उसे अविद्यमान कहते हैं। परंतु ज्ञानकी अपेक्षासे, प्रभु ! हम प्रत्यक्ष कहते (हैं)। आहाहा...! परंतु ज्ञानका कोई ऐसा स्वभाव (है)... आहाहा...! केवलज्ञानकी पर्यायका कोई ऐसा स्वभाव (है)... आहाहा...! वास्तवमें अविद्यमान (होने) पर भी ज्ञानमें प्रत्यक्ष, वर्तमान, भूतार्थ है। यहाँ अपनी पर्याय भी हुई नहीं उसे भी केवलज्ञान (जानता) है। भविष्यकी अनंत पर्यायें हुई नहीं उन्हें भी केवलज्ञान प्रत्यक्ष जानता है। आहाहा...! केवलज्ञान भी एक समयमें, दूसरे समयमें, तीसरे (समयमें)...नया-नया होता ही रहता है न ! जो (पर्याय) अबतक हुई नहीं उसे भी केवलज्ञान प्रत्यक्ष है ऐसा जानता है। उस ज्ञानकी अपेक्षासे उसे भूतार्थ कहनेमें आता है। बहुत सूक्ष्म बात है, भाई ! यहाँ 'सोनगढ'में ऐसी बात न हो तो (और) कहाँ हो भाई ?

आहाहा...! भगवन् ! तू ऐसा (है), तेरे भीतर सामर्थ्य है कि भूत और भविष्यकी पर्याय नहीं होनेपर भी, ज्ञानमें निर्णय करने जाय तो यह श्रुतज्ञानकी पर्यायमें भी (यह) परोक्ष है, केवलज्ञानमें प्रत्यक्ष है। परंतु परोक्ष भी प्रमाण है न ! क्या कहा समझमें आया ? आहाहा...! केवलज्ञानकी पर्यायमें, नहीं और उत्पन्न हुई नहीं, होकर गई और नहीं हुई, उन अपेक्षासे तो वास्तवमें अविद्यमान है। तथापि वह ज्ञान ऐसा है कि, ज्ञान उसे प्रत्यक्ष करता है। इसलिए उसे व्यवहारसे 'भूतार्थ' कहनेमें आता है। (परंतु) है यह व्यवहार ! आहाहा...! समझमें आया ? ऐसा मार्ग ! वह तो व्रत करना व तपस्या, उपवास करना और चौविहार करना... लो धर्म हो गया ! छः पर्व ब्रह्मचर्यका पालन, छः पर्व कंदमूल न खाना..बापू ! वे सभी बातें...'यह मैं छोड़ता हूँ व यह मैं खाता हूँ ' ये सब जड़की क्रिया (है)। (यह) 'मैं करता हूँ' यह मान्यता ही मिथ्यात्व है। आहाहा...! आहाहा...! यहाँ पर तो (ऐसा कहते हैं कि) केवलज्ञान और तेरी श्रुतज्ञानकी पर्याय भी जिस द्रव्यकी पर्याय होकर गई और हुई नहीं, उसे श्रुतज्ञानकी पर्याय परोक्ष रीतिसे है वैसे बैठाते हैं। परोक्ष भी प्रमाण है न ? आहाहा...! समझमें आया ?

(अब कहते हैं) '...**ज्ञानके प्रति नियत होनेसे (ज्ञानमें निश्चित)**...' ज्ञानमें तो निश्चित है। (वर्तमानमें) नहीं है इसलिए ज्ञानमें व्यवहार है, ऐसा नहीं। आहाहा...! ज्ञानस्वरूप भगवानमें क्रमबद्ध जो पर्याय होनेवाली और हो गई वे ज्ञानमें निश्चित हैं। '...**(ज्ञानमें निश्चित-स्थिर-लगी हुई होनेसे,...)**' आहाहा...! वे पर्यायें मानों ज्ञानमें चिपक

गई हों। आहाहा...! एक समयका (केवल)ज्ञान! बापू ! यह क्या है भाई ! आहाहा...! समय एक, जाने तीनकालको। समय एक-वर्तमान और तीनकाल !! आहाहा...! बापू ! नौ तत्त्वोंमें मोक्षतत्त्व-केवलज्ञानतत्त्वका निर्णय करना पड़ेगा, भाई ! मोक्षतत्त्व है न ? केवलज्ञान...! आहाहा...! यह होता है द्रव्यके आश्रयसे, परंतु हुई पर्यायका इतना सामर्थ्य है (कि सबको) प्रत्यक्ष जानती है।

'(**...लगी हुई होनेसे, ज्ञानमें सीधी ज्ञात होनेसे**)...' (अर्थात्) नहीं होने पर भी ज्ञानमें सीधी ज्ञात होती है। आहाहा...! आहाहा...! जैसे है वैसे ज्ञानमें ज्ञात होती है। आहाहा...! प्रभु तेरे पर्यायमें चैतन्यका स्वभाव तो देख ! आहाहा...! सीधा...ज्ञानमें सीधा (ज्ञात होता है)। (कोई) ऐसा कहे कि, होगी तब जानेंगे, वर्तमानमें होगी तब जानेंगे, वैसे नहीं। वर्तमानमें हुई नहीं उन्हें सीधा जानते हैं। आहाहा...! आड़में (जानना) होगा वैसे नहीं, (परंतु) सीधा जानते हैं, आहाहा...! यह नौं तत्त्वोंमें मोक्षतत्त्व-केवलज्ञानतत्त्वका निर्णय कराते हैं। आहाहा...! यद्यपि है तो पर्यायका निर्णय, परंतु पर्यायका निर्णय द्रव्यके आश्रयसे होता है। पर्यायका निर्णय पर्यायके आश्रयसे होता नहीं।

आहाहा...! केवलज्ञानका निर्णय करने जाय कि उसकी एक समयकी पर्याय अनंत...अनंत...पर्याय उत्पन्न हुई नहीं और अनंत पर्याय उत्पन्न होकर गई हैं, उन्हें ज्ञानकी पर्याय सीधा जानती है। '**सीधा जानती है...**' आहाहा...! अर्थात् वर्तमान जैसा है वैसा सीधा जानती है, आहाहा...! यह वर्तमान पर्याय है इसलिए आगे भविष्यमें क्रमिक होगी, ऐसा अनुमान या अन्य रीतिसे जानती नहीं, वैसा कहते हैं। आहाहा...!

ज्ञान, एक समयकी पर्यायको सीधा जानता है। अनंतकाल आगे जो पर्याय होगी उसे ज्ञान सीधा (अर्थात्) प्रत्यक्ष जानता है। आहाहा...! क्या कहते हैं यह ? विचारकोंको विचार और मंथन करनेकी यह बात है। आहाहा...! वैसे ही वैसे मान ले वह कोई वस्तु नहीं है। अंदरमें यह वास्तविक स्वभाव है (उसका निर्णय करना चाहिये)। (जो पर्यायें) हो गई हैं और होगी उसे ज्ञानका कोई ऐसा स्वभाव है कि सीधा (जानता है)। यह वर्तमान है तो आगे (भविष्य) होगा, वर्तमान है तो भूतकाल था, वैसे (नहीं जानता)। समझमें आया ? आहाहा...! धन्य भाग्य ! वीतरागकी ऐसी वाणी मिले, बापू।

इसलिए तो 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में ऐसा कहा है न ! भगवान, इन्द्र और जिनेन्द्र जिस समयपर जिसकी पर्याय होगी, जिस तरह, जिस क्षेत्रमें, जिस कालमें, जिस निमित्तसे जिस प्रकार (होनेवाली होगी उस प्रकारकी होगी, उसे इन्द्र या जिनेन्द्र कोई रोक सकते नहीं)। उस प्रकारसे माने तो वह सम्यग्दृष्टि है और उससे विपरीत माने तो मिथ्यादृष्टि है।

'स्वामी कार्तिकेय'। समझमें आया ? 'स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा'में ३२१-३२२ गाथा (है), आहाहा...!

यह चर्चा करने जैसा है, यह गुप्त रखने जैसा नहीं है। भले चाहे जल्द समझमें न आये, लेकिन बात गुप्त रखने जैसी नहीं है। भाई ! आये थे न ! २००१में पहली बार सुना कि उपादानकी पर्याय कालमें होगी तब निमित्त हो, लेकिन निमित्तसे कुछ होता नहीं। वह पर्याय स्वयंसे होती है। मैंने कहा कि इस बातकी चर्चा पंडितोंमें करो। २००१में आये थे, ३४ वर्ष हो गये। उनको लगा कि सबको मानना पड़ेगा। स्वामीजी कह रहे हैं वह मानना पड़ेगा। उपादानकी जिस समय जो पर्याय होनी है वह होगी। निमित्त आवे तब हो ऐसा तीनकालमें नहीं है। घड़ा कुम्हारसे बने ऐसा तीनकालमें नहीं है। घड़ा मिट्टीसे जिस समय होना है उस समय ही होगा। जिस समय घड़ा मिट्टिमेंसे होना है उसी समय होगा। कुम्हार उसे आगे-पीछे कर सके ऐसा तीनकालमें नहीं है। मैंने कहा कि इस बातको पंडितोंके सामने रखो। आहाहा...! भाई...! यह तो वस्तुका स्वभाव ही ऐसा है और प्रभुने कहा है। उसकी चर्चा नहीं करनी ? चर्चा करो, छपवाओ, पुस्तक बनवाओ, पंडितोंके सामने रखो...! अब यह क्रमबद्ध आया है। आहाहा...!

ऐसा एकबार गजपंथामें प्रश्न हुआ था। (वहाँ) एक श्वेताम्बर साधु थे। हमारे यहाँका अध्ययन किया तथा सब बातें करते थे। हम गये तब वे आये, पैर छूये, परंतु बादमें आये नहीं। हमें तो शामको आना था (इसलिए बादमें) किवाड़ बंद करके बैठे थे। (हम गये तब) पैर छूये। मैंने कहा 'शास्त्रमें पाठ है कि कालमें मुक्ति होती है, (वैसे) दो पाठ हैं। ('प्रवचनसार') ४७ नयमें (आता है), कालमें भी मृत्यु होता है और अकालमें भी मृत्यु होती है, (उसका) क्या है ? (उन्होंने कहा) मैंने कुछ विचार नहीं किया है।

'प्रवचनसार'में ऐसा पाठ है कि, कालमें भी मोक्ष होता है और अकालमें भी मोक्ष होता है। परंतु ऐसा ही माने कि जिस समय जो हानेवाला है वह होगा, तो अकालमें मोक्ष होता है, वैसा कहा है। (उसका अर्थ ऐसा है कि) कालमें मोक्ष होते समय स्वभाव, पुरुषार्थ है उसे अकाल कहनेमें आता है। पढ़-पढ़कर बैठाया था, न्यायसे अंदर बैठा नहीं था। (मैंने कहा) कालमें भी मोक्ष होता है और अकालमें भी मोक्ष होता है। (ऐसा) पाठ है। जिस कालमें, जिस समयमें (मोक्ष) होनेवाला है वह होगा ही। तथापि अकालमें मुक्ति (भी आती) है। है न इसमें ? इसमें है ? यह 'प्रवचनसार' है न ? ३० और ३१ (वाँ नय है) ४९८ पन्ना है।

'आत्मद्रव्य कालनयसे जिसकी सिद्धि समयपर आधार रखती है ऐसा है, गर्मीके दिनोंके अनुसार पकनेवाले आम्रफलकी भांति। (कालनयसे आत्मद्रव्यकी सिद्धि समयपर आधार रखती है, गर्मीके दिनोंके अनुसार पकनेवाले आमकी भाँति।)' (३०)

'आत्मद्रव्य अकालनयसे जिसकी सिद्धि समयपर आधार नहीं रखती ऐसा है, कृत्रिम गर्मीसे पकाये गये आम्रफलकी भाँति।' (३१) क्या कहा है यह ? अतः यहाँ पुरुषार्थ और स्वभावको साथमें स्थापित किया है। समझमें आया ? यह तो (संवत्) १३(की सालकी) बात है। यहाँ तो पहलेसे ही (यह बात) चर्चित है न ! यह इसमें– व्यवहारसे मुक्ति होती है और निश्चयसे मुक्ति होती है व क्रियानयसे होती है व ज्ञाननयसे होती है, किन्तु इसका अर्थ क्या ? उस प्रकारकी योग्यता उसी समय गिनतीमें ली गई। बाकी तो जिस समय मुक्ति होनेवाली है, जिस समय भगवानने देखी उस समय वैसा ही होनेवाला है, आगे-पीछे होनेवाला नहीं। परंतु 'अकालसे (मुक्ति) कहा यह (क्या है) ? (उस समय) स्वभाव है, पुरुषार्थ है, केवल काल नहीं। अकालसे पुरुषार्थ, स्वभाव, भवितव्यता और भाव सब मिलकर है। उसे 'अकाल' कहनेमें आता है। आहाहा...! सूक्ष्म बातें बहुत, बापू ! वीतरागमार्ग सूक्ष्म बहुत, भाई ! आदमीको फुरसत न मिले...! आहाहा...!

श्रोता :— अकालमृत्यु कहनेमें कौनसा काल है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— उसमें भी वही है। अकाल कुछ है नहीं, कर्मकी स्थिति उस प्रकार वहाँ पूर्ण होनेवाली थी, इस कारण अकाल कहा। 'पद्मनंदीपंचविंशती'। 'अनित्य अधिकार' हमने कल पढ़ा था। उसमें यह आया–जिस समय, जिस प्रकार, जिस क्षेत्रसे देहकी (स्थिति) पूर्ण होने वाली है सो होगी। एक समय आगे-पीछे नहीं। और तुम्हारे यहाँ कहा जाता है न कि 'पंचमीकी षष्ठी होती नहीं।' कहनेमें आता है या नहीं ? पंचमीको देह छूटनेवाला होगा तो पंचमीके (दिन ही छूटेगा), षष्ठी तीनकालमें (होनेवाली नहीं), आहाहा...! ''मोक्षमार्गप्रकाशक''में कहा है न कि भगवानने कहा ऐसे मार्गका आचरण करें तो उसके पांचों कारण साथ ही होते हैं। 'मोक्षमार्गप्रकाशक'के नौंवें अधिकारमें है। 'मोक्षमार्गप्रकाशक'में 'टोडरमलजीने' बहुत अच्छा खुलासा किया है।

यहाँ कहते हैं, आहाहा...! क्या बात (है) !! गतकालकी पर्याय वर्तमानमें नहीं। अनंत...अनंत..अनंत..अनंत...काल(का) भविष्य वर्तमान(में) नहीं। इस अपेक्षासे वास्तवमें अविद्यमान ही है। परंतु ज्ञानका कोई ऐसा स्वभाव है कि, जैसे वह प्रत्यक्ष हो, विद्यमान हो वैसे प्रत्यक्ष जानता है !! आहाहा...! ऐसा केवलज्ञान, बापू ! उसकी पर्यायकी इतनी

ताकत !! तो उसके गुणका क्या कहना ? और अनंतगुणके पिंड (वैसा) द्रव्यका क्या कहना !! आहाहा...! यह द्रव्यकी दृष्टि !! ऐसी दृष्टि हुये बिना सम्यग्दर्शन होता नहीं। आहाहा...! पर्यायकी दृष्टि नहीं। केवलज्ञान है यह भी सद्भूत व्यवहारनयका विषय है।

यह विषय भी जब आता है कि, अविद्यमानको भी प्रत्यक्ष जानता है, यह क्या है बापू ? नहीं उसको प्रत्यक्ष जानता है कि यह है। आहाहा...!

श्रोता :— द्रव्यमें तो शक्तिरूप योग्यता रही हुई है (इसलिए तो जानता है)?

पूज्य गुरुदेवश्री :— यह तो त्रिकाल (है)। यह प्रश्न नहीं है। यहाँ तो भविष्यकी जो पर्याय हुई नहीं और भूत(कालकी) हो गई, उसे वैसे प्रत्यक्ष जानता है कि, यह है। द्रव्यको जानता (है) अतः वैसा नहीं। यह जानता है इसलिए है।

श्रोता :— द्रव्यमें शक्तिभूत योग्यता विद्यमान है...

पूज्य गुरुदेवश्री :— नहीं...नहीं...नहीं...! शक्तिरूप योग्यता (की बात नहीं)। यह तो उसकी गतकालकी और भविष्यकी पर्याय वर्तमानमें नहीं हैं, उन्हें ज्ञानमें वर्तमान प्रत्यक्ष जानता है। द्रव्यमें भविष्यकी शक्ति है इसलिए जानता है, वैसा नहीं। भविष्यकी जिस समय, जिस प्रकार (पर्याय) होनेवाली है उसे ज्ञान वैसे प्रत्यक्ष जानता है। यह तो बापू वीतरागकी बातें (हैं) !! आहाहा...! जिनेश्वरदेव, प्रभु परमात्मा...आहाहा...! उनके एक-एक वाक्योंकी श्रद्धा, उसका ज्ञान होना, बापू ! यह कोई अलौकिक बात है !! यह कोई सामान्य बात नहीं। आहाहा...!

यह बात एक बार दोहरायी थी कि, वर्तमान नहीं और केवलज्ञानमें निमित्त क्यों कहा ? भविष्यमें (जो पर्याय होगी) यह सब वर्तमानवत् (केवलज्ञानको) निमित्त होती है। भविष्यमें होगी इसलिए (यहाँ केवलज्ञानमें) निमित्त होती है, वैसा नहीं। आहाहा...! सूक्ष्म बात है भाई ! ये सब प्रश्न उपस्थित हो चुके हैं। यह द्रव्यकी पर्याय जिसरूप होगी (उसके अनुसार जानता है) वर्तमान योग्यता है वह वर्तमानको जानती है इसलिए भविष्यको जानती है, वैसा नहीं। समझमें आया ? वर्तमान द्रव्यमें भविष्यकी योग्यता है और भूतकालकी योग्यता है, इसलिए उन्हें जाननेसे भूत-भविष्यको जानती (है) वैसा नहीं। यह तो उसकी पर्याय है इसलिए उन्हें जाननेसे भूत-भविष्यको जानती (है), वैसा नहीं। यह तो उसकी पर्यायको जानता है। यह तो शक्तिको जानता है, वैसा कहा। आहाहा...! भाई ! यह वीतरागमार्ग कोई गंभीर है !! आहाहा...! अरेरे...! ऐसा मार्ग अलौकिक है, प्रभु !

(यहाँपर कहते हैं) वह पर्यायें... '(...**ज्ञानमें सीधी ज्ञात होनेसे**)...' '**ज्ञानके प्रति**

नियत' ऐसा है न ? उसका अर्थ किया है। ज्ञानके प्रति तो निश्चय है। वहाँ भले ही नहीं है परंतु ज्ञानके प्रति तो निश्चय है, आहाहा...! उस '...**ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तती हुई**' '**ज्ञानके प्रति नियत होनेसे**' (अर्थात्) ज्ञानके प्रति निश्चय होनेसे '**ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तती हुई**' उस ज्ञानमें प्रत्यक्ष वर्तती हुई (वैसा कहा है)। (अर्थात्) भूत और भविष्य ज्ञानमें प्रत्यक्ष वर्तती हुई (वैसा कहते हैं)। आहाहा...! समझमें आता है न ? आहा...! ऐसी बात है, बापू ! आहाहा...! त्रिलोकनाथ वीतरागका एक-एक वाक्य (शब्द) कोई अलौकिक है। लोगोंको सुनने मिला नहीं, आहाहा...! क्या कहते हैं ?

गतकालमें होकर **नष्ट** हो गई, भविष्यकी उत्पन्न हुई नहीं, इसप्रकार वास्तवमें तो (वे पर्यायें) अविद्यमान ही है, वर्तमानमें नहीं। परंतु ज्ञानका कोई ऐसा स्वभाव है कि, ज्ञानमें वह नियत-प्रत्यक्ष ज्ञात होती है, आहाहा...! होगी तब ज्ञात होगी, वैसा नहीं। वैसे द्रव्यमें ऐसी योग्यता है इसलिए द्रव्यको जाने, इसलिए भवितव्यकी पर्यायको जाने, वैसा नहीं। आहाहा...! ऐसा उपदेश है !

ज्ञानके प्रति अर्थात् ज्ञान और आत्मा (के प्रति) नियत होनेसे (अर्थात्) निश्चयसे सीधी ज्ञात होनेसे, ज्ञानमें परिणमित होकर सीधी ज्ञात होनेसे '..**ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तती हुई**' (प्रत्यक्षका) नीचे अर्थ किया है। प्रत्यक्ष अर्थात् अक्षके प्रति। (उसके नीचे) अक्षका अर्थ है। दो (अर्थ कहे हैं)। अक्ष अर्थात् आत्मा और अक्ष अर्थात् ज्ञान। प्रत्यक्ष=अक्षके प्रति अर्थात् आत्माके प्रति (और) ज्ञानके प्रति। अक्षके सम्मुख अर्थात् आत्माके सम्मुख (और) ज्ञानके सम्मुख। अक्षके निकट अर्थात् आत्माके निकट (और) ज्ञानके निकट। अक्षके संबंधमें अर्थात् आत्माके संबंधमें (और) ज्ञानके संबंधमें हो वैसा। अक्ष=(१) ज्ञान (२) आत्मा। समझमें आया ? भाई ! यह कोई कथा-कहानी नहीं। आहाहा...! यह तो अंदर वस्तुका स्वरूप कोई अचिंत्य, अद्‌भुत (है उसकी बात चलती है) आहाहा...! इस तरह न माने तो वह केवलज्ञानको मानता नहीं।

कई लोग केवलज्ञानमें शंका उठाने लगे हैं (कि) भविष्यमें होगा तब जानेंगे, अभीसे कैसे जाने ? '**क्रमबद्ध**'की बात छेड़ी तब लोगोंको ऐसा हो गया था, ऐसा...! सर्वज्ञ वर्तमान एक समयमें जानते हैं ? भविष्यकी पर्याय होगी सो वर्तमानमें (जाने) ? अब, वैसा न जाने तो दिव्यज्ञान किसे कहेंगे ? आहाहा...! भाई ! परमात्माका एक तत्त्व–एक पर्याय–केवलज्ञानकी एक पर्यायकी भी इतनी विस्मयता !! आश्चर्यता !! आहाहा...! यह '...**ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तती हुई**...' उनके बारेमें विशेष आयेगा...

(श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव!)

३६ श्री कलशटीका, कलश—२५८, प्रवचन नं. २७६, दि. २१-१२-१९६५

१२वाँ कलश है।

विश्रान्तः परभावभावकलनान्नित्यं बहिर्वस्तुषु
नश्यत्येव पशुः स्वभावमहिमन्येकान्तनिश्चेतनः।
सर्वस्मान्नियतस्वभावभवनज्ञानाद्विभक्तो भवन्
स्याद्वादि तु न नाशमेतिसहजसष्टीकृतप्रत्ययः।।१२-२५८।।

क्या कहते हैं? यहाँ स्वभावकी अस्ति दिखानी है। उसमें पहले परभावसे अस्ति माननेवाले एकांती कैसे होते हैं उसकी बात करते हैं। सूक्ष्म तो है, यह अनेकान्त सूक्ष्म वस्तु है। बराबर ध्यान रखकर लक्षमें रखना। उसमें ज्यादा ध्यान रखना ऐसा उसका अर्थ है। सूक्ष्म अर्थात् बराबर ध्यान रखना चाहिये तब समझमें आये। सूक्ष्म (कहते हैं, लेकिन) दुनियाकी बाते याद रखता है! ममताका ढेर! उसके पास कितना ढेर हैं! आहाहा...! अंदरसे नीकल गया है। वह यहाँ कहते हैं कि तेरी शक्तिमें तू है कि नहीं? तेरे स्वभावमें कोई शक्ति है कि नहीं? या फिर तू पर शक्तिके आश्रयसे है? ऐसा यहाँ कहते हैं। समझमें आया?

'भावार्थ इसप्रकार है...' कहना तो यह है कि **'एकान्तवादी'** एक पक्षसे देखनेवाला... **'मिथ्यादृष्टि जीव ऐसा है कि वस्तुको पर्यायमात्र मानता है...'** अर्थात् आत्माको पर शक्तिसे ही मैं हूँ ऐसा मानता है। समझमें आया? **'द्रव्यरूप नहीं मानता...'** मैं स्वशक्तिवान स्वभाव सामर्थ्यवाला हूँ ऐसा अज्ञानी मानता नही। **'इसलिए जितनी समस्त ज्ञेय वस्तुओंके जितने हैं शक्तिरूप स्वभाव।'** क्या कहते हैं? जितनी समस्त जाननेयोग्य जो वस्तु है उसकी उतनी शक्ति...दो बोल (आये)—जितनी जाननेयोग्य वस्तु और जितनी उसकी शक्ति। आत्मामें शरीर, देह, आदि सब परपदार्थ–जितने परपदार्थ है और उसमें जितना शक्तिका सामर्थ्य है...शरीरमें जैसे हलन-चलन आदि शक्ति, परमाणुमें नीला-पीला आदिकी शक्ति, अनेक प्रकारके संहनन अर्थात् मजबूती–शक्ति। समझमें आया? ऐसी अनेक प्रकारकी वस्तुका–पर पदार्थके जितने भाव है **'उसको ज्ञान जानता है...'** ज्ञानकी अवस्था दूसरे पदार्थकी शक्तिरूप सामर्थ्यको जानती है।

'जानता हुआ उसकी आकृतिरूप परिणमता है।' ज्ञानकी अवस्था पर पदार्थके सामर्थ्यकी शक्तियोंको जानता हुआ स्वयं ज्ञान पर्यायरूपसे परिणमता है। **'इसलिए ज्ञेयकी शक्तिकी आकृतिरूप है ज्ञानकी पर्याय...'** वह जाननेकी पर्याय **'ज्ञेयकी शक्तिकी आकृतिरूप है ज्ञानकी पर्याय, उनसे ज्ञानवस्तुकी सत्ताको जानता है....'** उतनी ही ज्ञानकी सत्ता मानता है। क्या कहा ? थोड़ा सूक्ष्म है। आत्माकी ज्ञानपर्याय–ज्ञानदशा दूसरे अनंत पदार्थ और उनके सामर्थ्य-शक्तिरूप जाननेरूपसे परिणमता है, उतना ही आत्मा है और उतना ही (मैं) आत्मा हूँ ऐसा अज्ञानी मानता है। समझमें आया ? शरीरके संहननकी मजबूती ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञात होती है कि इस शरीरका संहनन मजबूत है। ऐसी ज्ञानपर्याय उसे जाने, ज्ञानकी पर्याय उसकी शक्तिको जानती है उतना परिणमन है; शक्तिकी वजहसे अपना परिणमन है (और) उतना ही आत्मा है, उतना ही शक्तिवान आत्मा है ऐसा अज्ञानी मानता है। समझमें आया ?

शुभाशुभभाव या देह आदिकी शक्ति या गुणोंके गुणकी शक्ति है न ! परमाणुमें अचानकसे रंग बदलता है–हरे रंगसे सफेद हो जाये, कभी अंदरमें ठंडा हो जाय, कभी गरम हो जाय ऐसी शक्तियाँ पुद्‌गलमें है न ! उन शक्तियोंको जानती ज्ञानपर्याय...आहाहा...! उन शक्तियोंके आकारसे ज्ञानपर्याय परिणमित होवे ऐसा पर्यायका धर्म है, लेकिन उतना पर्याय जितना ही आत्मा है ऐसा जो मानता है वह, आत्मा उनसे भिन्न अनंत गुणोंकी शक्ति चैतन्य आनंदकंद है, ज्ञानका सागर है, ऐसी शक्तियोंको मानता नहीं। समझमें आया ?

देखो, बहुत ऐसे होते हैं (कि) पर पदार्थकी शक्तिको (देखे तो) ओहोहो...! ओहोहो...! (हो जाता है)। विमान जैसे एक मिनिटमें यहाँसे वहाँ चला जाता है, एक घंटेमें पांचसो माईल दूर चला जाता है, वह सब पुद्‌गलकी शक्तियाँ और किसी जीवकी बहारकी पर्यायमें रागादि विकार आदिकी शक्ति–ऐसी शक्तियोंको जानती ज्ञानकी पर्याय वर्तमानमें उस शक्तिके आकारसे परिणमित होवे ऐसा पर्याय-धर्म है; लेकिन उतना पर शक्तिके आधारसे परिणमित हुआ उतना ही आत्माको माननेवाला, अपनी महान चैतन्य आनंद शक्ति है उस दृष्टिको भूल जाता है। समझमें आया ? देखो, आजकल लोगोंको परकी शक्तिका माहात्म्य बहुत आता है।

सायन्सका गुरु ! वह तो धूलकी शक्ति है, उसमें जैसा होना था वैसा होता है। इसने ऐसा किया, ऐसा किया ! देखो, कितनी शक्तियोंका विकास किया ! ज्ञानकी पर्यायमें वर्तमानमें पर द्रव्यकी शक्तिको जाननेरूप ज्ञान परिणमित होता है, लेकिन उतना ही आत्मा है ? उतना ही आत्मा है ? उस शक्तिके परिणमनके अलावा भी स्वयं त्रिकाल अनंत ज्ञानकी

मूर्ति चिदानंद है। उसरूपसे परिणमित होकर अपना ज्ञान स्वरूप जानना चाहिये। उसके बदले इतना परिणमा वही मैं आत्मा हूँ, वही आत्मा है और परकी शक्तिसे स्वयंको मानता है, अपनी शक्तिसे स्वयंको मानता नहीं है। समझमें आया ? भाई ! क्या कहा ? देखो, यह हड्डीकी शक्ति, दवाकी शक्ति, फलाणी शक्ति सबको मानते हो कि नहीं ? पुद्गलकी शक्ति आदि... हाँ, इन्जेक्शनकी शक्ति... ऐसी शक्ति कि ऐसे तुरंत (ऐसा हो जाय) ऐसी परमें परकी शक्ति है। उस शक्तिका वर्तमान ज्ञानकी पर्यायमें ज्ञेयाकाररूप परिणमन होता है, उतना ही आत्मा है ऐसा माननेवाला मूढ, अपनी अनंत ज्ञान शक्तिके भंडारमें अनंत ज्ञान और आनंदकी शक्ति पड़ी है, उस शक्तिकी श्रद्धा नहीं करता। समझमें आया ? भाई ! 'मुंबई'में तो बहुत (बड़े बड़े मकान बनते हैं न) ! बाईस बाईस मंझील ! आहाहा...!

अज्ञानीको ऐसा लगता है कि आहाहा...! इन्सानकी कितनी शक्ति ! (लेकिन उसमें) इन्सानकी क्या शक्ति ? शक्ति तो सब (उस परमाणुकी है) जो उनके स्वयंकी वजहसे वहाँ इकठ्ठा हो गये। आहाहा...! क्या शक्ति ! बड़े बड़े मशीनसे बड़े बड़े मकान उठाते हैं, तीस-चालीस मंजिला लकड़ीके मकान ! मशीनसे एक जगहसे दूसरी जगह ले जाते हैं। उसकी शक्तिका ज्ञानमें परिणमन होनेसे ऐसा मानते हैं कि आहाहा...! इतना ही मैं हूँ ! परवस्तुमें पूरा अर्पण हो जाता है ! भाई !

श्रोता :— उसमें शक्ति नहीं है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— उसकी शक्ति उसमें रही लेकिन उसकी शक्तिका यहाँ ज्ञान हुआ उतना ही आत्मा है ? इतनी शक्तिवाला ही आत्मा है ? उसमें तो अनंत-अनंतगुणी शक्तिका गुण और उसकी शक्तिको जाननेरूप (परिणमित हुई) पर्याय, इतनी पर्यायको भी वह जानता नहीं। समझमें आया ? एक समयमें भगवान अनंत ज्ञानकी मूर्ति, अनंत ज्ञानका स्वरूप ऐसी अनंत शक्तियोंका सत्त्व, उस शक्तिके आश्रयसे जो ज्ञान होता है, उस शक्तिके अनलंबनसे हुई ज्ञानकी पर्याय तो आत्माकी है। वह तो अभेद होकर स्वयंको माना कि मैं ऐसा पूर्ण आत्मा हूँ। समझमें आया ? लेकिन उस पर्यायमें परकी शक्तिका ज्ञान होनेसे उसे शक्तिके ज्ञेयाकाररूप परिणमनका माहात्म्य आ गया कि आहाहा...! समझमें आया ? उस परशक्तिकी वजहसे मैं हूँ ऐसा उसने जाना।

दूसरा अर्थ यह किया कि उस शक्तिरूप ज्ञानका परिणमन यहाँ हुआ उतना (आत्मा) माना। उसका अर्थ यह हुआ कि उसने पर्यायको माना, द्रव्यको नहीं माना। एक समयमें जाननेकी शक्तिको जानी, मानी (और) वह भी सिर्फ परशक्तिको जाननेवाली पर्यायको (जाना, माना), स्वशक्तिको जाननेवाली पर्याय रह गई। समझमें आया ? आहाहा...!

एक समयमें भगवान अनंत ज्ञान, अनंत दर्शन, आनंदका कंद महा अनंत गुणका महा स्वरूप है। अनंत शक्ति, एक ज्ञानगुणमें ! एक आत्माके एक ज्ञानगुणमें अनंती शक्तियाँ और अनंती पर्यायें ! क्या कहा ? ज्ञानगुण एक, उसमें अनंत शक्तियाँ और एक एक गुणकी अनंत पर्यायें ! इतने गुणके आश्रयसे जो पर्याय होनी चाहिये वह तो आत्माकी पर्याय ही है और वह पर्याय द्रव्यके साथ अभेद हुई इसलिए उसने पर्याय और द्रव्य दोनोंको माना ! यह तो एक समयकी पर्याय कि जो निमित्तके अवलंबनसे प्रगट हुई–ऐसा उसे लगा। देखो, यह शास्त्र पढ़ा, यह पढ़ा, यह पढ़ा, इसका लक्ष बहुत रखा और उससे यह ज्ञानकी पर्याय प्रगटी ऐसा माना और उपरसे उसके आकारसे ज्ञानकी पर्यायका परिणमन हुआ उतना मैं हूँ ऐसा माना, वह मूढ मिथ्यादृष्टि एकांतवादी है, उसे स्वशक्तिका माहात्म्य मालूम नहीं है। समझमें आया कि नहीं ?

एकदम रंग पीला हो जाय, एकदम हरा हो जाय...आहाहा...! कैसी शक्ति है ! उसे देखकर 'ओहो...!' हो जाता है। वह तो ज्ञानकी एक समयकी पर्याय, एक समयकी वीर्यकी पर्याय अपने आश्रयसे प्रगट हुई है, उसमें उन परशक्तिका ज्ञान स्वतः हो जाता है। उसके बदले परशक्तिके ज्ञानकी ओर झुका हुआ (अज्ञानी) उसने उस पर्यायको उधर ही झुका दी। उस ज्ञेयके आकारसे ज्ञान हुआ इसलिए उससे हुआ और उस आकारसे हुआ उतना ही मैं हूँ (ऐसा अज्ञानी मानता है)। समझमें आया ? आहाहा...! सूक्ष्म है, भाई !

दो अस्ति तत्त्व ! अंतरमें पूर्ण शक्तिका भंडार है। अनंत...अनंत शक्ति एक एक गुणमें ऐसी अनंती शक्तियाँ ! आत्मद्रव्यमें अनंत गुण अर्थात् शक्ति है। उस एक शक्तिका अनंत सामर्थ्य ! उस अनंत सामर्थ्यकी अनंत पर्यायें ! उसमें एक ही पर्याय जब परावलंबी आकृतिकी शक्तिरूपसे जानी, उतना ही स्वयंको माना वह पर्यायमूढ़ है। परभावके परिणमनके ज्ञानमात्र भावरूपवाला हूँ ऐसा (अज्ञानी) मानता है; लेकिन मैं एक अनंत गुण–शक्तिवान महान (पदार्थ हूँ) उसका लक्ष (नहीं है), वहाँ दृष्टिमें द्रव्यकी शक्तियोंकी अनंत अमाप गुणकी प्रतीतिका अभाव है। सिर्फ उतनी ही पर्यायकी प्रतीतिका वहाँ भाव वर्त रहा है, उसे एकांतपक्षी मूढ़ मिथ्यादृष्टि कहते हैं। समझमें आया ? आहाहा...! भाई !

'समस्त ज्ञेय वस्तुओंके जितने है शक्तिरूप स्वभाव उनको जानता है ज्ञान। जानता हुआ उनकी आकृतिरूप परिणमता है, इसलिए ज्ञेयकी शक्तिकी आकृतिरूप हैं ज्ञानकी पर्याय...ज्ञेयकी शक्तिरूपसे परिणमित हुई है ज्ञानकी पर्याय, बस ! **'उनसे ज्ञानवस्तुकी सत्ता मानता है...'** उनसे ज्ञानकी अस्ति मानता है। समझमें आया ?

ज्ञान तो त्रिकाल अनंत केवलज्ञानका कंद है। समझमें आया ? जैसे जैसे निमित्तोंमें

लक्ष जाता है, वैसी वैसी ज्ञानकी पर्याय प्रगट होती है। इसलिए वो पर्याय निमित्तके लक्षसे आई है, (निमित्तमेंसे) आई है ऐसा माननेवाला मूढ़ है। उसे ज्ञानकी शक्तिके अनंतपनेकी प्रतीति नहीं हैं। समझमें आया? आहाहा...!

मेरी ज्ञान-पर्याय जितनी परके लक्षवाली होती है–बहुतोंका लक्ष करे तो ज्ञान-पर्याय ज्यादा प्रगट हो। (ऐसा नहीं है)। ये बच्चे मुसाफरी करते है न ! बहुत देशोंमें घुमते हैं तो बुद्धि (ज्ञान)का विकास होता है, चारों ओर जाये तो बुद्धिका विकास ज्यादा हो ! देश देशके रंग, देश देशके इन्सान, देश देशके कपड़े, देश देशकी बोली जाने तो विचिक्षण हो। कहते हैं कि मूढ़ है। आहाहा...! कुछ (विकास) नहीं होता। वह तो ज्ञानकी उस समय उस शक्तिरूप परिणमन करनेकी ताकत है, उनकी (परकी) वजहसे परिणमित नहीं हुई। यह तो पर है इसलिए ज्ञान-पर्याय हुई (ऐसा माननेवाला) मूढ़ है। उसकी बात तो यहाँ ली ही नहीं है। क्या कहा? वह घुमा इसलिए ज्ञानकी पर्याय हुई वह बात तो यहाँ ली ही नहीं है। यहाँ तो उस आकृति अनुसार पर्यायमें ज्ञान हुआ, पर आकृतिकी शक्ति अनुसार ज्ञानपर्याय हुई उतना ही आत्मा, ऐसा माननेवाला वस्तुको मानता नहीं है। समझमें आया? आहाहा...!

देखो, ये बहुत सारे रंग होते हैं न ! क्या कहते हैं? बहनोंकी साड़ीमें बहुत डीझाईन होती है न ! आहाहा...! कितनी शक्ति ! डिझाईन (देखो तो) आहाहा...! ऐसा रंग किसने लिया होगा? ऐसा परशक्तिका महात्म्य आता है। समझमें आया? आहाहा...! एक एकमें फूलकी डीझाईन करते हैं, हरे पत्ते, उपर हरा और नीचे पीला....पत्ते, फूलझाड़...आहाहा...! ये तो गजबकी शक्ति है ! लेकिन क्या है? भाई ! हाँ, बांधणी। यह तो फूलकी बात कर रहा हूँ, बांधणी तो ऐसी कहे...वनस्पतिके फूल ऐसे होते हैं कि उपर पीला रंग और नीचे हरा रंग...एक ही पत्तेमें दो रंग...समझमें आया? उसकी शक्तिको देखकर 'आहा...!' कहता है, उसे विस्मय हो जाता है और उसके आकारसे परिणमित हुआ उतना ही आत्मा वहाँ समा जाता है। उसे द्रव्यशक्तिका लक्ष और दृष्टि रहती नहीं ऐसा कहते हैं। समझमें आया? भाई ! आपके भी सब होगा न ! मोटरके क्या कहते हैं? मोटरके पार्ट्स, बहुत हुशीयार ! समझमें आया?

श्रोता :—उसकी किंमत याद रखता है।

पूज्य गुरुदेवश्री :—हाँ, उसकी किंमत याद रखता है और ये याद रखता है कि ऐसे पार्ट्स यहाँ लगते हैं और यहाँ लगते हैं।

श्रोता :—काममें आया न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—क्या काममें आये ? वह तो वहाँ जो पर्याय होनेवाली थी वह हुई है, वहाँ उसकी (परकी) वजहसे हुई है ऐसा नहीं है। उसकी शक्तिकी वजहसे यह सब शक्तियाँ(पर्याय) होती है, एक द्रव्यकी शक्ति दूसरे द्रव्यकी शक्ति देता है ऐसा माननेवाला, द्रव्यकी पूर्ण शक्ति स्वतंत्र है उसे मानता नहीं है ऐसा कहते हैं। समझमें आया ?

'उनसे ज्ञानवस्तुकी सत्ता मानता है; उनसे भिन्न है अपनी शक्तिकी सत्तामात्र उसे नहीं मानता...' देखो, पाँचवीं लाईन है। भगवान आत्मा ! यहाँ तो ज्ञानप्रधान शैलीसे बात करी है। उसे परमें जो कोई शक्तिका ज्ञान होता है तो उस शक्तिका ज्ञान होनेसे उसे उसमें मजा आती है। आहाहा...! चेन लगता है, मजा आती है ! क्या कहते हैं ? समझमें आया ? उसमें आनंद आता है ! बहुत आनंद ! उस शक्तिको देखनेसे उस शक्तिकी वजहसे मेरेमें आनंद आया, परकी शक्तिको देखकर मुझे आनंद आया ऐसा माननेवाला, मेरे आत्मामें आनंद भरा है ऐसा मानता नहीं है। अपना आनंद अंतरमें पड़ा है। यह सब परका आनंद आया, यह बराबर है या नहीं ? देखो, भाई मना कर रहे हैं। सुबह कह रहे थे न कि शरीरसे सुखी तो सुखी ! कहते हैं कि शरीरकी शक्तिकी वजहसे मुझे सुख हुआ ऐसा माननेवाला मूढ़ है। उसे आत्मामें अतीन्द्रिय आनंदकी शक्तिकी खबर नहीं है। ऐसा मानते हैं। मूढमें सब बड़े मूढ़ है। मूढमें भी छोटे-बड़े अपनी पर्याय अनुसार होते हैं न ! कोई ज्यादा मूढ़ हो तो कोई थोड़ा मूढ हो ! समझमें आया ?

परकी शक्तिका सत्त्व देखकर, उस शक्तिसे मेरे ज्ञानमें शक्ति आई ऐसा माननेवाला परको ही अपना मानता है और उसके आकारसे हुआ ज्ञान उतनी ही ज्ञानपर्याय—ऐसा माननेवाला भी एक अंशको ही पूरा तत्त्व मानता है। पूरा शक्तिका पिंड भगवान है उसे श्रद्धामें, ज्ञानमें लेता नहीं है, वह मिथ्यादृष्टि हो जाता है, उसमें मिथ्याबुद्धि हो जाता है। उसका नाम महान पाप-पाखंड है। समझमें आया ? दूसरेकी मददसे मेरेमें शक्ति आई ऐसा माननेवाला भी अपनी आत्मशक्तिको मानता नहीं। भाई !

लड्डु खानेसे शरीरमें शक्ति आती है न ! और उस शक्तिसे आत्माका बल कितना बढ़ता है कि नहीं। अच्छेसे खाना खाये, केसरवाला दूध ले, बदामवाला दूध ले.... समझमें आया ? मूसलीपाक, सालमपाक ! उसकी वजहसे आत्मामें कुछ ताकात आती होगी या नहीं ? खाता कौन है ? वह तो कहते हैं कि ज्ञानकी पर्यायमें उन शक्तियोंका रूप जाननेमें आता है, फिर भी अज्ञानी ऐसा मानता है कि इस शक्तिकी वजहसे मेरेमें शक्ति आई ! उसकी वजहसे मेरेमें बोलनेकी शक्ति आई, नहीं तो मेरेमें शक्ति नहीं थी।

परकी शक्तिके कारण मेरेमें शक्ति आती है ऐसा माननेवालेको अपनी शक्तिकी दृष्टि नहीं है। समझमें आया ? एक समयकी पर्यायकी शक्ति भी अपनेसे है। ऐसा न मानकरके परसे मेरेमें शक्ति आयी (ऐसा माननेवाला अज्ञानी है)। बोलनेकी जरा भी शक्ति न हो... ऐसा होता होगा कि नहीं कि ब्राह्मीसे ज्ञानमें तीव्रता होती होगी या नहीं ? क्या कहते हैं ? ब्राह्मी कहते हैं न ! वह तेल सिरमें लगानेसे दिमाग बढ़ता है। क्या ब्राह्मी तेलकी वजहसे बुद्धि बढ़ती होगी ? समझमें आया ?

श्रोता :—होती है न !

पूज्य गुरुदेवश्री :—बिलकुल नहीं होती। वह तो उसकी पर्यायका उस प्रकारका क्षयोपशम होना हो तो वह आनेसे होता है। ब्राह्मी तेलसे बुद्धिका विकास होता है, ऐसा माननेवनाला मूढ़ है ऐसा कहते हैं। उसको तो यहाँ लिया ही नहीं है। यहाँ तो ज्ञानकी पर्यायमें उस शक्तिका ज्ञान हुआ–पर पदार्थकी शक्तिका ज्ञान हुआ और स्व-शक्तिका ज्ञान पर्यायमें रह गया। शक्ति तो पूरी रह गई लेकिन उसका ज्ञान भी रह गया; और उस शक्तिके आदरसे परिणमित ज्ञान जितना ही आत्मा माने, वह भी मिथ्यादृष्टि असत्यबुद्धि–पापबुद्धि है। समझमें आया ? उसके तत्त्वका जितना सत्त्व है उतना न मानकर उसे परके कारण माना वह अपने भावकी शक्तिको नहीं जानता। समझमें आया ? आहाहा...! '**ऐसा है एकान्तवादी...**'

'**उसके प्रति स्याद्वादी समाधान करता है कि ज्ञानमात्र जीववस्तु समस्त ज्ञेयशक्तिको जानती है...**' ज्ञानमात्र भगवान आत्मा सब शक्तियोंके गुणोंको, उस पदार्थोंके गुणोंको, दूसरे पदार्थके गुणोंको ज्ञान-पर्याय जानती तो है...पर्यायमें गुणका ज्ञान नहीं आता कि इसका यह गुण है, इसका यह गुण है, इसका यह गुण है, इसका यह गुण है, इसका कड़वा है, इसका हरा हैं, इसका पीला है, यह खट्टा है, यह मीठा है। समझमें आया ? ऐसे ज्ञानकी पर्याय '**जीववस्तु समस्त ज्ञेयशक्तिको जानती है ऐसा सहज है, लेकिन अपनी ज्ञानशक्तिसे अस्तिरूप है।**' अपने ज्ञानगुणकी सत्तासे अस्तित्व है, परके कारण अस्तित्व नहीं है। समझमें आया ? ध्रुव स्वरूपमेंसे ज्ञानका परिणमन आता है और वह शक्तिका प्रवाह है ऐसा न मानकर ज्ञानका प्रवाह परशक्तिको जानने जितना है, उतना प्रवाह ही मानता है वह पर्यायको मानता है, वस्तुको मानता नहीं। समझमें आया ?

'**पशुः नश्यति एव**' यहाँ तक तो उसका उपोद्घात किया। ऐसा कहना है ऐसा इसमें कहा। '**पशुः**' '**एकान्तवादी**' '**नश्यति**' '**वस्तुकी सत्ताको साधनेसे भ्रष्ट है....**'

भगवान आत्मा अनंत आनंद केवलज्ञानकी शक्तिका रस है। एक समयकी आकृतिमें अपना (अस्तित्व) माननेवालेकी दृष्टि शक्ति तरफ रहती नहीं। इसलिए श्रद्धामें शक्तिका नाश मानता है। समझमें आया ? मेरेमें अनंत ज्ञान, दर्शन, आनंदका स्वभाव है ऐसी शक्तिके उपर प्रतीति होनी चाहिये कि जो प्रतीति अज्ञानीको रहती नहीं, परकी प्रतीति रहती है। समझमें आया ?

उसमें आता है न, इन्द्रियको बहुत पुष्ट करुं तो ज्ञान होगा। नहीं आता ? क्या आता है ? 'मोक्षमार्ग प्रकाशक'में आता है न ! कि मेरा ज्ञान केसे विकसित होवे ? इन्द्रियोंकी खूब पुष्टि करुं, यह करुं तो मेरा ज्ञान विकसित होवे, मुझे विशेष जानने मिलेगा। उसकी वजहसे ज्ञान विकसित हो, ऐसा राग रहित होकर आत्माकी शक्तिकी प्रतीत करने पर जो ज्ञानका अंश खीलता है उस श्रुतज्ञानकी पर्यायमें भी सर्व लोकालोक जाननेकी ताकात है। समझमें आया ?

उस शक्तिवान भगवान आत्माको जाननेसे, उसकी शक्तिको स्पर्श करके जो ज्ञानका अंश आया (उस अंशमें), जितना केवली जानते हैं उतना-लोकालोकको जाननेकी शक्ति की ताकात है। परोक्ष (जानता है) लेकिन परको पृथक्‌रूपसे जाने ऐसी ताकत है। ऐसी ताकतको अज्ञानी मानता नहीं है। समझमें आया ? जितने निमित्तोंका संबंध हुआ, ज्यादा हुआ तो ज्ञानकी शक्ति ज्यादा विकसित हुई (ऐसा अज्ञानी मानता है), लेकिन एक ही द्रव्यकी महाशक्तिको एकबार स्पर्श करे तो वह महाशक्ति खीले ऐसी श्रद्धा और ज्ञानकी प्रतीत उसे नहीं है। समझमें आया ? एकान्तवादी पशु समान है, ऐसा कहते हैं।

'वस्तुकी सत्ता साधनेसे भ्रष्ट है...' भगवान आत्मा जिसकी शक्तिके सत्त्वकी प्रतीत करनेपर पर्यायमें सत्‌का बड़ा प्रवाह बहे ऐसी शक्तिकी सत्ताको नाश कर देता है। (अज्ञानी) परकी पर्यायबुद्धिमें ही अटका हुआ है। समझमें आया ? भाषा गंभीर ! **'निश्चयसे....'** ऐसा अज्ञानी मानता है, ऐसा हो जाता है ऐसा कहते हैं। **'कैसा है एकान्तवादी ? बहिः वस्तुषु नित्यं विश्रान्तः 'समस्त ज्ञेय वस्तुकी अनेक शक्तिकी आकृतिरूप परिणमि है ज्ञानपर्याय...'** देखा, पाठ तो **'बहिः वस्तुषु'** है। भाई ! वह बहिर् वस्तु हो गई। ज्ञानकी पर्याय परद्रव्यके गुणोंको जाननेरूप परिणमी उस दशाको बहिर् वस्तु कहनेमें आता है। आहाहा...! समझमें आया ? भाषा ही ऐसी करी है। देखो, **'बहिः वस्तुषु'** अर्थात् आत्माके अलावा समस्त ज्ञेयवस्तुकी अनेक शक्ति अर्थात् गुण, उसकी आकृतिरूप परिणमी, जैसा ज्ञेय है उसरूप जाननेकी पर्याय परिणमि ऐसी पर्याय... **'उसमें' 'नित्यं विश्रान्तः' 'सदायविश्रान्त है अर्थात् पर्यायमात्रको जानती है ज्ञानवस्तु}ऐसा निश्चय जिसका ऐसी है।'**

भाषा तो ऐसी है कि परवस्तुको अपनी सत्ता मानता है वह बात तो यहाँ की ही नहीं है। लेकिन परवस्तुके गुणोंकी जैसी शक्ति और स्वभाव है उस प्रकारसे परिणत ज्ञान-पर्याय वह 'बहिः' है। वह 'बहिः' ज्ञानकी पर्याय भी 'बहिः' है। समझमें आया ? उसे ही संपूर्ण तत्त्व मानता है वह जीव मिथ्यादृष्टि है। ओहो...! भाई ! यह सब मुंबईमें कहाँ ? आत्मा है, लेकिन वहाँ मुंबईमें फँस गये हैं। समझमें आया ? आहाहा...! कैसी भाषा है ! '**बहिः वस्तुषु**' कोई कहता है कि भाई ! बहिर् वस्तुकी शक्तिमें अपनी शक्ति मानी है; वह तो ठीक लेकिन यहाँ तो बहिर् वस्तुकी शक्तिके गुण-गुणकी शक्तिरूप जो ज्ञान परिणमित करता है, सिर्फ बहिराकार शक्तिरूप परिणमित ज्ञानको ही बाह्यवस्तु कहते हैं। समझमें आया ?

अंतरमें चिदानंद भगवान ज्ञान और आनंदका कंद है उसके आकारसे, उसके लक्षसे-ध्येयरूप जो ज्ञान परिणमित हुआ है उसे स्ववस्तु कहते हैं। आहाहा...! समझमें आया ? अभी तो यहाँ बाहरके निमित्तरूप साधन जितने ज्यादा हो उतनी मेरी शक्ति प्रगट हो (ऐसा अज्ञानी मानता है)। वज्रवृषभनाराच संहनन हो तो केवलज्ञान प्रगट हो ! अब ऐसा आया ! समझमें आया ? वज्रवृषभनाराच संहनन हो, वह शक्ति मजबूत हो (तो केवलज्ञान प्रगट हो ऐसा मानता है)। पक्षीको भी उड़ना हो तो मूंगके ढेर पर बैठा हुआ उड़ सकेगा क्या ? नीचे अगर मजबूत जमीन हो तो उड़ पायेगा। वह उड़नेकी शक्ति मजबूत (जमीन)की वजहसे आयी है ऐसा अज्ञानी मानता है। ऐसे ही आत्माकी ज्ञानकी पर्याय प्रगट होती है वह संहननकी मजबूतीके कारण प्रगट होती है। बाहुबलीजी बारह-बारह महिने तक ध्यानमें खडे रहे। शरीरकी मजबूती हो तो ऐसी ध्यानकी पर्याय प्रगट हो सके ! वह अपनी पर्यायकी ताकात नहीं है। शरीरकी वजहसे क्या है ? वह तो सब व्यवहारकी भाषा बोलनेमें आती है। समझमें आया ? शरीर मजबूत हो तो केवलज्ञान हो वह तो झूठ है, वह तो मिथ्यादृष्टि है; लेकिन शरीरकी मजबूतीके आकाररूप ज्ञान परिणमा उतना ही आत्माको माने तो वह मूढ़ और मिथ्यादृष्टि है। भाई ! आहाहा...!

कहते हैं कि उसके कारण तो शक्ति नहीं है लेकिन उस शक्तिरूपसे उसमें जो गुण है, परमाणुमें, शक्करमें, गुड़में यह सब शक्तियाँ हैं न अलग प्रकारकी ! समझमें आता है कि नहीं ? आटेमें, दवाईसे, कोई कोई दवाईकी कैसी कैसी शक्ति होती है ! इस शक्तिसे ऐसा हो गया, इस इन्जेक्शनसे तुरंत खून धुमने लगा.... ऐसी शक्तियाँ उसमें स्वयंसे है। ग्लुकोझके कारण यहाँ शक्ति आयी है ऐसा तो नहीं है लेकिन उस शक्तिका ज्ञान जिस पर्यायमें हुआ कि यह शक्ति.... उस आकारसे जो ज्ञान परिणमित हुआ उतनी (पर्यायके)

उपर जिसका लक्ष गया–ध्येय गया है वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है ऐसा कहते हैं। तेरी पर्यायकी मूढ़ता तेरे कारण है। परके कारण नहीं।

कहते हैं न.... अभी आया था न....शराब पीनेसे ऐसा होता है। ऐसा लिखते हैं कि शराब पीनेसे ऐसा होता है। अरे भगवन् ! ऐसी बात तो कहीं (दूर) रह गई, बापू ! परद्रव्य ज्ञानकी पर्यायको छूता ही नहीं है। समझमें आया ? उस समय अपने ज्ञानकी पर्यायकी मूढ़ होनेकी योग्यतासे ही हुआ है, शराबके कारण नहीं, मादक द्रव्यके कारण नहीं। देखो, कोई बहुत पीड़ित–दुःखी हो तो उसे केफ़ देते हैं तो ऐसे पड़ा रहता है। उसकी पर्यायमें मूढ़ होनेकी ही लायकात है, परद्रव्यके कारण नहीं। आहाहा...! गंभीर बात है, भाई ! समझमें आया ? (परमाणुकी) शक्ति तो देखो ! पहले आकाशमें जाते हैं और फिर गुब्बारा लेकर नीचे उतरते है। कोई ऐसी बाते कर रहा था। वह शक्ति तो परमाणुकी पर्याय है। उस शक्तिके कारण मेरेमें शक्ति आयी। मेरे ज्ञानमें विचिक्षणता आयी (–ऐसा माननेवाला) मूढ़ है। समझमें आया ?

श्रोता :—सब डिग्री मिलती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :—वही तो बता रहे है न ! यह क्या कह रहे हैं ? सोनोग्राफी की थी न ! लेकिन वह तो उसकी शक्ति थी, उसकी वजहसे ज्ञान हुआ ऐसा नहीं है और तेरी ज्ञान-पर्यायने उस शक्तिका ज्ञान किया उतना तू नहीं है। संपूर्ण तीनकाल, तीनलोकको जाने ऐसी एक समयकी ताकात है और संपूर्ण द्रव्यकी तो उससे अनंती ताकत है। एक समयकी पर्याय तीनकाल, तीनलोकको परका लक्ष किये बिना जाने ऐसी उसकी ताकत है। ऐसे आत्मद्रव्यको, उसकी शक्तिको और उस शक्ति तरफ झुकी हुई पर्यायकी इतनी ताकत है उसे अज्ञानी मानता नहीं है। समझमें आया ?

बादाम-पिस्ताको नोकर्म कहा है न ! ब्रह्मचर्य हो तो बादाम-पिस्ता खाता है...नोकर्म कहा है। अरे ! मतिज्ञानमें नोकर्म कहा है–कुछ नहीं लिखा। वही कहते हैं कि जब यहाँ (कार्य) हुआ तब कौन निमित्त था उसका ज्ञान कराया है। समझमें आया ? विद्यार्थी पढ़ते हैं तब बनाते हैं न–केसरका दूध, बादाम आदि डालकर पीलाते हैं, जिससे दिमाग ठंडा रहता है और विद्या आती है। दिमाग कोई बेचता है जो खरीद शके ? वह तो बात नहीं करी यहाँ, वह तो महामूढ़ जीव है। परद्रव्यकी पर्यायकी शक्तिसे मेरी पर्याय प्रगट हुई, वह तो महामूढ़ है। वह तो दो (द्रव्यों)के साथ एकत्व किया है। वह तो दो द्रव्योंके साथ एकत्वबुद्धि है, उसकी यहाँ बात नहीं की। यहाँ तो कहा है कि उसके जीवोंके

(आकार)रूप जो ज्ञान-पर्यायका परिणमन हुआ कि इसमें ऐसा गुण है, ऐसा गुण है– उसरूप परिणमन हुआ उतनी पर्यायको भी आत्मा माने वह जीव मूढ़ और अज्ञानी है ऐसा कहनेमें आया है।

अब यह वकिलातका याद आ गया। कहते हैं कि हुशियार हो तो यह वकिलात पढ़ सके। वह ज्ञानकला वकिलातकी किताबोंसे प्रगट हुई होगी या नहीं ? पढ़े बिना हो ? आहाहा...! कहते हैं कि वह सब शक्ति यहाँसे आयी उसकी तो बात ही नहीं, लेकिन उस ज्ञेयकी शक्तिके आधारसे यहाँ ज्ञान हुआ कि पुस्तकमें यह नियम है, इसका यह नियम है, इसका यह है ऐसा यहाँ ज्ञान हुआ, तो वह ज्ञातापनेका परिणमन परज्ञेयाकारकी शक्तिरूपसे ज्ञानका परिणमन हुआ है, स्वज्ञानकी शक्तिरूपसे परिणमन नहीं हुआ। उसे आत्मा मानना–उसे जीव माननेवालेको मिथ्यादृष्टि अज्ञानी कहते हैं। आहाहा...! गंभीर बात, भाई !

श्रोता :—भिन्न करनेके लिए इतनी सूक्ष्मतासे विचारना पडे ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—इतना ज्यादा कहाँ आया ? एक शक्तिका पिंड पूरा द्रव्य है और उसके अवलंबनसे हुई पर्यायकी शक्ति उसके स्वयंके कारण है। बस, इतनीसी बात है। भिन्न-भिन्न दृष्टांत देनेसे उसे समझमें आता है कि कहना क्या चाहते हैं ! समझमें आया ? भिन्न-भिन्न समय पर भिन्न-भिन्न पदार्थकी शक्तिका ज्ञान हुआ, शक्ति इसके कारण है–उस शक्तिके कारण प्रगट हुई (ऐसा माने) वह तो दो द्रव्योंकी एकता–वह तो दो पदार्थकी एकताबुद्धि हुई। वह तो मूढ़ जीव है। आहाहा...! समझमें आया ? बादामका दूध पीकरके मेरा ज्ञान खील गया ! यह तो मूढ़ है। उसकी बात तो यहाँ करते ही नहीं है ऐसा कहते हैं।

श्रोता :—आपका उपदेश सुनकर ज्ञान विकसित हो जाय न ?

पूज्य गुरुदेवश्री :—वह सुनकर (ज्ञानका) विकास हो जाये वह बात भी गलत है। उस शब्दके आकारसे ज्ञान परिणमित हुआ है वह स्वयंकी योग्यतासे। उस शब्दके आकारसे परिणमन हुआ है वह ज्ञान-पर्याय स्वयंसे हुई है, उसके कारणसे हुई है वह बात अज्ञान है। ज्ञानशक्तिका तत्त्व संपूर्ण है। उसमें उसकी प्रतीत और उसकी दृष्टिमेंसे ज्ञान आना चाहिये। उसे ज्ञान और आत्मा कहनेमें आता है। आहाहा...! समझमें आया ? बहुत सूक्ष्म, भाई !

ऐसी बातें करनी और फिर भी ऐसी प्रतिमा और मंदिर बनाते हैं, कोई मेल नहीं

है ऐसा कोई कहता था। भाई ! वो तो उसके अपने समयमें शुभराग होता है, लक्ष होता है वह ज्ञानपर्याय जाने, लेकिन उतना पर्याय ही आत्मा है, ऐसा नहीं है। उसका लक्ष सिर्फ उसके उपर नहीं है। चैतन्यमूर्ति ज्ञाताके लक्षसे परिणमित हुआ ज्ञान उसके शुभरागको जाने और पर जो वस्तु है उसको जाननेरूप परिणमित होवे ऐसा पर्यायका धर्म है। भाई ! सूक्ष्म बात ! और वह ज्ञानकी पर्याय स्वलक्षसे स्वयंसे परिणमित हुई उसमें शुभरागका ज्ञान हुआ और जो निमित्तका ज्ञान हुआ वह उस समयकी पर्यायका धर्म है ऐसा जाने नहीं तो उसे पर्यायकी ताकतकी भी खबर नहीं। निमित्तको ही हटाना चाहे कि यह नहीं...यह नहीं...यह नहीं... लेकिन उस समय वही निमित्त और वही रागका ज्ञान वहाँ परिणमित होना चाहिये। परके आकारसे ज्ञान होता है लेकिन स्व आकारके लक्षमें परका ज्ञान हो ऐसी पर्याय सहितके त्रिकाली आत्माको आत्मा कहते हैं। आहाहा...! समझमें आया ? व्यवहारका ज्ञान हुआ कहा जाता है और स्वके आश्रयसे हुआ वह निश्चय और व्यवहार दोनों इकठ्ठे हुये। आहाहा...! बहुत सूक्ष्म बात, भाई !

'बहिः वस्तु' 'समस्त ज्ञेय वस्तुकी अनेक शक्ति' परमें भी अनंत गुण है न ! उसकी आकृति अर्थात् उसके भावरूपसे जैसा उसका स्वभाव है ऐसा ही ज्ञान यहाँ अपने कारणसे ही ज्ञान-पर्याय परिणमित हो **'उसमें सदा विश्रांत है...'** उसमें स्थिर हो गया। आहाहा...! बस...बस... ऐसी ज्ञान-पर्यायमें जिसका विश्राम अर्थात् **दृष्टि** हुई है, वहीं जिसका आरामस्थान है, वहीं जो समाप्त होता है, वही जिसकी मूर्ति मानी है वह मिथ्यादृ**ष्टि** है। **'ज्ञानवस्तु—ऐसा है निश्चय जिसका ऐसा है।'** वह पूर्ण आत्मा है ऐसा माननेवाला मूढ़ और अज्ञानी है। आहाहा...!

अपना अनंत शक्ति-स्वभाव, एक एक गुणका स्वभाव उसे वह मानता नहीं। इतनी शक्तियोंसे हुई पर्याय या तो उसके आकारसे परिणमित हुआ ज्ञान, ऐसी वस्तुको माने वह ज्ञानपदार्थको–त्रिकाल पदार्थ मानता नहीं है। समझमें आया ? फरक कितना पड़ता है ? बहि:लक्ष और स्वलक्ष–इतना ही फर्क पड़ता है। अरे...! लोगोंने तकरार कहाँ की है ! अभी तो बाह्यमें ऐसा होता है और धर्ममें ऐसा होता है...शुभाशुभभावसे तो धर्म नहीं लेकिन शुभभावका, यह शुभ है ऐसा ज्ञान परिणमित हुआ उतना ही वह धर्म नहीं है। जिसमें शक्ति सत्त्व पड़ा है, खदान–महा अनंत गुणकी, शक्तिकी खदान भगवान, उसमें दृ**ष्टि** करनेपर जो पर्याय परिणमित हो उस पर्यायको धर्म कहनेमें आता है। आहाहा...! समझमें आया ? अब वाद-विवादसे इसका पार आये ऐसा नहीं है। कितना लिखा है और कितनी बाते ! **'किस कारणसे ऐसा है ?'** अब कहते हैं कि किस कारणसे अज्ञानी ऐसा मान रहा है ? उसका

कारण बताते है : '**परभावभावकलनात्**' 'ज्ञेयकी शक्तिकी आकृतिरूप है ज्ञानकी पर्याय' '**परभावभावकलनात्**'की व्याख्या भी यही। व्याख्या भी देखो ! भाई ! टीकाकारने गजबकी टीका की है। कहते हैं कि '**परभावभावकलनात्**' यह ज्ञेय शक्तिके गुण उसके जो भाव उसकी आकृतिरूप। समझमें आया ? ज्ञानकी पर्याय। उसका नाम '**परभावभावकलनात्**' '**धारण किया है...**' उसने यह निश्चय धारण किया है।

'**ज्ञानवस्तुका अस्तिपना}ऐसे झुठे अभिप्रायके कारण**' आहाहा...! कुछ समझमें आया ? '**परभावभावकलनात्**' उसकी परिभाषा यह कि इस जगतमें जितने अनंत पदार्थके गुण-भाव है ऐसे '**परभावभावकलनात्**' उसकी वर्तमान ज्ञान-पर्यायमें उसके आकारसे ज्ञानका परिणमन हुआ वह पर्याय परभाव, वह '**भावकलनात्**' '**परभाव**' बस इतना। अब उसमें '**भावकलनात्**' '**अवधारण किया है ज्ञानवस्तु**' मेरा आत्मा इतना है ऐसा जिसने माना है वह मूढ़ मिथ्यादृष्टि है। समझमें आया ? फिरसे, '**परभाव**' इतना बस। '**परभाव**'की परिभाषा क्या है ?—कि जो अनंत पदार्थ है उसके गुण-शक्ति है उसका जो ज्ञानका परिणमन हुआ उसका नाम '**परभाव**' भाई ! ओहोहो...! '**परभाव**' किसे कहना ?–कि जो अनंत...अनंत गुणरूप ज्ञेय है उसकी शक्तिको जाननेरूप ज्ञानकी पर्याय परिणमित हुई उस ज्ञानकी पर्यायको परभाव कहनेमें आता है। आहाहा...! आहाहा...! उसने जो मूल रखा है उसकी बात है। समझमें आया ?

स्वभाव तो अनंत गुणोंका पिंड प्रभु है। ऐसा जो स्वभाव उसकी तो उसने नास्ति करी। एक समयकी दशामें जो अनंत ज्ञेयोंके गुणरूपसे जाननेरूप परिणमित हुआ। उसके गुणके कारण परिणमित हुआ ऐसा तो नहीं। समझमें आया ? परभावकी शक्तिका कारण– उस गुणोंके कारण यह पर्याय हुई ऐसा तो नहीं, लेकिन उस परभावकी शक्तिका ज्ञेयपना...यहाँ ज्ञानकी पर्यायमें उतना आकृतिरूप ज्ञानका परिणमन हुआ उसे '**परभाव**' कहनेमें आता है। वहाँ कभी सुना नहीं होगा। पुस्तक आया है कि नहीं वहाँ ? ऐसे सूक्ष्म अर्थ है इसमें। आहाहा...! भाई !

'**परभाव**'की यह परिभाषा है। भगवान आत्मा अनंत...अनंत...स्वभावका पिंड वह स्वभाव और एक समयमें एक ही पर्यायमें अनंत शक्तिपनेके कारण परिणमन नही हुआ; लेकिन ज्ञानका पर्याय परज्ञेयको जाननेरूप परिणमित हुआ, उतना जो परकारनपने परिणमा ऐसी ज्ञान-पर्यायको परभाव कहनेमें आता है। ऐसे परभावमें मेरा स्वभाव है ऐसा माननेवाला मिथ्यादृष्टि है। आहाहा...! यहाँ तो अभी यह मेरे...यह मेरे...यह मेरे... पत्नी मेरी, बेटा मेरा, धूल मेरी, भाई ! आहाहा...! कहते हैं कि प्रभु ! तेरा भाव तो अनंत है न !

अनंत...अनंत...भावका पिंड प्रभु ऐसा स्वभाव है उसे न मानकर एक समयकी पर्यायमें ऐसी अनंत शक्तियोंको जाननेरूप (ज्ञानपर्याय) परिणमित हुई वह तो परभाव है, परभाव है, वह स्वभाव नहीं है। भाई ! यह शास्त्रका आधार देकर वह लोग कहते हैं कि 'राजमलजी' झूठे हैं, उनको समझ नहीं है। अरे भाई ! सुनना !

बापू ! यह वस्तु ऐसी है कि ऐसे एक समयका भगवन् ! आहाहा...! अनंता अनंता एक एक गुणका स्वभाव-शक्ति ऐसा संपूर्ण तत्त्व है। ऐसे स्वभावको स्वभावरूप-अस्तिरूप न मानकर एक समयकी पर्यायमें परके गुणरूप आकृतिकी शक्तिको लिया, परकी अनंत शक्तियोंको समझमें लिया। ज्ञान परिणमित हुआ वह स्वयं, इतने ही ज्ञानको परभाव कहनेमें आता है। आहाहा...! समझमें आया ? यह पुण्य-पापके भाव तो परभाव है। आहाहा...! अरे भगवन् ! भाई ! उसने कभी सुना ही नहीं होगा। भाई ! समझमें आया ? भाई ! क्या कहा ?

यह शरीर और पत्नी आपके नहीं है ऐसा कहते हैं। उनके ज्ञानकी शक्तियाँ आपको खयालमें आये तो वह उनके ज्ञानके कारण आपकी पर्याय हुई ऐसा नहीं है। भाई ! घरका काम अच्छेसे संभाल लिया और मुझे ऐसा है और वैसा है। वह शक्ति उसमें थी उसका ही ज्ञान हुआ, उतना ज्ञान वह आत्माका है (ऐसा जाननेवालेने) परभावको आत्मा माना है ऐसा कहते हैं। यह तो दृष्टांत दिया है, अनुकूल होता है न ! यहाँ तो कहते हैं कि 'पत्नी' आयी तो पैसे हुये ऐसे लोग बातें करते हैं। (पत्नीका) नाम 'कंचन' और लाखों रूपये आये। पहले साधारण स्थिति हो गई थी, वापस पैसे हो गये, ऐसे लोग बाते करते हैं। समझमें आया ? अरे...अरे...! गजब बात, भाई ! भगवन् ! तेरी महिमा अपरंपार है !

अरे...! तेरे एक समयकी शक्तिके सामर्थ्यकी क्या बात करनी ! एक समयका एक गुणका सामर्थ्य, ऐसे अनंत गुणके सामर्थ्यकी क्या बात करनी ! ऐसा भगवान ध्रुव चिदानंद महाशक्तिका सागर ! ऐसी शक्तिको स्वभावरूप न मानकर एक समयकी पर्यायमें परशक्तिके आकाररूप परिणमित ज्ञानको अपना मानना, वह परभावको अपना आत्मा मानता है। आहाहा...! भाई ! सत्य बात है। टीकाकार भी गज़ब है ! आचार्यको जो कहना है वही हृदय खोलकर बात की है। यहाँ तो अभी शुभराग मेरा...! वह तो कहीं दूर मिथ्यात्वमें गया। क्योंकि वह तो तत्त्व ही दूसरा है। यहाँ तो अपनी ज्ञान-पर्यायमें परशक्तिके गुणरूप ज्ञान अपनेसे परिणमित हुआ वह भी परभाव है। समझमें आया ? पूरा तत्त्व ही महान है और वह भी उसका एक समयका पर्याय स्वके अनंत गुणके आकाररूप परिणमित होना चाहिये वह भी नहीं आया। समझमें आया ? भगवान अनंत शक्तिका पिंड प्रभु, जिसके

लक्षसे, आश्रयसे, श्रद्धासे, प्रतीतसे जो पर्याय परिणमित हो वह तो आयी ही नहीं। पर्याय नहीं आई। वस्तु तो नहीं आई, (लेकिन) पर्याय भी नहीं आयी। भाई ! आहाहा...!

कहते हैं, वह परभाव अर्थात् ज्ञानकी पर्याय परके आकारसे हुई वही ! **'परभावकलनात्'** अर्थात् अपना भाव उसमें है ऐसा माना है। **'भावकलनात्'** ज्ञानकी पर्यायमें अनंत गुणोंका, परद्रव्यकी शक्तिका ज्ञान अपनेरूप परिणमित हुआ वह ज्ञान पर्याय परभाव है। **'भावकलनात्'** उसमें मेरा आत्मा है, वह स्वभाव मैं हूँ, वह मेरा स्वरूप है, ऐसा भावका अभ्यास जिसे हुआ है उसको एकांतवादी मिथ्यादृष्टि कहते हैं। कहो, समझमें आया कि नहीं इसमें ? भाई ! वहाँ कभी सुना नहीं होगा। भगवान जाने क्या होगा ? बहारमें तकरारमें पड़े हैं अभी तो। आहाहा...! अकालमृत्यु और काल-फंस गये हैं। आहाहा...! समझमें आया ?

कहते हैं कि भगवानकी पूर्ण केवल ज्ञानकी पर्याय और केवल वीर्यकी पर्याय लो न, भाई ! सुनो ! भगवानका अनंत वीर्य और अनंत ज्ञान वह परज्ञेय है। उससे मुझे ज्ञान हुआ ऐसा तो नहीं, लेकिन ज्ञानकी पर्याय वह परके ज्ञेयकी शक्तिरूप अपनी पर्यायमें परिणमित हुआ कि ऐसा उसका ज्ञान है, उस पर्यायको परभाव कहनेमें आता है। आहाहा...! समझमें आया ? रेकोर्डिंग होनेके लिए यह सब (अंतरसे) नीकल रहा है। **'अवधारण किया है...'** **'भावकलनात्'** अर्थात् उतना जिसने आत्माका निर्णय किया है। ऐसे झूठे अभिप्रायके कारण एकान्तवादी वहाँ विश्राम कर रहा है, उसे मिथ्यादृष्टि कहते हैं। अब आगे सही क्या है वह कहेंगे।

(श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव !)

❀ **भाई तुझे सुख चाहिये न! तो सुख कहाँ है? निमित्तमें, रागमें या एक समयकी विकास पर्याय है उसमें सुख है? उसमें दृष्टि देनेसे तो दुःख उत्पन्न होता है; और मोक्षपर्यायमें आनन्द तो है लेकिन उसमें आनन्द भरा नहीं है, आनन्दकी खान नहीं है। त्रैकालिक आत्मा अतीन्द्रिय आनन्दकी खान है, इसलिये वह सर्व तत्त्वमें सार है। २७६.** **–द्रव्यदृष्टि जिनेश्वर - पर्यायदृष्टि विनश्वर**

३७ श्री प्रवचनसार, गाथा—३८-३६, प्रवचन नं. ३७, दि. १२-२-१६७६

('प्रवचनसार', ३८वीं गाथा चल रही है)। जो छः द्रव्योंकी पर्यायें उत्पन्न हुई नहीं **'और जो उत्पन्न होकर नष्ट हो गई हैं'** (अर्थात्) भूतकालकी (पर्यायें) उत्पन्न होकर **नष्ट** हो गई है। **'वे (पर्यायें) वास्तवमें अविद्यमान होने पर भी...** वास्तवमें वर्तमानकी अपेक्षासे तो अविद्यमान है। आहाहा...! तीनकाल(की) भूत-भविष्यकी पर्यायें-अवस्थाएँ वर्तमान अविद्यमान होने पर भी, है न ? **'ज्ञानके प्रति नियत होनेसे'** आहाहा...! ज्ञानकी पर्यायमें तो नियत हैं, निश्चित हैं। (वर्तमानकी) अपेक्षासे भूत और भविष्यकी पर्यायें असद्भूत हैं किन्तु ज्ञानकी अपेक्षासे प्रत्यक्ष-सद्भूत है। आहाहा...! सूक्ष्म बातें बहुत।

यह केवलज्ञानकी पर्यायका ऐसा स्वभाव (है) कि, भविष्यकी पर्याय हुई नहीं, भूतकी-गतकालकी होकर **नष्ट** हो गई, उस अपेक्षासे असद्भूत हैं। तथापि ज्ञानके प्रति निश्चित हुई है। ज्ञान उन्हें प्रत्यक्ष-सद्भूतरूप जानता है। आहाहा...! ज्ञानमें तीनकालकी पर्यायें अंदरमें नियत-निश्चयसे ज्ञात है। ज्ञानका प्रत्यक्ष स्वभाव है। आहाहा...! यह आपके 'क्रमबद्ध'के बारेमें आ गया।

द्रव्यकी जो पर्याय है वह उस समय वास्तवमें उत्पन्न होनेवाली है। और भूतकालकी बीत गई वह भी, जिस समय थी उसी समय थी (और) इस समय बीत गई। भविष्यमें भी जिस समय होनेवाली है उस समय होगी। वह (वर्तमानमें) उत्पन्न नहीं। वे सभी क्रमबद्धपर्याय हैं। एकके बाद एक, जो होनेका समय है उसी तरह होगा। वैसे भगवानके ज्ञानमें प्रत्यक्ष ज्ञात है, वैसा कहते हैं।

अब, कोई ऐसा कहे कि पर्यायको हम बदल सकते हैं, पुरुषार्थके द्वारा टेढ़ी-मेढ़ी कर सकते हैं, तो उसको केवलज्ञानका (विश्वास) नहीं रहता, आहाहा...! केवलज्ञानको ही उसने जाना नहीं। समझमें आया ? (जिस समय जो पर्याय) होनेवाली है वह वहाँ होती है, बस ! भले ही निमित्त न हो। निमित्तने की नहीं और निमित्तके द्वारा हुई है, वैसा कहनेमें आये वह तो निमित्तका ज्ञान करानेके लिये है। ऐसी बातें हैं, किन्तु लोगोंको अभ्यास कहाँ (है) आहाहा...!

वह यहाँ कहते हैं–भूत और भविष्यकी छः द्रव्यों(की पर्यायें)–परमाणुकी

अनंतकाल पश्चात् होनेवाली पर्याय वे अभी तो अविद्यमान हैं, परंतु ज्ञानके लिए तो नियत-निश्चित है। आहाहा...! (अर्थात्) ज्ञान तो उन्हें प्रत्यक्ष जानता है। आगे कभी जानेगा, वैसा नहीं। सूक्ष्म बात, भाई ! यहाँपर तो ज्ञानस्वभावके पर्यायधर्मको सिद्ध करते हैं। आहाहा...! उसमें एक समयका ज्ञानपर्याय–पूर्ण केवलज्ञान (भूत और भविष्यकी पर्यायें) अविद्यमान होनेपर भी यहाँ तो असद्भूतका ज्ञान हो जाता है। असद्भूतका ज्ञान हो जाता है यह नियत-निश्चय होता है। (पर्याय) होगी तब (ज्ञान) होगा, वैसे नहीं। आहाहा...! है ?

'ज्ञानमें निश्चित-स्थिर लगी हुई होनेसे, ज्ञानमें सीधी ज्ञात होनेसे)' देखा ? होगा तब (ज्ञात होगा) वैसे नहीं, अभी सीधी ज्ञात है, आहाहा...! भूत और भविष्य, गतकालकी और भविष्यकालकी पर्यायें वर्तमानमें नहीं हैं, इस अपेक्षासे उन्हें असद्भूत कहा परंतु ज्ञानकी पर्यायमें सर्वज्ञ परमात्माको प्रत्यक्ष वर्तमान सीधी ज्ञात हैं। आहाहा...! समझमें आया ? आहाहा...! ऐसा वस्तुका स्वरूप (है)। ऐसा सम्यग्दृ**ष्टि** मानता है।

अज्ञानी तो (ऐसा मानता हैं कि) उसको मैं ऐसा कर दूँ, परका ऐसे कर दूँ और परसे मुझमें कुछ हो, मैं ऐसे करूँ तो वैसे हो, ऐसा न करूँ तो वैसा न हो, यह प्रश्न ही वस्तुमें नहीं है। (यहाँपर कहते हैं), इस ज्ञानमें सीधी ज्ञात हैं। **'ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तती हुई'** है ? 'ज्ञानप्रत्यक्ष वर्तती हुई' अक्ष अर्थात् आत्मामें भूत और भविष्यकी पर्यायें प्रत्यक्ष वर्तती हुई। आत्मामें या आत्माके ज्ञानमें यह भूत और भविष्यकी पर्याय वर्तमान प्रत्यक्ष वर्तती (हुई वैसे कहते हैं)। आहाहा...! कल यहाँतक आया था।

(अब आगे कहते हैं) **'पाषाण स्तंभमें उत्कीर्ण'** जैसे पाषाणस्तंभ हो (उसमें) गतकालके **'भरत और बाहुबली'** हो गये हैं, उन्हें स्तंभमें चित्रित किया हो। **'बाहुबलीजी और भरत'** ऐसे पाषाणमें चित्रित किये हो–वे भूत(कालके)। भावी(के) 'श्रेणिकराजा भविष्यमें तीर्थंकर होनेवाले हैं, उन्हें चित्रित किया हो। गतकालके 'भरत-बाहुबलीजी और भविष्यके श्रेणिकराजा' आदि। वे चित्रित हो तो एक समयमें वैसे प्रत्यक्ष दिखाई देते हैं। समझमें आता है कुछ ? सूक्ष्म स्वभाव भाई! ऐसी बात है। अभी तो यह सब गड़बड़ हो गई है।

'भाई'ने क्रमबद्ध(पर्याय पुस्तक) नीकाला है न ! बहुत अच्छा नीकाला है–लेख लिखा है। पंडितोंको चेलेन्ज किया है कि इसमें क्या है यह आप सोचो, पता तो लगे। आहाहा...! बड़ा लेख लिखा है।

भगवानने जाना है उसके अनुसार यहाँ (पर्याय) होती है और इससे जाना इसलिए

(वहाँ पर्याय) होती है, वैसे भी नहीं। वहाँ तो होनेके कालमें अपने कारण होती है, निमित्तके कारण नहीं। आहाहा...! भगवानके ज्ञानमें ज्ञात है इसलिए वहाँ होता है, वैसे भी नहीं। यह निमित्त है इसलिए उससे होता है, वैसे भी नहीं। आहाहा...! ऐसा सूक्ष्म है।

ज्ञायकस्वभावको सिद्ध करता है। भगवान आत्माका ज्ञायकस्वभाव है, भाई ! आहाहा...! इस ज्ञायकस्वभावकी ज्ञायक और सर्वज्ञपर्याय प्रगट होनेपर यह तो सब एक समयमें जानता है। (कोई ऐसा) कहे कि, भविष्यका निश्चित कहाँ है, किसकी (पर्याय) कैसे होगी ? (तो कहते हैं कि) निश्चित है। ' श्रेणिकराजा भविष्यमें तीर्थंकर होंगे, यह निश्चित है। ब्रह्मदत्त (चक्रवर्ती) भविष्यमें सातवीं नरकमें ३३ सागर रहेगा, यह निश्चित है। आहाहा...! भूतकालमें **'भरत और बाहुबली'** हो गये, वे बराबर हुये। परंतु वह तो हो गई (वह) उस कालमें होनेवाली थी उसी कालमें हुई। परंतु (जो हुई) नहीं (वह) उसी कालमें होगी यह कैसे ? तब तो नियत हो जायेगा। नियत ही है। जिस द्रव्यकी जिस समयकी जो पर्याय होनेवाली (उसमें) इन्द्र, नरेन्द्र और गणधर आदि भी हेर-फेर कर सकते नहीं। आहाहा...!

वह यहाँ कहते हैं **'पाषाण स्तंभमें उत्कीर्ण भूत'** भूत अर्थात् गतकालके **'भरत और बाहुबली'** और **'भावी देवों'** अर्थात् श्रेणिकराजा आदि **'(तीर्थंकरदेवोंकी) भाँति अपने स्वरूपको अकंपतया'** पाषाणमें उत्कीर्ण भूत और भावी वर्तमान प्रत्यक्ष दिखाई दे वैसे, **'अपने स्वरूपको अकंपतया'** जगतमें जितने अनंत ज्ञेय हैं (और) उनकी भूत और भविष्यकी पर्यायें हैं वे सभी 'अपने स्वरूपको अकंपतया (ज्ञानको) अर्पित करती हुई' (अर्थात्) वे ज्ञेय जो हैं वे अकंपतया ज्ञानमें वर्तते हैं।

भाई ! आज तो एक विचार आया था, परिणम्यपरिणामकत्वशक्ति है न ? आत्मामें एक 'परिणम्यपरिणामकत्व' नामक गुण है। आहाहा...! जगतके जो पदार्थोंकी द्रव्य-गुण आदिकी पर्यायें हैं वे ज्ञेयाकारको ग्रहती है और अपने ज्ञानाकारको परके ज्ञानमें प्रमेय अनुसार ग्रहती है। क्या कहा यह ? गुण है न ? पंद्रहवाँ है। ३७ शक्ति हैं न (उसमें) पंद्रहवाँ है। जीवत्व, चिति, दृशि, ज्ञान, सुख, वीर्य, प्रभुत्व, सर्वदर्शीत्व, सर्वज्ञत्व, स्वच्छत्व, प्रकाश, असंकुचितविकासत्व, अकार्यकारणत्व, परिणम्यपरिणामकत्व। पंद्रहवीं शक्ति है। आत्मामें एक परिणम्यपरिणामकत्व नामक गुण है। यानी कि ज्ञेयोंमें समय समयमें जो कुछ परिणाम-आकार होते हैं उन्हें ज्ञान जानता है, आहाहा...! और अपने जो ज्ञानाकार हैं वे सामनेवाले केवलज्ञानादि पर्यायमें वे ज्ञानाकार ग्रहण होते हैं। परका प्रमेय करे और परके ज्ञानमें वह (स्वयं) प्रमेयत्व होता है। यह तो सूक्ष्म बातें बहुत, बापू ! आहाहा...! समझमें आया ?

पंद्रहवाँ गुण है न ! 'परिणम्यपरिणामकत्व' यह परिणम्यपरिणामकत्व अर्थात् ज्ञेयाकारको ग्रहण करता है और ज्ञानाकारको ग्रहण कराता है। दूसरेके ज्ञानमें ज्ञानाकार (ग्रहण कराते हैं) उसके हिसाबसे तो (दूसरे जीवके हिसाबसे तो) यहाँ ज्ञेयत्व है न ! परंतु यहाँ ज्ञानाकार जैसी अपनी अवस्था है वैसा उसमें प्रमेयरूप होता है–ज्ञात होता है। और परका प्रमेयपना अपनेमें प्रमाण होता है, आहाहा...! क्या कहा यह ?

तीनकाल, तीनलोककी जितनी पर्यायें हैं वे सभी ज्ञेय अनुसार केवलज्ञानकी पर्यायमें अर्पित हो जाती है, आहाहा...! है ? '**अकंपतया (ज्ञानको) अर्पित करती हुई** (वे **पर्यायें**) **विद्यमान** ही हैं।' देखा ? आहाहा...! बहुत अलौकिक बातें हैं, बापू ! जैसा तैसा मानना वह कोई बात नहीं। आहाहा...! ज्ञानकी पर्याय जितने ज्ञेय-पर्याय हैं वे सभी एक समयमें यहाँपर ज्ञानमें अकंपतया (स्वयंको) अर्पित करती हैं। जैसे कि तीनोंकाल(का) सबकुछ एकदम स्थिर हो वैसा अकंपतया अर्पित होता है। गतकालकी पर्याय, भविष्यकी (पर्याय) और वर्तमान(की) सर्व (पर्याय) वैसे जैसे स्थिर हों, इसप्रकार अर्पित होती हैं। आहाहा...! ऐसा है। अपनी भी जो पूर्णज्ञानकी पर्याय है (और) अनंतगुणोंकी पर्यायें हैं वे भी परके ज्ञानमें ज्ञेयरूप अकंपतया वर्तती है। आहाहा...!

ऐसा जहाँ स्वरूप है और क्रमबद्ध (यदि) न माने जब तो वह वस्तुकी स्थिति ही मानता नहीं। और वस्तुकी स्थितिको मानता नहीं तो केवलज्ञानको भी मानता नहीं। सूक्ष्म बात है। भाई ! आहाहा...! वीतराग सर्वज्ञ परमात्मा...आहाहा...! साक्षात् दिव्यध्वनि महाविदेहमें वर्तती है। यहाँ वही वाणी है। वहाँ 'कुंदकुंदाचार्य' गये थे, आठ दिन रहे थे (और वहाँसे) यह लाये हैं। भव्यजनोंके–लायक जीवोंके लिये लाये हैं। आहाहा...!

भाई ! तू ज्ञान है न ! तू आत्मा है न ! आत्मा अर्थात् ज्ञान, यह ज्ञान जगतकी चीजोंकी पर्यायको–गतकालकी और भविष्यकी सर्व (पर्यायोंको) अविद्यमान है वैसे जानता है न ! आहाहा...! असद्भूत है और अविद्यमान है–(वैसा कहा तो) दोनों गलत नहीं होगा ? अब कोई वैसा कहता है। भूत और भविष्य अविद्यमान है, वैसा कहा। तथापि ज्ञानमें (तो) विद्यमान ही है। बापू ! तुझे खबर नहीं, भाई ! ज्ञानस्वरूपमें तो वह प्रत्यक्ष विद्यमान ही है। आहा...! वैसा ज्ञानका स्वभाव है। आहाहा...! प्रभु ! तेरा स्वभाव ही सर्वज्ञस्वभावी है। यह सर्वज्ञस्वरूपी सर्वज्ञ पर्याय प्रगट होती है उसमें तीनकालकी पर्यायें अकंपतया अर्थात् ऐसे कंपित हो (वैसे नहीं परंतु) स्थिर बिंब जैसे पड़ा है। आहाहा...!

आहाहा...! ऐसी बात है भाई ! जैनदर्शनको समझना, मानना यह कोई अलौकिक बात है। और जिसे यह ज्ञानमें यथार्थरूप बैठा उसे भवका अंत आ गया। आहाहा...! उसे

केवलज्ञान निश्चितरूपसे होगा। उसके क्रममें उसे केवलज्ञान आयेगा। आहाहा...! और उस क्रममें (जो) केवलज्ञान आयेगा वह भी दूसरेके ज्ञानमें अकंपतया-ज्ञेयरूप वहाँ अर्पित हो चुका है। इस जगतमें तीनकाल है तो तीनकालको जाननेवाले तीनकालमें किसी समय न हो वैसा हो नहीं सकता। क्या कहा यह ? तीनकालकी जो वस्तु ज्ञेय हैं तब उसे जाननेवाला (यानी कि) तीनकालको जाननेवाला तीनकालमें किसी समय न हो, वैसा (बनता) नहीं। भूतकालमें भी केवली हो गये, वर्तमानमें हैं और भविष्यमें (भी होंगे)। केवलीयोंका विरह कभी होता नहीं। आहाहा...! तीनकाल और तीनलोक ऐसा दो ज्ञेयस्वरूप है तो उन तीनकालको एक समयमें जानेवालोंका इस जगतमें कभी भी विरह नहीं हो सकता। आहाहा...! समझमें आया ? आहाहा...!

भगवान 'महावीर'का जीव सिंह (के भवमें) था, (तब) सिंह इस तरह हिरनको (मारकर खाता था)। (दो) मुनि उपरसे उतरे (और कहा) 'अरे सिंह ! तू तो आत्मा (है)। तीर्थंकर द्रव्य (हो), दसवें भवमें 'महावीर' होगा। यह निश्चित हो गया था। आहाहा...! सर्वज्ञ परमेश्वरने मुनियोंको कहा है। भाषा कैसी होगी मुनियोंकी ? आहाहा...! आकाशमें गमन करते थे, (वहाँ) ऊपरसे उतरे (और) सिंहके समीप आये। सिंहको ऐसा लगा कि, मेरे पास कोई जानवर या मनुष्य आये, नजदीकमें आये वैसे भाग जाते हैं और ये दूर से ऊपरसे मेरे समीप नीचे आये ! (ऐसा देखता है वहाँ) एकदम वृत्तिमें फर्क पड़ गया, यह क्या ? ओहोहो...! यह क्या है ? किन्तु यह मेरे समीप कोई अनजान आ जाय तो भाग जाय और यह तो ऊपरसे (नीचे आये) ऐसे तिरछे (जमीन ऊपरसे) समीप आये तो भी भागे (तो) ये तो ऊपरसे (जा रहे थे) जहाँ मेरी नजर न जाये, मेरी छलांग न पहुँचे (और ये नीचे आ गये) आहाहा...! वे मुनि आये और ऐसे हाथ किया... कैसी भाषा होगी मुनिओंकी ? वे तिर्यंचरूपमें किस प्रकार भाषाको समझे होंगे ? आहाहा...! कैसी सिंहकी योग्यता ! आहा ! संयोग कैसा मिलता है ? वह बराबर भाषासे भाषा समझा। अरे प्रभु ! तू तो दसवें भवमें 'तीर्थंकर महावीर' होगा। यह क्या ? आहाहा...! (यहाँ पर) है न हमारे चित्र ? आहाहा...! (यह) निश्चित हो चुका था। आहाहा...!

(सिंहकी) आँखमेंसे आँसू बह निकलते हैं। अरे यह क्या ? वैसे अंदर धारा चल रही है। वैसे अंदर विचारधारामें चढ़ते... आहाहा...! कर्मकी धारा हट जाती है और सम्यग्दर्शन पाता है। बापू ! यह क्या वस्तु है, भाई ! सम्यग्दर्शन !! ऐसे हिरन एक तरफ पड़ा है...अंदर खाया होगा कि क्या ? किन्तु अंदरमें (ऐसा होता है कि) क्या कहते हैं ये प्रभु ? तू तीर्थंकरका जीव है। दसवें भवमें 'महावीर होगा। प्रभु ! तू 'वीर-महावीर'

(होनेवाला है) आहाहा...! भाषा किस तरह समझे होंगे ? किस देशके मुनि ? किस देशकी भाषा ? कहाँ यह जंगलका सिंह ? आहाहा...! एक निमित्त-नैमित्तिक मेल मिल जाता है न ! आहाहा...! उसके समझनेकी लियाकत (थी वह) इस तरह समझता है। आहाहा...! पश्चात्ताप करते करते आँसूकी धारा बह निकलती है। और अंतर स्वभावके सन्मुख जाता है। आहाहा...! वहाँ आगे सम्यग्दर्शन होता है। महावीर भगवानका आत्मा दसवें भवमें सिंहकी पर्यायमें सम्यग्दर्शन पाता है। आहाहा...! उस क्रमकी पर्यायमें यह जाननेवाला था। भगवानके ज्ञानमें था। था कि नहीं ? तब तो मुनिने कहा : अरे सिंह ! भगवान तुझे इस तरह कहते हैं। प्रभुने मुझसे कहा है। आहाहा...! 'तू अब इस स्थितिमें है और तू तो भगवान तीर्थंकर होनेवाला हे। आहाहा...! वह (सिंह) अंदर ज्ञानस्वरूपी प्रभु है वहाँ मग्न हो जाता है। आहाहा...!

एक (और बात भी) आती है न ? ऋषभदेव भगवानको आहार दिया था तब नेवला आदि चार प्राणी थे, चार जानवर (थे)। और (आहारदानका) इसप्रकार प्रमोद किया और (फिर) मरकर जुगलिया हुये। भोगभूमिके जुगलिया। ऐसेमें मुनि आते हैं और इसप्रकार उपदेश देते हैं। नेवला आदि चार प्राणी हैं। हालमें (नेवला स्वरूप) नहीं है, हाल जुगलिया (स्वरूप है)। पूर्वमें नेवला (आदि) थे। (मुनिराज) कहते हैं। 'अरे आत्माओं ! तुम्हारी काललब्धि पक गई (है)।' (इस तरह) मुनि कहते हैं। गजब बात है। आहाहा...! छद्मस्थ मुनि उसे देखकर कहते हैं। (सामने है) जुगलिया भोगभूमिके मनुष्य। इसके पूर्व तिर्यंच थे। चार थे न ? चार थे–बंदर, नेवला (आदि थे)। कथा बहुत याद नहीं (किन्तु) भाव अंदर याद है। (मुनिराज कहते हैं) 'अरे....आत्माओं ! तुम्हारी काललब्धि पक गई है। तुम सम्यग्दर्शन (प्रगट) करो।' आहाहा...! वहाँ वे इसप्रकार अंदरमें उतर जाते हैं। और समकित प्राप्त करते हैं। भोगभूमि ! वहा बहन-भाई(रूप) जन्म लेते हैं (और) आगे पति-पत्नी होते हैं। आहाहा...! किन्तु उसकी काललब्धि पक गई। वैसा छद्मस्थ संतोंने कहा। आहाहा...! प्रभु ! उसकी (यह) पर्याय होनेवाली है यह आपने कैसे जान लिया ? 'प्रभु ! काललब्धि तुम्हारी पकी ! आप अब अंदर दृष्टि करो। आपको सम्यग्दर्शन होनेका काल आ गया !' आहाहा...! यह भी नियतक्रममें था। आहाहा...! यह वीतरागमार्ग तो देखो। आहाहा...!

ये तिर्यंच ! भगवानको दूसरोंने आहार दिया वहाँ वे सिर्फ एक तरफ बैठे थे। (उनको ऐसे भाव हुये कि) 'धन्य अवतार। ये लोग आहार दे रहे हैं।' ऐसे भावमें भोगभूमिके जीव हुये। जुगलिया हुये। पल्योपमका आयुष्य। पल्योपम अर्थात् असंख्य अरब वर्ष ! आहाहा...! कथामें भी भविष्यमें यह होगा ऐसी बातें रखी हैं। यह बदलनेवाला है ? आहाहा...! कुछ

कथाओंमें लिखा है कि, यह तीन भवमें मोक्ष जायेगा, कोई पंद्रह भवमें मोक्ष जायेगा। आहाहा...! यह जिस ज्ञानमें ज्ञात है और उस क्रममें तब उसी तरह होनेवाला है। आहाहा...! उसे कौन बदले ? आहाहा...! यह दुनियासे अलग जाति है, बापू ! आहाहा...!

(यहाँपर कहते हैं) **'भूत और भावी देवोंकी (तीर्थंकरदेवोंकी) भांति'** देव अर्थात् तीर्थंकर आदि। **'अपने स्वरूपको अकंपतया (ज्ञानको) अर्पित करती हुई (वे पर्यायें) विद्यमान** ही हैं।' आहाहा...! असद्‌भूतको भी वर्तमान भूतार्थकी तरह जानता है। विद्यमान ही है उसे तो, ज्ञानमें विद्यमान ही है इसप्रकार ! आहाहा...! यह ज्ञानका अचिंत्य चिंतामणि रत्नका स्वभाव और ज्ञेयोंका इस तरह होना वह उसे अर्पित करनेका स्वभाव ! आहाहा...! बापू ! उसकी श्रद्धा करना यह बहुत कठिन बात है। आहाहा...!

भूत और भविष्यके तीर्थंकर 'आदिश्वर भगवान–आदि हुये उनको इस तरह स्तंभमें चित्रित किया हो (और) भविष्यमें 'श्रेणिक (राजा) तीर्थंकर होनेवाले हैं आहाहा...! उन्हें इस तरह पाषाणमें चित्रित किया हो। हम एक बड़े शहरमें गये थे न ? वहाँ बनाया है। एक गृहस्थने स्तंभ बनाया है न ! नदी आदि सब बनाया है न ! वहाँ देखने गये थे। लाखों खर्चकर बनाया है। सारे देशमें घूमे हैं। कौनसा गाँव (वह याद नहीं आता)। सारा इसप्रकार चित्रित किया है सब–इस तरह नदियाँ व स्तंभोमें तीर्थंकर और बहुत बड़ा चित्र बनाया है। देखा है। कौनसा गाँव है याद है किसीको ? (जिसने बनाया है) वे स्वयं ही दिखाने ले गये थे। बड़ा मकान जबरदस्त। भूत-भविष्यके तीर्थंकरोंके चित्र सब बनाये हैं, सब नदियाँ बनाई हैं। गाँव कौनसा कहा है वह ? 'पोरबंदर'। भूत, भविष्यके तीर्थंकर और दूसरा सब इस तरह वर्तमानवत् दिखाई दे वैसा बड़ा (बनाया है)।

यहाँ तो कहते हैं कि, पाषणमें उत्कीर्ण भूत, भविष्यके तीर्थंकरोंकी भांति दूसरे सर्व ज्ञेय अपना स्वरूप (ज्ञानको) अर्पित करती हुई (वे पर्यायें) विद्यमान ही हैं। गजब बात है। एक ओर कहते हैं कि अविद्यमान हैं, वास्तवमें अविद्यमान हैं। उसकी अपेक्षासे वे अविद्यमान है, परंतु ज्ञानकी अपेक्षासे विद्यमान हैं, आहाहा...! यह तो कोई बात है ! गजब बात है ! बापू ! तेरा चैतन्य (स्वरूप) (और उसका) ज्ञानस्वभाव (उसकी) अचिंत्यता...! आहाहा...! उसे तू पहचान ! उसे जान ! और उसका अनुभव कर। ऐसा कहते हैं। आहाहा...! समझमें आया ? एक ही गाथामें (वैसा कहा) **'वास्तवमें अविद्यमान होने पर भी'** भाषा इसप्रकार है–वास्तवमें नहीं, आहाहा...! परंतु ज्ञान प्रत्यक्ष विद्यमान ही है। 'है', आहाहा...! ऐसा कोई ज्ञानका स्वभाव (है)। प्रभु ! तेरा स्वभाव ऐसा है। आहाहा...! कि जो अविद्यमान को भी ज्ञानमें प्रत्यक्ष करता है, इसप्रकार तेरे ज्ञानमें प्रत्यक्ष है। आहाहा...!

एक ज्ञानगुणका भी ऐसा स्वभाव ! आहाहा...! वैसे अनंत...अनंत... गुणोंका कोई अलौकिक स्वभाव (है), आहाहा...! ऐसा चैतन्यद्रव्य कोई चमत्कारी वस्तु है। अरे ! चैतन्य क्या जड़ भी ऐसी कोई चमत्कारी वस्तु है। जड़में जड़रूप अनुसार (पर्यायें) क्रम-क्रमसे आयी है, आहाहा...! परंतु यह जड़ उसे जानता नहीं। उसकी पर्याय क्रमिक हुई, होनेवाली होगी। उन परमाणुमात्रकी पर्याय क्रमिक होती है। प्रत्येक परमाणु भिन्न है उसकी पर्याय स्वतंत्र उसमें होती है, ऐसे (दूसरे परमाणुकी) वजहसे नहीं। अपनी पर्याय अंदर भिन्न स्वतंत्र है। वह समय-समयकी पर्याय परमाणुमें क्रमबद्ध अपनेसे होती है। यह स्कंध जुड़ा हुआ है इसलिए (होता है वैसे) नहीं। आहाहा...! '**ऐसे परमाणुकी भी भूत और भविष्यकी पर्याय वर्तमानकी अपेक्षासे, ज्ञेयकी अपेक्षासे अविद्यमान हैं। परंतु ज्ञानकी अपेक्षासे विद्यमान** हैं। यह क्या कहते हैं ? आहाहा...! (ज्ञानको) ज्ञेय अर्पित हो गया। ज्ञेयमें भी प्रमेयपना है न ! कहा न ! प्रमेयपना कहो या ज्ञेयपना (दोनों एकार्थी हैं)। दिखाई देने योग्य उसका स्वभाव है वह जाननेवालेमें अर्पित हो गया है, प्रमेय हो गया है। आहाहा...!

श्रोता :— ज्ञेयमें विद्यमान गुण तो है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— (परंतु पर्याय) विद्यमान नहीं। इसी बात पर ही विरोध है न ! वैसा कहते हैं कि, उसकी शक्तिमें विद्यमान है न ! (परंतु) वैसा नहीं। मालूम है सब, यह प्रश्न कोई नया नहीं। यहाँ तो (वैसा कहना है कि) वर्तमानमें नहीं है उसे यहाँपर प्रत्यक्ष विद्यमान कर दिखाता है। ऐसा ही कोई ज्ञानका स्वभाव (है) ! ऐसी चीज है, बापू ! आत्मा अर्थात् क्या ?

यह आत्मा एक समयकी पर्यायमें ऐसा अनंत...अनंत... जानते हुये भी वैसी-वैसी अनंत पर्यायें भले ही हो, तथापि दव्य तो परिपूर्ण शुद्ध है वह है। ये (पर्यायें) होती हैं सो कोई विस्मय नहीं। भाई ! क्या कहा यह ? जिसमेंसे केवलज्ञानकी पर्याय प्रगट हुई तथापि वह वस्तु तो पूर्ण है। ऐसी-ऐसी अनंत पर्यायें होंगी तब भी वस्तु तो प्रत्येक समय पूर्ण है। यह तो कोई बात है, बापू ! वस्तुका स्वभाव कोई अचिंत्य है, भाई ! आहाहा...! समझमें आया ?

प्रभु! आत्मा अनंतगुणका पिंड है। उसमेंसे पर्याय प्रगट हुई, केवल(ज्ञानकी पर्याय) प्रगट हुई। आहाहा...! तो भी वह पूर्ण है। और निगोदके भवमें अक्षरका अनंतवाँ भाग विकसित है, तो भी द्रव्य तो पूर्ण है। यह क्या कहते हैं ? किसी भी समय हो द्रव्य तो पूर्ण ही है। जरासी भी गुणमें हीनता नहीं आयी। यह (हीनता) पर्यायमें है, वस्तु पूर्ण है।

यह तो अद्‌भुत है, बापू ! वीतराग सर्वज्ञने देखे हुये तत्त्वों और उन्होंने कही वे अलौकिक बातें (हैं), बापू !

भगवान तू कौन है। आहाहा...! तेरे एक गुणकी पूर्ण पर्याय प्रगट हो या अपूर्ण प्रगट हो परंतु वस्तु तो पूर्णरूप पूर्ण ही है। यह तो क्या बात है ? यह किस प्रकार है ? समझमें आया ? आहाहा...! एक समयमें तीनकाल तीनलोककी पर्यायें अर्पित हो जाय इतना ज्ञान तेरा प्रगट हुआ है। वह पर्याय प्रगट हुई और वैसे तो द्रव्यमेंसे ही आई है, फिर भी द्रव्यमें परिपूर्णता है। इतनी बड़ी पर्याय आई इसलिए दव्यमें कुछ हीनता हो गई है (वैसा नहीं)। क्या है यह तो ? समझमें आया ?

जिस तरह वह पर्याय अविद्यमान है तथापि ज्ञानके प्रति विद्यमान है, आहाहा...! इसप्रकार एक समयमें तीनकाल तीनलोकको पर्याय जाने उतनी प्रगट हो गई तथापि वस्तु है यह तो पूर्ण (ही है) घट-बढ़ उसमें हुई नहीं। आहाहा...! प्रभु ! ऐसा तेरा स्वभाव ! आहाहा...! उसने सुना नहीं। आहाहा...! इसप्रकार गम्य-अगम्य जैसा लगे।

(यहाँ पर कहते हैं) वहाँ (पर्यायें) असद्‌भूत हैं, वास्तवमें शब्द तो वैसा है। है न ? पाठ है न संस्कृतमें ? मूल पाठमें है और संस्कृतमें भी (है)। **'किलासद्‌भूता'** संस्कृतका मूल पाठ है न ! मूल गाथामें और टीकामें है। मूल गाथामें हैं, देखिये। **'ते होंति असब्भूदा पज्जाया णाणपच्चक्खा'** आहाहा...! ये तो संतोंकी बातें। वे दिगम्बर मुनिगण तो केवलज्ञानके केड़ायत हैं। आहाहा...! अल्पकालमें केवलज्ञान होनेवाला है। आहाहा...!

श्रोता :— प्रगट अपेक्षासे विद्यमान है ?

पूज्य गुरुदेवश्री :— प्रगट नहीं है इसलिए अविद्यमान है। परंतु ज्ञानमें प्रगट, विद्यमान है। यह क्या ? आहाहा...! बापू ! प्रभु ! यह कोई ऐसे ही स्वभावकी बातें हैं, बापू ! आहाहा...!

एक परमाणुके भी इतने अनंतगुण हैं। जितने आकाशके अनंतगुण हैं, इतने ही आत्मामें हैं और इतने ही एक परमाणुमें हैं। इसे क्षेत्रकी आवश्यकता नहीं कि क्षेत्र बड़ा हो तो अनंत (गुण रह सके)। आहाहा...! ऐसी ही कोई स्वाभाविक वस्तु है। इस तरह भगवान आत्माको केवलज्ञानकी पर्यायमें (दूसरे पदार्थोंकी पर्यायें) असद्‌भूत होनेपर भी यहाँ विद्यमानके अनुसार प्रत्यक्ष है, आहाहा...! प्रत्यक्ष है इसलिए विद्यमान है, इस तरह (है)। प्रत्यक्ष किसे कहें ? समझें आया ? आहाहा...! पौना घंटा हुआ। गजब बात हैं, भाई !

उसकी गंभीरताकी कोई सीमा नहीं। यह तो 'प्रवचनसार', 'समयसार' परमागम हैं।

इसकी गंभीरता इसकी गहराईकी कोई सीमा नहीं। शब्दोंमें तो शब्दोंके भाव हैं परंतु वे शब्द जिसे बताते हैं... आहाहा...! यह चीज कोई अलौकिक है। आहाहा...!

श्रोता :— अनुभवकी बात तर्कसे पकड़में आती है।

पूज्य गुरुदेवश्री :— तर्कसे ख्यालमें आये इतना। परंतु सच्चा निर्णय अनुभके बिना होता नहीं। पहलेसे ख्यालमें वैसा आये, नयसे, प्रमाणसे, निक्षेपसे (वैसा) आता है न ? तथापि यह विकल्पसे निर्णय है। ('समयसार'की) ७३वीं गाथामें आता है न भाई ! पहले विकल्पसे निर्णय (किया) परंतु यह (विकल्प द्वारा हुआ) निर्णय सत्य निर्णय नहीं। अंतर ज्ञानस्वरूप प्रभु (है) इसके अंतरमें जाकर जो अनुभवका निर्णय होता है, वैसा निर्णय विकल्पसे नहीं होता। 'अनुभव रत्न चिंतामणि, अनुभव है रसकूप, अनुभव मारग मोक्षनो, अनुभव मोक्षस्वरूप' आहाहा...! मोक्षका मार्ग और मोक्षस्वरूप, कोई अचिंत्य बातें हैं, बापू ! आहाहा...! 'प्रवचनसार'में भी कहा है न ? 'मोक्षतत्त्व'। मोक्षमार्ग (प्रगट) हुआ है उसे 'मोक्षतत्त्व' कहा है। 'प्रवचनसार' अंतिम पाँच गाथा (में आता है)। आहाहा...! क्या कहते हैं, बापू ! निर्विकल्प स्वभाव ही कोई अलौकिक है ! इसका जहाँ पता लगा, उड़ गये (इसके) भव उड़ गये। भव होते नहीं। आहाहा...! यह ३८ गाथा पूरी हुई। इस दो पंक्तिमें इतना हुआ। ऐसा है।

भगवान तेरा स्वभाव कोई अलौकिक है। स्वभावकी बात कोई सामन्य तर्कसे नहीं बैठेगी। वैसे तो 'सर्वविशुद्धज्ञान (अधिकारमें)' आता है न ! 'स्पष्ट तर्कणासे वस्तु सिद्ध हो सकती है।' वह 'छेदन'का पूछा था न ! भाषा तो इस तरह भी आये–कर्म को छेदे। 'सर्वविशुद्धज्ञान अधिकारमें'से या है न ! 'छेदे'...जिसप्रकार बंधनको जानते हुये भी बंधनको छेदता नहीं...आत्माको बंधन है और शुद्ध होकर बंधनको छेदता नहीं...! भाषा तो कैसी आये ? छेदन किसकी अपेक्षासे ? यह छेदन हो गया और नाश हो गया, इस अपेक्षासे छेदन कहनेमें आता है। बाकी आत्मा तो 'छेदन' का नाममात्र कर्ता है ! यह आया है ? ('समयसारकी) ३८ गाथा। ये तो अलौकिक बातें हैं, बापू ! आहाहा...! रागका छेद करनेवाला अर्थात् नाश करनेवाला–वह भी आत्मामें नाममात्र है, परमार्थसे (निश्चयसे) वह नहीं। आहाहा...! क्या इसकी शैली !! आहाहा...! भाई ! मार्ग गंभीर है। आहाहा...! अब ३९ गाथा।

'**अब इन्हीं अविद्यमान पर्यायोंकी ज्ञानप्रत्यक्षताको दृढ़ करते हैं**' और दृढ करते हैं। है ? अविद्यमानपना (स्वीकारते) हैं तथापि पर्यायके ज्ञानमें प्रत्यक्षपना दृढ़ करते हैं। यह तो अलौकिक बातें हैं, बापू ! आहाहा...!

जदि पच्चक्खमजादं पज्जायं पलयिदं च णाणस्स।
ण हवदि वा तं णाणं दिव्वं ति हि के परूवेंति॥३९॥

नीचे (हरिगीत)

ज्ञाने अजात-विनष्ट पर्यायो तणी प्रत्यक्षता।
नव होय जो, तो ज्ञानने ए 'दिव्य' कोण कहे भला ?॥३९॥

'अजात' (अर्थात्) अनुत्पन्न। **'विनष्ट'** (अर्थात्) पूर्वमें हुआ है वह। आहाहा...! एक-एक तत्त्व भी ऐसा अलौकिक है। यह केवलज्ञान तो 'मोक्षतत्त्व'की बात है। आहाहा...! 'मोक्ष'में तो ऐसा अर्थ आता है कि दुःखसे मुक्त हुआ। 'मोक्ष' वैसा शब्द है न ? परंतु वह भी नाममात्रसे कथन है। आहाहा...!

टीका :— 'जिसने अस्तित्वका अनुभव नहीं किया' (अर्थात्) भविष्यकी पर्याय। भविष्यकी पर्याय विद्यमान थी इस तरह अस्तित्वका अनुभव किया नहीं। भविष्यकी पर्याय(का) अस्तित्व हुआ ही नहीं। यह तो 'प्रवचनसार' है। भगवान तीनलोकके नाथकी दिव्यध्वनि। इसे 'दिव्यध्वनि' कहो या 'प्रवचन' कहो (दोनों एकार्थ है) 'प्र' अर्थात् दिव्य वचन। इसका सार–दिव्यध्वनिका सार। साक्षात् भगवान (विराजमान हैं) आहाहा...!

'जिसेने अस्तित्वका अनुभव नहीं किया' किसने ? भविष्यकी पर्यायने। भविष्यकी पर्याय अबतक अस्तित्वरूप हुई नहीं। **'और जिसने अस्तित्वका अनुभव कर लिया है'** (अर्थात्) गतकालकी (पर्यायें)। गतकालकी पर्यायें अस्तित्व-सत्‌रूप हो गई है, अनुभव कर लिया है। आहाहा...! गाथाएँ तो गाथाएँ हैं न ! 'अमृतचंद्राचार्य'ने अमृत उँडेला है।

'जिसने अस्तित्वका अनुभव नहीं किया' (अर्थात्) हुई नहीं। और जिसका अस्तित्व हो गया है। हो गया है **'ऐसी (अनुत्पन्न और नष्ट)'** (अर्थात्) उत्पन्न नहीं हुये हो और विलय हो चुके हो। ऐसी **'पर्यायमात्रको'** आहाहा...! ऐसी पर्यायमात्रको **'यदि ज्ञान अपनी निर्विघ्न विकसित, अखंडित प्रतापयुक्त!'** आहाहा...! जिसके ज्ञानकी पर्यायका अखंड प्रताप है। 'प्रभुत्वशक्ति' है न ? प्रभुत्वशक्ति आती है न ? स्वतंत्ररूप जिनका अखंड प्रताप शोभित हो रहा है। आहाहा...! केवलज्ञान भी प्रभुत्वरूप है। इसकी पर्यायमें भी प्रभुत्वरूप है। आहाहा...! ज्ञानकी पर्याय, हाँ...! यह ज्ञानकी पर्याय निर्विघ्न विकसित (है)। (अर्थात्) बिना विघ्नकी अपनेसे विकसित। आहाहा...! जिस प्रकार लाख पंखुड़ीका कमल खिलता है इसप्रकार अनंत...अनंत...गुण(रूपी) पंखुड़ीका पिंड प्रभु पर्यायमें खिल उठता (है)। आहाहा...!

'अखंडित प्रतापयुक्त प्रभुशक्तिके (महा सामर्थ्य) द्वारा' आहाहा...!। जो पर्यायें अनंत आत्मामें या जड़में अबतक हुई नहीं और हो गई–वह विलीन हो गई, इसे अपनी निर्विघ्न विकसित (पर्याय जान लेती है), (ऐसी) विकसित (अर्थात्) प्रगट पर्याय(का) अखंडित प्रताप है। जिसका प्रताप तीनकालमें कोई खंड नहीं कर सकता। ऐसी प्रभुत्वशक्ति द्वारा। आहाहा...! **'बलात् अत्यंत आक्रमित करे'** आहाहा...!

वो 'कर्ता' आता है न ? (श्री 'राजमलजी पांडे'ने) 'कलश टीका'में **'बलजोरी'**से कर्ता होता है ऐसा अर्थ लिखा है। वस्तु स्वभाव रागका कर्ता नहीं है। परंतु बलजोरीसे (अर्थात्) उल्टा होकर कर्ता होता है। 'कलशटीका'में **'कर्तृत्व'**का ऐसा अर्थ किया है।

जिसप्रकार उल्टा बलजोरीसे कर्ता होता है वैसे (यहाँपर) अपनी बलजोरीसे आहाहा...! **'अत्यंत आक्रमित करे'** अर्थात् पर्यायको (-प्राप्त करे)। आहाहा...! **'तथा वे पर्यायें अपने स्वरूपसर्वस्वको अक्रमसे अर्पित करे'** वे पर्यायें अपने स्वरूपसर्वस्वको वर्तमान अर्पित करे। आहाहा...! (यानी कि) (एक ही) साथ ज्ञानमें ज्ञात हों। आहाहा...! भूतकालकी बीती हुई और भविष्यकी हुई नहीं, अस्तित्वमें आई नहीं व अस्तित्वका अनुभव नहीं हुआ, वे पर्यायें अपने स्वरूपसर्वस्वको अक्रमसे अर्पित करती (हैं)। (अक्रमसे अर्पित करती हैं अर्थात्) पहले वर्तमानमें ज्ञात हो और आगे भविष्यका ज्ञात हो, भूतका पहले ज्ञात हो....वैसे नहीं। इन पर्यायोंका ऐसा स्वभाव है। आहाहा...!

पहले भूतकी पर्याय ज्ञात हो और आगे भविष्यकी (ज्ञात हो) ऐसा इसप्रकार पर्यायोंका वैसा स्वभाव नहीं। आहाहा...!

'इसप्रकार उन्हें अपने प्रति नियत न करे (–अपनेमें निश्चित न करे, प्रत्यक्ष न जाने) आहाहा...! 'तो उस ज्ञानकी दिव्यता क्या है?' उस ज्ञानकी दिव्यता...! अलौकिकता...! विस्मयता...! है। आहाहा...! **'वे पर्यायें अपने स्वरूपसर्वस्वको अक्रमसे अर्पित करें (एक ही साथ ज्ञानमें ज्ञात हों) इसप्रकार उन्हें अपने प्रति नियत न करे (अपनेमें निश्चित न करे, प्रत्यक्ष न जाने), तो उस ज्ञानकी दिव्यता क्या है?'** आहाहा...!

'इससे (यह कहा गया है कि) पराकाष्ठाको प्राप्त ज्ञानके लिये यह सब योग्य है'। पराकाष्ठाको (अर्थात्) अंतिमसे अंतिम ज्ञानकी उत्कृष्ट अवस्था हो गई उसे सब योग्य है। अनुत्पन्न और हो गई उन्हें भी वर्तमान प्रत्यक्ष जानता है वैसा ही कोई ज्ञानका स्वभाव है, (वैसा कहना है)। विशेष कहेंगे .... (श्रोता :— प्रमाण वचन गुरुदेव !)

ૐ

નમઃ સિદ્ધેભ્યઃ